मधु शर्मा

सरस्वती

1939-II

लेख-सूची

Contributed by: Prabhat Kumar

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल—उमेशचन्द्रदेव

जुलाई १९३९ } भाग ४०, खंड २ संख्या १, पूर्ण संख्या ४७५ { आषाढ़ १९९६

अबिसीनिया

लेखक, श्रीयुत गोपालशरणसिंह

रहने पाया नहीं शान्ति से,
अबिसीनिया ! ललाम।
अकस्मात् लुट गया अकारण,
सब तेरा धन-धाम॥
भूल गया ने अधःपतन के,
अपने क्लेश अशेष।
तुझे गिराया गौरव-गिरि से,
कर छल-छद्म विशेष॥
सबके साथ सदा करता था,
तू सच्चा व्यवहार।
फिर क्यों तुझ पर हुआ अचानक,
ऐसा निठुर प्रहार ?
करनी पड़ी तुझे भी पूरी,
सबल शक्ति की साध।

...ता के लिए ल...
...ू सुल्तान...
...त हुआ...
...त्तर के...
ह र-फेर...
तू था निर्बल यही एक था, बस तेरा अपराध॥
होकर ही ... बस रही अन्त में,
बर्बरता की जीत।
काँप रही ... है निर्बल जनता,
होकर अति भयभीत॥
मौखिक समवेदना विश्व की,
तनिक न आई काम।
सबल शत्रु ने शीघ्र कर दिया,
तेरा काम तमाम॥
करता रहा करुण स्वर से तू,
नाहक ही फ़रियाद।
इस दुनिया में किस निर्बल को,
कभी मिली है दाद ?

वधिर कर रहा था कानों को,
भीषण समर-निनाद।
कहाँ सुनाई पड़ सकता था,
करुण अहिंसावाद॥
देख कठोर सबल सत्ता का,
वर्बर अत्याचार।
झेंप गई सभ्यता मच गया,
जग में हाहाकार॥
सामूहिक-रक्षा -प्रयास का,
पड़ा न तनिक प्रभाव।
पशुता निगल गई मानवता,
न्याय, दया, सद्भाव॥
तू रोता रह गया पर रुकी,
नहीं शत्रु की चाल।
कभी आँसुओं से बुझता है,
समरानल विकराल?
था अशक्त पर तो भी तूने,
पाला निज कर्तव्य।
नष्ट हो गया पर तूने कुछ,
किया न काम अभव्य॥
निर्बल होने पर भी तूने,
सहा नहीं अपमान।
निज गौरव-रक्षा -हित तूने,
किया अतुल बलिदान॥
वर्बरता का नग्न नाच,
देखता रहा संसार।
छोड़ सका मर्यादा अपनी,
किन्तु न पारावार॥
रहे घुमड़ते और गरजते,
नभ में ही घनघोर।
दिया न समराङ्गण को जल से,
बोर ओर से छोर॥
पर करने के लिए शान्त,
रिपुओं की तृषा अपार।
तेरे शूर सैनिकों ने दी,
बहा रुधिर की धार॥
तेरे सुख-वैभव-गौरव के,
दिन हो गये व्यतीत।
स्वप्न-सदृश हो गया तुझे अब,
तेरा सुखद अतीत॥
क्या रह गया खो गया तेरा,
सम्मानित व्यक्तित्व।
विजयी की करुणा पर निर्भर,
है तेरा अस्तित्व॥
तुझे विजेता के चरणों पर,
रखना है निज भाल।
तुझे बिताना है निज जीवन,
नत-मस्तक सब काल॥
नहीं सहज ही भुला सकेगा,
तू अपना अपमान।
घूंट-घूंट तुझको करना है,
विस्मृति-मदिरा-पान॥

महाराज रणजीतसिंह की शताब्दी

लेखक, डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी, डी॰ एस-सी॰

सत्ताईस जून सन् १८३९ को सायंकाल के समय पञ्जाब-केसरी महाराज रणजीतसिंह का देहावसान हुआ था। सौ वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी उनकी कीर्ति केवल इतिहास के पृष्ठों में ही नहीं वरन पञ्जाब के प्रत्येक नर-नारी के हृत्पटल पर अङ्कित है। यही नहीं, जिस किसी को हिन्दुस्तान के इतिहास का कुछ भी ज्ञान है वह महाराज रणजीतसिंह के नाम से परिचित है।

पंजाब-केसरी महाराज रणजीतसिंह का जन्म १३ नवम्बर सन् १७८० को गुजराँवाले में हुआ। उनके पिता महासिंह का जन्म सन् १७५७ में हुआ था जब अँगरेज़ों ने बङ्गाल पर चढ़ाई की थी। किन्तु पंजाब-केसरी रणजीतसिंह का [illegible] वर्ष हुआ जब मैसूर के सुविख्यात सुल्तान [illegible]रास के अँगरेज़ों पर चढ़ाई की थी। उनके पिता सकरचकिया मिसल के होनहार सरदार थे और उनकी माता भिन्द के सरदार गजपतिसिंह की पुत्री थीं। रणजीतसिंह का पहला नाम बुद्धसिंह था। रणजीतसिंह जब दस वर्ष के थे तभी उनके पिता अपने पराक्रम और अपने आदर्श को उनके सुपुर्द कर चल बसे थे। पराक्रमी पिता का पुत्र स्वभाव से ही पराक्रमी था, किन्तु अनुभव की कमी की पूर्ति कुछ तो उनके पिता के दीवान लखपत राय ने और कुछ उनकी माता और उनकी सुयोग्य सास सदाकुँअर ने पूरी कर दी थी। अकबर, हैदरअली आदि की तरह रणजीतसिंह को पढ़ने-लिखने का शौक़ न था। वीरोचित खेलों और अस्त्र-शस्त्र चलाने का उन्हें व्यसन था। वे स्वयं कहते थे कि उनके पिता २०,००० गोलियाँ छोड़ गये थे, जिनको मैंने चाँदमारी में ही चला डाला। इस अभ्यास का यह फल हुआ कि वे रण-कला में निपुण और उत्साहपूर्ण हो गये। जब वे तेरह वर्ष के थे तब एक बार शिकार खेलते हुए वे अपने साथियों से बिछुड़ गये। नवाब हशमतख़ाँ की उन पर नज़र पड़ी। उसने सोचा कि वह रणजीत को मार कर अपने पिता की दुश्मनी का बदला चुका ले। नवाब ने उन पर तलवार चलाई, जो संयोगवश उनके घोड़े की बाग पर जा पड़ी, जिससे बाग कट गई। रणजीत फिर कर नवाब पर टूट पड़े और उनका सिर काट लिया। अठारह वर्ष की अवस्था में उनका हौसला इतना बढ़ गया था कि उन्होंने लाहौर के क़िले के पास जाकर जिसमें अफ़ग़ानिस्तान का बादशाह शाहज़माँ उतरा हुआ था, बेधड़क गोली चलानी शुरू कर दी, जिससे कई दुर्रानी घायल हुए। फिर गर्ज कर कहा कि "ऐ अहमदशाह अब्दाली के पोते, देख चरतसिंह का पोता आया है। बाहर आ और उसके दो हाथ देख ले।"

क़सूर के नवाब के आक्रमण के भय से और भङ्गी सरदारों के उपद्रव के कारण लाहौरवालों ने रणजीतसिंह की सहायता माँगी। इस निमंत्रण को पाकर पचास हज़ार फ़ौज लेकर उन्होंने लाहौर पर अपना अधिकार सन् १७९९ के जुलाई महीने में जमा दिया। यह वर्ष भी मार्के का था, क्योंकि इस घटना के सिर्फ़ दो ही महीने पहले मैसूर ही नहीं वरन दक्षिण की स्वतंत्रता के लिए लड़ता हुआ वीर हैदरअली का वीर पुत्र टीपू सुल्तान श्रीरङ्गपट्टम् के सिंहद्वार पर वीरगति को प्राप्त हुआ था। दक्षिण के एक प्रबल राज्य का पतन और उत्तर के प्रबल सिख-राज्य का संस्थापन सिर्फ़ दो महीने के हेर-फेर में ही हो गया। लाहौर की विजय से ही रणजीतसिंह के विस्मयजनक राजनैतिक कार्य का आरम्भ होता है।

रणजीतसिंह की योग्यता की जाँच भी शीघ्र ही हो गई। प्रबल और उद्दण्ड भङ्गी और रामगढ़िया मिसलों के सरदारों एवं क़सूर के नवाब ने मिल कर एक साथ ही रणजीतसिंह पर चढ़ाई कर दी। लाहौर के पास ही भसीन गाँव में दोनों दलों का सामना हुआ। किन्तु आक्रमणकारी निष्फल और हताश होकर स्वयं ही तितर-बितर हो गये। (१८००) इस घटना का यह प्रभाव हुआ कि रणजीतसिंह के झंडे के नीचे अनेक प्रसिद्ध सरदार [illegible] आये। अँगरेज़ों के भी प्रतिनिधि मूल्यवान् भेंटों [illegible] बधाई देने आये और उनकी मित्रता के [illegible] उनका बल इतना बढ़ गया कि वे "[illegible]

लगे और उनका सिक्का चलने लगा। (१८०१) सिक्के पर उन्होंने अपना नाम या प्रशस्ति नहीं खुदाई। उस पर यह आदर्श खुदा था—

तेग़ो तेग़ो फ़तह नुसरत बे दिरङ्ग
याप्त अज़ नानक गुरु गोविंदसिंह

महाराज रणजीतसिंह ने अपने प्रभुत्व को बढ़ाने के लिए मित्रता और शत्रुता दोनों से काम लिया। प्रबल अहलूवालिया मिस्ल के नेता फ़तेहसिंह से उन्होंने स्वयं मित्रता का प्रस्ताव किया जो सफल हुआ। किन्तु जिसने उनका विरोध किया उसको उन्होंने तलवार के ज़ोर से अपना वशवर्ती बनाना शुरू कर दिया। क़सूर और मुल्तान के नवाबों पर गहरी चोटें कीं और नजराने वसूल किये और अमृतसर में अपना झंडा गाड़ दिया (१८०३)। लाहौर और अमृतसर पर आधिपत्य जम जाने से महाराज का प्रताप बहुत बढ़ गया और वे सिखों के अधिपति मान लिये गये।

यद्यपि महाराज रणजीतसिंह ने पंजाब में सिखराज्य की स्थापना कर दी थी, तथापि पंजाब पर अधिकार जमाने के लिए उनको अनेक युद्ध करने पड़े। उनका राज्य चारों ओर से दूसरे राज्यों से घिरा हुआ था। काश्मीर, पेशावर, अटक, हज़ारा, देराजात, मुल्तान, बहावलपुर, सिंध प्रदेश अफ़ग़ानों के अधिकार में थे, जिनका सम्बन्ध अफ़ग़ानिस्तान के शाहों के साथ प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से था। उत्तर में पंजाब के पहाड़ी प्रदेश में काँगड़ा, जम्मू, कुलू, चम्बा आदि स्वतंत्र राजपूत रियासतें थीं। उत्तर-पूर्व में उदीयमान गोरखा-राज्य था। पूर्व में यमुना के तट तक अँगरेज़ों का राज्य था। इन प्रबल शक्तियों से अपनी रक्षा करना ही क्या कम पुरुषार्थ था? फिर उनके विरोध करने पर भी अपने राज्य का विस्तार करना असाधारण योग्यता और बलशालीनता का स्वयं सिद्ध प्रमाण है।

वह ज़माना लार्ड वेल्सली का था, जिसने मैसूर-राज्य की स्वतंत्रता नष्ट करके मराठों पर चक्र चलाना शुरू किया। सन् १८०२ में मराठों के नेता बाजीराव (द्वितीय) यशवन्तराव होल्कर से डर कर अँगरेज़ों की शरण में गया। यह मौक़ा हाथ में आते ही अँगरेज़ों ने अपनी रण-कुशलता और कुटिल नीति से भोंसला राजा और सिंधिया को दबाकर उनके बहुत से इलाक़े छीन लिये और ऐसी सन्धि के करने पर उन्हें मजबूर किया जिससे वे अँगरेज़ों के पंजे में आ गये। एक यशवन्तराव होल्कर ही ऐसा रह गया था जिसने डीग में हारकर भी सिर झुकाया। उसने भरतपुर के राजा रणजीतसिंह से और सिंधिया से सहायता माँगी। भरतपुर ने यथाशक्ति सहायता दी, किन्तु सिंधिया टाल-मटूल करता रहा। तब उसने पंजाब के सिक्ख सरदारों एवं महाराज रणजीतसिंह से सहायता के लिए याचना की (सितम्बर १८०५)। होल्कर के साथ पिंडहारी रुहेला सरदार अमीरख़ाँ भी था। महाराज ने उनके ठहरने और आदर-सत्कार करने के लिए अमृतसर में प्रबन्ध कर दिया। महाराज ने सिख-सरदारों को जमा कर उनसे सम्मति माँगी। सरदारों ने कहा कि यदि होल्कर की सहायता की गई तो पंजाब रण-क्षेत्र में परिणत हो जायगा, जिससे पंजाबियों की हानि होगी। अतएव अँगरेज़ों और होल्कर में सन्धि करा देना अच्छा होगा। महाराज को भी यह बात जँच गई।

सिखों की यह धारणा ठीक न थी, क्योंकि मराठा-युद्ध एवं भरतपुर में अँगरेज़ी सेना की असफलता से [illegible] और बढ़ते हुए क़र्ज़ से घबराकर कम्पनी ने [illegible] की जड़ लार्ड वेल्सली को हटाकर उसकी [illegible] शोषक नीति को बदलने के लिए ही कार्नवालिस को पुनः भारत भेजा था। उसने तीस जुलाई १८०५ को अर्थात् होल्कर के अमृतसर पहुँचने के दो महीने पहले ही वेल्सली से प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया था। यदि महाराजा या खालसा इस समय चतुरता से और ज़रा दबंगी से काम लेते तो संभव था कि सतलज के इस पार की सिख-रियासतों पर भी अपना प्रभुत्व जमा लेते और यमुना के आगे अँगरेज़ों के बढ़ने का प्रश्न अधिक काल के लिए टल जाता। महाराज और होल्कर यदि कुछ ज़ोर दिखाते तो संभवतः सिंधिया भी उनका साथ देता, क्योंकि कुछ समय से उसकी नीति के बदलने के लक्षण साफ़ साफ़ दिखाई पड़ने लगे थे। यह भी कहना ठीक नहीं जान पड़ता कि पश्चिम से या उत्तर से किसी प्रकार का विशेष भय था। इस समय अफ़ग़ानिस्तान में अब्दाली-वंश के शाहज़ादों में आपसी घरेलू युद्ध छिड़ा हुआ था और सिदोज़ई और बरकज़ई

महाराज रणजीतसिंह

अफ़ग़ानों में खूब झगड़े और दाँव-पेंच चल रहे थे, जिनमें अफ़ग़ानों की शक्ति उलझी पड़ी थी। इसी प्रकार उत्तर की छोटी राजपूत रियासतों में न तो कोई ऐसी बलवती थी और न कोई ऐसा संगठन था जिससे किसी प्रकार की आशंका होती। यह साफ़ जान पड़ता है कि इस अवसर पर खालसा दरबार और महाराज से चूक हो गई और एक अच्छा अवसर हाथ से निकल गया।

महाराज की यह अभिलाषा क़ायम रही कि वे सतलज के इस पार के सिख-सरदारों को भी अपने वश में कर लें। संयोग से सन् १८०६ से नाभा और पटियाला के सरदारों में लड़ाई छिड़ गई और उन्होंने महाराज से सहायता माँगी। महाराज जुलाई में सतलज के इस पार आये। कपूरथला, पटियाला, नाभा और झींद के सरदारों ने उनका स्वागत बड़े धूमधाम से किया और उन्होंने महाराज के किये हुए फ़ैसले को स्वीकार कर लिया। उन्होंने लुधियाने और आस-पास के इलाक़े को दो सौ वर्ष के पुराने मुसलमान खान्दान से छीनकर सिख सरदारों में बाँट दिया। इससे उन्हें कुछ विशेष फ़ायदा नहीं हुआ। इस समय महाराज को चाहिए था कि वे इन सरदारों से साफ़ साफ़ सन्धियाँ करके उनको खालसा-दरबार का अभिन्न अङ्ग बना लेते और उनकी रियासतों की या तो सीमायें निश्चित कर देते या उनको खालसा-राज्य में मिला लेते।

सम्भव है कि सतलज के इस पार के प्रश्न को महाराज ने इस समय इसलिए छेड़ना न चाहा हो कि नैपाल-राज्य के गोरखा सेनापति ने काँगड़ा पर चढ़ाई कर दी थी और गोरखों को वहाँ से हटाना आवश्यक था। जो कुछ हो, महाराज ने काँगड़ा की ओर कूच कर दिया। उनके आने से एवं गोरखों में बीमारी फैल जाने के कारण गोरखों को पीछे हटना पड़ा। यह काम अवश्य अच्छा था, किन्तु और भी अच्छा होता यदि पंजाब और नैपाल के महाराजाओं में नैतिक सम्बन्ध स्थापित हो जाता और कुछ समझौता हो जाता। इसकी उस समय किसी को कुछ न सूझी।

वहाँ से जब फ़ुर्सत मिली तब महाराज ने पठानों की रियासत क़सूर को जीत लिया और मुल्तान के नवाब को क़सूर की सहायता करने के लिए दण्ड दिया। इन कामों को पूरा करके महाराज फिर पटियाला पहुँचे ताकि वहाँ के राजा और रानी का झगड़ा तय कर दें। झगड़ा तय करने के बाद महाराज ने कई सरदारों पर अपना प्रभुत्व जमा दिया और कुछ नया इलाक़ा भी अपने राज्य में मिला लिया। पहाड़ और अम्बाला के बीच के क़िले नारायणगढ़ को सरदार फ़तेहसिंह (कपूर्थला) के सुपुर्द कर दिया। अब भी समय था कि सतलज के इस पार की जीती हुई रियासतों का महाराज संगठन कर देते, किन्तु इधर काफ़ी ध्यान न देकर वे सियालकोट, अखनौर,

गुजरात आदि स्थानों और क़िलों के फ़तह करने में संलग्न हो गये। उनपर अधिकार जमा लेना तो आसान काम था।

यही नहीं, सतलज के पश्चिम की डल्लीवाली मिसल का इलाक़ा महाराज ने हड़प लिया (१८०८)। उनके इस काम से सतलज की इस पार की रियासतों में डर फैल गया था। उन सब रियासतों के सरदारों ने पटियाला के पास 'समाना' नामक स्थान में एक सभा की और यह निश्चय किया कि महाराज की सर्वभक्षी नीति से बचने का एक-मात्र यही उपाय है कि वे सब अँगरेज़ों के संरक्षण में चले जायँ। उन्होंने अपना एक डेपुटेशन भी देहली के ब्रिटिश रेज़ीडेंट के पास भेजा। उसने कोरी सहानुभूति और आश्वासन के अलावा किसी प्रकार का वादा नहीं किया। अब महाराजा की आँख खुली और उन्होंने उन भयपीड़ित सरदारों को अमृतसर में आमंत्रित करके उनको आश्वासन दिया और उनके भय को दूर करने के भरसक प्रयत्न किये। दोनों ओर से अहदो-पैमान हुए, किन्तु समय निकल जाने से सब बेकार हो गये।

इसी समय अँगरेज़ी दूत मिस्टर मेटकाफ़ ने आकर महाराज से कहा कि फ़्रांस के विजयी नेपोलियन के इस देश पर आक्रमण होने की आशङ्का है, इसलिए महाराज को चाहिए कि वे अँगरेज़ी सेना और पत्र-वाहकों को आवश्यकता पड़ने पर अपने राज्य से होकर अफ़ग़ानिस्तान को आने-जाने की इजाज़त दे दें। इन प्रस्तावों को सुनकर महाराज ने उत्तर दिया कि यदि अँगरेज़ यह वादा करें कि वे दरबार के सदा मित्र रहेंगे और सिख और अफ़ग़ानों के युद्ध में तटस्थ रहेंगे और सब सिख सरदारों को सिख-दरबार के अधीन मान लेंगे तो अच्छा होगा। जब तक इन बातों पर मेटकाफ़ साहब गवर्नर-जनरल मिन्टों से लिखा-पढ़ी करते रहे तब तक महाराजा ने सतलज पार कर और वहाँ की अनेक रियासतों से नज़राने वसूल कर लिये और अम्बाला पर अपना थाना क़ायम करके अमृतसर लौट गये।

गवर्नर-जनरल ने महाराज की इस नीति का विरोध करना आवश्यक समझकर डेविड आक्टरलोनी के सेनापतित्व में एक फ़ौज यमुना के पार भेजी। अँगरेज़ों ने सतलज के इस पार की रियासतों को फिर प्रलोभन दिया। उन्होंने जब अँगरेज़ी सेना को बढ़ते देखा तब फिर अँगरेज़ों के संरक्षण में जाने का निश्चय किया। अब क्या था? बिना विलम्ब किये अँगरेज़ी सरकार ने उनको अपनी रक्षा में लेने की घोषणा ९ फ़रवरी १८०९ में कर दी और उसकी सूचना महाराज को भेज दी और उनसे प्रार्थना की वे तुरन्त अपनी फ़ौजें, थाने आदि सतलज के इस पार से हटा लें। यह सीनाज़ोरी देखकर महाराज तिलमिला गये। उन्होंने भी चारों ओर से फ़ौजें बुलानी और लड़ाई की सामग्री शीघ्रता से एकत्र करनी शुरू कर दी। लाहौर के और अमृतसर के क़िले और संगीन कर दिये गये और उनमें तोपें चढ़ा दी गईं। इसी प्रकार अँगरेज़ों ने भी लुधियाने में मोरचा क़ायम करके अपनी सेना बढ़ानी शुरू कर दी। ऐसा प्रतीत होने लगा कि अब लड़ाई ठनी। किन्तु यह सब महाराज की बँदरघुड़की थी। इसका प्रभाव अँगरेज़ों पर कुछ न पड़ा। उधर नेपोलियन योरपीय झगड़ों में फँस गया, जिससे इस ओर बढ़ने का डर जाता रहा। इसके अलावा अँगरेज़ी एलची सिंध, अफ़ग़ानिस्तान और फ़ारस में अपना जाल फैला रहे थे। इसी से वे निडर थे। आखिरकार महाराज ने कंधा डाल दिया और सतलज के इस पार से अपना सम्बन्ध सदा के लिए तोड़ लिया। यद्यपि उनकी इस नीति का विरोध कुछ सरदारों ने किया भी, तथापि महाराज ने कुछ न करना ही हितकर समझा।

पंजाबी इतिहास-लेखकों की राय है कि अँगरेज़ों की प्रबलता का ठीक ठीक आँक लेना और उनसे युद्ध न करने की नीति ही महाराज की नीतिमत्ता और दूरदर्शिता का प्रमाण है। किन्तु इस राय में कुछ तत्त्व नहीं जान पड़ता। यह साफ़ है कि सिखों की बारह मिसलों में छः मिसलें जो सतलज के इस पार थीं, ख़ालसा-दरबार से सदा के लिए जुदा होकर अँगरेज़ों के आधिपत्य में चली गईं और अँगरेज़ी सेना सतलज के तट पर डट गई। यद्यपि अमृतसर की सन्धि से रणजीतसिंह को सतलज की दाहनी ओर से सिन्ध तक और सम्भवतः सिन्ध के उस पार तक निर्विघ्न मनमानी करने का अवसर मिल गया, किन्तु उससे उतना लाभ नहीं हुआ जितनी कि यमुना और सतलज के बीच के सिख-इलाक़ों के निकल जाने से हानि हुई। इसकी कसक महाराज को तो जो कुछ हुई सो हुई ही, यह बात सदा

ख़ालसा के मर्मस्थल में खटकती रही। यदि महाराज सन् १८०६ से १८०८ तक के अवसर को न खोते और उससे पूरा लाभ उठाने की चेष्टा करते तो शायद उनको विष के ये घूंट घूंटने न पड़ते और ख़ालसा का राजनैतिक अङ्ग-भङ्ग न होने पाता।

२५ अप्रैल १८०९ को अमृतसर की सन्धि हुई और ३ मई को अँगरेज़ों ने अपने संरक्षित सरदारों को अपनी नीति की घोषणा कर दी। अब इधर क्या रह गया था? अतः महाराज ने उत्तर की ओर ध्यान दिया, क्योंकि गोरखा सेनापति अमरसिंह थापा ने कोट काँगड़े को घेर लिया था। काँगड़े के राजा ने सिखों को क़िला देने का वादा कर दिया था, यदि वे गोरखों को काँगड़े से निकाल दें। महाराज क़रीब एक लाख फ़ौज लेकर काँगड़ा जा धमके और क़िले को अपने अधिकार में करके गोरखों से घोर युद्ध करने लगे। गणेशघाटी में सिखों और गोरखों का भयंकर युद्ध हुआ, जिसमें सिखों की विजय हुई। पराजय एवं अन्य कारणों से गोरखा-फ़ौज को पीछे हटना पड़ा। इस विजय का यह परिणाम हुआ कि पंजाब के पहाड़ी प्रदेश के प्रायः सभी राजाओं ने महाराजा को नज़रें दीं और उनका स्वागत किया। इस विजय से सिखों की नाक रह गई।

अब महाराज ने पंजाब के छोटे-बड़े क़िलों पर अधिकार करना एवं अवसर पाते ही अन्य सरदारों के इलाक़ों को छीनना ज़ोरों से आरम्भ कर दिया, क्योंकि उन्हें यह डर तो रहा नहीं कि अँगरेज़ किसी प्रकार का हस्तक्षेप करेंगे। गोरखों का भी भय जाता रहा था। यदि कुछ डर था तो अफ़ग़ानों की ओर से था। पंजाब में सिन्धु नद के दोनों ओर मुसलमानी रियासतें थीं और काश्मीर पर भी अफ़ग़ान-आधिपत्य अभी तक क़ायम था।

तैमूरशाह की मृत्यु (१७९३) के बाद अफ़ग़ानिस्तान म बड़ा उपद्रव फैल गया। तैमूर के तेईस लड़के थे। वे आपस में झगड़ने लगे। शाहज़मान ने कुछ दिनों तक काम सँभाला, किन्तु उसके भाई शाह महमूद ने उससे राज्य छीन लिया और उसे अन्धा कर दिया। महमूद भी अधिक समय तक राज्य न कर सका। शाहशुजा ने उसे क़ैद कर लिया और ख़ुद तख़्त पर बैठ गया। गवर्नर-जनरल लार्ड मिन्टो ने एलफिन्सटन साहब को भेजकर शाहशुजा से सन्धि कर ली। १७ जून १८०९ [illegible] बारकज़ई के नेता फ़तहख़ाँ ने शाह महमूद को क़ैद [illegible] निकालकर तख़्त पर बैठा दिया। शाहशुजा भाग कर (१[illegible] १८१०) रणजीतसिंह से सहायता लेने आया। महा[illegible] आदर किया। शुजा ने पेशावर में अपनी राज[illegible] उसका काश्मीर और अटक के अफ़ग़ानों ने उसकी [illegible]ाई। एक बार फिर वह काबुल पहुँचा, किन्तु चार म[illegible]ी। फिर निकाल दिया गया। अब की बार अटक [illegible] जहाँदारख़ाँ ने उसे पकड़कर अपने भाई अत[illegible] के पास भेज दिया। किन्तु उसकी बेगमें और [illegible] उसके अन्धे भाई शाहज़मान के साथ रावलपि[illegible] गये। रणजीतसिंह ने उनको लाहौर बुला लिया ([illegible] १८११)।

अभी एक महीना भी न बीता होगा कि काबुल के वज़ीर फ़तहख़ाँ का वकील लाहौर आया और फ़तहख़ाँ से काश्मीर जीतने में सहायता माँगी। शाहशुजा की रानी वफ़ा बेग़म को यह डर लगा कि अगर काश्मीर फ़तहख़ाँ ने जीत लिया और शाहशुजा जो वहाँ क़ैद में है उसके पंजे में आ गया तो वह उसकी जान ले डालेगा। इसलिए उसने रणजीतसिंह को कहला भेजा कि यदि वे शाहशुजा को कुशलपूर्वक बचा लावें तो वह उसे संसार का प्रख्यात कोहनूर हीरा भेंट कर देगी। महाराज को यह प्रलोभन ऐसा व्याप गया कि उनका एक मात्र लक्ष्य कोहनूर प्राप्त करना हो गया। वस्तुतः वह बड़ा नाज़ुक मौक़ा था। अफ़ग़ानों के एक शाह का परिवार उनकी शरण में था और दूसरा उसकी सहायता का इच्छुक हो रहा था। इस अवसर पर बड़ी सतर्कता और दूरदर्शिता से काम लेना उचित था, किन्तु महाराज को कोहनूर ने भ्रम में डाल दिया। उन्होंने काबुल के वज़ीर फ़तहख़ाँ को सहायता देने का वचन दिया। दोनों की मुलाक़ात रोहतास में हुई और दोनों की फ़ौजों ने काश्मीर पर चढ़ाई कर दी। यद्यपि काश्मीर के फ़तह करने में महाराज की सेना ने कोई विशेष सहायता न पहुँचाई, तो भी वह बड़ी चालाकी से शाहशुजा को अपने साथ उड़ा लाई। फ़तेहख़ाँ ने महाराज के सेनापति मोहकमचन्द से शाहशुजा को माँगा, किन्तु उसने देने से इनकार कर दिया। इससे फ़तहख़ाँ बहुत रुष्ट हो गया।

शाहशुजा के लाहौर में पहुँचते ही कोहनूर का [illegible]अमीर

हीं [illegible]ढ़ा बाद [illegible]यियों [illegible]दोल[illegible] जिहाद हद में [illegible]र से [illegible]ानों [illegible]नों

महाराज वोर से होने लगा। इधर से टाल-मटोल
हुई। नौ .ह पहुँची कि शाह का परिवार क़ैद कर लिया
गया ो नको अनेक कष्ट दिये जाने लगे। आखिरकार
स शाहौर में पड़े पड़े अपनी मिट्टी बरवाद करने के
उन 'उसे क्या था। इसलिए वेष बदलकर अप्रैल सन्
'सम को चोराचोरी भागकर वह अँगरेज़ों की शरण में
कियाना चला गया।

माः सन् १८११ से १८१५ तक अँगरेज़ों की नीति से
चरखों और मराठों को असन्तोष रहा। एक बार गोरखों
ि महाराज से सहायता भी माँगी, किन्तु उन्होंने साफ़
इनकार कर दिया। यही नहीं, उन्होने गोरखों के विरुद्ध
अँगरेज़ी सेनापति से सहायता देने का प्रस्ताव भी किया,
जिसे अँगरेज़ों ने दूरदर्शिता के कारण धन्यवादपूर्वक
अस्वीकृत किया।

जब महाराज को पूर्व की ओर बढ़ने की कोई आशा न रही तब उन्होंने उत्तर और पश्चिम की ओर ध्यान दिया। अफ़ग़ानितान की आन्तरिक कलह से कोहनूर एवं अन्य जवाहरात तो उनके हाथ लग ही गये थे, अब उन्होंने पश्चिमी सीमा के प्रान्तों पर अपना अधिकार जमाना शुरू कर दिया। अटक के अफ़ग़ान-सरदार ने वज़ीर फ़तेहख़ाँ के भय से अटक का क़िला महाराज को दे दिया। बस इस क़िले के मिलते ही महाराज पश्चिमी समस्याओं में ऐसे अटक गये कि फ़िर न तो सतलज के पार के सिख-सरदारों, न हिन्दुस्तानी राजनैतिक उथल-पुथलों और न ब्रिटिश शक्ति के अबाधित शक्तिसंचय का ही उन्हें कुछ ध्यान रहा।

भासीन और गणेशघाटी के युद्धों को छोड़कर महाराज ने अपनी वीरता, साहस और शक्ति का सारा प्रदर्शन अफ़ग़ानों के विरोध में ही किया। महाराज की अफ़ग़ानों से सबसे पहली टक्कर सन् १८१३ में हुई। काबुल के वज़ीर ने अटक का क़िला घेर लिया, पर सिख-सेनापति मोहकमचन्द ने अफ़ग़ानों से घोर युद्ध करके उनको परास्त कर दिया। इस युद्ध में दो हज़ार अफ़ग़ान खेत रहे और बहुत कुछ सामान और तोपें सिखों के हाथ लगीं। इस विजय ने सिखों का उत्साह सदा के लिए बढ़ा दिया और अफ़ग़ानों का भूत पंजाबवालों के ही नहीं, बरन हिन्दवालों के सिर से हट गया। सिखों ने काश्मीर भी जीतना चाहा, किन्तु उन्हें पहली बार सफलता न हुई। अतएव उन्होंने उत्तर की पहाड़ी रियासतों और काश्मीर के दर्रों पर अपना क़ब्ज़ा करना और बल बढ़ाना शुरू कर दिया। इसी प्रकार सरहद की छोटी-बड़ी अफ़ग़ान-रियासतों को भी अपने वश में करने का महाराज सफल प्रयत्न करने लगे। इन युद्धों में सन् १८१७ के मुल्तान का युद्ध उल्लेखनीय है। इस युद्ध का सच्चा और ओजपूर्ण वर्णन कवि गणेशदास ने कवित्त और दोहों में किया है। इस युद्ध में धार्मिक जोश बहुत भड़का, बीस सहस्र मुसलमान योद्धा जिहाद करने के लिए चारों ओर से मुल्तान में जमा हो गये। दोनों ओर के वीरों ने डटकर जी भर कर घोर युद्ध किया। अकालियों ने तो काल का-सा विकराल दृश्य दिखाकर सिखों की रग-रग में जोश भर दिया। वयोवृद्ध वीर नवाब मुज़फ़्फ़रख़ाँ अदम्य उत्साह दिखाकर अपने दो पुत्रों के साथ वीरगति को प्राप्त हुआ। मुल्तान सिख-राज्य में मिला लिया गया। इससे भी अच्छा तो यह होता कि मुल्तान, बहावलपुर और सिन्ध की शक्ति को रक्षित और सञ्चित करके किसी ऊँचे आदर्श की ओर झुका दिया जाता जिसकी आवश्यकता खालसा-दरबार ही को नहीं, बल्कि हिन्द-निवासियों को स्वतः सिद्ध थी।

इतना जोश-खरोश रहने पर भी महाराज ने निहत नवाब के छोटे बेटों का आदर-सत्कार किया और उन्हें जागीर दी। महाराज की यह नीति थी कि स्वतंत्र अथवा अर्द्ध स्वतंत्र इलाक़ों और रियासतों को अपने राज्य के अन्तर्गत कर लेते, किन्तु पराजित इलाक़ेदारों को वे नष्ट नहीं करते थे। प्रायः उनको जागीरें देकर राष्ट्र-सेवा का अवसर देते थे। सिख अथवा मुसलमान रियासतों और सरदारों के साथ वे इस नीति का एक-सा व्यवहार करते थे।

मुल्तान फ़तह होने के थोड़े ही अर्से के बाद काबुल में फिर गड़बड़ पैदा हो गया। शाह महमूद ने अपने बेटे की उत्तेजना से योग्य वज़ीर फ़तहख़ाँ की हत्या बड़ी निर्दयता से करा दी, जिससे बरकज़ई अफ़ग़ानों में बड़ी सनसनी फैल गई और वे उत्तेजित हो उठे। इस अवसर को देखकर महाराज ने पेशावर लेने की ठान ली। हज़ारों सरहद्दी अफ़ग़ानों के विरोध करने पर भी सिख-सेना ने पेशावर पर झंडा गाड़ दिया। किन्तु दोस्त मोहम्मदख़ाँ ने

महाराज के लौटते ही जहाँदारख़ाँ और श्यामसिंह को निकाल दिया और महाराज के अधीन रहने की स्वयं प्रार्थना की। महाराज ने उसे अपना बाजगुज़ार बना लिया। (१८१२) दूसरे साल अफ़ग़ान जब्बारख़ाँ को हराकर ४ जुलाई १८१९ को काश्मीर की राजधानी श्रीनगर में सिखों का झंडा गाड़ दिया गया और काश्मीर सिखों के राज्य में मिला लिया गया। डेराग़ाज़ीख़ाँ, हज़ारा मानकेरा (बिलूचिस्तान), भक्करा, डेरा इस्माईलख़ाँ आदि सरहद्दी स्थानों पर शीघ्र ही सिखों ने आधिपत्य क़ायम कर लिया।

सिखों की बढ़ती शक्ति को देखकर काबुल के नये वज़ीर अज़ीमख़ाँ ने बड़ी फ़ौज के साथ पेशावर पर चढ़ाई करके उसे ले लिया। वज़ीर ने अफ़ग़ानों में उत्साह बढ़ाने और जोश पैदा करने के लिए जिहाद की घोषणा कर दी। थोड़े ही समय में पचीस हज़ार अफ़ग़ान जिहाद के लिए आगये। किन्तु महाराज इससे ज़रा भी न घबराये। उन्होंने भी फ़ौजकशी कर दी। नौशहरा के क़रीब अफ़ग़ानों की फ़ौज आगई। उसने जहाँगीरा के क़िले को घेर लिया और सिंधु नद के अटक के पुल को तोड़ डाला। किन्तु महाराज और उनके सरदारों ने घोड़े नद में बढ़ा दिये और सिख-सेना तैर कर पार हो गई। अब जिहादी सेना पीछे हटकर मुख्य सेना में जो नौशहरा में थी, जा मिली। दोनों फ़ौजों का सामना होते ही अकालियों से न रहा गया। "सत श्री अकाल" के नारे लगाकर अकाली अफ़ग़ानों पर टूट पड़े। उनके नेता फूलासिंह के मरने से सिखों में बड़ा जोश आगया। अफ़ग़ान भी अपनी डाढ़ी मेंहदी से रँग कर मर मिटने के लिए तैयार थे। दोनों में घोर युद्ध हुआ। विजयश्री सिखों के हाथ में रही और अज़ीमख़ाँ स्तब्ध होकर आँखों से ग़ाजियों का पराभव देखता रह गया। सिखों ने उसे नदी पार करने तक का मौक़ा न दिया। आख़िर हताश होकर उसे लौटना पड़ा। इस पराभव से उसको वैसा ही आघात पहुँचा जैसा कि पेशवा बालाजी को तीसरे पानीपत के युद्ध से हुआ था। काबुल पहुँचने के पहले ही उसका देहावसान हो गया (१८२४)। हश्तनगर और पेशावर में फिर महाराज के झंडे फहराने लगे। पेशावर का शासन उन्होंने यार मोहम्मद और उसके भाई दोस्त मोहम्मद के हाथ में रहने दिया।

भयंकर युद्ध करने पर भी अफ़ग़ानों का हौसला नहीं पूरा हुआ। बाँस बरेली का मीर अहमद नाम का एक योद्धा जो पहले अमीरख़ाँ रुहेले की सेना में नौकर था किन्तु बाद को कट्टर धर्म-प्रचारक हो गया था, अपने मौलवी अनुयायियों के साथ सरहद्दी प्रान्त में सिखों के विरुद्ध घोर आन्दोलन करने लगा। उसने मोहम्मदी झंडा उठाया और जिहाद के लिए अफ़ग़ानों को उत्तेजित किया। सारी सरहद में सनसनी फैल गई और अफ़ग़ान मुजाहिद चारों ओर से जमा होने लगे। यूसुफ़ज़ई, ख़लील और मोहमन्द अफ़ग़ानों में विशेष उत्साह था। लगभग चालीस हज़ार अफ़ग़ानों ने पेशावर पर चढ़ाई कर दी। यार मोहम्मद को मारकर पेशावर पर अफ़ग़ानों ने फिर अधिकार कर लिया। किन्तु सिख-सेना ने उन्हें जमने न दिया। घोर युद्ध करके जिसम छः हज़ार अफ़ग़ान मारे गये, सिखों ने पेशावर वापस छीन लिया। पेशावर का प्रबन्ध महाराज ने यार मोहम्मद के भाई सुल्तान मोहम्मदख़ाँ को सुपुर्द कर दिया (१८२८-३०)। सन् १८३१ में सैयद अहमद और मोहम्मद इस्माइल भी शहीद हो गये।

इस समय पंजाब-केसरी का प्रताप अपने पूरे यौवन को पहुँच गया था। हरात, बिलूचिस्तान; हैदराबाद (दकन) और अँगरेज़ों के प्रतिनिधि उनके दरबार में भेंटें लेकर आये। किन्तु अँगरेज़ अपनी भेंटें सिन्ध नद के मार्ग से लेकर आये। सिन्ध के अमीर तो उनके उस मार्ग से जाने के विरोधी थे, किन्तु महाराज और अँगरेज़ों ने मिलकर उन पर ऐसा दबाव डाला कि उन्हें रास्ता देना ही पड़ा। यही नहीं, अँगरेज़ी गवर्नर लार्ड बेंटिंक ने भी महाराज से मिलने की इच्छा प्रकट की। अक्टूबर १८३१ में दोनों की भेंट रोपड़ में बड़े समारोह के साथ हुई। अँगरेज़ी आवभगत केवल आदर-प्रदर्शन के लिए ही न था। इसका मुख्य कारण यह भी था कि अँगरेज़ सिंध नद के मार्ग को ज़ाहिरा तौर पर व्यापार आदि के लिए लेकिन असल में सब कामों के लिए खुलवा देना चाहते थे। इस रास्ते से अँगरेज़ लोग पंजाब, अफ़ग़ानिस्तान, बलूचिस्तान और मध्य-एशिया में आसानी से पहुँच सकते थे। इस प्रस्ताव का यही रहस्य था और इसी कारण सिन्ध के अमीर

इसका विरोध करते थे। महाराज यद्यपि जानते थे कि सिंधु नद के अवगाहन में अँगरेज़ों का ध्येय संदेहजनक है, किन्तु अमीरों की सहायता करना तो दूर रहा, उल्टा उन्होंने उन पर दबाव डाला जिससे वे हताश हो गये।

महाराज की नीति से अँगरेज़ों का उत्साह और बढ़ा। उन्होंने महाराज से चुराकर सिन्ध के अमीरों के साथ अलहदा अलहदा व्यापारिक सन्धियाँ कर लीं, जिनके अनुसार अँगरेजी व्यापारी जहाज़ विना रोक-टोक के और विना महसूल के निर्विघ्न और निःसंकोच आने-जाने लगे। जब सब तय हो गया तब अँगरेज़ों ने महाराज को उन सन्धियों की सूचना दी। महाराज अकबका गये, किन्तु कुछ समझ में न आया। आखिर लाचार होकर उन्होंने भी अपनी स्वीकृति दे दी (१८३२)। जो जागै सो पावै जो सोवै सो खोवै की कहावत इस समय सिद्ध हो गई।

यद्यपि महाराज को सतलज-यमुना के दोआबे, पंजाब के पूर्वीय पहाड़ियों और सिन्ध के मामलों में अँगरेज़ों ने चकमे और चालें दिखाईं, किन्तु फिर भी उनकी समझ में यह न आया कि वे अँगरेज़ों की सुरसावाली सर्वग्राही नीति का निराकरण किस प्रकार करें। यद्यपि फ़क़ीर अज़ीज़ुद्दीन और दीनानाथ आदि उनके सलाहकार थे, किन्तु वे वैसे नीतिज्ञ न थे जो अँगरेज़ी चालों को समझ या रद कर सकते। महाराज को पश्चिमोत्तर-प्रान्त के पथरीले देशों में अपनी शक्ति के प्रदर्शन से इतना संतोष था कि उनको अन्य बातों की चिन्ता ही न थी। वे अँगरेज़ों के अनुगृहीत इसी कारण थे कि उन्होंने महाराज को सरहद्दी अफ़ग़ानों से उलझे रहने में कोई अड़चन न लगाई और काबुल में ऐसा कोई षड्यंत्र नहीं रचा जिससे अफ़ग़ानों की शक्ति या उत्साह बढ़ता। अँगरेज़ों को क्या पड़ी थी कि विना मतलब महाराज को व्यर्थ तंग करते और उनको चट्टानों से टकरा टकरा कर अपनी शक्ति को क्षय करने से रोकते? वे सब तमाशा देखते रहे। किन्तु जब उनको कोई मौक़ा मिला तब वे अग्रसर हो गये और महाराज देखते और सोचते ही रह गये।

सन् १८३३ में अफ़ग़ानिस्तान की परिस्थिति में पुनः गड़बड़ हुआ। इस समय भी अफ़ग़ानिस्तान संगठित न था। काबुल, ग़ज़नी और जलालाबाद के प्रान्त दोस्त मोहम्मद के अधिकार में थे, किन्तु कन्धार में शेरदिलख़ाँ और हरात में शाहज़ादा कामरान स्वतंत्र राज्य करते थे। इस समय ईरान में रूस का प्रभाव बढ़ा हुआ था और यह आशंका हो रही थी कि ईरान हरात पर आक्रमण करेगा। हरात अफ़ग़ानिस्तान और हिन्दुस्तान में घुसने का एक सिंहद्वार समझा जाता था, अतएव सतर्क शक्तियाँ इस समस्या पर विचार करने लगीं। शाहशुजा ने भी सोचा कि यह सुन्दर अवसर है इसलिए इससे लाभ उठाना चाहिए। उसने महाराज के साथ इस विषय पर लिखा-पढ़ी शुरू की। १२ मार्च १८३४ को महाराज और शाहशुजा में एक सन्धि हुई, जिसके अनुसार महाराज ने सहायता देने का वादा कुछ शर्तों पर किया। उनमें मुख्य ये थीं कि सिन्धु नद के दोनों ओर के पास के इलाक़े सदा के लिए खालसा-दरबार के सुपुर्द कर दिये जायँगे और विना महाराज की आज्ञा के कोई सिन्धु नद पार न करने पावेगा। दोनों राज्यों में व्यापार में एक दूसरी की प्रजा को सुविधायें रहेंगी। जब ये शर्तें अँगरेज़ों के सामने आईं उन्होंने मंजूर न कीं। शाहशुजा ने महाराज से एक तोप और एक लाख रुपया लेकर फ़ौज बढ़ाई। सिन्ध के अमीरों ने भी लड़ने-भिड़ने के बाद पाँच लाख रुपये दिये। इसी प्रकार औरों ने भी सहायता की। किन्तु शुजा दोस्त मोहम्मद से कन्धार में हार गया और इधर-उधर भटक कर फिर लुधियाने में आगया (१८३४)। किन्तु सिखों ने सरहद्दी प्रान्त पर अपना स्वत्व समझ लिया। पेशावर दोस्त मोहम्मद के भाइयों के हाथ से लेकर हरीसिंह नलवा के प्रबन्ध में कर दिया गया और वहाँ दो नये क़िले भी बनवा लिये गये। यह सब दोस्त मोहम्मद को अत्यन्त अरुचिकर हुआ। उसने दो बार पेशावर लेने की कोशिश की। दूसरी बार उसे आरम्भ में कुछ सफलता हुई। हरीसिंह नलवा के निधन से सिखों की जीत का महत्त्व जाता रहा। उनमें क्षोभ पैदा हो गया। महाराज ने शीघ्रातिशीघ्र फ़ौजें पेशावर को भेज दीं, जिससे अफ़ग़ान छिन्न-भिन्न हो गये और दोस्त मोहम्मद काबुल लौट गया (१८३५-३७)!

सिखों की विजय से लाभ उठाने के लिए अथवा रूसियों के बढ़ते बल का प्रतिरुन्ध करने के लिए अँगरेज़ों ने सिखों की सहायता से शाहशुजा को काबुल के तख़्त पर बैठाने का निश्चय किया। इस काम के लिए उन्होंने जो सन्धि का प्रस्ताव महाराज के सामने रक्खा वह शाहशुजा और

महाराज की पहली सन्धि से कुछ अंशों में भिन्न है। इस सन्धि में पूर्ववत् महाराज का सीमान्त प्रदेशों पर अधिकार मान लिया गया और व्यापारिक सुविधायें आदि भी मान ली गईं। किन्तु उनमें दो-एक नई मार्के की बातें भी शामिल कर ली गईं। एक तो यह कि सिख-सेना जिस दिन से मदद करने जायगी, शाहशुजा उसे दो लाख रुपये साल खर्च को देंगे। बशर्ते कि पेशावर में महाराज ५,००० सेना तैनात कर दें। दूसरी यह कि अँगरेज़ी सेना दक्षिण की ओर से न कि पंजाब के भीतर होकर जायगी। तीसरी यह कि उत्तर के रास्ते से सिख-सेना ही बढ़ेगी जिसके साथ अँगरेज़ी सेना तो न जायगी किन्तु अँगरेज़ी सलाहकार और प्रतिनिधि अवश्य रहेंगे। हरात शाहशुजा अपने भतीजे कामरान के हाथ में ही रहने देंगे। किन्तु सबसे चुटीली शर्त यह थी कि सिंध के अमीरों और उनके वंशजों का क़ब्ज़ा सिन्ध पर सदा के लिए उन्हीं के हाथ में रहेगा। उनसे एक बँधी रक़म के अलावा कोई और माँग-जाँच न की जायगी और सिन्धवालों से महाराज के सम्बन्ध पूर्ववत् रहेंगे। इन शर्तों का यह नतीजा हुआ कि सिन्ध एक प्रकार का अर्द्ध स्वतंत्र राज्य हो गया। आगे के लिए महाराज अपना अधिकार सिन्ध प्रदेश एवं सिन्ध नद पर खो बैठे। महाराज से इस सन्धि पर दस्तख़त करवाने के लिए बड़ी चालाकी से अँगरेज़ी प्रतिनिधियों ने काम लिया। यह स्मरण रखना चाहिए कि इस सन्धि के विरुद्ध महाराज के कई सरदारों ने गम्भीर दलीलें पेश कीं और ब्रिटिश का आश्रय छोड़कर स्वतंत्र नीति का आश्रय लेने पर ज़ोर भी दिया। किन्तु महाराज ने एक न सुनी और सन्धि कर ही तो ली (२५ जुलाई १८३८)। अक्टूबर में अँगरेज़ों ने बहावलपुर से सन्धि करके उसको भी अपनी छत्र-छाया में ले लिया। इस त्रिशिरा रूपी सन्धि ने सिखों का पश्चिम और दक्षिण की ओर बढ़ना रोक दिया। सिख-राज्य की सीमाबन्दी उसी तरह कर दी गई जैसी कि अमृतसर की सन्धि से पूर्व हो गई थी। पंजाब-केसरी चारों ओर से बँध गया। उनकी आशाओं पर पानी फिर गया और खालसा-राज्य का भविष्य संदिग्ध हो गया।

संसार की सभी बातों में ख़ास तौर पर राजनैतिक संसार में मनुष्य की सफलता अवसर के सदुपयोग पर बहुत कुछ अवलम्बित रहती है। समय या अवसर बार बार न आते। जिसने मौक़ा हाथ से जाने दिया वह धोखा खा[illegible] है। महाराज को कई अच्छे अवसर मिले। किन्तु अ[illegible] राष्ट्रीय एवं अखिल भारतवर्षीय परिस्थिति का उ[illegible] ज्ञान न होने एवं राजनीतिक दाँव-पेंच के न समझने या समझानेवालों का अभाव होने के कारण वे अवसर उ[illegible] हाथ से निकल गये। अवसर उनको सन् १८०१, १८[illegible] १८०८-०९, १८१०-१२, १८१४-१८, १८२०, १८३२-[illegible] १८३७-३८ में मिले। किन्तु अभाग्यवश महाराज उनसे विशेष लाभ न उठा सके। शायद उसके मुख्य कारण उ[illegible] दृष्टि-कोण की संकुचितता, उनकी संशयग्रस्त आत्मा[illegible] राजनैतिक अनुभव अथवा शिक्षा का अभाव आदि[illegible] उनमें संभवतः उस व्यापक और विशाल शक्ति[illegible] शालीनता की कमी थी जिसके बिना साम्राज्य-र[illegible] और शासन-विधान की सिद्धि प्राप्त नहीं होती। सच है कि महाराज को अँगरेज़ों जैसी प्रबल और [illegible] शक्ति का सामना करना पड़ा, जिसके आगे हमारे दे[illegible] किसी नेता की कोई तरकीब काम न आई। परन्तु उ[illegible] साथ यह भी सच है कि पंजाब के समान अच्छी स्थिति श[illegible] किसी अन्य राज्य की न थी। गोरखा और अफ़[illegible] पहाड़ और रेगिस्तान पंजाब के लिए हितकर सिद्ध [illegible] सकते थे।

यह उचित नहीं जान पड़ता कि किसी व्यक्ति के म[illegible] को समझने के लिए इस बात की ही सिर्फ़ जाँच की जाय [illegible] उसने क्या क्या नहीं किया और किन किन कार्यों में [illegible] असफलता मिली। उसके जाँचने के लिए यह विशेषरू[illegible] देखना चाहिए कि उसने क्या क्या काम किये और सफ[illegible] की चोटी तक पहुँचने में वह कहाँ तक समर्थ हुआ। [illegible] कसौटी न्यायसंगत और उपयोगी है। पंजाब-केसरी की अ[illegible] कृतियों में सबसे प्रमुख सिखों को एक सूत्र में बाँधने का प्र[illegible] और उनकी स्वतंत्रता, धीरता, वीरता को केन्द्रित क[illegible] उनमें जातीय एकता के भाव का जाग्रत करना है। मह[illegible] ने साधारणतः पंजाब में और विशेषकर सिखों में ए[illegible] राजनैतिक जीवन का संचार कर दिया और उनमें अ[illegible] विश्वास, अदम्य उत्साह और विजयाकांक्षा पैदा कर[illegible] इसी एक कार्य के बल से उनकी कीर्ति देश में सदा [illegible] रहेगी। उनका दूसरा काम सीमा-प्रान्त की यु[illegible]

अफ़ग़ान जातियों का मद चूर्ण करके उनका दमन करना है। यह काम भी भारत के इतिहास में बड़े महत्त्व का है। जिस काम को हिन्दुओं में चन्द्रगुप्त मौर्य को छोड़कर कोई न कर सका और जिसे मुसलमान होते हुए भी मुग़ल-सम्राट् और फ़ारस के बादशाह भी अच्छी तरह न कर सके, उसे केवल पंजाब-प्रान्त में प्राप्य साधनों के द्वारा महाराज रणजीतसिंह ने उल्लेखनीय सफलता के साथ किया। इस असाधारण सफलता का श्रेय उनको ही है। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि पश्चिमोत्तर-सीमा का प्रश्न असाध्य नहीं बल्कि सुसाध्य है। हिन्दुस्तान-वासियों को अफ़ग़ानों से भय करने का कोई कारण न होना चाहिए। पानीपत की तीनों कालिमाओं को उन्होंने अपनी तलवार के पानी से धो दिया और देश को निर्भयता और उत्साह और नई आशाओं से गौरवान्वित कर दिया। महाराज ने यह सिद्ध कर दिया कि देश में ऐसे साधन हैं जिनके सदुपयोग से ऐसी विजयशालिनी सैनिक शक्ति तैयार की जा सकती है जो अजेय हो सकती है। ऐसी अजेय शक्ति की रचना उन्होंने राजपूत, सिख, गोरखा, हिन्दू, मुसलमान और योरपीयों के संमिश्रण और सहयोग से की थी। कोई कारण नहीं जान पड़ता कि उसी प्रकार के प्रयोग से उस समय से अधिक सिद्धि आगे प्राप्त न हो। उनके जैसा संगठन करनेवाला पराक्रमी नेता देश को कब मिलेगा, यह कौन कह सकता है। गत सौ वर्ष में तो कोई हुआ नहीं। अतएव उनके पश्चात् की दूसरी शताब्दी के आरम्भ में उनकी यशःपताका का अभिनन्दन करना ही इस समय हमारा सौभाग्य है।

कौन तुम बिन....

लेखक, श्रीयुत अंचल

कौन तुम बिन और गायेगा प्रवासी-गीत मेरे !

है जिसे जग की न ममता साँझ से घर की न माया,
अश्रु शेष रहे न जिसके शून्य जिसने मर्म पाया;
हो न तुमको भी व्यथा में सोच यह संतप्त होना
पर रहूँ मैं मौन कैसे जब विकल संसार रोता ?
श्रान्त तृष्णा से भरे चिर क्लान्त जाते थे बटोही
आ गया किस ओर से मैं आत्म-पीड़ित आत्म-द्रोही !
जल रही अतृप्ति मेरे सान्ध्य गीतों में चितेरे
कौन तुम बिन और गायेगा प्रवासी-गान मेरे ?
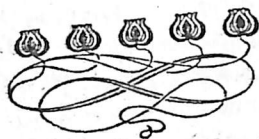
दूर जग की धूपछाहों से कहीं आवास तेरा,
प्राण पंछी खोल पाँखें उड़ जहाँ करते बसेरा;
हैं जहाँ बँधते न सुख-दुख से हृदय के लघु प्रकंपन,
ताल देते स्वप्न मेरे सुन वहीं के स्वर सुहावन;

हो न गति अवरुद्ध मेरी तीर के पाषाण-सा जल ?
जूझ अपनी ही तरंगों से करूँ संघर्ष पागल;
बस यही सन्तोष किरणों-सी तुम्हारी साँस घेरे
कौन तुम बिन और गायेगा प्रवासी-गान मेरे ?

विवाह और रोमांस

अनुवादक, श्रीयुत त्रिविड़ा जोशी

एक तो होता है तारीफ़ करना और एक होता है ढिंढोरा पीटना। इन दोनों में जो गुलाबी फ़र्क़ है, उसे हमारे व्यापारी लोग तो ख़ूब समझते ही हैं, मियाँ रफ़ीक़ ने भी उसे समझने, समझकर अपनाने में कोई कोताही नहीं की है। अपनी बीबी की जब वे तारीफ़ करना शुरू करते हैं तो मालूम होता है कि 'इन्दर-सभा' के तमाशे के इश्तहार बाँटे जा रहे हैं, बीबी की तारीफ़ में जब कभी उन्हें कोई नई बात सूझती, कोई नया क़सीदा तैयार होता तो सर पर सवार होकर वह हमें सुनाया जरूर जाता। बस यहीं पर नहीं होती, बल्कि हमें दाद देने पर मजबूर किया जाता। दाद भी ऐसी, जिसके सामने खुद उनका क़सीदा भी फीका पड़ जाये ! न मालूम कितनी बार हमने उससे कहा कि भाई, तू बड़ा खुशक़िस्मत है और तेरी बीबी को अल्लाह मियाँ ने वाक़ई फ़ुरसत के वक़्त गढ़ा है, उसके-ऐसी औरत न आज तक पैदा हुई है न आगे पैदा होने की उम्मीद है, मगर उस अल्लाह के बन्दे को तो कुछ इसी में मज़ा आता था कि जहाँ कुछ दोस्त जमा हुए, वहाँ अपनी बीबी का क़िस्सा लेकर बैठ गये और इस लहजे में उसका बखान करना शुरू किया कि जैसे अपनी बीबी को खुद आपने ही ख़ूने जिगर पी-पी कर गढ़ा है।

इसमें कोई शक नहीं कि सबके सामने अपनी बीबी की तारीफ़ करना और उनको अपनी बीबी के लिए रश्क व हसद में डालना बेहयाई और बेशर्मी के अलावा और कुछ नहीं है, लेकिन मियाँ रफ़ीक़ इसी को अपने लिए बहुत बड़ी चीज़ समझते थे कि हम उनकी बीबी की तारीफ़ सुन सुनकर तरसें और हाथ मल-मल कर रह जायँ। उनकी बीबी की ख़ूबसूरती और उसके हावभाव का बारीक विवरण इतनी बार और इतने तरीक़ों से हमें सुनाया गया था कि घर की चहारदीवारी के अन्दर परदे में रहनेवाली बेगम होने के बावजूद भी वह हमारी आँखों के सामने थी। उसकी हर बात और हर अदा से हम उतना ही वाक़िफ़ थे जितना कि खुद मियाँ रफ़ीक़ को होना चाहिएं था। थोड़े में यह कि अगर मियाँ रफ़ीक़ की बीबी को किसी एक क़िस्म का हुनर मान लिया जाय तो मियाँ रफ़ीक़ को उस हुनर का मास्टर समझिये और हम उनके शागिर्द की हैसियत से इस हुनर को बड़ी मेहनत से, दिल व जान लगा कर, हासिल कर रहे थे। आये रोज़ मियाँ रफ़ीक़ इस हुनर पर प्रोफ़ेसरों की तरह लेक्चर देते थे और हम होनहार और मेहनती शागिर्द की तरह उसे सुनते थे।

यह सब तो ठीक था। लेकिन फिर भी हमारा यह खयाल था कि अगर आज कोई अल्लाह की बन्दी आँखों पर पट्टी बाँध कर भूल से भी अगर आपका दामन पकड़ ले तो यह थाली का बेंगन अपनी बीबी का क़सीदा पढ़ना छोड़ कर उसकी तरफ़ लुढ़क जायेगा।

बात यह थी कि शादी के बाद उनकी बदनसीब बीबी ही एक ऐसी पहली औरत थी जिसने इन हज़रत को देखा और देखकर उबकाई नहीं ली, बल्कि अपनी फूटी हुई क़िस्मत पर सब्र करके बैठ रही। अपनी ज़िन्दगी में पहली बार मियाँ रफ़ीक़ को इस बात का अनुभव हुआ कि वह भी जैसे इस क़ाबिल हैं कि कोई औरत उनकी होकर ज़िन्दगी बसर कर सकती है। उन्होंने इस पर कभी ग़ौर नहीं किया कि वह ग़रीब दर असल ज़िन्दा नहीं. बल्कि ज़िन्दा-दर-गोर होकर दिन काट रही है। हिन्दुस्तान की बेज़ुबान शरीफ़ औरत होने की वजह से वह चुप थी, वरना अब तक अपने इस चोंचों के मुरब्बा-क़िस्म के शौहर को किसी सरकसवाले के हाथ बेंच कर अपने दाम खड़े कर लेती।

मियाँ रफ़ीक़ अपनी बीबी के इसी लिए इश्तहार बने हुए थे कि वह इस ज़हर को शरबत समझ कर पी रही थी। वे अपनी बीबी को इसी लिए दुनिया की सबसे अच्छी और बेजोड़ औरत समझते थे कि उन्हें कोई और औरत देखना भी गवारा नहीं कर सकती थी। वे अपनी इस चटनी-रोटी में मगन थे। दुनिया में और कुछ भी है, इसकी उन्हें ख़बर नहीं थी। दुनिया की दूसरी ख़ूबसूरत नियामतों से न तो उनका कोई वास्ता पड़ सकता था और न इसकी

कोई गुन्जायश थी। यह सब होते हुए भी आँखों पर ठीकरी घर कर जब वे यह कहते थे कि उनकी बीवी के मुक़ाबले में अगर जन्नत से कोई हूर या परिस्तान से कोई परी आजाय तो वह उसको नज़र उठा कर नहीं देख सकते तो बस यही समझिए कि हमारे आग लग जाती थी और जी चाहता था कि उनकी इस बीवी परस्ती का भाँड़ा ठीक चौराहे पर फोड़ा जाय और उन्हें बतला दिया जाय कि वे किस क़िस्म की ग़लतफ़हमी में मुब्तिला हैं।

उस दिन की बात है। मियाँ रफ़ीक़ हमारे साथ 'मेरी पिकफ़ोर्ड', का फ़िल्म देखने गये। ख़ामोशी के साथ आप इस ख़ामोश फ़िल्म को देखते रहे। लेकिन एक जगह मसऊद की जो शामत आई तो उसके मुंह से निकल गया, "इस ज़ालिम को तो क़ुदरत ने अपनी सारी ख़ूबियाँ एक जगह करके गढ़ा है। यह हुस्न, यह जवानी और फिर यह भोलापन—सुभान अल्लाह !"

रफ़ीक़ साहब ने यह सब इस तरह सुना जैसे मसऊद सीधे-सच्चे तरीक़े से उनकी बीवी की तौहीनी कर रहा है। फ़ौरन बोले—"मुझे तो इसमें कोई ख़ास बात नज़र नहीं आती। मालूम नहीं, इसमें कौन-सी ऐसी ख़ूबी है कि आप रेशाख़त्मी हुए जा रहे हैं !"

बिला शक रफ़ीक़ की यह बात आग भड़कानेवाली थी। हुआ भी यही। हमीद ने लगे हाथ मुंहतोड़ जवाब दिया—"उसमें जो ख़ास बातें हैं, उसे आपकी आँखें नहीं देख सकतीं ! आप ख़्वामख़्वाह इस बदसूरत को देखने चले आये। आपको तो सिर्फ़ वही फ़िल्म देखना चाहिए, जिसमें आपकी घरवाली ने काम किया हो !"

बेरहम होकर उन्होंने कहा—"यहाँ बीवी का तो ख़ैर कोई जिक्र नहीं है, मगर मैं पूछता हूँ कि इस मिट्टी के माधो-नुमा औरत में आपको क्या ख़ूबी नज़र आई ?"

मैंने बात टालने के लिए कहा—"ख़ैर माफ़ करो। अब तमाशा देखो।"

मगर रफ़ीक़ साहब इसके आदी नहीं थे कि इस क़िस्म के सिलसिले को बीच में ही छोड़ दिया जाय या यों ही टाल दिया जाय। 'मेरी पिकफ़ोर्ड' की बेहूदा ख़ूबसूरती पर उन्होंने धुआँधार बोलना शुरू किया। न उन्होंने ख़ुद तमाशा देखा और न किसी और को देखने दिया। हम लोगों में सबने बारी-बारी से उनसे हाथ जोड़े, ख़ामोश रहने के लिए उनसे दरख़्वास्त की, ख़ुद मसऊद ने अपना कहा वापिस लिया, मगर इन सब बातों को रफ़ीक़ साहब ने क़ाबिले ग़ौर न समझा और 'मेरी पिकफ़ोर्ड' के ख़िलाफ़ ज़हर उगलते रहे। मालूम होता था कि इस ख़ूबसूरत औरत की परछाईं से अपनी बीवी का डटकर बदला लेने पर तुले हैं।

मसऊद ने हाथ जोड़ कर उनसे कहा—"ख़ुदा के वास्ते तमाशा देखने दो। क्यों सबके दाम ख़राब कर रहे हो। वक़्त भी साथ में बरबाद हो रहा है। जाने भी दो। इस औरत में हुस्न नहीं है, न सही, बदसूरती ही सही, मगर ख़ुदा के लिए इसकी जान बख़्श दो।"

कहने लगे—"सुभान अल्लाह, ज़रा इनकी हँसी तो मुलाहज़ा फ़रमाइए, मालूम होता है कि जैसे कोई जंगली बिल्ली म्याऊँ कह रही है !"

महमूद ने बेचैन होकर कहा—"अगर तुम नहीं चाहते कि तमाशा देखा जाय, तो चलो यहाँ से। फ़िज़ूल की बकवास और वक़्त बरबाद करने से क्या फ़ायदा ?"

आपने इसके जवाब में फ़रमाया—"वल्लाह, ज़रा इस बदतमीज़ औरत के हाथों की हरकत तो देखो, मालूम होता है, खुरपे से घास खोदी जा रही है—लाहौल बिलाक़ूवत !"

मैंने कहा—"सुनो रफ़ीक़, अब की अगर तुम कुछ बोले तो आग बुझाने की बाल्टी तुम पर इस्तेमाल की जायगी।"

कहने लगे—"ऐ सुभान अल्लाह, ख़ुदा ग़ारत करे इस हुस्न और दिलफ़रेबी को ! अपनी तिरछी नज़रों की अदा दिखाकर अपनी टेढ़ी आँखों को भी ज़ाहिर कर दिया और यह आपकी चाल है !"

महमूद उठकर चले और उनके साथ ही रफ़ीक़ की इन बदतमीज़ियों से तंग आकर हम लोगों को भी उठना पड़ा। अब यह हज़रत अपनी बीवी का बदला लेने के जोश में हमारे अलावा और लोगों के लिए भी गड़बड़ कर रहे थे और वह वक़्त आया ही चाहता था कि कोई-न-कोई इन हज़रत को डाँट कर इन हज़रत के साथ साथ हमारी शराफ़त पर भी पानी फेर देता। ग़ुस्से में अपनी बोटियाँ नोचते हुए हम सब सिनेमा-हाल से बाहर निकल आये। हमारे साथ ही रफ़ीक़ साहब भी बड़े इतमीनान के साथ इस तरह बाहर चले आये जैसे कोई बात ही नहीं है—हालाँकि इन हज़रत की बदौलत हममें से हरएक का एक रुपया ज़ाया हुआ था। सिनेमा-हाल से बाहर आकर इससे

पहले कि हम लोगों में से कोई कुछ कहे, हज़रत बोले—"आज के दाम फुक गये !"

जी में तो यही आता था कि भाई रफ़ीक़ साहब को हम सब मिल कर खा जायँ, मगर हम सबने ख़िलाफ़ आदत ज़ब्त से काम लिया और किसी ने उन्हें जवाब नहीं दिया। लेकिन शायद वह ख़ुद चाहते थे कि उनसे उलझा जाय। लिहाज़ा आपने फिर फूल बरसाने शुरू किये—"बड़ी हूर की बच्ची बनी है—न सूरत, न शक्ल, भाड़ में से निकल। अगर वाक़ई कुछ होतीं तो ख़ुदा जाने क्या आफ़त ढातीं।"

अब मसऊद से ज़ब्त न हो सका। बग़ैर डकार लिये निगल जाने के अन्दाज़ से उसने कहा—"आप तो हैं अंधे-बेवक़ूफ़ कहीं के ! अपने सिड़ीपन के पीछे हम सबको परेशान किया। इतना अच्छा फ़िल्म—सारा मज़ा किरकिरा कर दिया !"

महमूद ने भी जले फफोले फोड़े—"जी हाँ, बस मुसीबत तो यह आगई थी कि इनकी बीवी के होते हुए पिकफ़ोर्ड को हसीन क्यों कह दिया। जैसे इनकी परी जमाल बी साहबा उससे भी अच्छी हैं।"

रफ़ीक़ ने उसे तुर्की-ब-तुर्की जवाब दिया—"तो क्या इसमें कुछ झूठ भी है ? मैं सच कहता हूँ और ख़ुदा का शुक्र अदा करके कहता हूँ कि मैं मज़ाक़ नहीं कर रहा हूँ, बल्कि सच कह रहा हूँ। मेरी बीवी इस औरत से लाख दरजे अच्छी है। किसको आपने मेरी बीवी से मिलाया है—कहाँ राजा भोज कहाँ गंगू तेली !"

मैंने कहा—"अच्छा रफ़ीक़, ईमान से बताओ कि अगर तुम्हें पिकफ़ोर्ड मिल जाय तो तुम क्या करो ?"

अकड़ कर कहने लगे, "अमाँ लाहौल बिलाक़ूवत ! मैं तो वल्लाह उससे अपने पैर भी न दबवाऊँ !"

मसऊद ने जल कर कहा—"यह मुंह और मसूर की दाल—इस आरज़ू को देखिए और इनको देखिए !"

महमूद ने कहा—"जी हाँ, अगर अभी 'मेरी पिकफ़ोर्ड' आजाय और आपको महज़ इस काम के लिए नौकर रख ले कि आप उसके कुत्तों को नहला दिया करें तो आपकी यह तमाम शेख़ी धरी रह जाये और आप इस ओहदे को बादशाहत समझ मंज़ूर कर लें।"

हमलों की इस बौछार से दबकर रफ़ीक़ ने कहा—"अच्छा ख़ैर, यही सही। आप लोग तो पिकफ़ोर्ड की इस तरह तरफ़दारी कर रहे हैं कि जैसे उसके मुरीद हों या उसी का नमक खाकर जी रहे हों। जो भी हो, अब छोड़ो इस क़िस्से को !"

हम लोगों ने भी बात को टाल कर अपना-अपना रास्ता लिया। लेकिन मसऊद के यह सब बातें कुछ इस तरह लग गई थीं कि वह सीधा रफ़ीक़ के घर पहुँचा और इससे पहले कि रफ़ीक़ घर पहुँचे, उसने रफ़ीक़ की बीवी से एक दिलचस्प प्रोग्राम तय कर लिया। इसके बाद इस प्रोग्राम की ख़ुशख़बरी सुना कर अपने घर गया।

दूसरे ही दिन हम सबने रफ़ीक़ को अपने साथ लिया और बनारसी बाग़ की तरफ़ चल दिये। रफ़ीक़ आज भी बीवी का क़सीदा पढ़ने में मसरूफ़ था और हम सब भी आज उसकी हाँ-में-हाँ मिला रहे थे। बनारसी बाग़ की एक रविश पर बैठते हुए वह बोला—"मैं तुमसे सच कहता हूँ कि दुनिया की ख़ूबसूरत से ख़ूबसूरत औरत भी मेरे लिए मिट्टी है। मेरी आँखों में किसी का हुस्न उस वक़्त तक नहीं समा सकता जब तक कि मेरी बीवी का भोलापन और उसकी सादा ख़ूबसूरती मेरी आँखों में जगमगा रही है।"

इसी समय रविश के नज़दीक ही सड़क पर एक टाँगा आकर ठहरा। एक बुरक़ापोश औरत उसमें से उतरकर क़दम-क़दम पर गुल खिलाने लगी। महमूद ने चुपके से कहा—"ज़रा देखना, यह है हुस्न की चलती-फिरती तसवीर !"

मसऊद ने कहा—"वाक़ई, इस वक़्त तो यह हूर की देवी मालूम होती है। हालाँकि यह बुरक़ा पहने है, लेकिन इसकी ख़ूबसूरती फूटी पड़ती है।"

मैंने कहा—"ठीक ही है, हुस्न छिपाये नहीं छिप सकता। इसकी बेसाख़्ता अदायें इसे और भी हसीन साबित कर रही हैं। वह देखो, उसने एक फूल को हाथ में लेकर सूंघा, सूंघ कर छोड़ दिया—तोड़ा नहीं।"

इस वक़्त मियाँ रफ़ीक़ आँखें फाड़े उसे देख रहे थे कि उसने ग़ौर से आपकी तरफ़ देखा। इसी में वह रेशाख़त्मी हो गये और कहने लगे—"देखो तो सही, वह इसी तरफ़ देख रही है।"

महमूद ने कहा—"हमें यहाँ से हट जाना चाहिए जिससे कि वह बिना किसी हिचक के अपना दिल बहला सके।"

मैंने भी ताईद की और मसऊद ने भी कहा कि वाक़ई, हम लोगों की वजह से वह कुछ दवसट में आरही है।

मगर रफ़ीक़ पहले की तरह पत्थर का वुत बने हुए घास पर बैठे रहे। हम सब वहाँ से हट गये और झाड़ी की आड़ से नज़्ज़ारा देखने लगे। वह वुरक़ापोश औरत अपनी चहलक़दमी में आई थी और रफ़ीक़ की आँखें फटी-की-फटी रह गई थीं। टहलते-टहलते वह रफ़ीक़ के पास आगई। रफ़ीक़ कारटून बने बैठे थे। अब कुछ चौंक कर सँभल गये और ख़िदमतगार के अन्दाज़ से दस्तवस्ता खड़े हो गये। उसने आपसे कुछ कहा और आपने उसे कुछ जवाब दिया। दूर होने की वजह से हम लोग कुछ सुन न सके। कुछ देर बाद वह औरत वहाँ से चली गई और रफ़ीक़ कुछ देर तक लावारिस माल की तरह घास पर पड़े रहे। इसके बाद उन्होंने हमारी तलाश शुरू की और इधर हम सब भी इस अन्दाज़ से बेंच पर बैठे रहे कि जैसे सब कुछ ख़ुदा के फ़ज़्ल से ख़ैरियत है। रफ़ीक़ ने आते ही अपने को बेंच पर गिराते हुए कहा—"आप लोग आख़िर कहाँ ग़ायब हो गये थे?"

मसऊद ने जवाब दिया—"यह भी कोई शराफ़त थी कि एक शरीफ़ज़ादी हमारी वजह से दवसट में पड़ जाये और हम वहीं डटे रहें।"

कहने लगे—"मगर मालूम भी है, यह कौन थी?"

मैंने कहा—"होंगी कोई! जो भी हो, यह तो मानना ही पड़ेगा कि वह वुरक़ापोश थीं और साथ में उनके कोई न था। ऐसी हालत में हमें यही चाहिए था कि हम वहाँ से हट जायँ ताकि उसकी आज़ादी में कोई ख़लल न पड़े।"

कहने लगे—"सुनो तो सही, मैंने तो उससे दोस्ती कर ली।"

हम सबने एक-ज़ुवान होकर कहा—"दोस्ती कर ली?"

कहने लगे—"हाँ, दोस्ती कर ली। जब तुम लोग इधर चले आये तो वह वेचारी मेरी तरफ़ बढ़ी और मैंने यह अन्दाज़ा कर लिया कि तुम लोगों की वजह से ही वह अब तक इतनी दूर टहल रही थी। अब वह मेरे क़रीब आगई और उसने ख़ुद ही मुझसे पूछा कि मैं कौन हूँ। मैंने उसे अपने बारे में बताया तो उसने भी अपना पता दे दिया कि वह कौन है। उसने यह भी कहा कि वह रोज़ यहाँ टहलने आया करती है, लेकिन आज से पहले उसने हमें कभी नहीं देखा। इसके बाद कुछ शरमा कर कहने लगी—"अगर हम और आप एक वक़्त मुक़र्रर कर लें तो रोज़ाना मुलाक़ात हो सकती है।"

मैंने कहा—"मगर यह तो वता यार कि वह थी कौन?"

लापरवाही से कहने लगे—"इससे तुम्हें क्या मतलब! बस, इतना ही जान लो कि वह एक बड़े ख़ान्दान से ताल्लुक़ रखती है। ख़ान्दान का नाम बताना मुनासिब नहीं है।"

मसऊद ने कहा—"क्यों साहब, अब हमसे भी परदादारी होगी?"

मुस्करा कर बोले—"नहीं, यह बात नहीं है, बल्कि उसने अपनी जान की क़सम दिला दी।"

अहमद—"तो यह कहो कि जान तक की क़समा-क़समी हो चुकी है?"

मसऊद ने कहा—"भाई, अब हम ग़रीबों को तुम क्यों पूछने लगे। अब तो ख़ुदा ने तुम्हें सोने की चिड़िया का चिड़ीमार बना दिया है।"

बड़े ही इतमीनान से बोले—"कल तुम लोगों से भी मुलाक़ात करा दूंगा। मगर एक शर्त है। यह बात इस पार्टी से बाहर न जाने पाये।"

हम लोगों ने उनसे पक्का वादा कर लिया और दिल बस्तगी के इस सौदे पर बातें करते हुए अपने-अपने घर रवाना हुए। मालूम नहीं, इसके बाद रफ़ीक़ का बाक़ी दिन और रात कैसे कटी, लेकिन दूसरे दिन वह तमाम दुनिया की रंगीनी अपने ऊपर उँडेल कर वक़्त से बहुत पहले हम लोगों के साथ बनारसी बाग़ पहुँचे। जिस वक़्त वह बुरक़ापोश तशरीफ़ लाईं, रफ़ीक़ ने हम सबका उनसे ज़ुबानी शेक हैण्ड करा दिया। इसके बाद सिवाय इसके और क्या हो सकता था कि रोज़ाना बनारसी बाग़ जाना रफ़ीक़ की ज़िन्दगी की ज़रूरियात में शामिल हो गया था और मुक़र्रर वक़्त पर बनारसी बाग़ में चरते हुए वे नज़र आते थे। चाहे आँधी आये या पानी बरसे, तूफ़ान आये या क़यामत बरपा हो, लेकिन नागा कभी नहीं होता था। कभी-कभी हम लोग भी इस 'दिलवाले' के साथ अक़्ल की गाड़ी लिये चलते थे और कभी-कभी उनको अकेले छोड़ दिया जाता था। जो भी हो, यह सिलसिला इसी तरह जारी रहा और इश्क़ के अंधे रफ़ीक़ का अब यह हाल था

कि उसे हर तरफ़ मोहब्बत ही मोहब्बत, इश्क़ ही इश्क़ और बुरक़ा ही बुरक़ा नज़र आता था और हम लोग इस ताक में थे कि इस सिलसिले की कोई दिलचस्प घड़ी हाथ में आये। आख़िर वह दिन आया और मियाँ रफ़ीक़ ने हम लोगों को बुलाकर दवी हुई आवाज़ में पूछा—"यह तो बताओ कि आख़िर अब क्या किया जाये?"

मसऊद ने भारीभरकम बनकर कहा—"क्यों, क्या अभी से ऊब गये?"

रफ़ीक़ ने मुस्करा कर जवाब दिया—"यह बात नहीं है, बल्कि अब तो सूरत कुछ ऐसी पैदा होगई है कि वह मेरे बग़ैर ज़िन्दगी बसर नहीं कर सकती!"

महमूद बोले—"तो फिर मुबारक बाशद—अल्लाह ने मिलाई जोड़ी....!"

रफ़ीक़ ने सँभल कर कहा—"नहीं, अब यह मामला मज़ाक़ की हद से गुज़र गया है। मैं परेशान हूँ कि आख़िर इसका क्या इलाज किया जाय?"

मैंने कहा—"शादी करके दूसरा महल आबाद करो।"

हँस कर कहा—"हाँ, बस यही एक तरकीब है और मेरा खयाल है कि वह भी तैयार हो जायगी, मगर......"

मसऊद ने बात काट कर कहा—"अब अगर-मगर क्या?"

कहने लगे—"बात यह है कि एक तो अपनी हैसियत नहीं कि दो घर बसाये जायँ, दूसरे ज़रा बीवी का भी ख़याल है।"

मैंने पूछा—"बीवी का ख़याल कैसा?"

कहने लगे—"बस यही कि वह क्या कहेगी और उसके दिल को कितना बड़ा धक्का लगेगा! बात यह है कि सौत हर हालत में सौत ही होती है और उससे दिल को चोट पहुँचती ही है।"

मसऊद ने कहा—"ख़ैर, यह तो कोई ऐसी बड़ी बात नहीं है, जिसके लिए परेशान हुआ जाये। शुरू-शुरू में ज़रूर कुछ गड़बड़ी होगी, लेकिन बाद में धीरे-धीरे सब कुछ ठीक हो जायेगा।"

महमूद ने कहा—"दूसरे ऐसे मामलों में तुम्हें बीवी की परवाह करनी भी नहीं चाहिए। जब तक बना, तुमने उसकी पूजा की। अब उसका दौर ख़त्म हो गया और तुमने दूसरी देवी को अपने दिल के सिंहासन पर बिठा दिया।"

कहने लगे—"अच्छा तो जो राय तुम लोग दो। मगर यह दो-दो घर कैसे चलेंगे?"

मैंने कहा—"इसकी तुम फ़िक्र न करो। तुम्हारे दूसरे महल की सारी ज़िम्मेदारी हम लोगों के सिर रहेगी।"

रफ़ीक़ ने ख़ुश होकर मगर तकल्लुफ़ के साथ कहा—"अरे नहीं, भला यह भी कोई बात है कि तुम लोग मेरी वजह से एक मुसीबत अपने सिर लो!"

मसऊद ने कहा—"ख़ैर, आपकी इस हमदर्दी का शुक्रिया। बात यह है कि इस तरफ़ से आप बेफ़िक्र रहें और आप अपनी शादी का पैग़ाम फ़ौरन पेश कर दें।"

रफ़ीक़ इसके लिए पूरी तरह से तैयार हो गये। तय किया गया कि दूसरे दिन मेरी मारफ़त उस बुरक़ापोश को रफ़ीक़ का यह पैग़ाम दे दिया जाये। इसके बाद जहाँ तक हो सके, जल्दी ही इस क़िस्से को पूरा कर दिया जाये।

दूसरे दिन बनारसी बाग़ में मुक़र्रर वक़्त पर उस बुरक़ापोश औरत को रफ़ीक़ की जगह यह ख़ाकसार टहलता हुआ नज़र पड़ा और जैसे ही वे तशरीफ़ लाईं मैंने अपना सिलसिला शुरू कर दिया। कुछ देर तक बातें करने के बाद मैंने रफ़ीक़ को आवाज़ दी और महमूद और मसऊद को भी बुलाया। रफ़ीक़ गरदन झुकाये और महमूद और मसऊद हँसते हुए आ पहुँचे। उनके आते ही मैंने रफ़ीक़ से कहा—"रफ़ीक़ मियाँ, मैंने तुम्हारे बारे में इनसे बातें कीं, लेकिन यह चाहती हैं कि इस सिलसिले में हम लोगों के सामने तुमसे कुछ सवाल करें।"

रफ़ीक़ ने गरदन झुकाये कहा—"मैं तैयार हूँ।"

बुरक़ापोश ने मुझसे कहा—"मैं इनसे यह पूछना चाहती हूँ कि जब इनकी पहली बीवी मौजूद हैं तो इनको दूसरी शादी करने की क्यों ज़रूरत महसूस हुई?"

इस सवाल का जवाब बजाय रफ़ीक़ के ख़ुद मैंने दे दिया—"ज़रूरत का तो कोई सवाल ही नहीं पैदा होता। अलबत्ता आप यह पूछ सकती हैं कि पहली बीवी के होते हुए इस तरफ़ कैसे खिंचे?"

उसने कहा—"अच्छा, तो यही सही।"

रफ़ीक़ साहब ने बारहखड़ी-सी दोहराते हुए कहा—

"इसका जवाब मेरे दिल से पूछिए कि वह आखिर क्यों कर उस तरफ़ से फिर कर इधर आ गया ?"

उसने कहा—"अच्छा, अगर आपका दिल ऐसा ही बेलगाम है तो इस तरफ़ से फिर कर किसी और तरफ़ भी आसानी से जा सकता है ?"

रफ़ीक़ ने हकलाते हुए जवाब दिया—"यह तो. . . .हाँ, हूँ. . . . . .यानी ऐसा तो. . . . . .ख़ैर, अल्लाह मालिक है।"

उसने कहा—"मैं समझी नहीं, आपने क्या कहा ?"

आपने फिर सिटपिटा कर फ़रमाया—"मतलब यह कि . . .यानी वही जो मैंने कहा कि जब तक मुझे अपनी बीबी से मोहब्बत रही, कभी किसी की तरफ़ आँख उठा कर देखा तक नहीं। लेकिन जब उधर से मन फिर गया तो . . . . . तो. . . . .आपकी खिदमत में हाज़िर हुआ।"

उसने पूछा—"आख़िर मन के फिरने की वजह ?"

आपने कहा—"कुछ यों ही मेरा दिल उनकी तरफ़ से हट गया। वह बड़ी बद तमीज़, गुस्ताख़ और जाहिल क़िस्म की औरत है।"

उसने हँस कर कहा—"मगर मैं भी वैसी ही हो जाऊँ तो ?"

रफ़ीक़ ने कहा—"ख़ुदा न करे, आपका और उसका क्या मुक़ाबला। और अगर ख़ुदा न ख़्वास्ता ऐसा हो भी तो यह मेरी क़िस्मत !"

उसने कहा—"अच्छा जनाब, अब एक शर्त है और वह यह कि मेरे साथ शादी करने के बाद आपको अपनी पहली बीबी को तलाक़ देना पड़ेगा।"

रफ़ीक़ ने बिना सोचे-समझे हुए जल्दी से कह दिया, "जैसा भी आप चाहें, मैं हाज़िर हूँ।"

हमने हैरान होकर पूछा—"यानी तुम इसके लिए तैयार हो कि अपनी पहली बीबी को तलाक़ दे दो ?"

कहने लगे—"अगर यही शर्त है तो मैं इसके लिए तैयार हूँ।"

उसने कहा—"अच्छा तो अब मैं आपकी और आप मेरे। मगर अब मैं एक इजाज़त चाहती हूँ। वह यह कि मैं आपके दोस्तों से परदा न करूँगी।"

रफ़ीक़ ने ख़ुशी के मारे बेख़ुद होकर कहा—"हरगिज़ परदा न करो, बिलकुल परदा न करो। य सब मेरे भाई हैं।"

यह सुनते ही उसने अपना बुरक़ा उतार दिया और रफ़ीक़ साहब अपने इस दूसरे महल को बे-नक़ाब देखकर इस तरह उछल पड़े जैसे किसी बच्चे ने सोते में हौवे का सुपना देखा हो। इसके बाद मुंह खोले बदहवास से खड़े रह गये।

उसने कहा—"अब आप चुप क्यों खड़े हैं ? अगर मुझसे आपको नफ़रत है, अगर मैं बदतमीज़, नालायक़ और गुस्ताख़ हूँ तो मुझे तलाक़ देकर किसी बुरक़ापोश के साथ घर बसाइए।" मैंने आपसे यह तमाम मज़ाक़ इसलिए जारी रखा कि मैं यह जान जाऊँ कि तुम्हारे दिल में मेरे लिए कितनी जगह है। जो भी हो, मुझे अब सब बातें मालूम होगई हैं और मेरी आँखों के सामने से तुम्हारी तारीफ़ों का रंगीन परदा हट गया है। अब मैं जान सकी हूँ कि मैं किस जगह पर हूँ।"

हम लोगों ने मिल कर कहा—"मियाँ रफ़ीक़, अपनी बीबी से दूसरा निकाह सोने में सुहागा होता है।"

रफ़ीक़ ज़्यादा देर तक खड़े न रह सके और चकराकर अपनी बीबी के क़दमों में गिर पड़े और अजीब आवाज़ में रोना शुरू कर दिया। हम लोग क़हक़हे लगा रहे थे, रफ़ीक़ की बीबी मुस्करा रही थी और रफ़ीक़ रोते-रोते जान दिये देता था।*

*हज़रत शौकत थानवी की कहानी का स्वतंत्र रूपान्तर।

हमारा प्रधान उपनिवेश
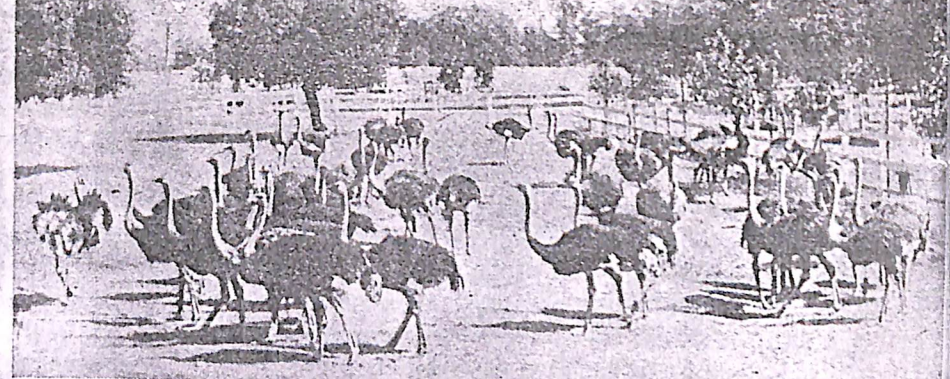
लेखक, श्रीयुत सेठ गोविन्ददास एम० एल० ए०

किसी भी देश का पूरा ज्ञान समाचार-पत्रों के पढ़ने या वहाँ से सम्बन्ध रखनेवाली पुस्तकों के अध्ययन से नहीं हो सकता, इस बात का अनुभव मुझे इस बार की अफ़्रीका की यात्रा से हो गया।

विद्यार्थी की हैसियत से भूगोल में मैंने अफ़्रीका देश का हाल पढ़ा था, परन्तु स्कूल या कालेज में एक दिन के लिए भी मैंने प्रवेश न किया था। यद्यपि घर में मुझे अँगरेज़ी की ऊँची से ऊँची शिक्षा देने का इन्तज़ाम किया गया था, तथापि स्कूलों और कालेजों में जिस तरह भूगोल, इतिहास, गणित आदि विषय पढ़ाये जाते हैं, उस तरह मुझे इन विषयों की शिक्षा नहीं मिली थी। अफ़्रीका का भौगोलिक ज्ञान मुझे बहुत थोड़ा-सा था। इतिहास मैंने भारतवर्ष और योरप का ध्यान से पढ़ा था, अन्य देशों का नहीं। अफ़्रीका के पुराने इतिहास के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानता था। सबसे पहले अफ़्रीका ने मेरा ध्यान उस समय आकर्षित किया जब गांधी जी ने वहाँ सत्याग्रह-संग्राम छेड़ा था। सन् १९१९ में सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करते ही मुझे उपनिवेशों के मामलों में बड़ी दिलचस्पी हो गई। और १९२३ में जब मैं सबसे पहले सेंट्रल लेजिस्लेटिव असेम्बली का मेम्बर हुआ तब से मैंने उपनिवेशों के मामलों में ख़ास दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी। फिर भी आज मुझे यह कहना पड़ता है कि अफ़्रीका के सम्बन्ध में असेम्बली और कौंसिल आफ़ स्टेट में अनेक प्रश्न पूछने और अनेक भाषण देने पर भी मेरा वहाँ का ज्ञान नहीं के बराबर था। मेरा ही नहीं, मेरी तो राय है कि जो लोग वहाँ नहीं गये हैं और वहाँ जाकर जिन्होंने वहाँ के विषयों का अध्ययन नहीं किया है उनका सबका यही हाल है।

हमारे देश के साधारण लोगों के सिवा पढ़े-लिखे व्यक्तियों के भी अफ़्रीका के सम्बन्ध में बड़े अजीब विचार हैं। भूमध्यरेखा पर होने के सबब हम लोग समझते हैं कि अफ़्रीका बड़ा गरम देश है। जब भारतवर्ष में भी कई स्थानों का तापमान १२० डिगरी तक पहुँच जाता है तब अफ़्रीका का तो १३० तक होना एक मामूली बात समझी जाती है। ऐसे गरम देश का रूखा-सूखा होना भी स्वाभाविक बात मानी जाती है। फिर वहाँ के जंगल और उनमें रहनेवाले सिंह, हाथी और ज़ेबरा बहुत मशहूर होने के सबब हम अफ़्रीका को ज़्यादातर जंगली देश समझते हैं। सबसे बड़ी ग़लतफ़हमी यह है कि हम अफ़्रीका के भिन्न-भिन्न हिस्सों में कोई फ़र्क़ न कर समूचे देश को एक-सा मानते हैं। पूर्व-अफ़्रीका और दक्षिण-अफ़्रीका में तो कोई भे

माना ही नहीं जाता, यहाँ तक कि पूर्व-अफ़्रीका के अनेक शहर तक दक्षिण-अफ़्रीका के समझ लिये जाते हैं।

मैंने पूर्वी और दक्षिणी अफ़्रीका दोनों का पर्यटन किया है। दक्षिण-अफ़्रिका तो भूमध्यरेखा के बहुत नीचे है, अतः वहाँ तो ज़्यादा गरमी का न होना स्वाभाविक हैं, परन्तु पूर्व-अफ़्रीका के भूमध्यरेखा पर होने पर भी वहाँ बहुत गरमी नहीं है। इसका कारण यह है कि कुछ शहर तो समुद्र के किनारे हैं, और समुद्र के किनारे अधिक गरमी नहीं रहती। जो शहर समुद्र के किनारे नहीं हैं उनकी ज़मीन समुद्र की सतह से बहुत ऊँची है। इसलिए वहाँ गरमी न होकर उलटी ठंड रहती है। छोटे छोटे गाँव तो पूर्वी और दक्षिणी अफ़्रीका दोनों में नहीं हैं। या तो शहर हैं जहाँ हिन्दुस्तानी, अरब और योरपीय रहते हैं या छिटपुट झोंपड़े हैं जिनमें मूल-निवासी अलग-अलग बसे हुए हैं। पूर्व-अफ़्रीका और दक्षिण-अफ़्रीका दोनों बड़े हरे-भरे देश हैं। मैंने दोनों देशों की जहाज़, मोटर, एरोप्लेन और रेल चारों प्रकार की सवारियों से यात्रा की है; सबसे कम रेल से। क़रीब दस हज़ार मील जहाज से, क़रीब चार हज़ार मील मोटर से, क़रीब दो हज़ार मील एरोप्लेन से और क़रीब पन्द्रह सौ मील रेल से यह यात्रा हुई है। समुद्र-तट, नदी-तट, पहाड़, जंगल, झीलें, नगर और उनके आस-पास की भूमि सभी मैंने देखी है। सारी ज़मीन हरी-भरी और अत्यन्त उपजाऊ है। सबसे ऊँचा पहाड़ किलिमेंजारो है, जिसकी उँचाई है १९,३२४ फ़ुट। सबसे बड़ी नदी नील है, जो विक्टोरिया झील से निकलती है और भूमध्य-सागर में गिरती है। सबसे बड़ी झील विक्टोरिया है, जिसका क्षेत्रफल ३,७२६ वर्गमील है। जंगल बहुत बड़े-बड़े हैं, जिनमें सैकड़ों के झुंडों में सिंह, हज़ारों के झुंडों में हाथी, ज़ेबरा आदि जंगली जानवर रहते हैं। पूर्व-अफ़्रीका के चार भाग हैं—कीनिया, टैंगनीका, युगांडा और जंज़ीबार। चारों की गवर्नमेंटें अलग अलग हैं। दक्षिण-अफ़्रीका के भी चार विभाग हैं—ट्रांसवाल, नेटाल, केप-प्राविन्स और औरेंज-फ़्री-स्टेट। चारों 'यूनियन आफ़् साउथ आफ़्रिका' के नाम से शासित होते हैं। दक्षिण-अफ़्रीका में ट्रांसवाल का मुख्य नगर जोहान्सबर्ग, नैटाल का मुख्य नगर डरबन और केप-प्राविन्स का मुख्य नगर केपटाउन है। जोहान्सबर्ग की आबादी है क़रीब ५ लाख, डरबन की आबादी है क़रीब दो

सेठ गोविन्ददास एम० एल० ए०

लाख और केपटाउन की आबादी है क़रीब ३ लाख। इन शहरों का दुनिया के किसी भी सभ्य देश के बड़े से बड़े शहर से मुक़ाबिला किया जा सकता है। पूर्वी अफ़्रीका के नगर बड़े नहीं हैं, पर जंज़ीबार को छोड़कर बाक़ी के सब शहर नये ढंग के हैं। छोटे-से-छोटे नगर में भी सभी आधुनिक सुविधायें मौजूद हैं।

मूल-निवासियों को छोड़कर भारतीय, अरब और योरपीय ये तीन जातियाँ पूर्वी और दक्षिणी अफ़्रीका में हैं। मूल-निवासी हब्शी हैं। हब्शियों का रंग एकदम काला है। इस जाति का अभी विकास हो रहा है। इस जाति के लोग शहरों में नहीं रहते। शहरों में हिन्दुस्तानी, अरब और योरपीय ही रहते हैं। हिन्दुस्तानियों और अरबों में धनवान् और ग़रीब दोनों प्रकार के लोग हैं। योरपीय सभी धनवान् हैं।

दक्षिण-अफ़्रीका में जैसा वर्णभेद मैंने देखा, वैसा शायद दुनिया में कहीं भी नहीं है। गोरों ने गेहुँओं और कालों को

जैसा अस्पृश्य बना कर रक्खा है, वैसी अस्पृश्यता तो हिन्दू-जाति के सवर्णों और अस्पृश्यों में भी नहीं है। गोरों के होटलों में दूसरे ठहर नहीं सकते। उनके नाटकघरों में दूसरे जा नहीं सकते। रेलों में गोरों के डिब्बे अलग और अन्य वर्णों के अलग हैं। ट्रामों और बसों में गोरों का स्थान पृथक् है और दूसरों का प्रथक्। सड़क पर चलते-चलते किसी भी हिन्दुस्तानी या हब्शी का अपमान हो सकता है। जिन जर्मनों तथा जर्मनों के मित्रों के साथ हिन्दुस्तानियों ने १९१४ के योरपीय महायुद्ध में ब्रिटिश साम्राज्य के बचाने के लिए युद्ध किया था वे गोरे होने के कारण अँगरेज़ों की बराबरी में रहने का दावा कर सकते हैं, पर हिन्दुस्तानी ब्रिटिश साम्राज्य की प्रजा होने पर भी नहीं कर सकते। पोर्चगीज़ अफ़्रीका में हिन्दुस्तानी गोरों के साथ समान अधिकारों के साथ रह सकते हैं। वहाँ गोरों और हिन्दुस्तानियों में कोई फ़र्क़ नहीं है। मैंने पोर्चगीज़ अफ़्रीका के मुख्य बन्दरगाहों—लुरैंको, मारक्विस, बेरा और मौजंबिक—को देखा। वहाँ गोरों और हिन्दुस्तानियों में किसी प्रकार के भेद-भाव की हिन्दुस्तानियों ने शिकायत न की, पर जो ब्रिटिश साम्राज्य हमारा कहलाता है उसके उपनिवेश दक्षिण-अफ़्रीका में हम कुत्ते-बिल्लियों से भी बदतर हैं। महारानी विक्टोरिया की सन् १८५८ की घोषणा की जैसी विडम्बना दक्षिण-अफ़्रीका में दिखती है, वैसी कदाचित् कहीं नहीं। अपने को ईसा के अनुयायी कहलानेवाले इन गोरों ने मनुष्य मनुष्य से कितनी दूर तक घृणा कर सकता है, इसका जीता-जागता उदाहरण दक्षिण-अफ़्रीका में दिखलाकर यह सिद्ध कर दिया है कि ये महात्मा ईसा के अनुयायी न होकर कुछ और ही हैं। पराधीनता के कारण किस प्रकार के अपमान को सहना पड़ता है, इसका अनुभव हिन्दुस्तानियों को यहाँ से अधिक शायद अपने देश में भी न होता होगा। हिन्दुस्तानियों के लिए यदि कोई भी देश उनका प्रधान उपनिवेश बन सकता है तो पूर्वी अफ़्रीका। इसके कारण हैं। यह देश भारतवर्ष के बहुत नज़दीक है। बसने और आबाद होने के लिए काफ़ी ज़मीन यहाँ पड़ी हुई है। यहाँ की आबहवा भारतीयों के अनुकूल है।

यात्रा का विचार और आरम्भ

पिछले साल जब सितम्बर के महीने में सेंट्रल असेम्बली की बैठक हो रही थी तब जंज़ीबार के लौंग के व्यापार के सम्बन्ध में एक स्थगित प्रस्ताव पेश किया गया। उसी समय मेरा विचार अफ़्रीका जाने का हुआ। पहली बार सन् १९२३ में मैं असेम्बली का मेम्बर हुआ था। उस समय दो साल तक मैं असेम्बली में रहा। उसके बाद १९२६ में कौंसिल आफ़ स्टेट में चला गया। चार साल वहाँ रहा और तीन साल से अब फिर असेम्बली में हूँ। पूर्वी या दक्षिणी अफ़्रीका का सवाल सदा ही असेम्बली में उठता रहा है। असेम्बली के किसी न किसी मेम्बर को वहाँ की बातों का व्यक्तिगत अनुभव होना ज़रूरी है, यह बात कांग्रेस-पार्टी में १९२३ से १९२९ तक कई बार उठी। इस बार भी उठनी थी। मेरे मन में पहले भी कई बार आया था कि मैं ही क्यों न अफ़्रीका हो आऊँ। इस दफ़ा तो जंज़ीबार के सवाल के समय मैंने जाना तय ही कर डाला। जब मैंने अपना इरादा असेम्बली की कांग्रेस-पार्टी के नेता श्री भूलाभाई देसाई को बताया तब उन्हें बड़ी ख़ुशी हुई और उन्होंने मुझे जाने के लिए बड़ा प्रोत्साहन दिया। पूर्व-अफ़्रीका के कुछ हिन्दुस्तानियों और वहाँ की संस्थाओं से मेरा पत्र-व्यवहार भी चल रहा था। जंज़ीबार के 'इंडियन नेशनल एसोसियेशन', दारुस्लाम के 'इंडियन असोसियेशन' और कंपाला के 'इंडियन मर्चन्ट चेम्बर' ने इसी समय मुझे आने के लिए निमन्त्रण भेजे। एक बात और हुई। दक्षिण-अफ़्रीका में इस समय गवर्नमेंट आफ़ इंडिया के एजेन्ट सर रज़ाअली थे। कौंसिल आफ़ स्टेट में वे मेरे साथी रह चुके थे। जब मैंने उन्हें अपने इरादे के सम्बन्ध में लिखा तब उन्होंने भी बड़ी ख़ुशी के साथ दक्षिण-अफ़्रीका आने के लिए मुझे निमन्त्रित किया। इतना ही नहीं, उन्होंने तो और भी आगे बढ़ कर यहाँ तक लिखा कि दक्षिण-अफ़्रीका में हिन्दुस्तानियों के लिए जो अपमानजनक क़ायदे हैं वे भी मुझ पर लागू न होंगे। दक्षिण-अफ़्रीका जाने के लिए पासपोर्ट के अलावा वहाँ की यूनियन गवर्नमेंट के ख़ास तरह के 'परमिट' की ज़रूरत होती है, यह मैं जानता था। अतः मैं इस सम्बन्ध में कुँअर सर जगदीशप्रसाद और सर गिरिजाशंकर बाजपेयी से मिला। उन्होंने इस परमिट का प्रबन्ध कर देने के लिए मुझे वचन दे दिया। रेवरेंड एन्ड्रूज़ इस समय शिमले में ही थे। जब मैंने उनसे मिलकर अपना विचार प्रकट किया तब उन्हें तो बड़ी ही ख़ुशी हुई। वे कई बार अफ़्रीका

हो आये थे। उन्होंने एक प्रकार से मेरी यात्रा का सारा कार्यक्रम तैयार कर दिया और वहाँ के अनेक सज्जनों के नाम पत्र भी दियें। ७ अक्टूबर को असेम्बली की बैठक खत्म हुई। शिमले से मैं सीधा वर्धा गान्धी जी से आज्ञा लेने गया। उन्होंने मुझे आशीर्वाद के सहित जाने की आज्ञा दे दी।

इस यात्रा के पहले मैंने सन् १९३१ में कांग्रेस के अधिवेशन के लिए करांची जाने के सिवा समुद्र की कोई मुसाफ़िरी न की थी। सन् १९२९ में मैं योरप जा रहा था, पर उसी समय सत्याग्रह-आन्दोलन छिड़ गया। जब वह आन्दोलन समाप्त हुआ उस समय घर की संपत्ति से त्यागपत्र दे देने के कारण मेरे पास रुपया ही न रहा था कि मैं योरप जाने की बात सोचता।

इतनी दूर की पहली यात्रा होने के कारण घर के लोगों को चिन्ता होना स्वाभाविक था। पिता जी, माता जी और मेरी धर्मपत्नी सभी इस सम्बन्ध में चिन्तित थे, परन्तु वे जानते थे कि यदि मैंने जाने का निश्चय कर लिया है तो मैं अवश्य जाऊँगा, इसलिए कोई कुछ न बोला। जब मैंने अपना इरादा अपने परम मित्र पंडित द्वारकाप्रसाद जी मिश्र को बताया तब वे सोचने लगे कि वे मुझे क्या राय दें। बहुत दिनों तक तो उन्होंने न 'हाँ' कहा न 'न'। जब जाने का समय नज़दीक आ गया तब एक दिन वे बोले कि 'मैं इस सम्बन्ध में शायद सोचता ही रहूँगा और आप अफ़्रीका होकर लौट भी आयेंगे।'

मेरे दामाद लक्ष्मीचन्द शिमले में मेरे साथ थे। उन्होंने मेरे इस इरादे को सुनते ही कह दिया था कि वे मेरे साथ ज़रूर ही जायँगे।

आख़िर १० नवम्बर को बम्बई से रवाना होनेवाले 'टायरिया' जहाज़ से मैंने टिकट ख़रीद लिया। जबलपुर-वालों ने ८ को बड़ी धूमधाम के साथ मुझे विदा किया। मेरी विदाई के अवसर पर स्टेशन पर मध्यप्रान्त के प्रधान-मन्त्री डाक्टर खरे, लोकल सेल्फ़ और गवर्नमेंट के मन्त्री पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र के साथ जबलपुर के सभी प्रतिष्ठित सज्जन थे। बम्बई में मैं श्री भूलाभाई देसाई, 'इम्पीरियल इंडियन सिटीज़नशिप एसोसियेशन' के सभापति सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, मन्त्री मिस्टर वायज़ और जंज़ीबार से आये हुए वहाँ के नेता बैरिस्टर श्री तैयबअली से मिला।

सभी की सत्कामनाओं के साथ मैं अपने दामाद लक्ष्मीचन्द और एक नौकर के संग १० अक्टूबर को 'टायरिया' में बैठ बम्बई से रवाना हो गया।

(क्रमशः)

मैं

लेखक, श्रीयुत मराल

नेह-हीन हूँ, परन्तु दीपक-सा प्रज्वलित हूँ,
मुकुर मनोज्ञ, पर रज से मलिन हूँ।
दोपाकर मित्र दोनों मुझसे कलङ्कित हैं,
रजनी वियोग की, निदाघ का मैं दिन हूँ॥
गिन गिन देने पै भी भुगतान होता नहीं,
काल का 'मराल' ऐसे ब्याज पर ऋन हूँ।
जीवन के छन्द में रची मैं वह कविता हूँ,
भाषा में सरल किन्तु भाव में कठिन हूँ॥

कहीं दिल मुझमें, कहीं मैं दिल में फँसा हूँ,
कहीं प्रेम-पाश, कहीं प्रेमिक की पीर हूँ।
सुमन-सुवास कहीं, भ्रमर-विलास कहीं,
चन्द्र हूँ कहीं, कहीं चकोर में अधीर हूँ॥
ज्ञान का दबाव कहीं, मन की उमङ्ग कहीं,
कायर कहीं हूँ, कहीं अद्वितीय वीर हूँ।
मरता कहीं हूँ, कहीं मारता हूँ दूसरों को,
मृग हूँ कहीं, कहीं बहेलिए का तीर हूँ॥

कालसी का शिलालेख

लेखक, प्रोफ़ेसर धर्मदेव शास्त्री, देहरादून

सम्राट् अशोक के शिलालेख ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्त्व के हैं, क्योंकि इनके द्वारा अशोककालीन भारत की स्थिति का प्रामाणिक ज्ञान प्राप्त होता है। आज की भारतीय राजनैतिक स्थिति के लिए भी ये लेख महत्त्वपूर्ण हैं, इस बात का ज़िक्र पाठक प्रस्तुत लेख में पायेंगे।

अशोक के लेख आठ विभागों में विभक्त किये गये हैं—

(१) लघु शिलालेख, (२) भाब्रू शिलालेख, (३) चतुर्दश शिलालेख, (४) कलिङ्ग-शिलालेख, (५) गुहा-लेख, (६) नेपाल की सरहद के दो स्तम्भ-लेख, (७) सप्त स्तम्भ-लेख तथा (८) लघु स्तम्भ-लेख।

इनमें से चतुर्दश शिलालेख बड़े महत्त्व के हैं। अशोक के विचारों और अन्य ज्ञातव्य विषयों का अध्ययन करने के लिए इन्हीं से ही अधिक से अधिक सामग्री प्राप्त होती है। चतुर्दश शिलालेखों से ही यह भी ज्ञात हो सकता है कि अशोक का राज्य कितना विस्तृत था। यह बात इन लेखों की स्थान-सूची से ही हम अनायास जान सकते हैं। चतुर्दश शिलालेख निम्न स्थानों पर प्राप्त हैं:—

(१) **कालसी ग्राम**—देहरादून ज़िले में चकरौता के रास्ते में देहरादून शहर से ३५ मील दूर। (युक्त-प्रान्त)

(२) **शाहबाज़गढ़ी**—पेशावर से ४० मील उत्तर-पूर्व में (सीमा-प्रान्त)।

(३) **मान सेरा**—हज़ारा-ज़िला (पंजाब)।

(४) **सोपारा**—थाना-ज़िला (बम्बई)।

(५) **गिरनार**—जूनागढ़ के पास पर्वतीय स्थान (काठियावाड़)।

(६) **धौली**—कटक-ज़िला (उड़ीसा)।

(७) **जौगढ़**—गंजाम-ज़िला (मदरास)।

इनमें से कालसी के शिलालेखों को देखने की इच्छा रहने पर भी एक बार चकरौता जाते हुए दर्शन भर करने का अवसर ही लेखक को मिल सका था। शिलालेखों का अध्ययन करने तथा अमला और यमुना का तथा यमुना और टोंस का संगम-दृश्य देखने के लिए एतद्विषयक साहित्य और समय दोनों मेरे पास न थे। इस वर्ष जब मैंने काका साहब कालेलकर को अधिकारियों के निर्देश से कन्यागुरुकुल के उत्सव पर आने के लिए आग्रहपूर्वक निमन्त्रण दिया तब उन्होंने इस शर्त पर देहरादून आना स्वीकार किया कि कालसी के शिलालेख तथा अन्य द्रष्टव्य स्थानों के दिखाने का प्रबन्ध हो जाय। ऐसा ही हुआ—काका साहब को दिखलाने के बहाने स्वयं देखने का ऐसा सुन्दर अवसर मैंने हाथ से न जाने दिया। दो संगम तो कालसी में हैं ही, तिस पर भी काका साहब का ज्ञान-संगम! २८ दिसम्बर १९३८ का सारा दिन इस अशोक के पुण्य-कीर्ति-स्तम्भ को देखने में व्यय करने का हम लोगों ने निश्चय किया। काका साहब और लेखक के अतिरिक्त श्री जीवन-

[अमला-यमुना के संगम पर जाते हुए मार्ग में।]
[दायें से बाँयें—(१) श्री धर्मदेव शास्त्री (लेखक) (२) कुमारी चन्दन पारेख, एम० ए०। (३) श्री काका साहेब। (४) श्री दर साहेब।]

नाथ दर, श्री हरिश तथा काका साहब की पुत्रवधू श्री चन्दन बहन पारीख एम० ए०, कुल ५ जने यात्रा-दल में सम्मिलित थे।

यमुना को झूले के पुल से पार कर कालसी ग्राम से एक फ़र्लांग पहले ही चकरौता रोड पर हम लोग उतर पड़े। यहाँ से क़रीब आधा फ़र्लांग कच्ची सड़क पर शिलालेख का रास्ता गया है। शिलालेख एक छोटे पर दृढ़ गुम्बज़वाले मकान के भीतर बन्दी की दशा में रहता है। यह एक ऐसा बन्दी है जिसके बन्दीगृह की चाभी कालसी के डाक-बँगले के ख़ानसामे के पास रहती है। एक मैले कपड़े
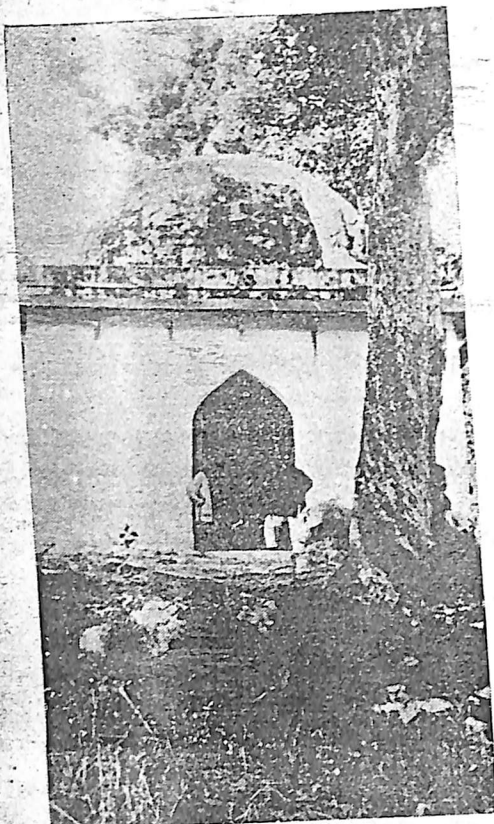
[शिलालेखवाले मकान का बाहर से लिया गया चित्र]

पहले यमदूत के समान काले से आदमी ने आकर जब उस मकान का द्वार खोला तब मुझे ऐसा लगा जैसे सम्राट् अशोक की अश्रुधारा ही जम कर शिला बन गई हो।

जिस शिला पर लेख खुदे हैं वह शिला साधारण है। ऐसा मालूम होता है, शिला को जैसा का तैसा लाकर वहाँ बैठा दिया गया हो। शिला के पश्चिम-कोण को देखने से तो ऐसा लगता है कि शिला को यहाँ बैठे बैठे अब सम्राट् के निधन-शोक से इस स्थान के प्रति वैराग्य हो गया हो और वह अब उठने का उपक्रम कर रही हो। मकान में उस लेख को ऐतिहासिक दृष्टि से समझने के लिए अँगरेज़ी में एक तख़्ती भी लगी हुई है। परन्तु जब हम लोग लेख देखने गये तब उस पर इतनी गर्द जमी थी कि कई स्थानों को कोशिश करने पर भी हम लोग नहीं पढ़ पाये। जो खान-सामा शिलालेख का रक्षक बनकर मकान का वार्डर बनाया गया है उसके लिए तो उस शिला से अनेक अच्छे पत्थर और अनेक थे। जब हम लोग बात करते थे और शिलालेख को देखते थे तब वह मन ही मन कह रहा होगा--"पढ़े लिखों का दिमाग़ भी इस बेडौल पाषाण का-सा ही होता है।" शिला के तीन ओर लिखा है। द्वार की दिशा में शिला के पास नीचे कुछ पुरानी मूर्तियाँ भी रक्खी हैं--कला की दृष्टि से उनका विशेष महत्त्व नहीं। शिलालेख के ईशान-कोण में पत्थर पर एक हाथी का चित्र खुदा है, जिसके नीचे लिखा है गज तम। बौद्धधर्म में हाथी शुभ माना जाता है, क्योंकि हाथी का सम्बन्ध भगवान् बुद्ध के जन्म से है। शिलालेख के आगे अमला की एक कच्ची नहर है, जिसको किसानों ने पत्थरों की दीवार-सी खड़ी करके बनाया है। अमला नाम से ही नहीं; स्वरूप से भी अमला है। शिला-लेख के सामने नहर का वेग रुक-सा गया था। मालूम होता था अमला सम्राट् के शिलालेख को देखते-देखते मन्दगति से जा रही हो। शिलालेख से यमुना का जल दीखता है--उसकी अपेक्षा यमुना का कल-कल-निनाद और समीप सुनाई देता है। यमुना के नीले नीर में शिला-लेखवाले स्थान से खड़े होकर सफ़ेद वीचिमाला को देखने से मालूम होता है, ऊपर पहाड़ से गिर कर मुंह के बल गिरती-पड़ती यमुना शिलालेख के सम्मुख आकर सम्राट् अशोक के इस अमर कीर्ति-स्तम्भ को देखकर अपने को कृत-कृत्य समझ कर खिलखिला कर हँस रही हो।

इतना लिख कर मैं लेख के मुख्य विषय की ओर आता हूँ। आज भारत की [illegible] समस्या पराधीनता से मुक्ति है। महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारत ने देश को स्वतन्त्र करने के लिए अहिंसा का शस्त्र ग्रहण किया है। महात्मा गांधी का कहना है कि भारत के द्वारा परमात्मा संसार को अहिंसा और प्रेम की अमोघ शक्ति का दर्शन कराया चाहता है। भारत एक बार विश्व को हृदय-विजय का महत्त्व दिखाने लगा है। ऐसे समय में अशोक के ये शिलालेख बड़े महत्त्व के हैं।

सम्राट् अशोक की यह प्रबल इच्छा थी कि वह कलिङ्ग को विजय करे और चक्रवर्ती राजा बने। कालसी के

लेखों में तेरहवाँ लेख सम्राट् ने कलिङ्ग-विजय के सम्बन्ध में लिखवाया था। कलिङ्ग-विजय से सम्राट् को हर्ष के स्थान में शोक हुआ। क्यों? लेख के शब्दों में सुनिए। मूल शिलालेख प्राकृत-भाषा में है। मैं उसका हिन्दी-भाषान्तर देता हूँ--

"राज्याभिषेक से आठ साल बाद देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने कलिङ्ग-विजय किया। उसमें डेढ़ लाख मनुष्य क़ैद हुए और एक लाख मारे गये तथा इससे भी अनेक गुना आदमी (बीमारी आदि से) मर गये। अनन्तर कलिङ्ग देश को विजय कर लेने पर देवताओं के प्रिय का धर्मपालन, धर्माऽभिलाषी और धर्मानुशासन अधिक हुआ है। कलिङ्ग को जीत कर देवताओं के प्रिय को बहुत पश्चात्ताप हुआ है, क्योंकि जिस देश का पहले विजय न हुआ हो उसका विजय होने पर लोगों की हत्या और मृत्यु अवश्य होती है और न जाने कितने मनुष्यों को क़ैद करना पड़ता है। देवताओं के प्रिय को इससे बहुत दुःख और खेद हुआ है। देवताओं के प्रिय को इस बात से और भी दुःख हुआ कि वहाँ ब्राह्मण, श्रमण तथा अन्य सम्प्रदाय के मनुष्य और गृहस्थ रहते हैं, जिनमें ब्राह्मणों की सेवा, माता-पिता की सेवा-गुरुओं की सेवा, मित्र, परि-चित, सहायक बन्धु, दास और सेवकों के प्रति अच्छा व्यव-हार किया जाता है और जो दृढ़ भक्तियुक्त होते हैं ऐसे मनुष्यों का विनाश, वध या प्रियजनों से बलात् वियोग होता है। अथवा जो स्वयं तो सुरक्षित होते हैं, पर जिनके मित्र, परिचित, सहायक और सम्बन्धी विपत्ति में पड़ जाते हैं। उन्हें भी अत्यन्त स्नेह के कारण बड़ी पीड़ा होती है। यह विपत्ति वहाँ प्रायः हर एक मनुष्य के हिस्से में पड़ती है। इससे देवताओं के प्रिय को विशेष दुःख होता है। क्योंकि ऐसा कोई देश नहीं है जहाँ अनन्त धर्म और मत न हों और उन सम्प्रदायों में ब्राह्मण और श्रमण न हों। और कोई देश नहीं जहाँ मनुष्य किसी न किसी सम्प्रदाय को न मानते हों। कलिङ्ग-विजय में तब जितने आदमी मारे गये, मरे अथवा क़ैद हुए उनके सौवें अथवा हज़ारवें हिस्से का नाश भी अब देवताओं के प्रिय को दुःख का कारण होगा। इसके अतिरिक्त जो कोई देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी का अपकार करे तो वे उसे यदि वह क्षमा के योग्य होगा तो अवश्य क्षमा कर देंगे। देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी के

[शिलालेख का अन्दर जाकर लिया गया चित्र इस पत्थर पर शिलालेख खुदा है।]

राज्य में जितने जंगली जाति के लोग हैं उन पर वे कृपा-दृष्टि रखते हैं, क्योंकि उन्हें पश्चात्ताप होगा। देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी का यह प्रभाव है। लोगों से वे कहते हैं, बुरे मार्ग से हटो, जिससे सब प्राणी निरापद, संयमी, शान्त और प्रसन्न रहें। धर्म-विजय को ही देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी मुख्य विजय समझते हैं। यह धर्म-विजय देवताओं के प्रिय ने यहाँ तथा सौ योजन दूर पड़ोसी राज्यों में प्राप्त की है। जहाँ 'अन्तियोक, यवन राजा राज्य करता है उसके बाद 'तुरमय', 'आन्तकिनि', 'मक' और 'अलिक

सुन्दरं', नाम के चार राजा राज्य करते हैं और उन्होंने अपने राज्य के नीचे चोड़,पाण्डय और ताम्रपर्णी में भी धर्म-विजय प्राप्त की है। उसी प्रकार हिद राजा के राज्य में यवनों, कांबोजों नामक नाभ पंक्तियों भोजो पित्ति निकाम आन्ध्रों और पुलिन्दों में भी सब जगह लोग देवताओं के प्रिय के धर्मानुशासन का अनुसरण करते हैं और करेंगे। जहाँ जहाँ देवताओं के प्रिय के दूत नहीं पहुँच सकते वहाँ वहाँ भी लोग देवताओं के प्रिय का धर्माचरण-विधान और धर्मानुशासन सुनकर उसके अनुसार आचरण करते हैं। और भविष्य में भी करेंगे। इस प्रकार सर्वत्र जो विजय हुई है वह विजय सवत्र आनन्ददायक है। धर्म-विजय में जो आनन्द मिलता है वह अनन्त आनन्द है, पर वह आनन्द क्षुद्र है। देवताओं के प्रिय पारलौकिक कल्याण को ही बड़ी भारी वस्तु समझते हैं। इसलिए यह धर्म-लेख लिखा गया कि मेरे पुत्र-पौत्र जो हों वे नया देश विजय करना अपना कर्तव्य न समझें। यदि कभी वे नया देश विजय करने में प्रवृत्त हों तो उन्हें शान्ति और नम्रता से काम लेना चाहिए और धर्म-विजय को ही यथार्थ विजय समझना चाहिए। इसी से इहलोक और परलोक दोनों सुधरते हैं। उद्योग ही उनके आनन्द का कारण हो, क्योंकि इसी से इहलोक और परलोक सुधरते हैं।"

प्रायः समझा यही जाता है कि अहिंसा कमज़ोरों और शासितों का अस्त्र है। अहिंसा से निर्बलों को ही सन्तोष होता है, यह दिल के बहलाने का ही एक प्रकार मात्र है, ऐसा जो कहते हैं उनको चाहिए, व विजयी अशोक के उक्त शब्दों को ध्यान से पढ़ें। अशोक विजित नहीं विजेता है। विजेता से महाभारतकार ने मार्मिक शब्दों में रुदन कराया है। परन्तु हम उसे काव्य समझ सकते हैं। अशोक के शिलालेख तो ऐतिहासिक हैं।
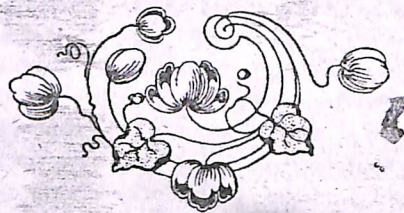
भारतवर्ष में अनेक धर्म और सम्प्रदाय सदा से रहे हैं इनका रहना हानिकर भी नहीं यदि सबमें सहिष्णुता रहे। सम्राट् अशोक ने बौद्ध होते हुए भी सभी धर्मों, सम्प्रदायों और सबके मन्दिरों को अभयदान दे दिया था। अशोक के साम्राज्य का आधार—दया, सत्य और सहानुभूति ही है। भारत में इस समय साम्प्रदायिक सहिष्णुता की अत्यन्त आवश्यकता है।

यदि मध्य काल में अशोक धर्मविजय का आदर्श कार्य-रूप में परिणत करके भारत का सन्देश विश्व में पहुँचा सके हैं तो अब, जब मानवता का विकास हो गया है, जब मानव-समाज ने नर-संहार का नग्नरूप देख लिया है, तब भारत एक बार फिर आज की परिस्थिति के अनुकूल अहिंसा, सहिष्णुता और मानवता का सन्देश क्या विश्व को न देगा?

अमला-यमुना-संगम देखकर जब मैं वापस शिलालेख पर आया तब शिलालेख मूक भाषा में कह रहा था—"यमुना, अमला, हिमालय, ज़मीन, आसमान, सब वही है जो अशोक के समय था। यदि कुछ नहीं है तो भारतीयों के हृदय में आत्म-विश्वास की धर्म-विजय की अव्यय भावना।"

मस्तिष्क ने पाषाण को जड़ कहा, तो भी मेरा मस्तक उसके सामने नत हो गया।

शहद और मोम का धंधा

लेखक, ठाकुर शिरोमणिसिंह चौहान, विद्यालंकार, एम० एस-सी०, विशारद

गृह-उद्योगों में 'शहद और मोम का धन्धा, भी एक है। यह थोड़ी-सी पूंजी और साधारण जानकारी से सरलतापूर्वक किया जा सकता है। फिर शहद और मोम हमारे नित्य काम आनेवाले पदार्थ हैं, इस कारण शीघ्र ही खप भी जाते हैं।

सभी श्रेणी के पुरुषों को यह धन्धा लाभप्रद और रुचिकर भी है। मानसिक श्रम करनेवाले को तो यह विनोद का काम देता है; मेहनत-मज़दूरी करनेवालों को मनबहलाव का साधन बनता है।

अमरीका, योरप, आस्ट्रेलिया आदि देशों के प्रायः सभी भागों में मधु-मक्खियों के पालने और उनसे शहद और मोम उत्पन्न करने का व्यवसाय बड़े जोरों से किया जाता है। केवल अमरीका में लगभग आठ लाख मनुष्यों की जीविका केवल शहद के धन्धे से चलती है। वहाँ अनेकों मक्खी-भवन (Apiaries) हैं जिनमें से प्रत्येक सैकड़ों-हज़ारों मधु-मक्खियों के छत्ते होते हैं और उनमें हर साल* टनों शहद पैदा होता है।

इधर तीस-चालीस वर्ष से हमारे यहाँ भी कुछ लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है। दक्षिण-भारत में कोयम्बटूर सलेम, ट्रावनकोर आदि स्थानों में मधु-मक्खियाँ पालने का काम सफलतापूर्वक किया जा रहा है उधर उड़ीसा-सरकार ने उत्कल में और पंजाब-सरकार ने काँगड़ा-घाटी के नगरोटा, रायसा आदि स्थानों में मधु-मक्खियों के पालने के केन्द्र खोले हैं। साथ ही उनके पालने के तरीक़ों की शिक्षा देने के लिए जहाँ-तहाँ ट्रेनिंग-कैम्प भी खोल रक्खे हैं। इसके अतिरिक्त इस धन्धे में पटु और अनुभवी व्यक्ति वहाँ घूम-घूम कर और निरीक्षण-परीक्षण-द्वारा यह जाँच करते हैं कि व्यापारी दृष्टि से इस धन्धे के चलाने में कितनी सफलता हो सकती है। काँगड़ा और कुलू की पहाड़ियों में इस समय हज़ारों प्राइवेट मक्खी-भवन चल रहे हैं और यह धन्धा वहाँ के बहुत-से निठल्लों और खेतिहरों के जीविकोपार्जन और उनकी अतिरिक्त आमदनी का साधन हो चला है।

ठाकुर शिरोमणिसिंह चौहान

मधु-मक्खियों को पालकर शहद और मोम पैदा करने-वाले लोग प्रायः दो श्रेणियों में विभाजित किये जा सकते हैं। एक तो वे जो उन्हें केवल मनोरंजन और दिलबहलाव के लिए पालते हैं और दूसरे वे जो उन्हें पैसा पैदा करने की ग़रज़ से पालते हैं। पहली श्रेणी के पुरुषों के लिए तो इस

*अमरीका के 'शहद और मोम' से होनेवाली आय का ब्योरा देखने से पता चलता है कि सन् १८५० ई० में, जब आजकल की भाँति मधु-मक्खियों के पालने के सुसंस्कृत उपायों का आविष्कार नहीं हुआ था, एक करोड़ अड़तालीस लाख पौंड का शहद और मोम पैदा हुआ था। सन् १८५३ में मक्खी पालने की नवीन पद्धतियाँ काम में लाई गईं तब १८६० ई० में केवल शहद की आमदनी दो करोड़ चौंतीस लाख पौंड हुई और तेरह लाख तीस हज़ार का मोम हुआ। १९०० ई० में शहद की आमदनी छः करोड़ बारह लाख पौंड हुई और मोम की आय अठारह लाख पौंड।

धन्धे के चलाने की मोटी-मोटी बातों की जानकारी ही काफ़ी है। पर जो लोग व्यापार की दृष्टि से इस काम को करते हैं उन्हें व्यावहारिक दृष्टि से इसका विस्तृत ज्ञान होना चाहिए।

किस जाति की मक्खी पालें ?

हमारे देश में कई जाति की मधु-मक्खियाँ पाई जाती हैं। पर जिस जाति की मक्खियाँ पालने योग्य हैं और जो अपेक्षाकृत अधिक शहद भी संग्रह करती हैं वे भारतीय

भारतीय मधु-मक्षिका
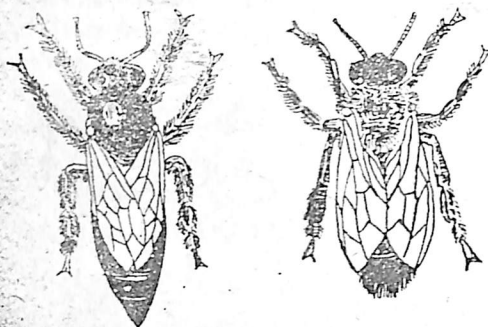
मक्खियाँ हैं। इन्हें कहीं 'खैरा' और कहीं 'माछिया' भी कहते हैं। ये लगभग आध इंच लम्बी होती हैं। इनकी पीठ के पिछले भाग पर काली और पीली धारियाँ होती हैं। इनके छत्ते में कई तहें होती हैं। उनके छत्तों में शहद संग्रह करने और अंडे-बच्चे सेने के लिए अलग-अलग स्थान होते हैं। भारतीय मधु-मक्खी चट्टानी मक्खी (सारंगा) से कम क्रोधी और एक स्थान पर अधिक टिकनेवाली होती है। यह मक्खी भुनगा और योरपीय मक्खी की अपेक्षा शहद भी अधिक इकट्ठा करती है। जंगली अवस्था में भारतीय मधु-मक्खियाँ वृक्षों के खोखलों, टूटी-फूटी दीवारों की दरारों, पुरानी लकड़ियों के ढेरों, खाली मटकों, मकान की चिमनियों आदि अँधेरे स्थानों में छत्ते बनाकर रहती हैं। मधु-संचय करने में तो चट्टानी मक्खी इससे बढ़ी होती हैं, पर अधिक क्रोधी और चंचल स्वभाव की होने के कारण वे पाली नहीं जा सकतीं।

पालने की प्राचीन विधि

हमारे देश में इस समय जहाँ ग्राम-धंधों के रूप में मधु पैदा करने के लिए मक्खियाँ पालते हैं, वहाँ लोग उन्हें बड़े बड़े मटकों, लकड़ी के कोटरों और दीवार की फाँकों में पालते हैं। जब छत्ते शहद से भर जाते हैं तब उन्हें काट कर शहद निचोड़ लेते हैं और छत्तों को पिघला कर मोम निकाल लेते हैं। पर मधु-मक्खियों के पालने और छत्ते से मधु निकालने का यह ढंग भद्दा और दोषपूर्ण है। इस भाँति शहद निकालने में हम उनके हज़ारों अंडों-बच्चों को मसल डालते हैं, उनके बने-बनाये भव्य-भवनों को नष्ट कर देते हैं।

जब से लैंगस्ट्राथ साहब-द्वारा निर्मित चौखटेदार छत्ता-पेटियों का आविष्कार हुआ है तब से व्यापारिक दृष्टि से शहद के धंधे में आशातीत उन्नति हुई है। लकड़ी की ये पेटियाँ ग्रामोफ़ोन के बक्सों की तरह चौकोर होती हैं। पेटी में तीन खंड होते हैं। सबसे नीचे के खंड में मक्खियाँ अपने अंडे-बच्चों को रख उनकी परवरिश करती हैं अतएव इस खंड को 'ब्रूड-चैम्बर' कहते हैं। मँझले खंड में वे अतिरिक्त शहद इकट्ठा करती हैं। यह खंड 'सूपर' कहलाता है। 'चैम्बर' की अपेक्षा 'सूपर' की उँचाई कम होती है। मधु-स्राव की ऋतुओं में जब मक्खियाँ अधिक मधु-संचय करती हैं तब कभी कभी एक पेटी में दो सूपर लगा दिये जाते हैं। इन दोनों खंडों की दीवारों के माथे के भीतर की ओर कारनिस-सी निकली होती है। इसी कारनिस पर प्रायः सात-सात लकड़ी के चौखटे बराबर दूरी पर लटके रहते हैं। ये चौखटे पेटी की चोटी तली अथवा दीवारों को नहीं छूते। हर दो चौखटों के बीच लगभग डेढ़ इंच का फ़ासला रहता है ताकि उनके दोनों ओर मधु-मक्खियाँ
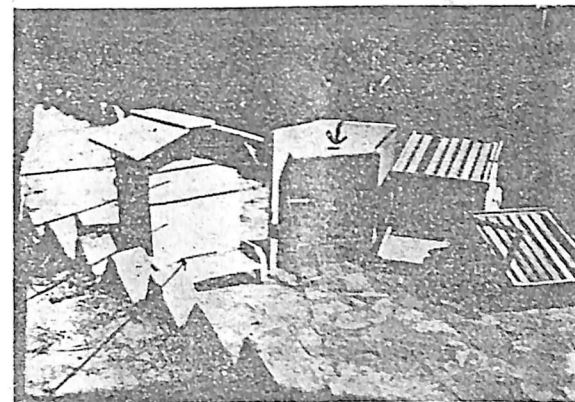
छत्ता-पेटी और उसके खंड

[बाईं ओर से——छत्ता-पेटी——पेटी के ऊपरी खंड का भीतरी दृश्य ब्रूड चैम्बर, रिबेट पर रक्खे हुए छः चौखटे स्पष्ट हैं। सातवाँ ऊपरी खंड के सहारे रक्खा है। सूपर के सहारे भी एक चौखटा है। शेष यथास्थान लगे हैं।]

प्र० द्वा० = प्रवेशद्वार, ब्रू० चै० = ब्रूड चैम्बर, सू० = सूपर, ऊ० खं० = पेटी का ऊपरी खंड, जा० रो० = एक जालीदार रोशनदान।

काम कर सकें। ये चौखटे आवश्यकतानुसार पेटी में बैठाये व निकाले जा सकते हैं। मधु-मक्खियों के आने-जाने के लिए ब्रूड-चैम्बर के सामनेवाली दीवार के निचले भाग में तीन-चार इंच लम्बा और आधा इंच ऊँचा प्रवेश-द्वार होता है। ऊँचे सहनवाले मकानों के सदर दरवाज़ों की भाँति ये प्रवेश-द्वार भी भीतर से बाहर को ढलुवाँ होते हैं। आवश्यकतानुसार पेटी का प्रवेश-द्वार भी छोटा-बड़ा किया जा सकता है और खोला-मूंदा जा सकता है। पेटी का तीसरा खंड सबसे ऊपर होता है। उसकी छत खपरैल से छाये हुए मकानों की भाँति दो ओर ढालू होती है ताकि वर्षा और धूप से पेटी का बचाव होता रहे। इस खंड में जालीदार दो रोशनदान होते हैं जिनके द्वारा वायु और रोशनी पेटी के भीतर आया-जाया करती है। नये ढंग की इन पेटियों की विशेषता यही है कि मक्खियों के अंडे-बच्चों का पोषण-स्थान शहद-भंडार से पृथक् होता है। ऐसा होने से शहद निकालते समय उनके अंडों-बच्चों को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचती। साथ ही उनमें बसनेवाली मधु-मक्खियाँ अपने शत्रुओं एवं कड़ी धूप, वर्षा, शीत आदि से सुरक्षित रहती हैं।

इस धंधे को नये तरीक़े से करने में छत्ता-पेटियों के सिवा हमें कुछ और साधनों की भी आवश्यकता होती है। उनके पालने में हमें जालीदार वस्त्र, दस्ताने, धुअँनी, छुरी, मधु रखने का पात्र, मधुनिस्सारक यंत्र, गीध या हंस के पंख और एक रस्सी की जरूरत पड़ती है।

अमरीका आदि देशों में तो अच्छी नस्ल की रानी मक्खियाँ मोल मिलती हैं। वहाँ मोम के बने-बनाये कृत्रिम छत्तों की अनेक दूकानें हैं। वहाँ के लोग यह छत्ता और रानी मक्खी खरीद लेते हैं और अपना काम आरंभ कर देते हैं। पर अमरीका जैसे सुभीते यहाँ तो नहीं हैं। यहाँ कार्य आरम्भ करने के हेतु हमें जंगली अवस्था में पाई जानेवाली मधु-मक्खियों को पकड़ना होगा। वे पकड़ी तभी जा सकती हैं जब वे या तो स्थान-परिवर्तन के हेतु अपने

छत्ते से उड़कर नवीन उपनिवेश स्थापित करने की तदबीर में बाहर बैठी हों अथवा किसी ने शहद के लिए उनके छत्ते को तोड़-मरोड़ कर उन्हें उजाड़ दिया हो और वे निराश्रय होकर इधर-उधर मारी-मारी फिरती हों। हम किसी लगे हुए छत्ते का पता लगा कर भी उन्हें अपनी पेटी में भर सकते हैं ।

उनका स्थानान्तरित होना

मधु-मक्खियाँ वसन्त-ऋतु (जनवरी से अप्रैल तक) में पकड़ी जाती हैं। इस समय बाग़-बग़ीचों और खेतों की पुष्पावली मकरंद और पराग से परिपूर्ण होती है। प्रचुर खाद्य सामग्री होने के कारण उनके छत्ते अंडे-बच्चों से भी खूब भर जाते हैं। जीवन-संघर्ष बढ़ जाने के कारण रानी मक्खी एक नई रानी मक्खी को पैदा करती है और उसे यह छत्ता सौंप कर अपने कुछ सेवकों के साथ दूसरा उपनिवेश स्थापित करने की खोज में निकल पड़ती है। इस प्रकार छत्ते से निकलने के कुछ दिन पूर्व से ही रानी मक्खी कम अंडे रखती है ताकि हलकी हो जाने से उड़ने में सुविधा हो। मज़दूर मक्खियाँ भी अपनी स्वर्ग के समान जन्मभूमि के छूटने का समाचार पाकर सुस्त और अनमनी-सी हो जाती हैं। अब वे शहद और पराग लाने के लिए खेतों को नहीं जातीं और रात-दिन छत्ते में ही पड़ी रहती हैं।

जब कभी स्वाभाविक अवस्था में लगे हुए छत्ते का पता लगे तब पहले उस छत्ते के द्वार को बंद कर ले। छत्ते तक पहुँच जाने पर छत्ते के सभी बर्रें एक-एक करके निकाले और ब्रूड-चैम्बर के प्रत्येक चौखटे से एक एक बर्रे ऊपर बताई हुई विधि से बाँधे। छत्ते की रानी मक्खी को जहाँ तक सम्भव हो खोज निकालना चाहिए। यदि भाग्य-वश किसी बर्रे के साथ वह पेटी में आ गई हो तो वे प्रयास ही सब काम बन जाता है। रानी मक्खी के पेटी में आते ही छत्ते की शेष मक्खियाँ पेटी में अपने आप आ जाती हैं। नहीं तो पंख या चम्मच की सहायता से उन्हें पेटी में भर लेना चाहिए ।

यदि छत्ता किसी ऐसे स्थान पर लगा है जहाँ पहुँचने में कठिनाई है तो हलका धुआँ देकर मक्खियों को छत्ते से उड़ा देना चाहिए। छत्ते से उड़कर मक्खियाँ पास ही किसी वृक्ष की शाखा पर बैठ जाती हैं। अब बर्रें बँधी हुई पेटी के नीचे के तख्ते को निकाल कर मक्खियों के ताँते के ऊपर रख देना चाहिए। यदि पेटी रखने के योग्य वहाँ स्थान न हो तो पेटी को रस्सी से बाँध कर उनके झुंड की ओर मुंह करके उनके सन्निकट टिका दे। पेटी के

धुअँनी
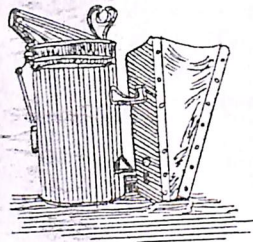
भीतर बर्रों और अंडे-बच्चों की गंध पाकर वे पेटी पर चढ़ जाती हैं। यदि अपने पास पेटी न हो और कहीं मधु-मक्खियों का झुंड बैठा दिखाई दे तो उन्हें पंख या हाथ के सहारे किसी जालीदार वस्त्र में बाँध ले। और बाद को पेटी में प्रवेश करा दे। पेटी को शाम तक वहीं रहने दे ताकि भूली-भटकी मक्खियाँ भी आ जायँ। फिर पेटी का प्रवेश-द्वार बन्द कर पूर्व-दिशा को मुंह कर निर्दिष्ट स्थान पर लाकर रख दे। एक पेटी में एक ही परिषद् की मक्खियाँ बसानी चाहिए। वहाँ औरों की गुजर नहीं। अंडे-बच्चे यदि दूसरी परिषद् के भी हों तो कोई हर्ज नहीं।

यह कभी न भूलना चाहिए कि मधु-मक्खियों के पालने में, उन्हें पेटियों में लाने का काम बड़ा नाज़ुक एवं पेचीदा है। इसके लिए बड़े धैर्य और सावधानी की आवश्यकता होती है, तनिक भूल से सारा काम चौपट हो सकता है। जहाँ तक हो सके रानी मक्खी को हाथ से न छूना चाहिए। यदि छूना ही पड़े तो बड़े हलके हाथ से छूना चाहिए। उसको चोट कभी न लगने पावे।

पेटी में मक्खियाँ भर लेने के बाद हमें यह जान लेना चाहिए कि छत्ता-पेटियों को कैसे रक्खें। मक्खी-भवन में अनेक छत्ता-पेटियाँ होती हैं। उन्हें पास-पास नहीं रखना चाहिए। हर एक के बीच में कम-से-कम चार फ़ुट का अंतर होना चाहिए। जहाँ तक हो सके मक्खी-भवन की सभी पेटियाँ एक ही आकार प्रकार की हों। हाँ उनके रंग और-और हों। काले रंग के सिवा पेटियाँ किसी रंग

से रंगी जा सकती हैं। पेटियाँ चौकोर स्टूलों अथवा तिपाइयों पर रखनी चाहिएँ। स्टूल या तिपाइयों के पाँव पानी या फ़िनायल से भरे हुए प्यालों में रखने चाहिए ताकि उन पर चढ़कर चीटियाँ छिपकिली आदि जानवर मक्खियों को तंग न कर सकें।

वैसे तो लोग पेटियों को मकानों की छतों, घाटियों पहाड़ियों, जंगलों और कृषि-क्षेत्रों में भी रखते हैं, पर नौसिखियों को उनके पालने योग्य स्थान का जानना ज़रूरी है। उन्हें पालने के लिए वह स्थान उत्तम है जो छायादार और सुरक्षित हो, जहाँ कड़ी धूप, अधिक वर्षा, तेज हवा और दुखदायी पशु-पक्षियों से उनकी रक्षा होती रहे। पेटियों के सामने मैदान होना बड़ा अच्छा है। मैदान होने से वे स्वतंत्रतापूर्वक उड़ सकेंगी। उनके आने-जाने में किसी प्रकार की बाधा न होनी चाहिए।

शरीर-रक्षा के सिवा मक्खियों की उदर-पूर्ति के साधन भी निकट ही होने चाहिए। मक्खी-भवन के निकट ही ऐसे पौधों के खेत, जंगल और फुलवारियाँ होनी चाहिए जिनके सुगंधित और रंग-बिरंगे पुष्पों से आकर्षित होकर मधु-मक्खियाँ उनका खूब प्राशन करें। अनेक पौधे ऐसे भी होते हैं जिनमें मकरंद तो बहुत निकलता है पर उनके फूल न तो रंग-बिरंगे ही होते हैं और न इतने बड़े ही जो मक्खियों को अपनी ओर आकर्षित कर सकें। ऐसी अवस्था में उन्हें दो-दो तीन-तीन मील और कभी-कभी इससे भी अधिक दूर रस की खोज में जाना पड़ता है। इतनी दूर की दौड़ लगाकर मधु-संग्रह करने में उनकी शक्ति और समय की बरबादी होती है। अतः यह परम आवश्यक है कि जिस दिशा में मक्खियाँ उड़कर जाती हों उस ओर अधिक* पराग और अधिक † पुष्प-रस देनेवाले पौधों का बाहुल्य हो। मक्खी-भवन के लिए सर्वोत्तम स्थान वही है जहाँ ये सुविधाएँ प्रचुर मात्रा में मौजूद हों।

* अधिक पराग उत्पन्न करनेवाले कुछ पौधे ये हैं—ज्वार, बाजरा, मक्का, गेहूँ, राई, सरसों, सनई, चुकंदर, अमरूद, भिंडी, खीरा, कमल, गुलाब और अनार।

† अधिक पुष्प-रस पैदा करनेवाले पौधे—सेब, नीबू, सन्तरा, आम, केला, कपास, धनियाँ, इमली, धतूरा, गुलाबाँस, तिल, सीताफल आदि हैं।

उनका कृत्रिम भोजन

वसन्त-ऋतु में तो चारों ओर पुष्प-रस और पराग की भरमार होती है, पर कुछ अवसर ऐसे भी आते हैं जब अतिरिक्त शहद का मिलना तो दरकिनार, उसके अत्यन्ताभाव के कारण मक्खियों के भोजन के लाले पड़ जाते हैं। ऐसे दुष्काल में उन्हें बाहर से भोजन देना पड़ता है। ऐसे समय में उन्हें प्रायः शहद और शक्कर का शरबत दिया जाता है। नहीं तो वे भूखों मर जाती हैं या छत्ता छोड़कर कहीं दूसरी जगह भाग जाती हैं।

भागने से रोकना

कभी-कभी मक्खियाँ अपने आप छत्ता छोड़कर, भाग जाती हैं। ऐसे अवसरों पर वे पहले ही से अंडे देना बन्द
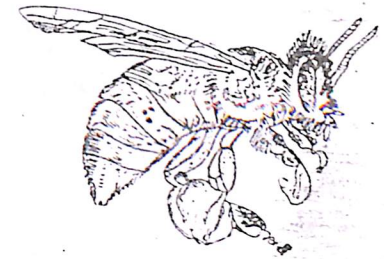
[मज़दूर मक्खी (Pollen basket) परागकांड में पराग ले जा रही है (दायीं ओर से)]
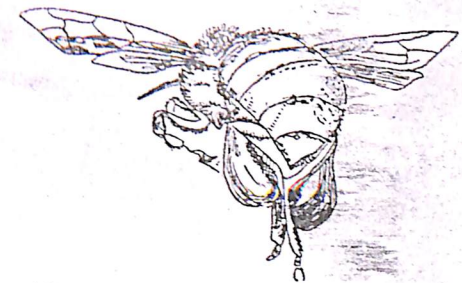
[मज़दूर मक्खी अपने (Pollen basket) पराग-कांड से पराग ले जा रही है। (पीछे की ओर से)]

कर देती हैं। यही नहीं, मकरंद और पराग के संग्रह करने का काम भी रोक देती हैं। पराग लाती हैं या नहीं, इस बात का पता पेटी के प्रवेश-द्वार पर लग सकता है। मधु-

मक्खियाँ पराग को पराग-कांड में भर कर लाती हैं। पेटी का प्रवेश-द्वार भीतर से बाहर को ढालू होता है। अतएव मक्खियाँ बाहर से आकर प्रवेश-द्वार पर बैठ कर तब पेटी के भीतर घुसती हैं। उनके द्वार-प्रवेश के समय उन्हें देख-कर यह पता लगाया जा सकता है कि वे बाहर से पराग लाती हैं या नहीं। पराग भूसी-सा पीला पदार्थ होता है। देख-भाल से जब यह ज्ञात हो कि छत्ते की मधु-मक्खियाँ निकल भागने की तैयारी में हैं तब महीन तेज़ कैंची से रानी-मक्खी के पंख कतर देना चाहिए। यह पंख कतरने का काम बड़ी ज़िम्मेदारी का है। अच्छा तो यह हो कि रानी के पंख कतरने से पहले कुछ नरों के पंख कतर कर अभ्यास कर ले। वरना तनिक भी ग़लती से सारा उपनिवेश का उपनिवेश बरबाद हो सकता है।

छत्ते की जाँच

मधु-मक्खियों की बीच-बीच में देख-भाल होती रहनी चाहिए। वैसे तो जहाँ तक हो सके, पेटियों की अधिक

नौसिखिये-द्वारा छत्ते की जाँच

[मेज पर शीशेदार ब्रूड चैम्बर रक्खा है। नीचे की ओर प्रवेशद्वार (१) है। पेटी में चार चौखटे हैं और एक की जाँच हो रही है।]

अनुभवी-द्वारा छत्ते की जाँच

[एक छत्ता-सहित चौखटा हाथ में है। छत्तों के टुकड़े केले के रेशों से बँधे हुए दिखाई देते हैं। सामने के पात्रों में जल और पराग आदि हैं। ऊपर मक्खियाँ उड़ रही हैं।]

खोला-मूंदी न करें, पर सप्ताह में कम से कम एक बार तो पेटी खोलकर उसकी अच्छी तरह जाँच कर लेनी चाहिए। परीक्षा का उपयुक्त समय दिन में दस बजे से चार बजे तक है। हाँ, जिस दिन कड़ाके का जाड़ा पड़ता हो या घोर वर्षा होती हो अथवा वेग से हवा चलती हो उस दिन छत्तों की जाँच न करे। पूरे तौर से जाँच करने के हेतु चौखटों को बाहर निकालकर मक्खियों और उनके छत्तों को खूब ध्यान से देखना चाहिए।

जाँच करते समय नौसिखियों को हाथों में दस्ताने और चेहरे पर जालीदार कपड़ा डाल लेना चाहिए। अनुभवी और कुशल व्यक्तियों को इसकी ज़रूरत नहीं। जाँच करते समय बड़ी निर्भयता और धीरज की ज़रूरत होती है। तनिक जल्दबाज़ी या लापरवाही से मक्खियाँ उत्तेजित होकर आक्रमण कर बैठती हैं। ऐसे समय में छत्ता छोड़कर भागना बड़ी भारी भूल है। जाँच करते समय उनके

जीवन का पूरा-पूरा ख़याल रखना चाहिए। अनुभव और लगातार निरीक्षण से ये बातें अपने आप आ जाती हैं।

शहद कैसे जमा करती हैं?

मज़दूर मक्खियाँ वृक्षों के पुष्पों से मकरंद संग्रह करती हैं। वे पुष्पों का रस चूस कर अपने पेट की थैली
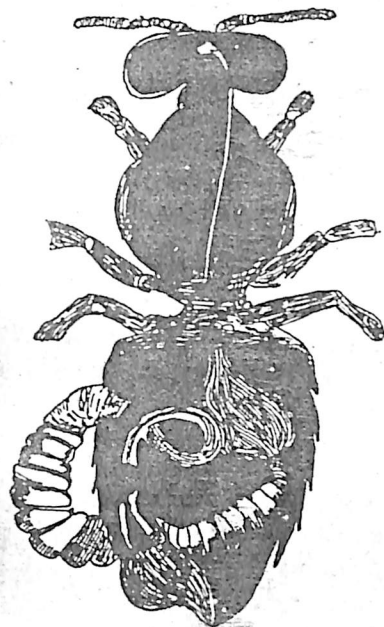
मज़दूर मक्खी का मधु-आमाशय

में रख लेती हैं। वापस आने पर उसे उगल कर शहदवाले छत्ते के मधु-कोषों में जमा कर देती हैं। मधु-कोषों में यह रस कुछ रासायनिक परिवर्तनों के उपरान्त पककर शहद बन जाता है। पकने की क्रिया में पुष्प-रस की आर्द्रता जाती रहती है।

जब पके शहद से मधु-कोष भर जाते हैं तब मक्खियाँ मोम के ढक्कन लगाकर उनके द्वार बन्द कर देती हैं।

शहद कैसे लेते हैं?

मधु-कोषों के देखने से जब यह पता चले कि छत्ता शहद निकालने योग्य हो गया है तब शहद निकालने से एक दिन पूर्व स्प्रिंगदार द्वारवाली पटरी को सूपर और ब्रूड चैम्बर के बीच में रख देना चाहिए। इस पटरी के

लगाने से मक्खियाँ सूपर से ब्रूड चैम्बर में तो उतर सकती हैं, पर ब्रूड चैम्बर से सूपर में नहीं चढ़ सकतीं। इस उपाय से शहदवाले छत्ते से मधु-मक्खियाँ हट जाती हैं। सूपर के चौखटों को ऊपर-नीचे हिलाने से भी मक्खियाँ नीचे उतर आती हैं। इतने पर भी जो मक्खियाँ रह जायँ उन्हें चौखटों पर से ब्रुश से हटा देना चाहिए।

मक्खियों के हट जाने पर छत्तों सहित चौखटों को बाहर निकाल लेते हैं। फिर चाक़ू की गरम नोकों से मधु-कोषों के द्वार खोल लेते हैं। चाक़ू उबलते हुए पानी के पात्र में रक्खे रहते हैं। मधु-कोषों के ढक्कनों को पिघलाते समय चाक़ू को हथारी की तरह नीचे से ऊपर को चलाना चाहिए। ढक्कन के कट जाने के उपरान्त चौखटे को मधु-निस्सारक यंत्र में रखकर हैंडल को ज़ोर से

मधु-कोषों के ढक्कन तोड़ने के लिए चाक़ू

घुमाना चाहिए। यंत्र में शहदवाला छत्ता लट्टू की भाँति घूमता है। घूमने की क्रिया में छत्ते का मधु निचुड़कर नीचे रक्खे हुए पात्र में इकट्ठा हो जाता है। शहद के निचुड़ आने पर छत्तेसहित चौखटे को पुनः सूपर में यथास्थान रख देते हैं। फिर शहद के पात्र को उबलते हुए पानी में लगभग आध घंटे तक गरम करना चाहिए और तब उसे छान लेना चाहिए।

मधु-निःसारक यंत्र-द्वारा निकाला हुआ शहद अत्यन्त शुद्ध होता है। इस प्रक्रिया के करने में, छत्ते और अंडे-बच्चे भी जैसे के तैसे बने रहते हैं। मक्खियों को अपना काम फिर चालू करने के लिए दुबारा छत्ता नहीं बनाना पड़ता। मधु-संग्रह का काम दूसरे ही दिन से किया जा सकता है। इस तरह से जो समय और शक्ति बचती है वह मधु-संचय करने में लगाई जाती है। लोगों का कहना है कि एक सेर मोम बनाने में मक्खियाँ दस सेर शहद खाती हैं। इस बचत के अतिरिक्त उनकी वंश-वृद्धि की दृष्टि से भी शहद निकालने का यह तरीक़ा बड़ा उपयोगी है। हिंसा भी नहीं होती है। इस विधि से शहद निकालने में हमें साल भर में शहद निकालने की पुरानी विधि की अपेक्षा

मधु-निस्सारक यंत्र
[यंत्र के एक झूले में छत्तारहित चौखटा रक्खा है।]

पँचगुना अधिक शहद प्राप्त होता है। हाँ जंगली मक्खियों के छत्तों से शहद निकालने में हमें प्राचीन विधि ही काम में लानी पड़ेगी। कारण कि चौखटे न होने के कारण उनके छत्ते निःसारक यंत्र में रखकर नहीं घुमाये जा सकते।

मोम का रोज़गार

शहद निकालने की नूतन विधि से मधु की शुद्धता और उसकी पैदावार में तो अवश्य वृद्धि हुई, पर मोम की पैदावार बहुत घट गई। मोम तो छत्तों से प्राप्त होता है सो इस विधि से वे तोड़े नहीं जाते। उलटे कृत्रिम छत्तों की चारों ओर माँग है। अब तो लोग शहद की पैदावार पर ही विशेष ध्यान देते हैं। हाँ, मधु-कोषों के टूटे हुए ढक्कन असावधानी से टूटे हुए अथवा अनुपयोगी छत्ते, और जंगली अवस्था में पाये जानेवाले छत्तों से थोड़ा-बहुत मोम प्राप्त होता है। केवल संयुक्त-राज्य में कृत्रिम छत्तों के निर्माणार्थ लगभग पाँच लाख पौंड मोम हर साल बाहर से आता है। जिन देशों में उत्तम प्रकार का शहद नहीं होता. वहाँ मोम की पैदावार पर विशेष ध्यान दिया जाता है। हमारे देश में भी मोम पैदा होता है, पर अफ़्रीका की जंगली मक्खियों के छत्तों से वह बड़ी मात्रा में प्राप्त होता है। वहाँ के कुछ प्रदेशों का प्रधान व्यापार मोम ही है।

मोम कैसे बनता है ?

मोम मधु-मक्खियों के शरीर का रस-स्राव है। छत्ता बनाते समय वे उस स्थान की छत से एक-के सहारे एक झूल कर एक प्रकार का परदा बनाती हैं। तापक्रम में वृद्धि करने से मक्खियों के उदरस्थल की अन्तिम चार मणियों के अधोभाग पर मोम की पपड़ी जम जाती है। यह पपड़ी इन मणियों में स्थित मोम-ग्रन्थियों का रस-स्राव (Secretion) है जो वायु के संसर्ग में आने से कड़ा हो जाता है। इन पपड़ियों को वे अपनी पिछली टाँगों से खरोंच लेती हैं और दाढ़ों से मसलकर उससे मनमाने कोष तैयार करती हैं।

मोम को साफ़ करना

मोम तैयार करने की सर्वोत्तम विधि यही है कि शहद निचोड़ कर छत्ते के कोषों को गरम करके पिघला ले। फिर ठंडा करके उसकी रोटी बना ले। गरम करते समय छत्ते के बाह्य पदार्थ तली में बैठ जाते हैं। रोटी के निचले भाग को चाक़ू से छील दे। फिर उसे सफ़ेद कर ले। सफ़ेद करने में मोम के मैल को निकाल देते हैं। मैल निकालने के कई तरीक़े हैं। मोम को पानी में खौलाने से उसका बहुत कुछ मैल जाता रहता है फिर उसे कुछ दिन धूप में रखने से बचा-बचाया मैला रंग भी जाता रहता है। पिघले मोम

मज़दूर मक्खी के उदर-स्थल की अंतिम मणियों का निचला दृश्य

मज़दूर मक्खी की पिछली टाँग

को हड्डी के कोयले की तहों में से बहाया जाय तो मोम सफ़ेद हो जाता है। मोम को पिघला कर फिटकरी के पानी से उसे धोकर भी साफ़ करते हैं। पिघले हुए मोम में शोरा

और गंधक का तेज़ाब मिलाने से भी वह सफ़ेद हो जाता है।

यह सच है कि हमारे यहाँ मधु-मक्खियों का पालना इस समय उतना आसान नहीं है, जितना अमरीका आदि देशों में। वहाँ के जैसे सुभीते अभी यहाँ नहीं हैं। पर सुभीते तो मनुष्यों के किये ही होते हैं। सुभीतों की आशा में हम लोग कब तक बैठे रहेंगे? शहद जैसे लाभप्रद धंधे की ओर से हम लोगों की इतनी उदासीनता से राष्ट्र की भारी हानि हो रही है। जिसके धंधे से लाखों की जीविका चल सकती है, उस ओर हम कुछ नहीं करते। यदि हमारी सरकार ग्रामों के सुधार के अधिकारियों को इस धंधे की नियमित ट्रेनिङ्ग दिला दे तो गाँवों में इस धंधे के प्रचार-प्रसार में तनिक भी विलम्ब न हो। इसके अभाव से राष्ट्र की भारी हानि हो रही है। कृषकों और बाग़वानों को शहद और मोम पैदा करने के लिए मधु-मक्खियाँ पालनी चाहिए और दूसरों को प्रोत्साहित करना चाहिए, जिससे हम सबका कल्याण हो।

उद्वेग

लेखिका, श्रीमती सुमित्राकुमारी सिनहा

गूढ़, नीरव, गम्भीर, उदार रहा है फैल नील आकाश!
हमारे उर का चिर-अवसाद वहाँ क्यों बना रहा आवास!
यामिनी के ये कैसे आज, झिलमिले से अम्बर-शृंगार!
अरे ये तारक हैं या बिछे, हमारे उर-व्रण के सब तार।
हमारी करुण निराशा देख पिघलता है रजनी का हृदय!
ओस-मिस तरल-अश्रु की बूँद हाय बरसाते लोचन उभय!
व्योम में छाये हैं ये आज, अरे क्या अपने ही दुःख-घन?
आज अपने ही उर की आग, कर रही क्षण क्षण धरा-तपन।
हमारे हिय का स्पन्दन नवल, अरे उठता बन सागर-लहर
हमारे जीवन का तम घोर व्याप्त क्या बन इस जग में तिमिर।
आज अपना वेदना-प्रवाह, वह चला बन सरिता की धार।
हमारी वाञ्छाओं का पुञ्ज, बना क्या नव-लहरियाँ अपार?
हहर कर यह मदमाती वायु, सिसकियाँ भरती सी है सतत।
हमारी आहों का उद्वेग उसे सिहराता यों अनवरत।
वृन्त पर कलियाँ मृदु कमनीय, तड़प उठती हैं हमको देख।
आह! रे जीवन का अभिशाप! बना जगती में व्यथा विवेक!
मधुप-गन गुन गुन कर क्या भला कर रहे हैं पल पल गुंजार।
प्रकट करते क्या चिर-वेदना हसरतों के जीवन की हार!
कोकिला यह तरु वासिनि कुहुक—नित्य प्रति क्यों करती है रुदन!
हमारे प्राणों का उद्वेग, बनाये है अणु-अणु में सदन।

अपराध किसका था ?

लेखिका, श्रीमती सुमित्राकुमारी सिनहा

लपान की प्लेट टेबिल पर रख कर संध्या प्याले में चाय छानने लगी। टेबिल पर जलपान के लिए अम्वर के साथ दीपक भी था। अम्वर की दृष्टि अखवार पर थी।

दीपक की दृष्टि हठात् संध्या के मुख पर उठी, वस इतना ही नहीं, वरन् गड़-सी गई। यह क्या? यह कैसा भाव?—उसने अपने से पूछा—"संध्या तो मुझे चाहती है, अज्ञात और अनपेक्षित रूप से चाहती है। यद्यपि वह प्रेम केवल आँखों आँखों का है। किन्तु आज यह निर्लिप्त मुद्रा क्यों?—वह विचारने लगा—यह मौनभाव क्यों?" वह स्थिति को भूल कर संध्या के मुख-मंडल को निहार रहा था—जैसे उसके प्रश्नों का उत्तर उसे उसके मुख पर ही लिखा हुआ मिल जायेगा।

"चाय ठंडी हो रही है!"—कहने को तो संध्या कह गई। किन्तु आँख उठाते ही जिस विचार-लीन मुद्रा से दीपक को अपलक दृष्टि अपनी ओर निहारते हुए पाया, उससे उसका पलमात्र वहाँ ठहरना असम्भव हो गया। उसने उसी क्षण अन्दर भाग जाना चाहा। किन्तु भाग कर जाती कहाँ? नितान्त प्रतिहत होकर, पलकें झुका इस भाव से खड़ी हो गई संध्या, मानो उसे अव किसी ओर दृष्टि तक नहीं डालनी है। किन्तु वह अपने इस निश्चय पर अटल न रह सकी। अन्त में अम्वर के सामने नमकीन की प्लेट बढ़ाते हुए उसकी दृष्टि अनायास दीपक की आँखों से मिल ही गई। लेकिन उसने तय जो कर लिया था कि वह उससे बोल नहीं सकती।

अम्वर अखवार टेबिल पर रख कर चाय का प्याला होठों से लगाते हुए बोला—"क्यों भाई! तुम भी वैठे रह गये? खाओ न, चाय ठंडी हो रही है?"

"हूँ .... खा तो रहा हूँ"—धीरे से गम्भीर स्वर में कह कर दीपक चुपचाप खाने लगा।

इतने में घड़ी ने टन टन टन कर ८ वजा दिये। दीपक वोल उठा—"अव चलना चाहिए अम्वर! यह ट्रेन भी न मिलेगी।"

"खाना खाकर जाना यार! कहाँ की जल्दी है?"

"नहीं भाई। इतना खाकर अव और खाने की गुंजाइश नहीं है!"

पन्द्रह मिनट पहले ही दीपक स्टेशन जाने को अपना हैंड वैग उठा कर खड़ा होगया। संध्या कुर्सी की पीठ पर कुहनी टेके नीचा मुंह किये खड़ी थी।

अम्वर की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखकर दीपक ने साग्रह कहा—"संध्या को भी लेते चलो न स्टेशन तक?"

"नहीं, क्या करेगी जाकर? अभी खाने का इन्तज़ाम करना है"—उपेक्षा से अम्वर ने उत्तर दिया।

और दीपक—भूला-सा, अनमना-सा चल पड़ा। द्वार के वाहर होते ही उसकी दृष्टि एक वार अन्दर खड़ी संध्या से घूम कर मिल गई—साथ ही अभिवादन के लिए दोनों हाथ जुड़ गये।

न जाने क्या सोचती-सी संध्या नीचे मुंह किये ही खड़ी रह गई। और वे दोनों व्यक्ति आगे वढ़ गये।

प्लेटफ़ार्म पर मनुष्यों की चहलपहल के वीच टहलता हुआ विचारमग्न दीपक सोच रहा था—मस्तिष्क में आँधी-सी उठ रही थी—जानता हूँ इधर कुछ दिनों से अम्वर को मेरे प्रति कुछ सन्देह हो गया है। उसकी घनिष्ठ मित्रता में अव वह प्रेम का व्यवहार नहीं रह गया है। वोलता है, वातचीत करता है तो जैसे कुछ मालिन्य-सा अन्दर छिपाये हुए। उसकी दृष्टि सदैव शंकित रहती है। और संध्या, मेरे जाने पर—आँखों में फूटी हुई मुस्कान लिये हुए, आज मुझे वह भी दिखाई नहीं दी। जैसे उसकी प्रसन्नता को विकसित और प्रसारित होने की सुविधा उपस्थित न हो, मार्ग प्रशस्त न हो। लेकिन मैं अपने को क्या करूँ? अपने को तो छल सकता नहीं। मुझे यह उसका भाव असह्य क्यों?

वुक स्टाल के पास अम्वर खड़ा होकर पुस्तकें उलटने-पलटने लगा। अँगरेज़ी की एक पत्रिका लेकर वह वोला—"तो दूसरे सन्डे को शिकार के लिए चलोगे न?"

"कह नहीं सकता। मुझे इधर काम वहुत है। यदि फ़ुरसत मिली तो तुम्हें सूचित करूँगा।"

"जहाँ तक हो समय निकाल कर आना ज़रूर। वड़ी अच्छी जगह है, यार, वड़ा लुत्फ़ रहेगा।"

"देखो, आ सका तो ज़रूर आऊँगा।"

इतने में सीटी देती फ़क फ़क करती ट्रेन प्लेटफ़ार्म पर आ लगी। आने-जानेवाले मुसाफ़िरों की रेल-पेल के वीच दीपक भी इन्टर के कम्पार्टमेन्ट के सामने आकर खड़ा हो गया—"अच्छा तो अव चलता हूँ, अम्वर—" एक दीर्घ श्वास फेंक कर वह उठा। ट्रेन स्टार्ट होते ही अम्वर से हाथ मिला कर अगले वर्थ पर जाकर वह वैठ गया। अम्वर पीछे लौट पड़ा। गाड़ी धीरे-धीरे खिसकती हुई दौड़ने लगी। खिड़की के ऊपर दोनों हाथों की मुट्ठियाँ रक्खे, उन पर ठोड़ी टेके हुए सामने शून्य में, सरसर कर निकलती हुई वृक्षों की श्रेणियों को, मैदानों, जलाशयों को देखता हुआ दीपक अतीत युग के पन्ने उलट रहा था। समस्त से अलग होकर अपनी जगह में क़ैद-सा वैठा हुआ भावों में डूव रहा था। गाड़ी हहराती हुई दौड़ रही थी और दीपक के मन में ये विचार दौड़ रहे थे—"वह मुझे प्यार करती है—निस्सन्देह—पर वह मेरी हो नहीं सकती। वह इस दुनिया से दूर—वहुत ही दूर है—जहाँ मात्र समर्पण की ही भावना है मौन, स्थिर और शान्त! पर आज का .... उसका वह निर्लिप्त भाव! उफ़, मुझे जहर से भी अधिक कड़ुआ लग रहा है। जानता हूँ वह कर्त्तव्य और नियम के वन्धन में जकड़ी हुई एक पति की पत्नी है। लेकिन इसमें प्रतारणा ही क्या? मनुष्य चाहना का दास है। वह मेरे प्रेम में वन्दी हो गई—उसकी भावुकता मेरे प्रेम की शक्ति पाकर प्रवल हो उठी, तो इसमें क्या वुरा है। मनुष्य को प्रेम करने का अधिकार है। विना प्रेम वह मिट्टी है।"

स्टेशन पर स्टेशन आते गये। दीपक सोचता गया—"ज़रूर उसके जी में कोई व्यथा कचोट रही थी—ज़रूर उसके हृदय पर कोई आघात हुआ है। आह! अभागिनी नारी ...."

थक कर उसने एक दीर्घ श्वास छोड़ी। मस्तिष्क में निरन्तर घूमते रहनेवाले विचारों से, प्रतिश्वास में प्रवाहित होनेवाले भावों पर, अधिकार जमाने की चेष्टा में विफल होते हुए उसने सिगरेट जलाई, और कश पर कश खींच कर धुएँ के वादल उड़ाने लगा।

गाड़ी की चाल धीमी होने लगी। लखनऊ स्टेशन नज़दीक था। प्लेटफ़ार्म पर गाड़ी रुकते ही 'पान-सिगरेट', 'चाय गरम', 'पूड़ी-मिठाई' की आवाज़ों ने दीपक को चौंका दिया। उसने अपना हैन्ड वैग सँभाला और मुसाफ़िरों की भीड़ को चीरता हुआ प्लेटफ़ार्म के वाहर हो गया।

ताँगा चल रहा था। दीपक अपनी विचार की विशृंखल लड़ियों को सम्हाल रहा था—"मैं क्या हूँ? मेरा जीवन भी क्या है? एक मरुभूमि। उसमें जिस परोक्ष रूप से अनजान संध्या आकर हिल-मिल गई है, यह कितना भयंकर है। पर किस तरह इस हृदय को चकनाचूर करनेवाले स्वप्न को तोड़ दूँ? मैं स्वयं उसे इस पथ पर पैर वढ़ाने से रोक नहीं सकता।"

वार वार उसके कानों में शब्द आने लगे—"मैं असमर्थ हूँ; लेकिन तुम्हारे जीवन को कलंकित करने से वचाना चाहता हूँ; संध्या!"

ताँगा रुक गया। "कहाँ उतरना होगा वावू जी!"—शब्द ने दीपक को चौंका दिया। उसकी अर्धचेतना की दशा भंग हो गई।

ताँगेवाले को पैसे देकर वह उतर गया।

खट खट करता ज़ीने पर चढ़ ही रहा था कि ऊपर से प्रभा की झाँकती हुई आँखें दिखलाई पड़ीं। उसे देखकर वह मुस्करा दिया; किन्तु उसकी फीकी मुस्कराहट प्रभा को कुछ अच्छी न लगी। वह चुपचाप खड़ी रही। कुछ न वोली। उसके वोलने की प्रतीक्षा में कुछ क्षण मौन रह कर दीपक वोला—"क्यों चुपचाप क्यों हो?"

"कुछ नहीं, यों ही। तुम तो शाम को ही आने को कह गये थे। रात से लेकर अव तक कहाँ रहे?"—अनमनी प्रभा कुंठित स्वरों में वोली।

"कह तो गया था प्रभा, किन्तु वहाँ अम्वर मिल गया। कहने लगा अव रात को कहाँ जाओगे, घर ही चलो, तो चला गया। फिर तड़के उठकर चलने लगा तो संध्या जल-पान का आयोजन करने लगी। इसी वजह से देर हो गई"—धीमे स्वर में प्रभा की ओर देखते हुए दीपक ने उत्तर दिया।

उसके मृदु स्वर के भीतर प्रभा को जैसे हलाहल से भी अधिक कटुता दीख पड़ी। उसके अन्दर ईर्ष्या मूर्त्त होकर

खटकने लगी—"हाँ अम्बर क्यों न तुम्हें मिलेगा ? संध्या क्यों न जलपान करावेगी ?"—फिर भी वह चुप रही, बोली नहीं।

खाना खाते खाते दीपक बोल उठा—"इतना ज़्यादा न परोसो प्रभा, मुझसे खाया न जायगा।"

"ऐसा क्या खा आये हो जो और कुछ न खाया जायगा ?"

"संध्या ने छेने का नमकीन बनाया था, सो मुझे अच्छा लगा, ज़्यादा खा गया।"

प्रभा के हृदय में एक साथ ही ईर्ष्या की आग भभक उठी—"जब देखो संध्या, संध्या, जैसे इस संध्या के सिवा और कुछ इस संसार में नहीं।" उसे प्रतीत होने लगा—"इस नाम की राक्षसी ने मेरे जीवन का सर्वस्व लूट लिया है।" उसके अन्तर-बाहर एक महाप्रलय-सा उपस्थित हो गया। नारी-हृदय की सारी माधुरी ईर्ष्या की लपट में झुलस गई। उसके हृदय में हज़ारों तीर साथ ही चुभ गये—कठोर स्वर में बोली—"मैं न जानती थी, तुम ऐसे हो ?"

"कैसा प्रभा,"—चौंक कर दीपक ने पूछा—जैसे उसको साँप ने डस लिया हो—"आह ! प्रभा, तुम समझती क्या हो ? क्या सचमुच जैसा तुम समझती हो, मैं वैसा ही हूँ ?"—वह विस्मय और खेद से, दुःख और ग्लानि से सोचने लगा—"क्या सच यह ऐसा ही है ? लेकिन संध्या, तो मुझसे कभी बात तक नहीं करती...कभी......"

प्रभा आँचल से आँसू पोंछते हुए सामने से उठ गई !

जैसे आँधी आती है, बड़े ज़ोर की आँधी। जान पड़ता है सारी दुनिया उड़ जायेगी, पर सिवा कुछ धूल-मिट्टी के कण और खर पतवार के कुछ नहीं उड़ता। वैसे ही दीपक के मन के अन्दर विचारों की आँधी आई, और चली गई ! भावनायें उठीं और गिरीं, लेकिन फिर फिर उठती-सी ही जान पड़ीं। "आह ! संध्या, यह प्रभा—इसने तुम्हारे विषय में कैसा संकीर्ण दृष्टिकोण बना लिया है। पर मेरे लिए तो तुम मेरे जीवन के सुखदुःख में व्याप्त हो गई हो। तुम्हें कैसे निकालूं ? चाहता था तुमसे किसी प्रकार का सम्पर्क न रक्खूं, लेकिन मैं असमर्थ हूँ"—और वह भावावेश में क़लम लेकर काग़ज़ के टुकड़ों पर अपने उफने हुए उद्‌गारों को बटोरने लगा—"मेरे एकान्त जीवन की पार्श्ववर्त्तिनी छाया ! आज कोई शक्ति अन्तरतम के सहस्रशः पर्दों के ओट से प्रेरणा दे रही है कि मैं सारे लौकिक व्यवहार को तिलांजलि देकर आडम्बर के पर्दे को फाड़ फेकूं। उस दिन का तुम्हारा उदास मुखड़ा मुझे नहीं भूलता। तुम्हारा वह निर्लिप्त-भाव मुझे ज़हर हुआ है। आह ! जिस विधान ने इतनी परवशता की सृष्टि की है कि हम एकाकार नहीं हो सकते, उस विधान ने फिर हमें यह शक्ति क्यों नहीं प्रदान की कि हम अपने साथ बर्दाश्त करने की क्षमता भी प्राप्त कर सकें। तुम नहीं जानतीं, तुम्हारा दीपक किस व्यथा से जीवन बिता रहा है ? मैं पागल हो रहा हूँ। मैंने अभी सिगरेट पीना प्रारम्भ किया है और लगता है मधुपान भी प्रारम्भ करना पड़ेगा। वेदनाओं की अनुभूति अब उस सीमा को पहुँचना चाह रही है जहाँ मनुष्य को बेख़ुदी की आवश्यकता होती है। उफ़ प्राण ! मेरी पहाड़ जैसी अचल साधना आज दीना बन गई है। साहस का बोध समाप्ति पर है। काश ! तुम मेरी हो सकतीं। तुम्हारे प्रेम से वंचित होकर मेरा जीवन एक विरह-गीत है, एक अखंड सूनापन, एक विराट् एकान्त, एक अद्‌भुत टीस, एक विचित्र जलन है ! संसार ने जिसे मेरी अपनी कह कर मेरे साथ कर दिया है वह मेरी अपनी न हो सकी, न हो सकेगी। कितना दयनीय कितना उपहास्य और उपेक्षणीय यह जीवन है। जीवन में अजीब व्यवस्था है. एक अमिट विरूपता है। और मेरे दिन की स्मृतियों, रात्रि के स्वप्नों में बँधी रहनेवाली देवि ! जब तुम्हें भी नहीं पा सकता तो जीवन व्यर्थ है। और तभी तो मैं सर्वनाश-पथ का पथिक बन बैठा हूँ—इसी पागलपने में। अब इस मरुस्थल की तपती बालुकाराशि में तड़पने की शक्ति नहीं रह गई है—चाहता हूँ तुम्हारी स्मृति से भी दूर हो जाऊँ; किन्तु कभी क्या ऐसा कर सकूंगा ?—

तुम्हारा अभागा—दीपक

पत्र लिख कर दीपक ने रख लिया और सवेरे उठकर उसे संध्या के नाम रवाना कर दिया।

मलीन संध्या धीरे धीरे उतर रही थी। पड़ोस के एक वकील की बेटी के विवाह-उपलक्ष्य में एक विराट् उत्सव का आयोजन हो रहा था। मनुष्यों की भीड़ भाड़, चहल पहल के बीच शहनाई अपने मधुर स्वरों से दिशा विदिशाओं को अमृत से सींच रही थी।

संध्या अपनी छत पर बिछौना बिछाते बिछाते सिहर उठी। उसके हृदय में एक मीठा दर्द, एक मीठी मरोर जाग पड़ी—उसे जान पड़ा शहनाई उसके कलेजे में से होकर

रोकर बज रही है; वायु पर जैसे उसी की वेदना की गुनगुनाहट मचलती फिर रही है, जैसे उस ध्वनि में उसकी ही वेदना का धुंधला सा मूर्त्त रूप तैर रहा हो; विकृत संध्या झँझरी से लगकर खड़ी हो गई।

सहसा पीछे से किसी के हाथ का स्पर्श पाकर वह चौंक पड़ी। उसकी तन्द्रा टूटी। घूमकर उसने देखा—अम्बर खड़ा था। विरस-स्वर से, उसने कहा—"गली में किसे खोज रही हो ?"

"यह शहनाई जो बज रही है, अच्छी लगी, सुनने लगी।"

बात सीधी और छोटी थी; लेकिन अम्बर व्यंग्य-बाण छोड़ बैठा—"हाँ, दीपक के प्रेम का सन्देश उसमें मिलता होगा ?"

संध्या सिहर उठी—"यहाँ, ऐसे समय, इस एकान्त में भी वही दीपक। आह ! हर समय दीपक, वही दीपक ! क्या अब वह मेरे जीवन के प्रत्येक पल में व्याप्त हो गया है ?" निर्वाक् विस्मय से, ग्लानि से वह अम्बर का मुंह निहारने लगी।

"ठीक है न यह बात ?" द्वेष ने अम्बर के हृदय पर विजय पा ली थी।

"तो क्या दीपक मेरे जीवन में आकर, सारी जीवन की सरसता ही चूस लेगा"—संध्या एक आश्चर्य से, आन्तरिक व्यथा से नतमुखी होकर सोचने लगी—"हाय दीपक, किस घड़ी में तुम्हें अभिशाप-स्वरूप मैंने अपना लिया ?"

अम्बर ने उसे देखा—"क्या मैं भूल थोड़े ही कर रहा हूँ—क्या इसमें भी सन्देह है ? तुम उसे अब भी चाहती नहीं हो ?"

संध्या की सहमी हुई आँखें ऊपर उठीं, उसके प्राणों में श्वास चली-सी—"एक दिन अनजाने में चाहा था ज़रूर, जैसे मनुष्य फूल को चाहता है, तितली को चाहता है, इन्द्र धनुष को चाहता है, लेकिन उस चाहना से तो कोई स्वार्थ बनता नहीं। फिर जिस दिन मैंने जाना कि क्या माँग है पुरुष की नारी से, तो अपनी भूल समझ गई। किन्तु तब भी, मेरा सारा जीवन क्या उस अभिशाप की ज्वाला में जलाया जायेगा ? कोमल अन्तर को व्यंग्य से कुरेदा जायेगा ?" वह व्यथा-कम्पित स्वर में बोली—तो क्या एक दिन का मनुष्य का अपराध ही क्या जीवन में अमावस्या के काले अन्धकार-सा व्याप्त हो जाता है ? उसमें दया और क्षमा के लिए एक भी रन्ध्र नहीं ?"

सहसा नीचे से पोस्टमैन ने पुकारा। नौकर एक नीले रंग का लिफ़ाफ़ा लाकर अम्बर के हाथ में दे गया। वह संध्या के नाम था। किन्तु दीपक का राइटिंग पहचान कर उसने उसको खोल डाला। पढ़ते ही अम्बर की आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं, मस्तिष्क चकरा उठा, जैसे सारी दुनिया घूम गई हो !

वह अपने को सँभाल न सका—उसके हृदय में हज़ार हज़ार ज्वालामुखियाँ धधक उठीं; हज़ारों ज़हरीले नाग फुफकार उठे; पत्र संध्या के सामने फेंक कर वह बोल उठा—"लो देखो, यह दीपक का पत्र है। सब जान गया हूँ। वह तुम्हें चाहता है, तुम उसे चाहती हो। तो तुम दोनों साथ रहो। मैं तुम्हारे रास्ते से दूर हटा जाता हूँ। बस मुझे तुमसे और कुछ नहीं कहना है। मैं अभी जा रहा हूँ, उसे भेज दूंगा। उफ़ विश्वासघातिनी नारी—"

क्रोध, क्षोभ, अपमान से उसकी आवाज़ काँप रही थी। इतना कह कर अम्बर विद्युत् वेग से उठा; कमरे में जाकर अपना पर्स लिया, और मकान के बाहर हो गया।

वज्राहत-सी संध्या रोती हुई उसके चरणों को पकड़ने दौड़ी—"तुम्हें मेरे प्राणों की शपथ ! ज़रा तो ठहर जाओ !"—व्याकुल-आवेदन, करुण-क्रन्दन को ठुकराता हुआ अम्बर न रुकनेवाली गाड़ी की तरह विद्युत-गति से चला जा रहा था। उसने पीछे मुड़ कर देखा भी नहीं।

"दीपक, मैं एक ज़रूरी काम से बम्बई जा रहा हूँ। पता नहीं, मुझे कितने दिन लग जायँ। तुम ज़रा कानपुर जाकर संध्या की खैर-ख़बर लेते रहना"—अम्बर की मुद्रा क्रमशः कठोर होती जा रही थी। इतना कह कर वह बिना किसी उत्तर के सुबह की ही ट्रेन से चल दिया, किसी सुदूर प्रदेश को। वह किधर जायेगा ? किस दिशा में यह गाड़ी उसे लिये जा रही है, इसका उसे तनिक भी ज्ञान न था। गाड़ी पूरी रफ़्तार से बढ़ती जा रही थी और एक ओर बर्थ पर चुपचाप पड़ा हुआ अम्बर हृदय में एक भीषण द्वन्द्व और अशान्ति लिये चला जा रहा था, संध्या से दूर—बहुत दूर—उसे एकदम मुक्त करके ! उसका अनमिल जीवन संध्या से बड़ी दूरी की ओर खिसक रहा था, एक गहरी निराशा

दुर्दमनीय हो उठी थी; वह उसके पथ में रोड़ा बन कर कब तक रह सकता था ?

दीपक के उस पत्र का एक एक शब्द, एक एक अक्षर, अम्बर के दिल के अन्दर छिपे आत्माभिमान को उभार रहा था, सोये विश्वासों को रह रह कर छेड़ रहा था, उलझन में समाता हुआ एक विद्रोह उठ रहा था। अब उसने जाना कि उसके जीवन के साथ बाह्य रूप से खेलनेवाली नारी, जिसको उसने सब कुछ दिया—ऐसा विश्वासघात कर सकती है ? वह कहीं का न रहा। इस राह के अलावा अब उसके पास रह ही क्या गया है जिसका वह अवलम्बन ले। एक पल के लिए उसने यह न सोचा था कि दीपक से उसकी मैत्री का यह फल मिलेगा। यह धोखा, यह छलना, उसके गले लगेगी ? आह ! कहीं कुछ नहीं, नारी तू कितनी दुर्बोध पहेली है ? उसकी शिरा-उपशिराओं में रक्त द्रुतगति से संचित हो उठा। पागलों की तरह वह खिड़की से मुंह निकाल कर रो रहा था। उसका घर, उसका परिवार, देश, समाज और अब तक की उसकी जो अपनी थी—संध्या, पीछे छूट चुकी थी। ट्रेन धड़धड़ाती हुई चली जा रही थी। संध्या का अंधकार गाढ़ा हो गया और उस घनीभूत अशान्ति में, वह अपने हृदय को दबाये चला जा रहा था। कहाँ जायेगा ? पता नहीं ....

शाम की गाड़ी से दीपक संध्या के पास पहुंचा। सारी रात, सारा दिन उसका रोते रोते बीत चुका था। हाहाकार कर अभागिनी संध्या कुम्हलाई हुई लता की भाँति पृथ्वी पर पड़ी थी; पास ही दीपक का उसके भाग्य सूर्य को राहु की भांति ग्रस लेनेवाला पत्र रखा हुआ पड़ा था !

आश्चर्य से घबड़ाया हुआ दीपक बोला—"यह क्या ? संध्या, तुम्हें क्या हुआ ?"

जिस तरह बाँध टूटने पर बाढ़ आती है उसी तरह संध्या के हृदय के रोदन का आवेग फूट निकला। दीपक के शब्दों ने उसे तीर से बिधे हुए शिकार की तरह तड़फड़ा दिया। पेड़ के पत्ते की तरह डंठल से गिरी हुई अतीत की स्मृतियों को आज वह रौंद कर, मसल कर दूर फेंक रही थी।

उस शून्य घर की निस्तब्धता में, निभृत कोने में पड़ी हुई संध्या का दीपक ने यह प्रथम बार ही हाथ पकड़ा—उसके हृदय का उद्वेग उस कोमल स्पर्श के द्वारा उसकी शिराओं में संचित हो गया। उसने अत्यन्त विकल होकर कहा—"संध्या कुछ बोलो ! तुम्हें क्या हुआ ? अम्बर तो मुझसे यहाँ आने को कहकर बम्बई गया है, लेकिन तुम्हें क्या हुआ है संध्या, मेरी समझ में नहीं आता !"

इतना सुनते ही संध्या के प्राण हाय हाय कर रो उठे। अश्रुविगलित स्वर में काँपती हुई वह बोल उठी;—"हाय ! मेरा सर्वनाश करके अब और क्या चाहने आये हो ? जाओ, मेरे सामने से दूर हो जाओ !"

व्याकुलस्वर से दीपक ने कहा—"संध्या, शान्त होओ !"—उसका सम्पूर्ण हृदय आँसुओं की भाप से भर गया। एक अनिर्दिष्ट आशंका से एक अव्यक्त क्रन्दन होने लगा !

तूफ़ान में पड़ी हुई नाव की तरह पछाड़ खाकर संध्या के हृदय के आवेग प्रबल वेग से उच्छ्वसित होकर चिल्ला उठे—बिजली की कड़क की तरह—'दीपक,' 'दीपक' ! उसके अन्दर की पुरातन नारी बोल उठी—"वे कहाँ गये हैं ? बताओ दीपक ? तुमने मुझसे उन्हें, दूर करके कहाँ भेज दिया है ? वे जब मेरे पास थे, तुमने मुझे अन्धा करके उन्हें देखने न दिया। आज वे चले गये हैं तब जैसे वज्र-शलाका ने मेरी आँखें खोल दी हैं। मुझे सब अन्धकार और शून्य नज़र आता है, चारों तरफ़ टटोलती हूँ। वे कहाँ गये ? उनकी दुनिया के साथ मेरी दुनिया का जो पुल बँधा हुआ था वह तोड़ कर तुम मुझे किधर बहा ले जाना चाहते हो ? क्षण भर के लिए उन्हें बुला दो; आज निरुपाय व्यग्रता से मेरी सारी अन्तर-बाह्य शक्तियाँ उन्हें पकड़ना चाहती हैं। हाहाकार करके उन्हें पुकारना चाहती हूँ। तुमने मेरे मन के अन्दर जिस आकर्षण को भरा था आज वह इस भारी दुःख पर पछाड़ खाकर अपने को मिटा देना चाहता है।"

क्षोभ, दुःख, लज्जा और घृणा से संध्या की छाती फट रही थी—"आह ! एक दिन तुम्हारे प्रेम से जीवन में रँग लेने का जो विचार था, आज उसका बल कहाँ ? मैंने क्षण भर को भी न सोचा था कि स्वप्नों के यान पर चढ़ कर जिस लोक को जा रही हूँ, सब ज्ञान खोकर जिन अक्षरों में प्रेम का दानपत्र लिख रही हूँ, वह इतना महँगा पड़ेगा ! तब समझ में नहीं आया था कि मनुष्य कितना दीन है, दुर्बल है उसकी शक्ति कितनी अल्प है ?

नहीं जानती थी कि क्षण भर की बुद्धि खोकर सारे जीवन की शृंखला नष्ट कर इस सर्वनाश की बेला में

द्रवीभूत होना पड़ेगा ?"—वह थक गई, उसके स्वर टूट गये !

उसको सान्त्वना देने के प्रयास में रुद्ध स्वर से दीपक बोला—"संध्या, मुझे क्षमा करो, मैं उन्हें लौटा लाऊँगा !"

निष्प्राण, शिथिल, धूमिल संध्या की उन्मत्त वेदना फिर गरज पड़ी—"क्षमा, तुम्हें क्षमा करूँ, किन्तु हाय ! मुझे क्षमा करनेवाला कौन है ? जो मुझ-सी घोर अपराधिनी को अपने क्षमा के आँचल में समेटेगा ? जाओ, मेरे सामने से, मेरे जीवन के अभिशाप, जाओ ! मेरे जीवन की उज्ज्वलता तो न लौटा पाओगे—किन्तु उन्हें लौटा लाओ !"

दीपक उसके शब्दों को सुनने के लिए स्थिर रहा !

और संध्या अपनी अनुभव-हीन, अर्ध विकसित मनुष्यत्व के जीवन की जटिल समस्या सुलझाने लगी। उसके अन्तराल में दुःख और पश्चात्ताप सजीव होकर बोलने लगे—"किन मोह के क्षणों में यह प्यार का अभिनय तूने खेला था ? अपने पूर्णत्व के भीतर किसी गुप्त छायामय स्थान में भी अभाव का अंश बचाये हुए उसके प्रति प्यार से सजा लिया ? किन सपनों के पंखों में उड़ कर तू उस प्रेम की झाँकी लेने गई ? किन भावों की तूलिका से उसके प्रति प्रेम के रंगों से तूने अपने मन को चित्रित किया ? किन मनोभावों से उद्भूत होकर उसके प्रति प्रेम के नीड़ में विहग की भाँति बसेरा ले लिया तूने ? बहिर्जगत् में नेत्रों को लुभा कर अन्तरपट में कैसे उसकी छाया अंकित कर ली ? अन्तर जगत् में, मुक्त भावना के क्षेत्र में उसके प्रति प्रेम क्यों अदृश्य और अज्ञात रूप से अठखेलियाँ कर बैठा ? शान्त वातावरण में किस अनुभूति ने उसके उन्मुक्त द्वार में तुझे प्रविष्ट करा दिया ? किस प्रेरणा के किनारों को छूकर तू प्रेम के स्रोत से उसका प्रक्षालन करने के लिए अनवरत गति से बह गई ? तेरी मानवता इस कोमल रस के लिए क्यों सुस्निग्ध लालायित हो उठी ? परिपूर्ण विह्वलता में, मौन हृदय में, क्यों उसके प्रति प्रेम के उद्गार गूंज उठे ? क्यों उच्छ्वसित होकर उद्गारों की माला प्राणों को विदीर्ण कर निकल पड़ी ?"

उन्मादिनी-सी संध्या के हृदय में विचारों के तुमुल संघर्ष की छुरियाँ वेदनापूर्ण विदारण-रेखा खींच रही थीं—"जीवन के श्रेष्ठ वरदान की पूजा करते करते एक मूर्त्तिमान् अभिशाप का आह्वान कैसे कर लिया ? जीवन की परितृप्ति के बीच किस अतृप्ति की झोली पसार बैठी ? किन विवश परिस्थितियों ने गम्भीरता को क्षणिक आवेश में, उद्दाम चंचलता में, परिणत कर दिया ? किस आकर्षण ने हृदय की स्थिरता पर विजय पा ली ? हाय रे, किस उच्छृङ्खल प्रेम ने उसे ठग लिया पल भर में ही ? गम्भीर समुद्र में चापल्य की लहर कैसे खेल उठी ? एक हृदय-मन्दिर में विभिन्न प्रतिमाओं की स्थापना कर वह निष्कलंक, अछूती कैसे रह पायेगी ? संसार उसकी यह अज्ञानता कैसे जानेगा ? स्नेह की भिन्न भिन्न धाराओं में बहने की कैसी हेय प्रवृत्ति है, आह ! तृप्ति के भीतर रिक्तता की खोज, आनन्द के भीतर व्यर्थता का आह्वान, परिपूर्णता के सिन्धु के भीतर अभाव-अवलम्बन के तिनके की प्राप्ति की आशा ?

उफ़ ! विडम्बना की यह विकट सृष्टि. . .—"संध्या पीपल के पत्ते की तरह काँप उठी—वे कहाँ गये ? इतनी बड़ी दुनिया में, जीवन के इतने लम्बे पथ में वह अपना पाथेय कहाँ गवाँ बैठी ?" और कौन जाने आज भी दीपक अम्बर की खोज में देश विदेश फिरता हो, और वह, दुनिया की नज़रों में असती, संध्या—अपना फूल-सा पवित्र नारीत्व लिये कुम्हलाई पड़ी हो, एकान्त घर के कोने में !

जॉन गिलक्राइस्ट की हिंदी

लेखक, श्रीयुत कालिदास मुकरजी, बी० ए०, एम० आर० ए० एस०

ल्लूजीलाल ने प्रेमसागर की भूमिका में लिखा है—"श्री श्रीयुत गुण-गाहक, गुणियन सुखदायक, जान गिलकिरिस्त महाशय की आज्ञा से संवत् १८६० में श्रीलल्लूजीलाल कवि ब्राह्मण गुजराती सहस्र अवदीच आगरेवाले ने, विसका सार ले यामनी भाषा छोड़, दिल्ली आगरे की खड़ी बोली में कह, नाम प्रेमसागर धरा......।" तथा पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने अपने साहित्य के इतिहास में लिखा है—"इसी लिए जब संवत् १८६० में फ़ोर्ट विलियम कालेज (कलकत्ता) के अध्यक्ष जान गिलक्राइस्ट ने देशी भाषा की गद्य-पुस्तकें तैयार कराने की व्यवस्था की तब उन्होंने उर्दू और हिन्दी दोनों के लिए अलग अलग प्रबन्ध किया... (पृष्ठ ३८९) "संवत् १८६० में कलकत्ते के फ़ोर्ट विलियम कालेज के अध्यक्ष जान गिलक्राइस्ट के आदेश से इन्होंने (लल्लूजीलाल) खड़ी बोली, गद्य में "प्रेमसागर" लिखा जिसमें भागवत दशम स्कंध की कथा वर्णन की गई है।" (पृष्ठ ४०१) इससे यह स्पष्ट विदित होता है कि हिन्दी के प्रोत्साहन के हेतु जाँन गिलक्राइस्ट ने महत्त्वपूर्ण काम किया है, लेकिन उन्होंने जो कुछ भी उत्साह प्रदर्शित किया है उसका कहीं सुसंयत रूप से लिखित प्रमाण प्राप्य नहीं है। उन्होंने हिन्दी-प्रचार के हेतु जो कुछ किया है उसका यदि हमें लिखित प्रमाण प्राप्त होता तो कितना अच्छा होता! सौभाग्यवश या दैवात् ही कहिए मुझे उनकी लिखी एक हिन्दी-पोथी मिली है इससे गिलक्राइस्ट साहब की हिन्दी का विशेष पता चलता है कि आखिर उन साहब की हिन्दी कैसी थी, जिन्होंने हिन्दी-प्रचार के हेतु स्वयं कष्ट किया।

अब आलोच्य पुस्तक के विषय में कहना है। इस पुस्तक की लम्बाई ९ इंच तथा चौड़ाई प्रायः ६ इंच है। पुस्तक काफ़ी मोटी है—जिल्द समेत १·५ इंच। लेकिन यह आलोच्य पुस्तक बहुत पुरानी है—सन् १८०६ की छपी हुई है तथा यह किसी सुरक्षित स्थान में रखी हुई नहीं मालूम पड़ती। कारण कीड़ों ने इसे बुरी तरह से काटा है एवं अति प्राचीन होने से पन्ने आपस में जुड़े हुए हैं तथा कीड़ों की दया से पन्ने इस प्रकार कटे हैं कि हर एक पृष्ठ को बड़ी सावधानी से खोलना पड़ता है—पृष्ठ पापड़ से हैं—हाथ लगते ही टूट जाते हैं।

आलोच्य पुस्तक दो खंडों में है। प्रथम खंड में कैथी लिपि एवं दूसरे में सेमिटिक (अरबी-फ़ारसी) लिपि है। दूसरे खंड की अवस्था बिलकुल शोचनीय है, अतः उसका परिचय नहीं दिया जा सका। प्रथम खंड के प्रारम्भ में अँगरेज़ी में दस पृष्ठों की भूमिका दी हुई है। इसके बाद डेढ़ पृष्ठों में विज्ञापन लिखा है। दस पृष्ठ की भूमिका का अल्पांश यह है—

"I shall content myself with barely stating, how much I owe to the learning and assiduity of Gholam Ukbur, formerly the Surishtudar of the Hindoostanee Department, but now very deservedly one of the head Moonshees. This person, though but a native of Bungalu, has acquired, by dint of application and philological acuteness so accurate a grammatical knowledge of the Hindoostanee, as often correct the compositions of our best poets and writers from the upper provinces, on grounds which carry conviction even to their minds, and with the very best effects on their numerous prose and poetical publications (इस भूमिका तथा विज्ञापन में s के स्थान में f लिखा हुआ है, वह सम्भवतः छपाई की अशुद्धि हो)।

विज्ञापन इस प्रकार है—

"Although various occurrences, since the publication of the first edition of this volume have rendered many of the propositions contained in the foregoing preface inapplicable at the present time; it was judged expedient to reprint it without alteration; both as in the absence of the

author it was difficult to frame those alterations so as to ensure his concurrence, and as his original remarks might be useful to such oriental scholars as may be inclined to contribute their labours towards the completion of the plan which he has sketched out.

The publishers of the present edition have the satisfaction to inform the Hindustanee Student that considerable progress is made in the preparation of a Dictionary Hindoostanee and English, on the groundwork of a collection formed by an officer on this establishment for his own private use."

आलोच्य पुस्तक का मुख्य पृष्ठ इस प्रकार है:—

The Hindee Story Teller or Entertaining Expositor of the Roman, Persian and Nagree characters, Simple and compound In their application to the Hindoostanee Language, As a written and literary vehicle. इसके बाद बहुत छोटे छोटे अक्षरों में लैटिन का एक मुहावरा-सा लिखा है। उसे कीड़ों ने काट खाया है। जितना स्पष्ट है वह यह है:—

"proba......probum si adbibeas artificem." By the author of the Hindoostanee Dictionary, Grammar, etc. etc. The Second Edition, Calcutta Printed By Thomas Hubbard, at the Hindoostanee Press. 1806.

दूसरा पृष्ठ उत्सर्ग या समर्पण पृष्ठ है। वह इस प्रकार है:—

The First and Second volumes of the Hindee Story Teller or Entertaining Expositor, Are hereby respectfully inscribed To William Augustus Brooke, Esq, Senior Judge of the Provincial Courts of Appeal and Circuit For the Division of Calcutta, इसके बाद दो पंक्तियाँ कीड़ों ने काट डाली हैं, फिर To form a proper estimate of such literary undertakings, From his extensive knowledge of And uniform partiliaty for, The Hindoostanee Language, By his friend, And most obedient humble servant John Gilchrist.

विज्ञापन के बाद एक पृष्ठ ऐसा है:—

नक़लियाति हिन्दी दूसरी जिल्द हिन्दुस्तानी छापेखाने में सन् १८०६ ईसवी मुताबिक़ १२२१ हिजरी के छापी गई।

इसके बाद १०३ पृष्ठों में ३०० नक़लें हैं, परन्तु पहली नक़ल का नम्बर १०९ है, इसके पूर्व १०८ नक़ल ग्रन्थकार ने प्रथम भाग में निकाली है जैसा कि भूमिका से पता चलता है, अतः आलोच्य पुस्तक में १९१ नक़लें हैं। इन नक़लों के बाद २३ पृष्ठों में प्रथम एवं दूसरे भाग (जिनमें एक अप्राप्य है) की सूची दी हुई है। सूची से यह पता चलता है कि प्रथम भाग में १०८ नक़लें थीं और वह एक पतली सी छोटी किताब थी, क्योंकि प्रथम भाग की अन्तिम नक़ल नं० १०८ "ऐक हज्जाम और नबीब की" ४९ पृष्ठ में थी, अतः प्रथम खंड प्रायः ५० पृष्ठों का था।

प्रथम खंड की नक़लों की कुछ सूची यह है—

कैफ़ीयत	नक़ल	सफ़ह
१—एक बादशाह और वज़ीर की ...	१	१
२—किसी के घर जलने और ऐक ग़रीब के तापने की।	४	२
३—एक शख़्स और उसके लड़के की ...	१०	४
४—दो कारीगर और बादशाह की ...	१४	५
५—ऐक कमीने और भले आदमी की ...	२१	८
६—किसी शख़्स और बकरे की ...	२५	९
७—ऐक शख़्स और राही की ...	५३	२०
८—किसी बादशाह और उसकी जोरुओं की...	३५	३०
९—एक मुग़ल और कुंजड़े की ...	९६	४३

दूसरी जिल्द (आलोच्य पुस्तक) की सूची ८वें पृष्ठ से प्रारम्भ होती है। कुछ नक़लों की सूची यह है:—

कैफ़ीयत	नक़ल	सफ़ह
१—ऐक बादशाह और मुनज्जिम की ...	११०	३
२—ऐक बादशाहि ज़ालिम की ...	१२३	८
३—ऐक क़ानूनगो की ...	१३७	१५
४—ऐक मर्द और औरत की ...	१८८	४४
५—ऐंक गुसांइ और मुसाफ़िर की ...	१९६	४८
६—ऐक क़ाजी और राजपूतों की ...	२१३	५९

कैफ़ीयत	नक़्ल	सफ़ह
७—ऐक अफ़यूनी और छकड़ेवाले की ...	२४०	७३
८—किसी शख़्स और उसके नौकर की ...	२६९	८६
९—अकबर और बीरबल की ...	२९६	१००
१०—ऐक ब्राह्मन और जुलाहे की ...	२९९	१०२

इनमें उपर्युक्त गुसांइ और मुसाफ़िर की नक़्ल यह है :—

१९६ नक़्ल

नक़्ल है कि कोई गुसाईं किसी बस्ती में सरि राह पर दरख़्त के नीचे जा उतरा और इधर-उधर से सूखी लकड़ियाँ चुन चान कर धुनी लगा दी और शेर की खाल बिछाकर बैठ गया। दो यार राही मुसाफ़िर भी उस दरख़्त के तले आ बैठे और हुक़्क़ा तमबाकू पीने लगे जब ऐक उन्ह में से बोला गुसाईं जी ! दिन आख़िर हुआ कुछ रसोई की फ़िक्र नहीं करते तब उसने कहा कि बाबा ! न हमारे यहाँ हाँडी न हमारे यहाँ डोई घर घर हो हमारी रसोई

२७० नक़्ल

ऐक दरज़ी का लड़का अपने शहर से तबाह होकर किसी मुलक में गया और वहाँ के बादशाह के खबासों में नौकर हुआ। इत्तिफ़ाकन ऐक दिन बादशाह ने पहर रात गये उससे कहा खबर तो ला रात कितनी गई। वुह नौबत-खाने में गया और घड़ियाली से पूछा। उसने कहा दो पहर पर दो बज गई है तीसरी का अमल है वोंहीं उसने हुज़ूर में आकर अर्ज़ की कि खुदावन्द ! दो गज़ पर दो गिरह बलक़ि एक अंगुल सिवा। बादशाह इस बात को सुन कर हंसे और कहने लगे सच है तेरी क़ितअ़ से यिह मसल साबित हुई कि इज़्ज़त धोये धाये जाय पर आदत कहाँ जाय।

२७२ नक़्ल

ऐक बहरा किसी कुंजड़े की दूकान पर खड़ा बैंगन ले रहा था—इतने में कोई आशना उसका वहाँ आया और सलामुन अलैक की—मिज़ाजि शरीफ़ पूछा वह बोला बैंगन लेता हूँ। उसने पूछा घर चलोगे ? कहा बहुत महंगे देता है। फिर उसने कहा लड़के-वाले अच्छी तरह हैं ? बोला सबका भुरता करूंगा।

२२३ नक़्ल

ऐक हबशी राह में चला जाता था—ऐक टूटा आईना पड़ा हूआ था उसकी नज़र जो उस पर पड़ी उसमें अपनी सूरत देख निहायत रंजीदः ख़ातिर हूआ और कहा कि इसी वास्ते इसे फेंक दिया है

२३२ नक़्ल

ऐक फ़क़ीर किसी के दरवाज़े पर भीख के वास्ते गया। उसके घर में पान-चार कुत्ते थे जब फ़क़ीर को कुत्तों ने देखा—भौंकने लगे—तब फ़क़ीर ने कहा कि बाबा ! कुत्तों को संभाल मैं भीख से बाज़ आया।

जैसा कि ऊपर बतलाया गया है आलोच्य पुस्तक की लिपि कैथी है। इसमें इस प्रकार की छोटी छोटी मनोरंजक कहानियाँ हैं। आशा है उपर्युक्त नक़्लों से पाठक जान गिलक्राइस्ट (John Gilchrist) की हिन्दी से परिचित हो गये होंगे।

मैं तिब्बत कैसे पहुँचा ?

लेखक, श्रीयुत फेनी मुकर्जी, कलाकार, ए० सी० ए०; आई० ए० एस०

[तिब्बत का द्वार 'छोतन']

२२ मई को राहुल जी भी राज़ी-खुशी आ गये। उनका बुखार छूट गया था, सिर्फ़ कमज़ोरी बाक़ी थी। आजकल ज्ञानसी सारे तिब्बत का दरवाज़ा समझा जाता है। यहाँ ब्रिटिश सरकार का क़िला भी है, जिसमें सिक्ख रेजीमेंट रहती है। जो लड़ाई ब्रिटिश और तिब्बत के बीच हुई थी, उसके फलस्वरूप सुलह होने पर ब्रिटिश गवर्नमेंट को तिब्बत की ज़मीन पर यहाँ क़िला बनाने का हक़ दिया गया था। यहाँ अँगरेज़ों ने अस्पताल भी बनवाया है। क़िले के अन्दर डाकखाना भी है। यहाँ का बाज़ार काफ़ी बड़ा है। ज्ञानसी आजकल तिब्बत के व्यापार का केन्द्र बन गया है। यहाँ एक बहुत बड़ा बाज़ार हर रोज सुबह को गुम्बा के सामने लगता है। सैकड़ों आदमी ख़रीद-फ़रोख़्त के लिए जमा होते हैं। मांस, दूध, मक्खन ऊन, चीनी और नित्य काम आनेवाली जापानी चीज़ें यहाँ बिकती हैं। मैंने एक लड़की को बाज़ार में देखा कि उसके पास आलू, सत्तू, कपड़ा, सलोलाइट की चूड़ियाँ और सिगरेट थे। कहने का तात्पर्य यह कि यहाँ के लोग अपने कपड़े और अपने व्यवहार की चीज़ें भी बेचने को तैयार हो जाते हैं यदि कोई अच्छा ख़रीददार मिल जाता है। यहाँ नैपालियों की भी कुछ दूकानें हैं, जो थोक व्यापार करते हैं। ये लोग रेशमी, सूती और ऊनी कपड़ा खुदरा भी बेचते हैं। ऊन और कस्तूरी का व्यापार थोक के हिसाब से करते हैं। रुपये का लेन-देन भी करते हैं। इनका यह कारबार ख़ूब उन्नति पर है। ये लोग काफ़ी मालदार हैं और इनका मुक़ाबिला करनेवाला यहाँ कोई नहीं है। रुपये के लेन-देन का सारा कारबार इन्हीं लोगों के हाथ में है।

ज्ञानसी पहुँचकर हमको यहाँ के लोगों से मेलजोल करने का मौक़ा मिला। दो-चार दिनों में यह साफ़ ज़ाहिर होने लगा कि उत्तरी तिब्बत के लोग ज़्यादा ईमानदार, दयालु और जोशीले होते हैं। उनके मुक़ाबिले में दक्षिणी तिब्बत के लोग बहुत आरामपसन्द और ख़ामोशी की जिन्दगी बसर करनेवाले होते हैं। शकल-सूरत और

[ज्ञानसी के मंदिर में बुद्ध की ३० फ़ीट ऊँची अत्यन्त प्राचीन मूर्त्ति।]

...ती में भी वे लोग इन लोगों से सुन्दर और वलिष्ठ ...ूम पड़ते हैं। सारे तिब्वत के लोग देखने में वहुत मैले हैं, पर उनके वदन से वदवू नहीं आती। नहाने-धोने के आदी नहीं हैं। यहाँ सर्दी इस क़दर है कि पानी से मुंह धोना मुहाल है। मैं ६ महीने तक तिब्वत में रहा, वग़ैर नहाये ही रहा। सारे वदन में मैल की एक काली पर्त जम जाती है। कपड़ों और विस्तरों में जुएँ जमा रहते हैं। वहाँ लोग ढीला लम्वा कोट पहनते हैं। मर्द और औरत की पोशाक में कोई ख़ास अन्तर नहीं होता। सिर्फ़ लड़-

[पीठ पर वच्चा लिये हुए एक तिब्वतिन महिला]

एक तिब्वती पुरुष

कियाँ अपने कोट के ऊपर से सामने की तरफ़ से एक रंगीन भाड़न कमर से वाँध लेती हैं। तमाम लोग ज्यादातर काले रंग का कोट पहनते हैं। लेकिन ढावा और एनी यानी भिक्षु और भिक्षुनी कत्थई रंग का कोट पहनते हैं। सव औरतों और मर्दों के सिरों पर लम्बे लम्बे वाल रहते हैं और सभी चोटी गूंथते हैं, लेकिन ढावा और एनी लोग अपने सिर मुड़ाये रहते हैं। मर्दों के मूंछ-डाढी नहीं होतीं, इसलिए मर्द और औरत में भेद करना वहुत मुश्किल है।

ज्ञानसी म वुद्धदेव का एक वड़ा भारी मंदिर है, जो ११ सौ वर्ष का पुराना है। इसकी दीवारों पर वहुत वारीक नक़्क़ाशी है। इसके अन्दर १५-२० फ़ुट ऊँची कई मूर्तियाँ खड़ी हैं। ये मूर्तियाँ वुद्धधर्म के देवताओं और विद्वानों की हैं। मूर्तियाँ पीतल और ताँवे की ढाली हुई हैं और इन पर सोने का पानी फिरा हुआ है। इन पर हीरे-जवाहिर भी अधिक संख्या में लगे हुए हैं। अन्दर जाने पर पुजारी लोग हर एक चीज़ को अच्छी तरह
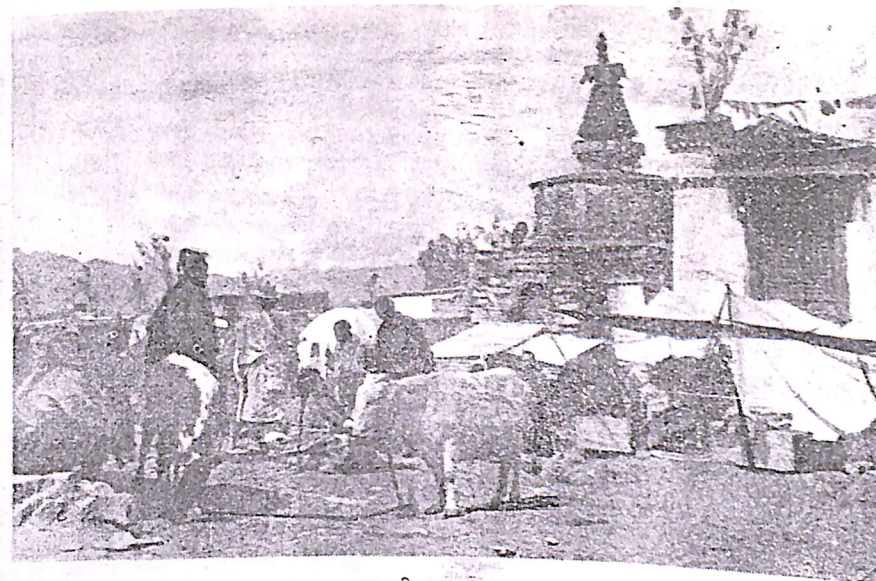
ज्ञानसी का वाज़ार
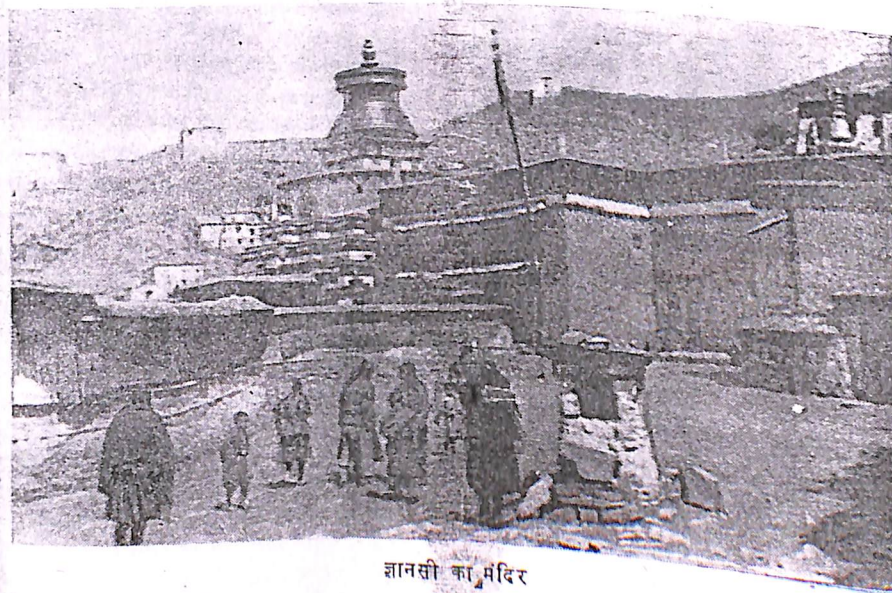
ज्ञानसी का मंदिर

समझा-बुझा कर दिखलाते हैं। मंदिर के अन्दर बिलकुल
अँधेरा रहता है, इसलिए जो आदमी अन्दर साथ जाता
है वह अपने हाथ में घी का चिराग़ लिये रहता है।
प्रत्येक मूर्ति के सामने घी का एक बहुत बड़ा चिराग़ जलता
रहता है और प्रधान मूर्ति के सामने बहुत से चिराग़ जलते
रहते हैं। वहाँ के लोगों का कहना है कि ये चिराग़ दैवी-
शक्ति से बराबर जलते रहते हैं।

ज़्यादातर सभी यात्री ज्ञानसी तक आ पाते हैं और
यहाँ के मन्दिरों के फ़ोटो लेकर तिब्बत की कला और संस्कृति
का वर्णन करते हैं। लेकिन ऐसा करना बहुत जोखिम है,
क्योंकि इस मन्दिरों में नित्य नये परिवर्तन होते रहते
हैं। दो-चार चीज़ें और बुनियाद के सिवा ज्ञानसी के
उक्त मन्दिर की सारी बातें गत ५० साल के अर्से में बनी
हैं। और आजकल लोग उनमें और नये सुधार करने
की तैयारी कर रहे हैं।

जो लोग खच्चर और गधे किराये पर देते हैं, हम उनके
यहाँ आने-जाने लगे। हम लोगों के इस ढंग को देखकर
तिब्बत-सरकार के जासूसों ने बहुत होशियारी से हम लोगों
के प्रोग्राम को मालूम कर लिया। उनके अफ़सर आये और
उन्होंने हमारे वे सारे काग़ज़ ध्यान से देखे जो अभयसिंह
परेरा अपने साथ लासा के कैबिनेट से लाये थे। देखने
में यहाँ के अफ़सर काफ़ी रोबदार हैं और बातचीत भी बड़े

[हमारे बैंकर साहु धर्मरत्न नैपाली]

[तिब्बत का एक महन्त अपना मंत्रों से भरा पहिया घुमा रहा है।]

तरीक़े से करते हैं। सरकारी काग़ज़ों को देखकर खुश
हुए और ईमानदारी से काम करने की तारीफ़ करते हुए
चले गये। उनके चले जाने पर राहुल जी कहने लगे कि
आज अगर अभयसिंह जी ये चिट्ठियाँ न लाये होते तो
हम लोगों को तुरन्त लौट जाना पड़ता।

ज्ञानसी ही वह जगह है जहाँ से ब्रिटिश राज्य से साथ
छूटता है। डाक-बँगले और डाकखाने भी यहीं तक हैं।
यहाँ अँगरेज़ों की ५०० सिपाहियों की एक फ़ौज रहती है।
उन दिनों सिक्खों की रेजिमेंट थी। हर तीसरे साल
रेजिमेंट बदली जाती है। तिब्बत-सरकार का भी एक बहुत
ज़बरदस्त क़िला बना है। शहर बहुत बड़ा नहीं है उसके
चारों तरफ़ पत्थर की ऊँची दीवार बनी हुई है।
तिब्बत-सरकार ने भी डाक और तार का बन्दोबस्त किया
है। लेकिन ज़्यादातर सरकारी काम के लिए ही हैं।
तिब्बत-सरकार के मुख्य शहर लासा सिगरसी और गँनासी

[हम लोग एक गाँव से दूसरे गाँव को जाने के लिए खच्चरों की प्रतीक्षा कर रहे हैं।]

में ही डाकखानों का बन्दोबस्त है। इनके ज़रिये और
लोग भी चिट्ठियाँ या पार्सल भेज सकते हैं, पर खो जाने
का अन्देशा हर हालत में है। दो क़िस्म के टिकट मिलते
हैं—एक पैसे और दो पैसे के। एक पैसे में हलकी चिट्ठी
और दो पैसे में भारी चिट्ठी भेजी जाती है।

ज्ञानसी में कई दिन रहे। राहुल जी की तबीअत
भी ठीक हो गई। वे दोनों पासपोर्ट श्री कमलकृष्ण और
रेवेरेंड नागार्जुन के पास भेज दिये। यहाँ चिट्ठी
और तार मिल गये। उनका जवाब भी दे दिया गया।

हम लोग शालू की ओर २५ मई को रवाना हुए।
अभयसिंह जी चढ़ने के लिए तीन खच्चर साथ लाये थे,
इसलिए एक खच्चर सवारी के लिए और चार माल
लादने के लिए किराये पर लाये। खच्चर को किराये
पर लेने के लिए तिब्बत-सरकार की चिट्ठी
होनी चाहिए। चिट्ठी मिल जाने पर गाँव
के सरदार को खच्चरों का इन्तिज़ाम करना ही पड़ता
है। खच्चर का किराया एक या दो पैसे फ़ी खच्चर है।
हर अगले गाँव में जाकर खच्चर बदल लेना पड़ता है। ये
गाँव प्रायः एक और तीन मील की दूरी पर पड़ते हैं। इन
खच्चरों के साथ दो आदमी रहते हैं, जो अपने
खच्चर वापस ले आते हैं। हर गाँव में क़रीब क़रीब
आधे घंटे तक रुकना पड़ता है। आज सारे दिन भर की
कोशिश से हम लोग सिर्फ़ १० मील का सफ़र कर पाये।
हर आधे घंटे और पौन घण्टे पर रुकने और गाँव के मुखिया
की खोजकर खच्चरों का बन्दोबस्त करने में बड़ी भग-
दौड़ करनी पड़ती थी। शाम को हम लोग ढोगजे की
सराय में आ पहुँचे। उस समय इतने थक गये थे कि
खड़े होने तक की भी ताक़त नहीं थी।

दूसरे दिन फिर सुबह पाँच बजे हम लोगों को आगे
चलना पड़ा। पहले तरह का अब कोई मज़ा नहीं था।
चारों तरफ़ रेगिस्ताननुमा पीला मैदान और जगह जगह
चिकनी और गोल गोल पहाड़ियाँ बिखरी पड़ी थीं। हरे
रंग की घास भी नहीं दिखलाई पड़ती थी। मुश्किल से
१५ या २० मिनट चलने पर ही फिर गाँव के आ जाने पर

खच्चर वदलने के लिए रुकना पड़ता। गाँव के सरदार की जिसको वहाँ के लोग 'गैम्बू' कहते हैं, खोज करनी पड़ती क्योंकि उसको पहले से ही यह खबर मिल जाती है कि मुसाफ़िर सरकारी चिट्ठी लिये हुए आ रहे हैं, इसलिए वह मकान छोड़कर भागकर कहीं छिप जाता है। अतएव हमको उसकी खोज करनी पड़ती। जब उसको पकड़कर घर ले आते तब उसके सामने खच्चर इकट्ठे करने का सवाल पेश होता। ये लोग बहुत ही ग़रीब हैं, इसलिए एकाएक पाँच खच्चरों का बन्दोवस्त करना इनके लिए वड़ा मुश्किल हो जाता है। उसकी इस हालत पर रहम खाकर उसकी बीवी और गाँव की तमाम औरतें दौड़ पड़ती हैं और जो लोग पिछले गाँव से खच्चर लाये थे उनकी खुशामदें करती हैं कि वे अपने खच्चर अगले गाँव तक जाने के लिए दे दें। लेकिन वे भी कैसे दे सकते हैं, क्योंकि उन पाँचों खच्चरों में वे भी तीन खच्चर माँग माँग कर लाये थे। खच्चर की खींच-तान शुरू हो जाती और एक कोहराम मच जाता। हम लोग जब आजिज़ आ जाते तब वे हमको नाराज देखकर डर जाते और गैम्बू आगे वढ़कर और बड़ी सहमी हुई शकल बनाकर सामने खड़ा हो जाता और अपनी राल टपकाती हुई ज़बान को बाहर निकालकर आज़िजी ज़ाहिर करता। उसकी बीवी और दूसरे हिमायती उसके पीछे क़तार बाँधे सिर खुजलाते हुए खड़े होकर गिड़गिड़ा कर धीरे धीरे कुछ कहते। मर्द तो अपनी टूटी हुई फ़ेल्ट हैट उतार उतारकर झुक झुककर सीने से लगाते और अपनी जबान से लार बराबर टपकाकर कोट पर से बहाते और औरत अपने दोनों हाथों के सिरों को जोड़कर बड़ी फ़ुर्ती से बार बार माथे से लगाती।

कवि हरे-भरे खेतों में चल !

लेखक, श्रीयुत मित्तल

कवि हरे-भरे खेतों में चल !

तू देख चुका शहरी जीवन,
वैभव के सब नंदन-कानन;
क्या देखा, क्या पाया तूने ?
"धनिकों के उर का सूनापन !"

अब उठा क़दम दो पहर ज़रा,
उन दुखियों के खेतों में चल।
कवि हरे-भरे खेतों में चल !

तू देखेगा--
जो हैं असभ्य वे शान्त सरल,
कितना निर्मल उनका जीवन !
बोली में कोयल कूक भरी,
दिल में पायेगा 'अपनापन'

फिर तुही बता--
ये जो कहलाते हैं असभ्य
इतना निर्मल क्यों उनका मन ?
औ' बने सभ्य जो आज
अरे ! क्यों गिरा हुआ उनका जीवन ?

हिन्दू-जाति की सामाजिक विजय

लेखक, स्वर्गीय लाला हरदयाल एम० ए० पी-एच० डी०

लाला जी राजनैतिक क्षेत्र के प्रख्यात सामन्त थे; उन्होंने यह लेख सन् १९०९ में लिखा था और इसे 'मार्डन रिव्यू' में छपाया था। उन दिनों यह लेख बड़े कौतूहल से पढ़ा गया था और इसके कारण भारत के राजनैतिक क्षेत्रों में बड़ी सनसनी फैल गई थी। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस लेख के पुराने हो जाने पर भी इसके तथ्य अब तक वैसे ही नये हैं। सामाजिक दृष्टिकोण से यह लेख अब भी बड़े महत्त्व का है और हम भारतीयों के सामने एक मौलिक विचार-सरणी उपस्थित करता है।

एक बलवान् जाति दूसरी निर्बल जाति को युद्ध में जीत लेती है। पर यह उसकी केवल 'राजनैतिक' विजय होती है। यह विजय तब तक स्थायी नहीं होती जब तक पराजित जाति के सामाजिक जीवन पर भी अधिकार न कर लिया जाय। साधारण नियम यह है कि राजनैतिक अधिकार पहले होता है और सामाजिक अधिकार उसके बाद। राजनैतिक अधिकार सेना और राजनैतिक कुशलता-द्वारा स्थापित होता है। सामाजिक अधिकार के लिए तोपें-बन्दूकें, सेनायें व शक्ति काम नहीं देतीं। वह तो क्रमशः हुआ करता है और अधिक समय चाहता है। सिकन्दर और चंगेज़ख़ाँ केवल सैनिक बल का सहारा रखते थे, अतः वे पराजित जातियों पर सामाजिक आधिपत्य न पा सके। शक्ति से निर्बल जातियाँ दबाई जा सकती हैं, कुचली जा सकती हैं, उनका सैन्य-संबल नष्ट-भ्रष्ट किया जा सकता है, उनके क़िले और नगर विध्वंस किये जा सकते हैं, पर इससे उनके हृदयों और मस्तिष्कों पर अधिकार नहीं किया जा सकता। तलवार तो शासित के हृदय पर अधिकार जमाते समय बाधक सिद्ध होती है; उसे या तो म्यान में कर लेना पड़ता है या छिपा देना होता है।

स्वर्गीय लाला हरदयाल

राजनैतिक विजय की दृढ़ता और स्थायित्व के लिए सामाजिक विजय की कितनी आवश्यकता है, इसे वे ही ठीक-ठीक समझ सकते हैं जिन्हें उन अवस्थाओं का पूरा पूरा ज्ञान है—जिनमें एक निर्बल जाति पर दूसरी सबल जाति अपना स्थायी प्रभुत्व जमा लेती है। कोई जाति अपने जन्मसिद्ध अधिकार 'स्वाधीनता' को तब तक नहीं खो सकती जब तक वह भोग-विलास और आलस्य आदि के द्वारा ऐसी पतित न हो जाय कि वह अपने जात्यभिमान, आत्माभिमान, साम्प्रदायिक जोश और समाज के प्रतिव्यक्ति के उत्तरदायित्व को सर्वथा न भुला दे। इस प्रकार जब किसी जाति का चारित्रिक पैमाना गिर जाता है तब उस पर अधिकार जमाने में विदेशी जातियों को सरलता होती है। फिर अधिकार जमा लेने के बाद विदेशी शासन उस जाति के पतन में और भी शीघ्रता करा देता है। प्रोफ़ेसर सीली का कथन है कि 'चारित्रिक दुर्बलता का प्रधान कारण है विदेशियों की

हुकूमत में रहना, और विदेशी हुकूमत में रहने का नतीजा होता है 'चारित्रिक दुर्बलता' ठीक वैसे ही, जैसे ज्वर उन्हीं पर आक्रमण करता है जिनके अवयव मिथ्याहार-विहारों से निर्बल हो चुके होते हैं और फिर ज्वर आकर उन अवयवों को इतना निर्बल कर देता है कि वे रोग के आक्रमण और उसके द्वारा होनेवाले शारीरिक ह्रास को रोकने में असमर्थ हो जाते हैं।'

सामाजिक विजय राजनैतिक विजय का आवश्यक अंग है। कारण यह है कि जब तक किसी जाति के पुरुषत्व की भावनाओं का विनाश नहीं हो जाता तब तक वह पराधीन भले ही हो जाय, पर पराधीन रह नहीं सकती। यदि शताब्दियों की पराधीनता के बाद भी कोई जाति अपने आत्मगौरव और महत्ता को क़ायम रख सके तो इसमें कोई संदेह नहीं कि वह एक-न-एक दिन स्वाधीन अवश्य हो जायगी। अतः किसी पराधीन जाति का सबसे बड़ा कर्त्तव्य यह है कि यदि वह फिर से संसार में स्वाधीनता का सुख भोगना चाहती है तो ऐसा प्रयत्न निरन्तर करती रहे कि उसके आत्माभिमान और स्वदेश-गौरव की चिनगारी विदेशी हुकूमत के जल से बुझकर ठंडी न पड़ जाय। विदेशी शासन का अवश्यम्भावी प्रभाव यह होता है कि वह अधीन जाति की उन विशेषताओं का लोप कर देती है जो पराधीन और स्वाधीन जाति के विभेद का परिचायक होती हैं। जाति की आत्मा को मारने के लिए ही सामाजिकविजय की आवश्यकता होती है। विजित जाति के पास जो सबसे बड़ी सम्पत्ति शेष रह जाती है वह है 'आत्माभिमान'। इसी का नाश करने के लिए विदेशी विजेता हमें सदा वही पाठ पढ़ायेंगे जिससे हम अपने को नीच समझें, उनके क़ानून और शासन के ढंग हमारे दिमाग़ों पर ऐसी ही छाप डालेंगे। अतः पराधीन जाति का कर्तव्य हैं कि वह इस सामाजिक पराजय को रोकने की कोशिश पहले करे और विदेशी शासन से उत्पन्न होनेवाली अन्य ख़राबियों को रोकने की उसके बाद।

राजनैतिक विजय संसार के सामने डंके की चोट घोषणा करती है कि विजेता जाति पराजित जाति से अधिक योग्य है। युद्ध प्रकृति के विश्व-विद्यालय की परीक्षायें हैं। अन्तर्जातीय बखेड़ों के परिणामों का निर्णय प्रतिद्वन्द्वी जातियों के पृथक् कारनामों से नहीं किया जाता, वरन उनकी तुलनात्मक सामाजिक श्रेष्ठता से किया जाता है। साम्राज्य के लिए होनेवाली टिटेनिक की लड़ाई में अँगरेज़ों ने फ़रासीसियों को हरा दिया था। इसका कारण यह नहीं था कि फ़रासीसियों की अपेक्षा अँगरेज़ों की सेना और शस्त्रास्त्र अधिक अच्छे थे, प्रत्युत यह था कि अँगरेज़ों की नीति और उद्देश्य में स्थिरता और दृढ़ता थी। फ़रासीसियों में यह बात नहीं थी। अभिप्राय यह है कि युद्ध में किसी जाति की विजय उसकी सैनिक उत्कृष्टता के अतिरिक्त भी किसी वस्तु की ओर संकेत करती है और वह वस्तु है उस जाति के व्यक्तियों के हृदयों में जातीय उत्कर्ष की भवना और छाप।

पराजित जाति भी यह सब कुछ समझती है। जिसे संसार समझता है उसे वह क्यों न समझेगी! उसे अनुभव होता है कि मेरा दिल टूट गया है, मेरा सब कुछ खो गया है, वह आशा, आत्म-विश्वास और साहस सभी कुछ छोड़ बैठती है। वह स्वयं को शासकों के समकक्ष समझना छोड़ देती है। वह समझने लगती है कि शासक जाति हमारी अपेक्षा अधिक सक्षम है। परिणाम यह होता है कि वह कालान्तर में अपनी आत्मा को स्वयं मार डालती है। वह रक्ताक्षरों में लिखे गये उस अक्षय्य सत्य को कैसे मिटा दे, उस वास्तविकता से अपनी आँखें कैसे फेर ले, जो पुकार कर कहती है कि—'तुम लड़े, तुमने भरसक प्रयत्न किया, अपनी जान सभी कुछ किया—पर तुम पराजित हुए, तुम असफल हुए, तुम्हारे किये धरे कुछ भी न हो सका। ऐसे विचारों से ही निराशा का जन्म होता है। क्योंकि ऐसी पराजय के बाद कोई जाति निकटभविष्य में ही अधिक प्रयत्न की आशा भी कैसे कर सकती है? जब स्वाधीनता की दशा में ही वह जाति-सम्मान और आत्म-गौरव को बचा न सकी—जब वह अपने घर की मालिक थी, तब विदेशी शासन के दुर्दिन में पड़कर उसके क़ानूनों, जेलों, अदालतों, ख़ुफ़िया और ज़ाहिर पुलिस, फ़ौज, छावनी की बेड़ियों में चारों ओर से जकड़ी रहकर भी वह इस योग्य कैसे हो सकती है कि अपने को स्वाधीन बना सके? ऐसे ही विचार चारित्रिक ह्रास के कारण बन जाते हैं।

इस प्रकार पराजित जाति विजेता जाति की श्रेष्ठता

को आप-से-आप स्वीकार कर लेती है। किसी को कुछ सीखने-सिखाने की ज़रूरत नहीं पड़ती। आस-पास की वस्तुएँ ही सब कुछ सिखा-पढ़ा देती हैं। वर्तमान का नग्न सत्य उन्हें विश्वास करने को बाधित करता है। भले ही पराजित जाति का पुरातन इतिहास उसके कान में उसकी महत्ता का सन्देश सुनाने का प्रयत्न करे, पर वह उसे स्वप्न के समान समझती है। वह सत्य उसी को मानती है जो उसे प्रत्यक्ष दिखाई देता है। वर्तमान के दैनिक अनुभवों के आगे ख़याली बातों का असर जाति के हृदय पर पड़ भी कैसे सकता है?

कहने का अभिप्राय यह है कि पराजित जाति के नेताओं के आगे ये प्रश्न आते हैं कि—"प्रकृति और तथ्य के विरुद्ध कैसे युद्ध किया जाय? जाति का स्वाभिमान कैसे जीवित रक्खा जाय जब कि परिस्थितियाँ उसे मिटाने का पद-पद पर प्रयत्न करती हैं? जाति में जो थोड़ा-बहुत नैतिक बल रह गया है उसकी रक्षा किस प्रकार की जाय? और कैसे उसका विकास किया जाय? रोगी मरणासन्न है, उसके शरीर से नैतिक बल-रूपी रक्त निरन्तर निकल रहा है, इसका निकलना अन्ततोगत्वा किसी भी सम्पत्ति के विनाश की अपेक्षा अधिक भयानक प्रमाणित होगा! यह व्रण कैसे सिला जाय? जाति के पुरुषत्व की रक्षा कैसे की जाय?"

कोई जाति सोना और हीरा खोकर उसे फिर से पा सकती है, पर जो जाति अपने स्वाभिमान को खो देती है वह भौतिक सम्पत्ति को भी पाने की आशा फिर नहीं कर सकती, क्योंकि उसने अपना चरित्र खो दिया है, अपनी आत्मा खो दी है, अपना जीवन खो दिया है। मृतक जीवन के आनन्द का उपभोग कैसे कर सकता है?

सामाजिक विजय वह प्रणाली है जो चारित्रिक ह्रास को बढ़ाती है, क्योंकि वह शासकों को अवसर देती है कि वे दैनिक जीवन के प्रत्येक भाग में शासितों पर अपनी उच्चता व श्रेष्ठता की धाक जमायें। यदि शासक लोग केवल राज-काज से संबंध रक्खें, कर लगावें और वसूल करें, क़ानून बनायें और चलायें, तो वे विजेता, व्यवस्थापक, कर उगाहनेवाले और कान्स्टेबल भर हो सकते हैं, अपनी प्रजा के मालिक नहीं हो सकते। पराजित जाति पर एकच्छत्र प्रभुत्व स्थापित करने के लिए और उस प्रभुत्व को अक्षुण्ण बनाने के लिए सैनिक बल के बजाय किसी और बल की आवश्यकता है। राज्य स्थापित तलवार करती है, पर उसे दृढ़ता अन्य साधनों-द्वारा प्राप्त होती है। राज्य-सत्ता क़ायम होने के बाद जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, वैसे-वैसे तलवार का स्थान अन्यान्य साधन लेते जाते हैं, जो देखने में तो तलवार जैसे भयानक नहीं लगते, पर पराजित जाति के हक़ में होते उससे कहीं अधिक भयानक हैं। फ़ौज हरा सकती है, पददलित नहीं कर सकती; बाँध सकती है पर झुका नहीं सकती। पराजित जाति झुकाई कैसे जाय? यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, जो विजेताओं के सामने अवश्य आया करता है।

हम यहाँ एक उदाहरण देते हैं। दक्षिण-भारत में पारिया नाम की एक जाति निवास करती है। ये लोग आदिम-निवासियों के वंशज हैं। इन आदिम-निवासियों को आर्यजाति ने हराया था। इतिहास से ज्ञात होता है कि आर्यजाति आदिमजाति की अपेक्षा जन-संख्या में कम थी, पर शारीरिक और बुद्धि-बल में अधिक थी। वह सुसंगठित भी थी और उसके पास शस्त्रास्त्र भी अच्छे थे। आर्यलोग दक्षिण में पहुँचे और उन्होंने उन काले आदिमों को हरा दिया जो न सुसंगठित थे, न कुशल सिपाही थे, पर वे कभी कभी लालच के वशीभूत होकर अपने वैरियों से मिल जाया करते थे। ब्राह्मण लोग जाकर उस प्रदेश में बस गये। यहाँ तक तो बात ठीक है कि एक जाति ने दूसरी जाति को, जो उसकी अपेक्षा जन-संख्या में बड़ी थी, परन्तु नैतिक और शारीरिक बल में छोटी थी, लड़ाई में जीत लिया। पर यह कैसे हो गया कि दक्षिण के पारिया लोग जब किसी ब्राह्मण को सड़क पर आते देखते हैं तब स्वयं एक किनारे हट कर उसके लिए मार्ग छोड़ देते हैं? यही नहीं, वे उसे प्रणाम भी करते हैं। आज-कल तो कोई क़ानून भी ऐसा नहीं है जो पारिया जाति को स्वयं को नीच समझने के लिए विवश करता हो। यदि कोई पारिया किसी ब्राह्मण को यह सोचकर प्रणाम न करे कि वह ब्राह्मण उसी जाति का प्रतिनिधि है जिस जाति ने पारिया के पूर्वजों को परास्त करके दास बनाया था तो ब्रिटिश अदालत उसे दंडित नहीं कर सकती। ब्राह्मण सशस्त्र भी नहीं

होता, शरीर से भी अधिक तगड़ा नहीं होता। झगड़ा हो जाने पर एक पारिया एक ब्राह्मण को हाथ भी लगा सकता है। फिर भी यह देखकर हमें कम उत्सुकता नहीं होती कि सैकड़ों हट्टे-कट्टे पारिया इस बीसवीं शताब्दी में भी जब कि कोई क़ानून उन पर इस प्रकार का दबाव नहीं डाल सकता, मार्ग में किसी ब्राह्मण को देखकर एक किनारे हट जाते हैं और झुक झुककर प्रणाम करते हैं। पारिया यदि चाहे तो ब्राह्मण को धक्का भी दे सकता है और पीट भी सकता है। ब्राह्मण में उतनी शक्ति भी नहीं होती कि वह पारिया को इस गुस्ताख़ी की सज़ा दे सके। कम-से-कम यह तो हो ही सकता है कि पारिया लोग संगठन करके ब्राह्मणों को अपने से उच्च मानने से इनकार कर दें, क्योंकि आज-कल ऐसा करने से किसी अनिष्ट की आशंका भी नहीं है। पर इतने अनुकूल साधनों के रहते हुए भी पारिया लोग उन्हें प्रणाम करते हैं—उन ब्राह्मणों को—जो नाम से नहीं पर काम से शूद्रों से कम नहीं हैं। यह क्यों है? यह एक कठिन मनोवैज्ञानिक प्रश्न है जिसका हल हमें करना है। सर हेनरी काटन इस विषय पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं—

"मुझे अच्छी तरह याद है। मैं नया-नया भारत में आया था। एक दिन मैं अपने एक मातहत के साथ जो जाति से ब्राह्मण था, सड़क पर टहल रहा था। जो हिन्दू लोग हमें राह में मिलते थे वे मुझे उसी प्रकार अभिवादन करते थे, जैसे कोई सरकारी अफ़सरों को करता है। पर मेरे साथी को झुककर प्रणाम करते थे और उसके चरणों पर अपना माथा रगड़ते थे। मेरे साथ तो उनके सम्मान-प्रदर्शन का ढंग कृत्रिम था, पर मेरे मातहत ब्राह्मण के प्रति उनकी श्रद्धा स्वाभाविक थी। हम दोनों के पदों की ऊँचाई-निचाई जाति-सम्बन्धी ऊँचाई-निचाई के मुक़ाबिले में कुछ महत्त्व न रखती थी।"

सर हेनरी काटन ने अवश्य अनुभव किया होगा कि जनता के सच्चे शासक वे नहीं, ब्राह्मण हैं। वे तो वैसे ही हैं, जैसे कोई कान्स्टेबल हो। ब्राह्मणों का अधिकार जनता के हृदयों और मस्तिष्कों पर है। उनकी यह गद्दी सुरक्षित है, कोई उन्हें अपदस्थ नहीं कर सकता। सर हेनरी काटन को इस अल्पवेतन-भोगी, ब्रिटिश सरकार के नौकर और अपने मातहत ब्राह्मण के उस भाग्य पर अवश्य ईर्ष्या हुई होगी। अब हमारे सामने विचारार्थ यही प्रश्न है कि दक्षिण-भारत में प्राचीन काल के प्रतिभाशाली ब्राह्मण अपना इतना आतंक क्योंकर जमा सके? यदि हम वर्तमान सदी में अपने देश में पैर फैलाती हुई ब्रिटिश पालिसी की गहराई जानना चाहते हैं तो हमें पुराने ज़माने के उन ब्राह्मणों की पालिसी को अवश्य समझ लेना चाहिए। इतिहास आवर्त्तन किया करता है। हमने पाँच सहस्र वर्ष पूर्व जो चतुरता और जातियों के साथ चलाई थी वही आज विदेशियों-द्वारा हम पर चलाई जा रही है।

मैं पीछे कह आया हूँ कि सामाजिक विजय बल के द्वारा प्राप्त नहीं होती। यही नहीं, बल तो हमें उस लक्ष्य से विपरीत दिशा में ले जाता है। थोड़ा-बहुत बल-प्रयोग किया भी जा सकता है, पर कार्य पूरा होता है चातुर्य, धैर्य, अध्यवसाय और आत्म-संयम के द्वारा। युद्ध के क्षेत्र के विजेता को सामाजिक विजय के लिए कुछ नम्र होना—कुछ झुकना—भी पड़ता है। वस्तुतः सामाजिक विजय एक ऐसा दुःस्साहस-पूर्ण कृत्य है जो अपनी मूल-प्रकृति में राजनैतिक विजय से सर्वथा भिन्न है। यह अपेक्षाकृत कठिन और समयापेक्षी कार्य है। यह इतना छिपे तौर से होता है कि पराजित जाति को इसका आभास तक नहीं मिलता। यह वह अफ़ीम है जिसके नशे के लिए समाज क्रमशः और शनैः शनैः अभ्यस्त किया जाता है। यह वह दूषी विष है जो एकदम तो प्राण नहीं लेता, पर कालान्तर में जीवनी-शक्ति को सर्वथा नष्ट कर डालता है।

सामाजिक विजय के लिए निम्न बातें अपेक्षित हैं—

१—शासक शासितों की समस्त सामाजिक कार्रवाइयों पर नियंत्रण रक्खें—विशेषतया उन कार्रवाइयों पर जो सार्वजनिक सुख-सुविधा से सम्बन्ध रखती हैं। वे इसके लिए उन लोगों को खास महत्त्व दें जिनके हाथ से इन कार्रवाइयों का संचालन होता हो।

२—कुछ ऐसे सार्वजनिक स्थल हों जहाँ शासक और शासित पारस्परिक-असमानता की भावना के साथ एकत्र हुआ करें।

३—ऐसे मनुष्यों की एक श्रेणी हो जो शासितों के वर्ग की हो और ऐसे स्थलों का उपयोग करने में आगे आना चाहे।

(शेष अगले अंक में)

त्रिपुरी-कांग्रेस का जुलूस

लेखक, श्रीयुत सोहनलाल द्विवेदी

था प्रात निकलने को जुलूस
जुड़ रात-रात भर नर-नारी,
बैठे उत्सुक पथ में आकर,
कब रथ निकले सज धजधारी।
चल ग्राम-ग्राम से नगर-नगर से
वृद्ध, बाल, आये अगणित,
करने को लोचन सफल आज,
भर देशप्रेम से पावन चित;

पिसन्हरिया की मढ़िया सुन्दर
है बनी जहाँ गिरि के ऊपर
कलचरी राज्य के गौरव का
ज्यों यशःस्तम्भ हो उठा प्रखर
बस उसी स्थान से उठना था,
त्रिपुरी का यह जुलूस भारी,
सारे भारत में हलचल थी,
सुन सुनकर जिसकी तैयारी!

बावन वर्षों की याद लिये
आये बावन हाथी मतङ्ग
इतिहास-पटल पर लिखने को
मतवालों के मन की उमङ्ग
सन् उन्तालिस की ग्यारह को
जब रात बदल कर बनी उषा,
जनगण में कोलाहल छाया,
मन प्राणों में छा गया नशा;

हो गये खड़े पथ में सजकर
रथ लेकर गज दिग्गज काले
खींचने राष्ट्रथ को आये
जय-पथ पर ज्यों रणमतवाले

[उस कुरुक्षेत्र की याद आगई,
सहसा इस कवि के मन में,
जब पाँच गाँव के लिए मचा
था, यहाँ महाभारत क्षण में;

यों ही तब दिग्गज शूरवीर
प्रातः होते ही रण-पथ पर,
बढ़ते होंगे ले ध्वजा शिखर,
योधा बैठे होंगे रथ पर;]
छाई पूरब की लाली में
ज्यों ही दिनकर की उजियाली
बज उठे शङ्ख, दुन्दुभि मृदङ्ग;
मारू बाजे वैभवशाली!

बावन हाथी जुड़ गये, एक
से एक लगे पीछे-आगे
बावन सारथी सवार हुए
जो मातृ-भूमि-पद अनुरागे;
शिर पर विशुभ्र गांधी-टोपी
तन पर खादी के शुभ्र वस्त्र,
ये युद्ध चले करने योधा,
जिनके न हाथ में एक शस्त्र;

घन-घन-घन-घन घंटा बोले
झन-झन-झन बाजी रण-भेरी
चल पड़ा हमारा यह जुलूस
पल में न लगी फिर कुछ देरी,
रथ था विशुभ्र ज्यों सत्य स्वयं
हो मूर्तिमान वाहन बनकर,
आया हो ले चलने हमको
पावन स्वराज्य के जय-पथ पर॥

था तरल तिरङ्गा लहर रहा
रथ के मस्तक को किये तुङ्ग
अभिनन्दन में दिखलाते थे
झुकते-से सब सतपुड़ा-शृङ्ग
सतपुड़ा-शृङ्ग, जिनमें बैठे थे
अगणित उत्सुक नर-नारी,
चित्रित कर दी विधि ने जैसी
उनमें विचित्र जनता सारी;

थे दोनों ओर पहाड़ सजे
पथ बीच बना था नव प्रशस्त,
बूढ़े बच्चे जा रहे जहाँ थे
सब जुलूस में अस्तव्यस्त
जब चला हमारा यह जुलूस
तब कोटि कोटि उत्सुक दर्शक
भर भर हाथों में नव प्रसून
बरसाने लगे, नयन अपलक;

पलकें अपलक, वाणी अवाक्
अन्तस् गद्गद्, तन पुलक भरे,
जागरण देख यह भारत का
दृग में सुख के नव अश्रु ढरे;
वह धन्य देश, जिसमें उठते
पददलित, यादकर निज गौरव,
बलिवेदी पर बढ़ते शहीद
लाने को फिर स्वदेश-वैभव!

नर्मदा उधर दक्षिण-तट पर,
गाती थी स्वागत गीत गान,
सतपुड़ा इधर था हर्ष-फुल्ल
शिर विनत किये पथ में अजान।

सौभाग्य महाकौशल का था,
जो गौरवमंडित मुक्त भाल,
श्री कर्णदेव का गौरव ले
अभिनन्दन करता था विशाल ;

जागो, फिर मेरे कर्णदेव,
देखो, आया है स्वर्णकाल,
फिर, चला महाकोशल लिखने
भारत-जननी का भाग्य-भाल।
बढ़ रहा गोंडवाना फिर से,
नापने देश के परिधि-छोर,
जन-गण, जागे पददलित पुनः
जन-रण का उठता महारोर ;

जागो फिर, सोये कर्णदेव,
कर लो हर्षित अपने लोचन,
त्रिपुरी से सजकर चली आज,
फिर, गजसेना, घंटाध्वनि घन ;
जागो, फिर मेरे कर्णदेव,
जग रहा तुम्हारा पुण्य पूर्व
तुम चले आज निर्मित करने
सुखमय स्वराष्ट्र अभिनव अपूर्व !

बावन सर बावन दर्पण बन,
थे चित्र खींचते मौन जहाँ,
बावन वर्षों का वैभव ले
कांग्रेस झूमती चली वहाँ।
झूमी प्रतिपल, गजगति बनकर,
झूमी प्रतिक्षण, गजरथ चढ़कर,
झूमी पग पग में, मग मग में,
जगमग मन कर, रण में बढ़कर ;

पंजाब चला अभिमान लिये
बंगाल चला बलिदान लिये
मद्रास बढ़ा उत्थान लिये
सी० पी० स्वागत के गान लिये।

गुजरात गर्व लेकर आया,
बनकर पटेल की लौह मूर्ति
राजेन्द्र किरीट सँवार चला
उत्कल विहार वन प्राण स्फूर्ति ;

ईसा की नव प्रतिमूर्ति लिये
आया सुन्दर सीमान्त कान्त
ले वीर जवाहर को पहुँचा
जननी का उर—यह हिन्द-प्रान्त।
राजा जी की ले सौम्य मूर्ति
मद्रास चला नव गर्व लिये
सौभाग्यचन्द्र बंगाल लिये
जिसने नित अरिमद खर्व किये !

कितने ही वो हीं देशरत्न
जिनके न रूप औ' ज्ञात नाम,
जन-सागर के तल में विलीन,
भरते थे बल विक्रम प्रकाम ;
बाजे बजते थे घमासान,
थे फड़क रहे सब अंग अंग,
नस नस में वीर भाव जागा
बह चली रक्त में नव उमंग ;

जब बावन दिग्गज चले संग
अपने भारी डग पर धर डग
तरणी रेवा में डोल उठी,
धरणी हो उठी विचल डगमग।
जय-घोषों की तुमुल ध्वनि में
यह बढ़ा महोत्सव आगे फिर
पहुँचा था, जहाँ लहर लेता
भारत का ध्वजा व्योम को तिर !

त्रिपुरी क्या बसी अनूपम छवि
जैसे हो त्रिपुरीराज्य उठा;
धरणी के स्तर को चीर,
पुरातन कोशल का साम्राज्य उठा,
उठ आये उसके सिंहद्वार,
उठ आईं गुम्बद दीवारें
मेहराब उठे, शुचि शृंग उठे,
ध्वज, तोरण, कलशी, मीनारें ;

झंडा मंडप में आ करके
यह समा गया अगणित सागर
झुक गये शीश रणवीरों के
था विजय-केतु उड़ता नभ पर
था सजा मातृमंदिर पावन
सतपुड़ा शिखर के कोने में
भारत-जन-सागर सिमट गया
नर्मदा-नदी के दोने में ;

उल्लास हास था आँखों में
पर मन में छाया था विषाद,
सौभाग्य-चन्द्र था घन-आवृत,
पाने आये जिसका प्रसाद,
त्रिपुरी का यह जुलूस भारी,
लिखता है युग में नई कथा,
आनंद जिधर था एक ओर
दूसरी ओर थी जहाँ व्यथा !

क्या बतलाऊँ, क्या था जुल
यह है वह युग युग का सपन
भारत में जब होगा स्वरा
भारत यह जब होगा अपन
टूटेंगी अपनी हथकड़िय
ढह जायेगा, यह राजतं
होगी भारत-जननी स्वतं
होंगे भारतवासी स्वतंत्र

रिक्शा

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

(१)

रों की गर्मी थी। दोपहरी में बड़ी देर तक सोने के बाद पसीने से तर होकर अरुण जब उठा और उसने मुंह हाथ धोकर घड़ी की ओर देखा तब केवल साढ़े चार बजे थे।

उस समय भी चारों ओर तेज़ धूप थी। जलती हुई सड़कें और गली कूचे ज़रा भी ठण्डे नहीं हुए थे। सड़क की पटरी पर सिरस का एक वृक्ष था। उसकी डालियों पर पीले रंग के फूल खिले हुए थे; वे मानों इस बात की सूचना दे रहे थे कि पाषाण-पुरी की धूप से जली हुई इस रूखी मूर्ति में भी थोड़ी-सी स्निग्धता है। उस वृक्ष पर ही थोड़े से भौंरे और मधुमक्खियाँ गुनगुना रही थीं। उनकी यह गुनगुनाहट प्रातःकाल से सन्ध्याकाल तक अविराम गति से जारी रहती, न कभी ज़ोर पकड़ती, न मन्द होती।

डाकिया आया और चिट्ठियाँ देकर चला गया। उसने जो कई चिट्ठियां दी थीं उन सभी पर अरुण व्यग्रभाव से एक एक बार दृष्टि दौड़ा गया। बाद को उसने ऊपर आँख उठाई और ब्रैकेट के ऊपर की घड़ी पर दृष्टि डाली। मिनट की सुइयाँ कुछ ही आगे बढ़ पाई थीं।

एक पोस्टकार्ड उठाकर अरुण उसे दुबारा पढ़ने लगा। वह पोस्टकार्ड उसके पिता का था। उसमें लिखा था—

"अरुण,

तुम्हारे छोटे मामा का पत्र आया है। उन्होंने बड़े आग्रह के साथ लिखा है कि तुम-उनके पुत्र कनक के विवाह के अवसर पर कटक जाओ। इसलिए यहाँ आने से पहले तुम कटक चले जाओ। वहाँ से होकर यहाँ आना। परन्तु देखना, कुल दस बारह दिन से अधिक का समय किसी प्रकार भी न लगने पाये। वहाँ विलम्ब मत होने देना।"

अरुण के छोटे मामा कटक में रहते थे। उसके नाना भी कटक में ही रहते थे। अब वहीं उन सबने घर आदि बनवाकर इस प्रकार की व्यवस्था कर ली थी कि उनकी तीसरी पीढ़ी के लिए भी प्रायः कटक-निवासी कह कर अपना परिचय देना आवश्यक हो जाय।

अरुण का कालेज पहले ही बन्द हो चुका था। उसकी घर जाने की बड़ी इच्छा थी, किन्तु कनक के आन्तरिक अनुरोध के कारण वह जा नहीं सका।

अरुण एक बड़े ज़मींदार का लड़का था। उसके पिता जगत बाबू एक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। अरुण और उसका छोटा भाई शुभेन्द्र अपने पिता के प्रति जितनी श्रद्धा-भक्ति किया करते थे, उससे भी अधिक वे उनसे डरते थे। पिता की आज्ञा की ही प्रतीक्षा में वह अभी तक ठहरा था। आज जब पिता का पत्र आ गया और उसे कटक जाने की आज्ञा मिल गई तब उल्लास के मारे अरुण का हृदय नाच उठा।

पासवाले कमरे से आकर कनक ने कहा—"अरुण, तुम्हारी चिट्ठी आ गई है न ?"

अरुण ने कहा—"आ तो गई है।"

"आ गई है ? कहाँ है ? देखें, देखें !"

अरुण ने पोस्टकार्ड बढ़ा दिया। पढ़कर कनक उत्साहित हो उठा। उसने प्रसन्नभाव से कहा—"बहुत ठीक ! तो अब क्या है ? चलो, आज ही निकल चलें।"

अरुण ने एक रहस्यपूर्ण हँसी हँसकर कहा—"ओह, शायद अब यहाँ एक एक क्षण बिताना कठिन हो रहा है ?"

कनक का मुख लाल हो गया। मस्तक हिलाते हुए उसने कहा—"रहने दीजिए। आप भी ऐसी बातें करते हैं।"

ज़रा-सा रुक कर कनक ने कहा--"तो आज ही का चलना ठीक रहा न अरुण ? किन्तु रात को आठ ही बजे गाड़ी खुल जाती है ।"

मुसकराते हुए अरुण ने कहा--"अच्छा ।"

"वाह ! क्या 'अच्छा' कहने से काम चलेगा ?" यदि चलना है तो तैयार हो जाओ । सात बजे तक यहाँ से रवाना हो जाना चाहिए, नहीं तो गाड़ी न मिलेगी । इसका पता है न ?"

अरुण की दृष्टि एक और चिट्ठी पर थी । उसे पढ़ते ही पढ़ते वह कहने लगा--"घड़ी देखो भैया, घड़ी ! अभी तो केवल साढ़े चार बजे हैं । अभी तुम्हारी गाड़ी छूटी जा रही है ?"

अरुण की हँसी के कारण कनक सहम गया । उसने मस्तक नीचा किये हुए कहा--"मैं केवल यह पूछ रहा हूँ कि आज ही चलने का निश्चय है या नहीं ? यदि चलना है तो जाकर ज़रा विनय से कह आऊँ ।"

अरुण ने कहा--"अच्छी बात है । जाओ, कह आओ ।"

अरुण कनक से तीन चार महीने बड़ा था । ममेरे और फुफेरे भाई होने पर भी वे दोनों छुटपन से एक-दूसरे का नाम लेकर ही पुकारते आये हैं । विवाह के विषय में कुछ बढ़ जाने पर भी कनक कालेज में अरुण से बहुत पिछड़ा हुआ था । इसी लिए कनक के पिता ने उसे अरुण की अधीनता में रक्खा था, क्योंकि इस सम्बन्ध में उन्होंने जितने भी उपाय किये वे सब निरर्थक सिद्ध हुए थे ।

कनक आकर अरुण के साथ रहने तो लगा, परन्तु वह बेचारा था बड़े आश्चर्य्य में । वह सोचा करता कि यह जो पासशुदा 'अच्छा लड़का' है, उसके पासरूपी स्वर्ग की सीढ़ी किस ओर है ? और सब लोगों की ही तरह तो वह भी पढ़ता-लिखता है, घूमता-फिरता रहता है तो भी वह दस आदमियों को पीछे किस उपाय से छोड़ जाता है ?

अरुण में एक ऐसी विशेषता थी जिसे कोई भी नहीं अस्वीकार करता था । सब लोगों की तरह कनक भी उसकी इस विशेषता का क़ायल था । अरुण की यह विशेषता थी नवीन अरुण के समान दगदगाता हुआ उसका रूप । चाहे रूप के कारण हो या गुण के कारण हो, कनक अरुण के वश में हो गया था ।

कनक चला गया । अरुण भी निकल कर सड़क की ओर के बरामदे में आगया । वहाँ खड़े-खड़े वह धूप से जलती हुई सड़क का दृश्य देखने लगा । सड़क बहुत बड़ी थी, बरामदे से उसका इस मोड़ से उस मोड़ तक का ही दृश्य दिखाई पड़ रहा था । पथिकों की संख्या उस समय बहुत कम थी । लदी हुई गाड़ियाँ ही क़तार की क़तार चल रही थीं । उन गाड़ियों में जुते हुए भैंसे थकावट के मारे आँखें मूँदे हुए बहुत धीरे-धीरे पैर उठा-उठाकर बोझा खींच रहे थे ।

आध घंटे के बाद चाय की इच्छा से जाकर अरुण ने देखा कि कनक बैठे-बैठे चाय का पात्र प्रायः खाली कर चुका है । अरुण को देखते ही उसने कहा--"किन्तु तुम्हारा जैसा आदमी मैंने और कहीं देखा नहीं ।"

अरुण ने हँसते हुए कहा--"अच्छा, तो और किस तरह के देखे हैं ? किसकी तरह के ?"

कनक भी हँस पड़ा । उसने कहा--"कैसा अन्याय है, इस तरह के फक्कड़ लड़के भी पास हो जाते हैं ।"

अरुण ने कहा--"और जितने गधे हैं, वे सब फ़ेल हो जाया करते हैं न ? बड़ा अन्धेर है ? बड़ा अन्धेर है ।"

अरुण ने और कुछ नहीं कहा । उसने चाय के प्याले में ही मन लगाया । अरुण शान्तभाव से अपनी सारी चीज़-वस्तु ट्रंक और सूटकेस में भरने लगा । चाय पी चुकने के बाद कनक अपने दो-एक मित्रों से मिलने के लिए फिर निकल गया । लौटते समय वह किराये की एक गाड़ी साथ में लिये हुए स्थान पर आया ।

चार-पाँच दिन के बाद ही कनक का विवाह था । सारी तैयारियाँ हो चुकी थीं । घर से जितने भी पत्र आते उन सबमें लिखा होता कि शीघ्र चले आओ । इसके सिवा स्वयं कनक को भी कम उतावली नहीं थी ।

कनक को साथ में किराये की गाड़ी लाते देखकर अरुण क्रुद्ध हो उठा । उसने कहा--"इतनी जल्दी गाड़ी के आने की क्या आवश्यकता थी ? अभी भोजन आदि भी तो करना है ! बिना खाये चलकर क्या सारी रात भूखे मरेंगे ?"

कनक ने कोई उत्तर नहीं दिया । नौकर की सहा-

यता से वह गाड़ी की छत पर गठरियाँ और बक्स आदि रखवाने लगा । कालेज बन्द हो जाने के कारण बाहर के जितने भी लड़के थे, सब अपने अपने घर चले गये थे । केवल वे दोनों रह गये थे । जिस कार्य्य के लिए वे रुके थे वह जब सिद्ध हो गया तब एक घंटे का भी विलम्ब कनक के लिए सह्य नहीं था ।

उस स्थान का नौकर भी उस दिन बड़ी तत्परता के साथ आज्ञा का पालन कर रहा था । उसे आशा थी कि जाते समय बाबू लोग इनाम देंगे । महराज देवता का भी यही हाल था । यथासमय जलता हुआ भोजन किसी तरह पानी के घूंट उतार कर अरुण और कनक उस किराये की गाड़ी पर बैठे ।

घड़ घड़ और हट हट की आवाज़ के साथ गाड़ी हावड़ा की ओर चली । कनक ने कोचवान को डाँटते हुए कहा--ज़रा और तेज़ हाँको--और तेज़ ।

कनक की इस बात से कोचवान की हट हट की आवाज़ में तो तेज़ी आई, पर गाड़ी की चाल में कोई परिवर्तन नहीं हुआ । गाड़ी भी नहीं छूटी । ठीक समय पर ही वे दोनों हावड़ा पहुँच गये । गाड़ी उन्हें मिल गई । कनक को टिकट के लिए भेज कर अरुण ज़रा देर तक प्लेटफ़ार्म पर टहलता रहा, बाद को वह एक डिब्बे में जाकर बैठा ।

गाड़ी छूट गई । अरुण ने हाथ का टाइम टेबिल रख दिया, और वह रात में सोने की व्यवस्था करने लगा । पास ही ज़नाना डिब्बा था । उसमें से एक दुधमुँहे बच्चे के रोने की आवाज़ आ रही थी । बड़ी देर के बाद भी वह आवाज़ जब न रुकी तब क्रुद्ध-भाव से अरुण बोल उठा--"न, अब सोने को न मिलेगा ।"

कनक कुछ नहीं बोला । उसने ज़रा-सा हँस भर दिया और खूब झाड़-झूड़ कर अपने सोने के लिए जगह ठीक कर ली । अरुण की अपेक्षा वह कुछ अधिक गृहस्थ आदमी था । ज़रा सी ही बात में विरक्त हो उठने की उसकी आदत नहीं थी । तीन स्टेशन के बाद ही उसने देखा कि जिस अरुण को यह आशङ्का थी कि सारी रात आँख ही न लगने पायेगी, वह गम्भीर निद्रा में सोया हुआ है ।

(२)

अरुण कटक में अपने मामा के यहाँ पहुँच गया । उसके ममेरे भाई तथा सहपाठी मित्र कनक के विवाह के उपलक्ष्य में कई दिनों तक बड़ी धूमधाम रही अन्त में विवाह-सम्बन्धी उत्सवों के समाप्त हो जाने पर घर का वातावरण जब स्वाभाविक अवस्था में आया तभी शायद सब लोग ग्रीष्म ऋतु की तीव्रता का विशेष रूप से अनुभव करने लगे ।

मध्याह्न के सूर्य्य का उत्ताप मानो एकदम से अग्नि-कणों की ही वर्षा कर रहा था । असह्य गर्मी की ज्वाला से व्याकुल होकर अरुण घर से निकल आया । ज़रा सी स्निग्ध छाया के लोभ से वह पिछवाड़ेवाले बगीचे में चला गया ।

बग़ीचे में जाकर अरुण ने देखा कि बग़ल बग़ल लगे हुए कदम और मौलश्री के वृक्षों की घनी छाया में एक पक्का चबूतरा बना हुआ है । वही उसे आराम से सोने के लिए उपयुक्त स्थान मालूम पड़ा । हाथ में एक पंखा, अँगरेज़ी का एक उपन्यास और एक तकिया लेकर वह जम गया ।

वृक्षों के बीच से होकर झर झर करती हुई जो स्निग्ध वायु आ रही थी उसी से उसने 'आह' करके तृप्ति की एक साँस ली और वह लेट गया ।

अरुण इस घर का सदा का रहनेवाला तो था नहीं । इससे उसे यह नहीं मालूम था कि अन्तःपुर से मिला हुआ यह बग़ीचा केवल स्त्रियों के ही अधिकार में है । रात-दिन जो चहारदीवारी के भीतर बन्द रहा करती हैं उन्हें यदि इस प्रकार का तृप्तिदायक स्थान मिल जाय तो भला वे इसे क्यों कर छोड़ने लगीं । बग़ीचा स्त्रियों के साम्राज्य के अन्तर्गत था, इसलिए घर के लड़कों में से प्रायः कोई भी उस ओर नहीं जाया करता था ।

यहाँ आकर अरुण ने अपार तृप्ति-लाभ किया । परन्तु इस तृप्ति के कारण उसकी थकी हुई आँखों को मूंद कर निद्रा ने अभी अभी ही उस पर अधिकार किया था, हाथ का उपन्यास हाथ से छूटकर सूखी पत्तियों के एक ढेर पर आसन जमाये था, इतने में चूड़ियों और चाभियों की धीमी खनखनाहट और दबे हुए कण्ठस्वर की गुञ्ज ध्वनि से वह चौंक पड़ा, उसकी निद्रा भंग हो गई ।

दृष्टि बढ़ा कर उसने देखा तो समीप ही तीन तरुणियाँ एकाग्र मन से मौलश्री के फूल चुनती हुई बैठी थीं। उनमें से एक थी कनक के बड़े भाई हीरक की स्त्री शान्ति, दूसरी कनक की बहन विमला और उन दोनों की आड़ में जो बैठी थी वह स्पष्ट नहीं दिखाई पड़ी।

अरुण बड़े ही संकट में पड़ गया। वह सोचने लगा कि शायद इन स्त्रियों ने मुझे अभी तक देखा न हो। परन्तु जब मैंने इन सबको यहाँ बैठे देख लिया तब इस तरह कैसे पड़ा रहूँ? परन्तु इन सबके सामने से होकर मैं भागूं भी कैसे? क्रोध के मारे इन सबके ऊपर उसकी हड्डी हड्डी जल उठी।

एकाएक तीसरी किशोरी कोमल-कण्ठ से खिलखिला-कर हँस पड़ी और "आह" कह कर मुट्ठी भर फूल शान्ति की ओर फेंकती हुई उठकर खड़ी हो गई। ये फूल अरुण के ही ऊपर जा पड़े। कुछ फूल तो उसके माथे पर पड़े, कुछ मुंह पर पड़े और कुछ वक्षःस्थल पर पड़े। वह एकाएक उठकर बैठ गया और कहने लगा वाह! भाभी।

निमेष भर में शान्ति के मस्तक पर की साड़ी वक्षःस्थल तक झूलने लगी और वह लज्जिता कुमारी मस्तक पर के कपड़े की दीनता के कारण प्राणपण से मस्तक झुकाये हुए शान्ति की पीठ से बिलकुल मिल कर खड़ी हो गई। अरुण की मुग्ध दृष्टि की केवल एक पलक ने ही उसके झुके हुए सुन्दर मुख को ज़रा सा और भी रँग दिया।

शान्ति ने मधुरभाव से किशोरी के शरीर को हाथ से ज़रा सा दबा दिया, जिसके कारण वह और भी उसके समीप आकर खड़ी हो गई, ताकि जितना भी अधिक सम्भव हो, वह अपने आपको आड़ में कर ले, इसी में उसकी रक्षा है।

विमला घूमकर खड़ी हो गई और मुस्कराती हुई बोली—"क्यों भैया यहाँ हम लोगों की जगह में कैसे?"

अरुण की विस्मयमुग्ध दृष्टि उस समय भी उस लज्जा से लाल हो गये मुख पर लगी थी। दृष्टि नीची किये हुए उसने कहा—"मुझे मालूम नहीं था कि यह तुम लोगों का अड्डा है।"

घूंघट के भीतर से ही हँसती हुई शान्ति बोली—"आहा!"

अरुण उठकर चलने लगा। विमला ने कहा—"उठते क्यों हैं? आप विश्राम कीजिए न। हम लोग तो जा ही रही थीं।"

अरुण ने व्यस्त होकर कहा—"नहीं, नहीं ऐसा क्यों करोगी? यह कहते कहते वह बग़ीचे से निकल गया।"

विमला अर्थपूर्ण दृष्टि से किशोरी की ओर ताक कर हँसी। परन्तु इस प्रकार रहस्यपूर्ण ढंग से तो यह सारा तमाशा हो रहा था, किशोरी की समझ में उसका मर्म नहीं आ रहा था। यह सब समझने का अभी उसका समय नहीं हुआ था।

अरुण ने बाहर जाकर देखा तो वहाँ हीरक, कनक और विमला के स्वामी यतीन, ये तीनों ही आदमी मिलकर ताश बिछाये बैठे थे। उसे देखते ही हीरक ने कहा—"क्यों रे? तू कहाँ इस तरह बिस्तरा-तकिया दबाये गया था?"

अरुण ने धप से तकिया ज़मीन पर फेंक दिया। आरामकुर्सी पर हाथ पैर फैलाये हुए लेटते लेटते उसने कहा—"हाँ, गया तो था, किन्तु..."

कनक ने कहा—"इसमें किन्तु-परन्तु की क्या बात है? बग़ीचे में तो तुम गये थे। मैंने देखा——"

झट-पट सीधा होकर अरुण बोला—'तुम यदि जानते थे तो मुझे रोक क्यों नहीं लिया?"

कनक ने कहा—"क्यों? तो इससे हुआ क्या?"

अरुण ने कहा—'होता क्या? भगा दिया उन लोगों ने।"

"किन लोगों ने? तुमको किसने भगाया?"

मुंह टेढ़ा किये हुए अरुण ने कहा—"यह जानने के लिए तुम्हें कष्ट न करना पड़ेगा।"

सब लोग मिलकर हँस पड़े और खेलने में फिर लग गये। आँख के सामने खुली हुई पुस्तक रखकर अरुण फिर कुर्सी पर लेट गया।

अरुण उस समय किशोरावस्था को पार कर चुका था। उसमें यौवन का विकास होना प्रारम्भ हो चुका था। इस कारण उस सुन्दरी किशोरी के हाथ से फेंके गये फूलों ने उसके वक्षःस्थल पर आघात करके एक ऐसा उच्छ्वास उत्पन्न कर दिया, जिसके कम्पन से उसका हृदय उद्वेलित हो उठा। उसके काले काले घुंघराले बालों पर उस समय भी कई फूल अटके हुए थे। उन्हें देख कर

यतीन ने कहा—"कहो जी, क्या तुम मौलश्री के वृक्ष के नीचे लोट आये हो?"

अरुण ने कहा—"इसका मतलब? कैसे समझा आपने?"

"इसमें भी क्या कोई आश्चर्य की बात है? जब कनक तक का विवाह हो गया तब फिर।"

"शायद इसी से यह प्रमाणित हो गया कि मैं मौलसिरी के वृक्ष के नीचे लोट आया हूँ।"

"अजी नहीं, इतने से ही क्यों? तुम्हारे मस्तक पर मौलसिरी के बहुत से फूल जो गिरे हुए हैं।"

"ओह, ऐसी बात है?" यह कहकर अरुण ने झट-पट माथा झाड़ डाला, किन्तु मन को वह न झाड़ सका।

बाबू श्यामानन्द वकील की दशा बहुत गिरी हुई नहीं थी। फिर भी उन्होंने यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि मैं कन्या के विवाह में एक पैसा भी दहेज में न दूंगा। उन्होंने यह भी निश्चय कर लिया था कि यदि कोई आदमी जैसा आदमी बिना दहेज के मेरी कन्या के साथ विवाह कर लेगा तो अच्छा ही है, अन्यथा वह कुमारी ही पड़ी रह जायगी, तो भी कोई चिन्ता की बात नहीं है। परन्तु उन्होंने जहाँ यह निश्चय किया कि दहेज़ के बिना ही योग्य से योग्य वर के साथ कन्या का विवाह करूँगा, वहाँ वे कन्या को उच्च शिक्षा देकर उसे अधिक से अधिक योग्य बनाने के लिए तैयार थे। इसी लिए वे ज्योति को लड़कों के साथ समान रूप से ही शिक्षा दे रहे थे।

ज्योति उन दिनों मैट्रिक्यूलेशन परीक्षा देकर अवकाश का समय व्यतीत कर रही थी। खिले हुए गुलाब की तरह का दगदगाता हुआ उसका सौन्दर्य अभी अधखिला ही था, जिसके कारण संसार की मिट्टी-धूल का धब्बा उस समय भी नहीं पड़ पाया था। प्रेम की बदौलत होनेवाले किसी प्रकार के भी व्यापार से वह कोई सम्पर्क नहीं रखती थी। पढ़ाई-लिखाई के बोझ से दबी होने के कारण इन सब विषयों की ओर अभी तक उसका ध्यान ही नहीं गया था। ये सब बातें उस समय भी उसके पोथी-पत्रा की आड़ में छिपी हुई थीं। अपनी स्वभाव-सुलभ लज्जा के कारण किसी अपरिचित व्यक्ति के सामने पड़ते ही वह संकुचित हो जाया करती थी। अरुण के सामने पड़ने पर भी उसकी वही दशा हुई। परन्तु शान्ति और विमला उसकी इस अवस्था के कारण जो हँस हँसकर इस तरह का मज़ा लेने लगीं, उसका गूढ़ अर्थ उस समय भी वह ठीक ठीक नहीं समझ सकती थी। अर्थहीन दृष्टि से वह उन दोनों की ओर ताकती रह गई। बीच-बीच में यदि दो-एक बात का अर्थ समझ में आ जाता तो वह मुंह नीचा किये हुए ज़रा सा हँस देती। जिसके फेंके हुए फूलों का आघात सहन कर अरुण बग़ीचे से चला आया था वह यही ज्योति थी। विमला की वह ननद थी। कनक के विवाह के अवसर पर यतीन के साथ वह आई थी।

स्कूलों में पढ़नेवाली बालिकाओं में साधारण बालिकाओं की अपेक्षा कुछ ऐसी विशेषतायें आ जाती हैं कि उनकी ओर पहले दृष्टि आकर्षित होती है। बात यह है कि केवल घर-गृहस्थी के वातावरण में रह कर जीवन व्यतीत करने-वाली बालिकाओं की अपेक्षा हर एक विषय में उनका कुछ विशेष ढंग रहता है। अदब-क़ायदे में, नई से नई चाल के ब्लाउस के कट में, साड़ी पहनने और बाल बाँधने के ढंग में एक इस तरह की आडम्बरहीन स्वाभाविक किन्तु सादी चमक निकल आती है कि वह अपने आप दृष्टि को आकर्षित कर लेती है। तात्पर्य यह कि उनमें कुछ नूतनता होती है।

कई दिन बीत गये। फिर भी अरुण यह न जान सका कि वह नवयुवती कौन है? उसका परिचय पाने या न पाने से अरुण का कोई मतलब नहीं था, किन्तु वह जानने का प्रयत्न करने लगा। और कुछ नहीं तो जान जाने पर एक अकारण कौतूहल की निवृत्ति तो हो ही सकती थी।

अरुण के मामा जी सदा से ही प्रवास का समय व्यतीत करते आये थे। देहाती राजनीति के सम्बन्ध में उन्हें किसी प्रकार का भी ज्ञान नहीं था। लुटपन से ही वे बाहर रहते आये थे, इससे आचार-व्यवहार के सम्बन्ध में वे बिल-कुल नई रोशनी के आदमी बन बैठे थे। यद्यपि वे आज-कल मित्र-मंडली में वर्तमान युग की चाल-ढाल की निन्दा ही किया करते थे, तो भी किसी ओर ठिकाना न मिल सकने के कारण वे भी इस उदारदल के ही अन्तर्गत थे। उनके लड़के कहा करते थे कि पिता जी के समान मनुष्य और नहीं है।

लड़कों का विवाह करते समय उन्होंने अपनी रुचि-अरुचि की अपेक्षा उनकी रुचि-अरुचि का अधिक ध्यान रक्खा था। वे पहले से ही इस प्रकार की व्यवस्था कर दिया करते थे जिससे कि विवाह के विषय में लड़कों को माता-पिता को दोषी ठहराने का अवसर न मिल सके। लड़के भी अपने मन की बात पिता से कहने या उनका परामर्श लेने में संकोच का अनुभव नहीं करते थे।

एक दिन अरुण कार्य्यवश मामा के पास जा रहा था। उसके मामा उस समय अन्तःपुर में विश्राम कर रहे थे। अरुण ने सीढ़ी के पास खड़े होकर देखा कि उनके कमरे के द्वार के पास ही खड़ी हुई एक सुन्दरी किशोरी हँसी के उच्छ्वास के साथ मानो कुछ कह रही है।

अरुण वहाँ से हट आया। नीचे उसका सबसे छोटा ममेरा भाई सुधांशु खेल रहा था। उसी से उसने पूछा—"ऊपर मामा जी के कमरे में कौन है रे?"

सुधांशु एक साँस में दौड़ता हुआ गया और देखकर लौट आया। तब उसने कहा—'दीदी और ज्योति दीदी हैं।"

अरुण ने और कोई बात नहीं कही। वह चुपचाप टहलने चला गया। परन्तु उसके मन में जो भाव उदित हुआ था वह दो ही तीन दिनों में मूर्तिमान होकर प्रकट हो उठा।

मनरूपी दर्पण पर जो छाया पड़ी थी, कुछ समय तक चमचमाने के बाद उसका उड़ जाना कोई अस्वाभाविक बात नहीं थी। परन्तु ज्योति और अरुण के विषय में उस समय उस घर में जो चर्चा चल रही थी वह मानो आँच दे देकर उस छाया को और भी दृढ़तापूर्वक उस पर संलग्न करने पर तुली हुई थी।

इसी तरह वकील श्यामानन्द गांगुली की लक्ष्मी के समान रूपवती और सरस्वती के समान गुणवती कन्या की बात अरुण के मामा के हाथ के लिखे हुए पत्र से होकर उसके पिता जगत बाबू के हाथ तक पहुँची। परन्तु यह निश्चय कर लिया गया था कि वहाँ से जब तक उत्तर न आ जाय तब तक अरुण को इस बात की सूचना न दी जायगी, इसी लिए उसे इसका कुछ पता नहीं था।

अरुण के मामा को भी अपने बहनोई जगत बाबू की दृढ़ता का हाल मालूम था। उन्हें इस बात का भी पता था कि एक बार अस्वीकार कर देने पर वे फिर किसी प्रकार भी स्वीकृति न देंगे। इसी से उन्हें जगत बाबू को पत्र लिखने में भी बहुत संकल्प-विकल्प हुआ था। परन्तु अरुण के सम्बंध में श्यामानन्द बाबू को यह सूचित कर देने का आग्रह वे नहीं संवरण कर सके कि ज्योति का पाणि-ग्रहण करने के लिए अपेक्षित योग्यता अरुण में है। इसके सिवा अरुण की मातामही ने भी बहुत ज़ोर दिया। इससे माता की बात वे न टाल सके।"

सवेरे चाय पीने और जलपान कर लेने के बाद अरुण बाहर आने के लिए उठ रहा था। इतने में उसकी नानी ने एक पत्र लाकर उसे दिया, और बोली—"जगत बाबू की यह चिट्ठी है। इसे पढ़कर ज़रा देख लो।" कभी वे हम लोगों की कोई बात मानते हैं?

अरुण पत्र के सिरे पर अपने मामा का नाम देख कर कहने जा रहा था कि यह मुझे क्यों दे रही हैं, परन्तु कुछ न कह कर वह उसे खोल कर पढ़ने लगा। यह चिट्ठी उसके पिता ने उसके लिए नहीं लिखी थी, उसके मामा के ही नाम लिखी थी।

चिट्ठी में अरुण के पिता ने लिखा था—"आगामी मास के प्रथम सप्ताह में ही अरुण का विवाह होना निश्चित हो गया है। कन्या के पिता की आर्थिक अवस्था वैसी अच्छी नहीं है, इससे कोई विशेष आडम्बर न होगा। किन्तु इस बात को बदलने का भी कोई उपाय नहीं है। इसके सिवा मैं यह नहीं पसंद करता कि मेरा लड़का साहबों की तरह स्वयं देख-सुनकर विवाह करे। इस प्रकार से स्वयं देख-सुनकर विवाह करने का अर्थ तो यह है कि सन्तान को पिता के स्नेह और शुभकामना में विश्वास नहीं है। मुख्य बात यह कि दरिद्र परिवार में जो रत्न मैंने खोज निकाला है वह धनी घर की शिक्षाप्राप्त कन्या से किसी प्रकार उन्नीस न पड़ेगा।"

आगे चल कर उन्होंने यह भी लिख दिया था बाबू श्यामानन्द गांगुली को मैं जानता हूँ और यह भी जानता हूँ कि वे ब्राह्म विचार के आदमी हैं। इसी लिए अरुण के मामा को उन्होंने सावधान कर दिया; जिससे वे इस सम्बन्ध में अधिक कष्ट न दें और अरुण को शीघ्र ही भेज दें। इसके सिवा उसमें इसी तरह की और भी कुछ बातें लिखी थीं।

पत्र बहुत लम्बा था उसकी एक एक पंक्ति में अरुण को पिता के अटल अविचल मुख का आभास-सा मिल रहा था वह यह अनुभव कर रहा था कि पिता जी ने जब कभी कोई बात कही है, उसका एक अक्षर भी अन्यथा नहीं होने पाया। व्यर्थ की बात मुँह से निकालने की उनकी आदत है नहीं, वे जो जो कुछ कहेंगे वह करके रहेंगे। इससे उनका यह निश्चय भी अटल ही रहेगा, अन्यथा न हो सकेगा।

अरुण का मुख प्रभाहीन हो गया। उसने कहा—"यह चिट्ठी मुझे क्यों दे रही हो? मैं क्या करूँ?"

अरुण की नानी ने कहा—"करोगे क्या भैया? पढ़ कर ज़रा-सा देख लो।—हम लोगों ने तो लिख भी दिया था—और उन्होंने—"

अरुण ने तीखे स्वर से कहा—"मैंने तो लिखने या न लिखने के लिए कुछ कहा नहीं था। मैं इसे क्या जानूँ?"

चिट्ठी मोड़ कर अरुण ने लिफ़ाफ़े में भर दी और उसे नानी के पैर के पास फेंक कर जूता खटखटाते हुए वह कमरे से निकल गया।

अरुण के चले जाने पर शान्ति ने कहा—"क्या ये इससे रुष्ट हो गये नानी? जान तो ऐसा ही पड़ता है कि उन्हें बड़ा क्रोध आ गया है।"

दादी ने अप्रसन्न भाव से कहा—"परन्तु क्रुद्ध होने से होना ही क्या है? बाप का ऐसा स्वभाव तो है नहीं कि वह अपनी राय बदल दें। वे सदा से ही केवल एक दृष्टिकोण से विचार करनेवाले व्यक्ति हैं। एक बार नहीं कर दिया तो फिर किसे सामर्थ्य है कि उनसे हाँ करवा ले। परन्तु जगत के बाप ऐसे नहीं थे।"

शान्ति ने कहा—"वे यदि एक बार यहाँ आ जाते और ज्योति को देख लेते तो फिर अस्वीकार न कर सकते। उस अवस्था में वे किसी गँवई-गाँव की ऐरी-गैरी लड़की को बहू बनाने की इच्छा ही न करते। यदि ज्योति को वे देख लेते, है न दादी?"

"परन्तु वे आवेंगे भी नहीं, देखेंगे भी नहीं। और वे क्या समझते हैं यह वे ही जानते हैं। परन्तु किसी तरह लड़के के मन की उदासी दूर होती तो अच्छा होता।"

"नहीं, नहीं, वे उदास क्यों होने लगे? उनके उदास होने की तो कोई ऐसी बात है नहीं! अच्छी बहू मिल जाने पर ही वे प्रसन्न हो उठेंगे।"

"आहा, यही होता तब क्या था? तब तो सारा संकट ही दूर हो जाता।"

अरुण के मामा ने पुकारा—"मा!"

बड़ी शीघ्रता के साथ एक छोटी-सी कुर्सी रखकर शान्ति उठ कर खड़ी हो गई। बैठते ही उन्होंने कहा—"यह चिट्ठी यहाँ क्यों पड़ी है? कौन ले आया था?"

मा ने कहा—"यह? मैंने अरुण को दिखलाई थी कि यह तुम्हारे बाप की चिट्ठी है।"

"अरुण को? भला अरुण को यह चिट्ठी दिखलाने की क्या ज़रूरत थी? छिः! छिः!!"

मा बहुत ही संकुचित हो उठीं। उन्होंने कहा—"मैंने सोचा कि ज़रा उसे भी सूचित कर दूँ।"

"अच्छा नहीं किया है मा। यह बड़ा ख़राब काम किया है तुमने। मैंने जगत बाबू को चिट्ठी लिखी है, या इस विवाह के लिए किसी प्रकार का उद्योग कर रहा हूँ, यह सब तो उसे मालूम नहीं था। तुमने उसे क्यों बतलाया? तुमने क्या इतना भी नहीं समझा कि—ख़ैर।"

अरुण के मामा का मुख गम्भीर हो उठा। हाथ में चिट्ठी लिये हुए वे हिलाने लगे। काफ़ी क्षुब्ध होने पर भी उन्होंने मुँह से कोई बात नहीं निकाली। क्रोध, क्षोभ और दुख के समय चुप मार कर बैठे रहने की ही उनकी आदत थी।

पुत्र का चिन्ता से आच्छादित मुख देख कर मा मन ही मन दामाद की अविवेचना पर और भी क्रुद्ध हो उठीं।

[क्रमशः

चिट्ठी-पत्री

(१)

श्रीमान् सम्पादक जी

जून मास की सरस्वती में आपने लिखा है--"हिन्दी का दुर्भाग्य कि इस संसारप्रसिद्ध पुस्तक का हिन्दी में अभी तक भाषान्तर नहीं हुआ है।"

आश्चर्य है कि आपको इतना भी पता नहीं कि १९३८ के फ़रवरी मास में श्रीकृष्णचन्द्र बेरी-द्वारा इस पुस्तक का अनुवाद किया जाकर हिन्दी-प्रचारक-पुस्तकालय १६५।१ हरिसनरोड कलकत्ता से प्रकाशित हो चुका है और पुस्तक का मूल्य ३॥) है।

मैं महसूस करता हूँ कि उपर्युक्त प्रकाशक को हिन्दी-पुस्तकों के पाठक बहुत कम जानते हैं। उन्हें चाहिए था कि पुस्तक का ख़ूब विज्ञापन करते।

मैं आशा करता हूँ कि आप यह पत्र प्रकाशित कर पुस्तक-सम्बन्धी अज्ञानता दूर करने में सहायता करेंगे।

सदाजीवतलाल

(२)

मान्यवर सम्पादक जी

मई की सरस्वती के मेरे संस्मरण में दो बातों की भूलें मेरे लिखने में हुई हैं।

पहली बात यह कि मुक़दमे की बहस दिनशा दावर साहब ने प्रेसीडेंसी मैजिस्ट्रेट के यहाँ नहीं बल्कि हाईकोर्ट में की थी। वहाँ प्रेसीडेंसी मैजिस्ट्रेट स्लेटर साहब ने जमानत पर छोड़ने की अर्ज़ी जब नामंज़ूर कर दी तब हाईकोर्ट में अर्ज़ी पड़ी। वहाँ पार्सन्स साहब और जस्टिस महादेव गोविन्द रानडे न्यायासन पर विराजमान थे। उन्हीं लोगों ने ज़मानत नामंज़ूर कर दी थी, जब दिनशा दावर ने महात्मा तिलक के ज़मानत पर न छोड़ने से असामी की पैरवी में जो अड़चनें होंगी उनका वर्णन किया और यह सवाल खड़ा हुआ कि कितने की ज़मानत ली जाय।

दूसरी बात यह सुधारने की है कि ज़मानत का ख़याल होते ही दिनशा दावर से सलाह होने लगी तब सेठ लक्ष्मीदास खेमजी ने नहीं, सेठ द्वारकादास धरमजी ने करोड़ों की रक़म की बात अदालत से नहीं अपने बैरिस्टर दिनशा दावर साहब से बहुत धीरे से कही थी, जिसके बाद ही दावर साहब ने जज से अर्ज़ की कि जितने की ज़मानत माँगी जाय उतने की हम दे सकते हैं।

हाईकोर्ट में जब ज़मानत की अर्ज़ी पर कार्रवाई हो रही थी तभी की ये बातें हैं आज्ञानुसार अन्ना साहब और सेठ द्वारकादास धरमजी ने पच्चीस पच्चीस हज़ार के प्रामिसरी नोट दाख़िल कर दिये तब जस्टिस बदरुद्दीन तय्यब जी ने ज़मानत पर उन्हें छोड़ दिया था।

बात बयालीस-तैंतालीस वर्ष पहले की है। मेरी अवस्था अब ७३ वर्ष की है इसी कारण मेरी यह भूल क्षमा की दृष्टि से देखी जाय।

गोपालराम गहमरी

(३)

सम्पादक जी,

गत मास की सरस्वती में प्रकाशित 'जगबन्धुदत्त' लेख में चित्रों में यह गड़बड़ी हो गई है कि जिस चित्र के नीचे जगबन्धु छपा है वह चित्र उनके गुरुदेव सिद्धान्त सरस्वती का है, जिस चित्र के नीचे कृष्णानन्द ब्रह्मचारी छपा है वह चित्र जगबन्धु का है। आशा है, पाठक सुधार कर पढ़ेंगे।

ज्वालादत्त शर्मा

प्रिंस अली खाँ (श्रीयुत आगा खाँ के पुत्र) जो अपनी पत्नी के साथ हाल ही में भारत आये हैं।

जापान के प्रिन्स कैप्टन टाकाहिको अपनी नवविवाहिता दुलहन चिकाको टाडू के साथ।
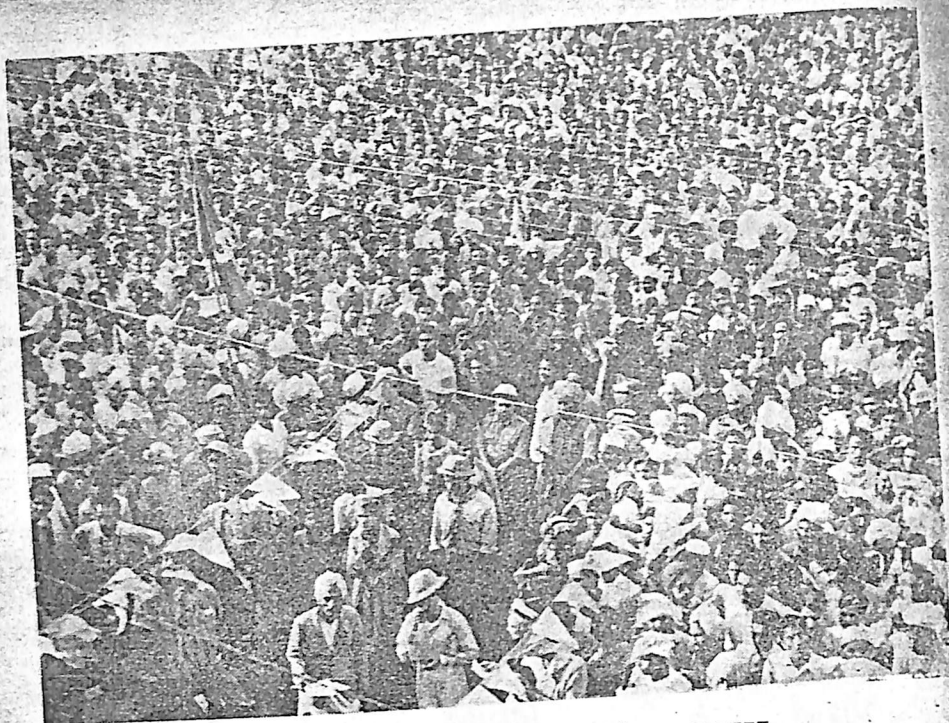
लाहौर में श्रीयुत सुभाषचन्द्र बोस के स्वागतार्थ एकत्र जन-समूह

रेडीकल यूथ कान्फ्रेंस के अवसर पर लाहौर में श्रीयुत बोस और श्री विश्वंभरदयाल त्रिपाठी का जुलूस

卐

प्रख्यात भारतीय पत्रकार सन्त निहालसिंह

सन्त जी भारत के अकेले पत्रकार हैं जिनके लेख संसार के सब देशों के पत्रों ने आदर से छापे हैं। आपने १३ वर्ष की आयु से अँगरेज़ी में लिखना आरंभ किया था और आज तक, जब कि आपकी ५६ वीं वर्षगांठ मनाई गई है, आप उसी लग्न के साथ लिख रहे हैं। आपका पत्रकार-जीवन ४३ वर्ष का है। संसार का कोई प्रसिद्ध पत्रकार इतने लम्बे समय का रेकर्ड नहीं रखता।

कुमार सर्वेन्द्रविक्रमसिंह

सौभाग्यवती कमलादेवी

हिन्दी के प्रेमी ठाकुर कुलदीपनारायणसिंह डिप्टी कलेक्टर फ़ैज़ाबाद की आयुष्मती कन्या श्री कमलादेवी का विवाह ठाकुर वीरेन्द्रविक्रमसिंह डिप्टी कलेक्टर हरदोई के पुत्र श्री सर्वेन्द्रविक्रमसिंह बी० ए० के साथ गत ११ जून को सम्पन्न हुआ।

जर्मनी की अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त अभिनेत्री, ग्रेविल जिसने नात्सी-प्रचार में बहुत नाम पाया है।

जाग्रत नारियाँ

भारतीय नारी की आर्थिक परतन्त्रता

लेखिका, श्रीमती सुमित्राकुमारी सिनहा

लेखिका

यह क्रान्ति का युग है। प्रत्येक दिशा से जागृति की लहर उठी है; प्रत्येक जाति तथा देश अपनी सभ्यता और संस्कृति में नये अंगों की सृष्टि कर रहा है और रात-दिन उन्नति के पथ पर दौड़ रहा है। हमारे देश की स्वतन्त्रता का आन्दोलन भी कितना प्रबल हो पड़ा है। करोड़ों शोषित और पद-दलित इस स्वाधीनता की लड़ाई में अपने प्राणों को हथेली पर लिये हुए कूद पड़ने के लिए संगठित हो रहे हैं, और उनकी विद्रोह-भावनायें आज क्रियात्मक रूप से जीवित होकर उठ बैठी हैं। एक भीषण संघर्ष---एक भयंकर क्रान्ति की पुकार भारत के नये इतिहास के निर्माण के लिए देश के कोने-कोने से ध्वनित हो रही है। कहना न होगा कि हमारी कांग्रेस-सरकार ने भी कुछ उपयोगी कार्य किये ही हैं। जैसे राष्ट्रीय संस्थाओं पर से प्रतिबन्ध हटे, राजबन्दी मुक्त हुए, हक़ आराज़ी बिल पास हुआ, ग्राम-सुधार की योजना कार्यान्वित हुई, मिल-मजदूरों को सुविधायें मिलीं, लेबर आफ़िसर और कमिश्नर नियुक्त हुए, लेबर वेलफ़ेयर सेन्टर बनाये गये, शिक्षा-प्रचार की स्कीम बनी, नशाबन्दी का काम शुरु हुआ, तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड व म्यूनिसिपल बोर्ड की व्यवस्था में भी सुधार होने जा रहे हैं। परन्तु आज हमारे देश की करोड़ों घरों की चहारदीवारी में बन्द, पुरुषों की आश्रिता, अशिक्षिता, अत्याचार-पीड़िता नारियों के लिए–जिन्होंने आज़ादी की लड़ाई में पुरुषों के साथ कन्धे-से-कन्धा भिड़ाकर निर्भीकतापूर्वक काम किया, जेलों में घुस कर अपूर्व त्याग और बलिदान का परिचय

दियां और जिनको इस बात का गौरव है कि उनमें से एक ने भी सैकड़ों मुसीबतें झेलते हुए माफ़ी के लिए हाथ नहीं बढ़ाया, उसी स्त्री-समाज के लिए—कांग्रेस ने अपने हाथ में शासन की बागडोर लेते हुए कोई ऐसी स्कीम नहीं तैयार की कि जिससे कि वह आर्थिक तरीक़े से स्वतन्त्र होकर आगे आनेवाली लड़ाई में ज्यादा फ़ायदेमन्द साबित हो सके। कुछ स्त्रियों को भले ही इस बात से सन्तोष हो कि श्रीमती माननीया विजयलक्ष्मी पंडित को हमारे सूबे में एक मिनिस्टर की जगह दे देने से स्त्री-समाज को प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ है, लेकिन यह कोई बड़ी बात नहीं। और सबसे भारी लज्जा और उपहास की बात तो यह है कि पत्रों में यह दिखलाई देता है कि उनके डिपार्टमेंट की आलोचना इसलिए नहीं की जाती, या कम की जाती है, कि उसकी हेड एक महिला है।

आज मैं जानना चाहती हूँ कि समाज के इस आर्थिक बन्धन में जकड़ी हुई कमज़ोर नारी के लिए क्या हो रहा है? समाज के इस अनिवार्य अंग को, दूसरे अंग की दासता के पाश से छुड़ाने की कौन सी व्यवस्था की गई है? आज बीसवीं सदी में—स्वतन्त्र-विकास के नये युग में—जब कि अन्य देशों की स्त्रियों के सहयोग से गार्हस्थ्य और सामाजिक जीवन सुखमय और उन्नत हो रहा है—हमारे अभागे देश में स्त्रियों की स्थिति क्या है? घर के पालतू पशु के सिवा उनके स्वतन्त्र व्यक्तित्व, समानता और अधिकार का भी कोई प्रश्न है? आज जब देश की स्थिति इतनी बदल गई है, प्रत्येक वर्ग अपने संगठन को मज़बूत करने में लगा है, प्रत्येक श्रेणी चैतन्य होकर अपने अधिकारों की माँग पेश कर रही है—हमारे स्त्रीवर्ग को ही समाज ने कितने पीछे ढकेल रक्खा है। उसका कोई स्थान नहीं, कोई रास्ता नहीं, कोई हिस्सा नहीं। युग-युग से अपनी स्थिति से असन्तुष्ट और विरक्त हो अपनी स्वतन्त्र भावना को वे प्रकट भी नहीं कर सकतीं; पुरुषों के इस अन्याय के विरुद्ध बग़ावत का झंडा भी वे खड़ा नहीं कर सकतीं! ऐसा करने से पुरुषवर्ग उसे फाड़ खाने को जो तैयार बैठा है। ऐसे दूषित वातावरण में रहकर अपने को विकसित न होने देने की भावना का शिकार होकर अपने मस्तिष्क को वे निष्क्रिय कर बैठी हैं, पुरुषों के आश्रय में बन्दी होकर, उनके प्रत्येक संकेत पर अपने को निछावर कर देने में ही वे अपनी पूर्णता समझ बैठी हैं। सृष्टि की संचालिका होकर अपने बन्धनों को प्रेम से गले लगाये हुए पग-पग पर पुरुषों का मुंह ताकने को वे मजबूर हैं। कोई समाज या धर्म उनका नहीं, वे सब पुरुषों के हैं। उनको अपने अधिकार के लिए सोचने और बोलने की भी स्वतन्त्रता नहीं है। उनके रास्ते में धर्मों के कितने ऊँचे-ऊँचे पहाड़ हैं, रूढ़ि शृंखलाओं की गहरी-गहरी खाइयाँ हैं।

आज दिन सोवियट रूस की जाग्रत् नारियों का सुन्दर उदाहरण हमारे सामने पेश है। और वह उनकी राजनैतिक ही नहीं, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक क्रान्ति का फल है! भारतीय नारी के लिए कौन-सा मार्ग है? यहाँ तो उसके क़दम बढ़ाने में सबसे बड़ा बाधक पुरुषवर्ग है—जिसकी मातहती में उसे अपंग होकर, उत्पीड़न की यन्त्रणा सहते रहना है। पुरुष उनकी संस्कृति और धर्म का हवाला देकर कहते हैं कि उनका स्थान घर है, और उपार्जन के सभी साधनों से वंचित कर जब चाहे अपमान और घृणा की एक ठोकर से घर के दायरे से अलग भी कर दे सकते हैं। आज इन्हीं भ्रमात्मक भावनाओं, अन्ध-विश्वास और कोरे आदर्शवाद के फेर में पड़कर वे कहीं की नहीं रही हैं। वे आर्थिक स्वतन्त्रता को खोकर अपनी वास्तविकता का ज्ञान भी डुबो चुकी हैं। लेकिन कब तक इन पशुवत् जीवन बितानेवाली नारियों के हाहाकार से समाज की इस व्यवस्था पर आग न बरसेगी? कब तक वे गृहदेवी के मिथ्या आडम्बर को फोड़कर न निकलेंगी? हमें उत्सुकता के साथ यही देखना है।

आज मनुष्यता का तक़ाज़ा है कि हम अपने को पूर्ण स्वाधीन करें। इस गुलामी प्रथा का अन्त करें। नारी का स्थान पुरुष से ऊँचा है; वह पुरुषों की जननी है और उसका कर्तव्य और दायित्व पुरुषों से भारी है। अपनी छाती का रक्त चुसा कर वह उनका शरीर विकसित करती है। किन्तु कितनी विडम्बना है कि वही पुरुष-जाति नारी को बलात् अपने अधीन बाँध कर उसकी रक्षा का ठेकेदार बनती है, उसे ईश्वर और धर्म का भय दिखाकर! जब सभी मनुष्य समान बनाये गये हैं, तब क्यों समाज का एक अंग दूसरे अंग-द्वारा शासित हो और जब वह शासन-व्यवस्था हमारे लिए नुक़सान पहुँचानेवाली हो, हमारी प्रगति को धक्का पहुँचानेवाली हो, तो क्यों न उसमे आमूल परिवर्तन हो? क्यों न वह व्यवस्था मिटा दी जाय? यद्यपि हमें शुरू में इसमें लाभ की अपेक्षा हानि की अधिक सम्भावना है, बड़ी-बड़ी मुसीबतों का सामना करना पड़ेगा, लेकिन जब एक अंग दूसरे अंग को निर्बल बना कर अपने अधिकारों का दुरुपयोग करने लगता है तब उसका यह कर्तव्य हो जाता है कि ऐसी शासन-व्यवस्था को जड़ मूल से उखाड़ फेंके। क्योंकि स्वार्थी अपना स्वार्थ नहीं छोड़ सकता; भूखे की भूख नहीं मिटती।
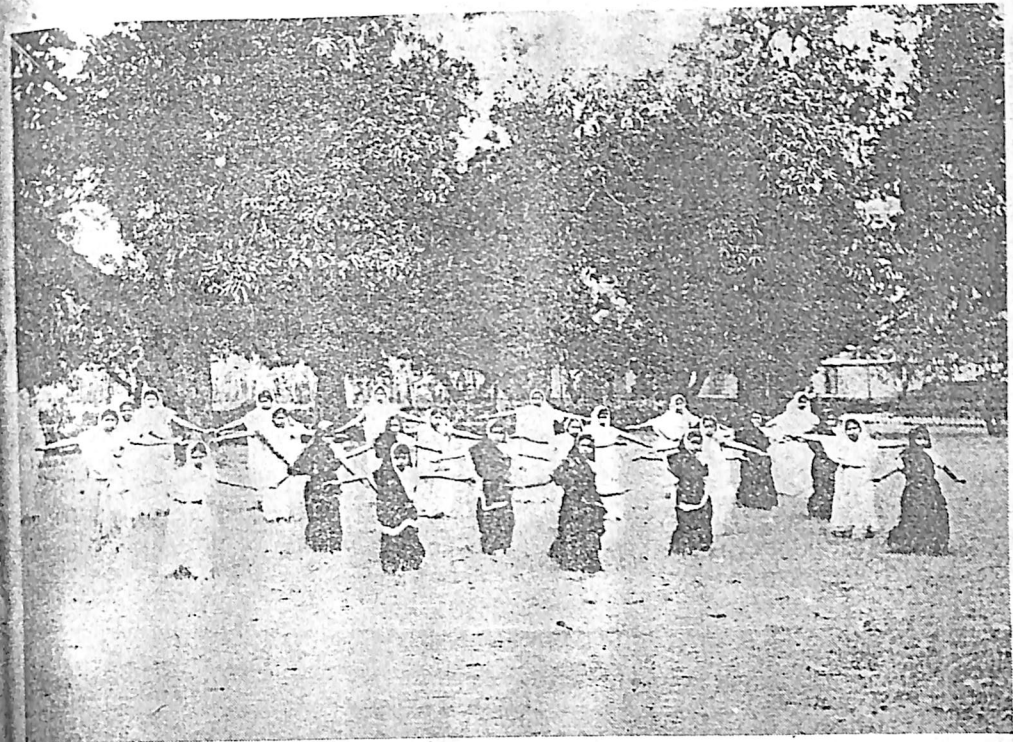
आज हमें ज़रूरत है कि जो हमें फ़ायदेमन्द नहीं उसे हम मिटा दें। हमारी परिपूर्ण मानवता में यह पराश्रितता कितनी बाधक है! यह वैषम्य कितना घातक है! हमारे समाज की सारी दुर्व्यवस्था, सारे अनियम इसी स्वार्थी पुरुषवर्ग की शासन-प्रणाली के कारण हैं। पुरुषों ने स्वयं आगे बढ़ कर उत्पादन के साधनों को अपना लिया और समाज में अपना प्रभुत्व स्थापित कर स्त्रियों को पीछे ढकेल दासत्व की जंज़ीरों में जकड़ दिया है। इसी आर्थिक दुर्व्यवस्था पर ही आज सारे आन्दोलन और संघर्ष चल रहे हैं। इसी के अन्तर्गत समाज की सारी बुराइयाँ निहित हैं। रूस की जाग्रत् नारियों की तरह भारतीय नारियाँ भी आग में कूद सकती हैं, पानी में दौड़ सकती हैं, खेतों में चल सकती हैं, सारे दिन कड़े-से-कड़ा शारीरिक और मानसिक परिश्रम कर सकती हैं और करती हैं। उनके लिए कुछ भी असाध्य नहीं। आवश्यकता है केवल उनकी बिखरी हुई शक्ति को संगठित करने की और तभी वे समाज में अपना अस्तित्व क़ायम रख सकती हैं।

* * *

श्री जैनबाला विश्राम आरा की छात्राओं की व्यायाम

[कुमारी मलिना दस्तेदार बी० ए०। आपको कलकत्ता-विश्व-विद्यालय ने 'बंकिमचन्द्र पदक' प्रदान किया है।]

पर इसके लिए इस समय हमारे देश की 'नारी' क्या कर सकती है; इसका समझ लेना भी आवश्यक है। मैं ऊपर कह चुकी हूँ कि स्वामित्व और दासत्व की भावना का आधार सामाजिक न होकर आर्थिक है। पुरुष कमाता है अतः स्वामी है; स्त्री कमाती नहीं अतः दासी है। अतः इस मानसिक गुलामी से मुक्ति पाने के लिए आर्थिक स्वाधीनता आवश्यक होगी। भारत की नारी को समझ लेना होगा कि केवल चक्की चूल्हे की संचालिका और 'बच्चे पैदा करने की मशीन' बनने से उसकी पराधीनता दूर न होगी। यदि पुरुष उससे यह करवाना आवश्यक समझे तो उसको सम्पत्ति में भी समता के अधिकार दे। अन्यथा भारतीय नारी को चाहिए कि वह जापान और रूस का आदर्श सामने रख कर सभी उद्योग-धंधों में पुरुषों से होड़ करे और इस प्रकार स्वयमर्जित सम्पत्ति पर गर्व कर सकने का संयोग प्राप्त करे। हमारी स्त्रियाँ तो खेतों में भी परिश्रम करके पुरुषों की होड़ कर लेती हैं फिर मशीन के कामों में तो पुरुषों से भी अधिक सफलता दिखला सकेंगी। उन्हें चाहि[ए] कि वे छोटे उद्योग-धंधों में दिलचस्पी लें और विशेष[त:] बिजली और मशीन के कामों को अपने हाथ में करने [का] प्रयत्न करें। यदि समाज उनके कार्य में रुकावटें डाले [तो] उसकी उपेक्षा तक करने को वे तैयार रहें। व्यवस्थापि[का] सभाओं पर ज़ोर डाल कर ऐसे नियम बनवायें कि उ[न] विभागों में, जहाँ मशीनों की सहायता से काम होता [है] स्त्री-कर्मचारियों को तरजीह दी जाय तथा उनके प्रोत्साह[न] के लिए उन्हें हर तरह की सुविधायें दी जायँ। [ऐसे] नियम बन जाने से स्त्रियों के लिए धनोपार्जन का मा[र्ग]

[डाक्टर मिस महमूद गुलाम मुहम्मद। आप एडि[न]बरा से एफ़० आर० सी० एस० की डिग्री पानेवा[ली] सर्वप्रथम भारतीय मुसलिम महिला हैं।]

खुल जायगा और वे सुख से कमा सकेंगी। आर्थि[क] प्रश्न हल हो जाने पर उन्हें समाज में पुरुषों के बरा[बर] अधिकार प्राप्त होगा और वे सदियों की गुलामी से मुक्ति पा जायँगी।

वेतन-कर

लेखक, श्रीयुत अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

युक्त-प्रान्त की दोनों धारा-सभाओं ने मुलाज़िमत टैक्स एक्ट (वेतन-कर एक्ट) पास कर दिया है। इस कर के विरोध में राजनीति से संन्यास लेकर चुप बैठ जानेवाले सर तेजबहादुर सप्रू तक ने आवाज़ उठाई है और फ़ेडरल-कोर्ट में इसकी वैधता परखने की चुनौती दी गई है।

यह कर सेना को छोड़कर सब पर लागू होगा। गवर्नर, नौकरियाँ, मन्त्री, सरकारी व प्राइवेट कर्मचारी इसके शिकार होंगे। डाइरेक्टर, मैनेजिंग एजेण्ट, ख़रीदने और बेचनेवाले एजेंट भी इससे मुक्त न रहेंगे। बङ्गाल के समान सब पर एक समान यह कर नहीं लगाया गया है। बल्कि उपार्जित वेतन पर क्रमिक दर से ४ से २० प्रतिशत तक लगाया गया है। २१० रुपया मासिक से कम पानेवाले इससे मुक्त रहेंगे। इससे सरकार को ३० लाख रुपया वार्षिक की आमदनी होगी।

नीचे की तालिका में कर की दर दी गई है। वेतन और कर मासिक आधार पर दिये गये हैं—

कम रु०	अधिक रु०	कर रु०
—	२१०	—
२१०	२९०	७-८
२९०	३७५	१२-८
३७५	४६०	१८-१२
४६०	६२५	२७
६२५	८३५	४०
८३५	१,०४०	५४
१,०४०	१,२५०	७०
१,२५०	१,४६०	९०
१,४६०	१,६६६	११७
१,६६६	१,८७५	१४५
१,८७५	२,०८५	१७५
२,०८५	२,५००	२००
२,५००	२,९१५	२५०
२,९१५	३,३३३	३००
३,३३३	३,७५०	३९५
३,७५०	४,१७५	४२५
४,१७५	५,०००	५००
५,०००	५,९१७	५८३
५,९१७	७,०९१	६८३
७,०९१	८,३३३	७९१
८,३३३	१०,४२०	९१७
१०,४२०	१२,५००	१,०८३
१२,५००	१४,५८३	१,३३३
१४,५८३	१६,६६६	१,६६६
१६,६६६	२०,९१६	२,०८५
२०,९१६	२५,०००	२,५००
२५,०००	—	२,६६६

इस कर के लगाने का उद्देश्य शराबबन्दी से हुए नुक़सान को पूरा करना और ग्रामोद्धार-कार्य के लिए धन प्राप्त करना है। मगर यह सरकार नहीं कहती। सरकार का कहना है कि गवर्नमेंट के लिए निम्न कर्मचारियों का वेतन बढ़ाना अनिवार्य है, इसलिए यह टैक्स लगाया गया है। इस कर से होनेवाली वार्षिक आमदनी की रक़म को देखते हुए सरकार के कथन पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं दीखता।

क्या वैध है?

क़ानूनन, नैतिक और आर्थिक दृष्टि से संयुक्त-प्रान्त की सरकार के इस कर का विरोध किया गया है। कुछ लोगों का कहना है कि यह इनकम-टैक्स (आय-कर) है, अतः प्रान्तीय धारा-सभा को यह टैक्स लगाने का हक़ नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि चोर दरवाज़े से आई० सी० एस० के लोगों के वेतन में कटौती की गई है। दूसरे लोगों का कहना है कि इससे मध्यम श्रेणी का नाश हो जायगा, व्यापार और व्यवसाय को क्षति पहुँचेगी और पूँजी प्रान्त को छोड़ कर चली जायगी।

१९३५ के इण्डिया एक्ट में फ़ेडरल, प्रान्तीय और फ़ेडरल-प्रान्तीय (उभय) के विषयों और कर की सूची दी हुई है। केन्द्रीय धारा-सभा को इसके अनुसार खेती की आमदनी को छोड़कर अन्य आमदनियों पर कर लगाने का अधिकार है और प्रान्तीय धारा-सभा को न केवल कृषि की आमदनी पर ही, बल्कि प्रोफ़ेशन, व्यापार, पेशा और एम्प्लायमेंट (मुलाज़िमत) पर कर लगाने का अधिकार है।

इससे प्रकट है कि गवर्नमेंट मुलाज़िमत पर टैक्स लगा सकती है; मुलाज़िमत से होनेवाली आमदनी पर कर लगा सकती है। मगर वेतन-कर आमदनी की मात्रा के अनुसार क्रमिक दर से लगाया गया है। प्रश्न यह है कि क्या यह इनकम-टैक्स नहीं है। प्रसिद्ध वकीलों में इस विषय में मतभेद है। एक वर्ग का कहना है कि आमदनी की विभिन्नता के आधार पर विभिन्न कर की मात्रा लगाना इनकम-टैक्स में आता है।

सरकार का विचार

सरकार का कहना है कि यदि प्रान्तीय धारा-सभा को यह कर लगाने का अधिकार है तो यह शक्ति भी उसमें पूर्णरूप से है और वह एक वेतन से दूसरे वेतन में भेद कर सकती है। कहा जाता है कि यदि गवर्नमेंट एक प्रकार के एम्प्लायमेंट (मुलाज़िमत) और दूसरे में भेद कर सकती है और यदि वह एम्प्लायमेंट में क्रम बाँध सकती है, तो वेतन के आधार पर वर्गीकरण भी कर सकती है।

संयुक्त-प्रान्त की सरकार के एडवोकेट जनरल ने एक अमरीकन जज का उद्धरण देते हुए इसके समर्थन में कहा था—यह डालरों पर कर नहीं है, बल्कि डालरों के मालिकों पर है। यह एक व्यक्ति की कुल आमदनी के एक रुपये पर इतनी पाई कर नहीं है, बल्कि वह नौकरी में है, इसलिए उस पर इतने रुपये टैक्स है।

क्रमिक दर पर कर लगाने का आर्थिक और नैतिक दृष्टि से समर्थन किया जाता है। कहा जाता है कि ५,००० रुपया पानेवाले और ५०० रुपया पानेवाले से एक समान कर लेना पिछले के साथ अन्याय करना है।

नौकरियों के वेतन में इस तरह कटौती की गई है, इसका उत्तर यह दिया जाता है कि आख़िरकार सब कर आमदनी में कटौती ही है। यदि आयकर वेतन में कटौती नहीं है तो वेतन-कर भी नहीं है।

इंडियन सिविल सर्विस

तालिका को देखने से मालूम होता है कि इंडियन सिविल सर्विसवालों को अपने वेतन का १० प्रतिशत देना होगा। वर्तमान इंडिया ऐक्ट ने इनको सर्वथा सुरक्षित रक्खा है। इनका विशेष रूप से ख़याल रक्खा गया है और इनसे विशेष बर्ताव किया गया है। अतः इसको ध्यान में रखकर संयुक्त-प्रान्त की असेम्बली में एक वक्ता ने कहा था—सर्विसेज़ के साथ वचनभंग किया गया है।

प्रीमियर ने इसका जवाब देते हुए कहा था—गवर्नमेंट के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए सर्विसेज़ को उभाड़ा जा रहा है। प्रीमियर ने बताया था कि कुल तीस लाख की आमदनी में से भारत-मन्त्री की सर्विस के यूरोपियन केवल तीन-चार लाख देंगे।

संयुक्त-प्रान्त की सरकार की इस समय ८० प्रतिशत आमदनी दीनातिदीन लोगों से होती है और इसका लाभ उसको देनेवालों को छोड़कर सबको मिलता है। प्रीमियर ने कहा कि गवर्नमेंट इस प्रक्रिया को बदलना चाहती है। फलतः यह कर लगाया जा रहा है।

पंडित जगमोहन अवस्थी के नाम कुछ पत्र

(१) दौलतपुर (रायबरेली)

शुभाशिषः सन्तु, २९-८-३२

२६ अगस्त का पोस्टकार्ड मिला। यह जानकर ख़ुशी हुई कि आप स्वाध्याय कर रहे हैं। ईश्वर करे आपकी मनोरथसिद्धि हो। पुस्तकावलोकन से ज्ञानवृद्धि और बहुश्रुतता अवश्य ही होती है।

मेरा शरीर वैसे ही लस्टम-पस्टम किसी तरह चला जाता है।

शुभाकांक्षी
म० प्र० द्विवेदी

(२) दौलतपुर (रायबरेली)

नमोनमः, ११-११-३२

आठ-दस रोज़ बाद, एक ज़रूरी काम से, मुझे लखनऊ जाना है। विचार है, वहीं से एक रोज़ के लिए रायबरेली चला जाऊँ और आप सब लोगों से मिलूँ। कृपा करके लिखिए पं० गुरुदयाल जी व पं० शिवगोविन्द जी इस महीने घर ही पर रहेंगे या नहीं। मैंने उनको लिखा था; पर शायद मेरा कार्ड उन्हें नहीं मिला। उनके यहाँ ठहरने का ठीक ठीक प्रबन्ध न हो तो मैं बेलीगंज में ठहर सकता हूँ। वहाँ मेरे मौज़े के पं० परमेश्वरीदयाल मिश्र की कपड़े की दूकान है।

भवदीय, म० प्र० द्विवेदी

(३) दौलतपुर (रायबरेली)

आशीष, १९-११-३२

पो० का० मिला। दुर्भाग्य मेरा पीछा नहीं छोड़ता। जान पड़ता है मैं अब बाहर जाने लायक़ नहीं। जाने की तैयारी करते ही पेचिश हो गई। कोई एक हफ़्ते तंग रहा। बहुत कमज़ोर हो गया। आज कुछ अच्छा हूँ। अब कुछ दिन घर न छोड़ सकूँगा। यहीं पड़ा रहूँगा।

शुभैषी, म० प्र० द्विवेदी

(४) दौलतपुर

नमोनमः, १८-१२-३२

पो० का० मिला। मैं २० नवंबर को लखनऊ जानेवाला था। मोटर मँगाई थी। पर तैयारी करते ही बीमार पड़ गया। नहीं जा सका। जाता तो वहाँ से रायबरेली ज़रूर आता। देखूँ अब कब आप लोगों से मिलने का मौक़ा आता है। ग्वालियर तो बहुत दूर है, मैं तो कानपुर तक भी जाने की हिम्मत नहीं कर सकता। कमज़ोर बहुत हूँ।

शुभैषी, म० प्र० द्विवेदी

(५)

दौलतपुर (रायबरेली)

नमस्कार, ११-२-३४

कार्ड मिला। आप यथेष्ट उन्नति करते जा रहे हैं यह जानकर मुझे बड़ी ख़ुशी होती है।

अपनी कविताओं का संग्रह आप गंगापुस्तकमाला-कार्य्यालय, लखनऊ, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद और भारती-भण्डार काशी वग़ैरह को भेज कर उसका प्रकाशन कराइए। पूँछिए, वे लोग कोई लेने को राज़ी हैं या नहीं।

बोर्ड के सेक्रेटरी साहब तक पहुँचा सकते हों तो मेरी यह प्रार्थना पहुँचा दीजिए कि मवेशीख़ाने की इमारत भी बनवा दें। कच्ची तो बनती ही है। स्कूल तो बन ही रहा है। लगे हाथ वह भी बन जाय।

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी

(६) दौलतपुर

शुभाशिषः सन्तु २२-८-३४

२० अगस्त का पो० का० मिला। ख़ुशी हुई। मुझे लिखने-पढ़ने से कष्ट होता है। उससे बचना चाहता हूँ। इसी से बहुत कम पत्र लिखता हूँ। आप ख़ूब स्वाध्याय किया कीजिए और कविता-निर्म्माण में संलग्न रहिए—

श्रुतेन यत्नेन च वागुपासिता
ध्रुवं करोत्येव कमप्यनुग्रहम्।

शुभैषी, म० प्र० द्विवेदी

(७)

दौलतपुर, रायबरेली

शुभाशिषः सन्तु, २४-२-३५

२२ फ़रवरी का पोस्टकार्ड मिला। आपकी कृपा और सहानुभूति के लिए धन्यवाद।

मेरी उन्निद्रता कुछ कम हो गई थी। अब फिर जैसी की तैसी है। कमज़ोरी बढ़ रही है। कभी कभी गश भी आ जाता है। उधर कमलाकिशोर और उनकी पत्नी दोनों आदमी बीमार हो गये। दवा के लिए वे दोनों ही कानपुर गये हुए हैं। मेरे लिए ईश्वर से प्रार्थना कर दीजिए कि अब बहुत दिनों तक कष्ट न भोगना पड़े। शुभैषी

म० प्र० द्विवेदी

(८) दौलतपुर, रायबरेली

१-१०-३८

शुभाशिषः सन्तु,

बात का बतंगड़ बनाना ख़ूब जानते हैं आप। शिमले का हाल पढ़ कर ही मैंने अपने विचार दो शब्दों में प्रकट किये थे। दिये हुए विषयों या समस्याओं पर जो तत्काल धारा-प्रवाह कविता सुनावे वह यदि महाकवि नहीं तो क्या बरसों क़लम घिस घिस कर पोथे लिखनेवाले ही महाकवि हैं? भगवान् आपकी यशोवृद्धि दिन पर दिन करता रहे।

शुभैषी, म० प्र० द्विवेदी

हैदराबाद-सम्बन्धी कुछ रोचक बातें

लेखक, श्रीयुत महेशप्रसाद मौलवी, आलिम फ़ाज़िल

इस समय हैदराबाद-राज्य में आर्य-समाज और हिन्दू-सभा की ओर से इसलिए सत्याग्रह छिड़ा हुआ है कि उक्त राज्य में उन्हें अपने धर्म-कर्म करने की पूरी स्वतन्त्रता दी जाय। ऐसी दशा में यह जानना आवश्यक है कि हैदराबाद-राज्य कैसे महत्त्व का राज्य है। लेखक महोदय ने अपने लेख में यही दिखलाने का प्रयत्न किया है।

ज़रत मुहम्मद साहब के ससुर हज़रत अबूबकर साहब थे। हज़रत साहब की मृत्यु के पश्चात् यही प्रथम ख़लीफ़ा हुए थे। हैदराबाद-राज्य के संस्थापक नवाब मीर क़मरुद्दीन अली ख़ाँ इन्हीं के वंश में उत्पन्न हुए थे। वे मुग़ल-सम्राट् मुहम्मदशाह के एक प्रधान सरदार थे और निज़ामुलमुल्क 'आसफ़जाह' के नाम से विख्यात थे। सन् १७१२ में वे मुग़ल बादशाह की ओर से 'दक्खिन' के सूबेदार नियुक्त हुए थे, किन्तु १७२४ या १७२५ ईसवी में वे दक्खिन के सूबों को अपने अधिकार में कर स्वतंत्र हो गये। तब से हैदराबाद एक स्वतंत्र राज्य बना हुआ है।

हैदराबाद भारत के देशी राज्यों में प्रथम श्रेणी का एक महत्त्वपूर्ण राज्य है। इसका परिचय नीचे दिये हुए आँकड़ों से भली भाँति हो सकेगा—

प्रान्त या राज्य	क्षेत्रफल वर्गमील	जन-संख्या (१९३१)	वार्षिक माल-गुज़ारी रुपये में (लगभग)
हैदराबाद	८२,६९८	१,४४,३६,१४८	८,५४,७९,०००
कश्मीर व जम्मू		३६,४६,२४३	२,७०,००,०००
बड़ौदा	९,१६४	२४,४३,००७	२,६०,०९,०००
मैसूर		६५,५७,८७१	३,५१,६१,८००
सं० प्र०	१,०६,२४८	४,८४,०८,७६३	११,४९,९९,०००
म० प्र० व बरार	९९,९२०	१,५५,०७,७२३	४,७३,१७,०००
पंजाब	९९,२००	३,६६,८०,८५२	१०,६६,३८,०००
बम्बई	७७,२२१	१,७९,१६,३१८	१५,१२,३२,०००
जयपुर	१५,५७९	२६,३१,७७५	१,२०,००,०००
ट्रावनकोर	७,६२५	५०,९५,९७३	२,४१,३६,०००
राजकोट	२८३	७५,५४०	१०,७६,०००

देशी रियासतों में कश्मीर व जम्मू का क्षेत्रफल ज़्यादा है, पर राजस्व की दृष्टि से हैदराबाद का नम्बर सर्व-प्रथम है।

राज्य के दो प्रधान भाग हैं। पश्चिमी भाग बम्बई प्रान्त से विशेष रूप से मिला हुआ है। इसमें प्रायः मरहठे रहते हैं। यह भाग 'मरहठा-वाड़ी' कहलाता है। दूसरा पूर्वीय भाग विशेष रूप से मदरास से मिला-जुला है। इसके मुख्य निवासी तैलङ्ग हैं, इस कारण यह भाग 'तेलङ्गाना' कहलाता है। इसी भाग में स्टेट का प्रधान नगर हैदराबाद है, जो भारत के प्रसिद्ध नगरों में है। इसका नाम पहले 'भाग्यनगर' था।

एलौरा व अजन्ता के जगद्विख्यात गुफ़ा-मन्दिर इसी राज्य में ही हैं। तुङ्गभद्रा नदी के किनारे आलमपुर नामक स्थान है, जहाँ श्रीरामचन्द्र जी अपने वनवास के समय में ठहरे थे। हैदराबाद नगर से १३५ मील की दूरी पर गोदावरी नदी के बायें तट पर नाँदेड़ नामक स्थान है। श्री गुरु गोविन्दसिंह जी का शरीरान्त यहीं हुआ था। यहीं उनकी समाधि है।

हैदराबाद के वर्तमान उत्तराधिकारी का नाम उपाधियों सहित इस प्रकार है—लेफ़्टिनेन्ट जनरल हिज़ एक्सालटेड हाईनेस आसफ़जाह मुज़फ़्फ़रुलमुल्क वल् ममालिक निज़ामुल्मुल्क निज़ामुद्दौला नवाब सर मीर उस्मान अली ख़ाँ बहादुर फ़तेहजंग फ़ेथफ़ुल एलाई आफ़ दी ब्रिटिश गवर्नमेंट जी० सी० एस० आई०, जी० बी० ई० निज़ाम आफ़ हैदराबाद। इनका जन्म ६ अप्रैल सन् १८८६ को हुआ था। ये २९ अगस्त सन् १९११ को गद्दी पर बैठे थे। निज़ाम साहब कई बार योरप हो आये हैं। इनके सबसे बड़े पुत्र का विवाह तुर्की के भूतपूर्व ख़लीफ़ा जनाब अब्दुलमजीद साहब की पुत्री से और उनसे छोटे का विवाह ख़लीफ़ा साहब की भतीजी से

हैदराबाद के निज़ाम साहब

फ्रांस के नाइस स्थान में १२ नवम्बर सन् १९३१ को हुआ था।

अनुवाद व सम्पादन-विभाग

हैदराबाद के वर्तमान निज़ाम ने उस्मानिया-विश्व-विद्यालय की स्थापना की है। यहाँ उर्दू के द्वारा शिक्षा देने की व्यवस्था की गई है। इस उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त विश्व-विद्यालय की स्थापना से पूर्व 'अनुवाद व सम्पादन-विभाग' सन् १९१७ में खोला गया था। आरम्भ से लेकर मार्च सन् १९३८ तक इस विभाग के द्वारा भिन्न-भिन्न २१ विषयों की जो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं उनकी तालिका इस प्रकार है--

पुस्तकें	संख्या
१--प्रकाशित पुस्तकें	... २३५
२--पुस्तकें जो प्रेस में थीं	... ८०
३--अनुवाद अथवा सम्पादन-विभाग में	... १०४
४--पुस्तकें विचार-कोटि में	... १११
	५३०

इस विभाग का बजट प्रत्येक वर्ष क्या था, इस बात का पता नहीं लगा। हाँ, कुछ वर्षों के बजटों के अंक प्राप्त हुए हैं, जिनका उल्लेख किया जा रहा है--

सन् फ़सली[1]	रुपया[2]
१३३४	२,४३,०७५
१३३७	२,४७,९२६
१३३९	२,५१,२१३
१३४०	२,६०,११०
१३४१	२,०३,५१२-१-४
१३४३	२,६१,४१५
१३४४	२,५९,२८०
१३४६	२,४१,७५०

उस्मानिया-विश्वविद्यालय

यह विश्वविद्यालय सन् १९१८ में स्थापित हुआ था। थोड़े ही काल में इसने असाधारण उन्नति की है। इसके कुछ वर्षों के बजटों के आँकड़े इस प्रकार हैं--

सन् फ़सली	रुपया
१३३४	९,९३,३७६
१३३७	१४,१९,८३०
१३३९	१६,०१,२८३
१३४०	१६,७५,८५४
१३४१	१७,६६,३५४-४-९
१३४६	२०,६५,६४४

बजटों के उपर्युक्त आँकड़ों में 'अनुवाद व सम्पादन-विभाग', 'यूनिवर्सिटी-प्रेस'[3] और 'वेधमन्दिर' के बजट के आँकड़े भी सम्मिलित हैं।

विश्वविद्यालय के अन्तर्गत आर्ट्स, विज्ञान, मेडिकल, ट्रेनिङ्ग व इंजीनियरिङ्ग के कालेज अलग अलग हैं। भारत

---

(१) हैदराबाद में सन् फ़सली का चलन है। यह सन ६ अथवा ७ अक्टूबर से आरम्भ होता है और ईसवी सन से लगभग ५९० वर्ष छोटा है।

(२) रुपया से मतलब हैदराबादी रुपया से है, जो 'उस्मानिया' या 'हाली' कहलाता है। अँगरेजी एक सौ रुपये के बराबर उस्मानिया के ११६॥=)८ पाई होते हैं।

(३) उर्दू में सुन्दर टाइप तैयार करने के लिए प्रेस ने बहुत उद्योग किया है।

के इन्टर यूनिवर्सिटी बार्ड की पुस्तक से पता चलता है कि पिछले वर्ष कालेज-विभाग में विद्यार्थियों की संख्या दो हज़ार के लगभग थी, किन्तु गत वर्ष 'वन्दे मातरम् गायन' के झगड़े से जो विद्यार्थी पृथक् हो गये हैं उनके कारण अब संख्या डेढ़ हज़ार के लगभग होगी।

जन-संख्या, भाषा व शिक्षा से देश की दशा जानने में सुगमता होती है। २०वीं सदी में हैदराबाद की दशा उक्त बातों में कैसी रही है, इसका पता निम्न आँकड़ों से लगता है--

सन् १९०१ का जन-संख्या

नाम	पुरुष	स्त्री	जोड़
हिन्दू	५०,२४,२०२	४८,४६,६३७	९८,७०,८३९
सिख	२,६१०	१,७२५	४,३३५
जैन	१०,७७२	९,५७३	२०,३४५
बौद्ध	१	२	३
पारसी	८१४	६४९	१,४६३
मुस्लिम	५,९०,२३०	५,६५,५२०	११,५५,७५०
ईसाई	१२,८३२	१०,१६४	२२,९९६
यहूदी	७	६	१३
जंगली	३२,११९	३३,१९६	६५,३१५
अन्य	४२	४१	८३
कुल जोड़	५६,७३,६२९	५४,६७,५१३	१,११,४१,१४२

नोट--आर्यसमाजी व ब्रह्म-समाजी हिन्दुओं में ही सम्मिलित दिखाये गये हैं। 'अन्य' में वे लोग रक्खे गये हैं जो बहुत ही छोटे सम्प्रदायवाले थे अथवा जिन्होंने अपना धर्म ही कुछ नहीं लिखाया।

सन् १९११ की जन-संख्या

नाम	पुरुष	स्त्री	जोड़
कुल हिन्दू	५८,९७,२६६	५७,२९,०८९	१,१६,२६,३५५
(क) सनातन-धर्मी	५८,९७,१५८	५७,२८,९८८	१,१६,२६,१४६
(ख) आर्यसमाजी	९०	८३	१७३
(ग) ब्रह्म-समाजी	१८	१८	३६
सिख	२,६४३	२,०८३	४,७२६
जैन	११,०३२	९,९९४	२१,०२६
बौद्ध	८	१२	२०
पारसी	८२२	७०७	१,५२९
मुस्लिम	७,०६,८२१	६,७४,१६९	१३,८०,९९०
ईसाई	२९,४९५	२४,८०१	५४,२९६
यहूदी	८	४	१२
जंगली	१,४९,०२३	१,३६,६९९	२,८५,७२२
कुल जोड़	६७,९७,११८	६५,७७,५५८	१,३३,७४,६७६

निज़ाम साहब की पतोहू अपने पुत्र के साथ

सन् १९२१ की जन-संख्या

नाम	पुरुष	स्त्री	जोड़
कुल हिन्दू	५४,०६,९७७	५२,५०,२७९	१,०६,५७,२५६
(क) सनातन धर्मी	५४,०६,५९३	५२,४९,८६०	१,०६,५६,४५३
(ख) आर्य-समाजी	२६८	२७७	५४५
(ग) ब्रह्म-समाजी	११६	१४२	२५८
सिख	१,५३९	१,२०६	२,७४५
जैन	९,८५२	८,७३२	१८,५८४
बौद्ध	७	३	१०
पारसी	७५८	७३२	१,४९०
मुस्लिम	६,६४,०२२	६,३४,२५५	१२,९८,२७७
ईसाई	३३,१३९	२९,५१७	६२,६५६
यहूदी	२	२	४
जंगली	२,२८,७७५	२,०१,९७३	४,३०,७४८
कुल जोड़	६३,४५,०७१	६१,२६,६९९	१,२४,७१,७७०

सन् १९३१ की जन-संख्या

नाम	पुरुष	स्त्री	जोड़
कुल हिन्दू	६२,०३,०५३	५९,७३,६७४	१,२१,७६,७२७
(क) सनातन-धर्मी	६२,०१,०५९	५९,७१,७८६	१,२१,७२,८४५
(ख) आर्य-समाजी	१,८९६	१,८०४	३,७००
(ग) ब्रह्म-समाजी	९८	८४	१८२
सिख	३,०६४	२,११४	५,१७८
जैन	११,४५६	१०,०८७	२१,५४३
बौद्ध	२६	२६	५२
पारसी	९३७	८४७	१,७८४
मुस्लिम	७,९१,४३५	७,४३,२३१	१५,३४,६६६
ईसाई	७९,४४४	७१,९३८	१,५१,३८२
यहूदी	११	१६	२७
जंगली	२,८०,५८४	२,६४,२०५	५,४४,७८९
कुल जोड़	७३,७०,०१०	७०,६६,१३८	१,४४,३६,१४८

इस सन् की मनुष्य-गणना के अनुसार ब्राह्मण, अब्राह्मण व अछूत जातिवालों की संख्या इस प्रकार रही—

	पुरुष	स्त्री	कुल
ब्राह्मण	१,९६,६५४	१,७९,८१४	३,७६,४४८
अब्राह्मण	६०,०६,३९९	५७,९३,८६०	१,१८,००,२५९
अछूत	१२,५२,६५१	१२,२०,५७९	२४,७३,२३०

ज्ञात रहे कि हैदराबाद-राज्य की रिपोर्ट में जो पृथक् छपी है, अछूत आदि हिन्दू के नाम से पृथक् लिखे गये हैं और समस्त भारत की जो रिपोर्ट है उसमें अछूत हिन्दुओं में शामिल हैं। इसके सिवा यह बात भी स्पष्ट रहे कि "अब्राह्मण" की संख्या में "अछूत" भी सम्मिलित हैं।

(१) कभी कभी किसी स्थान या राज्य के क्षेत्रफल के घटने-बढ़ने से भी जन-संख्या में कमी या बेशी है। किन्तु ज्ञात रहे कि हैदराबाद-राज्य का क्षेत्रफल जो कुछ सन् १९०१ में था वही सन् १९३१ में भी रहा है।

(२) जंगल में रहनेवाली जातियाँ अँगरेज़ी में अनीमिस्टिक या ट्राइबल लिखी गई हैं।

(३) मनुष्य-गणना की अँगरेज़ी रिपोर्ट में 'ब्रह्मनिक हिन्दू' शब्द का "सनातनधर्मी" हिन्दुओं से मतलब है।

(४) सन् १९०१ की रिपोर्ट में 'आर्य' व 'ब्रह्म' समाजियों को हिन्दुओं की संख्या में दिखलाया है।

भाषा-भाषी (सन १८०१ ईसवी)

सन् १९०१ की मनुष्य-गणना की रिपोर्ट से जिन देशी व विदेशी भाषाओं के बोलनेवालों का पता चलता है यदि उन सभों का उल्लेख किया जाय तो एक बड़ी सूची बन जायगी। फलतः केवल उन भाषा-भाषियों का उल्लेख किया जाता है जो संख्या में पाँच हज़ार अथवा इससे ऊपर थे—

भाषा	पुरुष	स्त्री	जोड़
तामिल	१६,८२८	१७,६०७	३४,४३५
तेलगू	२६,४०,१००	२५,०८,२०२	५१,४८,३०२
कनारी	७,८०,८४७	७,८१,१७५	१५,६२,०२२
गोंड़ी भाषा	३७,३८९	३८,१७५	७५,५६४
मराठी	१४,५३,८९६	१४,४४,९२४	२८,९८,८२०
हिन्दी (पश्चिमी)	६,१३,४१८	५,७८,१९१	११,९१,६०९
राजस्थानी	३४,३२३	२५,२९७	५९,६२०
अरबी	७,१७७	२,७६०	९,९३७
अँगरेज़ी	५,२८९	२,६१८	७,९०७
गुजराती	११,०७८	६,४१४	१९,४८९

सन् १९०१ की मनुष्य-गणना में मुसलमानों की संख्या हैदराबाद-राज्य में ११,५५,७५० थी, किन्तु जिन लोगों ने इस सन् में अपनी बोली उर्दू लिखाई है वे संख्या में ११,५८,४९० थे। अर्थात् २,७४० मुसलमानों की भी मातृ-भाषा उर्दू न थी। वास्तविक बात यह है कि अनेक मुसलमानों ने अरबी, फ़ारसी, पश्तो या किसी अन्य भाषा को अपनी मातृ-भाषा लिखाया होगा, क्योंकि उक्त भाषाओं के साथ विशेष सम्बन्ध मुसलमानों का ही है और इनके बोलनेवालों की संख्या इस प्रकार मिलती है—

अरबी	९,९३७
फ़ारसी	३९६
तुर्की	३४
पश्तो	१,५६५

सन् १९०१ व १९११ के बीच में मुसलमानों की संख्या सैकड़ा पीछे १९·४ बढ़ी है, किन्तु उर्दू बोलनेवाले लोगों की संख्या एक सौ पर केवल १५·४ बढ़ी है। कारण वही जो ऊपर बतलाया गया है।

उर्दू वास्तव में पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत आती है। सन् १९११ में पश्चिमी हिन्दी के बोलनेवाले १३,६७,१७५ थे और उर्दू के १३,४१,६२२ थे। और सन् १९११ की मनुष्य-गणना में मुसलमानों की संख्या १३,८०,९९० थी। सन् १९२१ में उर्दू कितने लोगों की बोली लिखी गई थी—यह मैं नहीं जान सका। सन् १९३१ में उर्दूवालों की संख्या १५,०७,२७२ थी। इससे यह अनुमान हो सकता है कि इस सन् की संख्या से सन् १९२१ की संख्या कम ही रही होगी। सन् १९३१ में मुसलमानों की संख्या १५,३४,६६६ थी। फलतः न तो सन् १९०१ में ही और न सन् १९३१ में ही समस्त मुसलमानों की मातृ-भाषा उर्दू थी।

भिन्न-भिन्न समयों की मनुष्य-गणना की रिपोर्टों से यह पता चलता है कि उर्दू के सिवा तेलगू, मराठी और कनारी भाषाओं के बोलनेवाले भी राज्य में अधिक हैं—

समय	तेलगू	मराठी	कनारी
१९०१	५१,४८,३०२	२८,९८,८२०	१५,६२,०२२
१९११	६३,६७,५७८	३४,९८,७५१	१६,८०,००५
१९२१	६०,१७,३४१	३२,९८,७३३	१५,३६,९२८
१९३१	६९,७२,५३४	३७,८६,८३८	१६,२०,०९४

राज्य के दफ़्तरों में तेलगू, मराठी और कनारी का ही चलन था। इनको हटाकर अब दफ़्तरों में केवल उर्दू कर दी गई है।

लिखे-पढ़े

सन् १९३१ की मनुष्य-गणना की रिपोर्ट से पहले की किसी रिपोर्ट में यह नहीं दिखलाया गया है कि राज्य में उर्दू पढ़े-लिखे कितने हैं। फलतः उक्त समय की रिपोर्ट के आधार पर नीचे दिया जाता है कि कितने पढ़े-लिखे थे। ज्ञात रहे कि लकीर के ऊपर की संख्या उर्दू पढ़े-लिखे लोगों की है और लकीर के नीचे की संख्या (सन् १९३१ के अनुसार) किसी जाति अथवा सम्प्रदाय के कुल लोगों—पुरुषों व स्त्रियों—की है।

नाम	पुरुष	स्त्री	जोड़
हिन्दू सनातन-धर्मी	६७,१४२ / ६२,०१,०५९	१३,७४८ / ५९,७१,७८६	८०,८९० / १,२१,७२,८४५
आर्यसमाजी	५३ / १,८९६	१४ / १,८०४	६७ / ३,७००
ब्रह्म-समाजी	३४ / ९८	११ / ८४	४५ / १८२
जैन	३७४ / ११,४५६	३९ / १०,०८७	४१३ / २१,५४३
सिख	४९६ / ३०,०६४	३५ / २,११४	५३१ / ५,१७८
मुस्लिम	८७,४०३ / ७,९१,४३५	१७,५७७ / ७,४३,२३१	१,०४,९८० / १५,३४,६६६
ईसाई	३,६८५ / ७९,४४४	५७७ / ७१,९३८	४,२६२ / १,५१,३८२
पारसी	३८३ / ९३७	१६७ / ८४७	५५० / १,७८४
बौद्ध	× / २६	× / २६	× / ५२
यहूदी	× / ११	× / १६	× / २७
जंगली	२२४ / २,८०,५८४	७७ / २,६४,२०५	३०१ / ५,४४,७८९

उर्दू की ओर राज्य का ध्यान विशेष रूप से है और अँगरेज़ी भाषा उनकी है जिनके राज्य के अन्तर्गत हैदराबाद है, अतः केवल इन दोनों भाषाओं के पढ़े-लिखे लोगों का उल्लेख विशेष रूप से मनुष्य-गणना की रिपोर्ट में मिलता है। और किसी भाषा के पढ़े-लिखे लोगों का उल्लेख उसमें नहीं है।

उर्दू व अन्य देशी व विदेशी भाषाओं में भी भिन्न-भिन्न जाति के लोग सन् १९३१ में जितने शिक्षित थे उनका लेखा इस प्रकार है—

नाम	पुरुष	स्त्री	जोड़
हिन्दू सनातनधर्मी	३,६७,५०६	३७,६९१	४,०५,१९७
" आर्यसमाजी	२१३	८२	२९५
" ब्रह्म-समाजी	७५	४७	१२२
जैन	३,१३१	५५३	३,६८४
सिख	१,३७८	२०२	१,५८०
मुस्लिम	१,३७,४१०	२१,४४९	१,५८,८५९
ईसाई	१४,८७४	६,८२०	२१,६९४
पारसी	८०८	६७७	१,४८५
बौद्ध	१९	७	२६

नाम	पुरुष	स्त्री	जोड़
यहूदी	९	१०	१९
जंगली	२,१७१	५०१	२,६७२
	५,२७,५९४	६८,०३९	५,९५,६३३

हिन्दू, मुस्लिम व ईसाई आदि भिन्न-भिन्न समयों में जितने शिक्षित थे उसका लेखा इस प्रकार है—

सन् १९२१ ईसवी

नाम	पुरुष	स्त्री	जोड़
हिन्दू	२,२३,६८७	१७,३१६	२,४१,००३
मुस्लिम	८२,४१४	१९,५९९	१,०२,०१३
जंगली	२,००७	८१४	२,८२१
भारतीय ईसाई	५,५८३	३,२८४	
सब धर्म के	३,२१,९५०	४३,३४०	३,६५,२९०

नोट :—उक्त लेखा में 'हिन्दू' से 'सनातनधर्मी', 'आर्य-समाजी' व 'ब्रह्म-समाजी' का अभिप्राय है और 'सब धर्म' में हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई व यहूदी आदि से अभिप्राय है।

सन् १९११ ईसवी

नाम	पुरुष	स्त्री	जोड़
हिन्दू सनातनधर्मी	२,५६,०९५	१०,८७३	२,६६,९६८
मुस्लिम	७२,३८३	८,४७७	८१,२६०
जंगली	२१६	३१	२४७
भारतीय ईसाई	३,६३३	२,१३०	
सब धर्म में	३,४४,०८९	२२,०७७	३,६८,१६६

नोट :—'हिन्दू सनातनधर्मी' में 'आर्यसमाजी' व 'ब्रह्म-समाजी' सम्मिलित नहीं किये गये।

सन् १९०१ ईसवी

नाम	पुरुष	स्त्री	जोड़
हिन्दू सनातनधर्मी	२,४०,८१०	९,४७५	२,५०,२८५
मुस्लिम	५७,२९४	५,८१६	६३,११०
ईसाई	७,०५८	३,१०५	१०,१६३
जंगली	५१	१२	६३
सब धर्म में	३,१०,२८६	१८,८८३	३,२९,१६९

नोट :—'हिन्दू सनातनधर्मी' में 'आर्यसमाजी' व 'ब्रह्म-समाजी' शामिल नहीं हैं।

हैदराबाद में सन् १९१८ से 'उस्मानिया-यूनिवर्सिटी' स्थापित है। इसके आस-पास के समय से ही शिक्षा और विशेषकर उर्दू की शिक्षा के निमित्त बहुत ज़ोर मारा जा रहा है। अतः उक्त अंकों से यह बात स्पष्ट हो जायगी कि उक्त समय से पहले शिक्षा की दशा वहाँ क्या थी, और बाद को क्या हुई।

जीवन-प्रवाह

लेखक, श्री हरशरण शर्म्मा 'शिव'

सरिता के प्रवाह-सा जीवन।

सतत प्रवाहित रहा धरा पर,
उठतीं लिप्सा-लहरें चंचल;
खेल रहा मन-मीन उन्हीं से,
भूल विश्व की बाधा प्रतिपल।
एक पुलिन पर सुख-द्रुम-छाया,
अपर, कूल पर दुख सैकत-कण।
सरिता के प्रवाह-सा जीवन॥

पशुता के प्रस्तर-खंडों पर,
बहता है करता कोलाहल;
मानवता की समतल भू पर,
मंथर-गति से बढ़ता अविरल।
दोनों उपकूलों को छूकर,
करता रहता है रस-सिंचन।
सरिता के प्रवाह-सा जीवन॥

सरल-कुटिल कुछ-कुछ ऋजु-कुंचित,
है द्रुत-मंथर इसकी धारा।
तिमिर निराशा घाटी में जो,
भरती आशा का रस प्यारा।
प्रेम-सिन्धु में लय होने को,
रहता यह चिर-आतुर, उन्मन।
सरिता के प्रवाह-सा जीवन॥

वीचि-विलासों से रस-प्लावित,
है उसकी दुर्गम पथ-रेखा;
बढ़ता प्राणों के प्रकाश में,
कभी न मुड़ कर पीछे देखा।
है प्रवाह का अन्त कहाँ पर,
यह जिज्ञासा रही चिरन्तन।
सरिता के प्रवाह-सा जीवन॥
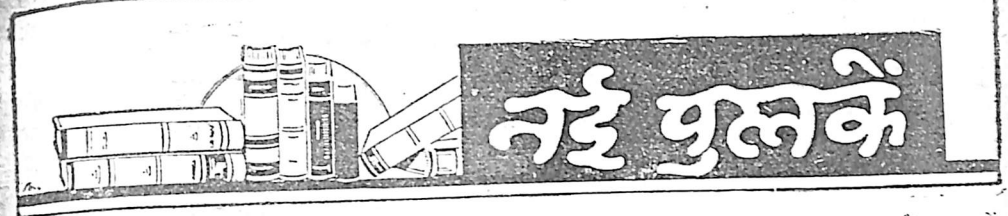
१-३—हिन्दी-मन्दिर प्रयाग की तीन पुस्तकें—

(१) **समाज और साहित्य**—लेखक श्रीयुत आनन्द-कुमार हैं। छपाई-सफ़ाई उत्तम, पृष्ठ-संख्या ६४ और मूल्य बारह आना है।

इस पुस्तक में लेखक के ५ निबंध हैं—१ साहित्य, २ शब्द-निर्माण, ३ नाम, ४ समालोचना की दुर्दशा, ५ बाबू मैथिलीशरण गुप्त। इनके विषय नाम से ही स्पष्ट हैं। भाषा प्राञ्जल किन्तु अशिष्ट है। शैली पर अपरिपक्व दिमाग की छाप है। 'समालोचना की दुर्दशा' में हिन्दी के तथाकथित समालोचकों के जो दोष दिखाये गये हैं वे निर्विवाद हैं। पर शैली का औद्धत्य अक्षम्य है। उदाहरण देखिए—

"वास्तव में, यदि हिन्दी-साहित्य में बाबू मैथिलीशरण गुप्त का आगमन न हुआ होता तो हिन्दी-काव्य-साहित्य आज बहुत आगे बढ़ा हुआ होता। गुप्त जी के काव्य निन्दा के योग्य हैं। उनके काव्यों का पूर्ण अध्ययन कर लेने के बाद मैं इसी निर्णय पर पहुँचा हूँ कि वे इस युग के एक साधारण कवि हैं जो प्रोपेगैण्डा के बल पर अपने दुर्भाग्य से और प्रतिभाहीन "जापानी" समालोचकों के सौभाग्य से महाकवि की गद्दी पर बिठा दिये गये हैं।"

ये निबन्ध किसी भी साप्ताहिक पत्र में छपाने योग्य थे। इन्हें ऐसे सुचारु रूप से छाप कर बाज़ार में बेचना कहाँ तक उचित हुआ है, यह प्रकाशक ही जान सकते हैं। पुस्तक नये पाठकों को गुमराह कर सकती है। इसमें एक भी वाक्य ऐसा नहीं मिला जो मौलिक तथा मूल्यवान् हो या जिस पर गंभीरतापूर्वक विचार किया जा सके।

(२) **सारिका**—लेखक श्रीयुत आनन्दकुमार हैं। पृष्ठ-संख्या ४८ और मूल्य आठ आना है। काग़ज़, छपाई-सफ़ाई अच्छी है।

इस छोटी-सी पुस्तक में कवि जी की २८ रचनायें हैं। कुछ बेतुकी हैं कुछ तुकबन्द। एक-दो पंक्तियाँ अच्छी भी बन पड़ी हैं, शेष नये कवि के प्रयास-मात्र हैं। दूसरों की दिल्लगी उड़ाना उतना ही आसान है जितना कठिन स्वयं कुछ करके दिखाना है। एक-दो नमूने देखिए—

चारों ओर वनों में, कुसुम भरी क्यारियों में
करती विहार है पवन अभिसारिका
इस मधु-मास में सरोवरों में देखता हूँ
श्याम-मधुपों ने है बसाई नई द्वारिका
नवल वधू-सी आज सज के खड़ी है यह
यौवन-प्रभात में प्रकृति सुकुमारिका
पुष्पबाण लिये फिरता है कामदेव-कवि
और काम-छन्द पढ़ती हैं पिक-सारिका

कितना अस्त-व्यस्त वर्णन है। पहले पवन अभिसारिका दिखाई देती है। फिर द्वारिका का चित्र सामने आता है। तीसरे चरण में नवयौवना प्रकृति-सुन्दरी के दर्शन होते हैं और चौथे चरण में स्वयं कवि जी कामदेव बने हुए पुष्प-शर ताने फिरते हैं। यही नहीं, एक नवीन संज्ञा 'काम-छन्द' भी देखने में आई; बधाई है। पूर्णचित्र बनाना सीखना हो तो इनसे सीखे।

"...मृदु मुसुकानों की मणियों से, प्रिय अधरों ने थाल सजाये" इसमें एक तो मणियाँ थाल में सजाई गई, जो शायद कवि जी ने अपने यहाँ होते देखा हो, फिर 'प्रिय अधर' तो कर्त्ता बन गये 'ने' चिह्न के अनुरोध से; थाल क्या रहे ? काँसी के, पीतल के या जर्मन-सिलवर के ?

"रजनी का मुख नित्य चूमते, हिममय पर्वत-शिखर मनोरम" की कल्पना ऊल-जलूल है।

"हैं दिन-रात वहाँ चलते तलवार की धार के ऊपर हे मन जो न निभाने का साहस हो तो सनेह के पंथ में पैर न दे मन।"

यह साफ़ चोरी है, जिसे हर कोई पकड़ सकता है—जानते हैं यह किसका माल है ?—

"यह प्रेम को पंथ कराल है री
तलवार की धार पै धावनों है॥
जो न नेह निवाहन जानत है
तौ सनेह की धार में काहे धँसे"

—का। शायद आठ आना मूल्य का औचित्य सिद्ध करने के लिए ही पुस्तक में दस-बारह पृष्ठ भी जोड़ दिये गये हैं। आठ आना व्यय करके जो साहित्य-प्रेमी इस कोरे और रद्दी कागज़ों के बंडल को पायेगा वह अपने मन में क्या सोचेगा! अच्छा हो यदि ऐसे कवि पैदा होते ही अपनी रचनाओं को प्रेस के गले में ठूँसने का प्रयत्न न किया करें।

(३) दृगजल—लेखक, कुमार सोमेश्वरसिंह हैं। छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या ७५ और सजिल्द पुस्तक का मूल्य बारह आना है।

कुमार जी हिन्दी के उदीयमान कवि हैं। आपकी कल्पनाओं में सूक्ष्मता है और भाषा में प्रसाद। इस संग्रह में आपकी साठ रचनायें संगृहीत हैं जिनमें से उषा, कोयल, सहारा, आदि कुछ रचनायें उच्च कोटि की हैं। अन्य कवितायें भी सुन्दर हैं। कहीं-कहीं मुहावरे की चुस्ती का प्रयास भी दिखाई पड़ता है जैसे पृष्ठ नं० ६९ की कविता में। सब मिला कर पुस्तक अच्छी है।

४—आधुनिक छपाई—लेखक, श्रीयुत कृष्ण-प्रसाद दर और प्रकाशक, इलाहाबाद ला जर्नल प्रेस हैं। छपाई-सफ़ाई आदर्श, पृष्ठ-संख्या ३८७, अनेक चित्र और सुन्दर जिल्द से सुसज्जित पुस्तक का मूल्य ६॥) है।

सरस्वती के पिछले अंकों में हम इसी विषय की एक पुस्तक का परिचय पाठकों को दे चुके हैं। हर्ष की बात है कि यह एक अधिकारी विद्वान् द्वारा लिखी गई, छपाई और प्रेस-सम्बन्धी बातों की दूसरी पुस्तक भी प्रकाशित हो गई है। इस पुस्तक के लेखक एक उन्नत प्रेस के मालिक हैं। छपाई-सम्बन्धी सभी विषयों का आपको पूर्ण अनुभव है। हिन्दी ही नहीं अँगरेज़ी आदि में भी इस विषय की पुस्तक इससे अच्छी शायद ही हो। प्रेस-मालिकों, सम्पादकों, प्रेस-कर्मचारियों और इस विषय का ज्ञान प्राप्त करनेवालों के अलावा सम्मेलन के सम्पादन-कला-परीक्षा के परीक्षार्थियों के लिए भी यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। इससे हिन्दी-साहित्य के एक खाली कोने की पूर्ति बड़ी सुन्दरता के साथ हुई है। छपाई और जिल्दसाज़ी में भी आधुनिकता का नमूना पेश किया गया है। ऐसे सुन्दर प्रकाशन के लिए लेखक महोदय बधाई के पात्र हैं।

५—विसर्जन—लेखक, श्रीयुत उदयशंकर भट्ट और प्रकाशक, श्रीयुत मदनलाल सूरी, सूरी ब्रदर्स, गणपति रोड, लाहौर हैं। छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या १२८ और मूल्य १।) है।

भट्ट जी हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक हैं। इस पुस्तक में आपकी तीस कविताओं का संग्रह है। सभी रचनायें आधुनिक ढंग की हैं। जिनमें कवि के नवयुवक हृदय की झाँकी पंक्ति-पंक्ति में मिलती है। भाव-चित्रण भी सूक्ष्म और सुन्दर है। नमूना देखिए—

मज़दूर—दिन उनको मुझको रात मिली,
श्रम मुझे उन्हें आराम मिला।
बलि दे देने को प्राण मिले,
हण्टर को सूखा चाम मिला।
कुछ रूखे-सूखे टुकड़ों पर,
बच्चों का गला हलाक किया।
बीबी की आशा कुचल-मसल,
जीवन यों ही बेबाक किया।
+ + +
मैं उलट-पुलट दूँगा समाज
अपने अपार बलिदानों से
अब और न माँगूँगा भिक्षा,
गिड़गिड़ा कभी धनवानों से।

पुस्तक युवक कवियों का मार्ग प्रदर्शन करेगी और नवयुवक पाठकों के निकट आदरणीय होगी, इसकी हमें पूर्ण आशा है।

६—प्रताप-समीक्षा—लेखक, श्रीयुत प्रेमनारायण टंडन और प्रकाशक, साहित्य-रत्न भंडार, आगरा हैं। छपाई-सफ़ाई मामूली, पृष्ठ-संख्या १५२ और मूल्य १॥ आने है।

इस पुस्तक का सम्बन्ध पंडित प्रतापनारायण मिश्र से है जो भारतेन्दु-युग के एक प्रतिष्ठित लेखक माने जाते हैं। इसमें आरम्भ में हिन्दी-गद्य के विकास पर कुछ प्रकाश डाला गया है; इसके बाद ६१ पृष्ठों में मिश्रजी का अनियमित, विशृंखल और भागता हुआ-सा परिचय दिया गया

है। पीछे के पृष्ठों में, पुस्तक के आधे से अधिक में, उनके कुछ निबंधों का संग्रह है। इसी सब मसाले को मिलाकर 'प्रताप-समीक्षा' के नाम से छपा दिया गया है। 'समीक्षा' शब्द से हमें जिस वैज्ञानिक और युक्तियुक्त अध्ययन की आशा हुई थी वह इस पुस्तक में नहीं मिला। बिना पढ़े-लिखे और विचार किये किसी साहित्य-निर्माता पर क़लम उठाना न केवल 'अनधिकार-चेष्टा' है प्रत्युत उस लेखक और साहित्य के विद्यार्थियों के साथ अन्याय करना भी है। पुस्तक पढ़ते हुए ऐसा अनुभव होता है मानों लेखक महोदय किसी हड़बड़ी में हैं। उनके पास न तो विचार करने का समय है न अपने विचारों को क्रम-बद्ध करने का। यही नहीं, शायद अपने क़लम से निकल गये 'ब्रह्मवाक्यों' को छपाने से पूर्व दुहरा लेने की भी तकलीफ़ उठाने की ज़रूरत उन्हें महसूस नहीं हुई। किसी की कविताओं के उद्धरण छाप कर यह लिख देना कि—"यह कविता अपूर्व है; याद रखने के लायक़ है; शिक्षापूर्ण है।"—न तो "समीक्षा" कहला सकता है, न लेखक की अध्ययन-शीलता का परिचायक है। न ऐसी समीक्षाओं से साहित्य के पिपासुओं की ज़रा भी प्यास बुझ सकती है। इसी प्रकार "स्वभाव और चरित्र" शीर्षक नोट का आरम्भ इस प्रकार करना कि—"पंडित प्रतापनारायण मिश्र का रंग गोरा था, उनकी नाक बड़ी थी और शरीर दुबला-पतला था। कमर झुक गई थी और वे प्रायः अस्वस्थ रहा करते थे—" 'स्वभाव' और 'चरित्र' शब्दों के अर्थों पर हरताल फेरना है। छपाई और बँधाई सम्बन्धी भूलें भी अक्षम्य हैं जिनकी इसमें भरमार है। फिर भी एक भूतपूर्व साहित्यिक की कृतियों का परिचय देकर लेखक ने उसके प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन किया है। इसके लिए हम उसकी प्रशंसा किये बिना न रहेंगे।

७-८—श्री भगवत आयुर्वेदिक फ़ार्मेसी बरा लोकपुर, इटावा की दो पुस्तकें।

(१) प्राच्य शल्य तंत्र—पृष्ठ-संख्या ३२८ और मूल्य २॥) है।

(२) पाश्चात्य शल्य तंत्र—पृष्ठ-संख्या २३२ और मूल्य १॥) है।

उपर्युक्त दोनों पुस्तकों के लेखक, कविराज बालकराम शुक्ल, शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य हैं जो ऋषिकुल हरिद्वार के आयुर्वेदिक कालिज में प्रोफ़ेसर भी हैं। प्रथम पुस्तक में लेखक ने आयुर्वेद की शल्यविद्या पर विवेचनात्मक प्रकाश डाला है और द्वितीय भाग में नवीन डाक्टरी शैली की चीर-फाड़ क्रिया का उल्लेख है। दोनों भागों के लिखने में काफ़ी विद्वत्ता और परिश्रम का परिचय दिया गया है; हम यह तो नहीं जानते कि लेखक महोदय स्वयं भी सुश्रुताचार्य जी और आधुनिक सर्जनों की भाँति शल्यविद्या के पारंगत और कृतकर्मा हैं, या इधर-उधर से जोड़-तोड़ कर ही इस प्रत्यक्ष-शास्त्र पर क़लम चलाने का साहस कर बैठे हैं; पर पुस्तक आयुर्वेद के विद्यार्थियों के लिए है संग्रहणीय। छपाई-सफ़ाई भी अधिक बुरी नहीं है। भगवत फ़ार्मेसी ऐसे उपयोगी ग्रन्थों के प्रकाशन का साहस करने के लिए प्रशंसनीय है।

९—अनामिका—लेखक, श्रीयुत सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' हैं। प्रकाशक, भारती-भवन, लीडर-प्रेस, इलाहाबाद है। छपाई-सफ़ाई उत्तम, पृष्ठ-संख्या १९४ और मूल्य २।) है।

'निराला' जी की ५६ कविताओं का यह संग्रह अभी हाल में ही निकला है। ये कवितायें सन् १९२४ से १९३८ तक के समय में लिखी गई हैं। इनमें से बहुत सी पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर छप भी चुकी हैं। प्रस्तुत संग्रह का नाम है—'अनामिका'। इस शब्द का अर्थ है 'बिना नामवाली'। साधारण पाठक को आश्चर्य होगा कि इसमें दी गई फुटकर कवितायें सब शीर्षकयुक्त या नामवाली हैं, फिर इस संग्रह का नाम 'अनामिका' क्यों रक्खा गया? बात यह है कि महाकवि कालिदास के विषय में संस्कृत का एक सुभाषित प्रसिद्ध है, जिसका अन्तिम चरण है—'अनामिका सार्थवती बभूव'। इसी श्लोक से कवि को अपने संग्रह का उक्त नाम रखने की प्रेरणा मिली है। यही नहीं, एक मतलब और भी है, जिसका सम्बन्ध 'ध्वनि-शास्त्र' से है। कवि महोदय इस ढंग से पाठकों को यह बतला देना चाहते हैं कि जनता में जो यह मिथ्या धारणा बन गई है कि कालिदास की कोटि का दूसरा कवि पैदा ही नहीं हुआ वह ग़लत है! 'निराला' जी कालिदास के टक्कर के कवि हैं, और शायद उनसे भी बढ़कर! उनके इस 'महाकाव्य' अनामिका ने कालिदास को ही नहीं, संसार भर के महाकवियों को

पीछे छोड़ दिया है। शायद इसी विचार से कवि महोदय ने उक्त श्लोक को पुस्तक के मुख-पृष्ठ पर आकर्षक ढंग से छापा है। यदि कोई दूसरा अभिप्राय हो तो हम नहीं जानते।

इस संग्रह की अधिकांश रचनायें ऐसी हैं जिनको पूरा-पूरा समझ सकना शायद वृहस्पति के लिए भी असंभव है। पूर्वापर संगति मिला सकना तो कल्पना से भी दूर की बात है। कारण यह है कि 'निराला' जी का व्याकरण, पिंगल, कोष, रीति-शास्त्र, दर्शन सभी कुछ निराला ही है। फिर साधारण पाठक का दिमाग़, जो सूत्र के आधार पर आगे बढ़ने का आदी होता है, इन रचनाओं को कैसे समझ सकता है? निराला जी शब्द शायद बँगला-अभिधान से लेते हैं, क्योंकि वे शब्द न तो संस्कृत-साहित्य में सुप्रचलित हैं, और हिन्दी में तो हो ही क्या सकते हैं। यही नहीं, उनके छन्दों का स्वराघात भी बङ्गाली है। इस प्रकार उनकी कविता-कामिनी का कल-कण्ठ बङ्गाली तथा लपक-झपक और चाल-ढाल अँगरेजी है। यदि उसमें हिन्दी का कुछ भाग है तो लिपि या आच्छादन-मात्र।

भाव या भाषा-सम्बन्धी क्लिष्टता काव्य का प्रमुख दोष माना गया है। इस संग्रह में से यदि इसी दोष के उदाहरण हम देने लगें तो प्रायः समस्त पद्य उद्धृत करने पड़ेंगे। फिर भी कुछ नमूने देखिए—

"दृगों को रँग गई प्रथम प्रणय-रश्मि,—
चूर्ण हो विच्छुरित
विश्व-ऐश्वर्य को स्फुरित करती रही
वहुरंग भाव भर
शिशिर ज्यों पत्र पर कनक-प्रभात के,
किरण-सम्पात से। (प्रेयसी से)

× × × ×

"राक्षस-विरुद्ध प्रत्यूह,–क्रुद्ध-कपि-विषम हूह,
विच्छुरित वह्नि—राजीवनयन-हत-लक्ष्य-वाण
लोहित-लोचन-रावण-मद-मोचन-महीयान
राघव-लाघव—रावण-वारण—गत-युग्म प्रहर"
उद्गीरित-वह्नि-भीम-पर्वत-कपि-चतुः प्रहर,—
जानकी-भीरु उर—आशा भर,—रावण सम्वर।
(राम की शक्तिपूजा)

देखा आपने? बस अन्त में एक "हूः" और जोड़ दीजिए कि भूत झाड़ने का मंत्र बन जायगा! इसमें प्रयुक्त "सम्वर" शब्द पता नहीं कि किस व्याकरण से शुद्ध समझ कर लिखा गया है।

पाण्डित्य और वहुज्ञता-प्रदर्शन की तो कवि जी को कुछ झक-सी है। सम्राट् [illegible]वर्डवाली कविता का आरम्भ यों है—

"तीक्षण अरालः—
वज रहे जहाँ
जीवन का स्वर भर छन्द, ताल मौन में मन्द्र;
ये दीपक जिसके सूर्य-चन्द्र,"

इसका अर्थ मैंने स्थानीय विश्व-विद्यालय के एक छात्र से पूछा जो कि हिन्दी लेकर प्रथम श्रेणी में एम० ए० कर चुके थे तब वे बग़लें झाँकने लगे। 'तीक्षण अराल' और उसके आगे 'कोलन डैश'! कुछ संगति ही नहीं खाता। फिर विचारे अर्थ और संगति लगाते भी कैसे?

कवि की कविताओं में उसका हृदय प्रतिविम्बित होता है। इस संग्रह में भी 'निराला' जी के हृदय की झाँकी यत्र-तत्र देखने को मिल जाती है। उदाहरणार्थ कविता को वे इस रूप में आमंत्रित करना चाहते हैं—

"आज नहीं है मुझे और कुछ चाह,
अर्ध विकच इस हृदय-कमल में आ तू
प्रिये छोड़ कर बंधनमय छन्दों की छोटी राह।
(प्रगल्भ-प्रेम)

"तोड़ो, तोड़ो, [illegible] पत्थर की,
निकलो फिर गंगा-जल-धारा!
गृह-गृह की पार्वती
पुनः सत्य-सुन्दर-शिव को सँवारती।"

काव्य-शास्त्र में 'असूया' का लक्षण यह दिया गया है—

"असूया परगुणर्द्धीनामौद्धत्यादसहिष्णुता" अर्थात् "पराये गुणों में औद्धत्य के कारण असहनशीलता।" कविजी की इस पुस्तक में 'असूया' का भी एक सुन्दर उदाहरण हमें देखने को मिल गया। वह यह है—

"होता लक्षपति का यदि मैं कुमार
शिक्षा पाता अरब समुद्रपार
देश की नीति के [illegible] पिता परम पंडित

एकाधिकार रखते भी धनपर, अविचल चित
होते उग्रतर साम्यवादी, करते प्रचार
चुनती जनता राष्ट्रपति उन्हें ही सुनिर्धार
पैसे में दस राष्ट्रीय गीत रचकर उन पर
कुछ लोग बेंचते गा-गा गर्दभ-मर्दन-स्वर
हिन्दी-सम्मेलन भी न कभी पीछे को पग......।"

ये कटाक्ष व्यक्तित्व के बहुत समीप पहुँच जाने के कारण अशोभन लगते हैं। और कवित्व की अपेक्षा हृदयगत 'असूया' के अधिक परिचायक हैं। कवि महाशय हिन्दी-साहित्य के वसन्त का 'अग्रदूत' अपने को ही मानते हैं। 'सुमनों' के नाम से हिन्दी के अन्य कवियों को लक्ष्य करते हुए वे कहते हैं—

"ईर्ष्या कुछ नहीं मुझे, यद्यपि
मैं ही वसन्त का अग्रदूत।"

कवि जी का प्रकृति-वर्णन भी बेजोड़ है—कम-से-कम इस संग्रह का। एक-दो नमूने देखिए—

"बहुत दिनों के बाद खुला आसमान
निकली है धूप हुआ खुश जहान
दिखी दिशायें, झल के पेड़
चरने को चले ढोर—गाय, भैंस, भेड़।"

× × × ×

ठूँठ है यह आज!
गई इसकी कला
गया है सकल साज"

शायद ऐसी ही रचनायें पढ़कर एक मित्र ने अपनी सच्ची राय दी होगी—

"नीरस यह बन्द करो गान
कहाँ छन्द, कहाँ भाव, कहाँ यहाँ प्राण?

इस पर कवि महोदय ने निहायत काव्योचित भाषा में नम्रता के साथ यह उत्तर दिया—

"सत्य बन्धु, सत्य; वहाँ नहीं अर्र वर्र
नहीं वहाँ भेक, वहाँ नहीं टर्र-टर्र।"

इस गाय-भैंस-भेड़, अर्र-वर्र और टर्र-टर्र में भी कोई रहस्यवाद की निराली कला है, यह उनके प्रशंसक ही बतायें।

एक कविता में कवि जी सुन्दर सायादार जलाशय बनने की कामना करते हैं, पर किसी विश्व-प्रेम की भावना से नहीं, न किसी थके बटोही को आश्रय देने के लिए, या किसी तृषित की प्यास बुझाने के लिए। आपकी लालसा है कि—

"दूर ग्राम की कोई वामा
आके मन्द चरणअभिरामा
उतरे जल में "अवसन"श्यामा
अंकित "उरछवि" सुन्दरतर हो।"

वलिहारी है! कितनी सभ्य और सुसंस्कृत मनोवृत्ति है! यदि आप "अवसन श्यामा" की "उरछवि" अंकित करने के लिए जलाशय बनना चाहते हैं तो बेचारे देव और विहारी ही कौन-सा पाप करते थे, जिनके ख़िलाफ़ आपने यह जेहाद बोल दिया है?

इन रचनाओं में व्याकरण-संबंधी भूलें भी पद-पद पर दिखाई देती हैं; पर यह कोई अनोखी बात नहीं। 'निराला' जी व्याकरण को तो शायद अपना अनुगामी मानते हैं। कुछ उदाहरण देखिए—

'सकल चेतना मेरी होये लुप्त।'
'अलक-सुगंध मन्द मलयानिल धीरे-धीरे ढोती'
'मेरा जीवन-श्रम हरता था' ('हरना' क्रिया का अकर्मक प्रयोग)
'पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार।'
'देख कर कोई नहीं' (कर्म कारक में—'किसी को नहीं' के लिए)
'शुष्क कण्ठ पर छिड़क घट अपना भरके'
'प्याला रस कोई हो भर कर अपने ही हाथों तू मुझे मिला जा।'
'कंकाल शेष नर मृत्यु-प्राय'
'सच्चा कल्याण वह अथच है'
'गाने भूले अम्रीयमाण।'

इस संग्रह की 'कहाँ देश है', 'क्षमा-प्रार्थना', 'गाता हूँ मैं तुम्हें ही सुनाने को', 'ज्येष्ठ', 'सखा के प्रति' और 'नाचे उस पर श्यामा' शीर्षक रचनायें बहुत सुन्दर हैं। उनमें हमें सच्चे काव्य के दर्शन होते हैं; पर खेद है कि 'निराला' को उनके सुन्दर अनुवाद का श्रेय भर दिया जा सकता है। मूलतः ये रचनायें रवीन्द्र बाबू और स्वामी विवेकानन्द जी की हैं। क्या हिन्दी के भाग्य में ऐसी रचनायें वदी ही नहीं हैं?

—ब्रजेश्वर

१०—रासपंचाध्यायी—मुद्रक व प्रकाशक, भारत-वासी प्रेस, दारागंज, प्रयाग है। छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या ९४ और मूल्य ॥) है।

श्रीमद्भागवत में रासपंचाध्यायी एक प्रसिद्ध स्थल है। इसके आधार पर अष्टछाप के कवि नन्दराम ने भी एक 'रासपंचाध्यायी' लिखी थी जो कृष्ण-साहित्य में अपना उच्च स्थान रखती है। नन्ददास के अनुकरण में और भी रासपंचाध्यायियाँ लिखी गई होंगी जो अब उपलब्ध नहीं हैं। प्रस्तुत पुस्तक भी ऐसी ही है जिसे कविवर सोमनाथ ने संभवतः संवत् १८८० के आस-पास लिखा होगा। कविता की दृष्टि से यह नन्ददास की पंचाध्यायी के टक्कर की है। इसमें शुद्ध ब्रजभाषा का मिठास है और पद्य-रचनाशैली सरस तथा निर्दोष है। यह पुस्तक अब तक अप्रकाशित थी। भारतवासी प्रेस ने इसे प्रकाश में लाकर हिन्दी-साहित्य के साथ बड़ा उपकार किया है। ब्रज-साहित्य के प्रेमियों के अतिरिक्त सम्मेलन के परीक्षार्थियों तथा हिन्दी लेकर एम० ए० की परीक्षा देनेवाले विद्यार्थियों के लिए भी पुस्तक पठनीय व संग्रहणीय है। आरम्भ में विवेचनात्मक भूमिका और फुटनोटों में कठिन शब्दों के अर्थ देकर पुस्तक की उपादेयता को और भी बढ़ा दिया गया है।

११—मज़दूरों की छाती पर—लेखक, श्रीयुत कालिप्रसाद झा, सिविल इञ्जीनियर और प्रकाशक, ग्रन्थमाला कार्यालय बाँकीपुर हैं। छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या ३०४ और मूल्य २) है।

यह एक सुन्दर उपन्यास है; शोषक-वर्ग मज़दूरों के ख़ून से किस प्रकार अपने विलास की सामग्री इकट्ठी करते हैं और जिनकी कमाई से अपने घर भरते हैं उनके साधारण आराम के प्रति कितने उदासीन रहते हैं, यही दिखलाना इस पुस्तक का उद्देश्य है। शैली रोचक, भाषा सरल, कथानक स्वाभाविक है। लेखक महोदय स्वयं इञ्जीनियर हैं अतः उन्हें मज़दूरों, पूँजीपतियों और इञ्जीनियरों की रहन-सहन का पक्का अनुभव है। फलतः चरित्र-चित्रण में काफ़ी सफलता मिली है। पुस्तक उपयोगी और पठनीय है।

—रमादत्त शुक्ल

१२—वैदक सम्बन्धो विचारो (भाग बीजो)—सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय माटे सम्पादक ने प्रकाशक भिक्षु अखण्डानन्द। पृष्ठ-संख्या ४०८; मूल्य १।=)

इस पुस्तक में वैद्यक के लेख सङ्कलित हैं। आयुर्वेद की अधिकांश पुस्तकों में नये प्रयोगों के प्रति एक प्रकार की उदासीनता दृष्टिगोचर होती है परन्तु प्रस्तुत पुस्तक में यह दोष नहीं आने पाया है। रोग की प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार करना इस पुस्तक का ध्येय है। डाक्टर श्रीधर नेहरू आई० सी० एस० के लेख का उद्धरण मनन योग्य है। उनका लेख 'बिजली से चामत्कारिक इलाज' में बिजली के सरल प्रयोग दिये गये हैं। जैसे नींद न आनेवालों को चारपाई के नीचे मोटर के टायर के टुकड़े रखना।

पुस्तक गुजराती में होते हुए भी इसमें हिन्दी के अनेक लेखों का समावेश है। श्रीयुत केदारनाथ गुप्त जिनकी आरोग्य-विषयक पुस्तकों से हिन्दी-संसार परिचित है, का एक लेख इस पुस्तक में गुजराती लिपि में दिया गया है। मालवीय जी का कायाकल्पविषयक लेख भी इस पुस्तक में है।

प्रायः सभी रोगों के प्राकृतिक इलाज सुबोधरूप में दिये गये हैं। हिन्दी में इस प्रकार की पुस्तकों का अभाव है। दो-एक त्रुटियाँ भी इस पुस्तक में दृष्टिगोचर हुईं। उदाहरणार्थ पुस्तक के ३५३ वें पृष्ठ पर पलाश के गुण की प्रशंसा में पंडित प्रभु नारायण त्रिपाठी का कथन है—"पलाश का तेल पातालयन्त्र से निकालना। इस तेल को गाय के दूध, घी, मधु और शक्कर में समभाग में लेकर ३/४ तोला सेवन करना। .... इस प्रकार सात दिन तक सेवन करने से गई बातें, भविष्य बतलाना और एक महीने तक सेवन करे तो बहुत दिन जिये और उसकी पेशाब तांबे से सोना बना सकती है।" मालूम नहीं सम्पादक महोदय इस मत से सहमत हैं या नहीं। वैद्यक की एक गम्भीर पुस्तक में जिसमें अनुभवी विद्वानों के विचार सङ्कलित हैं यदि ऐसी अनर्गल बातें न लिखी जातीं तो पुस्तक का महत्त्व बढ़ जाता।

पुस्तक के शुरू में गांधी जी के बाल्यकाल की कुछ सर्वप्रिय और उपदेश-प्रद बातें हैं। पुस्तक सर्वाङ्गसुन्दर होते हुए भी इसका मूल्य बहुत कम रक्खा गया है।

—गङ्गाशङ्कर पण्ड्या

वर्ग नं० ३५ का नतीजा

प्रथम पुरस्कार ३००) (शुद्ध पूर्ति पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ५ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को ६०) मिले।

(१) अशीतदेवी c/o मेसर्स भट्टाचार्य एण्ड को०, कलकत्ता।
(२) अवनी c/o मेसर्स भट्टाचार्य एण्ड को०, कलकत्ता।
(३) प्यारेलाल; रानीपुर, झाँसी।
(४) नन्दकिशोर, खुलना।
(५) पं० गंगाराम, दारागंज, इलाहाबाद।

द्वितीय पुरस्कार १०८) (एक अशुद्धि पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ३ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को ३६) मिले।

(१) अवधविहारीलाल, कोठापारचा, नं० ६४, इलाहाबाद।
(२) बटुकबहादुर, पुलिस-स्टेशन भदोई, बनारस स्टेट।
(३) हरकिशोर, सिवनी, सी० पी०।

तृतीय पुरस्कार ५२) (दो अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित २ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को २६) मिले।

(१) ओमप्रकाश शुक्ला, ऐतमादपुर, आगरा।
(२) दुर्गा c/o मेसर्स भट्टाचार्य एण्ड को०, कलकत्ता।

चतुर्थ पुरस्कार २४) (तीन अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ४ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को ६) मिले।

(१) आशाकुमारी, फ़रीदपुर, बरेली।
(२) कृपाराम, गुजरानवाला, पंजाब।
(३) मदनमुरारी माथुर वकील, राजापुर, मालवा।
(४) राजनारायण माथुर c/o मदनमुरारी माथुर, राजापुर, मालवा।

पंचम पुरस्कार १६) (चार अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित १६ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को १) मिला।

(१) सूरजमल वर्मा, शाहजहाँपुर।
(२) महावीरप्रसाद, भागलपुर।
(३) बनवारीलाल गुप्ता, अनूप शहर।
(४) कमलनाथ, बुलानाला, बनारस।
(५) चन्द्रकान्तादेवी, मेरठ।
(६) सीताराम गुप्त, गया।
(७) गंगाराम, ईस्ट्र आफ़िस, आर्सनल, इलाहाबाद।
(८) चन्द्रशेखर, असरकोट, राजपूताना।
(९) बालकराम, सागर, सी० पी०।
(१०) जगन्नाथसिंह ठाकुर, इलाहाबाद।
(११) रामगुलाम चौ० अ० स्टेशनमास्टर, पटना जंकशन।
(१२) गोविन्दराम भट्ट, ललितपुर।
(१३) परमात्माशरण, बरेली।
(१४) फिनशुश्क, देवघर।
(१५) मोतीलाल, बलिया।
(१६) बरदाचरण भट्टाचार्य, ७६४ कटरा, इलाहाबाद।

उपर्युक्त सब पुरस्कार ३१ जुलाई को भेज दिये जायँगे।

नोट—जाँच का फ़ार्म ठीक समय पर आने से यदि किसी को और भी पुरस्कार पाने का अधिकार सिद्ध हुआ तो उपर्युक्त पुरस्कारों में से जो उसकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा। केवल वे ही लोग जाँच का फ़ार्म भेजें जिनका नाम यहाँ नहीं छपा है, पर जिनको यह सन्देह हो कि वे पुरस्कार पाने के अधिकारी हैं।

जिनको १) का पुरस्कार मिला है उन्हें १) के दो प्रवेश-शुल्क-पत्र भेज दिये जायँगे, जो नियम के अनुसार तीन महीने के भीतर इसके साथ दो पूर्तियाँ भेज सकेंगे।

नियम :—

(१) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जितनी पूर्ति-संख्यायें भेजना चाहे, भेजे, किन्तु प्रत्येक वर्ग-पूर्ति सरस्वती पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म पर होनी चाहिए। इस प्रतियोगिता में एक व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। इंडियन प्रेस के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकेंगे। प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगाड़ कर या काटकर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

(२) प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए जो फ़ीस वर्ग के ऊपर छपी है, दाख़िल करनी होगी। फ़ीस मनीआर्डर-द्वारा या सरस्वती-प्रतियोगिता के प्रवेश-शुल्क-पत्र (Credit voucher) के द्वारा दाख़िल की जा सकती है। इन प्रवेश-शुल्क-पत्रों की किताबें हमारे कार्यालय से ३) या ६) में ख़रीदी जा सकती हैं। ३) की किताब में आठ आने मूल्य के और ६) की किताब में १) मूल्य के ६ पत्र बँधे हैं। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति जिनका पता-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा अपनी अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं। वर्ग-पूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी। मनीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग-नम्बर ३६, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

(३) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र नत्थी होकर आना अनिवार्य है। रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी। लिफ़ाफ़े के दूसरी ओर अर्थात् पीठ पर मनीआर्डर भेजनेवाले का नाम और पूर्ति-संख्या लिखना आवश्यक है।

(४) जो वर्ग-पूर्ति २८ जुलाई तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में शामिल नहीं की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २६ ता० को पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिए और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद को डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान्य होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के अगले अङ्क में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता-अशुद्धता की जाँच कर सकें।

(५) वर्ग-निर्माता की पूर्ति से, जो मुहर लगा करके रख दी गई है, जो पूर्ति मिलेगी वही सही मानी जायगी। यदि कोई पूर्ति शुद्ध न निकली तो मैनेजर शुद्ध पूर्ति का इनाम जिस तरह उचित समझेंगे, बाँटेंगे।

अङ्क-परिचय

बायें से दाहिने—

१–विष्णु भगवान्।
४–यह यशस्वी के यश को मिट्टी में मिला देता है।
७–यदि बरसात ही में न उमड़ा तो कब उमड़ेगा ?
८–घर भरे हों तो यह भी शोभा देती है।
१०–इसकी क़द्र परदेशवालियों से पूछिए।
११–पक्के ठग की क्या पहचान,..... मारते गठरी ग़ायब।
१२–'कदर' ठीक नहीं हुई।
१३–शैवों को पूजन समय इसमें चन्दन लगाते देखेंगे।
१५–'ऊँचा......। ऊँचा पद'——कहावत है।
१६–ईश्वर ने हमें भी बुद्धि दी है फिर हम हर बात में आपका ही......क्यों करें ?
१८–कन्या के योग्य . मिल जाना बड़े भाग्य की बात है।
१९–इससे भगवान् बचाये।
२१–मिठाई के बाद इसी का नम्बर आता है।
२२–जो आपका है वह ' ' कैसे हो सकता है ?
२४–एक घास।
२६–जो आपका .... हो उससे सलाह ले लीजिए।
२९–लड़की की शादी में इसे भी देते हैं।
३०–सब ज़हर ऐसे ही नहीं होते।
३२–सरे बाज़ार गालियाँ बकनेवाला पक्का . ...होता है।
३४–हराम का धन इसी में जाता है।
३५–हमारा प्यारा देश।
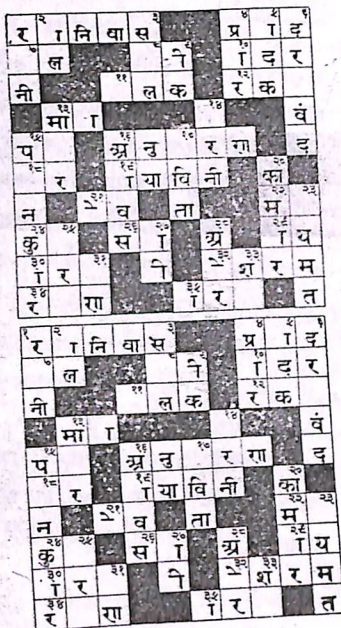
ऊपर से नीचे—

१–कुछ लोग इसकी प्रतीक्षा बड़ी उतावली से करते हैं।
२–चोर पराये इसको अपना समझता है।
३–सबका जीवन ऐसा हो भी कैसे सकता है ?
४–बिना काफ़ी यह किये किसी वस्तु की अच्छी खपत नहीं होती।
५–अगर मस्ती न लाया तो बेकार।
६–दयालु पुरुष।
९–शायर, सिंह और सपूत इसे छोड़ कर चलते हैं।
१३–इसकी भाषा बच्चे की अपनी भाषा होती है।
१४–यदि यह अच्छी है तो जीवन सुख से कटेगा।
१५–रामदूत। १६–चोरों की रात।
१७–कोई-कोई मूढ़ इससे भी प्रकाश नहीं पाते।
२०–घर में विवाह होगा तो स्त्री ऐसी साड़ी की माँग पहले उपस्थित करेगी। २३–मतवाला हाथी।
२५–स्त्रियों का स्वाभाविक भूषण है।
२७–समय पर थोड़ी अच्छी भी लगती है।
२८–हर काम में यह करना असफलता का मुख्य कारण है।
३१–एक एक......जोड़े मन जुर जाता है।
३३–एक सौ।

आपनी याददाश्त के लिए वर्ग ३६ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ पर कर लीजिए। और इसे निश्चय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

वर्ग नं० ३५ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर ३५ की शुद्ध पूर्ति जो बंद लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जा रही है।
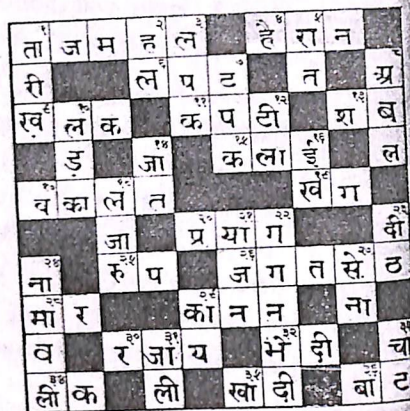
वर्ग नं० ३५ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० ३५ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति
नं०...में } कोई अशुद्धि नहीं है। / १,२,३,४ अशुद्धियाँ हैं।
मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर ________

पता ________

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

नोट—जो पुरस्कार आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बँटेगा और फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि पूर्ति ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जो समझें कि उनका नाम ठीक जगह पर छपा है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं। यह फ़ार्म १५ जुलाई के बाद नहीं लिया जायगा।

इसे काटकर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

मैनेजर वर्ग नं० ३६
इंडियन प्रेस, लि०,
इलाहाबाद
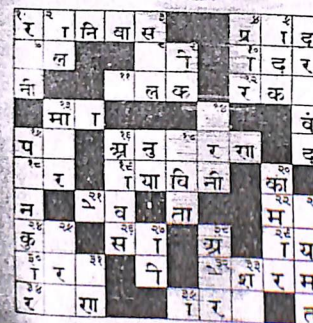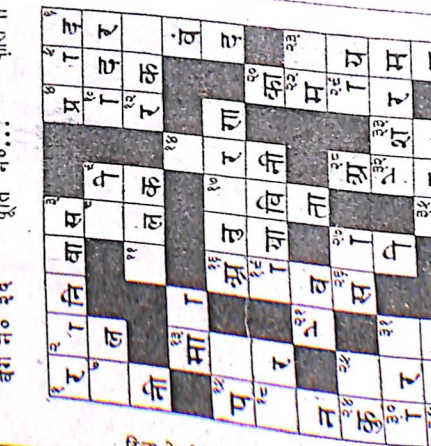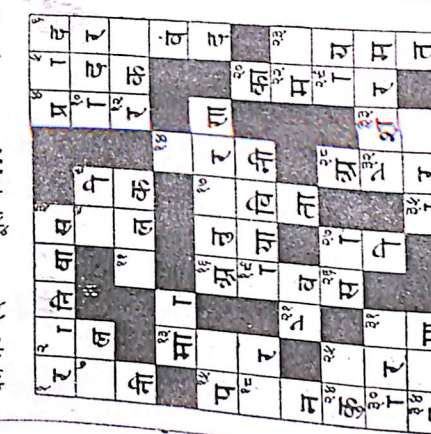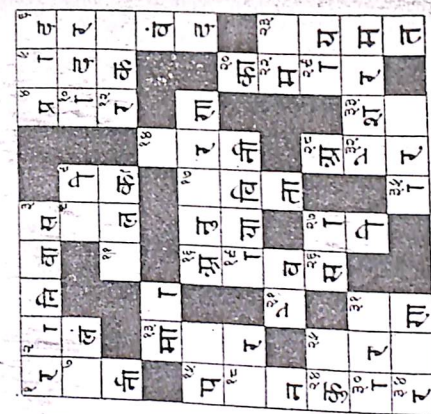
मुफ़्त कूपन की नक़ल यहाँ कीजिए।

वर्ग नं० ३६ मुफ़्त कूपन पूर्ति नं०...

इस लाइन से काटिए

वर्ग नं० ३६ पूर्ति नं०... फ़ीस ।।)

वर्ग नं० ३६ पूर्ति नं०... फ़ीस ।।

नाम ________ पता ________

नोट—ये तीनों कूपन यहाँ एक साथ केवल एक व्यक्ति के भरने के लिए दिये जा रहे हैं। तीनों कूपनों को एक साथ काट कर भेजना चाहिए। जो एक कूपन भेजना चाहें वे दो को यों ही छोड़ दें। जो दो भेजेंगे उन्हें तीसरे कूपन की फ़ीस न देनी पड़ेगी। यानी वे १) में तीनों कूपन भेज सकेंगे। विशेष ब्योरा पृष्ठ ९४ पर देखिए।

रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा रहित और पूरा है।

शंका-समाधान

(१) वाहक नहीं वाचक

वाहक की परीक्षा कठिन स्थान पर नहीं बल्कि विषम क्षेत्र मे होती है। कठिन स्थान से वर्ग-निर्माता का अभिप्राय कठिन स्थल से है। प्रायः कथावाचक सामान्य स्थानों की कथा तो वड़े सर्राटे से सुनाते हैं; पर ऐसे स्थलों पर, जहाँ दार्शनिक भाव होते हैं, वे या तो कथा को छोड़ देते हैं, या ऐसे ढंग से कहते हैं कि श्रोताओं की समझ में कुछ भी नहीं आता। इसी लिए एक कहावत चल पड़ी है कि—"विद्वानों की परीक्षा भागवत में होती है।" यही वर्ग-निर्माता का अभिप्राय था और इसीलिए उसने 'कठिन स्थान' शब्द का प्रयोग किया है। वाचक साहित्य से संबधित है और वाहक से साहित्य का कोई संवंध नहीं। इस दृष्टि से भी वाचक शब्द देना ही अधिक उपयुक्त है।

(२) हरवाह नहीं चरवाह

चरवाह की जरूरत हर गाँव में पड़ती है। क्योंकि ऐसा कोई गाँव नहीं जहाँ पशु न पाले जाते हों; पर ऐसे बहुत से गाँव हैं जहाँ खेती नहीं होती अतः वहाँ हरवाह नहीं होते। अभिप्राय यह कि हरवाह के विना तो अनेक गाँवों का काम चल जाता है, पर चरवाह के विना किसी गाँव का काम नहीं चलता। इसी कारण से चरवाह अधिक शुद्ध माना गया है।

(३) माछ नहीं गाछ

एक प्रकार की मछली, जो 'रेगमाही' कहलाती है, रेत में पैदा होती है, पर गाछ ऐसा कोई नहीं होता जो विना पानी के जीवित रह सकता हो। अतः गाछ ही अधिक ठीक है।

वर्ग नं० ३४ पर शंकायें

नं० ३० ऊपर से नीचे

संकेत—"वहुत से लोग इसके लिए अपने को तैयार करते हैं"। इसमें हरख और दरब २ शब्द बनते हैं जिसमें मुझे तो दरब ही विशेष उपयोगी प्रतीत होता है। क्योंकि हरख होता है, खुशी, प्रसन्नता, हर्ष; और दरब के माने हैं, धन-दौलत, लक्ष्मी, इत्यादि। संसार में ऐसा कौन प्राणी है जिसको दौलत पाने की इच्छा न होगी और वह इसके लिए अपने को तैयार नहीं करेगा और इसके पाने पर प्रसन्न नहीं होगा! अतः यहाँ पर दरव ही अत्यन्त उपयुक्त होगा!

नं० ३० बायें से दाहिने,

संकेत—"प्राचीन आर्य इसे बहुत पवित्र मानते थे", यहाँ पर हवि और दधि २ शब्द वनते हैं। जिनमें हवि वह द्रव्य है जिसकी आहुति दी जाय, हवन की वस्तु; और दधि माने जमाया हुआ दूध, दही, वस्त्र। यह देखना है कि इन दोनों में कौन सा यहाँ पर उपयुक्त है। प्राचीन काल से जिस प्रकार लोग दोनों ही वस्तुओं को पवित्र मानते चले आये हैं अब भी दोनों वस्तुएँ उसी प्रकार पवित्र मानी जाती हैं और शुभ और पवित्र कार्यों में इन दोनों ही वस्तुओं का रहना अनिवार्य समझा जाता है। फिर यह कहना न्याय-संगत न होगा कि प्राचीन आर्य हवि को ही पवित्र मानते थे और दधि, दूध के लिए कोई स्थान नहीं था।

नं० ३२ वायें से दाहिने

संकेत—"यह वाँस से वनता है"। ढरका एवं खरका यहाँ पर दो शब्द वनते हैं। जिनमें ढरका, वाँस की वह नली जिससे चौपायों के गले में दवा उतारते हैं। खरका तिनका, अथवा वाँस की वह बहुत छोटी और पतली-सी सींक जिससे भोजनोपरान्त खोदकर दाँत साफ़ करते हैं। यहाँ पर आपके संकेत के मुताबिक़ ढरका शब्द विलकुल अनुपयुक्त, निरर्थक, निर्मूल और अन्याययुक्त है। क्योंकि आपका संकेत केवल यही बतलाता है कि वह वाँस का बना हुआ होता है। वाँस की वनी हुई तो अनेक वस्तुएँ होती हैं किन्तु यहाँ पर विशेष कर खरका अधिक उपयुक्त होगा। क्योंकि यहाँ पर 'रका' केवल दो ही अक्षर हैं। इसलिए यदि 'ख' को न जोड़कर हम दूसरा अक्षर उसके स्थान पर रखते हैं तो वह निरर्थक होता है। यदि आपको ढरके से ही विशेष प्रेम था अथवा आप ढरके को ही विशेष महत्त्व देना चाहते थे तो संकेत में इतना लिखा रहना अनिवार्य था कि "वाँस की वह नली अथवा वस्तु जिससे चौपायों के गले में दवा उतारते हैं।"

भवदीय

एस० के० केडिया हरिसनरोड, कलकत्ता
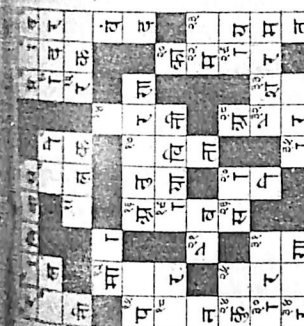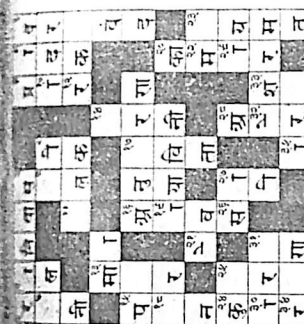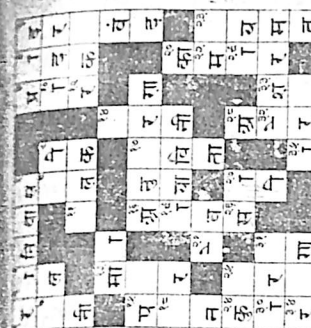
अपनी याददाश्त के लिए वर्ग ३६ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ कर लीजिए, और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

इस लाइन से काटिए

वर्ग नं० ३६ मुफ़्त कूपन पूर्ति नं०...

वर्ग नं० ३६ पूर्ति नं०... फ़ीस ।।)

वर्ग नं० ३६ पूर्ति नं०... फ़ीस ।।)
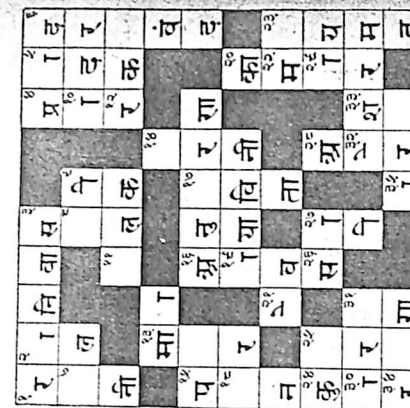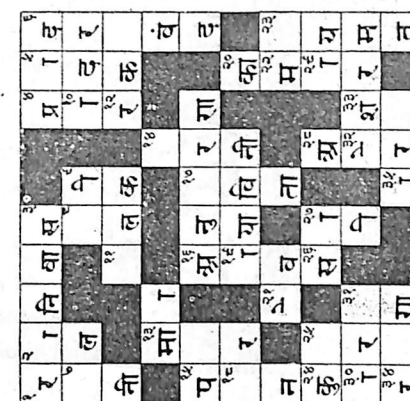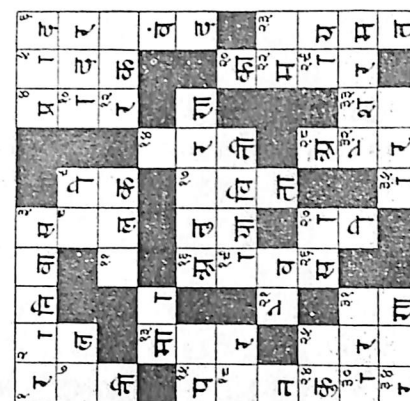
रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रारहित और पूर्ण हैं

नाम ———— पता ————

नोट—ये तीनों कूपन यहाँ एक साथ केवल एक व्यक्ति के भरने के लिए दिये जा रहे हैं। तीनों कूपनों को एक साथ काटकर भेजना चाहिए। जो एक कूपन भेजना चाहें वे दो यों ही छोड़ दें। जो दो भेजेंगे उन्हें तीसरे कूपन की फ़ीस न देनी पड़ेगी। यानी वे १) में तीनों कूपन भेज सकेंगे। विशेष ब्योरा पृष्ठ ९४ पर देखिए।

आवश्यक सूचनायें

(१) इस बार पाठक देखेंगे कि एक कूपन में एक नाम से अधिक भरने की गुंजाइश नहीं है परन्तु प्रत्येक कूपन में ऐसी सुविधा की गई है कि वर्ग नं० ३६ की तीन पूर्तियाँ एक साथ भेजी जा सकेंगी। दो आठ आठ आने की और तीसरी मुफ़्त। मुफ़्त पूर्ति सिर्फ़ उन्हीं की स्वीकार की जायगी जो दो पूर्तियों के लिए १) भेजेंगे। और तीनों पूर्तियाँ एक ही नाम से भेजेंगे। एक पूर्ति भेजनेवाले को भी पूरा कूपन काटकर भेजना चाहिए और दो ख़ाने ख़ाली छो[ड़] देने चाहिए।

(२) स्थानीय पूर्तियाँ 'सरस्वती-प्रतियोगिता-बक्स' में जो कार्यालय के सामने रक्खा गया है, दिन में दस और पाँच के बीच में डाली जा सकती हैं।

(३) वर्ग नम्बर ३६ का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुह[र] लगाकर रख दिया गया है, ता० २९ जुलाई सन् १९३९ को सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में ११ बजे दिन में सर्वसाधार[ण] के सामने खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें स्व[यं] उपस्थित होकर उसे देख सकते हैं।
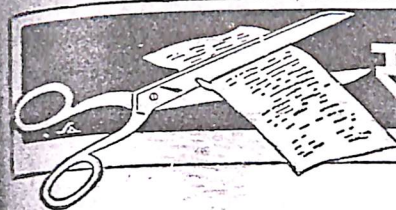
सामयिक साहित्य

दक्षिण-अफ़्रीका के प्रवासीभारतवासी

'हिन्दू' में श्री भाई परमानन्द जी लिखते हैं—

अफ़्रीका में पहले हबशी ही आबाद थे, यही वहाँ के वास्तविक मूल-निवासी हैं। जब योरप की जातियों ने उत्तर और दक्षिण-अमरीका पर अपना प्रभुत्व जमाया तो उन्होंने अमरीका के खेतों पर कार्य करने के लिए अफ़्रीका के हबशियों को दास बना कर जहाज़ में भर भर कर भेजना शुरू कर दिया और एक बड़ा भारी दासों का व्यापार होने लगा। १८वीं शताब्दी में इँग्लेंड में दास-प्रथा के विरुद्ध एक आन्दोलन खड़ा हो गया जिसके कारण १८३४ में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने दास-प्रथा के विरुद्ध क़ानून बना दिया और इस प्रकार ब्रिटिश उपनिवेशों के दास आज़ाद कर दिये गये। परिणाम यह हुआ कि हबशी लोगों ने काम करना छोड़ दिया। उपनिवेशों की अवस्था बिगड़ने लगी। इँग्लेंड की सरकार को चिन्ता हुई और १८४२ में पार्लियामेंट ने यह योजना की कि हिन्दुस्तान से ५ वर्ष के इकरार पर मज़दूर भरती किये जायँ और यह उपनिवेशों में खेतों तथा अन्य स्थानों पर काम करें। उस समय के हिन्दुस्तानी मज़दूर बनकर अफ़्रीका और दक्षिणी अमरीका जाने लगे। साठ, सत्तर वर्ष के पश्चात् मुझे दक्षिणी अफ़्रीका और दक्षिणी अमरीका जाने का अवसर मिला। मैंने देखा कि इन दोनों भू-भागों में लाखों हिन्दुस्तानी बसे हुए हैं। उनमें से कुछ दूकानदारी और व्यापार करने के कारण धनी बन गये हैं और कुछ शिक्षित होकर उच्च पद प्राप्त कर रहे हैं।

इनकी रहन-सहन प्रायः अँगरेज़ी हो चली थी। इनके बच्चों को हिन्दी या हिन्दुस्तान की कोई भाषा नहीं आती थी। प्रायः अँगरेज़ी भाषा ही बोलते थे। दक्षिणी अफ़्रीका और दक्षिणी अमरीका के उपनिवेशों में एक भारी अन्तर यह था कि जब मैं ब्रिटिश गायना (दक्षिण-अमरीका) में गया तो वहाँ के हिन्दुस्तानियों को यह ध्यान भी न आता था कि कोई स्वतन्त्र हिन्दुस्तानी ब्रिटिश गायना में जा भी सकता है। मुझसे वह बार-बार यही पूछते थे कि तुम कौन से जहाज़ में भरती होकर आये हो। परन्तु दक्षिण-अफ़्रीका की अवस्था बिलकुल ही और थी। अफ़्रीका और हिन्दुस्तान निकट होने के नाते यहाँ का परस्पर सम्बन्ध रहा है। इसलिए जब हिन्दुस्तान के मज़दूर भरती होकर हज़ारों की संख्या में अफ़्रीका में जाने लगे तो उनके पीछे पीछे हिन्दुस्तानी व्यापारी भी बहुत संख्या में गये। इस प्रकार वहाँ दो प्रकार के हिन्दुस्तानी हो गये, एक मज़दूर, दूसरे दुकानदार। परिणाम यह हुआ कि मज़दूर लोगों में से कई एक अपने इकरार समाप्त होने पर छोटा-मोटा व्यवसाय आरम्भ करके गुज़र करने लगे। जितने दक्षिणी अफ़्रीका में कारख़ाने बने, रेलवे लाइन बनी, खानें खुदीं और खेती आदि में उन्नति हुई उन सबका श्रेय भारतीयों के कड़े परिश्रम और कठोर मेहनत को ही है।

एक प्रकार से यूँ कह सकते हैं कि हिन्दुस्तानियों ने ही इन उपनिवेशों को बनाया। परन्तु गोरी-जाति इनसे घृणा और द्वेष करती थी। गोरे यह सहन न कर सके कि हिन्दुस्तानी दुकानदारी करें, अच्छे घरों में रहें, अच्छा खायें-पियें। इन लोगों ने हिन्दुस्तानियों को नीचे दबाने के प्रत्येक साधन बर्ते।

महात्मा गांधी के राजनैतिक जीवन का पहला भाग दक्षिणी अफ़्रीका के हिन्दुस्तानी आन्दोलन में ही गुज़रा। फिर भी अफ़्रीका की यूनियन पार्लियामेंट हिन्दुस्तानियों के विरुद्ध क़ानून बनाती रही। इस समय एक नया क़ानून पार्लियामेंट में उपस्थित है जो एक धारा-सभा में पास होकर दूसरी में पास होनेवाला है। इसका उद्देश्य यह है कि हिन्दुस्तानियों के लिए एक स्थान नियत कर दिया जाय, जहाँ वे रहन-सहन कर सकें और किसी स्थान पर न वे बस सकें और न कार-व्यवहार कर सकें। इस

क़ानून के विरुद्ध हिन्दुस्तानी बड़ा भारी आन्दोलन कर रहे हैं। हिन्दुस्तान के समाचार-पत्रों और यहाँ के सार्वजनिक कार्यकर्ताओं की सहानुभूति अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों के साथ है। भारतसरकार भी अपना प्रभाव काम में ला रही है कि ऐसी नाज़ुक परिस्थिति में गोरे-काले का प्रश्न खड़ा नहीं करना चाहिए; परन्तु दक्षिणी उपनिवेश की सरकार स्वतन्त्र है, वह कुछ भी सुनने को तैयार नहीं होती।

'अग्रगन्ता झुण्ड बनाम उग्रवादी संघ'

इस समय कांग्रेस में कई दल हो गये हैं, यद्यपि इनमें से एक भी अभी तक ज़ोर नहीं पकड़ सका है। साप्ताहिक 'प्रताप' ने उनमें से दो दलों का अच्छा परिचय दिया है। उसी का मुख्यांश यहाँ संकलित किया गया है—

श्री मानवेन्द्रनाथ राय ने चन्द दिनों पहले एक लीग बनाई थी। उसका नाम है लीग आफ़ रेडिकल कांग्रेसमैन या उग्र कांग्रेस-जन-संघ। इधर सुभाष बाबू ने एक फ़ारवार्ड ब्लाक या अग्रगामी झुण्ड संगठित करने की घोषणा की है। अभी हाल के समाचार-पत्रों में राय साहब के इस उग्र संघ की नीति की घोषणा हो गई है। वह संघ सुभाष बाबू के अग्रगन्ता झुण्ड के साथ मिल कर चलने को तैयार है। लेकिन उसने कुछ शर्तें पेश की हैं। वे शर्तें तीन हैं—पहली शर्त यह कि गांधीवाद को पूरा अस्वीकार या बहिष्कार किया जाय; दूसरी शर्त यह है कि इन्क़लाबी राष्ट्रीयता के फ़िलसफ़े को मंज़ूर किया जाय; और तीसरी शर्त यह कि कांग्रेस में नई नेतागीरी क़ायम करने-कराने की ज़रूरत मान ली जाय।

अभी तक सुभाष बाबू ने अपने अग्रगन्ता झुण्ड के मुताल्लिक़ जो बातें बतलाई हैं उनसे यह ज़ाहिर होता है कि वे गांधीवाद या गांधीनेतृत्व को उखाड़ फेंकने के पक्ष में नहीं हैं। लेकिन बहुत मुमकिन है कि राय बाबू के सहयोग और साहचर्य्य से सुभाष बाबू अपनी नीति में परिवर्तन करने की बात की मुनासिबत पर विचार करें और राय महाशय-द्वारा निर्दिष्ट शर्त्त-त्रयी को मंज़ूर कर लें। उग्रवादी संघियों को इस बात का यक़ीन है कि गांधीवाद की बदौलत मुल्क में तीन चीज़ें फैल रही हैं—(१) नव विधानवाद, (२) सुधारवाद और (३) अधिकारवाद।

नव विधानवाद क्या है? यह कि हम लोग असेम्बलियों में हैं, प्रान्तीय शासन कर रहे हैं, किसानों और मज़दूरों के हित के लिए क़ानून बना रहे हैं और यथासाध्य जनता को थोड़ी-बहुत राहत पहुँचाने की कोशिश कर रहे हैं इसलिए कि जनता लाभान्वित हो, इससे उसके हृदय में कांग्रेस के प्रति प्रतिष्ठा बढ़े और आगे आनेवाले स्वातन्त्र्य युद्ध में वह कांग्रेस का ज़ोरों के साथ साथ दे। क्रान्ति और इन्क़लाब को उग्रवादी संघ नव विधानवाद समझता है। इसी तरह जनता की ज़िन्दगी को चन्द क़ानूनी सहूलियतों के ज़रिये बेहतर बनाने की कोशिशों का अर्थ इन क्रांतिकारियों के नज़दीक सुधारवाद है, क्योंकि उनका ख़याल है कि इससे जनता में क्रांतिमयी मनोवृत्ति का [illegible] होता है। और अधिकारवाद यह है कि कांग्रेस में जो गांधी जी कहते हैं वही होता है, और किसी की चलने नहीं पाती, इसलिए इस अधिकारवाद का लोप होना चाहिए।

हमारा यह कहना है कि अभी तक देश के कार्यक्रम के मुताल्लिक़ जितनी बातें उन आदमियों ने, जो अपने को क्रान्ति का ठेकेदार कहते हैं, कही हैं वे सब ग़लत साबित हुई हैं। क्रान्तिवादी कहते थे, मन्त्रित्व पद स्वीकार न करो। अनुभव ने बतलाया कि उनकी बात निहायत ग़लत थी। वे कहते थे, देशी रजवाड़ों में सीधे कांग्रेस-द्वारा आन्दोलन किया जाय। अनुभव ने बतलाया कि हरिपुरा कांग्रेस की नीति बहुत मौज़ूँ और ठीक रही। [illegible] व्यावहारिकता में आपका नेतृत्व न केवल हानिप्रद, बल्कि देश-हित-घातक सिद्ध होता है और अनुभव से आपकी बातें ग़लत साबित होती हैं तब आप नये-नये शब्द गढ़ते हैं और कहते हैं कि वह नव विधानवाद है, यह सुधारवाद है, यह अधिकारवाद है और इस तरह आप अपने [illegible] इन्क़िलाबवाद का परिचय देकर कोसने लगते हैं गांधीवाद को। यह अच्छा मज़ाक़ है।

हम जानना यह चाहते हैं कि सुभाष बाबू इस उग्रवादी संघ के नीति-निर्देश के सम्बन्ध में क्या करते हैं? अगर उन्होंने इसे स्वीकार न किया तो नतीजा [illegible] है। वह यह कि अग्रगन्ता झुण्ड अलग रहेगा और उग्रवादी संघ अलग रहेगा और इसका कुल लुब्बे लुबाब यह निकलेगा कि कांग्रेस में चार दल हो जायँगे—(१) अग्रगन्ता झुण्ड, (२) उग्रवादी संघ, (३) कांग्रेस साम्यवादी दल और (४) वर्गवादी (कम्युनिस्ट विचारवादी) दल।

जर्मनी तब और अब

श्री गिरधरदत्त शुक्ल ने अभ्युदय में उपर्युक्त शीर्षक में जर्मनी के सम्बन्ध में जो ज्ञातव्य लेख लिखा है उसका मुख्यांश यह है—

क़ैसर विलहेल्म द्वितीय ६,८०,००,००० की आबादी तथा २,०८,८३० वर्गमील भूमि पर शासन करता था। महायुद्ध के पूर्व जर्मनी योरप की महा-शक्तियों में तीसरा स्थान रखता था।

वार्साई की सन्धि के पश्चात्, जर्मनी का २०,००,००० आबादी तथा ५,६०० वर्गमील वाला लोरेन का प्रान्त फ्रांस के हाथों चला गया। पोलैण्ड को सबसे बड़ा टुकड़ा (१७,८१६ वर्गमील), जिसकी आबादी ३८,५०,००० थी, मिला, साथ ही साथ पोलैण्ड के लिए सामुद्रिकमार्ग "पोलिश कॉरिडर", भी मिला, सन् १९२१ में जनता के वोट लेने के पश्चात्, वोटरों की अधिकांश संख्या जर्मनी के पक्ष में होते हुए भी, जर्मनी का दक्षिण-पूर्वी भाग अपर साइलेशिया का खनिज और धनवान् कारोबारी क्षेत्र पोलैंड को दे दिया गया।

केवल १२२ वर्गमील का ४८,००० आबादीवाला प्रान्त ज़ेकोस्लोवाकिया को जर्मनी से मिला था। बेलजियम को यूपेन और मालमेडी के सरहदी छोटे छोटे ज़िले मिले। सार्वजनिक वोट लेने के पश्चात् डेनमार्क को उत्तरी स्कलेस्यिंग, आजकल उत्तरी जटलैंड के नाम से विख्यात है, मिला। उत्तर-पूर्व में जर्मनी का लगभग ३,३०,००० की आबादीवाला ७६४ वर्गमील का डेंज़िग और उसका अन्तर्प्रदेश ले लिया गया। लिथुआनिया को बाल्टिक-सागर में बन्दर-स्थान देने के इरादे से मेमेल और उसका अन्तःप्रदेश जो १,४०,००० की आबादीवाला और क्षेत्रफल में १,०५७ वर्गमील था, उसके हाथों में दे दिया गया था। सार बेसिन (७३८ वर्गमील, आबादी ७,५०,०००) राष्ट्रसंघ के हाथ पन्द्रह वर्षों के लिए सौंप दिया गया, जो अब एक सार्वजनिक वोट के पश्चात् फिर जर्मनी को लौटा दिया गया।

परिणामस्वरूप जर्मनी को २२,००० वर्गमील के भागों से (जो आबादी में ६५,००,००० था और अन्य राष्ट्रों को दे दिया गया) हाथ धोना पड़ा।

आज का जर्मनी विलहेल्म द्वितीय के समय के जर्मनी से कहीं बड़ा है। आस्ट्रिया-सम्मिलन ने जर्मनी को क्षेत्रफल में ३२,३५२ वर्गमील और आबादी में ६७,५४,००० बढ़ा दिया। अब जर्मनी ने १,५२,३९,००० आबादीवाला ५४,८७७ वर्गमील का ज़ेकोस्लोवाकिया भी अपने अधिकार में कर लिया। आधुनिक जर्मनी का क्षेत्रफल २४,२४,५९४ वर्गमील और आबादी लगभग ९,००,००,००० है। अब जर्मनी योरप में रूस के बाद दूसरा सबसे बड़ा राष्ट्र है और रूस को दृष्टिकोण में रखते हुए भी संसार का सबसे बड़ा शक्तिशाली राष्ट्र है।

आस्ट्रिया और ज़ेकोस्लोवाकिया को पी जाने से जर्मनी को सामरिक रूप से काफ़ी लाभ हुआ। आस्ट्रिया के पास २,००,००० रिज़र्व सैनिकों के अतिरिक्त कुल ६०,००० सैनिक थे। आस्ट्रिया की हवाई शक्ति (एक सौ अस्सी हज़ार हवाई जहाज़, जो इटली के बने हुए थे) बहुत कम थी। सेना के मोटरयुक्त विभाग में इकतीस टैन्क्स और अनेकों आर्म्ड कारें भी थीं। अलपाइन फ़ौज जो पर्वतीय युद्धों के लिए शिक्षित की गई थी, वास्तव में जर्मनी के लिए बड़े ही काम की सिद्ध हो रही है।

ज़ेकोस्लोवाकिया के पास १,७०,००० की स्थल-सेना १२,६०० की अन्य सैनिक तौर पर सङ्गठित शक्तियाँ, और ५६६ मशीनों सहित ६,६०० आदमियों की हवाई शक्तियाँ थीं।

किसी भी समय काम में लाई जाने योग्य रिज़र्व शक्तियाँ संख्या में कम से कम ४,००,००० थीं।

इसलिए बारह माह से भी कम समय में जर्मनी की सैनिक शक्ति ७,५०,००० मनुष्यों द्वारा और बढ़ गई, और इस प्रकार सैनिकों की संख्या रूसी सैनिकों की अपेक्षा अधिक होने के साथ-साथ जर्मनी की सेना योरप में सर्वाधिक शक्तिशाली हो गई है।

देशी राज्यों का सुधार

जून के दूसरे सप्ताह में बम्बई में देशी राज्यों के राजाओं और मन्त्रियों की एक महत्त्वपूर्ण बैठक हुई। यह बैठक इसलिए हुई कि संघशासन-सम्बन्धी ब्रिटिश सरकार के संशोधित 'आदेशपत्र' के सम्बन्ध में वे अपनी स्वीकृति या अस्वीकृति प्रकट कर दें। इस बैठक में ५० राजे, ५० राजाओं के प्रतिनिधि तथा १०० राजाओं के मन्त्री शामिल हुए थे। इसके १० जून के संयुक्त सम्मेलन के अध्यक्ष नरेन्द्रमण्डल के अध्यक्ष जाम साहब हुए थे। उन्होंने अपने भाषण में देशी राज्यों की वर्तमान राजनैतिक समस्या पर भी प्रकाश डालने की कृपा की है। भाषण के उक्त अंश का सारांश यह है—

राजा लोग इस विचार से पूर्णतः सहमत हैं कि राज्यों के शासन में सुधार राजाओं की ओर से अपने अपने राज्य में होना चाहिए। मगर शासन-सुधार और राज्यों के वैधानिक सुधार में स्पष्टतः अन्तर होना चाहिए और वैधानिक सुधार किस प्रकार और किस क़दर होना चाहिए इसका भार केवल शासकों पर व्यक्तिगत रूप से है और हिन्दुस्तानी राजा अपने राज्य की स्थिति और साधन का ध्यान रखते हुए उन्नति के विरोधी नहीं हैं मगर वे किसी बाहरी दल का यह अधिकार नहीं मानते कि वह रियासतों के वैधानिक सुधार के मामले में उन लोगों को हुक्म दे या तंग करे।

यद्यपि अलग अलग राज्यों के अन्दर के सुधार का भार मुख्य करके वहाँ के शासकों पर है, तथापि राजाओं ने अपनी कल की सभा में सर्वसम्मति से यह इच्छा प्रकट की है कि राज्यों से यह सिफ़ारिश की जाय कि वे अपने शासन की परीक्षा नीचे लिखी कसौटी से करें—

(क) इस बात का विशेष प्रयत्न हो कि (१) राज्यों की शान्ति-रक्षा के लिए स्पष्ट क़ानून हों, (२) ला ग्रेजुएटों या न्याय की मानी हुई शिक्षाप्राप्त व्यक्तियों-द्वारा नियमित रूप से अदालतों का काम हो, (३) आधुनिक अस्त्र-शस्त्र और सामान से सुसज्जित योग्य अफ़सरों के अधीन योग्य और काफ़ी पुलिस हो।

(ख) शासक का व्यक्तिगत ख़र्च और राज्य का ख़र्च अगर पहले न किया गया हो तो अब स्पष्टरूप से विभाजित कर दिया जाय और शासक का ख़र्च उचित आधार पर ठहराया जाय जैसा कि नरेन्द्रमण्डल ने निश्चय किया है।

(ग) शिक्षा, चिकित्सा, खेती, स्वास्थ्य, सड़क-सुधार आदि राज्य के लाभदायक कार्यों के लिए पाँच या दस वर्ष की एक स्पष्ट योजना तैयार की जाय।

(घ) राज्यों की सरकारें ब्रिटिश हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तानी रियासतों में बसनेवाले प्रजा की दशा सुधारने के उन क़ानूनों से पूरी जानकारी रक्खें जो उनकी रियासत के लिए उपयोगी हों जैसे—क़र्ज़दारी मिटानेवाला क़ानून। और इन क़ानूनों के विषय में तुरंत विचार करें।

(ङ) इस सलाह पर विचार किया जाय कि राज्यों में ऐसी स्थायी आज्ञा जारी कर देना चाहिए कि राज्य के मातबर और निष्पक्ष आदमियों की गवाही के साथ की गई अफ़सर की भ्रष्टता या अनीति की शिकायत की उचित जाँच की जायगी।

हमें इस विषय पर भी विचार करना है कि कुछ ब्रिटिश भारतीय लोग कुछ रियासतों के विरुद्ध नाशक आन्दोलन चला रहे हैं। अगर यह रुख बढ़ने दिया गया तो इसका कुपरिणाम यह होगा कि हिन्दुस्तान की एकता और नियमित उन्नति में बाधा डालनेवाली बुराई और विरोध उत्पन्न होगा। मैं समझता हूँ कि महात्मा गांधी ने राज्य की सामूहिक सविनय अवज्ञा बन्द करने के लिए जो वक्तव्य दिया है और सर सिकन्दर हयात ख़ाँ ने राज्यों की न्यायपरता पर विश्वास करने पर जो कह दिया है वह बहुत ठीक है और अगर उसके अनुसार सचाई से अमल किया जाय तो ब्रिटिश भारत और राज्यों का सम्बन्ध सुधारने में सहायता मिलेगी। ("आज" से)

स्त्रियों का अपहरण

भारत के अनेक प्रश्नों में स्त्रियों के अपहरण का मसला कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। बंगाल में तो स्त्री-अपहरण की समस्या भीषण रूप धारण कर गई है। परन्तु अन्य प्रान्तों में भी उसका कम ज़ोर नहीं है। स्त्री-अपहरण करने की साज़िश का जो मुक़दमा हाल में जबलपुर में हुआ है उससे इस भयानक मसले पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। उक्त मामले से तो यह प्रकट होता है कि लोगों ने स्त्रियों को बेचने का धन्धा उठा लिया है। अभियुक्तों की अपील ख़ारिज करते हुए जस्टिस पोलक ने लिखा है—

इस साज़िश में तीन प्रान्तों—युक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त और पंजाब के लोग शामिल थे और इस दृष्टि से यह भारत में अपने ढंग का पहला ही मुक़दमा कहा जाता है। मध्यप्रान्त की ख़ुफ़िया पुलिस ने युक्तप्रान्त और पंजाब की पुलिस की सहायता से, कई महीने की दौड़धूप के बाद, इस दल का पता लगाया, जो कहा जाता है कि २०–२१ साल से यह पाप व्यवसाय करता आ रहा था।

सबूत पक्ष के बयान के अनुसार इस दल के लोग मध्यप्रान्त और युक्तप्रान्त से स्त्रियों का हरण करते और पंजाब के नसीरपुर क़सबे में मुंशीसिंह के मकान पर पहुँचाते थे, जहाँ से वे सबसे ऊँचा दाम देनेवाले गाहक के हाथ बेची जाती थीं।

हरी जानेवाली स्त्रियों में कुछ विधवायें और कुछ ऐसी स्त्रियाँ होती थीं जिनका दाम्पत्य जीवन दुःखमय होता था। उनसे कहा जाता था कि तुम्हारा ब्याह थानेदार या दूसरे बड़े आदमी से करा दिया जायगा। कुछ को तीर्थस्नान के लिए प्रयाग, हरद्वार आदि चलने की प्रेरणा की जाती थी और जहाँ वे दलवालों के पंजे में आईं, वहाँ सीधे नसीरपुर पहुँचा दी जाती थीं। मुंशीसिंह को लिख दिया जाता था कि "एक बोरा मूँगफली भेज दी गई।" नसीरपुर में स्त्रियाँ मुंशीसिंह के मकान के अलग अलग खण्डों में रक्खी जातीं और उन पर कड़ा पहरा-चौकी रक्खी जाती थी। ख़रीदारों के सामने वे लाकर खड़ी की जाती थीं और अन्त में सबसे ऊँची बोली बोलनेवाले के हाथ बेच दी जाती थीं। उन्हें धमकाया जाता था कि ख़रीदार के साथ चुपचाप न चली गईं तो जान से हाथ धोओगी। बिक्री की आमदनी से चार आने उड़ाकर लानेवालों को दिया जाता था, बारह आना मुंशीसिंह की जेब में जाता था।

इस साज़िश का भंडाफोड़ रामकली नाम की एक स्त्री ने किया था जो अभियुक्त के कब्ज़े से निकल भागी थी और जिसने अभियुक्तों का पता पुलिस को दिया था। फलतः पुलिस ने साज़िश करनेवालों को पकड़ा और उन पर मुक़द्दमा चलाया। अभियोग सिद्ध हो जाने पर साज़िश करनेवाले मुंशीसिंह, सूरज नरायन, साधूसिंह और हनुमन्तराय को १०-१० साल, मुसम्मात जयकुँवर और शिवसिंह को ७-७ साल और हरिराम, खेमकरन, विश्वनाथ और प्रसादी अभियुक्तों को, जिन पर केवल स्त्रियों के चुराने का अभियोग था, ५-५ साल की सज़ा मिली है।

कौन जाने, देश के भिन्न भिन्न भागों में ऐसे कितने अड्डे होंगे। पुलिस का, उसके साथ साथ नागरिकों का भी यह कर्तव्य होना चाहिए कि ऐसे समाजद्रोहियों और अनाचारियों का पता लगाकर उनका उन्मूलन कर डालना चाहिए।

महात्मा गांधी की प्रशंसा

अभी हाल में लंदन में 'हिन्दू-असोसिएशन' के तत्त्वावधान में एक सार्वजनिक सभा हुई थी। उस सभा में सभी धर्मों के नामी-नामी व्यक्ति शामिल हुए थे। उसमें दर्शन-शास्त्र के अपूर्व विद्वान् सर सार्वपल्ली राधाकृष्णन ने अपने भाषण में महात्मा गांधी की बड़ी प्रशंसा की है। अपने भाषण के अन्त में उन्होंने कहा है—

महात्मा जी के जीवन के तीन महान् आदर्श हैं। प्रथम आदर्श भय से मुक्ति है और द्वितीय तथा तृतीय आदर्श हिंसा एवं अशांति से मुक्ति पाना है। इस प्रकार महात्मा गांधी ईश्वर की सजीव मूर्ति हैं। जिस प्रकार ईश्वर में भय, हिंसा एवं अशांति का लेश-मात्र नहीं है, उसी प्रकार महात्मा गांधी में भी उपर्युक्त गुण विद्यमान हैं। महात्मा जी के इन हृदयस्थ भावों को कोई भी नष्ट करने में समर्थ नहीं हो सकता है।

गांधी जी का कथन है कि हम लोगों को अवश्य ही सभ्य, सत्यवादी एवं अनुभवी होना चाहिए। वे यह भी कहते हैं कि हम लोगों का परम कर्तव्य मनुष्य-मात्र की सेवा होनी चाहिए और हमें मृत्यु की परवा न करके जीवन में कार्य करना चाहिए। मैं नहीं ख़याल करता कि जब से संसार की सृष्टि हुई तब से किसी ने पृथ्वी में ऐसी शिक्षा लोगों को दी हो।
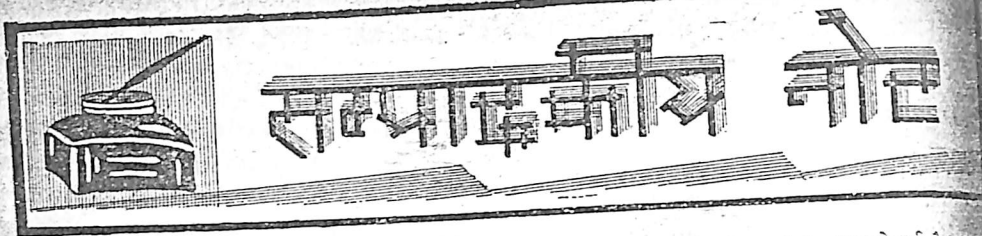
चीन और जापान

इसी जुलाई से चीन-जापान-युद्ध का तीसरा वर्ष पूरा हो जायगा। जापान ने चीन पर बिना युद्ध की घोषणा किये ही आक्रमण किया था। गत तीन वर्ष से यह अवैध भीषण युद्ध चल रहा है। जापान की प्रबल शक्ति के आगे बेचारा चीन नहीं ठहर सका और उसके सारे समुद्री तट के प्रान्त जापान के अधिकार में हो गये। चीन की राष्ट्रीय सरकार के सूत्र-सञ्चालकों को भाग कर देश के भीतरी भाग में आश्रय लेना पड़ा। इस संकट-काल में आत्मरक्षा के काम में चीन के नेताओं ने जिस दृढ़ता, साथ ही पराक्रम का परिचय दिया है उसको देखकर यही कहना पड़ता है कि आज का चीन पहले का चीन नहीं है, किन्तु वह देशभक्तों का चीन है, जो अपने देश की स्वाधीनता की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व हँसते हँसते उत्सर्ग कर रहे हैं। चीन के राष्ट्रपति च्यांगकाईशेक बार बार हार कर भी दूने उत्साह से जापान का विरोध करते जा रहे हैं। उन्होंने देश के भीतरी भाग में जाकर चिगचुङ्ग नगरी को अपनी राजधानी बनाया है और वहाँ से बड़े धैर्य के साथ चीन की सामरिक शक्तियों का संगठन कर सफलतापूर्वक जापान का विरोध कर रहे हैं। इस समय वे जापान से आमने-सामने का युद्ध नहीं कर रहे हैं, किन्तु उनके फ़ौजी दल छिपकर जापानियों पर धावा करने के काम में लगे हुए हैं और इन धावों से जापान का सारा आक्रमण का प्रोग्राम अस्तव्यस्त हो गया है। यही नहीं, उसकी इस दुरवस्था का एक यह प्रभाव भी हुआ है कि चीन के जो प्रान्त उसके क़ब्ज़े में आ गये हैं उन पर भी वह अपनी सत्ता अभी तक स्थापित नहीं कर सका है। चीन जैसे विशाल जाग्रत् राष्ट्र को पशुबल से पराधीन बना देना असम्भव काम है। और उस असम्भव को सम्भव करने में जापान संलग्न है। परन्तु सौभाग्य से चीन की कतिपय योरपीय राष्ट्र सहायता कर रहे हैं और युद्ध-सामग्री के पर्याप्त मात्रा में मिलने की अच्छी व्यवस्था हो गई है। एक ओर ब्रह्म देश से और दूसरी ओर मंगोलिया से युद्ध-सामग्री उसे भेजी जा रही है, जिससे सज्जित होकर चीनी योद्धा जापान के सारे उद्देश्यों को धूल में मिलाने के काम में तत्पर हैं। यदि चीन इसी तरह कर्तव्यक्षेत्र में डटा रहा तो अन्त में उसी की विजय होगी।

महात्मा गांधी का माहात्म्य

इधर कुछ समय से कतिपय देशी राज्यों में सत्याग्रह-आन्दोलन छिड़े हुए हैं। अपने राजकोट के अनुभव के आधार पर महात्मा गांधी ने अनिश्चित काल के लिए उनको स्थगित कर देने की सलाह दी है। इसके पहले उन्होंने अपने राजकोट के अनशन के सम्बन्ध में एक लेख लिखकर अपनी भूल स्वीकार की थी और संघ अदालत के प्रधान न्यायाधीश ने राजकोट के विवाद के सम्बन्ध में अपना जो निर्णय महात्मा जी के पक्ष में दिया था उससे लाभ उठाने का हक़ भी उन्होंने छोड़ दिया था। महात्मा जी की इन दोनों बातों को देखकर कितने ही लोग चकित हुए हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि उनके ये दोनों काम राजनैतिक दृष्टि से ठीक नहीं हुए हैं; परन्तु महात्मा जी कोरे राजनीतिज्ञ तो हैं नहीं, वे तो महात्मा भी हैं सत्य और अहिंसा के सिद्ध। उन्होंने राजकोट में देखा कि देशी राज्यों में सत्याग्रह-आन्दोलन चल नहीं सकेगा—उल्टा वहाँ हिंसा की भीषण प्रतिक्रिया शुरू हो जायगी। उन्होंने यह भी देखा कि देशी राज्यों के प्रजाजन स्वाधीनता या उत्तरदायी शासन प्राप्त करने के लिए आवश्यक त्याग करने को तैयार नहीं हैं। और यह तो वे पहले से ही जानते थे कि कांग्रेसी संस्थाओं में बेहद गंदगी भर गई है और कांग्रेस में एक ऐसा समूह अस्तित्व में आ गया है जिस पर उनका विश्वास नहीं है। इस अवस्था का सम्यक् रूप से अनुभव कर लेने पर गांधी जी कदापि चुप नहीं रह सकते थे। एक सिद्धहस्त कूटनीतिज्ञ की भाँति उन्होंने राजकोट के मामले में अपनी भूल स्वीकार की और देशी राज्यों के आन्दोलनों को रोक दिया। और कोई नेता ऐसा काम करता तो आज उसका कोई नाम भी न लेता, परन्तु महात्मा जी के सम्बन्ध में लोग कहते हैं कि उन्होंने ऐसा करके अपनी महत्ता का ही परिचय दिया है। इसमें सन्देह नहीं कि सत्य की जितनी अधिक निष्ठा महात्मा जी में है, उतनी और किसी में नहीं है। हरिश्चन्द्र और युधिष्ठिर, इन्हीं दो व्यक्तियों की सत्य-निष्ठा की कथायें भारत के प्राचीन साहित्य में पढ़ने को मिलती हैं। आज हम गांधी जी में सत्य की प्रत्यक्ष मूर्ति का दर्शन कर रहे हैं। इसी से उनमें यह विशेषता है कि उनकी नीति से सहमत न होते हुए भी सभी उनसे सहमत हो जाते हैं। इसी से उनकी हार भी जीत का रूप धारण कर लेती है। यह वास्तव में सौभाग्य की बात है कि भारत को उसके वर्तमान दुर्दिनों में ऐसा महात्मा नेता मिला है।

——

साम्प्रदायिक निर्णय का परिणाम

भारत के राजनीति के इतिहास में ब्रिटेन के भूतपूर्व प्रधान मंत्री श्री राम्से मैकडानल का नाम सदा बना रहेगा। प्रसिद्ध साम्प्रदायिक निर्णय उनकी भारत को सबसे बड़ी देन है। इसी महत्त्वपूर्ण निर्णय का यह भीषण परिणाम हुआ है कि आज भारत साम्प्रदायिक कलह का घर हो गया है। उनके उक्त निर्णय से ही इस देश में साम्प्रदायिकता को प्रामाणिकता और दृढ़ता प्राप्त हुई है। यों तो सम्प्रदायवाद का विष यहाँ पहले भी था, परन्तु इधर इस निर्णय ने उसे इतना सबल बना दिया कि कांग्रेस की सारी राष्ट्रीय भावना को उसने एक प्रकार से दबोच-सा लिया है। कांग्रेस ने वर्षों के परिश्रम से राष्ट्रीयता का जो व्यापक प्रचार किया था वह आज के सम्प्रदायवाद के आगे निस्तेज-सा हो गया है। यह सच है कि सम्प्रदायवाद अधिक समय तक मैदान में नहीं ठहर सकेगा, परन्तु आज तो उसी का सर्वत्र बोलबाला है। इस सच बात से कोई भी इनकार नहीं कर सकता। जिन प्रान्तों में मुसलमानों का बहुमत है और उन्हीं की सरकारें हैं, वहाँ ग़ैर-मुसलमानों के स्वत्वों की निर्दयतापूर्वक हत्या की जा रही है, यहाँ तक कि जो हिन्दू राष्ट्रीय भावना के लिहाज़ से अभी तक चुप थे वे भी अपना धैर्य खो बैठे हैं और अपने स्वत्वों की रक्षा के लिए विरोध का स्वर ऊँचा कर रहे हैं। इधर जिन प्रान्तों में कांग्रेसी सरकारें स्थापित हैं, वहाँ भी अल्पसंख्यकों अर्थात् मुसलमानों को सन्तुष्ट रखने के लिए न्याय का गला घोटा जा रहा है और हिन्दुओं के स्वत्वों की उपेक्षा की जा रही है। इस सारी व्याधि का मूल मैकडानल साहब का उक्त भयानक साम्प्रदायिक निर्णय ही है। देखें इस महाव्याधि से इस अभागे देश को कब छुटकारा मिलता है।

——

योरप में दलबन्दी का ज़ोर

अब जाकर ब्रिटेन ने अपनी कूटनीतिज्ञता का परिचय दिया है। अभी तक समझा जाता था कि ब्रिटेन में ऊँची श्रेणी के राजनीतिज्ञों का अभाव हो गया है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। म्यूनिख के समझौते के बाद जर्मनी ने जो धींगाधींगी की है उसे ब्रिटेन नहीं सह सका और उसने अपनी परम्परागत कूटनीति का आश्रय लेना ही मुनासिब समझा। संकट के समय सहायता का वचन देकर उसने रुमानिया, यूनान और पोलेंड को अपने हाथ में कर लिया है, साथ ही तुर्की से भी उसकी सन्धि हो गई है। भूमध्यसागर में युद्ध होने पर तुर्की ने ब्रिटेन की सहायता करने का वचन दिया है। उधर रूस से भी मैत्री करने की बातचीत शुरू ही थी। आशा है, शीघ्र ही रूस से भी उसकी सन्धि हो जायगी।

ब्रिटेन की इस कार्रवाई से जर्मनी भभक उठा है। उसने ताड़ लिया है कि ब्रिटेन उसके चारों ओर घेरा डालने का उपक्रम कर रहा है। एक प्रकार से यह घेरा है भी। परन्तु ऐसा करने के सिवा ब्रिटेन के हाथ में कोई दूसरा उपाय ही क्या था। जर्मनी और इटली की जो नीति इस समय है उसे देखकर योरप के छोटे राष्ट्र तो अपने दिन गिन रहे हैं, बड़े राष्ट्रों की भी नींद हराम हो गई है। ब्रिटेन का भूमध्यसागर का मार्ग और फ़्रांस का अफ़्रीका का ट्यूनीशिया प्रदेश आज भारी संकट में है। उधर जर्मनी और इटली का प्रभाव स्पेन पर बढ़ गया है, जिससे जेब्राल्टर का मोर्चा भी निरापद नहीं रह गया। इन सब बातों से ब्रिटेन और फ़्रांस के महत्त्व

के स्वार्थों को भारी ठेस पहुंची है। आत्मरक्षा के लिए तैयार होना उनके लिए आवश्यक हो गया है। परन्तु जर्मनी का कहना है कि उसका घेरा डाला जा रहा है। चाहे जो हो, इस बार फ्रांस और ब्रिटेन ने काफ़ी साहस का परिचय दिया है और छोटे राष्ट्रों की रक्षा करने का वचन देकर तथा रूस आदि से परस्पर सहायता करने की सन्धि की बात कर के आगे आ गये हैं। उनकी इस साहस-पूर्ण कार्रवाई का जैसा चाहिए, वैसा प्रभाव भी पड़ा है। जर्मनी और इटली दोनों इस समय चुप हैं और वे भी उन्हीं के जैसे कूटनीति के दाँव-पेच कर रहे हैं। डन्मार्क, लेटेविया और लुथिआनिया से जर्मनी की? आक्रमण करने की सन्धियाँ हो गई हैं और जुगोस्लेविया भी जर्मनी और इटली के मण्डल में लाया जा रहा है।

इस प्रकार इस समय योरप में अपने अपने दल का संगठन किया जा रहा है—ब्रिटेन और फ्रांस भी इटली और जर्मनी की तरह अपने दल को सबल करने में संलग्न हैं। तथापि इटली और जर्मनी का दल अधिक शक्ति-शाली जान पड़ता है। पिछले युद्ध में जर्मनी के साथ आस्ट्रिया, तुर्की और बलगेरिया थे। इस बार जर्मनी के दल में इटली, जापान, स्पेन, बलगेरिया और शायद जुगोस्लाविया शामिल होगा। आस्ट्रिया तो उसका एक अङ्ग ही हो गया है।

यह सच है कि ब्रिटेन और फ़्रांस निर्बल नहीं हैं। बेशक इटली और जापान एवं जुगोस्लेविया का सहयोग उन्हें इस बार नहीं मिलेगा, परन्तु तुर्की के साथ हो जाने और अमरीका की पूरी सहानुभूति होने से वे पहले की तरह अजेय बने हुए हैं।

और मज़ा यह कि यह दलबन्दी विश्व में शान्ति की स्थापना के नाम से हो रही है। हम नहीं जानते कि विश्व में अशान्ति के उत्पन्न करने के लिए कौन सा भीषण आयोजन किया जाता है।

चाहे जो हो, इतना स्पष्ट है कि ब्रिटेन और फ़्रांस दोनों राष्ट्र अपने अपने उत्तरदायित्व को समझते हैं और वर्तमान संकट से असावधान नहीं हैं। उनकी वर्तमान राजनैतिक चालों से तो यही प्रकट होता है, भले ही कुछ लोग वहाँ के प्रमुख सूत्रधारों को कायर और बुद्धिहीन बतकर अपने राजनीति के ज्ञान का परिचय दिया करें।

संघ-विधान की समस्या

अँगरेज़-सरकार को विश्वास था कि नहीं-नहीं करते हुए भी अन्त में देशी राज्य संघ-व्यवस्था को स्वीकार कर लेंगे और तब वह पूर्व-निश्चय के अनुसार सन् १९४० में संघ-विधान को सुभीते के साथ जारी कर देगी। परन्तु आश्चर्य की बात है कि इस बार देशी राजाओं ने भी साहस का परिचय दिया है और उन्होंने सरकार के संशोधित आदेश-पत्र को स्वीकार करने से इनकार कर दिया है। राजा लोग चाहते हैं कि सरकार उन्हें स्पष्ट शब्दों में इस बात का आश्वासन दे दे कि उनका मर्तबा जैसा का तैसा बना रहेगा तथा उनके राज्य के भीतरी मामलों में किसी तरह का हस्तक्षेप नहीं होगा एवं उनके चुंगी आदि के हक़ भी सुरक्षित रहेंगे। उक्त आदेश-पत्र से उन्हें इन बातों का आश्वासन नहीं मिलता है, अतएव बम्बई की अपनी बैठक में उन्होंने उस आदेश-पत्र को अस्वीकार कर दिया है। इससे अँगरेज़-सरकार की संघ-व्यवस्था की स्थापना के प्रयत्न को भारी धक्का पहुँचा है, क्योंकि पिछले दिनों भीतर ही भीतर इस दिशा में बड़ा काम हो रहा है। विलायत के अधिकारियों ने भी इस बात का संकेत किया था कि संघ-व्यवस्था के जारी करने की व्यवस्था की जा रही है। परन्तु राजाओं की अस्वीकृति से उसके सारे प्रोग्राम को भारी धक्का पहुँचा है, क्योंकि अँगरेज़ी भारत के लोग भी उस व्यवस्था को फूटी आँख भी नहीं देखना चाहते। ऐसी दशा में यदि सरकार सचमुच भारत में संघ-व्यवस्था जारी करना चाहती है तो उसमें उसको समुचित परिवर्तन करना होगा—ऐसा परिवर्तन जिससे कांग्रेस, साथ ही मुस्लिम लीग एवं देशी राजे भी सन्तुष्ट हों। परन्तु क्या ऐसा सम्भव होगा? तीनों भिन्न भिन्न दृष्टिकोण से संघ-व्यवस्था का विरोध कर रहे हैं। उनमें सामञ्जस्य लाना सरल काम नहीं है। परन्तु लार्ड लान्के का जिनका भारत-विधान के निर्माण में गहरा हाथ रहा है, कहना है कि उक्त विधान में भारी परिवर्तन किया जायगा, जिससे भारत का सन्तोष ही नहीं होगा, किन्तु उस संशोधित विधान के प्रचलन पर भारत सुखी और समृद्ध होगा। भगवान् करे ऐसा ही हो।

विदेशी सूत और वस्त्र

भारत कितना असहाय और असमर्थ है, इसका प्रमाण पद पद पर मिलता है। सूत और वस्त्र के धन्धे को ही लीजिए। इतने दिन से भारत में स्वदेशी का प्रचार हो रहा है, परन्तु वह अपने मतलब भर का सूत और वस्त्र भी अभी तक तैयार नहीं कर सका है।

सन् १९३९ के मार्च में भारत में जो विदेशी सूत आया वह गत वर्ष के मार्च के महीने की अपेक्षा ज़्यादा आया। गत वर्ष के मार्च में २·२ मिलियन पौंड सूत आया था, पर इस वर्ष उसी महीने में ३३ मिलियन पौंड सूत आया। इस क्षेत्र में जापान का रङ्ग गहरा रहा। ग्रेट ब्रिटेन की अपेक्षा उसका माल कहीं अधिक आया। जहाँ पहले १·१ मिलियन पौंड सूत आया था, वहाँ २-६ मिलियन पौंड इस वर्ष आया।

इसी तरह सूती वस्त्र के व्यवसाय का भी हाल रहा। इस वर्ष मार्च महीने में ५,००० मिलियन गज़ कपड़ा आया जब कि गत वर्ष के मार्च में ६४ मिलियन गज़ ही आया था। इस ह्रास का कारण ब्रिटेन के आयात का गिर जाना हुआ। गत वर्ष उसने १५·२ मिलियन गज़ कपड़ा भेजा था, पर इस वर्ष आधा मिलियन गज़ ही भेज सका। उधर जापान ने ३८·३ मिलियन गज़ कपड़ा भेजा जब कि गत वर्ष उसने ६ मिलियन गज़ कपड़ा भेजा था।

सो ब्रिटेन, उससे कहीं अधिक जापान यहाँ का वस्त्र-व्यवसाय अपने हाथ में किये हुए है, यद्यपि यहाँ देशी मिलें खूब हैं, साथ ही कांग्रेस का खादी-प्रचार भी देश में व्याप्त है। इससे अधिक हमारी विपन्नावस्था का और क्या प्रमाण हो सकता है?

फ़िलिस्तीन का विकट प्रश्न

फ़िलिस्तीन का मसला जितना ही सुलझाया जाता है, उतना ही उलझ जाता है। हाल में ब्रिटेन के उपनिवेश-मंत्री ने जो सरकारी वक्तव्य दिया है और जिसमें वचन दिया गया है कि फ़िलिस्तीन १० वर्ष में स्वतन्त्र राज्य का रूप ग्रहण करेगा, मुसलमानों को सन्तोष नहीं दे सका। महायुद्ध के समय ब्रिटेन के तत्कालीन विधाताओं ने यहूदियों से वादा किया था कि जीत होने पर फ़िलिस्तीन में बाहर से लाकर यहूदी बसाये जायँगे और वह एक बार फिर उनका 'देश' बना दिया जायगा। अभी अरबों के पिछले विद्रोह तक ब्रिटेन की सरकार अपनी उपर्युक्त नीति का ही पालन करती रही थी। परन्तु अरबों के पिछले विद्रोह के फलस्वरूप उसे अपने विचार को बदल कर अरबों को सन्तुष्ट करने के लिए यह नई घोषणा करनी पड़ी है। परन्तु वहाँ के अरब तो फ़िलिस्तीन को आज स्वाधीन देखना चाहते हैं, उन्हें उस पर अँगरेज़ों का अधिकार पसन्द नहीं है। वे उसकी इस अवस्था से प्राचीन काल के धर्मयुद्धों से तारतम्य मिलाते हैं। यही नहीं, इस भावना का उनमें व्यापक रूप से प्रचार हो रहा है और फ़िलिस्तीन का सवाल ईसाइयों और मुसलमानों के बीच का प्रश्न-सा बनता जा रहा है। इधर अँगरेज़ सरकार के इस निर्णय से यहूदी भी नाराज़ हो गये हैं और उन्होंने भी उत्पात करना शुरू कर दिया है। इस अवस्था के कारण अँगरेज़-सरकार बड़े चक्कर में पड़ गई और फ़िलिस्तीन का कोई हल उसे सुझाई नहीं दे रहा है और उसने एक विकट प्रश्न का रूप धारण कर लिया है।

भारत में नात्सीवाद

कलकत्ते के 'स्टेट्समैन' को इस बात का भय हुआ है कि जर्मनी भारत में नात्सीवाद के प्रचार का उपक्रम कर रहा है। उसका कहना है कि कलकत्ते और बम्बई में जर्मनों की जो दूकानें हैं उन्हीं के द्वारा यह प्रचार-कार्य हो रहा है। और इस सम्बन्ध में जर्मनी रुपया भी खर्च कर रहा है। उधर जर्मनी भारत में अपना व्यापार भी फैलाना चाहता है। वहाँ के बैंक के भूतपूर्व सबसे बड़े अधिकारी डाक्टर शाख़्ट ने भारत का भ्रमण हाल में किया है। मदरास में भाषण करके उन्होंने कहा है कि जर्मनी भारत के व्यापार को उन्नत करने का इच्छुक है। यही सब देख-सुन कर 'स्टेट्समैन' के सम्पादक महोदय बौखला उठे हैं। वे नहीं चाहते कि ब्रिटेन को छोड़कर भारत का शोषण जर्मनी या कोई दूसरा देश करे। आश्चर्य है, उनका ध्यान जापान की ओर नहीं जाता, जिसने भारत के बाज़ारों में अपना काफ़ी बड़ा हिस्सा क़ायम कर लिया है।

प्रान्तीय मन्त्रिमण्डलों की 'सरकारता'

नये शासन-विधान के अनुसार देश के ग्यारह प्रान्तों में जो स्वराज्य-सरकारें स्थापित हुई हैं, क्या उनके मन्त्रि-मण्डल भी क़ानून की दृष्टि से 'सरकार' समझे जा सकते हैं ? क्या उन मन्त्रिमण्डलों की कड़ी टीका करना 'राजद्रोह' का जुर्म माना जायगा ? इस सम्बन्ध में कलकत्ते के दो प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेटों ने एक मुक़दमे के सिलसिले में लिखकर बंगाल की हाईकोर्ट के चीफ़ जस्टिस से पूछा था । न्यायाधीश महोदय ने उत्तर दिया है कि ये मन्त्रिमण्डल प्रान्तों के गवर्नरों के सलाहकार हैं, उनके अधीन नहीं हैं, अतएव ये 'क़ानूनी परिभाषा की सरकार' नहीं हैं । प्रधान न्यायाधीश महोदय का यह उत्तर यदि क़ानूनी रूप प्राप्त कर जायगा तो उससे देश के प्रेस का बड़ा हित होगा । उक्त मजिस्ट्रेटों के इजलासों में 'वसुमति' पर राजद्रोह के दो मुक़दमे चल रहे हैं जिन्हें बङ्गाल की प्रान्तीय सरकार ने चलाया है, क्योंकि 'वसुमति' ने प्रान्तीय सरकार की कड़ी टीका की थी । देश का प्रेस इस मामले का फ़ैसला उत्सुकता के साथ देख रहा है ।

पंजाब-सरकार की उदारता

सर मुहम्मद इक़बाल उर्दू और फ़ारसी के नामी कवि थे । खेद है, उन्हें नोबेल-पुरस्कार नहीं मिला । नोबेल-पुरस्कार चाहे न मिला हो, पर भारत तथा उसके बाहर जहाँ उर्दू और फ़ारसी पढ़ी और समझी जाती है, वे अपनी सुघर रचनाओं के द्वारा सदा अमर रहेंगे । यह प्रसन्नता की बात है कि ऐसे महान् कवि की स्मृति के लिए पंजाब की सरकार उनका मक़बरा बनवाना चाहती है । इस कार्य के लिए उसने २५ हज़ार रुपया ख़र्च करने का निश्चय किया है । हम इस सत्कार्य के लिए पंजाब-सरकार को बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि उसने जो यह नया आदर्श उपस्थित किया है उसका अन्य प्रान्तीय सरकारें भी अनुकरण करेंगी । उदाहरण के लिए आचार्य द्विवेदी का नाम लिया जा सकता है । संयुक्त-प्रान्त की सरकार का कर्तव्य है कि वह भी आचार्य की स्मृति को स्थायी बनाने के लिए उनके अनुरूप ही कोई कार्य करे ।

भाषा का प्रश्न

देश की प्रान्तीय असेम्बलियों में भाषा का प्रश्न उठ खड़ा होना सर्वथा स्वाभाविक है । नये सुधारों के अनुसार असेम्बलियों के प्रतिनिधियों की संख्या अधिक हो गई है और उनमें ऐसे प्रतिनिधि कम नहीं पहुँचे हैं जो अँगरेज़ी बिलकुल ही नहीं जानते । ऐसे भी प्रान्त हैं, जहाँ भिन्न-भिन्न भाषा बोलनेवाले रहते हैं । ऐसी दशा में कुछ असेम्बलियों में तो भाषा का प्रश्न उठ खड़ा होना सर्वथा स्वाभाविक है—विशेषकर मदरास की असेम्बली में, जिसमें तामिल, तेलुगू, कनारी, मलयालम आदि भाषायें बोलनेवाले प्रतिनिधि हैं, जो एक-दूसरे की भाषा से बिलकुल कोरे होते हैं। अभी हाल में वहाँ के प्रधान मंत्री ने अँगरेज़ी में एक वक्तव्य पढ़ा था । इस पर अँगरेज़ी न जाननेवाले एक आन्ध्र-सदस्य ने आग्रह किया कि वक्तव्य का सारांश तेलुगू में बताया जाय । जब स्पीकर महोदय के आदेश से उनके सन्तोष के लिए वक्तव्य का मुख्यांश तेलुगू में बताया गया तब एक तामिल-भाषी सदस्य ने उसके तामिल में बताये जाने का आग्रह किया । कुशल यही हुई कि मलयालम और कनारी भाषियों ने अपनी-अपनी माँग नहीं पेश की । इसमें सन्देह नहीं कि यह भाषा का प्रश्न इस राष्ट्रीयता के युग में अपनी विशेषता रखता है और इसका निपटारा तभी होगा जब भारत के प्रान्तों का संगठन भाषा की दृष्टि से होगा । यह कहना कि एक राष्ट्र-भाषा के स्वीकार कर लेने से इस प्रश्न की मीमांसा हो जायगी, ठीक होते हुए भी अति कष्ट-साध्य है । यही सब जान-बूझ कर महात्मा गांधी ने पहले से ही हिन्दी के प्रचार का आयोजन किया था और यद्यपि इस दिशा में बहुत अधिक काम हो चुका है, तथापि यह कहना साहस का काम होगा कि मदरास जैसे विभिन्न भाषाओं के प्रान्त की असेम्बली का काम हिन्दी-भाषा के द्वारा निपटाया जा सकेगा ।

Printed and published by K. Mittra at The Indian Press, Ltd., ALLAHABAD

महाराणा प्रताप

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल—उमेशचन्द्रदेव

अगस्त १९३९ } भाग ४०, खंड २
संख्या २, पूर्ण संख्या ४७६ { प्रथम श्रावण १९९६

बरसात री !

लेखक, श्रीयुत मोहनलाल महतो 'वियोगी'

हृदय में ग्रीषम भरा सखि, नयन में बरसात री,
देख, सूखे मानसर में खिल रहे जलजात री !
सखि, नयन में बरसात री !!

लतना की तुनुक टहनी पर बसेरा कल्पना को,
दिवस-मधु का शेष-प्याली में फ़क़त दो बूँट बाक़ी,
रुक तनिक सुख-दुख, मना लूँ विकल मन को गोद में ले,
आ रही निस्तब्धता की ले सुरा चुपचाप साक़ी।
ले सपन-लघु-भार सहमी, सजल आई रात री !
सखि, नयन में बरसात री !!

आ अनिल, हौले किसी के केश का सुख-वास लेकर,
खिल सरस-कलिका, किसी के अधर का मधु-हास लेकर,
ले किसी के विकल-चुम्बन को सरसता कूज खग, तू,
छिप अरे तारे, किसी के विफल-मूक-उसास लेकर।
पीत-मुख-छवि ले किसी को आ उदास प्रभात, री!
सखि, नयन में बरसात री !!

बादलों-सी भावनायें मिट रहीं तसवीर बनकर,
खोजता विश्राम धीरज शान्त और अधीर बनकर,
हो गये निश्चिन्त अपने को गँवाकर गीत मेरे,
आज जल पर की जरा-सी क्षणिक एक लकीर बनकर।
आँसुओं के साथ आई याद बीती बात री !
हृदय में ग्रीषम भरा सखि, नयन में बरसात री !!

क्या रामायण की भाषा अवधी है ?

लेखक, पण्डित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

श्रीमान् वाजपेयी जी का यहाँ परिचय देने की जरूरत नहीं है। आप हिन्दी के माने हुए विद्वान् हैं और वर्षों उच्च कोटि के दैनिकों और साप्ताहिकों का सम्पादन करते रहे हैं। इस लेख में आपने बड़े महत्त्व का प्रश्न उठाया है। आशा है, अधिकारी विद्वान् वाजपेयी जी की नई स्थापना पर अवश्य विचार करेंगे।

तु लसीकृत रामायण अथवा रामचरितमानस की भाषा के विषय में जितने लेख देखने में आये हैं, सबमें वह अवधी बताई गई है, यद्यपि गुसाईं जी ने कहीं 'अवधी' शब्द का प्रयोग नहीं किया और सर्वत्र अपने ग्रन्थ की भाषा को 'भाषा' ही कहा है; यथा—

(१) स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा।
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति ॥

(२) भाषाबद्ध करब मैं सोई।
मोरे मन प्रबोध जेहि होई ॥

(३) भाषा भनित भोरि मति मोरी।
हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी ॥

(४) भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्।

यही नहीं, तुलसीदास जी ने भाषा के तीन ही भेदों का रामायण में उल्लेख किया है—(१) संस्कृत, (२) प्राकृत और (३) भाषा। संस्कृत का नामोल्लेख न करके संकेत-मात्र किया है; जैसे—

व्यास आदि कवि पुंगव नाना।
जिन्ह सादर हरिचरित बखाना ॥

फिर प्राकृत और भाषा के कवियों की चर्चा इस प्रकार की है—

जे प्राकृत कवि परम सयाने।
भाषा जिन्ह हरिचरित बखाने ॥
भये जे अहहिं जे होइहहिं आगे।
प्रनवउँ सबहिं कपट सब त्यागे ॥

जब तुलसीदास जी ने रामचरितमानस 'भाषा' में लिखा है, जिसके प्रमाण में उन्हीं के अवतरण ऊपर दिये गये हैं और जब हमारी हिन्दी के विद्वान् कहते हैं कि उसकी भाषा 'अवधी' है, तब यह मानना चाहिए कि भाषा का ही दूसरा नाम अवधी है। पर क्या यह सच है? पण्डित रामचन्द्र शुक्ल और डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार 'हाँ'। शुक्ल जी अपनी तुलसी-ग्रन्थावली की प्रस्तावना के ९२ वें पृष्ठ पर लिखते हैं—"भाषा इस ग्रन्थ की अवधी है। पर रामलला नहछू, पार्वतीमंगल और जानकी-मंगल के समान सर्वत्र पूर्वी अवधी का ही व्यवहार नहीं है, पछाँहीं अवधी भी मिली हुई है। कहीं-कहीं तो—पर कम—व्रजभाषा की भी झलक है।" फिर २३५ वें पृष्ठ पर कहते हैं—"रामचरितमानस को उन्होंने अवधी में लिखा है, जिसमें पूर्वी और पछाँहीं (अवधी) दोनों का मेल है।" डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा 'हिन्दी भाषा का इतिहास' की भूमिका में लिखते हैं—"पद्मावत और रामचरितमानस अवधी के दो सुप्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।" स्वर्गीय बाबू रामदास गौड़ जी ने इससे कुछ भिन्न मत इन शब्दों में प्रकट किया है—"गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी अपनी कविता की भाषा देश, काल और परिस्थिति के अनुसार अधिकांश अवधी, कुछ व्रजभाषा, कहीं बुन्देलखण्डी और कहीं स्पर्श-मात्र भोजपुरिया रखी है।" (श्री रामचरितमानस की भूमिका पृष्ठ ३) फिर ५ वें पृष्ठ पर लिखा है—"रामचरितमानस की भाषा प्रधानतः अवधी है। यह प्रायः वही भाषा है जिसमें गोस्वामी जी से कुछ पूर्व मलिक मुहम्मद जायसी ने पद्मावत लिखी। पद्मावत की भाषा में और रामचरितमानस की भाषा में कुछ अन्तर अवश्य है। परन्तु वह व्याकरण का नहीं, शैली का अन्तर है। पद्मावत जहाँ शुद्ध तद्भव है, वहाँ रामचरितमानस अर्द्ध तत्समों से भरा है।" इन अवतरणों से यह निष्कर्ष निकला कि शुक्ल जी के और वर्मा जी के मत से तो भाषा का ही दूसरा नाम अवधी है, परन्तु गौड़ जी के मतानुसार जिस भाषा में अवधी का प्राधान्य हो, वही गोस्वामी जी की रामायण की 'भाषा' है। इसलिए यह जानना आवश्यक हुआ कि यह अवधी कौन-सी भाषा है।

डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा के जिस ग्रन्थ से ऊपर अवतरण दिया गया है उसके उसी पृष्ठ पर, लिखा है—"हरदोई-ज़िले को छोड़कर अवधी शेष अवध की बोली है। यह लखनऊ, उन्नाव, रायबरेली, सीतापुर, खीरी, फ़ैज़ाबाद, गोंडा, बहराइच, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, बाराबंकी में तो बोली ही जाती है; इन ज़िलों के अतिरिक्त दक्षिण गङ्गापार, इलाहाबाद, फ़तेहपुर, कानपुर, मिर्ज़ापुर तथा जौनपुर के कुछ हिस्से में भी बोली जाती है। बिहार के मुसलमान भी अवधी बोलते हैं। यह खिचड़ीवाला भाग मुज़फ़्फ़रपुर तक है।" इसका नथितार्थ यह हुआ कि जो भाषा कानपुर से मुज़फ़्फ़रपुर तक बोली जाती है वही अवधी है, यद्यपि उसका मुख्य क्षेत्र अवध के उल्लिखित ११ ज़िले हैं!

अब तनिक इस वक्तव्य पर सावधानी से विचार करना चाहिए। रामायण में 'अवध' शब्द का प्रयोग 'अयोध्या' के अर्थ में अनेक स्थानों पर हुआ है सही, परन्तु आज जिसको हम अवध कहते हैं उसकी कल्पना गोस्वामी जी को स्वप्न में भी न थी, क्योंकि वह अँगरेज़ों की सृष्टि-मात्र है। इसलिए गोस्वामी जी के रामायण की भाषा को 'अवधी' कहना कहाँ तक उचित है, इस पर सुज्ञों को विचारना चाहिए। वर्मा जी ने अपनी अवधी के दायरे से हरदोई-ज़िले की भाषा निकाल दी है। परन्तु जो भाषा हरदोई में बोली जाती है वही उन्नाव-ज़िले के कई संलग्न गाँवों में यथा गंज, मुरादाबाद, ऊगू, सफ़ीपुर आदि में भी बोली जाती है। इसके साथ ही उन्नाव-ज़िलों के अधिकांश की बोली सीतापुर, खीरी, बहराइच आदि से भिन्न है। यदि वर्मा जी के बताये ग्यारहों ज़िलों की एक ही भाषा होती तो उसे अवधी कहने में कोई आपत्ति न थी; परन्तु जब भाषातत्त्व की दृष्टि से उक्त अवध में प्रायः तीन बोलियों का पता लगता है तब सारे अवध की भाषा 'अवधी' कैसे कही जा सकती है?

भाषा-शास्त्र की दृष्टि से विचार करने से हिन्दी-भाषा के दो मुख्य भेद होते हैं—एक पश्चिमीय हिन्दी और दूसरा पूर्वीय हिन्दी। पश्चिमीय हिन्दी अन्तर्वेद अथवा गंगा-यमुना के दोआब की भाषा है और पूर्वी हिन्दी गंगापार—अवध और बिहार की भाषा है। पश्चिमी हिन्दी का रूप व्रजभाषा और उससे मिलती-जुलती कनौजी बोली है। इसका मूल शौरसेनी प्राकृत है। इस शौरसेनी से मागधी का मेल वा संगम अयोध्या के पास होने से जो एक तीसरी भाषा तैयार हुई उसकी संज्ञा अर्द्धमागधी हुई। इस अर्द्धमागधी में शौरसेनी और मागधी दोनों के गुण हैं, यद्यपि शौरसेनी की अपेक्षा मागधी-भाव ही अधिक है। यह अर्द्धमागधी ही अवधी की जननी है। यहाँ तक तो मतभेद की कोई गुञ्जायश नहीं है और शायद यह सिद्धान्त भी निर्विवाद ही समझा लिया जायगा कि जो भाषा जिस दूसरी भाषा के जितने ही निकट वा दूर होती है उसमें इसके गुण वा दोष उतने ही अधिक वा न्यून मात्रा में आ जाते हैं। इसलिए सुल्तानपुर या जौनपुर की भाषा में मागधी-भाव की और उन्नाव अथवा रायबरेली की भाषा में शौरसेनी-भाव की अधिकता होना स्वाभाविक है। इसके साथ ही यह भी मानने की बात है कि जब मिश्र भाषा में एक और भाषा आ मिलती है तब उसमें जिन तत्त्वों का प्राधान्य होता है उन्हीं का वह अनुसरण करती है। जैसे शौरसेनी प्राकृत का ही रूप अथवा कविता की भाषा महाराष्ट्रीय प्राकृत है और जब शौरसेनी के साथ महाराष्ट्रीय का मेल हुआ तब नागर प्राकृत उत्पन्न हुई।

अन्तर्वेद से बहुत से ब्राह्मण और बैस क्षत्रिय तथा अन्य जातियाँ निकलकर गंगापार जा बसीं और चूँकि इनमें बैस राजपूतों की अधिकता थी, इसलिए जहाँ ये बसीं, उस प्रदेश का नाम बैसवाड़ा पड़ गया। उन्नाव और रायबरेली ज़िलों की संज्ञा बैसवाड़ा है, क्योंकि यहीं बैसों की बस्ती अधिक है। बैस राजपूत अपने साथ अन्तर्वेद की बोली लेते आये थे और उनकी बोली के साथ स्थानिक बोली का जो सम्मिश्रण हुआ, उससे नागर प्राकृत की भाँति एक तीसरी बोली पैदा हो गई, जिसे हम बैसवाड़ी कह सकते हैं। इस बैसवाड़ी में मागधी-भाव की अपेक्षा शौरसेनी-भाव ही अधिक है। इसलिए उन्नाव-रायबरेली की बैसवाड़ी भाषा से अवध के अन्य ज़िलों की अवधी-भाषा में जन्मगत भेद होना स्वाभाविक है। सावधानी से जो लोग दोनों भाषाओं का मिलान

करते हैं उन्हें मालूम हो जाता है कि बैसवाड़ी में शौरसेनी का और अवधी में मागधी का प्राधान्य है। मलिक मुहम्मद जायसी ने रायबरेली के जायस ग्राम में बैठकर जो काव्य लिखा था उसका उनकी नित्य की भाषा में लिखना ही अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। यदि यह बात मानी जा सकती है तो इसके साथ ही यह मान लेने में कोई आपत्ति न होनी चाहिए कि पद्मावत की भाषा अवधी नहीं, बैसवाड़ी है और यदि मानस और पद्मावत दोनों की भाषा एक ही है तो इनमें किसी की भाषा अवधी नहीं है।

भाषा की कसौटी क्या है? उर्दू में अरबी, फ़ारसी, तुर्की आदि भाषाओं के शब्द बहुत बड़ी मात्रा में व्यवहृत होते हैं। परन्तु क्या कोई भाषा-तत्त्वज्ञ इसी से उसे हिन्दी से भिन्न कोई अन्य भाषा कह सकता है? यदि नहीं तो तुलसीदास जी के रामायण में अनेक भाषाओं और अवधी-भाषा के शब्द रहने पर भी वह अवधी ही क्यों कही जाय? भाषा की जान सर्वनाम, विभक्ति, प्रत्यय और क्रिया-पद हैं तथा वाक्य की योजना से भाषा के रूप का पता लगता है। यदि हम इस कसौटी पर रामायण की भाषा को कसते हैं तो हमें मालूम होता है कि रामायण की भाषा अवधी नहीं है, क्योंकि रामायण में जगह जगह तृतीया विभक्ति और कर्म्मणि प्रयोग हैं। परन्तु अवधी में इनका सर्वथा अभाव रहता है। रामायण में 'मैं' प्रथमा और तृतीया विभक्ति दोनों में आया है; जैसे--

दसमुख मैं न बसीठी आयउँ। (प्रथमा)
जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे। (तृतीया)

अवधी में "मैं" प्रयुक्त ही नहीं होता और फिर उसका तृतीया बनकर क्रिया का कर्त्ता होना तो त्रिकाल में भी सम्भव नहीं। कर्म्मणि और भावे प्रयोगों के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं--

देवन्ह दीन्ही दुन्दुभी प्रभु पर बर्षहिं फूल।
मन्दोदरी सुनेउ प्रभु आये।
तिन्हें देखि गर्जेउ हनुमाना।
आनि देखाई नारदहिं भूपति राजकुमारि।
नारद कहेउ सहित अभिमाना।
उपरोहितहिं कहेउ नरनाहा।
कामचरित नारद सब भाषे।

अवश्य ही इस नियम के अपवाद पाये जाते हैं, पर ये अपवाद ही हैं, जैसे--

अदभुत बालक देखेन्ह जाई।
जेहि रिपु छय सोइ रचेन्हि उपाऊ।
कहेन्हि करिय उत्पात अरम्भा
घेरेन्हि नगर निसान बजाई।

निमित्तार्थ में 'कहुँ' वा 'कहँ' कविता में सर्वत्र देखा जाता है। रामायण में भी मौजूद है; जैसे--

नयनविषय मोकहँ भयउ, सो समस्त-सुखमूल।
सबहिं सुलभ जगजीव कहँ भये ईश अनुकूल॥

'करे', 'केरी', 'कर' षष्ठी विभक्ति में रामायण में आये हैं, पर यह न समझना चाहिए कि ये अवध के ही ख़ास हैं क्योंकि पृथ्वीराजरासो में भी हमें मिलते हैं; जैसे--

मिली दिष्टि से दिष्टि चहुआनकेरी।

वास्तव में कई शब्द और प्रयोग प्राचीन समय से चले आते हैं, पर कहीं उनका चलन बना रहा और कहीं बन्द हो गया। 'इदमर्थस्य केरः' यह प्राकृताष्टाध्यायी के द्वितीय पाद का १४७ वाँ सूत्र है। इसका अर्थ है कि 'इस' अर्थ के प्रत्यय के लिए 'केर' आता है। फिर 'स्वराणां स्वराः प्रयोपभ्रंशे' ३२९।४ सूत्र से कर, केरी इत्यादि बन जाते हैं।

'तें' और 'सन' रामायण में करण कारक के चिह्न हैं और 'हि' वा 'हिं' तो प्रथमा को छोड़ सभी विभक्तियों में आता है। अवधी में 'हि' है ही नहीं तथा करण कारक में 'तन' प्रत्यय आता है।

अब क्रिया-पदों के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता है। रामायण में वर्त्तमान काल में 'अह' धातु के रूपों का प्रयोग हुआ है। परन्तु जैसा पश्चिमी भाषा का नियम है, ये रूप दोनों लिङ्गों में समान रूप से व्यवहृत होते हैं। अवधी में यह बात नहीं है। वहाँ एक वचन में 'अहेउँ' पुँल्लिङ्ग का रूप है तो 'अहिउँ' स्त्री-लिङ्ग का और बहुवचन में 'अहीं' पुँल्लिङ्ग है तो 'अहिन' स्त्री-लिङ्ग है। यही नहीं, 'अह' धातु के अतिरिक्त एक और धातु 'बाट' के रूपों का प्रयोग भी अवधी में होता है। इसके रूप भी दोनों लिङ्गों में भिन्न भिन्न हैं, जैसे, एकवचन पुं० बाटेउँ, स्त्री-लिङ्ग

बाटिउँ; बहुवचन बाटी (पुं०) और बाटिन (स्त्री०)। इन रूपों से यह स्पष्ट हो जाता है कि रामायणी क्रिया-पदों से अवधी क्रियापदों में साम्य की अपेक्षा वैषम्य ही अधिक है, इसलिए भी रामायण की भाषा अवधी नहीं कही जा सकती।

सारांश, रामायण की भाषा की धारा वही है जो उससे प्राचीनतर काव्यों की है। यह सच है कि रामायण में अनेक भाषायें प्रयुक्त हैं और कहीं कहीं एक ही शब्द दो अर्थों में आया है; जैसे, 'अँचइ पान सब काहू पाये' में 'अँचइ' का अर्थ 'मुँह धोकर' 'कुल्ला करके' है और 'अँचइय नाथ कहहिं मृदु बानी' में "अँचइय" का अर्थ 'पीजिए' है। यह इस काव्य की विशेषता है। इस विवेचन से सिद्ध होता है कि तुलसीदास जी ने 'भाषा' शब्द का प्रयोग 'अवधी' के लिए नहीं किया है। और उसका अर्थ प्राकृत की उत्तराधिकारिणी भाषा है, जो जनसाधारण बोलते और समझते हैं। उन्होंने शब्द सब प्रसंगों के रक्खे हैं। क्रियापदों के रूप अन्तर्वेदी, बैसवाड़ी और अवधी ही नहीं, राजपूतानी और मैथिली भी हैं। कौन कितने हैं, यह कहना कठिन है, इसलिए हम गौड़ जी की यह बात मानने को भी तैयार नहीं हैं कि मानस की भाषा प्रधानतः अवधी है। हम नहीं कह सकते कि उक्त विद्वज्जनों को अवधी का इशारा कहाँ से मिल गया।

यह लेख खण्डन-मण्डन की दृष्टि से नहीं, तत्त्वनिर्णय के अभिप्राय से लिखा गया है और कई वर्षों की गवेषणा का फल है। अवश्य ही इससे एक स्थापित मत का खंडन होता है, परन्तु भ्रान्ति का निराकरण होना ही इष्ट है। आशा है, विद्वज्जन इसी दृष्टि से इस पर विचार करेंगे। जो सज्जन हमारे मत के पक्ष में वा विरुद्ध कुछ लिखने की कृपा करें, वे यदि अपने लेख की एक प्रति हमारे पास नीचे लिखे पते पर भेजने का अनुग्रह करें, तो हम उनके अत्यन्त आभारी होंगे।

अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, १०२ मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता

मेरे पावन, मेरे पुनीत!

लेखक, श्रीयुत शिवमङ्गलसिंह 'सुमन'

जब नैश-प्रकृति के अंचल में,
मुसका उठते हो मन्द मन्द।
हो जाता है क्षण भर मुखरित,
मेरा अलसित, जीवन, अमंद।
करते हो आँख-मिचौनी-सी,
दृग-द्वार खोल, कर पुनः बंद।
बज उठता है निस्पंद पड़ी मेरी वीणा का विरह-गीत॥
मेरे पावन, मेरे पुनीत!

जब सज मुक्ता-मालाओं से,
कर उठते हो झिलमिल-झिलमिल।
चाँदी के साँपों-सी अस्थिर-
रश्मियाँ विरल रिलमिल-रिलमिल।
करते हो कुछ संकेत-मात्र,
अगणित दृग-सैनों से हिलमिल।
[illegible]-सा जाता है क्षण भर को, विस्मृति में सोया-सा अतीत॥
मेरे पावन, मेरे पुनीत!

जब चूम चूम लेते हो तुम,
वारिधि के दृग की मदिर कोर।
लहरा उठता है बेसुध-सा,
छल छपक-छपक, हिल-हिल हिलोर।
देते तुम अपने अधरों को,
उसके नव-मधु में बोर बोर।
तब अपनेपन में बेसुध-सा, मैं खो देता हूँ हार, जीत॥
मेरे पावन, मेरे पुनीत!

जब ऊषा के वातायन से,
तुम देखा करते उझक झाँक।
जग तृण-तरु पर, मृदु कुसुमों पर,
लेता सुन्दर छवि आँक आँक।
हो जाता है भू पर विलसित,
कल्पित स्वप्नों का स्वर्गनाक।
अनजाने में हो जाते हैं मेरे कुछ क्षण सुख से व्यतीत॥
मेरे पावन, मेरे पुनीत!

हमारा प्रधान उपनिवेश
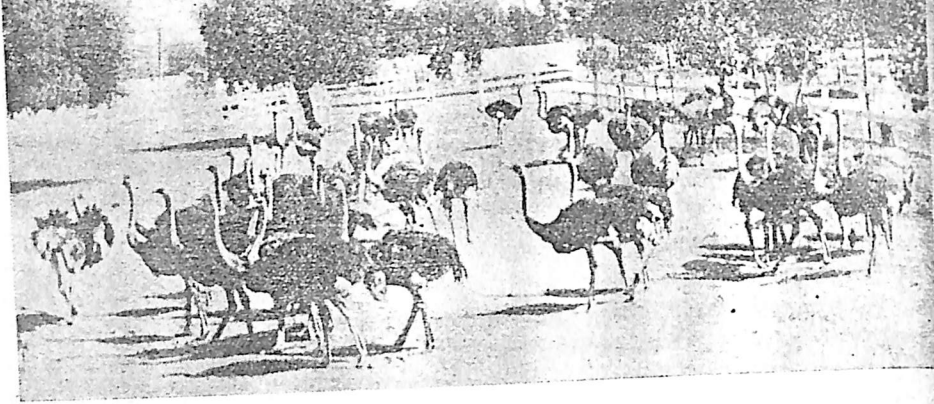
लेखक, श्रीयुत सेठ गोविन्ददास एम० एल० ए०

(२)

टायरिया

टायरिया जहाज़ ८ हज़ार टन का था—न बहुत बड़ा और न बहुत छोटा। बम्बई में डेक के पैसेंजरों की जिस प्रकार डाक्टरी जाँच हुई और जिस प्रकार वे जहाज़ में भरे गये वह दृश्य तो मैं कभी भूल न सकूँगा। डेक के यात्रियों की दुर्दशा का आरम्भ वहीं से हुआ जहाँ से वे यात्रा के लिए तैयार हो डाक्टरी जाँच के लिए गये। डिस-इन्फ़ेक्टेन्ट शेड नामक टीन से छाये हुए एक छप्पर के नीचे यह जाँच होती है। छप्पर बहुत छोटा-सा है, अतः बहुत-से यात्रियों को तो धूप में खड़े रहना पड़ा। फिर डाक्टरी जाँच के लिए उन्हें शरीर के ऊपरी भाग के कपड़े उतारकर क़ैदियों के समान क़तार में खड़ा होना पड़ा। यह क़वायद घंटों तक हुई। सबसे अधिक ध्यान शीतला के टीकों के निशानों पर दिया गया। डाक्टरी सार्टिफ़िकेट रहने पर भी ये निशान देखे जाते हैं। नियम यह है कि यात्रा के कम से कम १२ दिन पहले यह टीका लगना चाहिए और इसे लगे तीन साल से ज़्यादा बीता हुआ वक़्त भी न होना चाहिए। यदि तीन साल के भीतर ये निशान मिट गये हों तो वे यात्री रोक दिये जाते हैं। जाँच के बाद जहाज़ पर चढ़ाने की कोई ठीक व्यवस्था न होने के सबब धक्कम-धक्का करते हुए ये यात्री जहाज़ पर चढ़े। डेक पर कौन कहाँ बैठे, यह बतानेवाला वहाँ कोई नहीं था। नतीजा यह हुआ कि बलवानों को अच्छी और कमज़ोरों को ख़राब जगह मिली। स्त्रियों के लिए भी कोई ख़ास जगह नहीं थी, अतः उन्हें तो सबसे ज़्यादा तकलीफ़ हुई। सुना कि हमेशा यही होता है। लक्ष्मीचन्द और मैं दूसरे दर्जे के केबिन के मुसाफ़िर थे। इस जहाज़ का कोई भी हिन्दुस्तानी यात्री पहले दर्जे का यात्री न था। इने-गिने अँगरेज़ों को छोड़कर बाक़ी सभी मुसाफ़िर या तो दूसरे दर्जे के केबिनों में थे या डेक पर। दूसरे दर्जे के केबिनों मे बहुत भीड़-भाड़ थी। पहले दर्जे के केबिन ख़ाली पड़े रहने के सबब 'ब्रिटिश इंडिया स्टीम नवीगेशन कम्पनी' ने हम दोनों को पहले दर्जे के केबिन दे दिये थे। बम्बई से तो जहाज़ में बहुत भीड़ न थी, पर ज्यों ही ११ को जहाज़ पोरबन्दर पहुँचा, बहुत भीड़ हो गई। काठियावाड़ और गुजरात के ही भारतवासी ज़्यादातर पूर्वी अफ़्रीका गये हैं। कुछ तो पोरबन्दर से दूसरे दर्जे में आये, पर डेक तो रेल के तीसरे दर्जे के समान ही हो गया। रेल की यात्रा थोड़े समय की होती है, पर जहाज़ पर तो मुम्बासा तक ९ दिन और ९ रात बैठना था। मुसाफ़िरों को लेटने के लिए पैर फैलाने तक की गुञ्जाइश न थी। जो डेक यात्रियों के काम में न आकर सामान रखने के लिए ही होते हैं उन तक पर त्रिपाल तान तानकर मुसाफ़िर भर दिये गये। बहुत अधिक भीड़ होने के सबब खाने की जगह, नहाने की जगह और पायख़ाने सभी बहुत गन्दे हो गये थे मैं कई बार डेक के मुसाफ़िरों की हालत देखने सभी डेकों पर घूमा। सभी लोग भीड़ की शिकायत करते थे। इसका फल भी हुआ। कई डेकों के मुसाफ़िर बीमार हो गये। हमारा नौकर भी बीमार हो गया। ब्रिटिश इंडिया नेवीगेशन कम्पनी को सरकारी मेल ले जाने तथा अन्य अनेक प्रकार के ठेकों के कारण अफ़्रीका के इस रास्ते पर एकाधिकार हो गया है। अँगरेज़ी भारत के जहाज़ हर १५ दिन मे अफ़्रीका जाते आते हैं। मैंने जो कुछ टायरिया पर देखा उससे मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि ब्रिटिश भारतीयों के या तो ये ठेके रद होने चाहिए या उन्हें मुम्बासा तक हर हफ़्ते जहाज़ चलाना चाहिए। फिर तीसरे दर्जे के यात्रियों के लिए भी 'ब्रिटिश इंडिया नेवीगेशन कम्पनी' केबिन बना सकती है। इटेलियन, फ्रेंच, जर्मन आदि लाइनों और युनियन कासल में तीसरे दर्जे के मुसाफ़िरों के लिए भी केबिनों की व्यवस्था है। डेक-क्लास के मुसाफ़िरों के लिए अधिक स्नानागार और पायख़ाने बनने चाहिए तथा जहाज़ पर चढ़ते समय की डाक्टरी जाँच आदि की पद्धति में बहुत अधिक परिवर्तन होना चाहिए। एकाधिकार होने के कारण 'ब्रिटिश इंडिया नेवीगेशन कम्पनी' काफ़ी कमाती है। ऐसी हालत में उस पर ज़ोर डाला जाना चाहिए कि वह तीसरे दर्जे के यात्रियों के आराम की ओर अधिक ध्यान दे। जहाज़ पर डेक के यात्रियों की ये तकलीफ़ें और इस तरह की भीड़-भाड़ अक्षम्य है।

जहाज़ का बाक़ी इन्तज़ाम बुरा न था। खाने के लिए अँगरेज़ी, हिन्दू और मुसलमानी तीनों तरह के भोजनों का प्रबन्ध था। भोजन भी साधारणतया अच्छा ही था। पर भोजन बहुत मँहगा था। आजकल जब भोजन-सामग्री का भाव गिरा हुआ है तब तो भोजन इतना मँहगा न होना चाहिए।

जहाज़ के सभी कर्मचारी अच्छे थे। अफ़सरों से लेकर साधारण से साधारण नौकर, भोजन का प्रबन्ध करनेवाले सभी भले आदमी थे। मेरे साथ तो सभी का व्यवहार बहुत ही अच्छा रहा।

मुसाफ़िरों मे पूर्वी और दक्षिणी अफ़्रीका के अनेक व्यापारी थे। जब उन्हें मालूम हुआ कि मैं इन देशों के हिन्दुस्तानियों की स्थिति की जाँच करने जा रहा हूँ तब प्रायः सभी मुझसे मिले और अपने अनेक कष्टों के सम्बन्ध में घन्टों बातें करते रहे। हर दिन सन्ध्या को डेक पर यात्रियों की ख़ूब भीड़ हो जाया करती थी। पुरुष, स्त्रियाँ, बच्चे सभी डेक पर आते और घूमा करते थे। डेक पर कुछ ख़ास तरह के खेलों का भी प्रबन्ध था। स्मोकिंगरूम में प्रायः ब्रिज और कैरम खेला जाता था। बड़े दुःख से मैंने देखा कि यात्रियों और हिन्दुस्तानी यात्रियों में अधिकांश शराब पीते थे। अफ़्रीका में यह दुर्गुण बहुत बढ़ गया है। इसका अनुमान जहाज़ पर ही हो गया! संध्या को डेक पर बच्चों की उछल-कूद और किलकारियाँ बड़ी मनोरंजक होती थीं। जहाज़ पर जिन दो सज्जनों से मेरा बहुत अधिक सम्बन्ध हो गया उनमें से एक लुरेंको मार्क्विस के व्यापारी श्री नटवरलाल और दूसरे जोहान्सबर्ग के व्यापारी श्री ओकाभाई थे। मैंने १० तारीख से १९ तारीख़ तक का समय जहाज़ पर जिस सुख से काटा वह मुझे बहुत दिन तक याद रहेगा। रवाना होने के पहले कई लोगों ने मुझसे समुद्री बीमारी की बात कही थी, पर मुझे तो एक दिन भी उसका अनुभव न हुआ। पोरबन्दर से चलकर जहाज़ ९ दिनों और ९ रातों के बाद मुम्बासा में ठहरा। इतने समय में ऊपर नीला आकाश और नीचे नील समुद्र के सिवा और कुछ न दिखता था। पृथ्वी के गोल होने का नेत्रों को प्रमाण जितना जहाज़ पर मिलता है, उतना कदाचित् कहीं न मिलता होगा। चारों ओर गोलाकार समुद्र और बीच में जहाज़। इसी प्रकार क्षितिज का भी जैसा सुन्दर दृश्य जहाज़ पर से दिखता है, वैसा कहीं से नहीं। आकाश और समुद्र के सम्मिलन की एक सीधी और गोल लकीर चारों ओर से कितनी भली दिखती थी! समुद्र एकदम शान्त था और

उसमें यह छोटा-सा जहाज़ झूमता हुआ चला जा रहा था। कभी कभी समुद्र में उछलती हुई मछलियाँ दिख जाती थीं, पर बहुत कम। आकाश प्रायः निर्मल रहता था। कभी कभी बादल उठते थे, पर बरसात का मौसम न होने के कारण जल्दी ही छिन्न-भिन्न हो जाते थे। सूर्य नित्य समुद्र से ही उदय होता और उसी में डूब जाता था। उदय होते और डूबते हुए सूर्य की लाल किरणें नीले समुद्र पर पड़कर एक विचित्र रंग घोल देती थीं। मध्यान्ह का सूर्य समुद्र पर मीलों चाँदी की चादरें बिछा देता था तथा अनेक स्थानों पर समुद्र को हीरों से जड़ देता था। जब कभी लहरें पानी के छींटे उड़ाती थीं उस समय सूर्य की किरणें उनमें अपने सातों रंग घोल-कर उन्हें इन्द्र-धनुष बना देती थीं। जिस दिन मैं चला उस दिन शुक्ल पक्ष की छठ थी। पूर्णिमा की रात्रि मुम्बासा पहुँचने के पहले दिन की रात थी। चन्द्रमा नित्य अपनी एक एक कला को बढ़ाता हुआ अगणित तारागण के साथ समुद्र को तरसाता हुआ चमका करता था। समुद्र की लहरें उठ उठकर मानो चन्द्रमा को स्पर्श करने का प्रयत्न करती थीं। जहाज़ में बैठने के बाद हर दिन बढ़ती हुई चाँदनी और अंतिम दिन की पूर्णिमा कितनी आनन्ददायक थी। जहाज़ के चलने के सबब उसके दोनों तरफ़ समुद्र में जो फेन उठता था वह चन्द्रमा की किरणों में चमका करता था। उस समय ऐसा भास होता था, मानो यह नील-सागर क्षीर-सागर हो गया है।

पूर्णिमा के दिन चन्द्रोदय देखने का निश्चय कर लक्ष्मीचन्द और मैं जल्दी ही डेक पर चले गये थे। पूर्व-आकाश में कलाधर अपनी पूर्ण कलाओं से उदय हुआ। अँधेरा हो चला था। नील सागर का पूर्वी भाग क्षितिज से जहाज़ तक आलोकित हो उठा। शेष समुद्र अभी भी नीला ही था। उस समय ऐसा जान पड़ा, मानो उस नीलोदधि में एक श्वेत नदी बह रही हो। इस नदी की तुलना अमावस्या के नीलाकाश की आकाशगंगा से ही की जा सकती थी। फ़र्क़ इतना ही था कि नील सागर की इस श्वेत नदी में चमक थी—नीलाकाश की उस आकाशगंगा में सिर्फ़ सफ़ेदी रहती है। थोड़ी ही देर में चन्द्रमा को श्वेत बादलों ने ढँक लिया, पर अब पवन ने तीव्र गति ग्रहण की। धीरे धीरे वे बादल ऊपर को उठने लगे और चन्द्रमा उससे बाहर निकला। उस समय मुझे तो वह चाँद की जगह-सी ही जान पड़ा। ऐसा भास हुआ, मानो किसी ने उसकी श्वेत साड़ी का घूँघट उठा दिया हो। लक्ष्मीचन्द ने मुझसे पूछा—"आज तो यह जहाज समुद्र में से चल रहा है। इसके यात्री इस दृश्य को देख रहे हैं। सदा तो यह बिना देखे ही रह जाता होगा।" मैं विचार में पड़ गया, पर कुछ ही क्षणों के बाद मैंने उन्हें उत्तर दिया—"यह जहाज़ बहुत छोटी चीज है। हम सब बहुत छोटी चीज़ें हैं। सृष्टि का यह सारा सौन्दर्य किसी दूसरी बड़ी चीज के लिए होगा।"

घन्टों डेक पर खड़े खड़े मैं प्रकृति की इन विविध लीलाओं को देखा करता था। मन्द मन्द चलती हुई वायु सारे शरीर और मन को प्रफुल्लित करती रहती थी।

मुम्बासा अफ़्रीका का पहला बन्दरगाह

भारत से अफ़्रीका आनेवाले जहाजों के लिए मुम्बासा अफ़्रीका का पहला बन्दरगाह है। टायरिया १९ तारीख को प्रातःकाल पहुँचनेवाला था, पर पहले दिन रात से ही मुम्बासा पहुँचने की उत्कंठा लग गई थी। जहाज़ पर ९ दिन बड़े सुख से बीते थे, परन्तु ९ दिन तक आकाश और समुद्र को छोड़कर पृथ्वी के दर्शन नहीं हुए थे। यही शायद इस उत्कंठा का सबब था। मनुष्य-हृदय परिवर्तन के लिए कितना इच्छुक रहता है।

बन्दरगाह पर पहुँचने का समय ८ बजे का नियुक्त था, परन्तु पृथ्वी पौ फटते ही दिखने लगी थी। पृथ्वी के नज़दीक होने का पहला संकेत मुम्बासा के बन्दरगाह की उस घूमती हुई बत्ती ने रात्रि को कुछ अँधेरा रहते ही कर दिया था जो प्रायः बन्दरगाहों पर लगाई जाती है। पौ फटते ही नारियल के ऊँचे ऊँचे वृक्षों तथा अन्य पौधों से युक्त अफ़्रीका की हरी-भरी ज़मीन के प्रथम बार दर्शन हुए, अतः मालूम हो गया कि अफ़्रीका देश रूखा-सूखा न होकर हरा-भरा है। उस समय अफ़्रीका में गरमी का मौसम था, पर गरमी ज़्यादा न थी। जैसा बम्बई का मौसम था, वैसा ही मुम्बासा का भी जान पड़ा।

यद्यपि पहुँचने का समय ८ बजे का था, तथापि

[दो सुहेली मित्र]

[illegible]मुसाफ़िर नहा-धोकर कपड़े आदि पहनकर उतरने के लिए तैयार होकर ६ बजे से ही स्मोकिंग-रूम और डेक पर पहुँचने लगे थे। शायद ही कोई यात्री उस दिन ४ बजे के बाद सोया हो। हम लोग भी चार बजे ही उठे थे और क़रीब ६½ बजे डेक पर पहुँच गये थे।

डेक पर मालूम हुआ कि यहाँ फिर डाक्टरी जाँच होगी। उसी प्रकार की जाँच हुई, जैसी बम्बई में हुई थी। यहाँ भी बम्बई के समान ही कपड़े उतरवाकर शीतला के टीके के नये और पुराने निशान देखे गये। [illegible] दूसरी बार की यह क़वायद बड़ी नागवार मालूम हुई। मुझसे न रहा गया। मैंने कहा—क्या एक दफ़े की जाँच काफ़ी नहीं है। आखिर आदमी पर थोड़ा-सा भरोसा तो करना ही चाहिए। बिना टीका लगवाये न तो कोई सिविलसर्जन या हेल्थ-अफ़सर झूठा सर्टिफ़िकेट देगा और न कोई भला आदमी झूठा सर्टिफ़िकेट लेगा। डाक्टर अँगरेज था। गरम हो कर बोला—"हिन्दुस्तान में न तो झूठे सिविलसर्जनों और [illegible] अफ़सरों की कमी है और न ऐसे लोगों की जो झूठे सर्टिफ़िकेट ले आवें।"

बात और बढ़ी। कुछ सख़्त बातें मैंने कहीं और कुछ डाक्टर ने। जहाज़वाला डाक्टर बीच में पड़ गया, नहीं तो शायद बात बहुत बढ़ जाती।

डाक्टरी जाँच से निपट कर इमीग्रेशन-परीक्षा आरम्भ हुई। लक्ष्मीचन्द तो जल्दी से निपट गये, पर मेरे सम्बन्ध में झगड़ा उठ खड़ा हुआ। इमीग्रेशन-फ़ार्म में एक प्रश्न रहता है—तुम्हें किसी अपराध में जेल तो नहीं हुई है? मैंने उसका सच्चा उत्तर दे दिया—"एक नहीं तीन दफ़े।" इमीग्रेशन-फ़ार्म देखनेवाला पुलिस-अफ़सर भी अँगरेज़ था। इमीग्रेशन-फ़ार्म में यह पढ़ते ही उसने मेरी गाड़ी अटका दी।

"किस गुनाह में?" उसने पूछा।

जिन दफ़ाओं के अनुसार मुझे सज़ायें हुई थीं मैंने उन्हें उद्धृत कर दीं।

पुलिस-अफ़सर वे दफ़ायें नहीं जानता था। उसने पूछा—"क्या ये दफ़ायें चोरी-डाके की हैं?"

"राजद्रोह की।" मैंने बिगड़कर कहा।

"तब आप इस फ़ार्म पर यह लिख दीजिए कि आपको माफ़ी दे दी गई है।"

"हर्गिज नहीं। मैंने अपनी सजायें भोगी हैं।"

"जब तक आप यह न लिखेंगे कि आपको माफ़ी दे दी गई है, आप यहाँ उतर न सकेंगे।" उसने भुँझला कर कहा।

"जनाब, जिस मध्यप्रान्तीय सरकार ने मुझे सजायें दी थीं उसी ने मुझे पासपोर्ट भी दिया है, इसलिए आप मुझे रोक न सकेंगे।" मैं बोला।

पुलिस-अफ़सर और भी भुँझला पड़ा। शायद उसकी समझ में न आया कि वह क्या कहे। इस बहस को सुन-कर बहुत से मुसाफ़िर इकट्ठे हो गये थे और आपस में कानाफूसी कर रहे थे। स्थिति कदाचित् और भी गंभीर हो जाती, पर इतने में ही मुम्बासा के इण्डियन एसोसि-एशन के सभापति श्री पटेल, सेक्रेटरी डाक्टर कर्वे, कीनिया-डेलीमेल के सम्पादक श्री पांड्या तथा अन्य अनेक प्रतिष्ठित सज्जन मुझे लेने के लिए जहाज़ पर आ पहुँचे। डाक्टर कर्वे ने पुलिस-अफ़सर को एक तरफ़ ले जाकर न जाने क्या कहा कि फिर उसने मेरे उतरने में कोई बाधा न की और हम लोगों ने सहर्ष मुम्बासा की पृथ्वी पर पैर रक्खा।

मुम्बासा की भूमि पर उतरते ही जिन दो बातों ने सबसे अधिक ध्यान आकर्षित किया वे थीं वहाँ के मनोरंजक दृश्य और वहाँ के हब्शी। मुम्बासा एक छोटा-सा नगर है, परन्तु समुद्र, उसके हरे-भरे किनारों और साफ़-सुथरे मकानों एवं सड़कों ने उसे कहीं अधिक सुन्दर बना दिया है। हब्शियों की तसवीरें पहले अवश्य देखी थीं, पर प्रत्यक्ष में हब्शियों को कभी नहीं देखा था। मुम्बासा में सबसे अधिक संख्या उन्हीं की दिखाई दी। ये हब्शी यहाँ 'सुहेली' कहलाते हैं। एकदम काला वर्ण, ऊँचा-पूरा मोटा-ताज़ा शरीर, छोटे छोटे घूँघरवाले काले बाल, चपटी नाक और मोटे ओठ। किसी एक के भी मूँछ या दाढ़ी न थी। सुनने में यह आया कि मूँछों और दाढ़ी के स्थल पर इनके छोटे छोटे बाल निकलते ज़रूर हैं, पर उस्तरे के स्थान पर काँच के टुकड़े फेर कर ये उन्हें निकाल देते हैं। सिर के बाल भी आधे इंच से अधिक लंबे नहीं होते—न पुरुषों के और न स्त्रियों के। यह सुना कि इस केश-विहीन जाति के लोगों में सबसे अधिक इच्छा अपने बाल बढ़ाने की होती है, पर यह इच्छा पूरी हो सकना शायद असम्भव है। पुरुष गले से पैर तक एक लंबा सफ़ेद कुर्ता और पाजामा पहनते हैं। स्त्रियाँ छपे हुए रंगीन दो वस्त्र—एक लँहगे के समान और दूसरा उसके ऊपर वक्षःस्थल से कमर तक पह-नती हैं। पुरुष सिर पर सफ़ेद गोल टोपी लगाते हैं और स्त्रियाँ नंगे सिर रहती हैं। इस जाति में कुछ वर्ष पहले तक न कोई धर्म था और न कोई विवाह आदि सामाजिक बन्धन। पर अब अधिकांश सुहेलियों ने इस्लाम-धर्म ग्रहण कर लिया है, कुछ ईसाई भी हो गये हैं। विवाह-प्रथा भी जारी हो गई है।

यहाँ मुझे मालूम हुआ कि हिन्दुस्तान के काले आदमियों और अफ़्रीका के सुहेलियों में कितना फ़र्क़ है। यदि योरपवाले गोरों के मुक़ाबले में हिन्दुस्तानी काले कहे जाते हैं तो अफ़्रीका के सुहेलियों के मुक़ाबले में उन्हें गोरा ही कहना होगा। मुम्बासा में ४ जातियों के लोग रहते हैं—सुहाली, भारतीय, अरब और योरपीय। योरपीय तो नहीं के बराबर हैं। भारतीय और योरपीय व्यापार करते हैं, कुछ क्लर्क भी हैं। सुहेली हैं पुलिस के कानिस्टबिल, मोटरों के ड्राइवर और घरों के नौकर।

मुम्बासा में हम लोग कीनिया की एक्ज़ीक्यूटिव कौंसिल के मेम्बर आनरेबिल श्री जे० बी० पंड्या के अतिथि हुए। कौंसिल के अधिवेशन के कारण श्री पंड्या जी तो नैरोबी में थे, पर उनके छोटे भाई 'कीनिया-डेली-मेल' के सम्पादक श्री पंड्या जी ने हम लोगों की ख़ातिर-तवाज़ा में कुछ उठा न रक्खा।

'पंड्या-विला' में ठहरने के बाद १९ तारीख को ही क़रीब ११ बजे हम लोग मुम्बासा की संस्थाओं को देखने चले। इसमें शक नहीं कि यहाँ की सभी संस्थायें दर्शनीय हैं।

हमें वहाँ की संस्थायें बड़े ढंग से दिखाई गईं। पहले पहल हम लोग 'कोस्ट मेटरनिटी एन्ड नरसिंग होम' नामक संस्था में गये, जहाँ बच्चे पैदा होते समय माता की तथा बच्चा पैदा होने के बाद बच्चों की हिफ़ाज़त की जाती है। डाक्टर और मिसेज़ सेठ इस संस्था को बड़ी अच्छी तरह चला रहे थे। इसके बाद हमने 'एस० एन० के० मेहता नर्सरी-स्कूल' देखा, जिसमें ३ वर्ष से ६ वर्ष
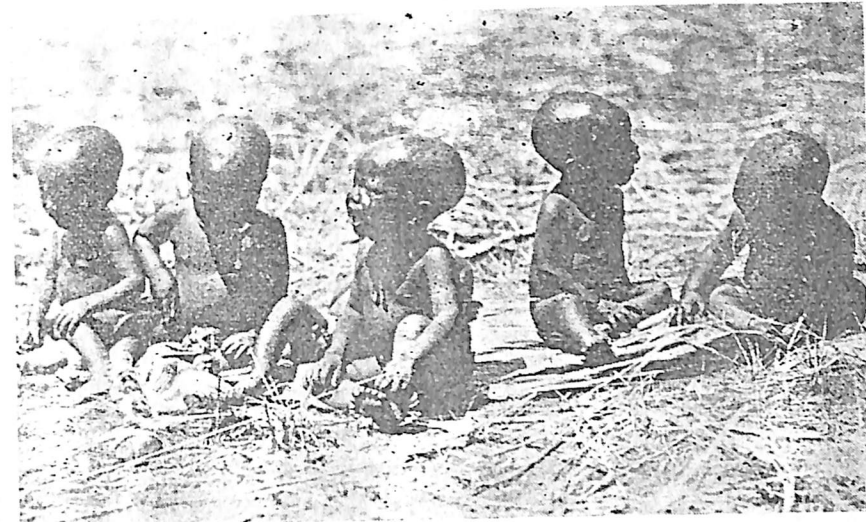
[सुहेलियों के बच्चे]

तक के बच्चों को खेल कूद के ज़रिये न जाने कितनी बातें सिखाई जाती हैं। किंडर-गार्टन की विधि का जितना सुन्दर प्रयोग हमने इस संस्था में देखा, उतना इसके पहले कहीं नहीं देखा था। यहाँ से आगे बढ़कर हमने 'गवर्नमेंट एलीमेंटरी स्कूल' देखा, जिसमें ६ वर्ष से लेकर ११ वर्ष की अवस्था तक के बच्चों को शिक्षा दी जाती है। यहाँ भी शिक्षा इतने मनोरंजक ढंग से दी जाती है कि बच्चों को यह मालूम ही नहीं होता कि वे पढ़ाये जा रहे हैं। इस संबंध में एक ही दृष्टान्त मैं यहाँ दूँगा, जिसे हमने स्वयं देखा। एक दर्जे में एक सात वर्ष का बच्चा रीछ की एक कहानी अपने सहपाठियों को कह रहा था। बच्चों के पीछे छोटा-सा काला पर्दा लगा हुआ था। कहानी में जब तीन रीछों का ज़िक्र आया तब वह पर्दा खुला और उसके भीतर से तीन रीछ बने हुए बालक निकल कर रीछों के सदृश उछल-कूद करने लगे। दर्जे के सारे लड़के हँस पड़े और बच्चों को रीछों का पूरा ज्ञान इस तरह हो गया कि उसका भूलना उनके लिए असम्भव था। नर्सरी और एलीमेंटरी स्कूल का संचालन श्री जोशी तथा उनकी धर्म-पत्नी करती हैं और उनके सुन्दर संचालन के लिए वे बधाई के पात्र हैं। इसके बाद हमें गवर्नमेंट इंडियन गर्ल्स स्कूल और अली दिना विसराम हाई स्कूल दिखाये गये। इन दोनों संस्थाओं में कोई खास बात न होते हुए भी संस्थायें सुन्दर थीं। हाई स्कूल के प्रिंसिपल मिस्टर एफ़० व्हाइट से मालूम हुआ कि अब तक हाई स्कूल के ऊपर की शिक्षा का पूर्वी अफ़्रीका में कोई इन्तज़ाम नहीं है और जिन्हें ऊँची शिक्षा लेनी होती है उन्हें हिन्दुस्तान या इँग्लेंड जाना पड़ता है। मिस्टर व्हाइट ने यह भी कहा कि यहाँ के विद्यार्थी आगे की शिक्षा लेना भी पसन्द नहीं करते, क्योंकि हाई स्कूल छोड़ते ही वे किसी न किसी रोजगार में लग जाते हैं।

सारे पूर्वी अफ़्रीका में हमें मुम्बासा के सदृश संस्थायें कहीं न मिलीं। मुम्बासा की संस्थायें खासकर नरसरी और एलीमेंटरी स्कूल सारे पूर्वी अफ़्रीका में ही नहीं, वरन भारत में भी अनुकरणीय हैं। इन सभी संस्थाओं में बच्चों की तन्दुरुस्ती का बड़ा ध्यान रक्खा जाता है और बच्चे हमें बड़े तन्दुरुस्त, फ़ुर्तीले एवं तेज़ दिखाई दिये। इन संस्थाओं का अवलोकनकर क़रीब १ बजे हम लोग डाक्टर कर्वे के यहाँ पहुँचे, जहाँ हमारे लंच का प्रबन्ध

था। अनेक हिन्दुस्तानी सज्जनों के सिवा लंच में मुम्बासा के डिस्ट्रिक्ट कमिश्नर और कामर्स के सभापति भी निमन्त्रित थे। लंच के समय बातचीत चलते चलते कीनिया के हाइलैंड्स की चर्चा निकली। एक सज्जन बोल उठे—"यह सवाल अब ख़त्म हो गया।" मुझसे न रहा गया। मैंने उत्तर दिया—"तब तक के लिए जब तक भारत आज़ाद नहीं होता। आज़ादी मिलने के बाद ये सब सवाल फिर से उठाये जायँगे।" उस समय हमारे कई साथियों के चेहरे देखने लायक थे।

५ बजे संध्या को श्री पंड्या ने मुझे टी-पार्टी दी। उसमें मुम्बासा के सभी नागरिकों से मिलना हो गया।

६ बजे सार्वजनिक सभा हुई। यहाँ की सभायें थियेटर-हाल में होती हैं। सभा में बड़ी भीड़ थी। सभापति थे इंडियन एसोसिएशन के प्रेसिडेंट श्री पटेल। क़रीब एक घंटे तक मैंने सभा में भाषण किया। मेरा विषय था 'हिन्दुस्तान और अफ़्रीका की वर्तमान राजनैतिक परिस्थिति और दोनों देशों का परस्पर संबंध।' मैंने श्रोताओं को स्मरण दिलाया कि हिन्दुओं के पुराणों तक में अफ़्रीका देश का ज़िक्र आया है तथा ऐतिहासिक दृष्टि से भी हमारे और अफ़्रीका के प्राचीन सम्बन्ध को सन् १४९८ में जब प्रसिद्ध यात्री वास्को डि गामा यहाँ आया था तब उसने भी देखा था। उस समय हिन्दुस्तानी व्यापारी यहाँ समृद्धिशाली अवस्था में व्यापार करते थे। मैंने स्पष्ट कह दिया कि पूर्वी अफ़्रीका भारत का मुख्य उपनिवेश होगा और स्वतंत्र भारत देख लेगा कि उसे यह उपनिवेश किस तरह मिलता है। भारत की स्वतंत्रता की भारत में रहनेवाले और उपनिवेशों में रहनेवाले दोनों ही भारतीयों को आवश्यकता है। यह सिद्ध करने का मैंने यत्न किया। अन्त में भारतीय स्वतंत्रता के संग्राम के इतिहास का उल्लेखकर यह प्रमाणित किया कि दिन दिन भारत स्वतन्त्रता के कितने निकट जा रहा है और स्वतन्त्रता उसके कितने निकट आ रही है। जब मैं दक्षिण-अफ़्रीका से लौट कर भारत आ रहा था तब मुम्बासा में सुना कि उस भाषण की वहाँ कई दिनों तक चर्चा होती रही।

'टायरिया' दूसरे दिन ४ बजे सन्ध्या को मुम्बासा से रवाना होता था। हम लोगों ने टायरिया से ही ज़ंज़ीबार जाने का निश्चय किया।

२० तारीख़ को प्रातःकाल मैंने मुम्बासा के भारतीयों की बस्ती का निरीक्षण किया और कीनिया के सम्बन्ध में वहाँ के कई सज्जनों से बातें कीं। उस दिन आनरेबल श्री पंड्या से जो नैरोबी से एक दिन के लिए—शायद मुझसे ही मिलने के लिए मुम्बासा आ गये थे, कीनिया के सम्बन्ध में कई ज्ञातव्य बातें मालूम हुईं। उस दिन और कोई बात न हुई और ४ बजे हम लोग ज़ंज़ीबार के लिए रवाना हो गये।

(क्रमशः)

आह्लाद

लेखिका, कुमारी हरवंश कौर

मुझे हुआ आह्लाद अपार,
किस पर लादूँ मैं यह भार।
हँसती हँसती रोती हूँ मैं,
दुनिया सारी खोती हूँ मैं।

दुःख नहीं सह सकती हूँ मैं,
शान्त नहीं रह सकती हूँ मैं।
मोद प्राप्त कर अकुलाई मैं,
नयनों में जल भर लाई मैं।

बिजली दौड़ चली इस तन में,
काँप उठी सहसा मैं क्षण में।

मज़दूर

लेखक, श्रीयुत विश्वनाथ मिश्र

खनऊ में—एक दिन जब मैं कांग्रेस-भवन से लौटकर अपने मित्र के बँगले के बरामदे में आरामकुर्सी पर प्रकृति की निस्तब्धता में लीन-सा बैठा झिल-मिल झिल-मिल-सी नीलम के रंग की रेशमी साड़ी पहने सान्ध्य-किन्नरी को अंशुमाली की स्वर्णिम किरणों पर धीरे धीरे पग धर-धर कर उतरते देख रहा था, मेरे प्राइवेट सेक्रेटरी ने आकर मुझे एक पत्र दिया। मेरा ध्यान टूटा और मैं उसे खोलकर पढ़ने लगा। वह था मेरे एक पुराने मित्र तथा मज़दूर-दल के एक प्रमुख कार्य-कर्ता का पत्र। उसने मुझे अपने मज़दूर-दल की एक सभा में व्याख्यान देने के लिए कानपुर बुलाया था।

मैंने कानपुर जाकर अपने पुराने मित्रों से मिलने तथा मज़दूर-आन्दोलन का कुछ रंग-ढंग देखने का विचार करके अपने प्राइवेट सेक्रेटरी से स्वीकृति का पत्र लिख देने के लिए कह दिया और फिर आरामकुर्सी पर लेटकर अपनी आँखों के आगे कल्पना-रूपी तूलिका से कानपुर के मज़दूर-आन्दोलन के अनेकानेक चित्र अंकित करने लगा—उनमें कुछ दीनों की आहें थीं, उनकी द्रवीभूत करनेवाली कुछ प्रार्थनायें थीं और इन्हीं के साथ थे कुछ उच्छृङ्खलतापूर्ण विलास तथा वासनामयी पाशविकता के नग्न प्रदर्शन! आह! कितने बीभत्स थे वे दृश्य।

× × × ×

उन दिनों कानपुर में मज़दूर-आन्दोलन का ज़ोर था। बड़ी बड़ी मिलों के द्वार पर ताले लटक रहे थे। उनके भीतर बन्द कुछ सज्जनों को जो पहले मिल के दफ़्तरों में लिखने-पढ़ने का काम किया करते थे, अब मशीनों में तेल लगाने का काम दे दिया गया था।

कुछ ऐसे भी मिल-मालिक थे जो अपनी मिलों के द्वार पर ताला बन्द करना मज़दूर-दल के सामने अपनी हार स्वीकार करना समझते थे। परन्तु ऐसी मिलें थोड़ी ही थीं, जिनके द्वार का ताला खुला रहता था। और जो कुछ थीं भी वे भी ठीक मज़दूरों के भीतर आने के समय खुला करती थीं। उनका चलन होता था कि बीस-पचीस मज़दूरों का एक छोटा-सा दल उनके द्वार पर पहुँच जाता और भीतर जानेवाले कुछ सीधे-सादे मज़दूरों तथा क्लर्कों को उनके हाथ-पैर जोड़कर भीतर जाने से रोकने लगता था। यदि कभी कभी उनको अपने इस काम में बल-प्रयोग करने की आवश्यकता पड़ती थी तो वे लोग उससे भी नहीं चूकते थे।

ऐसे समय में मिल-मालिकों के पास पुलिस का सहारा लेने के सिवा और कोई चारा न रह जाता था। पुलिस आती, उन पर अपने मोटे मोटे डंडों-द्वारा आतंक जमाने का प्रयत्न करती, परन्तु मज़दूर-दल अपनी उद्दंडता का पुरस्कार पीठ पर डंडों के रूप में प्राप्तकर सहर्ष वीरों की भाँति अपना कार्य करता रहता। अन्त में पुलिस अपना आतंक जमते न देखकर पकड़-धकड़ आरम्भ करती। उसका यह अत्याचार देखकर उस रास्ते से जानेवाले बच्चे, बूढ़े, जवान, देहाती, भिखारी, खोंचेवाले इत्यादि सभी अपना अपना सामान एक ओर फेंककर उन मज़दूरों के दल में जाकर मिल जाते और चिल्ला चिल्लाकर कहते—"दुष्टो! हमें भी बाँध लो।" इस प्रकार एक क्षण में—केवल एक ही क्षण में—वह बीस-पचीस मज़दूरों का दल सैकड़ों की संख्या का हो जाता था।

× × ×

सहसा गाड़ी धीरे धीरे चलने लगी। मेरी आँखें बाहर की ओर उठ गईं। गाड़ी उस समय पुल पर चल रही थी। मैंने बाहर की ओर झाँककर देखा। एक नदी मन्थर गति से बह रही थी। उसे देखते ही मैं पहचान गया। यह वही थी जिसकी लहरों पर मैं बचपन में खेला करता था और जिसको मेरी मा ने गंगा माता कहने के लिए कहा था। मैं आज से कई बार पहले भी कानपुर गया था और वहाँ उसके दर्शन किये थे। परन्तु आज के दर्शनों और उन दिनों के दर्शनों में मुझे बड़ा भेद प्रतीत हो रहा था। पहले जब जब मैं कानपुर गया था, वह मुझे माता की ही भाँति दोनों बाहें फैलाकर गीत गाती

हुई अपनी गोद में लेती हुई-सी प्रतीत होती थी और आज भी यद्यपि वह मुझे बड़ी उत्सुकता के साथ अपनी गोद में ले रही थी, तथापि उसका वह मनोमुग्धकारी स्वर न था, उसकी वाणी में आह भरी थी, उसकी कलकल छलछल-सी रागिणी में मुझे एक आकुल क्रन्दन सुनाई दे रहा था। जीवन का करुण संगीत गाती हुई उसकी प्रतिपल मिटनेवाली लहरों को देखकर मुझे वे दिन याद हो आये जब वह निरीह मनुष्यों के रक्त से लाल कर दी गई थी। मेरा शरीर काँप उठा और मेरी आँखें तट की ओर उठ गईं। उसे देखते ही मुझे भारतीय इतिहास के वे दिन याद हो आये जब उस स्थान पर हृदयहीन मनुष्यों ने—नहीं! नहीं! नर-पशुओं ने सहस्रों निरपराध मनुष्यों को आग उगलनेवाली तोपों से एक ही फूत्कार में उड़ा दिया था। मेरा हृदय काँप उठा और मेरी आँखें और भी ऊपर की ओर उठ गईं। मैंने देखा अपने सामने एक सुविस्तृत नगर। यह वही था जिसकी धूल में मैं खेला था और जिसने मेरे जीवन से एक अविच्छिन्न सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। उसका सौन्दर्य भी अभी विकृत न हुआ था, वरन किसी किसी स्थान पर और भी अधिक सुन्दर हो गया था। फिर भी न जाने क्यों वह मुझे अपनी ओर आकृष्ट न कर सका। वहाँ भी मुझे शान्ति नहीं मिल रही थी। बार बार मेरी आँखें वहाँ की मिलों की ऊँची चिमनियों की ओर उठ जाती थीं। वे मुझे जीर्ण-शीर्ण-सी प्रतीत हो रही थीं। उन चिमनियों से धुआँ नहीं निकल रहा था। उन्हें देखकर मुझे सहस्रों ही नहीं, वरन उन लाखों मनुष्यों का स्मरण हो आता था जो अपना पेट काटकर, एक पहर भूखे रहकर, अपनी जीविका के लिए लड़ रहे थे, अपने अधिकारों के लिए लड़ रहे थे।

× × ×

सहसा गाड़ी धीरे धीरे चलने लगी। पास बैठे हुए एक आदमी ने मुझसे पूछा—"भैया, कानपुर का स्टेशन आ गया?"

मैंने उससे कहा—"हाँ!" और स्टेशन की ओर-वाले दरवाज़े पर जाकर खिड़की से बाहर झाँकने लगा। मैंने देखा, मेरे डिब्बे के कोई पचास गज़ आगे स्टेशन के प्लेटफ़ार्म पर पन्द्रह-बीस आदमी खड़े हुए हैं और उन सबके हाथों में सफ़ेद फूल की मालायें हैं। गाड़ी उस समय बड़ी मन्थर गति से चल रही थी और वे लोग अपने सामने से निकलनेवाले प्रत्येक डिब्बे को बड़ी उत्सुकता-भरी दृष्टि से देख रहे थे और जैसे जैसे डिब्बे निकलते जाते थे, उनकी उत्सुकता और भी बढ़ती जाती थी।

सहसा मेरा डिब्बा उनके सामने आया। मुझे देखते ही उनके चेहरे प्रसन्नता से खिल उठे और उन सबने हाथ जोड़कर मुझे प्रणाम किया। उस छोटे-से दल के सबसे आगे खड़े हुए लोगों में एक ऐसा भी व्यक्ति था जिसने मुझे हाथ जोड़कर प्रणाम नहीं किया और चुपचाप अपने कोट की जेब में हाथ डाले खड़ा रहा।

गाड़ी रुक गई और मैं उससे उतर पड़ा। उन लोगों ने अपनी अपनी फूल की मालायें मेरे गले में डाल दीं। परन्तु वह व्यक्ति अपने स्थान से न हिला। उसने मुझे माला नहीं पहनाई। मैंने एक बार आश्चर्य-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा। वह उसी प्रकार जेब में हाथ डाले खड़ा रहा और मेरी ओर देखकर मुस्करा दिया। मैं झेंपकर चुपचाप उसकी ओर से दृष्टि हटाकर अपने मित्र के साथ चल दिया।

× × ×

व्याख्यान बड़ी धूमधाम के साथ हो रहा था। मेरे एक एक शब्द को सुनकर लोगों के हृदय हिल जाते थे और वे मंत्र-मुग्ध की भाँति करतल-ध्वनि करने लगते थे। कोई कोई तो जोश में आकर कुछ ऊट-पटाँग भी चिल्लाने लगते थे।

उन सहस्रों मनुष्यों की भीड़ में सहसा मेरा ध्यान एक मनुष्य की ओर आकर्षित हो गया। उसने मेरे अंगारों जैसे शब्दों पर एक बार भी ताली नहीं बजाई—एक बार भी उसका हाथ न हिला।

उसकी इस अभावुकता को देखकर धीरे धीरे मुझे क्रोध आने लगा और उसी के साथ मेरा स्वर भी कुछ तीव्र हो चला। वहाँ कुछ तीव्रता की आवश्यकता भी थी। फिर लोग मंत्र-मुग्ध की भाँति करतल-ध्वनि करने लगे। परन्तु उस मनुष्य के-से पत्थर के-से हाथ एक बार भी न हिले—वह चुपचाप अन्यमनस्कभाव से उसी प्रकार बैठा रहा।

धीरे धीरे व्याख्यान समाप्त हुआ। उसके समाप्त होते ही उन लोगों ने एक भीषण हर्षनाद किया। परन्तु उस भीषण हर्षनाद में भी वह व्यक्ति उसी प्रकार चुपचाप बैठा रहा। उसने एक बार भी अपने साथियों का साथ न दिया—उसने एक बार भी अपना मुँह न खोला।

यह वही विचित्र व्यक्ति था जिसने एक बार स्टेशन के प्लेटफ़ार्म पर मुझे अपनी ओर निहारता देखकर मुस्करा दिया था।

× × ×

दूसरे दिन—

जब मैंने अपने मित्र के कमरे में प्रवेश किया, मैंने देखा कि वह विचित्र मनुष्य मेज़ के सामने रक्खी हुई एक कुर्सी पर अन्यमनस्कभाव से बैठा है। मुझे कमरे में प्रवेश करते देखकर उसने मुझसे कम्पित स्वर में पूछा—"भाई × × × जी कहाँ हैं?"

मैंने मेज़ की दूसरी ओर पड़ी हुई कुर्सी पर बैठते हुए उससे कहा—"बैठिए। अभी आते होंगे।" यह कहकर मेज़ पर पड़ा हुआ एक समाचार-पत्र उठाकर पढ़ने लगा। परन्तु मेरा मन समाचार-पत्र के पढ़ने में न लगा। उस विचित्र व्यक्ति को सामने बैठा हुआ देखकर उससे बातचीत करने के लिए मैं विह्वल हो उठा। मैंने उससे बातचीत करने का और कोई बहाना न पाकर उसके पास पड़े हुए समाचार-पत्र की ओर संकेत करते हुए कहा—"भाई साहब, ज़रा उसे उठा दीजिए।" और उसकी ओर देखने लगा। वह सचमुच एक विचित्र व्यक्ति था।

सहसा उसका हाथ उठा जैसे वह समाचार-पत्र को उठाने जा रहा हो; परन्तु वह गिरा ही रह गया और उसकी आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे।

मेरी नसों में बिजली-सी दौड़ गई। मैं काँप उठा, उठकर खड़ा हो गया और आश्चर्यभरी दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा—उसके दोनों हाथ कटे हुए थे।

भूल सको तो भूलो मुझको

लेखक, श्रीयुत चन्द्रप्रकाश वर्मा 'चन्द्र'

भूल सको तो भूलो मुझको भूल सको तो भूलो!

(१)

मैं परदेशी दूर देश का क्या जाने कब जाऊँ!
मैं पथ पर तुम दूर राह से, कैसे प्रीति निभाऊँ?
विस्मृति-झूला डाल चला मैं, भूल सको तो भूलो!

(२)

दो दिन को बहार लाती जब दुनिया की फुलवारी,
दो दिन को कलिकायें खिलती हैं जब क्यारी क्यारी;
तब बन सुधि के शूल न कसको, फूल बने तुम फूलो!

(३)

यहाँ सदा पहचान भली पर भला न मोह हमारा,
कुंज कुंज चिर-तृषित भ्रमर फिरता ममता का मारा;
चन्द्र-किरण के धोखे में मत दीप-शिखा को छू लो!

स्वातन्त्र्य-वीर विनायक सावरकर

लेखक, श्रीयुत धर्मवीर, एम० ए०

ता जीजाबाई ने हिन्दू-राष्ट्र के उस पुनःसंस्थापक छत्रपति शिवाजी को रामायण और महाभारत की वीर-गाथायें सुना सुनाकर देश के इतिहास की नींव डाली थी। बचपन में पूर्वजों की कीर्ति सुनने का यह फल स्वाभाविक ही था। वही रामायण और महाभारत स्वातन्त्र्य-वीर को भी बचपन में सुनने को मिले। उनके पिता श्री दामोदरपन्त सावरकर उन्हें प्रताप, शिवाजी और भाऊ साहब का यश गा-गा कर सुनाया करते थे। क्यों न इनका प्रभाव अब भी वही होता जो शिवाजी पर उस समय हुआ था?

× × ×

श्री विनायक दामोदर सावरकर का जन्म सन् १८८३ में हुआ था। वे तीन भाई हैं--गणेश, विनायक और नारायण। विनायक मँझले हैं और बचपन से ही देश-प्रेम का अद्भुत परिचय देते चले आ रहे हैं। उन पर अपने पूर्वजों का इतना प्रभाव पड़ा कि उनके खेल भी मराठा-इतिहास की किसी घटना या राजस्थान की किसी वीरतापूर्ण बात से निकले होते थे। तभी से वे अपने साथियों में धुरन्धर वक्ता और भारत की स्वतन्त्रता और उसके उपायों की बातें करनेवाले के रूप में प्रसिद्ध हो गये।

१८९३ से १८९५ तक देश में जगह-जगह दंगे हुए। हिन्दुओं पर मुसलमानों के अत्याचारों ने हिन्दू-भावों को बड़ा धक्का पहुँचाया। अपने ग्राम भगूर में आनेवाले दो-चार समाचार-पत्रों को विनायक बड़े चाव से पढ़ते थे। अपने धर्म-भाइयों पर हुए जुल्म का जवाब देने के लिए उन्होंने एक दर्जन बाल-सिपाहियों की फ़ौजें लेकर गाँव की एक टूटी-फूटी मस्जिद पर चढ़ाई की और विजय-पताका फहरा कर वापस चले आये। अगले सप्ताह स्कूल के मुसलमान लड़कों ने उन्हें चैलेंज किया। परिणामस्वरूप स्कूल के बरामदे में घमासान युद्ध हुआ। परन्तु बालक विनायक के सेनापतित्व में उसकी सेना के पास काँटों और पिनों-जैसे हथियार होने के कारण मुसलमान सेना की क़रारी हार हुई। उन्हें मास्टर के सामने जाकर जान बचानी पड़ी।

इस युद्ध से विनायक को एक शिक्षा मिली। उनके कुछ साथी ठीक वक़्त पर अपनी माताओं की आवाज़ें सुन कर पीछे से खिसक गये। इसलिए विनायक ने सबको अनुशासन में रखने और उनमें फ़ौजी भावनायें भरने के लिए एक खेल का आविष्कार कर डाला।

घर में श्री विनायक अब घंटों दुर्गा की मूर्ति के सामने बैठे विचार में मग्न रहते। तब इस संसार से उनका कुछ संबंध ही न रहता। उन्होंने पढ़ रक्खा था कि श्री शिवाजी की संरक्षक देवी दुर्गा ही थीं।

ऐसे वातावरण में पालन-पोषण हुआ था वर्तमान भारत के सर्वश्रेष्ठ क्रान्तिकारी का। १०-१२ वर्ष की आयु से ही विनायक कविता लिखने लग गये थे। पूना और बंबई के समाचार-पत्र उनकी रचनायें सहर्ष स्वीकार करते। १० वर्ष की आयु में उनकी माता का स्वर्गवास हो गया। परन्तु उनको तो दुर्गा ही माता का रूप धारण किये दिखाई देती थीं। इसलिए उन्हें इसका दुःख बहुत नहीं हुआ।

उस समय विनायक ने खड़े होकर यह प्रतिज्ञा की--"अपना जीवन और मृत्यु मैं भारत की जंजीरें काटने के लिए लगा दूँगा। सारे हिन्दुस्तान के युवकों में आग लगाने के लिए उन्हें भी अपने साथ लूँगा। मैं एक गुप्त संस्था बनाऊँगा, अपने देशवासियों को शस्त्र-सुसज्जित करके लड़ूँगा और आवश्यकता हुई तो इसी के लिए तलवार हाथ में लेकर मर भी जाऊँगा।"

× × ×

प्लेग आया और श्री दामोदरपन्त को ले गया। अपने पीछे वे एक लड़की और तीन लड़के छोड़ गये। विनायक के छोटे भाई और चाचा को भी यह बला चिमट गई। 'प्लेग एडमिनिस्ट्रेशन' के नोटिस ने उन्हें घर से निकाल दिया। वे गाँव के पास एक मन्दिर में

जा पड़े। इस समय विनायक, उनके भाई और भौजाई की सहायता के लिए केवल एक घुमक्कड़ कुत्ता था। चाचा को भी प्रभु ने उठा लिया। गणेश के एक सहपाठी की सहायता से बाक़ी सब नासिक चले गये। वहाँ गणेश भी फँस गये। इतनी मुसीबतों के होते हुए भी विनायक अपना आदर्श नहीं भूले। इस समय उनकी आयु १६ वर्ष थी। उन्हें अपने कुछ सहयोगी मिल गये। इनकी मदद से नासिक में 'मिजमेला' नामक एक संस्था खोली।

मेट्रिक पास करके विनायक फ़र्ग्यूसन कालेज, पूना, में गये। ताकि अपने विचार सारे महाराष्ट्र में फैला सकें। वहाँ भी 'सावरकर-कैंप' बड़ा प्रसिद्ध हो गया। सभी सभा-सोसाइटियों पर इसका प्रभाव हो गया। यहाँ से वे एक साप्ताहिक निकालने लगे। इसके लेख बाद को महाराष्ट्र के बड़े पत्रों में छपते और चाव से पढ़े जाते।

इसके बाद स्वदेशी-आन्दोलन को सावरकर-कैंप ने पूना, नासिक आदि में सफल बनाया। विदेशी कपड़े ढेर के ढेर जला डाले गये। इस प्रश्न पर 'एंग्लो-इंडियन' पत्रों ने बड़ा शोर मचाया, कालेज के अधिकारियों ने विनायक पर दस रुपये जुर्माना किया और २४ घंटे के अन्दर कालेज छोड़ देने की आज्ञा दी। जनता में इसके विरुद्ध बड़ा आन्दोलन हुआ। जुर्माना देने के लिए फ़ंड खोल दिया गया। जुर्माने से अधिक जो रुपया जमा हुआ उसे विनायक ने औद्योगिक फ़ंड को दे दिया। वे पहले व्यक्ति थे जो स्वदेशी-आन्दोलन में भाग लेने के कारण सरकार की सहायता पानेवाले किसी कालेज से निकाले गये थे। बी० ए० होने के कुछ समय बाद ही उन्होंने 'अभिनव भारत' प्रकाशित करना शुरू किया। इस समय वे मेज़ीनी, गेरीबाल्डी, शिवाजी और रामदास की जीवनियों से शिक्षा ग्रहण कर रहे थे।

इसके बाद पंडित श्यामजी कृष्ण वर्मा की एक वृत्ति लोकमान्य तिलक की सहायता से प्राप्तकर विनायक बैरिस्टरी की शिक्षा पाने के लिए इँग्लैंड चले गये। सरकार ने सोचा वहाँ शायद वे अपनी राजनैतिक चालों को बदल लेंगे। परन्तु वह यह न समझी कि यह तो वह मर्ज़ है जो बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।

जहाज पर विनायक को एक महाशय मिले जो बैरिस्टर बनने के लिए ही विदेश जा रहे थे। उनके दिल में विनायक के लिए बड़ी इज्ज़त हो गई। एक बार वे उनसे कहने लगे--"मेरा दिल उदास हो गया। मैं अदन से वापस हिन्दुस्तान क्यों न चला जाऊँ?" विनायक बोले--"हम कितने कमज़ोरदिल होते जा रहे हैं। अँगरेज लड़के जब क्लाइव के समय हिन्दुस्तान में आये तब इँग्लैंड से भारत छः महीने का रास्ता था। तब उनके माँ-बाप एक साल के बाद उनकी खबर पा सकते थे। तो भी वे आये और ऐसे करोड़ों लोगों के मध्य में रहकर राज्य बना लिया जिन्हें उन्होंने कभी देखा तक न था। एक हम हैं कि आजकल के इतने आराम-देह जहाज़ों में भी कहीं अकेले जाते हुए काँपते हैं। आप कहते हैं, आपकी माता अमीर हैं। आपकी बैरिस्टरी का वे क्या करेंगी? परन्तु यह तो बताइए कि हमारी माताओं की माता--भारतमाता--क्या ऐसी अमीर है? वह तो चाहती है कि उसके सपूत विदेश जाकर देखें कि दुनिया कैसी है, साम्राज्यवादियों की शक्ति क्या है और उसकी अपनी कमज़ोरी क्या है। हमें चाहिए कि इँग्लैंड, फ़्रांस, रूस आदि जाकर यह देखें कि उन्होंने किस प्रकार क्रांतियाँ कीं। आपको वापस नहीं जाना चाहिए। अपने प्रियजनों का वियोग मुझसे अधिक किसी को ही दुःख देता होगा। हमें चाहिए कि समय आये तो अपने आपको और उन्हें भी निछावर कर दें परन्तु अपने पवित्र उद्देश्य में कमी न आने दें।"

× × × ×

लन्दन में भी श्री विनायक सावरकर चुप नहीं बैठे। लाला हरदयाल पंजाब-गवर्नमेंट से स्टेट-स्कालरशिप लेकर वहाँ गये हुए थे। अन्य भी दो-एक वृत्तियाँ उन्हें मिलती थीं। ये सब सरकारी वज़ीफ़े छोड़कर भारत को स्वतन्त्रता दिलाने की प्रतिज्ञा करके अब तक विदेशों में घूम रहे थे। यह उन्हीं का प्रभाव था कि विनायक सावरकर ने वहाँ मेज़ीनी की जीवनी का मराठी में अनुवाद किया। उनकी इस ऐतिहासिक रचना की इतनी बिक्री हुई, जितनी उस समय किसी पुस्तक की नहीं हुई थी।

[स्वातन्त्र्यवीर श्री विनायक दामोदर सावरकर]

१९०७ में अँगरेज़ों ने १८५७ की जीत मनाने का निश्चय किया। समाचार-पत्रों ने बढ़-बढ़ कर विशेषांक निकालकर 'ग़दर' करनेवालों को बदनाम करने की ठानी। इसके विरुद्ध झाँसी की रानी, ताँतिया टोपे, नाना साहब आदि की याद में विनायक ने खुशी मनाने का फ़ैसला किया और सारा प्रबन्ध कर लिया। 'इंडिया हाउस' में एक असाधारण मीटिंग हुई, "ओह मर्टायर्स" (ओ शहीदो!) नाम की पुस्तक छपवा कर सहस्रों की संख्या में बाँटी गई। बड़े-बड़े नेता इस बात के विरुद्ध थे, परन्तु 'सावरकर' और 'युवक' समानार्थक हो चुके थे। ऑक्सफ़ोर्ड, कैंब्रिज और इन्ज़-आव-कोर्ट ले छात्र "१८५७ के शहीदों की पुण्य स्मृति में—" सुन्दर बिल्ले लगाकर कालेजों को गये। एक कालेज में अँगरेज प्रोफ़ेसरों का पारा चढ़ गया—"शहीद? वे तो हत्यारे थे। उतार दो इसे!" भारतीय छात्रों ने इस पर प्रोफ़ेसरों को क्षमा माँगने के लिए कहा और विरोध के रूप में कालेज छोड़ गये। कुछ एक को अपने वज़ीफ़े से हाथ धोना पड़ा। कुछ ने वे अपने आप छोड़ दिये। कइयों के घरवालों ने वापस बुला लिया। दिन प्रति-दिन राजनैतिक वातावरण बिगड़ता गया।

× × × ×

भारत में श्रीगणेश सावरकर को एक पुस्तिका लिखने पर बादशाह के विरुद्ध लड़ाई करने के अभियोग में आजन्म कालेपानी की सजा दी गई। विनायक के हिन्दुस्तान में आने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। सब परीक्षायें पास कर लेने पर भी उन्हें डिग्री न दी गई और कहा गया कि अगर अब भी क्रान्तिकारी आन्दोलन छोड़ दो तो काम बन सकता है। उधर एक सुबह यह सुनकर शहर थरथरा उठा कि सावरकर-पार्टी की सरगर्मियों की देख-रेख करनेवाले विशेष महकमे के इन-चार्ज सर कर्ज़न वाइली गोली से मार डाले गये हैं। मारनेवाला पंजाब का एक हिन्दू युवक मदनलाल धींगड़ा था।

भारतीयों में इस क़त्ल के विरुद्ध आग भड़क उठी। एक बड़ी भारी मीटिंग में सभी भारतीय और एंग्लो-इंडियन लोग एकत्र हुए। कई वक्ताओं के बाद प्रधान ने उस प्रस्ताव पर जिसमें धींगड़ा को जी भर कर कोसा गया था वोट लेने के बजाय 'एकमत से पास' कह दिया। इस पर एक आवाज़ आई—"नहीं, एकमत से नहीं। मैं इसके विरुद्ध हूँ।" यह आवाज़ दबनेवाली न थी। सावरकर शांत तथा स्थिर थे। सारी भीड़ "कौन है?" "कहाँ है?", "क्या नाम है इसका?", "कहाँ का है?" इत्यादि कह कर जोश में आ गई। सावरकर बोले—"मैं हूँ, यहाँ हूँ, मेरा नाम सावरकर है।" "मानचेस्टर गार्जियन" ने लिखा—"वहाँ पर श्री सावरकर ऐसे खड़े थे जैसे नेतृत्व करने के लिए ही पैदा हुए हैं। एक बू-शियन को इतना गुस्सा आया कि उसने श्री सावरकर को एक मुक्का मारा। उनकी ऐनक टूट गई और खून भी निकल आया। इस पर उन्होंने कहा—"इतना सब कुछ होते हुए भी मैं इस प्रस्ताव के विरुद्ध हूँ"। कुछ ही क्षण में इस जोशीले नवयुवक का सिर लाठी से ज़ख्मी कर दिया गया।

धींगड़ा को फाँसी हुई। उसके अन्तिम शब्द ये थे—"एक हिन्दू होने के कारण मेरी यह प्रार्थना है कि मैं बार बार हिन्दुस्तान में ही जन्म लेकर उसी के लिए मरूँ ताकि वह स्वतन्त्र होकर प्रभु का साक्षात् रूप बन जाय।"

अब तो श्री सावरकर के पीछे जासूसों की एक फ़ौज लग गई। वे जिधर जाते पीछा किया जाता; जहाँ ठहरते निगरानी रक्खी जाती। इधर भारत में श्री सावरकर के मित्रों और भाइयों को सरकार चुन चुन कर एक तरफ़ करने लगी। बीमार होने के कारण अब वे पेरिस चले गये। वहाँ से वे लौटने लगे तब मित्रों ने रोका कि लंदन पहुँचते ही पकड़े जाइएगा। इन शुभ-चिन्तकों के लिए उनका जवाब साफ़ था—"जब तक मैं सामने नहीं रहता तब तक मैं औरों को आगे बढ़ने के लिए कैसे कह सकता हूँ।" लंदन के स्टेशन पर ही "वह है! वह है सावरकर। वही है!" कह कर जासूसों के दल ने उन्हें घेर लिया। इसी समय उन्होंने अपनी भौजाई को वह 'अंतिम पत्र' लिखा था जिसे पढ़ कर आज भी आँखों में आँसू आ जाते हैं।

सशस्त्र पहरे में विनायक सावरकर भारत को रवाना किये गये। मार्सेल्ज़ के बन्दरगाह पर पहुँचने के लिए श्री सावरकर ने पेरिस में स्थित कुछ साथियों को कहला भेजा था। पर कोई न पहुँचा। बन्दरगाह पर जहाज़ ठहरा। उन्होंने अपने पहरेदारों को ग़ुसलखाने में ले जाने के लिए कहा। अपने चीफ़ आफ़िसर से पूछकर वे उन्हें ले गये। वहाँ एक ऐसा शीशा लगा हुआ था जिससे बाहर के आदमी को अन्दर का सब कुछ दिखाई देता था। श्री सावरकर ने अपने रात के कपड़े उतार कर इस तरह टाँग दिये कि बाहर खड़े सिपाही कुछ भी न देख पाये। "अब, या कभी नहीं", यह सोच कर वे रोशनदान में से समुद्र में कूद पड़े। आफ़िसर ने देख लिया। "धोखा! धोखा!" चिल्लाते हुए वह दरवाज़ा खोलने का प्रयत्न करने लगा। उधर श्री सावरकर समुद्र को तैरकर पार कर रहे थे। पहरेदारों ने नाव में बैठकर पीछा किया; समुद्र में कूदने की हिम्मत किसी की न थी। विनायक की बचपन में चट्टानी पहाड़ों पर चढ़ने की जो आदत डाली थी उसने अब सहायता की। वे फ़्रांस के तट पर जा पहुँचे और स्वतन्त्र वायु में साँस लेने लगे। अब वे फ़्रांस के क़ानून के तले थे। परन्तु पीछे से "चोर! चोर!" चिल्लाते हुए सिपाही आ रहे थे। भागने का काम था। एक मील तक सावरकर दौड़ते रहे। आशा थी कि पेरिस से कोई साथी पहुँचा होगा। पर व्यर्थ। कोई आदमी दो-चार पैसे दे देता तो वे किसी ट्रैम पर चढ़ कर भाग निकलते पर वहाँ, जन्म-भूमि से सहस्रों मील दूर, स्वदेश को स्वतन्त्र कराने की कोशिश जैसा पाप करनेवाले को कौन चार पैसे देता? सावरकर "पुलिस! पुलिस?" चिल्लाते जाते थे। एक फ़्रेंच सिपाही मिला तो सही पर वह उस क़ानूनी मामले को कैसे समझ सकता था जो सावरकर कह रहे थे मुझे फ़्रांस की सरकार के सिवा कोई नहीं पकड़ सकता उसने उन्हें ब्रिटिश पुलिस के हवाले कर दिया। वे फिर जहाज पर लाकर केबिन में बंद कर दिये गये! चीफ़ आफ़िसर श्री सावरकर से इतना तंग था कि कहने लगा—यह सावरकर भी कैसी आफ़त है!" "श्री सावरकर भी जीवन से तंग थे। मृत्यु को बुलाने लगे। इस असफलता ने उन्हें हताश कर दिया। भारत पहुँचने पर पता लगा कि फ़्रांसीसी सरकार ने उन्हें इँगलेंड से वापस माँगा है। इससे कम से कम भारत की स्वतन्त्रता का प्रश्न सारे संसार के सामने तो आ गया। विनायक का यह प्रयत्न तो पूर्ण हो गया।

इससे समस्त इँगलेंड में खलबली मच गई। फ़्रांस की पार्लमेंट में प्रश्न पूछे गये। मामला हेग के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय तक पहुँचा। यद्यपि वीर विनायक को इससे कुछ लाभ न हुआ तो भी भारत की स्वतंत्रता का प्रश्न एक बार समस्त संसार के सामने आ गया। वीर सावरकर की आजन्म कालेपानी की सजा हुई। आपके साथ आपके छोटे भ्राता नारायण और कुछ दूसरे मित्रों पर भी मुक़दमे चले।

२९ वर्ष कालेपानी और नज़रबन्दी की यातनायें भुगत कर विनायक सावरकर १९३७ में रिहा हुए। देशवासियों ने उनका उचित आदर किया।

सावरकर से कहा गया कि यदि वे कांग्रेस में सम्मिलित हो जायँ तो वे बंबई की प्रान्तीय असेम्बली के

सदस्य चुनने के बाद प्रधान मंत्री के आसन पर बिठला दिये जायँगे। उन्होंने जवाब दिया कि मैं आपको धन्यवाद देता हूँ; लेकिन रिश्वत लेने की मुझे आदत नहीं। अगर कांग्रेस शुद्ध राष्ट्रीयता पर दृढ़ खड़ी रहे तो मैं उसके साथ हूँ। परन्तु मैं तो देखता हूँ कि वह हिन्दुत्व को नष्ट करने में मदद दे रही है; यह मेरे लिए असह्य है। सम्प्रदायवादी मुसलमानों के सामने माथा टेकना स्वराष्ट्र का अपमान करना है; इसे मैं देख नहीं सकता। बस, इसी कारण वे हिन्दू-महासभा की ओर बढ़े। उसने उन्हें अपने उच्चतम आसन पर बिठलाया—दो बार सभापति बनाया और वे हिन्दू-राष्ट्रपति कहलाये।

तरुणों के प्रति

लेखक, श्रीयुत सोहनलाल द्विवेदी, एम० ए०, एल-एल० बी०

उठे राष्ट्र तेरे कंधों पर, बढ़े प्रगति के प्रांगण में,
पृथ्वी को रख दिया उठाकर, तूने नभ के आँगन में।
तेरे प्राणों के ज्वारों पर लहराते हैं देश सभी,
चाहे जिसे इधर कर दे तू चाहे जिसे उधर क्षण में॥

विजयवैजयन्ती फहरीं जो जग के कोने कोने में,
उनमें तेरा नाम लिखा है, जीने में बलि होने में।
घहरे रण घनघोर, बढ़ीं सेनायें, तेरा बल पाकर,
सिंहासन आगये चरणतल, तेरे शस्त्र-सँजोने में॥

तेरे बाहुदंड में वह बल, जो केहरि-कटि तोड़ सके,
तेरे दृढ़ स्कंध में वह बल, जो गिरि से ले होड़ सके।
तेरे वक्षःस्थल में वह बल, लोहा ले विष-बाणों से,
तेरे गर्जन में वह बल, जो शव में जीवन जोड़ सके॥

यह अवसर है, स्वर्ण-सुयुग है, खो न इसे नादानी में,
रँगरलियों में, छेड़छाड़ में, मस्ती में, मनमानी में।
लिख अपना इतिहास अमर, निशिदिन के उड़ते पृष्ठों में,
ज्वाल, लपक झुलसा दे नभ को, आग लगा दे पानी में॥

उठ बनकर भूकंप भयानक, डगमग डगमग जग डोले,
उल्कापात वह्नि बरसा रे! गलें मेरु, टलकें शोले।
प्रलयकाल की महारात्रि में, तांडव कर ले एकाकी,
तेरी शक्ति भक्ति भर दे, नत जग, तेरी जय जय बोले!

युग युग की रूढ़ियाँ, अंधविश्वास प्राण को घोट रहे,
अब न रहा रे बल शरीर में, जो फिर ये घनचोट सहे।
यौवन की ज्वालावाले, दे अभयदान पददलितों को,
तेरे चरण-शरण में आहत जग आश्वासन-श्वास गहे॥

भूमध्यसागर का प्रश्न

लेखक, श्रीयुत कुँवर राजेन्द्रसिंह

योरप के विकट प्रश्नों में भूमध्यसागर का प्रश्न सबसे अधिक भयानक है। अभी तक इस पर ब्रिटेन का एकाधिकार रहा है। परन्तु आज का इटली उसे अपनी 'झील' बता रहा है। यही नहीं, वह उस पर अधिकार कर लेने की धमकी दे रहा है। फलतः ब्रिटेन तथा उसके साथ फ्रांस और तुर्की अधिक सतर्क हो गये हैं। और आज भूमध्यसागर पर जंगी जहाजों की धूम के साथ क़वायदें हो रही हैं॥

मध्यसागर के उत्तर में योरप, पूर्व में एशिया और दक्षिण में अफ़्रीका है। इसका क्षेत्रफल क़रीब १०,०८,००० वर्गमील है और ज़्यादा से ज़्यादा इसकी लम्बाई २,३०० मील है। ८६ मील से लेकर ६०० मील तक इसकी चौड़ाई है। इसके दो हिस्से कहलाते हैं—पूर्वी और पश्चिमी। पूर्वी भाग की सबसे ज़्यादा गहराई २,१८७ फ़ैथम है। (एक 'फैथम' छः फ़ुट का होता है) और पश्चिमी हिस्से की गहराई २,४०६ फ़ैथम है। उसकी कम से कम गहराई का औसत ७८० फ़ैथम है। कई बड़ी बड़ी नदियाँ उसमें गिरती हैं, परन्तु उनसे उसे काफ़ी पानी नहीं मिलता है। इसका जितना पानी भाफ बनकर उड़ जाता है, उसकी कुछ पूर्ति एटलांटिक सागर करता है। और सागरों से उसका पानी ज़्यादा खारी है। कुछ जगहें ऐसी हैं, जहाँ पाँच फ़ुट तक ऊँची लहरे उठती हैं, नहीं तो उसमें लहरें ज़्यादा नहीं आती हैं।

भूमध्यसागर से इटली का वही सम्बन्ध है जो स्वेज़-नहर से ब्रिटेन का है। दोनों का दोनों के बिना काम नहीं चल सकता और इसी से उस पर अपना अधिकार जमाने की कोशिश इटली बराबर कर रहा है। अभी थोड़े ही दिन हुए मुसोलिनी ने अपने भाषण में कहा था कि भूमध्यसागर और खासकर इसका वह हिस्सा जो 'एड्रियाटिक' कहलाता है, इटली के लिए एक विशेष महत्त्व रखता है। उन्होंने यह भी कहा था कि यूगोस्लेविया का भी 'एड्रियाटिक' से विशेष सम्बन्ध है, परन्तु उस पर वह किसी प्रतिद्वन्द्वी के अधिकार जमाने का सशक्ति विरोध करेगा। मुसोलिनी का यह कहना हिटलर से था, क्योंकि यूगोस्लेविया पर जर्मनी की निगाह है। यों तो उनकी और हिटलर की खूब बनती है। परन्तु जहाँ स्वार्थ का सवाल होता है, वहाँ बाप और बेटे में भी नहीं बनती है। आज-कल ये दोनों शक्ति-सम्पन्न हैं, और शक्ति ही स्वत्व है। सबलता ही मनुष्य को सफल बनाती है। मुसोलिनी समझते हैं कि यदि युद्ध छिड़ गया और किसी ने इटली का रास्ता भूमध्य-सागर में रोका तो फिर कुछ बनाये नहीं बनेगा। सीधा भूमध्यसागर तक पहुँचने में अल्बेनिया अड़चन डाल सकता था, परन्तु वह अब इटली के अधीन है।

अल्बेनिया योरप का एक प्रजातन्त्र राज्य था। उसकी सीमाओं पर यूगोस्लेविया और ग्रीस हैं और पश्चिम में एड्रियाटिक समुद्र है। १०,६२९ वर्ग मील उस राज्य का क्षेत्रफल है और राजधानी का नाम तिराना। अधिकांश पथरीली ज़मीन है और कुछ हिस्सा ऐसा है जहाँ खेती होती है, शेष भाग में जंगल ज़्यादा हैं। १९३० में उसकी जन-संख्या १०,०३,०६८ थी। अल्बेनिया बहुत दिनों तक तुर्की के अधीन रहा। १९१३ में प्रथम बाल्कन-युद्ध के बाद अल्बेनिया स्वतन्त्र हुआ और १९१४ में वीड के विलियम उसके पहले शासक हुए। १९१७ में इटली ने उसे अपने अधिकार में कर लिया था। यह प्रबन्ध कुछ सन्तोषजनक नहीं था। १९२० में वहाँ प्रजातन्त्र की स्थापना हुई और अहमद बे ज़ोगू उसके पहले प्रेसीडेंट हुए। अल्बेनिया को स्वतन्त्र करने में उनके चचा इसाद पाशा ने बड़ी कोशिश की थी। स्वतन्त्र अल्बेनिया के तख्त पर बैठने के पहले ही वे पेरिस में मार डाले गये। इटली की मदद से ज़ोगू इस दर्जे पर पहुँचे थे, और जब तक मुसोलिनी उनसे खुश रहे, कोई आँच उन पर नहीं आई। पर जब वे असन्तुष्ट हो गये तब ज़ोगू को मुल्क छोड़-कर भाग जाना पड़ा। ज़ोगू का यूगोस्लेविया से मेल-जोल उनको पसन्द नहीं था। लोगों का यह खयाल था कि नाखुश हो जाने पर भी वे ज़ोगू को नहीं हटायेंगे, क्योंकि ज़ोगू की वजह से ही इटली का अल्बेनिया पर

पूर्ण प्रभाव था। परन्तु मुसोलिनी की दृष्टि में प्रभाव का प्रश्न नहीं था। शक्ति में मादकता होती है। इटली को अपने बल पर भरोसा था, अतएव अल्बेनिया इटली में सम्मिलित कर लिया गया। ज़ोगू भी होशियार थे। वे समझते थे कि किसी न किसी दिन कोई नया गुल खिलेगा। अतएव पहले से ही रुपया इकट्ठा करना शुरू कर दिया था, जिसे अन्य देशों के बैंकों में जमा कर दिया था। कहा जाता है कि उसकी संख्या दो करोड़ है। थड़े दिन हुए ज़ोगू ने एक संवाददाता से कहा था कि मुसोलिनी और हिटलर पागल हैं। थोड़ा बकझक कर डालने से दिल की दाह को कुछ शान्ति मिल जाती है। जब तक इटली की मदद से ज़ोगू का सितारा चमक रहा था तब तक मुसोलिनी को पागल कहने की हिम्मत नहीं पड़ी। स्वार्थ में मूकता है। तब कैसे ज़बान खुलती और अब कैसे बन्द रहती?

भूमध्यसागर ने अन्तर्राष्ट्रीय समस्या को और भी जटिल बना दिया है और इस विषय में इटली को जो कुछ कहना है वह ब्रिटेन से है, क्योंकि जिब्राल्टर और माल्टा की वजह से ब्रिटेन का ही आधिपत्य उस पर अधिक है। उधर जर्मनी और फ़्रांस की अनबन है। १९१८ की सन्धि ने योरप में अशान्ति की जड़ गाड़ दी। फ़्रांस की वर्तमान स्थिति से लोग सन्तुष्ट नहीं हैं। उनका कहना है कि ज्यों ज्यों जर्मनी की शक्ति बढ़ती गई, त्यों त्यों फ़्रांस की शक्ति घटती गई। किसी किसी का यह भी कहना है कि यदि यही हालत रही तो वह दिन दूर नहीं है जब योरप में फ़्रांस की गणना दूसरे नम्बर की शक्तियों में हो जायगी। जबसे जर्मनी ने राइनलैंड (यह पहले भी इसी का एक प्रान्त था), आस्ट्रिया, और चिकोस्लोवेकिया को अपने अधीन कर लिया है तब से फ़्रांस के सीमाप्रान्तों की रक्षा का प्रश्न उस देश के लिए एक बड़ा प्रश्न हो गया है। फ़्रांस के चारों तरफ़ वे मुल्क हैं जिनसे फ़्रांस की मैत्री नहीं है, जैसे जर्मनी, इटली और स्पेन। उसे अपने सीमा-प्रान्तों और औपनिवेशिकों की रक्षा के लिए ब्रिटेन की सहायता की आवश्यकता है। यह सत्य है कि ब्रिटेन और फ़्रांस में पूर्ण मैत्री है, परन्तु ब्रिटेन के भी तो सामने अपनी रक्षा का प्रश्न है। ब्रिटेन स्वयं युद्ध के लिए उतना तैयार नहीं है, जितना जर्मनी और इटली हैं। इसी वजह से मिस्टर चेम्बरलेन युद्ध से बचा रहे हैं, यद्यपि उनकी कड़ी आलोचना हो रही है। वे प्रायः अपने साथ एक छाता रखते हैं। उनका नाम अमरीका में हँसी के लिए छाते के लिए प्रयुक्त होता है। अभी थोड़े ही दिन हुए छाता बनानेवालों ने उनको एक छाता भेंट किया था। उनको अपने पुराने छाते से इतना प्रेम है कि उसकी मरम्मत करवाया करते

हैं, लेकिन बदलते नहीं हैं। जार्ज इलियट ने ८ वर्ष तक एक ही क़लम से लिखा था और उसके खो जाने पर उसे बड़ा दुख हुआ था। अस्तु।

फ़्रांस की अन्तर्देशीय परिस्थिति भी कुछ सन्तोषजनक नहीं है। जातीय आय घट गई है, रोज़गार में मन्दता आ गई है, जहाज़ी कारोबार में तीसरे नम्बर से अब उसका आठवाँ स्थान हो गया है। फ़्रांस में एक क़ानून है कि २० से लेकर २५ साल की उम्र तक के लोग फ़ौज में भर्ती हों। इस सेवा के उपलक्ष्य में लोगों की माँगे बढ़ीं और उनको पूरा करने के लिए गवर्नमेंट को हर एक चीज़ अपने अधीन करनी पड़ी। अब शायद ही कोई ऐसी चीज़ हो जिसमें गवर्नमेंट का हाथ न हो—यहाँ तक कि थियेटरों का भी प्रबन्ध गवर्नमेंट के हाथ में है। सरसरी निगाह से इस प्रबन्ध में कोई त्रुटि नहीं है, परन्तु हुआ यह है कि वहाँ के पूँजीपतियों ने रोज़गार में रुपया लगाने से अपना हाथ खींच लिया है और कारोबार में उत्साह की कमी हो गई है। अपने देश की तरह वहाँ भी पूँजी और परिश्रम में सहयोग नहीं है, जिससे व्यवसाय में शिथिलता आ गई है।

अभी थोड़े ही दिन हुए जब यह समाचार प्रकाशित हुआ था कि ब्रिटेन के जहाज़ भूमध्यसागर का रास्ता छोड़कर 'केप आफ़ गुडहोप' से होकर हिन्दुस्तान को आयाजाया करेंगे। लोगों का पहले से ही यही ख़याल था कि अगर युद्ध छिड़ गया तो यही करना पड़ेगा। भूमध्यसागर में इटली ने अपना पूरा इन्तज़ाम कर लिया है। जल और वायु में युद्ध करनेवाले जहाज़ों की वजह से भूमध्यसागर में ब्रिटेन के जहाज़ों की रक्षा का समुचित प्रबन्ध नहीं हो सकता है। पहले इसी पुराने रास्ते से अपने देश को ब्रिटेन आदि के जहाज़ आते थे। इस रास्ते से ६०० मील का चक्कर पड़ता है। पुराने रास्ते को छोड़ने से इस बात का पता चलता है कि भूमध्यसागर एक बड़े युद्ध का क्षेत्र बन जायगा। भूमध्यसागर पर ब्रिटेन अपना अधिकार घटने नहीं देगा, क्योंकि यह सीधा रास्ता है और इससे उसे अपने व्यवसाय में सुविधा होती है और अपनी रक्षा का भी पूरा प्रबन्ध करने को मिलता है।

इस वक़्त डिज़रैली (ये इँग्लैंड के प्रधान मंत्री थे) की दूरदर्शिता ब्रिटेन की बड़ी मदद कर रही है। पहले तो ब्रिटिश गवर्नमेंट स्वेज़-नहर के ख़िलाफ़ थी और उसका एक भी हिस्सा नहीं ख़रीदा, यहाँ तक कि लार्ड पामर्सन ने उसके बनने का विरोध किया था। जब नहर बन कर तैयार हुई तब इँग्लैंडवालों की आँखें खुलीं। परन्तु तब हो क्या सकता था? सब हिस्से बिक चुके थे। पर डिज़रैली को मौक़ा मिल गया। बहुत से हिस्से बिक रहे थे। उसने उन सबको फ़ौरन ब्रिटिश गवर्नमेंट के लिए ३९,७६,५८२ पौंड में ख़रीद लिया। यह बात उस समय डिज़रैली के भी ध्यान में न आई होगी कि उस नहर पर ब्रिटेन के कारोबार का भविष्य इतना निर्भर होगा।

भाग्य ने फिर साथ दिया और अरबों के विद्रोह को दबाने के लिए मिस्र देश पर १८८२ में ब्रिटिश सरकार ने क़ब्ज़ा कर लिया। स्वेज़-नहर मिस्र देश में ही थी। और मिस्र देश पर ब्रिटिश गवर्नमेंट का आधिपत्य हो गया था। इससे यह तो फ़ायदा ज़रूर हुआ कि स्वेज़-नहर भी उसके क़ब्ज़े में आ गई, परन्तु उसके साथ ही उसकी रक्षा का भी भार बढ़ गया। इसमें से होकर भूमध्यसागर को जाने का जो रास्ता है उस पर और भी राज्यों की निगाहें हैं। ब्रिटेन को इसी वजह से भूमध्यसागर में जंगी जहाज़ों का एक बेड़ा रखना पड़ता है। ब्रिटेन और फ़्रांस में यह समझौता है कि ब्रिटेन नहर की रक्षा करेगा और फ़्रांस भूमध्यसागर में अपने जंगी जहाज़ों की संख्या बढ़ाकर ब्रिटन के साथ भूमध्यसागर की रक्षा करेगा। विगत योरपीय महायुद्ध में ब्रिटेन और फ़्रांस को पता चला था कि इस प्रबन्ध से कितना लाभ हुआ। भूमध्यसागर में जर्मनी के जहाज़ों ने उपद्रव मचा दिया था।

जब से मुसोलिनी के हाथ में इटली की हुकूमत आई है तब से जंगी जहाज़ों की संख्या उसने बहुत बढ़ा दी है। इटली के अधीन जो द्वीप हैं उनसे भूमध्यसागर में उसे अधिकार जमाने की पूर्ण सहायता मिल रही है और उनमें केवल रक्षा करने का ही नहीं, वरन युद्ध करने का पूरा सामान मौजूद है। यह तो था ही, परन्तु अधिक भय इटली के हवाई जहाज़ों से है, जिनकी संख्या बहुत बढ़ गई है। इस वजह से भूमध्यसागर में जिब्राल्टर

से लेकर पोर्टसईद तक का २,००० मील का रास्ता सुरक्षित नहीं है। अगर स्वेजनहर होकर कोई जहाज़ भूमध्यसागर में पहुँच ही जाय तो वहाँ उसे इटली के हवाई जहाज़ों का सामना करना पड़ेगा, जो तोवरुक में एकत्र रहते हैं और इस वजह से इटली का पूरा अधिकार उस २०० मील की जल-प्रणाली पर है जो लीबिया और क्रीट के बीच में है। माल्टा के आगे जहाँ वह जल-प्रणाली और कम चौड़ी है, इटली के वायुयानों का और भी अधिक भय है। इटली के वायुयान बम्ब बरसाने में विख्यात हैं और ७०० मील की दूरी तक वे सब कुछ ध्वंस कर सकते हैं। जब इटली ने अबीसीनिया पर आक्रमण किया था तब ब्रिटेन ने यह धमकी दी थी कि वह इटली को माल पहुँचाने में बाधा डालेगा। धमकी का जवाब मुसोलिनी ने भी धमकी से ही दिया। उसने कहा कि उसके रास्ते में बाधायें उपस्थित करने से एक बहुत बड़ा युद्ध छिड़ेगा। 'किसका हुआ कौन सर आ पड़ी जब।' दूसरों की मदद करने के लिए कौन अपना गला फँसाता है? ज़बानी दोस्ती का ज़माना है और वही अबीसीनिया के साथ भी उदारता से प्रकट की गई थी। पत्रों में यह समाचार प्रकाशित हुआ है कि अबीसीनिया के साम्राज्यविहीन सम्राट् योग सीखने के लिए लंका आनेवाले हैं। शायद कुछ इसी से काम चले। ब्रिटेन को यह भी तो डर था कि उसके जहाज़ों का जो बेड़ा जिब्राल्टर में था, कहीं उस पर इटली के वायुयानों का आक्रमण न हो जाय। इटली के वायुयान जहाँ इकट्ठा थे वह स्थान जिब्राल्टर से बहुत दूर नहीं था। तब से ब्रिटिश गवर्नमेंट ने अपने जहाज़ों का बेड़ा जिब्राल्टर से हटाकर अलेक्ज़ेंड्रिया में कर दिया है। यह स्थान भूमध्यसागर के एक तरफ़ अन्त में है। अगर ब्रिटेन चाहे तो इटली का पूर्वी अफ़्रीका का रास्ता रोक सकता है, परन्तु इटली भी उसके जहाज़ों पर आफ़त ढा सकती है। अलेक्ज़ेंड्रिया भी ब्रिटेन के जहाज़ों के बेड़ों के लिए सुरक्षित स्थान नहीं कहा जा सकता है।

जब परिस्थिति बिगड़ने लगती है तब बिगड़ती ही चली जाती है। इटली की मदद से फ़्रैंको की स्पेन में विजय हुई है। अब स्पेन से केवल फ़्रांस को ही नहीं, ब्रिटेन को भी भय है। फ़्रांस को अपने अफ़्रीका के उपनिवेशों तक पहुँचने में स्पेन बाधा उपस्थित

[इटली के तानाशाह मुसोलिनी]
(जो भूमध्यसागर को इटली की झील बताते हैं।)

कर सकता है और ब्रिटेन के उस प्रबन्ध में भी गड़बड़ कर सकता है जो भूमध्यसागर के पश्चिम भाग में रहता है। जो राजनीति के अच्छे ज्ञाता हैं उनका कहना है कि ब्रिटेन के वे जहाज़ भी सुरक्षित नहीं हैं जो 'गुडहोप' से हो करके आयँगे। परन्तु ब्रिटेन के पास यह एक रास्ता तो है, जिससे काम लिया जा सकता है। परन्तु इटली के पास सिवा भूमध्यसागर होकर आने-जाने का और कोई रास्ता नहीं है। इन सब बातों पर ध्यान रखते हुए ब्रिटेन भी भूमध्यसागर में अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए पूर्ण उद्योग कर रहा है। तुर्की से उसकी यह संधि अभी हाल में हुई है कि भूमध्यसागर में एक दूसरे की मदद करेंगे। भूमध्यसागर की वजह से अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति और भी प्रतिकूल होती जाती है।

शायद यह असंगत न होगा यदि इस लेख में थोड़ा विचार इस पर भी किया जाय कि अगर युद्ध छिड़ गया और उसमें ब्रिटेन को सम्मिलित होना पड़ा तो भारतवर्ष की रक्षा का क्या प्रबंध होगा। विगत योरपीय महासमर में जर्मनी का एक जहाज़ इधर निकल आया था और उसकी वजह से इस देश में आतंक छा गया था। तब में और अब में बड़ा फ़र्क़ है। अब वायुयानों द्वारा

युद्ध होगा। तब से न मालूम कितनी तरह की गैसें निकल गई हैं। इँगलैंड के प्रत्येक पत्र में गैसों पर लेख रहते हैं और उनसे बचने के लिए एक विशेष तरह के कपटवेष का आविष्कार हुआ है। लंदन या और किसी शहर के लिए वह प्रबन्ध पर्य्याप्त हो सकता है, परन्तु हिन्दुस्तान ऐसे देश के लिए वह सब इंतिज़ाम काफ़ी नहीं होगा। लंदन में तहख़ाने बनाये गये हैं, जहाँ बैठ रहने से घातक गैस वहाँ तक नहीं पहुँच सकेगी। इसका भी इंतिज़ाम अपने देश में नहीं हो सकेगा। ज़मीन के नीचे यदि दूसरा मुल्क बसाया जाय तो चाहे कुछ हो सके और यदि सम्भव भी हो तो अपने ऐसे गर्म मुल्क में ज़मीन के नीचे तहख़ानों में बन्द रहने और जान देने से खुली हवा में साँस लेते जान देना कहीं अच्छा है। अब प्रश्न यह है कि यदि ये सब बातें असम्भव हैं तो रक्षा का क्या प्रबन्ध हो सकता है। वास्तव में इस प्रश्न का उत्तर देने का भार हम लोगों पर नहीं है। हमसे हर बात गुप्त रक्खी जाती है यहाँ तक कि फ़ौज का बजट हमारे प्रतिनिधियों के सामने नहीं पेश होता। सुनी तो ख़ैर उनकी किस मामले में जाती है, परन्तु अपना मत प्रकट करने का तो अवसर उनको मिल जाता था। जहाज़ों का कोई बेड़ा ख़ास अपने तटों की रक्षा के लिए नहीं है, जैसा सभी देशों में होता है और इसी काम के लिए वायुयान भी यहाँ नहीं हैं। जब किसी देश पर आफ़त आती है तब उसकी रक्षा का भार उसी देशवालों पर रहता है और होना ही चाहिए। ऐसे समय में भीरु भी वीर हो जाते हैं। जिन्हें वेतन का प्रलोभन होता है वे उस तरह जान तोड़कर नहीं लड़ सकते हैं, जैसे वे जिनके सामने उन सब चीज़ों के नष्ट और भ्रष्ट हो जाने का सवाल होता है जो उस देशवालों की दृष्टि

[जर्मनी के तानाशाह हर हिटलर]
(जो इटली की महत्त्वाकांक्षा की पूर्त्ति के लिए जर्मन सैनिकों को लीबिया में भेजने का प्रयत्न कर रहे हैं।)

में पवित्र और पुनीत होती हैं और जिन्हें पुरानी स्मृतियों ने शुचिता प्रदान कर दी होती है। समाचार-पत्रों से पता चलता है कि कराँची और बम्बई के तटों की रक्षा के लिए कुछ वायुयान आये हैं और आ रहे हैं। देश की रक्षा का समुचित प्रबन्ध हो, यही सब चाहते हैं। ऐसे ही अवसरों पर अपनी असहाय अवस्था का पता चलता है कि देश पर आफ़त आनेवाली है और हम निरस्त्र हैं और सिवा दूसरे का मुँह ताकने के और कुछ नहीं कर सकते हैं।

हास्यरस की एक कहानी
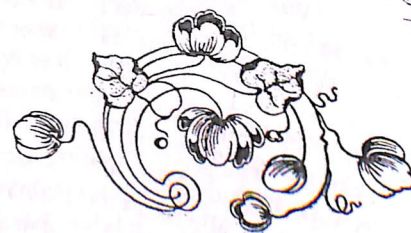
नहूसत

लेखक, श्रीयुत उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

नवम्बर के महीने की धूप हो और इतवार के बाद सोमवार की छुट्टी हो तो बस यही जी चाहता है कि घर से निकल जायें, कहीं गप-शप उड़ायें, ताश खेलें, शिकार पर जायें, मतलब यह कि रात को जब सोये तो फिर दूसरे दिन दोपहर तक बस सोते ही रहें। ख़ाँ साहब की दोनली बन्दूक़ इस मामले में सदैव हमारी सहायक रही है। यह और बात है कि श्रीमती जी उसे अपनी सौत से कम नहीं समझतीं और प्रायः जब जब इतवार को शिकार करने में और सोमवार को सोने में हमने गँवाया है तब तब श्रीमती जी का विरोध अनशन के रूप में प्रकट हुआ है और इसी सिलसिले में कई बार नन्हें को पिता के पापों का प्रायश्चित्त भी करना पड़ा है। बहरहाल इस बार 'जुमितुलविदा' सोमवार को आई तो हमने शनि की शाम को ही ख़ाँ साहब से कह दिया, कल दोनली बस तैयार ही रहे और शिकार किया जाये तीतर और ख़रगोश का।

ख़ाँ साहब बोले--तुम तो मियाँ ब्राह्मण होकर भी धर्म कर्म सब छोड़ बैठे हो, पर हमें तो कुछ आक़बत की फ़िक्र करने दो, रोज़े हैं ....

हमने बात काट कर कहा--देखिए ख़ाँ साहब, रोज़े तो जब चाहे रखे जा सकते हैं, पर छुट्टी इस तरह बाक़ी साल में फिर शायद न आये और न चाहो तो कोई शिकार तुम न लेना और इतनी ही आक़बत की फ़िक्र है तो भाई चाहे शिकार करना भी तुम नहीं; पर भाई चलना अवश्य, नहीं तो यह बलार्की तो हमें समय से बहुत पहले ख़त्म कर देगी।

ख़ाँ साहब बुद्धिमान् आदमी हैं। मान गये। तब हम एक-दो दूसरे दोस्तों को लेकर जा पण्डित तेजभान के पीछे पड़े। पण्डित जी शिकार पर हमारे साथ कभी न गये थे, पर फ़ैसला हमने पहले ही कर लिया था कि चाहे घसीटना ही क्यों न पड़ पर ले जाया उन्हें ज़रूर जाय। पण्डित तेजभान साथ न हुए तो आउटिङ्ग का मज़ा क्या ख़ाक आयेगा।

पण्डित जी अभी तक अपने कमरे ही में थे। हम पहुँचे तब वे फ़ाइलों और काग़ज़ों का एक पुलन्दा घर पर काम करने के विचार से तैयार कर रहे थे।

हमने कहा--देखो भाई कल हमारा इरादा शिकार को जाने का है। लाहौर से बाहर इस बार हम नहीं जायेंगे। यहीं दरया-पार सुना है तीतर और ख़रगोश बहुत होते हैं। बस उन पर ही इस बार संतोष किया जायेगा।

पुलन्दे को मेज़ पर रखकर पहले तो पण्डित तेजभान ने एक क़हक़हा लगाया फिर बोले--मुझे ले जाओगे तो बस फिर संतोष ही हाथ आयेगा शिकार नहीं।

--क्या मतलब है तुम्हारा? हमने कहा।

-- मैं कहता हूँ मुझे ले जाओगे, मिल चुके तीतर और ख़रगोश। शिकार के बदले में स्वयं ही शिकार होकर न आओ तो ग़नीमत है। और फिर वहीं बैठे पण्डित तेजभान ने अपने शिकार पर जाने के सम्बन्ध में जो कहानियाँ सुनाईं उन सबका अभिप्राय यह था कि शिकार के मामले में वे ऐसे मनहूस साबित हुए हैं कि जो कोई भी कभी उन्हें शिकार पर ले गया है वह परेशान ही हुआ है और कुछ पाने के बदले खोकर ही आया है। बचपन में चिड़ीमारों की एक टोली के पीछे-पीछे वे शिकार देखने के शौक़ में चले गये। वे बेचारे सारा दिन खेतों की ख़ाक छानते रहे, कई मील का चक्कर उन्होंने लगाया और जहाँ पहले वे कई 'टो'[1] और 'तुरमतियाँ'[2] मार लाते थे, वहाँ उन्हें अपने शिकारी पक्षियों के लिए 'तामा'[3] भी नसीब न हुआ। और तो और आते हुए अपना एक बाज़ ही खो आये। क़हक़हे पर क़हक़हा लगाते हुए पण्डित जी ने बताया कि दिन भर के थके माँदे वे एक गाँव के समीप पानी के छपाड़ पर ठहरे जहाँ एक 'बगुले' महात्मा इस स्थान को शान्तिपूर्ण जान अन्त और अनन्त की गुत्थी सुलझाने में निमग्न थे। चिड़ीमार तो तंग आये हुए थे ही उन्होंने सोचा कि चलो आज बगुले पर ही बाज़ छोड़ा जाये। दूसरे, जो कुछ अधिक धर्म-भीरु थे, सोचने लगे कि बगुला हराम है या हलाल। पर तीसरे ने यह कहकर कि, हलाल हो चाहे हराम हमें तो खाना नहीं, पर कम से कम बाज़ और शिकरों के लिए तो कुछ चाहिए ही, इस झगड़े को मिटा दिया और सबसे अच्छा बाज़ उन बगुले महात्मा पर छोड़ा गया। पर वे सर्वज्ञ जैसे यह सब कुछ पहले ही समझ गये और इधर बाज़ उनकी ओर लपका और उधर वे इस स्थान को कोलाहलपूर्ण हुआ जान फुर से उड़े और फिर ऐसा मालूम हुआ कि अनन्त शान्ति की तलाश में वे उड़े ही चले गये और ऐसा अच्छा हुआ, उस मूढ़ बाज़ ने भी वापस लौटना उचित नहीं समझा।

फिर पण्डित जी एक बार एक प्लेटलियर के साथ शिकार को गये तो ये प्लेटलियर साहब जिन्हें अपनी निशानाबाज़ी पर नाज़ था, दिन भर में एक पड़-कुलिया भी न मार सके और दो रुपये के कारतूस ख़राब करके आती बेर कीचड़ में लथ-पथ हो गये। हुआ यों कि सारे दिन की अपनी निराशा से जल कर शाम के धुँधलके में उन्होंने चलते-चलते एक उड़ते हुए लमढींग पर ही गोली चला दी। लमढींग ने ऐसी झपकी ली मानो गोली उसके लग ही गई हो। दरिया में दो दिन पहले बाढ़ आई थी और किनारे के बीच दलदल बन रहे थे। अपनी सफलता के जोश में वे इधर को बढ़े। तब अन्धकार में लमढींग तो क्या मिलता। एक जगह कीचड़ में जो फिसले तो स्वयं ही लमढींग बने पाये गये।

एक क़हक़हा लगाकर पण्डित तेजभान अपनी नहूसत की एक और घटना बयान करने लगे थे--तहसीलदार के साथ अपने शिकार पर जाने की, पर उन्हें बीच ही में रोक कर हम सबने उन्हें जता दिया कि वह छोड़ यदि उनकी सात पुश्तों में यह नहूसत चली आती हो तब भी छोड़ने के हम उन्हें नहीं।

बोले--पछताओगे; और यह कहकर उन्होंने पुलन्दा उठा लिया।

× × × ×

इतवार की सुबह को ज्यों ही हम उठे तो देखा कि श्रीमती जी शीघ्र-शीघ्र रसोई बनाने में व्यस्त हैं। तब उस नेक पतिव्रता स्त्री के प्रति हमारे हृदय में श्रद्धा और अनुराग का समुद्र उमड़ आया-- बेचारी को हमारा कितना ख़याल है। आज इतवार है और कल छुट्टी। उसे ध्यान रहा होगा कि आज ये बाहर अवश्य जायेंगे, इसलिए बेचारी शीघ्र-शीघ्र खाना बनाने में लगी है। एक स्नेहभरी दृष्टि उस पर डाल हम उठे। शौचादि से निवृत्त हो झट तौलिया उठा ग़ुसलख़ाने में चले गये और जब बड़े मज़े से अपने गायक न होने का समस्त क्रोध 'कदीं आउंदा कदीं नहीं आउंदा'* पर निकाल, बालों को झाड़ते हुए, इस गीत का दूसरा बन्द गाते-गाते बाहर निकलनेवाले ही थे कि श्रीमती जी की आवाज़ कान में पड़ी--मैं कहती हूँ आज आप ग़ुसलख़ाने में ही रह जायँगे क्या?

हमने दरवाज़ा खोलकर सिर नवाते हुए कहा---नहीं जनाब हम तो आपकी सेवा में उपस्थित हैं। तब मुस्करा कर देवी जी ने कहा--अच्छा तो फिर शीघ्रता कीजिए। आज तो आपको मुझे नुमाइश दिखाने भी ले जाना है न। मैंने तो देखो सब काम बिलकुल ठीक समय पर कर लिया है।

तौलिया हमारे हाथ से गिर गया।

१--फ़ाख्ता की एक क़िस्म, २--गरुड़, ३--बाज़ आदि को खिलाने के लिए गोश्त।

*कभी (प्रियतम) आता है और कभी नहीं आता।

श्रीमती जी अपनी झोंक में कहती गईं—और बात यह है कि खाना भी आकर बनाना है और फिर आप जानते हैं देर भी तो वहाँ लग जाती है।

हमारा काँपना भी बन्द हो गया।

वे कहती गईं—आज शाम को 'हीर सिपाल' का मैटिनी शो भी मैं देखना चाहती हूँ। पिछले इतवार आपने वादा किया था या नहीं?

और हम सोचने लगे—किसी महान् आत्मा ने ठीक ही कहा है कि स्त्री जैसा स्वार्थी जीव संसार भर में नहीं है। इसकी नस नस में स्वार्थ भरा पड़ा है। पतिव्रता स्त्रियाँ शायद सतयुग में होती होंगी; पर कलियुग में—सर्वथा असम्भव है। और तौलिया उठा कर हम गहरे सोच में निमग्न बाल बनाने और इस नई उलझन को सुलझाने के लिए अपने कमरे में चले गये।

अभी बाल बनाकर हम कपड़े पहन ही रहे थे और कोई तरकीब भी हमारे दिमाग़ में न आई थी कि पत्नी महोदया की डाँट पड़ी—खाना परस दिया है जल्दी आ जाओ।

चुपचाप हम रसोई में जा बैठे। खाना उन्होंने परस दिया। हम खाने लगे पर मस्तिष्क हमारा उसी उलझन को सुलझाने में लगा रहा। तब अपने उल्लास में श्रीमती जी उन चीज़ों के नाम गिनवाने लगीं जो उन्हें नुमाइश में ख़रीदनी थीं। वे सोल्लास नाम पर नाम गिनाये जा रही थीं और हम दिल ही दिल में पण्डित तेजभान को गाली पर गाली दे रहे थे कि नाहक़ उस नहूसत राम को साथ चलने के लिए कह दिया। शिकार में तो जो होता सो होता पर यह तो पहले ही से रुकावट पड़नी शुरू हो गई। तभी श्रीमती जी ने अपनी गुरगावी का ज़िक्र किया। इसके साथ ही मन ही मन में हम उछल पड़े। तरकीब हमें सूझ गई। अत्यन्त सौम्य बन कर हमने कहा—अगर कुछ ग़म खाओ तो गुरगावियाँ तो बस ऐसी बनवा दें कि सारे कृष्णनगर की स्त्रियाँ बस तुम्हारी ओर ही ताका करें।

श्रीमती जी की उत्सुकता बढ़ी।

हमने कहा—बस ग़म यह खाना है कि नुमाइश के प्रोग्राम को कल पर स्थगित कर दो। कल छुट्टी है, दोनों ही काम हो जायेंगे।

अब की श्रीमती जी ने कुछ सशंक नेत्रों से हमारी ओर देखा और पूछा—कैसे?

कुछ नहीं—बे परवाही से हमने खाना खाते-खाते कहा—खाँ साहब आज गीदड़ों का शिकार करने जा रहे हैं। मैं सोचता हूँ, मैं भी चला जाऊँ तो एक खाल मैं ले लूँगा . . . . .।

बीच ही में टोक कर श्रीमती जी ने कहा—न मुझे नहीं चाहिए गुरगावी। आप टालिए मत। मैं नहीं मानने की। नुमाइश पर तो आपको चलना ही होगा।

जैसे कुछ हुआ ही नहीं, ऐसे भाव से हमने कहा—तुम्हारी मर्ज़ी और चुपचाप फिर खाना खाने लगे। कुछ देर बाद, जैसे अपने ही से बातें करते हुए हमने कहा—गीदड़ की खाल के जूते भी कैसे बनते हैं। पारसाल खाँ साहब ने अपनी बीवी के लिए बनवाये थे। ऐसे सुन्दर और देर-पा कि आज तक वैसे ही जूते बनवा देने के लिए उनकी सहेलियाँ उन्हें तंग करती हैं।

श्रीमती जी तब भी चुप रहीं। तभी बाहर से खाँ साहब ने आवाज़ दी। वे शायद अपनी दोनली लिए नौकर के साथ आ गये थे।

कुल्ला करके हमने कहा—खाँ साहब तो आगये, [illegible] न कर दूँ। ऐसा अवसर फिर महीनों हाथ न आयेगा। गुरगावी के साथ एक स्लिपर भी बनवा लेना।

श्रीमती जी फिर चुप रहीं। उनके मौन को [illegible] रज़ा समझ, उनकी ओर बिना देखे हमने कहा—गीदड़ की खाल होती भी तो काफ़ी है। एक गुरगावी [illegible] स्लिपर तुम्हारा बन जायगा। नन्हें और नन्हीं के [illegible] मोज़े बन जायेंगे। मेरा क्या है, मैं फिर बनवा लूँगा। नुमाइश कल देखने चलेंगे और सिनेमा—अगर [illegible] वापस आ गये—तो आज ही चले चलेंगे।

यह कह कर और बिना उनका उत्तर सुने हम [illegible] में आ गये और बैठक में आये कि टोपी सिर पर [illegible] कर बाहर। घर से ज़रा दूर पहुँचे तो हमने सुख की साँस ली और खाँ साहब से कहा—देखो भाई, अगर चाहते हो तो इस महा नहूसत तेजभान को यहीं रहने [illegible]

× × ×

खाँ साहब नहीं माने। आदमी वे बड़े ज़िद्दी [illegible] पहले तो शीघ्र किसी बात का फ़ैसला नहीं करते

[illegible] कर लेते हैं तो फिर उन्हें उससे हटाना आसान काम नहीं। शनि को ही जब पण्डित तेजभान को तैयार करके दूसरा प्रोग्राम बनाने के लिए हम उनके घर पहुँचे थे, तब पण्डित तेजभान का नाम सुनकर उन्होंने कहा था—यह किस गावदी को तैयार कर लिया।

शिकार की भी एक फ़िलासफ़ी है। ऐसे लोगों में, जो स्वयं गोश्त नहीं खाते, शिकार नहीं खेलते और खेलनेवाले को बुरा भला कहते रहते हैं। अधिकांश ऐसे होते हैं जो दिल ही दिल में शिकार खेलते देखना बड़ा पसन्द करते हैं। पण्डित तेजभान उन्हीं में से थे। ऐसे लोग यदि शिकार में साथ चले जायँ तो उस दिन नाकामी ही रहती है। इसी ख़याल से खाँ साहब ने कहा—वह तो तुम जैसा नहीं, शिकार उसकी सूरत देखकर उड़ जायेगा। तब हमने उन्हें समझाया था कि तेजभान साथ होगा तो हँसी-दिल्लगी रहेगी। गोश्त चाहे वह न खाता हो और शिकार भी चाहे वह न करता हो पर सैर को पुरलुत्फ़ तो बना सकता है। और तब वे मान गये थे। इसी लिए अब जब हमने इन पण्डित साहब की नहूसत की कहानी कही और सुबह-सुबह ही हमारे घर में जंग के जो बादल उमड़ते-उमड़ते हमारी बुद्धिमत्ता से छटे थे, उनका ज़िक्र किया और कहा कि भाई जिस व्यक्ति को साथ ले जाने के प्रस्ताव पर ही इतना संकट उपस्थित हो सकता है तो यदि वह साथ चला गया तो जाने क्या गुज़रे? तो खाँ साहब ने कहा—हटाओ जी इन वहमों को—यह जो तुमने अपनी बुद्धिमत्ता से इस संकट को टाल दिया है तो यह तो सब शुभ हुआ है और फिर तुम पण्डित की बातों में आ गये। वह चाहे तो बीस कहानियाँ गढ़ कर सुना दे।

ख़ैर, हम पण्डित तेजभान के घर पहुँचे और चाहे आनाकानी उन्होंने बहुत की और लगे हाथों अपनी नहूसत की तीसरी कहानी भी सुना डाली, पर हमने उन्हें घसीट ही लिया। खाँ साहब बोले—ये अपनी दुखगाथायें तो रास्ते में सुनाते चलना। अब सीधी तरह चल दो।

तब अनिच्छापूर्वक कपड़े बदल कर, घर से निकलते हुए पण्डित तेजभान ने कहा—तुम मानते नहीं। मैंने कई बार आज़माया है। वैसे मुझे पास बिठाकर अगर कोई दाव लगाये तो जीत उसका साथ देती है पर शिकार के मामले में . . . .।

तब खाँ साहब ने कड़क कर कहा—अब अपनी बकवास बन्द करो और गोकुलचन्द से बोले—कोई गीत छेड़ो यार! और फिर हँसते हुए उन्होंने पण्डित तेजभान से कहा—तुम अगर नहूसत हो तो हम महा नहूसत हैं। साँप को साँप काटे तो ज़हर किसे चढ़े। तुम्हारी इस नहूसत को हम अपनी महा नहूसत से काट देंगे। तभी गोकुलचन्द ने गाना शुरू किया—अपना वही पुराना गीत—

एक अजब परकार बनी है
उनकी दो टाँगन ने

× × ×

सरकंडों के जंगल को पार करके हम दरया पार पहुँचे। गर्मियों में जवान फ़नियर की भाँति फुंकारें मारनेवाला दरया जैसे अब घायल होकर पड़ा था। ख़ून जैसे उसका सब निचुड़ गया था और लोग उसे पाँवों से रौंदते चले जाते थे। एक ओर किनारे पर ज़रा गहरे पानी में धोबी कपड़े धो रहे थे और मध्य में जहाँ रेत उभर आई थी और पानी हलका हो गया था उनके छोटे-छोटे बच्चे चादरों से मछलियाँ पकड़ रहे थे।

दरया में कहीं पानी गहरा था और कहीं छिछला। जिस स्थान से बिना ग़ोता खाये या तैरे पार जाया जा सकता था वहाँ सरकंडे गाड़ दिये गये थे। वहीं से हमने अपने बूट और जुराबों को हाथ में लेकर दरया-पार किया और दूसरे किनारे पर पहुँच पैर साफ़ कर फिर बूट डालने लगे। खाँ साहब सबसे पहले तैयार हो गये थे इसलिए वे बन्दूक उठाये इधर-उधर घूमने लगे।

किनारे पर एक कमसिन चरवाहा अपनी धुन में अलगोजे बजा रहा था। खाँ साहब ने उससे पूछा—क्यों भाई इधर ख़रगोश आदि होते हैं?

वह अपने अलगोजे बजाने में मस्त था। जाने उसने उनकी बात सुनी भी या नहीं। बोला—जी हाँ।

—किधर?

कुछ चिढ़कर यों ही उसने एक ओर हाथ बढ़ा दिया।

और तब खाँ साहब के साथ हम सब्जियाँ, बेगम कोट, फ़तेहपुर से होते हुए लम्बानों के गाँवों की खाक छाना किये पर ख़रगोश तो क्या एक छछूँदर तक भी दिखाई न दी और तीतर, जिनका शिकार करने के शौक़ ने हमें छोटे-छोटे पक्षियों को गोली का निशाना बनाने से रोक रखा था, इस प्रकार इस प्रदेश को वीरान बना कर छोड़ गये मालूम होते थे जिस प्रकार नेपोलियन के आक्रमण पर रूसवाले देश को वीरान बना कर चले गये थे।

कोई चार बजे के लगभग हम पण्डित तेजभान को जी भर गालियाँ सुनाते वापस लौटे और दरया के किनारे आकर सुस्ताने के लिए बैठ गये।

दिन के इस तरह व्यर्थ में नष्ट होने का सबसे अधिक दुख मुझे था। रह रह कर तबीअत झुँझला उठती थी—श्रीमती जी को भी नाराज़ किया और धूल फाँकने के सिवा कुछ हाथ भी न आया। घुटनों तक मिट्टी चढ़ गई थी, ओठों पर पपड़ियाँ जम गई थीं और चेहरे की यह हालत हो गई थी कि आध सेर तेल की मालिश कर दो तो पता न चले।

जलकर मैंने पण्डित तेजभान से कहा—तुममें और बीसियों 'गुण' देखे थे पर जिसका आज आभास मिला वह सबसे बाज़ी ले गया।

हमारी इस झुँझलाहट पर एक लम्बा क़हक़हा लगाकर पण्डित तेजभान ने कहा—दिन ही गया। समझ लो सस्ते छूटे। नहीं तो मैं साथ आ जाऊँ तो शिकारी पल्ले से कुछ दे बैठना है।

खाँ साहब बहुत घबरा रहे थे; एक तो रोज़े से, दूसरे असफलता की चिड़चिड़ाहट। उन्होंने कहा—उठो अब घर चल कर ही बैठना। हमें तो जाकर रोज़ा भी खोलना है—और यह कह कर वे पानी में घुसे। टाँगें तो हमारी बस इतनी थक चुकी थीं कि चलने का विरोध किया चाहती थीं, पर खाँ साहब के पीछे हमको भी चलना पड़ा। खैरियत ही इसी में थी क्योंकि उन्हें लानेवालों में सबसे अधिक हिस्सा तो हमारा ही था।

दरया-पार कर, सरकंडों के जंगल से होते हुए हम शहर की ओर जा रहे थे कि सहसा गोकुलचन्द चिल्ला उठे—गीदड़!

सबने मुड़कर उधर ही देखा। किनारे के सरकंडों के झुंड में एक गीदड़-सा जानवर दिखाई दिया। दूर होने के कारण निर्णय न हो सका कि क्या है पर इतना फ़ैसला हो गया कि गीदड़ नहीं तो जंगली बिल्ला ज़रूर है। और ज़रा और पीछे मुड़ कर देखा तो गीदड़ ही-सी शक्ल दिखाई दी। बस सूखे धान हरे हो गये। खाँ साहब को अपनी भूख, रोज़ा सब कुछ भूल गया। गोली लाओ—यह कह कर उन्होंने मेरी ओर हाथ बढ़ाया। तब एक ६ और एक ४ नम्बर का कारतूस पटी से निकालकर मैंने उनके हवाले किया। कारतूस बन्दूक़ में भरते भरते वे बढ़े। हम भी उनके पीछे चले। तभी वह गीदड़ शायद हमारे इस तरह मुड़ने का तात्पर्य समझ गया। इसलिए वह एक बार हमारी ओर देखकर फिर उस झुण्ड में ग़ायब हो गया।

खाँ साहब बोले—इतनी जल्दी कहीं बहुत दूर नहीं जा सकता और फिर निश्चय करने के लिए गोकुलचन्द की ओर मुड़कर उन्होंने पूछा—गीदड़ ही था न?

पर गोकुलचन्द से पहले हम सब बोल उठे—हाँ गीदड़ ही तो था।

पण्डित तेजभान ने—जिनकी आँखें और भी लालायित हो उठी थीं—गम्भीर होकर कहा—शाम होने आई है न, यही समय तो गीदड़ों के निकलने का होता है। यहाँ तो नगर का सामीप्य होने के कारण उन्हें बाहर निकलने में कुछ देर हो जाती है, पर उधर हमारे गाँवों में तो तीन बजे से ही गीदड़ों की 'हुआ', 'हुआ' सुनाई देने लगती है।

तब सरकंडों में काफ़ी दूर चलकर इधर-उधर देखते हुए खाँ साहब ने झल्ला कर कहा—कमबख्त कहीं नज़र भी आये और उन्होंने आदेश दिया कि दायें की शक्ल में विभिन्न दिशाओं में हम फैल कर शोर मचायें। इधर होगा तो ज़रूर किसी तरफ़ निकलेगा।

तब गोकुलचन्द और पण्डित झंडालाल चक्कर काटकर आगे को बढ़े, तेजभान पीछे को चले, हमने दाईं दिशा पकड़ी और खाँ साहब बन्दूक़ सम्हाले चार आँखों से इधर-उधर देखते आगे को बढ़े।

अभी हम बहुत दूर न गये थे कि तेज़ तेज़ पंजों के बल चलते हुए पंडित तेजभान आये और खाँ साहब को साथ ले गये। हम भी मुड़े।

तब पण्डित तेजभान ने चुपचाप एक ओर अँगुली से संकेत किया। देखा—सामने दरया के किनारे के सरकंडों में हमारी ओर को पीठ किये कोई जानवर खड़ा है। धीरे से खाँ साहब को वहीं रोककर उन्होंने कहा—अब दूर मत बढ़ो—फिर भाग जायगा। खाँ साहब ने वहीं घुटना टेक कर निशान साधा—डज़—डज़—दो फ़ायर हुए और पण्डित तेजभान ने उछल कर कहा—वह मारा!

पर इससे पहले कि खाँ साहब उठकर खड़े होते या हम गीदड़ को उठा लाने के लिए लपकते, नीचे दरया से कई लम्बे तड़ंगे जवान लड़के वहाँ आ खड़े हुए और बढ़कर उन्होंने खाँ साहब को पकड़ लिया।

—उसे क्यों मारा आपने? एक ने कर्कश स्वर से पूछा।

तभी एक नन्हीं-सी बच्ची कीचड़ से लथपथ हाथ लिये मरे हुए गीदड़ को देख देख कर रोने लगी।

उन लड़कों की आँखों में ख़ून उतर रहा था।

पण्डित तेजभान ने आगे बढ़कर कहा—तो क्या वह गीदड़ तुम्हारा पालतू था?

—गीदड़! अन्धे हो।

ओह जैसे घसीटते हुए वे खाँ साहब को वहाँ ले गये। हम सबने देखा—धरती पर एक बड़ा सुन्दर और बलिष्ठ कुत्ता मरा पड़ा है। ज़बान उसकी बाहर निकल आई है, पुतलियाँ अन्दर धँस गई हैं और रक्त की धारा किनारे पर नीचे की ओर बह रही है।

तब जैसे चीख कर खाँ साहब ने तेजभान से कहा—यह गीदड़ है?

गोकुलचन्द भी तब तक आ गये थे उन्होंने कहा—मैंने जो गीदड़ देखा था वह शायद भाग गया।

पण्डित तेजभान ने सिर्फ़ ख़ून ऐसी आँखों से उनकी ओर देखा।

तब हमने आगे बढ़कर उन लोगों से कहा—देखो भाई तुमसे हमें कोई बैर तो है नहीं।

झंडालाल बोले—अब ग़लती तो सबसे हो जाती है भाई। जानबूझ कर मारा हो तो बात है।

वे सब धोबी थे और कुत्ता शायद उनके बड़े काम का था। उन्होंने खाँ साहब को न छोड़ा।

तब हमें भी जोश आ गया—तो जाओ जाकर मामला चला दो।

इस पर उनमें से एक ने हमारी ओर आँखें तरेर कर देखा और किनारे पर कपड़े धोते हुए अपने साथियों को आवाज़ दे दी।

बात बढ़ते देखकर खाँ साहब ने हमें पास बुलाकर कान में पूछा—कुछ रुपये तुम्हारे पास हैं।

हमने जेबें टटोलीं। चार रुपये निकले। एक अपने पास से डालकर खाँ साहब ने कहा—देखो भाई ग़लती हो गई। फाँसी तो तुम हमें दे न दोगे—यह लो।

खाँ साहब को छोड़कर धोबी ने रुपये ले लिये और व्यंग्य से हँसकर उसने कहा—तो बेटे की तरह पाले हुए कुत्ते का मोल पाँच रुपये हुआ। अन्त को बहुत झगड़ने के बाद, जिसके दौरान में कई बार ऐसा भी मालूम हुआ कि हम सब आपस में गुत्थमगुत्था हो जायँगे, खाँ साहब ने नौकर को भेजकर घर से पाँच रुपये और मँगाये और पीछा छुड़ाया।

जब चले तो खाँ साहब बहुत खिन्न थे। मुँह उनका लटक गया था और माथे पर तेवर पड़े हुए थे। तभी पण्डित तेजभान का क़हक़हा फ़िज़ा में गूँज उठा। दिल ही दिल में तो यद्यपि हम भी हँस रहे थे पर पण्डित तेजभान का साथ हम न दे सके। हाँ क्रोध हमें उनकी इस जले पर नमक छिड़कने की-सी हँसी पर अवश्य आया। झल्लाकर हमने बन्दूक़ खाँ साहब के हाथ से ले ली। और उन्होंने भी इस तरह दे दी जैसे वे सहर्ष इस बला से मुक्ति पाने को तैयार थे। बन्दूक़ में कारतूस भर हमने खाँ साहब की खिन्नता को कुछ दूर करने के लिए कहा—आप भी क्या इस गावदी की बातों पर यक़ीन कर बैठे। देखिए आपके सामने हम अभी शिकार करगे। हम कहते हैं कुछ न कुछ शिकार किये बिना घर नहीं जायँगे। और हमने गोकुलचन्द से कहा कि 'दिलदार कमन्दावाले' का गीत ज़रा सुना दो!

पश्चिम में सूर्य्य अस्त हो रहा था और उसकी सुनहरी किरणें सरकंडों के मध्य उगे हुए हरे हरे मैदा (एक तरह का शाम) को गहरा लाल बना रही थीं। गोकुलचन्द ने अभी पहला बन्द भी न गाया होगा कि हमने उसके मुँह पर हाथ रख दिया—सामने सरकंडों की कटी हुई झाड़ी के पीछे कोई चीज़ सूर्य्य की सुनहरी किरणों से चमक रही थी।

साँप है—धीरे से हमने कहा और घुटने टेक कर निशाना साधते हुए बोले—कुछ भी हो, हमें तो कुफ़्र तोड़ना है। साँप ही सही। पण्डित तेजभान भी क्या कहेगा.....।

सब वहीं रुक गये। गोकुलचन्द ने कहा—इधर के साँप होते भी हैं बड़े विषैले, न हो किसी हकीम को दे देना, दवाई में डाल लेगा।

तेजभान ने कहा—शायद कौड़ियाला है। चमक कैसे रहा है।

हमने हाथ से इशारा किया कि बकवास मत करो और यह कह फिर निशाना साधने लगे। ऐन ठीक निशाना साध कर हम घोड़ा दबाने ही लगे थे कि वह श्वेत चमकती हुई चीज़ उठ खड़ी हुई और हमने देखा कि साँप के बदले अपनी घुटी हुई और तेल की मालिश के कारण चमकती हुई खोपड़ी को लेकर हाथ में लोटा थामे और कान में यज्ञोपवीत लटकाये एक महात्मा खड़े हैं।

हाथ हमारा जहाँ था वहीं रह गया और अभी जो दुर्घटना होने जा रही थी उसकी और उसके परिणाम की कल्पना-मात्र से शरीर के रोंगटे खड़े हो गये।

तब सबका क़हक़हा हवा में गूँज उठा। और ख़ाँ साहब भी अपने दस रुपयों के ग़म को भुलाकर उसमें गुम हो गये।

खिन्न होते हुए हमने कारतूस बन्दूक़ से निकाल कर पेटी में रखे और उसे नौकर के हवाले करते हुए खिसियानी सी हँसी के साथ कहा—अब घर चल दो नहीं तो सब कुछ आज हो सकता है और फिर खाँ साहब की ओर देखकर कहा—हमने आपसे कहा था न कि इस नहूसत को मत ले चलो।

× × ×

नौकर कंधे पर बन्दूक़ रखे चुपचाप हमारे साथ चला आ रहा था कि अचानक खाँ साहब ने टोककर उससे कहा—बन्दूक़ को सदैव नीचे की ओर करके चलना चाहिए।

हमने टोककर कहा—पर खाली बन्दूक़ नहीं चला करती खाँ साहब!

हँसते हुए खाँ साहब बोले—आज वह भी सम्भव है।

हम

लेखक, श्रीयुत कुँअर सोमेश्वरसिंह, बी० ए०, एल-एल० बी०

कहने दो जो कुछ कहते हैं,
तुम अपने हो जग अपना है।
हम हैं तुम हो बस सब कुछ है
बाक़ी जीवन तो सपना है।
हम अपनेपन को भूल चुके,
सब अपनेपन में पागल हैं।

हम तुममें साहस है, बल है,
ये हँसनेवाले दुर्बल हैं।
इस जीवन के निर्दिष्ट मार्ग,
पर बोलो कितने चलते हैं।
हम एक मार्ग पर हैं चलते
इससे दुनिया को खलते हैं।

साहित्यिक-संस्मरण

लेखक, श्रीयुत गोपालराम गहमरी

आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की उम्र का अन्तिम वर्ष था। जाड़े के दिन थे। इस प्रान्त के बलिया ज़िले में ज़मीन के बन्दोबस्त का हिन्दी में काम हो रहा था। मुंशी बेथललाल डिप्टी कलक्टर उसके मोहतिम अफ़सर थे और इस समय के कलक्टर राज़ साहब भी बड़े हिन्दी-प्रेमी थे। उस समय 'देवाक्षरचरित्र' नाम के एक नाटक का पण्डित माता-दीन ने अभिनय कराया था। उन दिनों पर्दों का प्रताप स्टेज पर नहीं चमका था। मामूली तख़्ते लगाकर बजाजों से लाल-पीले थान मँगाकर पर्दों का काम चलाया जाता था। सन् १८८४ के नवम्बर का महीना था। मेरी उम्र १८ वर्ष की थी। हिन्दी-साहित्य में मेरा प्रवेश-काल था। बड़ी श्रद्धा से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की पुस्तके पढ़ा करता था। उन्हीं दिनों बाँकीपुर के खड्गविलास प्रेस से बाबू रामदीनसिंह ने श्री हरिश्चन्द्र-कला नाम की सुबृहत् मासिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ करके मेरी भारतेन्दु की रचना पढ़ने की अभिलाषा पूरी करने का सुयोग उपस्थित कर दिया था। मैं उसी कला को पढ़ता हुआ बलिया में आया था। देवाक्षरचरित्र में कलक्टर साहब के अर्दली से हिन्दी-लिपि की प्रार्थना नाटककार ने कराई थी—

संस्कृत्त देवासुअन देवाक्षर मम नाम।
बङ्ग देश आदिक रमत आइ गयो एहि ठाम॥
श्रवण सुन्यो यहि नगर को हाकिम परम उदार।
सो पहुँचावहु तासु ढिग मनिहौं बड़ उपकार॥

कलक्टर साहब देवाक्षरचरित्र देखकर उत्साहित हुए। उनके आग्रह से देवाक्षरचरित्र के नाटककार ने भारतेन्दु जी के यहाँ बुलावा भेजा या स्वयम् पहुँचे, याद नहीं आता।

भारतेन्दु जी ने उनका बुलावा सादर स्वीकार किया और अपनी मण्डली-सहित बलिया पधारे।

वहाँ उसी सन् १८८४ के नवम्बर में भारतेन्दु-जी की मण्डली ने बलिया में सत्य हरिश्चन्द्र का अभिनय किया था। उसमें दुःखिनी बाला के लेखक भारतेन्दु जी के फुफेरे भाई बाबू राधाकृष्णदास उर्फ़ बच्चा बाबू भी थे। और भी अनेक गण्यमान्य हिन्दी के सुलेखक गये थे। मैं उनको नहीं जानता था। मेरी उम्र कम थी, समझ भी कम, अनुभव का तो श्रीगणेश ही था।

भारतेन्दु ने सत्य हरिश्चन्द्र नाटक में हरिश्चन्द्र का पार्ट स्वयं किया था; मण्डली में कोई बङ्गालिन थी, जिसने शैव्या का पार्ट किया था। जब श्मशान में शैव्या अपने पुत्र रोहिताश्व का मृत शरीर लेकर संस्कार करने को गई तब डोम चौधरी ने जिन हरिश्चन्द्र को—

हम चौधरी डोम सरदार
अमल हमारा दोनों पार
सब मसान पर हमरा राज
कफ़न माँगने का है काज
सो हम तुमको लेंगे मोल
देंगे मुहर गाँठ से खोल

यही कह कर कफ़न और मुर्दे का कर माँगने के लिए ही नौकर रक्खा था उन्हीं चक्रवर्त्ती राजा हरिश्चन्द्र ने शैव्या से कर माँगा।

शैव्या ने उनकी हथेली पर चक्रवर्त्ती का चिह्न देखकर पहचाना और सिर से पाँव तक ताककर बोली—"हे महाराज! यह तो आप ही का पुत्र रोहिताश्व है! कालसर्प के दंशन से शरीर त्याग कर मुझे बिलखता छोड़ चला गया। मेरे पास कोई कफ़न को वस्त्र नहीं था। अपना आँचल फाड़ कर इसका शरीर ढाँका है।"

[बाबू गोपालराम गहमरी]

हरिश्चन्द्र श्मशान में घूमते, मुर्दों को देखते यही कहते आये थे—

सोइ भुज जिन रनविक्रम मारे
सोई भुज जो प्रिय गर डारे।
सोई सिर जहँ निज वच टेका
सोइ हृदय जहँ भाव अनेका।
सोइ देह जेहि चन्दन लाये
आजु जीव बिनु धरति सुवाये।
तृन बोझहूँ जिन न सम्हारे
तिन पर काठ बोझ बहु डारे।
प्रानहु से बढ़ि जा कहँ चाहत
ता कहँ आजु सबै मिलि दाहत।
सिर पीड़ा जिनकी नहिं हेरी
करत कपालक्रिया तिन केरी।

यही करुणा के गीत गाते हुए श्मशान में आकर अपने मालिक चौधरी डोम की नौकरी बजाने के लिए मुर्दे का कर माँगने लगे। दर्शक-मण्डली में करुणा बरस रही थी। कलक्टर साहब के साथ बहुत से साहब और मेम साहब भी पधारी थीं। मेम साहब ने साहब से कहलाया था कि अब यह पर्दा बदल कर आगे का एक्ट किया जाय। उनके रूमाल आँसुओं से तर हो रहे थे।

उन लोगों को कहाँ मालूम था कि इसी दृश्य के बाद नाटक की समाप्ति होती है। भारतेन्दु जी ने उस अवसर पर ओवरएक्ट किया और शैव्या ने विलाप करके जब कफ़न फाड़ने के लिए हाथ बढ़ाया तब कुँवर रोहिताश्व का मृत शरीर उघर गया। उसी समय आकाशमार्ग से त्रिदेव अभय वचन और आशीर्वाद देने के साथ सुधावृष्टि करते हुए पधारे। कुँवर रोहिताश्व उठ बैठा और जितने देवता सत्य हरिश्चन्द्र की प्रणपरीक्षा—

चन्द टरै सूरज टरै टरै जगत व्यवहार।
पै दृढ़ श्री हरिचन्द को टरै न सत्य विचार।
बेचि देह दारा सुअन डोम दासहू मन्द।
रखिहैं निज वच सत्य करि अभिमानी हरिचन्द।

में रूप बदल कर आये थे सब प्रकट हो गये।

वह अभिनय देखकर हम लोग घर गये भारतेन्दु जी मण्डलीसहित काशी लौटे। पहला महीना बीता दूसरा पूरा नहीं होने पाया था कि उनके स्वर्ग-गमन की स्मृति में सब हिन्दी-समाचार-पत्रों ने अपने कलेवर काले किये और महीनों तक हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में शोक मनाया गया। सन् १८८५ की छठी जनवरी मङ्गलवार को भारतेन्दु का अस्त हुआ था। इसी २६वें वर्ष में साहित्य-सम्मेलन का जन्म हुआ और पचपनवें वर्ष में साहित्य-सम्मेलन का दूसरी बार काशी में अधिवेशन होने जा रहा है। वहाँ उनके दौहित्र काशी के माननीय बाबू ब्रजरत्नदास जी बी॰ ए॰, बी॰ एल॰ को पाकर ही हिन्दी-प्रेमी सन्तोष करेंगे।

चतुरों का गाँव

लेखक, उमेशचन्द्रदेव, विद्यावाचस्पति

[बस्ती का विहंगम-दृश्य]

चैत का महीना था। धूप की तेज़ी दोपहर को असह्य हो जाती थी। शाम को बागों में और जलाशयों के किनारे पर चाँदी बरसती थी, जिससे अपनी आँखें शीतल करने के लिए अनेक मनचले नियमपूर्वक वहाँ जाया करते थे। ऐसे ही तीन शौक़ीन टहलते-टहलते 'सोमनाथ के ताल' के किनारे पहुँच गये। यह ताल दिल्ली और प्रयाग को जोड़नेवाली ग्रैंडट्रंक रोड के एक किनारे इन दोनों शहरों के ठीक बीच में है। ताल में मछलियाँ किलोलें कर रही थीं। उनकी क्रीड़ा देखते-देखते एक के मन में उत्कण्ठा हुई। उसने अपने साथियों से पूछा—

"क्यों भाई, अगर इस तालाब में आग लग जाये तो इसकी मछलियाँ कहाँ जायँ?"

"यह कैसा पीपल का पेड़ है; इसी पर चढ़ जायँ।"

दूसरे साथी का यह समाधान तीसरे को सन्तुष्ट न कर सका। उसने उपेक्षा के भाव से कहा—

"वाह साहब! मछलियाँ न हुईं, गायें-भैंसें हुईं!"

ये तीनों बुद्धिमान् किस सन् या शताब्दी में सोमनाथ के ताल के किनारे पहुँचे थे, यह कोई नहीं बतला सकता। पर उनका यह वार्तालाप सबको याद है। यह जन-श्रुति इस ताल के साथ ऐसी जुड़ गई है, जैसे शरीर के साथ नाम जुड़ जाता है। ताल अब भी मौजूद है। बीच में एक पुराना पीपल का पेड़ भी खड़ा है। सैकड़ों आदमी पास की बड़ी सड़क से प्रतिदिन आते-जाते रहते हैं। पर इस ताल की ओर देखकर उनके ओष्ठ अकस्मात् हिल जाते हैं और वे इस सैकड़ों बार की कही-सुनी बातचीत को एक बार फिर नये सिरे से कह जाते हैं।

ताल के पूर्वी किनारे पर पक्का घाट बना हुआ है जो अब विशीर्णावस्था में है। लक्षणों से ज्ञात होता है, और वयोवृद्ध जन कहते भी हैं कि पक्के घाट इस ताल के चारों ओर बने थे। पूर्व की ओर ही किनारे से मिला हुआ शिवजी का एक छोटा-सा सुन्दर मन्दिर है। उसका भीतरी भाग तो पुराना है, पर बाहरी भाग सौ वर्ष के इधर का ही बना लगता है। इस तालाब और मन्दिर के विषय में एक जन-श्रुति बहुत प्रसिद्ध है।

हिन्दू-काल में एक कोई बड़ा प्रतापी राजा था। उसे शापवश कुष्ठ हो गया। राजा ने विद्वानों व दैवज्ञों से इसका प्रायश्चित्त पूछा तो उन्होंने कहा कि यदि आप पश्चिम-समुद्रतट से सोमेश्वरनाथ का लिंग लाकर काशीपुरी में स्थापित करें तो आपका पाप छूट जायगा। राजा यह कार्य करने को राजी हो गये। कुछ चुने हुए भृत्यों को साथ लेकर वे पश्चिम-समुद्रतट पर गये। वहाँ से विधिपूर्वक शिवलिंग को प्राप्त कर शुभमुहूर्त में उन्होंने काशी के लिए प्रस्थान किया। राजा बड़े धर्मभीरु और श्रद्धालु थे। वे शिवलिंग को रथ में चढ़ाकर स्वयं अपने भृत्यों के साथ-साथ पैदल चल रहे थे।

धीरे-धीरे कई पड़ाव निकल गये। जब इन्द्रप्रस्थ से यह यात्रीदल लगभग २५ योजन पूर्व आ गया तब एक बार जंगल में ही शाम हो गई। आस-पास कोई आबादी न थी, न निकट ही किसी बस्ती के मिल जाने की आशा थी। अतः वहीं मार्ग के किनारे पड़ाव डालने का
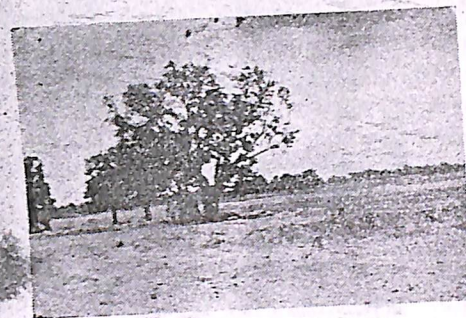
[सोमनाथ का ताल और पीपल वृक्ष]

निश्चय हो गया। राजा की आज्ञा पाकर एक भृत्य जल की तलाश में निकला; पर जल का कहीं पता न था। आख़िर बड़ी दौड़-धूप के बाद एक छोटा-सा जलाशय दिखाई दिया जिसमें जल बहुत थोड़ा था और वह भी कीचड़ से मिला हुआ।

और उपाय न देख कर नौकर ने उसके जल को झारी में भर लिया और महाराज को ले जाकर दिया। महाराज प्यासे तो थे ही, इधर जीवन भी तपोमय व्यतीत कर रहे थे, उस जल को बिना कुछ कहे-सुने ही पी गये। रात्रि को उन्होंने स्वप्न देखा कि साक्षात् सोमेश्वरनाथ उनके सामने खड़े हैं और कह रहे हैं कि—"बेटा, तेरी तपस्या पूर्ण हुई। अब तू अपनी राजधानी को लौट जा। मैं भी अब काशी न जाकर इसी स्थान पर वास करना चाहता हूँ।" सवेरे उठने पर महाराज ने देखा कि उनका कुष्ठ दूर हो कर शरीर कंचनवत् सुन्दर हो गया है। उन्होंने तुरन्त नौकर को बुलाकर पूछा कि जल कहाँ से लाया था। नौकर पहले तो यह सोचकर डरा कि शायद जल गन्दा था, अतः महाराज कुछ अप्रसन्न होंगे और दंड देंगे; पर महाराज की प्रसन्न मुखमुद्रा देख कर उसे आश्वासन हुआ और उसने महाराज को ले जाकर उक्त जलाशय दिखला दिया। राजा ने उसमें प्रवेश कर खूब स्नान किया। फिर बाहर निकल कर तालाब का जल लेकर सूर्य भगवान् को अर्घ्य दिया। तब उन्होंने नौकरों को आज्ञा दी कि इस तालाब को पक्का बनवा दो, और इसके किनारे पर मन्दिर बनवा कर उसमें सोमनाथ जी की प्रतिष्ठा कर दो। ऐसा ही किया गया और उसी समय से उस ताल का नाम 'सोमनाथ का ताल' और मन्दिर का नाम 'सोमनाथ का मन्दिर' पड़ गया।

यह स्थान हिन्दुओं के लिए बहुत दिनों तक तीर्थ बना रहा। जैनियों ने भी यहाँ अपने मन्दिर बनवाये। धीरे-धीरे हिन्दू इस तीर्थ को छोड़ बैठे, यही दशा जैनियों की भी हुई। अब वहाँ मन्दिर तो हैं, पर सब बेमरम्मत और अस्तव्यस्त हैं।

महाराज ने उसी स्थान पर एक छोटा-सा गाँव भी बसा दिया जो कालान्तर में बढ़ते-बढ़ते एक क़स्बा हो गया।

यह जन्मकथा उस गाँव या क़स्बे की है जिसका नाम कुछ कारणों से अब 'बेवकूफ़ी' का पर्याय माना जाता है। ऐसा पवित्र तीर्थ और उसकी इतनी बदनामी! इसका ठीक कारण क्या है, यह कोई नहीं जानता। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यहाँ के निवासियों ने पूर्व-काल में कुछ बेवक़ूफ़ी की बातें की थीं। पीछे से वैसी ही बातों की पुनरावृत्ति भी होती रही और धीरे धीरे इस गाँव के साथ बेवकूफ़ी भरी कहानियों का एक इतिहास जुड़ गया। अब तो इसका नाम इतना बदनाम हो गया है कि आप किसी बाहर के आदमी को यदि वहाँ का निवासी कह दें तो वह आपसे लड़ बैठेगा। यही नहीं, इस क़स्बे के निवासी भी बाहर जाकर अपने
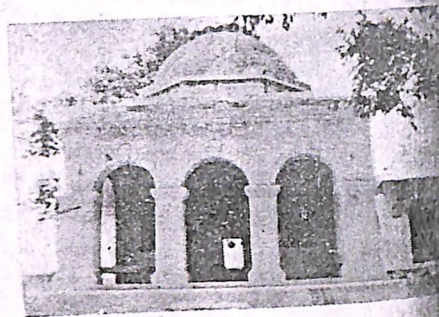
[सोमनाथ का मन्दिर]

निवासस्थान का नाम बताने में झेंपते हैं। बात यह है कि बाहरवाले किसी व्यक्ति के विषय में यह जान कर कि वह उक्त गाँव का रहनेवाला है, उसे बिना बनाये नहीं छोड़ते। साधारण लोगों की बात जाने दीजिए, बड़े बड़े लब्ध-प्रतिष्ठ व्यक्तियों की जबान में भी इस गाँव का नाम सुनकर दिल्लगी करने के लिए मुस्कुराहट होने लगती है। इस विषय की एक मज़ेदार घटना सुनाता हूँ।

लगभग दस वर्ष पूर्व की बात है। इस गाँव के एक प्रतिष्ठित वैद्य जी ने आयुर्वेद-विषयक एक मासिक निकालने का विचार किया। पत्र का विज्ञापन किस पत्र में किया जाय और किस प्रेस में वह छपाया जाय, इस विषय पर उन्होंने मेरी सम्मति चाही। अपने नामी प्रेसों में से कानपुर का प्रताप-प्रेस ही मेरा सुपरिचित था, अतः मैंने अपनी सम्मति उसी के पक्ष में दी। पत्र के सम्पादकीय बोर्ड में मेरा नाम भी था। हम लोग प्रोप्राइटर महोदय को साथ लेकर विज्ञापन व मुद्रण आदि की व्यवस्था करने के लिए 'प्रताप-प्रेस' पहुँचे। कुशल-प्रश्न के पश्चात् विद्यार्थी जी ने प्रश्न किया—
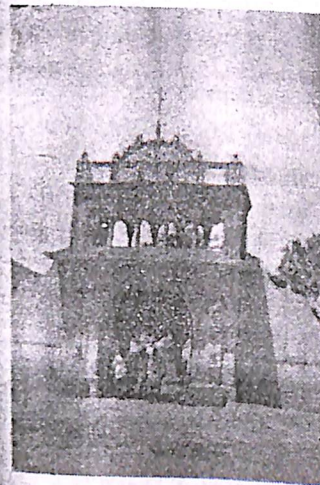
[सोमनाथ-मन्दिर का सिंहद्वार]

[एक पुराना जैन-मन्दिर]

"पत्र का नाम क्या रक्खेंगे?"

"आयुर्वेद-सिद्धान्त।"

"कितने फ़ार्मों का निकलेगा, किस काग़ज़ पर छपेगा, पाक्षिक रहेगा या मासिक?"

'मासिक रहेगा, ८ फ़ार्म प्रतिमास रहेंगे, २८ पौंड २०×३० अठपेजी छपेगा।"

"ठीक है। अच्छा प्रधान सम्पादक कौन होंगे?"

"पंडित अञ्जनीकुमार मिश्र।"

"और आपका पत्र प्रकाशित कहाँ से होगा?"

"भोगाँव से।"

भोगाँव के नाम में वह जादू था कि विद्यार्थी जी की गम्भीरता उसके सुनते ही हवा हो गई। उन्होंने पहले तो हम लोगों की ओर मुस्कराकर देखा, फिर बोले—"अच्छी बात है। छाप देंगे। पर भाई कम-से-कम छः महीने की छपाई का प्रबन्ध पेशगी होना चाहिए। वैसे तो कोई बात नहीं; पर यह मामला भोगाँव का ठहरा। कहीं ऐसा न हो कि पीछे से हमें भी बनना पड़े।"

यह तो एक घटना हुई। मैनपुरी और उसके आस-पास के ज़िलों में ऐसे-ऐसे वाक्य रोज़ सुनने को मिलते हैं—

"जाओ जी, ऐसे बेवक़ूफ़ भोगाँव में रहते हैं।" "क्या भोगाँव की हवा लग गई है?", "क्या भोगाँव में रहते हो?", "क्या भोगाँव से आरहे हो?"—इत्यादि। उधर तो भोगाँव का नाम ऐसा
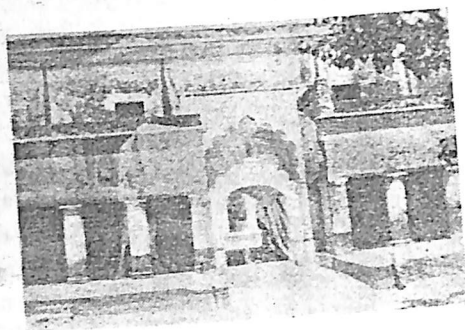
[सदावर्ती धर्मशाला का बहिर्भाग]

बदनाम है कि अधिकांश लोग इसका नाम लेना पसन्द नहीं करते और उसे 'शहर' कहते हैं, पर 'शहर' शब्द के पहले एक देहाती विशेषण बे और लगाते हैं, जिसका अर्थ 'बेवक़ूफ़' या 'मूर्ख' है।

भोगाँव अब कोई दर्शनीय स्थान नहीं रहा। कोई ५-६ हज़ार को आबादो होगी। मकानों की अपेक्षा खँडहर अधिक हैं। यहाँ किसी चीज की मण्डी नहीं है, न कोई खास तिजारत ही होती है। 'बेवक़ूफ़ी' को छोड़कर यहाँ की और कोई वस्तु प्रसिद्ध नहीं है। पुरानी इमारतों में दो जैन-मन्दिर अच्छे और पुराने हैं। सोमनाथ-मन्दिर का उल्लेख ऊपर हो चुका है। इसके अतिरिक्त यहाँ कायस्थों का एक सदावर्ती धर्मशाला भी है, जिसमें सदावर्त्त के बँटने की व्यवस्था अब भी है। नई इमारतों में अस्पताल, तहसील, थाना व मिडिलस्कूल की गणना हो सकती है।

भोगाँव बसा अच्छी जगह पर है। ग्रैंडट्रंक रोड इसी से होकर गुज़रती है। इसके सिवा यहाँ से एक पक्की सड़क मैनपुरी होकर आगरा को गई है। यह ई० आई० आर० की शिकोहाबाद--फ़र्रुख़ाबाद ब्रांच लाइन पर स्टेशन भी है। मैनपुरी, फ़र्रुख़ाबाद, आगरा और कानपुर तथा अलीगढ़ से सीधा संबंध रहने पर भी इस क़स्बे की उन्नति नहीं हो रही है---यद्यपि इसके आस-पास के क़स्बे दिन-दूने, रात-सवाये बढ़ रहे हैं। यह निस्सन्देह आश्चर्य्य की बात है।

भोगाँव की इस प्रकार की कुप्रसिद्धि कब ... हो गई, इसका ठीक-ठीक पता नहीं लगता। कहते ... सबसे पहले राजा बीरबल ने यह बात उड़ाई थी ... भोगाँव की हवा लग जाने से अक़्ल गुम हो जाती ... और चतुर आदमी भी उल्लू बन जाते हैं। ... जाता है, वे एक बार कहीं जाते हुए भोगाँव से ... और रात को वहीं ठहरे। उनके साथ हाथी, ... और सवार थे। इस शाही क़ाफ़िले का तमाशा दे... के लिए बहुत-से ग्रामवासी जुट आये। उनमें ... निर्धन सभी श्रेणियों के लोग थे। उनमें के ... लाला जी उस हाथी को, जो राजा बीरबल की ... सवारी में था, बड़े ग़ौर से देखकर बोले--"क्या ... जानवर बिकाऊ है ?"

"हाँ, है।"--उत्तर मिला।

"क्या मूल्य है ?"

"दस हज़ार।"

"दस ! अच्छा सौदा तय है। यह लो ... और इसे हमारे द्वार पर ले चलकर बाँध दो, ... अपना रुपया सँभाल लो।" बीरबल ने भी सोचा ... सौदा अच्छा है। तीन-चार हज़ार का लाभ बट... हो रहा है। उन्होंने सौदा तय कर लिया और ... लाला जी के यहाँ पहुँचा देने का हुक्म दे दिया।

इस बातचीत के सिलसिले में बीरबल की ... एक और व्यक्ति पर पड़ी, जो उस हाथी के ... खड़ा था। वह कभी हाथी के सामने जाता ... कभी पीछे की ओर आता था और कभी झुक कर ... ध्यान से पेट की ओर देखता था। बीरबल ने ... यह कोई पारखी है। बात यह थी कि हाथी ... में कुछ ऐब था, बीरबल ने समझा कि यह ... हाथी के दोष को परख गया है और सौदा न ... देगा। अतः उन्होंने उसे अपने पास एकान्त में ... और दो सौ रुपये देकर कहा कि "ये रुपये ... नज़र हैं। आप चुपचाप अपने घर चले जायें ... किसी से इसकी बाबत एक शब्द न कहें।" वह ... रुपये लेकर चुपचाप अपने घर चला गया।

सवेरा होने पर रुपये लेने के लिए बीरबल ... नौकर जब लाला जी के मकान पर पहुँचे तब ला...

...ने कहा--"भाई, अपना हाथी ले जाओ। मुझे तो एक ...भैंसे की ज़रूरत थी। मेरा एक भैंसा मर गया ...है। मैं कल शराब के नशे में था। मैंने समझा, ...चलो एक अच्छा भैंसा मिल जायगा, जोड़ी मिल जायगी। क़ीमत भी दस रुपये कुछ ज़्यादा नहीं थी। अब ...देखता हूँ कि इसका जोड़ मेरे भैंसे से नहीं मिल सकता।"

नौकर हाथी लौटा लाये और उन्होंने बीरबल से आकर सब हाल सुनाया। बीरबल को सन्देह हुआ कि शायद उस पारखी ने इसका दोष ख़रीदार को बतला दिया, इसी से उसने बहाना बताकर सौदा वापस कर दिया। उन्होंने उस पारखी को बुलाया और उससे पूछा--"क्यों भाई, तुमने कल हाथी में क्या ...देखा था ?"

उसने उत्तर दिया--"मैं तो यह देख रहा था कि ...यह जानवर खाना किधर से खाता है ?"

बीरबल को निश्चय हो गया कि यह गाँव बेवक़ूफ़ों ...का है। इसी की हवा लगने से मैं भी बेवक़ूफ़ बन ...गया, जो दो सौ रुपये व्यर्थ में दे बैठा। बस, उसी ...दिन से भोगाँव की ऐसी कुप्रसिद्धि हो गई कि यहाँ ...तीर्थ-यात्रा के लिए भी लोगों ने आना-जाना बन्द ...कर दिया।

इन बातों के अतिरिक्त भोगाँव के विषय में कुछ ...और भी जनश्रुतियाँ हैं। इनमें से अत्यन्त प्रसिद्ध दो-...एक का उल्लेख हम यहाँ करते हैं।

...ग्रैंडट्रंक रोड पर जब मील के पत्थर गाड़े गये ...अन्यत्र तो आठ आठ फ़र्लांग पर मील के पत्थर ...गाड़े गये, पर भोगाँव के बीच में ९ फर्लांग पर ...मील का पत्थर गाड़ा गया। यह बात यहाँ के कई ...लोगों ने बतलाई। कह नहीं सकते कि इंजीनियर ...को भोगाँव की हवा लग गई थी या उनसे ...नापने में कुछ ग़लती हो गई थी। कहते हैं कि इसी ...ग़लती को दूर करने के लिए सड़क भर के सब पत्थर ...वर्ष बाद उखाड़कर दुबारा गाड़े गये थे। इस ...जनश्रुति में कितना तथ्य है, हम नहीं कह सकते।

[भोगाँव के एक धनाढ्य कंजर का पक्का मकान]

एक बार एक लाला जी अपने घर में बैठे हुए थे। इतने में एक साँप निकला। लाला जी ने अपनी नौकरानी को बुलाकर कहा कि बाहर जाकर जल्दी किसी मर्द को बुला ला जो इसे मार डाले। नौकरानी कुछ देर बाहर घूमकर लौट आई और बोली--"लाला जी, आप भी तो मर्द हैं !" लाला जी यह उत्तर सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और नौकरानी से बोले--"तूने ख़ूब याद दिलाई, मुझे तो यह मालूम ही नहीं था कि मैं भी मर्द हूँ।"

एक बार एक अँगरेज़ अफ़सर भोगाँव से होकर जा रहा था। उसने सुना था कि भोगाँव की हवा लगने से आदमी बेवक़ूफ़ बन जाता है। अतः भोगाँव पहुँचने पर उसने निश्चय किया कि हम अपना मुँह और नाक अच्छी तरह बाँध कर भागते हुए निकल जायँगे जिससे हम पर यहाँ की हवा का असर न हो। किया भी ऐसा ही। साहब बहादुर जब यह विचित्र शक्ल बनाकर भागते हुए बाज़ार से निकले तब बाज़ार के लोग उन्हें देख कर ख़ूब हँसे और कहने लगे कि इस सचमुच भोगाँव की हवा लग गई है।

भोगाँव की कहानियों का एक पूरा ग्रन्थ हो गया है। उन सबका वर्णन एक लेख में नहीं हो सकता।

गुब्बारा

लेखक, श्रीयुत लक्ष्मीचन्द्र वाजपेयी, 'चन्द्र'

रोग-ग्रस्त बालक ने कहा--'अम्मा, गुब्बारा !'

उसके मुख पर करुणा मूर्तिमान-सी थी।

और माँ ने बालक के जीर्ण, ध्वस्त मुख की ओर देखा। देखा--विषाद और मृत्यु की मलिन छाया उसके पुत्र के मुख पर अपना पूर्ण आधिपत्य स्थापित किये हुए है। आँखें--छोटी-छोटी आँखें--बन्द हो-होकर रह जाती हैं। होंठ सूख गये हैं। शरीर पीला पड़ गया है--लहू की न्यूनता के कारण !

तब माँ सोचने लगी--'ऐं ! गुब्बारा !'

कितनी भयानक विडम्बना है ?

ओह ! माँ का लोम-लोम भय-विकम्पित हो गया।

झोपड़ी का अन्धकार गाढ़तर होने लगा।

बालक उद्भ्रान्त-विह्वल हो, लकड़ी-सरीखे सूखे पैर पटक, अपना सम्पूर्ण रोष-आक्रोश प्रकट कर एक बार पुनः चीख उठा--'गुब्बारा, गुब्बारा, मैं गुब्बारा लूंगा।'

माँ ने बालक को गोदी में ले, बड़ी सावधानी के साथ, अपने वक्ष से लगा लिया और तत्क्षण ही अपनी असमर्थता पर सिसक-सिसक कर रोने लगी।

× × × ×

समय चलता गया। आधी रात्रि समाप्त हो गई।

अब बालक संज्ञाहीन-सा था।

अकेली माँ का हृत्पिण्ड डोल-डोल कर कह रहा था--'गुब्बारा, और एक पैसा और ग़रीबी !'

उसकी आँखें--करुणाविगलित आँखें--तीन-चार दिन से निरन्तर रोने के कारण सूज गई हैं।

पेट में अन्न का एक दाना भी नहीं गया; बाल बिखरे हैं। रह-रह कर रोने लगती है।

ऊपर की ओर दृष्टि उठाकर, प्रभु का आह्वान कर बोली--मन ही-मन--'भगवन् तू ही रक्षा कर, इस अबोध बालक की !'

जाने भगवान् तक उसकी यह दैन्य-पुकार पहुँची या नहीं ?

भयानक काली रात्रि मानो उसके बच्चे को [illegible] जाने के लिए उद्यत हो। झिल्ली झंकार ! सुदूर क्षितिज से आता हुआ गम्भीर घन-गर्जन !

माँ का शरीर डोल गया। विचार-निद्रा भङ्ग हुई।

मूसलधार वर्षा, प्रचण्ड झंझावात !

ग़रीब, दुखिया की नौका भंवर में पड़ी है। [illegible] का वेग तीव्र है। नाविक नशे में चूर--मदहोश।

बालक माँ की गोद में काँप उठा, कांप उठा।

विस्मय-विह्वल हो माँ ने अपने स्नेह-पंख बालक पर रख दिये।

और एकाएक बालक के मुख से एक [illegible] निकली--'ई··ई··गुब्बारा'

माँ ने देखा--'ऐं ! यह क्या ?'

बालक के दाँत बँध कर रह गये थे। [illegible] बिलकुल कड़ा हो गया था। आँखें बाहर की [illegible] निकल आई थीं।

झोपड़ी की दीपक-ज्योति शनैः-शनैः क्षीण हो [illegible] प्रकाश अन्धकार में परिणत हो गया।

माँ के मुख पर जैसे किसी ने गाढ़ी कालिमा पोत दी हो।

उसे भान हुआ--गुब्बारा उसकी गोद से उड़ [illegible] विस्तृत नीलाम्बर में केलि-क्रीड़ा कर रहा है !

और तब उसकी दृष्टि कुछ क्षणों के लिए आसमान में जा टिकी--गुब्बारा देखने के लिए।

झोपड़ी का सूचीभेद्य तिमिरपुञ्ज भीषण अट्टहास कर कहने लगा--'देख गुब्बारा, ले गुब्बारा !'

भारत में अपढ़ स्त्री-पुरुष

लेखक, श्रीयुत परिपूर्णानन्द वर्मा

हमारे देश में अशिक्षा का कितना भयंकर राज्य है, अज्ञान और अविद्या किस बुरी तरह से फैली हुई है, इसकी कल्पना कर रोमाञ्च हो आता है और चित्त बहुत दुखी हो जाता है। संयुक्त-प्रान्त के कांग्रेसी शिक्षा-मंत्री के प्रयत्न से तथा उनके अनुकरण से अन्य कांग्रेसी प्रान्तों में देश भर में शिक्षा के प्रसार तथा प्रचार के लिए किस ज़ोर से कोशिश हो रही है, यह समाचार-पत्रों के पाठक जानते हैं। किन्तु यदि हम यह बात भी अच्छी तरह जान जायँ कि हम कितने अशिक्षित हैं तो इस दिशा में हम और भी अधिक प्रयत्न कर सकेंगे, जिससे देश का कल्याण ही होगा। यह बात निर्विवाद है कि अपढ़ देश वर्त्तमान सभ्यता के युग में तरक्की नहीं कर सकता क्योंकि मूढ़ नागरिक अपनी ज़िम्मेदारी का उस मात्रा में अनुभव नहीं कर सकता, जितनी मात्रा में उसे करना चाहिए।

पार्लियामेंट के सदस्य की टीका—डेढ़ बरस हुए ब्रिटिश हाउस आफ़ कामन्स में मिस्टर जी स्ट्रॉस नामक एक सदस्य ने यह कहा था कि ब्रिटेन ने भारत में कितनी बुरी तरह से शासन किया है, इसका सबसे बड़ा सबूत यह है कि उस देश के ८६ प्रतिशत पुरुष और ९२ प्रतिशत स्त्रियाँ अपढ़ हैं। किन्तु हिसाब लगाने से यह संख्या भी ग़लत मालूम होगी। आगे चलकर मैंने जो तालिका दी है उससे पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि वास्तव में ब्रिटिश भारत में पढ़े-लिखे लोगों की संख्या कहीं कम है। पुरुषों में केवल ११·९५ प्रतिशत ही शिक्षित हैं।

शिक्षा की प्रगति--किन्तु उस तालिका का ज़िक्र पीछे होगा। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि १५० वर्ष की हुकूमत में ब्रिटेन ने भारत के ७·१ प्रतिशत व्यक्तियो को ही सन् १९२१ तक शिक्षित किया। दस वर्ष में यह प्रतिशत बढ़कर ७·९ हो गया, यानी सन् १९३१ में शिक्षित स्त्री-पुरुषों की कुल संख्या का औसत ७·९ था। अर्थात् दस वर्ष में केवल ·८ प्रतिशत की वृद्धि हुई। इस हिसाब से तो सन् २९३९ तक--एक हज़ार वर्ष में समूचा भारत शिक्षित हो सकेगा ! यह कितनी लज्जाजनक, हास्यास्पद तथा अपमानजनक बात है ? क्या हम भारतीय इस परिस्थिति को ज़्यादा समय तक सहन कर सकते हैं ?

संयुक्तप्रांत की दशा—आओ हम पहले अपने संयुक्त-प्रान्त की ही दशा को देखें। यहाँ केवल ४·७ प्रतिशत व्यक्ति शिक्षित हैं। यह औसत स्त्री-पुरुषों को मिलाकर है। अन्यथा शिक्षित पुरुषों की संख्या का औसत ८·०३ प्रतिशत है। ढाई करोड़ पुरुषों में केवल एक मुट्ठी भर यानी २०,४३,४१० आदमी शिक्षित हैं। अन्य प्रान्तों की दशा भी कोई बहुत अच्छी नहीं है। बम्बई, मदरास, बंगाल में भी क्रमशः १५·०४, १६·०६, और १५·४९ का औसत है। इस प्रकार हमारा प्रान्त, आसाम को छोड़कर, सबसे पिछड़ा हुआ है। बिहार-उड़ीसा की सम्मिलित संख्या का औसत (पुरुष) ८·३८ होता है। संयुक्तप्रान्तवालों के लिए यह बड़े शर्म की बात है।

शिक्षा पर ख़र्च--प्रान्तीय सरकार अपनी १२ करोड़ की आमदनी में से २ करोड़ शिक्षा के लिए देती है। उससे कुछ नहीं होता। आजकल काफ़ी चेष्टा करने पर भी शिक्षा को बहुत सस्ती बनाना असम्भव है। सरकारी हिसाब से ही, प्रारम्भिक शिक्षा में, फ़ी विद्यार्थी पीछे ७॥=)॥ का ख़र्च पड़ता है--यह हिसाब सालाना है। अब इसके साथ यह हिसाब भी लगाइए कि हमारे सूबे में लगभग ४८ लाख ऐसे विद्यार्थी हैं जो स्कूल जाना चाहते हैं, स्कूल जाने की उम्र के हैं, पर साधन के अभाव में जिनकी शिक्षा नहीं हो सकती ! यदि इन्हीं ४८ लाख बच्चों के लिए शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय तो ३ करोड़ रुपया चाहिए ! प्रान्तीय सरकार ने शिक्षा को नये ढंग से सङ्गठित करने के लिए जो योजना बनाई है उसको कार्यान्वित करने के लिए शायद कम से कम ९ करोड़ रुपये चाहिए ! इतना रुपया कहाँ से आ सकता है ? प्रतिक्रियावादियों तथा कांग्रेस के शत्रुओं के मारे भरी जेबवालों से एक पैसा कर के रूप में वसूल करना कठिन हो रहा है। उधर देश की आवश्यकता कुछ और त्याग और साहसमय कार्य

चाहती है । इसमें सन्देह नहीं कि दो ही तरीके हैं, जिनसे केवल बच्चों को शिक्षित कर, भावी नागरिकों को अपढ़ रहने के कलंक से बचाया जा सके—या तो केन्द्रीय सरकार सहायता दे या प्रान्तीय सरकार कर लगावे ! केन्द्रीय सरकार के पास रुपया होगा तो वह अपनी सेना पर ख़र्च करेगी और प्रान्तीय सरकार कर लगाना चाहेगी तो वह अपने पिट्ठू लिबरलों की बात मानकर उसके लिए इजाज़त शायद न दे ! इस विचित्र परिस्थिति में पड़कर अविद्या-निवारण का कार्यक्रम भी बड़ा समस्यामय प्रतीत होता है।

जहाँ तक आँकड़ों का सम्बन्ध है, किन्हीं-किन्हीं बातों में हम एकदम सामयिक संख्या नहीं दे सकते। फिर भी ऊपर जो प्रतिशत और अनुपात दिया गया है वह १९३८ के अन्त तक की परिस्थिति बतलाने के लिए पर्याप्त है । आबादी और उसके अनुसार विभाजित संख्याओं के लिए पिछली मर्दुमशुमारी से लाभ उठाना होगा, क्योंकि अगली मर्दुमशुमारी अभी दो वर्ष बाद होगी ।

शिक्षा का विकास या ह्रास ?

सन् १८१३ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने "वैज्ञानिक शिक्षा" के लिए एक लाख रुपया मंज़ूर किया था । इस वैज्ञानिक शिक्षा का मतलब भारतीयों को अरबी और संस्कृत पढ़ाना था। और उसके लिए सिर्फ़ एक लाख रुपया ! सन् १८१६ में राजा राममोहनराय तथा डैविड हेयर नामक एक अँगरेज़ घड़ीसाज़ ने हिन्दू-कालेज की स्थापना की । इसने पहले पहल पश्चिमीय शिक्षा की ओर ध्यान दिया। हमारे पुराने शिक्षणालय सरकारी सहायता के अभाव तथा पराधीनता के कारण नष्ट-से हो चुके थे। अँगरेज़ी राज्य के आते ही देश में जो शिक्षा पहले से प्रचलित थी उसकी समाप्ति हो गई और अशिक्षा के युग का प्रारम्भ हुआ । इस युग में देशी शिक्षा को तो प्रोत्साहन ही नहीं मिला, साथ ही विदेशी शिक्षा के लिए भी इतने कम साधन थे कि वह भी पनप न पाई। हमारी मौजूदा अविद्या का यही कारण है ।

मन् १८२७ मे बम्बई में एलफ़िन्स्टन कालेज स्थापित हुआ और सन् १८३५ में कलकत्ता-मेडिकल कालेज की स्थापना हुई। सन् १८३७ में मदरास में क्रिश्चियन कालेज खुला। इसी साल से फ़ारसी के स्थान पर अँगरेज़ी राज-भाषा बनी । अँगरेज़ी के राज-भाषा बनते ही अँगरेज़ी शिक्षा की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित होना स्वाभाविक था ।

लार्ड कर्ज़न के बाद—हमारे लेख का उद्देश्य भारतीय शिक्षा के विकास का इतिहास नहीं देना है। हम केवल कुछ उदाहरणों-द्वारा वर्तमान् दशा का कारण बतलाना चाहते हैं। भारत में किसी प्रणाली द्वारा, खास नियम के अन्तर्गत, आवश्यक शिक्षा देने का काम वास्तव में सन् १९०४ से ही शुरू हुआ । लार्ड कर्ज़न ने १९०२ में एक युनिवर्सिटीज़ कमीशन बैठाया था, जिसकी महत्त्व-पूर्ण रिपोर्ट से भारत-सरकार ने लाभ उठाया । इसके बाद सन् १९१० में शिक्षा का एक अलग विभाग बनाया गया। अर्थात् सन् १८१३ में एक लाख रुपये की मंजूरी से अँगरेज़ों ने शिक्षा-प्रचार का जो काम शुरू किया था वह ९७ वर्ष के बाद इस दशा को पहुँचा कि शिक्षा का एक अलग विभाग खोलना पड़ा। इससे बढ़कर ब्रिटिश शासन की अयोग्यता का और कौन उदाहरण हो सकता है ? इँग्लेंड में सन् १८५० से सन् १८९० के भीतर ही शिक्षा-सम्बन्धी इतने उपयोगी नियम जारी हो गये थे, जिनके भारत में आज भी जारी करने में कठिनता मालूम हो रही है। शिक्षित व्यक्तियों का जो औसत हम लोग निकालते हैं उसमें भी ७५ फ़ी सदी ऐसे लोग हैं जिन्होंने सरकारी सहायता से एकदम पृथक् ऐसी पाठशालाओं या मकतबों के द्वारा शिक्षा प्राप्त की है जो पुराने ज़माने से अब तक चल रहे हैं, और पुराने ढङ्ग से ही शिक्षा दे रहे हैं ।

भारतीय शिक्षा के विकास के इतिहास में कलकत्ता-विश्वविद्यालय-कमीशन, हरटोग-कमिटी, लिंडसे-कमीशन, पंजाब-विश्वविद्यालय-जाँच कमीशन इत्यादि की रिपोर्टों का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है, परन्तु यह दूसरा ही विषय है । इस लेख के लिए उन रिपोर्टों से हमें जानने लायक केवल इतनी ही मुख्य बात मिलती है कि उन सभी के लिखनेवालों ने यह शिकायत की है कि शिक्षा के विकास की प्रगति बड़ी कमज़ोर और सुस्त तथा असन्तोषजनक रही है ।

सरकारी आय-व्यय से भी यही प्रकट होता है। भारत में शिक्षा पर सन् १९१६-१९१७ में कुल ११,२८,८३,०६८) वार्षिक व्यय हुआ था । सन् १९३३ में वही बढ़कर २६,७८,७५,८६८) रुपया हो गया। पर इसमें १५,३९,५६,२१९) पब्लिक फ़ण्ड का था। इस वर्ष तक इन दोनों रक़मों में लगभग ३ करोड़ की वृद्धि हुई है ।

शिक्षा-प्रणाली की निन्दा—३५ करोड़ की आबादी-वाले देश में यदि १८ करोड़ रुपया अथवा मान लीजिए कि फ़ी आदमी पीछे आठ आने साल ख़र्च हो भी गया, तो पहले तो यह कोई महत्त्वपूर्ण बात नहीं है, दूसरे हमारा तो यह भी कहना है कि यह रुपया भी बुरी तरह ख़र्च किया गया है और शिक्षा की प्रणाली भी बहुत निम्न श्रेणी की रही है और है। इस विषय में स्वयं कुछ न कह कर लन्दन से प्रकाशित होनेवाले 'ओवरसीज़' पत्र की मई की संख्या की एक टिप्पणी को यहाँ उद्धृत कर देना ठीक है । 'ओवरसीज़' पत्र बहुत ही निष्पक्ष और प्रभावशाली समझा जाता है । उसकी हर एक टिप्पणी महत्त्व की होती है । उसने लिखा है—

"भारत के हमारे नवयुवक मित्रों को ज़रूरत से कम या ज़रूरत से ज़्यादा पढ़ाने का दोष ब्रिटिश राज पर क्यों लगाया जाता है ?

एक तरफ़ हमारे राष्ट्रीय मित्र भारत के ग्रामों में फैली निरक्षरता के विरुद्ध आवाज़ उठा रहे हैं, दूसरी ओर शिक्षा-सुधारक मेकाले द्वारा प्रचलित ऊँची, व्ययशील और परीक्षाओं से भरी शिक्षा प्रणाली की निन्दा कर रहे हैं। हमसे पूछा जाता है कि हमने यहाँ (इँग्लेण्ड में) इतना शिक्षा-सुधार किया और भारत में वही दक़ियानूसी पाठ्य-प्रणाली चली जा रही है। इसका परिणाम अनिवार्य है—दिमाग़ किताबी कीड़ा ही रह जाता है, अतः आबादी का एक महान् अंश पिछड़ा हुआ और निरर्थक अंश हो गया है । बेकारी की भयानक मात्रा होते हुए भी लोगों में सरकारी कामों या नौकरियों के प्रति पागलपन बना हुआ है और भारत की समृद्धि के लिए आवश्यक खुली हवा में किये जानेवाले काम की ओर ध्यान ही नहीं जाता। इस क्षेत्र में सर जार्ज एण्डर्सन की विशेषज्ञता में किसी को सन्देह न होगा—और उनका कहना है कि भारत में बेकारी की अधिकता उतनी दुःखदायी नहीं है जितना कि काम में लगाये जानेवाले योग्य युवकों का अभाव !

"इसकी दवा एक ही है, जिससे एक ही पत्थर से दो चिड़ियाँ मर सकें। अधिकारियों को शिक्षा-प्रणाली उलट कर उसे कालेज या विश्वविद्यालय की सीमाओं से छुड़ाकर ग्राम-पाठशालाओं की ठोस नींव पर पुनः निर्मित करना चाहिए। दस्तकारी की शिक्षा ज़रूर देनी चाहिए जिससे हाथ और सिर दोनों को शिक्षा मिले ।"

वर्तमान दूषित शिक्षा-प्रणाली को मिटाने, निरक्षरता को दूर करने तथा अपने शिक्षित, पर संसार के लिए किसी भी काम के अयोग्य, नवयुवकों के जीवन के सुधार का उपाय करने का महत्त्व स्थापित करने के लिए, ऊपर दी गई टिप्पणी से अधिक और कुछ कहना ज़रूरी नहीं मालूम होता। किन्तु शिक्षा की नीति-रीति पर विचार करना इस लेख का उद्देश्य नहीं है। उसकी कोई आवश्यकता भी नहीं है। इसका तो उद्देश्य केवल भारतीय अशिक्षा का नग्न रूप पाठकों के सामने उपस्थित करना है, जिससे उनको यह ज्ञात हो जावे कि हमारी अशिक्षा हमारे लिए कितनी अपमानजनक वस्तु है और उसके लिए ब्रिटिश सरकार किस सीमा तक ज़िम्मेदार है। आगे हम एक तालिका देकर अपने देश के शिक्षित तथा अशिक्षित पुरुषों की संख्या बतला देना चाहते हैं।

इन संख्याओं से यह स्पष्ट हो गया कि ब्रिटिश भारत के १३,२०,२८,३२९ पुरुषों में केवल ११·९५ प्रतिशत ही शिक्षित हैं। देशी राज्यों की अलग तालिका न देकर हम उनकी संख्या-मात्र ही बतला देना चाहते हैं। देशी रियासतों के कुल १८,१८,२८,९२३ पुरुषों में से १५,६६,४४,०५० पुरुष अशिक्षित हैं और २,३९६९,७५१ शिक्षित । इनमें से अँगरेज़ी जाननेवालों की संख्या केवल ३२,५३,४७६ है, अर्थात् शिक्षा का औसत १३·१८ प्रतिशत है। पर इन रियासतों की सूची में सिकिम की रियासत और मदरास की ट्रावन्कोर, तथा मैसूर की रियासतें भी शामिल हैं। इन तीन रियासतों में शिक्षितों का औसत क्रमशः २०·३२; ३३·७७ और १५·०४ है तथा कोचीन में ३८२२ है। बंगाल और मदरास को छोड़कर मैसूर के १५·०४ से अधिक भी ब्रिटिश भारत के किसी भी प्रान्त में नहीं है। अब महिलाओं की शिक्षा का औसत देखिए—

ब्रिटिश भारत में शिक्षित तथा अशिक्षित पुरुष

सं० प्रान्त	कुल आबादी	अशिक्षित	शिक्षित	अँगरेज़ी जानने-वाले	शिक्षितों का औसत
१—मदरास	२,३०,८२,९९९	१,९३,७६,०२४	३७,०६,९७५	५,०८,३०९	१६·०६
२—बम्बई	१,१५,०३,५५८	९७,४१,५३३	१७,३०,०१०	३,१३,१३८	१५·०४
३—बङ्गाल	२,६०,४१,६९८	२,२०,०८,४३६	४०,३३,२६२	९,६०,३९६	१५·४९
४—संयुक्त-प्रान्त	२,५४,४५,००६	२,३४,०१,५९६	२०,४३,४१०	२,४०,१४०	८·०३
५—पञ्जाब	१,२८,८०,५१०	१,१७,८३,४६६	१०,९७,०४४	२,३०,३९०	८·५२
६—विहार-उड़ीसा	१,८७,९४,१३८	१,७२,१९,६३२	१५,७४,५०६	१,५७,१८९	८·३८
७—मध्यप्रान्त (बरार)	७७,६१,८१८	६९,७०,८३७	७,९०,९८१	८१,९६४	१०·१९
८—आसाम	४५,३७,२०६	३९,४५,५१६	५,९१,६९०	८४,८७३	१३·०४
९—उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश	१३,१५,८१८	१२,२६,७६०	८९,०५८	२३,९२१	६·७७
१०—अजमेर-मेरवाड़ा	२,९६,०८१	२,४४,६०३	५१,४७८	११,३३४	१७·३९
११—दिल्ली	३,६९,४९७	२,९६,१२०	७३,३७७	२९,१०५	१९·८६
कुल	१३,२०,२८,३२९	११,५७,२४,५०३	१,५७,८१,७९१	२६,४०,७२९	११·९५

शिक्षित स्त्रियाँ

प्रान्त	जन-संख्या	अशिक्षित	शिक्षित	अँगरेज़ी पढ़ी-लिखी महिलायें	औसत
मदरास	२,३६,५७,१०८	२,३०,४५,२०३	६,११,९०५	७१,०५५	२·५९
बम्बई	१,०३,७६,५६५	१,००,५६,८२७	२,७३,३७५	५७,७०२	२·६३
बंगाल	२,४०,७२,३०४	२,३४,११,८५३	६,६०,४५१	९८,५८२	२·४७
संयुक्त-प्रान्त	२,२९,६३,७५७	२,२७,४७,५२९	२,१६,२२८	२६,०२७	०·९४
पंजाब	१,०७,००,३४२	१,०५,४९,६२९	१,५०,७१३	१९,२१७	१·४१
विहार-उड़ीसा	१,८८,८३,४३८	१,८७,५४,०७८	१,२९,३६०	१२,७८५	०·६८
मध्य-प्रान्त	७७,४५,९०५	७६,६९,१२१	७६,७८४	९,३०९	०·९९
आसाम	४०,८५,०४५	४०,१०,४१९	७४,६२६	४,७३०	१·८२
सीमान्त-प्रदेश	११,०९,२५८	१०,९७,९५०	११,३०८	१,७९६	१·०२
अजमेर-मेरवाड़ा	२,६४,२११	२,५६,४२८	७,७८३	१,५६६	२·९४
दिल्ली	२,६६,७४९	२,५०,६५४	१६,०९५	४,०८०	६·०३
कुल स्त्रियाँ	१२,४१,२३,६८२	१२,१८,४९,६९१	२२,७३,९९१	३,०६,८४९	१·८ प्रतिशत

देशी रियासतें—देशी रियासतों में महिलाओं की कुल संख्या १७,१०,०८,८५५ है, जिनमें से १६,५७,३४,१८० अशिक्षित और ४१,९९,१०५ शिक्षित हैं। इनमें अँगरेज़ी पढ़ी-लिखी स्त्रियों की संख्या ३,९७,८८३ है। किन्तु एक बात मार्के की यह है कि दूरी और २·४४ प्रतिशत शिक्षा के होते हुए भी, कई रियासतों का औसत, ब्रिटिश भारत की तुलना में आश्चर्यजनक है—जैसे—कोचीन, ट्रांवन्कोर तथा बड़ौदा में क्रमशः १८·४२, १३·८९ और ६·७२ शिक्षिता हैं। ब्रिटिश भारत में यह स्थिति किसी भी प्रान्त में कब आवेगी, यह कल्पना-जन्य वस्तु है। किन्तु इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि हमारी शिक्षा के प्रति ब्रिटिश सरकार ज्यादा उदासीन थी और देशी रियासतों में विलासिता इत्यादि के अवगुण होते हुए भी वे शिक्षा के मामले में बहुत कुछ आगे थीं।

हमारा कर्तव्य—ऐसी दशा में हमारा क्या कर्त्तव्य है। निरक्षर जनता स्वाधीनता की भावना में पिछड़ी रहती है। आधुनिक सभ्यता में निरक्षरता पतन की पहली सीढ़ी है। अशिक्षा के कारण जहालत नहीं जा सकती। अशिक्षा के कारण उद्योग-धन्धे नहीं पनप सकते। अशिक्षा के कारण स्त्रियों में जागृति पुरुषों में ब्रह्मचर्य, स्वास्थ्य, सफ़ाई, सभी गुणों का अभाव रहेगा।

इसलिए देश की वर्तमान समस्याओं का कारण उसकी अशिक्षा है, जिसे दूर करने का एकमात्र उपाय राष्ट्रीय संकल्प है—जिस संकल्प के अभाव में हम कुछ नहीं कर सकते। इसी लिए कांग्रेसी सरकारें जी तोड़-कर, हमारी अशिक्षा को दूर करने की तथा उचित प्रणाली से शिक्षा देने की चेष्टा कर रही हैं। किन्तु ऐसे प्रयत्नों में सामूहिक प्रयास की आवश्यकता होती है। विना सार्वजनिक संकल्प के राष्ट्र-निर्माण के कार्य्य सम्पन्न नहीं हुआ करते।

मेरा अतीत

लेखक, श्रीयुत श्यामविहारी शुक्ल 'तरल'

आहों में संगीत छिपा है।
हास्य छिपा मेरे रोने में,
ज्योति छिपी तम के कोने में;
इस अपार दुख में ही मेरा सौख्य कल्पनातीत छिपा है।
आहों में संगीत छिपा है।
विजय छिपी इस दुखद हार में,
शान्ति छिपी है अश्रुधार में;
घोर पतन में ही तो मेरा वह आदर्श पुनीत छिपा है।
आहों में संगीत छिपा है।
हूँ अशक्य पर शक्ति छिपी है,
इस विरक्ति में भक्ति छिपी है;
अन्धकारमय उस भविष्य में मेरा मधुर अतीत छिपा है।
आहों में संगीत छिपा है।

पुण्य और पाप का भेद

लेखक, पण्डित ज्वालादत्त शर्मा

पुण्य और पाप बार बार कहने से बहुत कुछ नष्ट हो जाते हैं, बाक़ी उनका केवल चिह्न रह जाता है। यदि कोई इस सम्बन्ध में एक छोटी सी बात को याद रख ले तो उसका बहुत कुछ उपकार हो सकता है और वह बात यह है कि पुण्य करना जितना अच्छा है उसे करके उसका अभिमान करना और जो वैसा नहीं कर पाते हैं उनसे अपने को अलौकिक और श्रेष्ठ समझना ही नहीं बल्कि उनके प्रति हृदय में घृणा और द्वेषमूलकभाव रखना उस पुण्य की अपेक्षा भारी पाप है। इसी प्रकार पाप स्वभावतः जितना बुरा है उसे करके हृदय में सच्चा परिताप होना और उससे छूटने का सतत उद्योग करना उस पाप की अपेक्षा ही पहले ढंग के पुण्य से भी कहीं श्रेष्ठ है। यदि यह काँटा हमारे सामने रहेगा तो पुण्य का फल-स्वरूप ज्ञान और पाप का फल अधःपतन दोनों से हमारा लाभ होगा। पुण्य का फल छिनने न पायेगा अर्थात् होम करते हाथ न जलेगा और पाप के पंक से हमारा शीघ्र उद्धार हो जायगा। इसी भेद के कारण प्रायः पुण्यात्माओं से विचारशील पुरुषों को घृणा और पापियों से सहानुभूति होते देखी गई है। एक आदमी गङ्गाजल पीकर यदि अपने को श्रेष्ठ मानकर अन्य प्रकार के जल पीनेवालों को अधम समझता है तो उसके लिए यह अच्छा होता कि वह भी अन्य जल ही पिया करता; कोई एक सीढ़ी चढ़कर दूसरी ओर गहरे गढ़े में गिर पड़ता है तो उसकी उन्नति का स्वप्न अवनति की भूमिकामात्र है। नेकी करो, किन्तु उसका झूठा अभिमान न करो। उस नेकी के नाम पर बदी से बुरी कुप्रवृत्ति और अज्ञता-पूर्ण अहन्ता के शिकार मत बनो, हाफ़िज़ ने इस विषय पर कितना अच्छा कहा है—

'दाम्भिकों के पुण्य पापियों के पापों की चरण-सेवा करने योग्य भी नहीं हैं।'

अकबर का पद्य तो संसार के लिए आदर्श रूप है—

पंडित ज्वालादत्त शर्मा

तू वज़ा पर अपनी क़ायम रह क़ुदरत ही मगर तहक़ीर न कर
दे पाये नज़र को आज़ादी ख़ुदबीनी को ज़ंजीर न कर।

हमारी नेकी हमारे बन्धन का कारण न बनने पाये, उससे तो हमें स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिए। किसी ने संस्कृत में कैसा सुन्दर पद्य लिखा है—

विद्ययैव मदो येषां कार्पण्यं विभवे सति।
तेषां दैवाभिशप्तानां सलिलाद् वह्निरुत्थिता॥

नेकी असली वह है जिससे अपनी बदी का बोध होता है और जिनमें उस बदी का थोड़ा भी अंश है उनके प्रति सच्ची सहानुभूति और आत्मीयता उत्पन्न होती है।

एक सज्जन लाल मिर्च नहीं खाते थे और अपने इस गुण का इतना बढ़ाकर बखान करते और उसका यह निष्कर्ष निकालते थे कि जो लाल मिर्च खाते हैं उनमें न सत्य रह सकता है, न धर्म्म, न वे पारलौकिक उन्नति कर सकेंगे और परलोक में तो उनकी डाकू और खूनी से भी बढ़कर दुर्गति होगी। यह सब कहते-कहते उनमें इतना क्रोध भी प्रकट होते देखा गया कि आपे से बाहर होकर कुवाच्य शब्दों तक का प्रयोग मिर्च खाने-वालों के प्रति करने में भी उन्हें दरेग़ न होता था। इस पर किसी मिर्च खानेवाले ने एक दिन बड़ी शान्ति से उनकी सेवा में निवेदन किया कि महात्मन्, यदि मिर्च न खाने से ऐसा अद्भुत स्वभाव हो जाता है तो कोई समझदार आदमी उसे छोड़ने को तैयार न होगा।

अपनी बुराई तो अपने मुँह से शोभा पा जाती है, भलाई का बखान तो सदा दूसरों के मुँह से ही अच्छा लगता है। किन्तु संसार का अजब दस्तूर है कि गाड़ी के पीछे घोड़ा जोतकर उसे पीटा जाता है कि गाड़ी तेज़ चाल से चले और सब पीछे रह जायँ।

हर बात हर आदमी के लिए नहीं है, न सब त्यागी हो सकते हैं और न सब साधु। संसार एक मेला है। उसमें सब प्रकार की सामग्री मौजूद है। आपका काम जिससे चलता है उसे लीजिए, दूसरों को न छेड़िए, उन्हें अपना काम करने दीजिए। यदि आप उन्हें रोकेंगे तो आपका काम भी रुक जायगा और मेले में जो गड़बड़ पैदा होगा उसका उत्तरदायित्व आपके कन्धों पर मुफ़्त में आ पड़ेगा। आप अपनी नेकी को ऐसा मनोहर बनाइए जिससे जिनमें दुर्भाग्य से वह नहीं है वे उसे प्राप्त करने के लिए मतवाले हो जायँ।

एक सन्त जी जिसके घर में रामायण की पुस्तक न हो उसके यहाँ भोजन करना पसन्द नहीं करते थे और इस प्रकार अपनी रामायण-भक्ति का बेसुरा डंका पीटते थे कि उनके साथ बेचारी रामायण भी बदनाम हो जाती थी। यदि उनमें सच्ची रामायण-भक्ति होती तो वे कभी ऐसा नियम नहीं बनाते, उन्हें तो श्रीराम जी महाराज की सहनशीलता का सबक़ याद करना था जिन्होंने कभी और कहीं ऐसा न किया और न करने का उपदेश दिया कि जो मुझे मर्यादा पुरुषोत्तम न माने उसे बिरादरी से ख़ारिज कर दो या गोली से उड़ा दो, सदा अपनी माता से अधिक नहीं तो उनके बराबर ही कैकेयी का आदर किया, जिसने उन्हें कष्ट पहुँचाने की व्यवस्था में कोई कसर नहीं की थी। पुण्य हो या पाप, नेकी हो या बदी, धर्म हो या अधर्म, जो हमें सहनशीलता नहीं सिखाता वह मनुष्य-समाज के लिए निकम्मी चीज़ है। हमें अपने स्वभाव, धर्म, अभ्यास और समाज के विचार से जो पद्धति पसन्द है उस पर चलने का पूरा अधिकार है, किन्तु जिनका दूसरा मार्ग है उनसे लड़ने का या उन्हें इसी कारण नीच या पतित समझने का अधिकार नहीं है, बल्कि वैसा करना अपनी संस्कृति को ख़तरे में डालना है। हमारी माता हमारी पूरी भक्ति की मुस्तहक़ है, किन्तु इसका यह अर्थ कभी नहीं होता कि हम दूसरी माताओं का अपमान करके अपनी माता की महत्ता प्रकट करें। यह उलटा मार्ग है। दूसरी माताओं की मर्यादा मानना ही अपनी माता की सच्ची प्रतिष्ठा है। चाहे हमारी माता किसी एक माता से किसी बात में उत्कृष्ट ही क्यों न हो, माता के नाते सभी हमारी प्रतिष्ठा की पात्र हैं। तभी हमारी माता का सच्चा आदर होगा, वरना हमारे अज्ञान से हमारी साध्वी माता को भी मिथ्या दोषों का कटु अनुभव करना पड़ जायगा और उसका उत्तरदायित्व हमारे हिस्से में आयेगा।

कुछ बहुत मोटी बातों को छोड़ कर यह निश्चय करना कि क्या पुण्य है और क्या पाप है, बहुत कठिन व्यापार है, इसलिए सबसे सुन्दर निर्वाह की बात यही है कि हम जिसे पुण्य या धर्म समझते हैं उसका दिखावे के लिए आचरण न करके सच्चे मन से उसका पालन करें और दूसरों के लिए पूरा अवसर दें कि वे जो करते हैं उनके लिए वही ठीक होगा तब जो वास्तव में भूले हुए हैं हमारे शान्त व्यवहार से शायद हमारे मार्ग पर आ जायँ। किन्तु यदि हम दूसरों की बुराई का बखान करने के लिए ही अपनी कल्पित भलाई का ढोंग रचते हैं तो उसका परिणाम बड़ा विषमय होगा अर्थात् हमारे अन्दर के दलवाले ही हमसे बाग़ी हो जायँगे और हमारे आचरण के कारण हमारे सिद्धान्तों को अकारण हानि उठानी पड़ेगी। जियो और जीने दो, खाओ और खाने दो, सबसे मिलकर चलने में ही सबका कल्याण हो सकता है और यही मत उस बड़ी शक्ति का मालूम होता है जो ईश्वर आदि अनेक नामों से पुकारी जाती है। इसके विपरीत मार्ग का पथिक तो शैतान का चेला नहीं स्वयम् शैतान है।

स्वप्न और सत्य

लेखक, श्रीयुत प्रयागदत्त शर्मा

एक युवक अपने कमरे में बैठा था। सामने दीवार पर राष्ट्रपति श्री सुभाषचंद्र वसु का चित्र टँगा था और उसके नीचे उनके इस बार के अभिभाषण से उनका यह संदेश वह बार बार पढ़ रहा था--"अगर हम अपने मतभेदों को भुला दें, अपनी सम्पूर्ण शक्ति एकत्र करें और उसे राष्ट्रीय संग्राम में लगा दें, तो हम ब्रिटिश साम्राज्य पर ऐसा हमला कर सकते हैं जिसका मुकाबला नहीं किया जा सकता।"

पढ़ते-पढ़ते वह उठकर टहलने लगा। थोड़ी देर के बाद एक चारपाई पर लेट गया और आँखें बंद कर कुछ सोचने लगा। सोचते-सोचते वह सो गया। उसने देखा, भाँति भाँति के अस्त्र-शस्त्र एक जगह इकट्ठे किये गये हैं। पूछने पर मालूम हुआ कि वह एक अजायबघर है, जहाँ लोग यह देखने आते हैं कि जब मनुष्य नामधारी प्राणियों में वास्तव में मनुष्यता का विकास न हुआ था और वे एक प्रकार से पशुओं से भी बदतर अवस्था में रहते थे तब वे किस तरह लड़ने की सामग्रियाँ बनाया करते थे।

"और अब?"--उसने पूछा। "अब क्या? अब तो आप देख ही रहे हैं। अब बुद्धि और विज्ञान का सम्पूर्ण प्रयोग, प्रेम और सहानुभूति के भावों के प्रचार, दुःख-निवारण और रोग-संहार के प्रयत्नों में ही किया जाता है। कितने ही रोगों के नाम और निशान भी अब नहीं रह गये हैं। सौ वर्ष की आयु अब औसत उम्र समझी जाती है। खाने-पीने की किसी को कभी कमी नहीं होती।"

"और हरिजन?"

उसके इस प्रश्न को सुनकर सब आश्चर्य से उसी की ओर देखने लगे। 'हरिजन!" हम सब हरिजन ही तो हैं--अब एक ही वर्ण है, मनुष्य-वर्ण! हम सबको ईश्वर ने मनुष्य बनाया है और हममें से कोई भी पशु की तरह रहे, या रहने पर मजबूर किया जाय, तो अन्य सब भी मनुष्य नहीं कहे जा सकते--उनमें अभी कमी है, मानना ही होगा। अब वैसी अवस्था नहीं है।"

"साम्यवाद?"

"यही तो सच्चा साम्यवाद है।"

"धर्म?"

"यही मानव-धर्म है।"

इतने में संगीत-ध्वनि सुन पड़ी। वह निकट से निकटतर आ गई। एक स्त्री सबसे आगे थी। वह एक झंडा लिये हुए थी। उस पर लिखा था "वसुधैव कुटुम्बकम्।"

"इसे ही तो बहुत-से लोग हमारे पतन का कारण समझते थे--सारा संसार हमारा कुटुम्ब है, इसे अब लोग ठीक और लाभदायक समझने लगे?"

"अब इसी के अनुसार सबका व्यावहारिक जीवन है।"--उस स्त्री ने उसकी ओर देखकर हँसते हुए कहा।

फिर वही संगीत-ध्वनि सुनाई देने लगी।

इस बार वह युवक जाग पड़ा।

बाहर अनाथालय के कुछ बच्चे अपने दुःखों को रोने को संगीत में छिपा रहे थे।

वह उठ बैठा और चिल्लाकर उसने कहा--"मैंने क्या देखा? यह स्वप्न है या भावी सत्य? कभी ऐसा होगा? कब ऐसा हो सकेगा?"

कौन इन प्रश्नों का उत्तर देता।

पराधीन भारत--पृथ्वी के पंचमांश--के अनाथालय के बच्चे अपने दुःखों का गीत गा रहे थे।

वह फिर चिल्लाया--"यह स्वप्न है या सत्य? स्वप्न कब..."। तब फिर उसकी दृष्टि राष्ट्रपति के चित्र पर पड़ी और वह उनका सन्देश पढ़ता हुआ उठा। उसके जेब में जो कुछ भी रुपये-पैसे थे, उन्हें हाथ में लिये उन्हीं अनाथों में जाकर खड़ा हो गया।

प्राकृतिक उपद्रवों की ज्यौतिषिक कल्पना

लेखक, श्रीयुत दीवान रामचन्द्र कपूर

श्रीयुत दीवान साहब ज्यौतिष-विषय के अधिकारी विद्वान् हैं। उन्होंने इस लेख में यह बताया है कि प्राकृतिक महान् उपद्रवों का ज्ञान ज्योतिष-विद्या के द्वारा बहुत कुछ प्राप्त किया जा सकता है। इस विषय के प्रेमियों का तथा इतर जनों का भी इस लेख से काफ़ी मनोरञ्जन होगा।

ज्योतिष के दो प्रधान विभाग हैं। एक गणित, दूसरा फलित। गणित-द्वारा गोल-सम्बन्धी आकाशस्थ पिंडों की गति, स्थिति और स्वरूप आदि का पता लगता है तथा फलित-द्वारा किसी काल की निर्दिष्ट स्थिति के आगंतुक परिणाम का साधार अनुमान किया जाता है। साधारणतया यह कहा जा सकता है कि आधुनिक काल में ज्योतिष-सम्बन्धी गणित बहुत कुछ पूर्ण हो चुका है, परन्तु उसका फलित विभाग अभी तक वैसा ही अधूरा है जैसा प्राचीन काल में था। इसके अनेक कारण हैं, परन्तु प्रधान वैज्ञानिक कारण यह है कि जब कोई दो पिंड आपस में आकर्षण करते हैं और अपने केन्द्रीभूत शक्ति के चारों ओर चलते हैं तब ज्योतिष के आकर्षण-सिद्धान्तानुसार उनके मार्ग का स्वरूप और उनकी गति का गणित-द्वारा सरलता से स्पष्ट कर लिया जाता है। परन्तु जब कोई तीसरा पिंड उन दो पिंडों को आकर्षित करता है तब उन तीनों की गति और मार्ग का निर्देश करना कठिन हो जाता है। इसी लिए सौर जगत् की फलित-सम्बन्धी कुण्डली से फलादेश का स्थिर सिद्धान्त बनाना उतना ही कठिन है, जितना गणित द्वारा दो से अधिक ग्रहों के आपस के आकर्षण का फल जान लेना। इस सौर जगत् में यदि केवल दो ही पिंड होते अर्थात् एक सूर्य और दूसरा हमारी पृथ्वी तो पृथ्वी और सूर्य के आपस के समय-समय के स्थान और गति-सम्बन्धी फल का आदेश करना बड़ा ही सरल हो जाता और उनके सभी आगंतुक घटनाओं की एक सूची भी बन गई होती, परन्तु कई ग्रहों की भिन्न-भिन्न गतियों और उनके भिन्न-भिन्न अलौकिक प्रभावों के कारण ज्योतिष-फलादेश, गणित-द्वारा स्पष्ट किये गये परिणामों की अपेक्षा, कहीं अधिक जटिल और कठिन हो गया और राज्य-द्वारा प्रोत्साहन न मिलने से अभी तक अधूरा-सा पड़ा है। फिर भी जिन दूसरी वैज्ञानिक विद्याओं ने आगंतुक प्राकृतिक परिस्थितियों के विषय में फलादेश का प्रयत्न किया है उनकी अपेक्षा ज्यौतिषिक परिपाटी अधिकसाधार और पूर्ण है और इसकी अधिक पूर्णता राज्य-द्वारा सहायता पाने पर अवलम्बित है। जनवर्ग के भरोसे ऐसी निरावलम्ब विद्या में संकरता आना अनिवार्य है।

वेदों में सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्रों के द्वारा भाग्या-भाग्य के फलादेश का कई स्थानों में विवरण मिलता है। उनमें चन्द्र-सम्बन्धी नक्षत्रों को अधिक महत्त्व दिया गया है। यजुर्वेद ने सूर्य को चक्षु का और चन्द्रमा को मन का अधिष्ठातृ देवता माना है और उनकी उनसे उत्पत्ति मानी है--यथा "चन्द्रमा मनसो जात-श्चक्षोः सूर्य्यो अजायत"। इसका वैज्ञानिक आशय यह है कि दिखाने की शक्ति सूर्य्य में और मन को चञ्चल करने की शक्ति चन्द्रमा में है, इसलिए पृथ्वी में पदार्थों को देखकर जीवों में प्रवृत्ति या निवृत्ति का होना मुख्य-तया इन दोनों ग्रहों के कारण ही है। इसमें अन्य ग्रहों और असंख्यात तारा-समूह के प्रभाव से अनेक तरह की परिस्थितियाँ उत्पन्न हो रही हैं। ठोस द्रव्यों पर सूर्य्य का और तरल, वायु या वाष्पीय पदार्थों पर जो मनवत् चलायमान होते रहते हैं, चन्द्रमा का विशेष हाथ है। सूर्य, चन्द्रमा और अन्य आकाशीय पिंडों का असर सामूहिक होता हुआ भी पृथ्वी के प्रत्येक द्रव्य और इसी तरह प्रत्येक सजीव जातीय एवं प्रत्येक व्यक्ति पर भिन्न-भिन्न तरह काम करता है, जिससे सामूहिक रूप में किसी विशेष प्रदेश में प्राकृतिक उपद्रव पैदा हो जाते हैं और जातिविशेष का उत्थान और पतन होता है एवं व्यक्तिविशेष की आगंतुक परिस्थिति के उत्पन्न करने का कारण भी बन जाता है। यह ऐसे

होता है जैसे वही एक सौर शक्ति इस पृथ्वी के द्रव्यों की सापेक्षता से प्रकाश, ताप, रङ्ग और विद्युत् के रूप में परिणत हो जाया करती है, जिससे जगत् का अलग अलग काम होता रहता है। सौर-शक्ति जो प्रकाश के रूप में थी वही दूसरी अवस्था में गर्मी का काम देती है। इसलिए किसी एक ग्रह की शक्ति या रश्मि इस पृथ्वी के भिन्न व्यक्ति और द्रव्य-समुदाय की सापेक्षता से भिन्न भिन्न अवस्थाओं में नाना रङ्ग और रूप पैदा कर रही है। जो गति निरवयवी पदार्थों की है वही सावयवी जीवित पदार्थों की भी है। प्रत्येक पार्थिव देहधारी जीव अपना निजी सामर्थ्य रखता हुआ भी जब तक अपने पाँच भौतिक देह की स्वाभाविक माँगों के आश्रित रहता है तब तक जिन द्रव्यों का वह कलेवर धारण किये है उनके सामर्थ्य के परे नहीं जा सकता और इसलिए निरन्तर के प्राकृतिक प्रभावों से वह नहीं बच सकता।

पदार्थों की तीन अवस्थायें हैं। एक ठोस, दूसरी तरल और तीसरी वाष्पीय, और इन तीनों का सम्मिश्रण यह जगत् है। मनुष्य की रचना में भी पित्त, कफ और वात है। इन तीनों के सम्मिश्रण से इस पार्थिव देहधारी जीव का कोष बना है। इसमें भिन्न परिमाण से प्रत्येक व्यक्ति की भिन्न आकृति और स्वभाव की रचना हो जाती है, जो जन्मकालीन ग्रहजनित वायु-मंडल की परिस्थिति पर अवलम्बित है। शुद्ध रुई अग्नि के संयोगमात्र से जल जाती है, पर यदि उसमें जल का सम्मिश्रण हो तो जल निःशेष हुए बिना नहीं जलेगी और फिर भी उसमें जल की जितनी अधिक मात्रा होगी, उतनी देर में जलेगी। इसी तरह यदि प्रत्येक पार्थिव देह की रचना केवल कफ या वात या पित्त की हुई होती तो उन पर ग्रहों का सामूहिक असर एक-सा होता, पर वात, पित्त और कफ के भिन्न परिमाण के कारण प्रत्येक देह में भिन्न आकृति और प्रकृति का निर्माण हो चुका होता है, जिसके कारण आगंतुक ग्रह-जनित वातावरण की सापेक्षता से प्रत्येक जीवन एक दूसरे से भिन्न रहता है।

एतद्देशीय विद्वानों ने ग्रहजनित जीव और निर्जीव पदार्थों पर आगंतुक असर के विषय में जानकारी पैदा करने की कोशिश तो की है, पर अधिकतर मनुष्य के भाग्याभाग्य के विषय पर ही अधिक ध्यान दिया है, जिसके कारण इस देश में मनुष्य की कुण्डली आदि पर से उसके भाग्य के निर्णय करने की शैलियाँ तो बहुत कुछ निकल गई हैं, पर आगंतुक प्राकृतिक उपद्रवों की गणना और फलादेश की परिपाटी बहुत ही अपूर्ण है। प्राकृतिक उपद्रवों (भूकम्प, महावात, अनावृष्टि, अतिवृष्टि, विप्लव, युद्ध, संग्राम, महामारी आदि) पर भारतीय विद्वान् श्री वाराहमिहिर ने थोड़ा प्रकाश डाला है। पाश्चात्य देश के विद्वान् श्री अल्फ़ेड जे कूरर ने इस विषय पर विस्तार से विवेचना की है। लेखक के अपने तुच्छ अनुभव तथा विद्वानों की खोज के आधार पर प्राकृतिक उपद्रवों की ज्यौतिषिक कल्पना एवं परिस्थितियों का वर्णन अतिसंक्षेप में इस लेख में किया गया। यह विषय जितना जनवर्ग के लिए उपयोगी है, उतना ही आम तक त्यक्त-सा रहा है और उतना ही इसको राजद्वार तक कम प्रोत्साहन मिला है फिर भी ऐसी स्थिति में जो कुछ थोड़ा जाना जा सका है उसका सारांश उपस्थित किया जाता है।

प्राकृतिक उपद्रवों के कुछ नियम

ऐसा देखा गया है कि—

(१) जब चन्द्रमा पृथ्वी के समीपतम अवस्था में रहता है उस समय के तूफ़ान या भूकम्प बड़े वेग से होते हैं और यदि मौसिम साफ़ रहा तो जलवायु बहुत ही स्वच्छ होता है, अर्थात् जब चन्द्रमा पृथ्वी के सबसे निकट की अवस्था में आ जाता है उस समय उसका प्रभाव पृथ्वी पर अत्यधिक होता है और ऐसी स्थिति में यदि उपद्रवहीन रही तो मौसिम बहुत ही स्वच्छ होता है और यदि किसी भी प्रकार की जलवायु में विकृति हुई तो वह बड़े वेग की होती है।

(२) ऋतु के परिवर्तन में सबसे प्रधान चन्द्रमा है।

(३) वृहस्पति के द्वारा पैदा हुई प्राकृतिक परिस्थिति में यदि तूफ़ान आया तो पानी अवश्य बरसता है।

(४) शनैश्चर प्रायः भूकम्प ही करता है।

(५) शुक्र और मंगल के द्वारा प्रायः मेघगर्जन और विद्युत्पात होता है।

(६) पृथ्वी उस समय बहुत चलायमान होती है जब सूर्य और चन्द्रमा पृथ्वी के १०° से १३° उत्तर या दक्षिण अक्षांश को पार करने लगते हैं। इतिहास बताता है कि जब जब सूर्य और चन्द्रमा दोनों इन अक्षांशों के बीच होकर गये तब तब इसका पृथ्वी पर बड़ा प्रभाव पड़ा और भयंकर तूफ़ान उत्पन्न हुआ। इस दृष्टि से पृथ्वी का वह भाग जो उत्तर या दक्षिण ११½° से १२° के भीतर है सबसे भयानक है और इन उत्तर या दक्षिण अक्षांशों के बीच जब सूर्य और चन्द्रमा दोनों आ जाते हैं और उसमें भी जब चन्द्रमा पृथ्वी के सन्निकटतम अवस्था में हो तो महावात (तूफ़ान) की भयावह स्थिति उत्पन्न हो जाती है और यदि वे दोनों ग्रह उक्त अक्षांशों (एक दक्षिण और दूसरा उत्तर) में हों तो भी महावात सम्भव होता है।

(७) दो ग्रहणों के मध्यकाल में प्रायः उपद्रव पैदा हो जाते हैं। भारतवर्ष में सन् १७८९ में ९ मई को चन्द्रग्रहण और २४ मई को सूर्यग्रहण था। इसके लगभग मध्यकाल में १७-१८ मई को समुद्री तूफ़ान आया और लगभग २०,००० आदमी डूब गये और लगभग पाँच लाख पशुओं की प्राणहानि हुई।

(८) जब चन्द्रमा अपनी उत्तर या दक्षिण की परम क्रान्ति पर पहुँचता है उस समय के सूर्य स्पष्टवाला प्रदेश अर्थात् सूर्य का राशि-अंश तुल्य अक्षांश और देशान्तरवाले प्रदेश में महावात और भूकम्प दोनों साथ साथ होते हैं। कभी कभी चन्द्रमा की गति अपनी परमाक्रान्ति पर स्थिर प्रायः सी होती है तब वह कुछ काल तक एक ही अंश पर अड़ा रहता है और परमाक्रान्ति पर रहने का एक लम्बा समय हो जाता है, इसलिए पृथ्वी का उपर्युक्त सूर्य स्पष्टवाला प्रदेश अधिक समय तक प्रभावित होता रहता है और इसलिए उपद्रव का काल और स्थान भी बढ़ जाता है। ऐसे अवसर पर यदि चन्द्रमा पृथ्वी के सन्निकटतम अवस्था में हुआ और उससे अन्य ग्रहों का मेल हुआ तो बड़ी भयावह स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

(९) ऐसा भी देखा गया है कि अनेक भूकंप पूर्णिमा के चार दिवस पूर्व हुए।

(१०) जब सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी एक रेखा पर आते हैं तब प्राकृतिक उपद्रव होते ही हैं। इसमें यदि अन्य ग्रहों का मेल हुआ तो उपद्रव और भी बलवान् होते हैं।

(११) जिन वर्षों में चन्द्रमा की परमाक्रान्ति सूर्य की परमाक्रान्ति से अधिक नहीं होती, अर्थात् २३°। २७° से अधिक नहीं होती, उन वर्षों में भयंकर भूकम्प और ज्वालामुखी-विस्फोट होना बहुत कुछ संभव हो जाता है।

(१२) पिछले भारतीय महाभूकम्प ने सप्तग्रही की बात सिद्ध कर ही दी है।

मेघ-राग

लेखक, श्रीयुत आरसीप्रसादसिंह

मेघ-किन्नरी
करती नृत्य सुन्दरी यौवन-
रूप-मद-भरी !
डोलती ग्रीवा में बक-माल,
तड़ित् की चितवन जग पर डाल,
बाँध कटि-भुज में प्रति गति-ताल,
व्योम से चली गीति-निर्झरी !
घुँघरू चरणों में मराल-स्वन,
वक्ष में श्वास श्लथ, श्याम-वसन;
बंकिम आ-नख-शिख, हँस प्रतिक्षण,
खोंस कच में कदम्ब-मञ्जरी !

रिक्ता

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

अरुण अपने मामा के लड़के के विवाह के सिलसिले में कटक गया हुआ था। वहाँ ज्योति से उसकी मुलाक़ात हुई। ज्योति एक शिक्षिता और रूपवती नवयुवती थी। अरुण के मामा की इच्छा थी कि ज्योति के साथ उसका विवाह कर दिया जाय। उन्होंने अरुण के पिता को इस आशय का एक पत्र भी लिखा। परन्तु उन्होंने एक नई चाल-ढाल के धनवान् आदमी के यहाँ पुत्र का विवाह न करके एक निर्धन परिवार की कन्या से ही उसके विवाह का निश्चय किया और यह बात अरुण के मामा को सूचित करते हुए उसे शीघ्र भेज देने को लिखा। इधर अरुण भी ज्योति की ओर आकर्षित हो उठा था, इससे उसको नानी ने भीतर बुलाकर उसे जब उसके पिता का पत्र दिखलाया तब वह मन ही मन बहुत दुःखी हुआ

(३)

अरुण घर के भीतर से निकल आया। किन्तु बाहर आने पर भी उससे रहा नहीं गया। न तो उसकी बैठने की इच्छा होती थी और न उससे खड़ा ही रहा जाता था। वहाँ हँसी-मजाक और गप-शप की जो बाढ़ आई थी उसमें वह टिक न सका। अन्त में धूप में ही छाता लगाये हुए वह सड़क पर निकल पड़ा।

गर्मी की ऋतु थी। निर्मल आकाश पर सूर्य की शुभ्र किरणें फैली हुई थीं। अरुण ने शीघ्र ही अनुभव कर लिया कि ऐसी कड़ी धूप में कहीं जाना बहुत ही कठिन काम है। इससे घर लौटकर एक बड़ी कुर्सी पर वह लेट रहा। पहले तो उसे इस बात का भय हुआ कि कहीं पिता जी यह न समझ बैठे हों कि मामा जी ने जिस विवाह का प्रस्ताव किया है उसमें मेरी भी सम्मति है। इससे वे मुझसे बहुत रुष्ट हो गये होंगे।

क्षण भर के बाद ही अरुण का ध्यान उस निर्धन परिवार की कन्या की ओर गया जिसके साथ उसका विवाह होनेवाला था। उसने कल्पना की दृष्टि से उसे अपनी भावी पत्नी के रूप में देखा। इससे उसका हृदय आनन्द से पुलकित तो हुआ नहीं, बल्कि विरक्ति से ही परिपूर्ण हो उठा। उसके साथ उसने सुशिक्षिता सुन्दरी की तुलना की। जान पड़ा कि एक तुलसी की मंजरी है तो दूसरी गुलाब या कमल का फूल है।

अरुण मन ही मन बहुत दुखी हुआ। वह सोचने लगा कि कितना अन्तर है दोनों में! कितना अन्तर है! हाय रे अदृष्ट! जो घर चिरकाल से अन्धकारमय रहा है उसमें यह दीपक ठहरेगा ही क्योंकर? इस असभ्य अभावग्रस्त परिवार की कन्या क्या इतनी अच्छी है?

इतनी देर के बाद अरुण के मन में आया कि मुझे जो दस-बारह दिन के भीतर लौट आने को कहा गया है उसका अर्थ क्या है? मेरा ही विवाह है और मुझे ही कुछ दिन पहले स्पष्ट रूप से सूचना देने की भी आवश्यकता नहीं समझी गई। पिता जी ने ऐसा क्यों किया? शायद उनकी दृष्टि में मैं मनुष्य नहीं हूँ।

अरुण के मन में उस समय इतनी खीझ आई कि समस्त विश्व-ब्रह्माण्ड से ही उसे विरक्ति हो उठी।

कनक ने आकर हँसते हँसते कहा—क्या हुआ अरुण? अब तुम भी ख़ूब हँसो-कूदो। तुम्हारा भी दिन तो आ पहुँचा है!

यतीन ने कहा—तो शायद तुम हम लोगों को पत्र सा निमन्त्रण भी न दोगे। क्या विचार है तुम्हारा अरुण?

अरुण ने मुँह पर गम्भीरता लाते हुए कहा—मैं तुम्हारे विवाह में कौन बढ़िया दावत खा आया हूँ! ज़रा याद तो कर लो भाई।

"वाह इससे क्या? मेरे विवाह के समय तुम थे क्यों नहीं? अच्छी बात है। तुम निमन्त्रण न दोगे न सही, मैं यों ही खाने के लिए पहुँच जाऊँगा।"

"ओहो, तो बारात जाओगे शायद। अच्छी बात है। यही सही। मौज से पेड़ के नीचे बैठकर चिउड़ा और दही खा आना। बड़ा अच्छा होगा, बड़ा अच्छा होगा!"

यह बात समाप्त करके अरुण एक तीक्ष्ण हँसी हँस पड़ा।

हीरक ने गम्भीर कण्ठ से कहा—जाने भी दो। इस तरह की दुष्टता मत करो। दो दिन के बाद ससुराल हो जायगी। उसके सम्बन्ध में इस तरह की बात कहना ठीक नहीं है।

"तुम्हीं लोग तो कहला रहे हो", यह कहकर अरुण सचमुच चुप हो गया। उस समय उसका हृदय बहुत ही विक्षुब्ध था।

जिस व्यक्ति की प्राणदण्ड की आज्ञा ऊँची से ऊँची अदालत में अपील करने पर भी बहाल रह जाती है वह उस क्षण की व्याकुल भाव से प्रतीक्षा करता रहता है जब फाँसी के तख्ते पर चढ़ाकर वह अपना पाप स्वीकार करने के लिए यमराज के पास भेज दिया जाता है। जब तक वह अवसर नहीं आ जाता तब तक उसे शान्ति नहीं मिलती। अरुण की भी ठीक वैसी ही अवस्था हो गई थी। पिता ने जो अप्रिय कार्य करने का निश्चय कर लिया था उसे किये बिना वे किसी प्रकार भी नहीं रह सकते थे। इससे वह सोच रहा था कि यह कार्य जितनी भी जल्दी हो जाय उतना ही अच्छा है। इससे वह बहुत ही अधीर हो उठा था, उसके मन को ज़रा भी शान्ति नहीं थी।

अरुण उस समय बहुत दुखी था उसके अन्तःकरण में निराशा का काला अन्धकार फैला हुआ था। साँझ को उसके हृदय की कालिमा के सर्वथा अनुरूप ही बड़े काले मेघ उत्तर-पश्चिम के आकाश पर चढ़ आये। जल से भरे हुए वे मेघ इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे, मानो प्रकृति के घने और भौंरे के समान काले बाल हैं जिन्हें उसने खोलकर फैला रक्खा है। उनके ऊपर चमकती हुई बिजली ऐसी निकल गई, मानो किसी न[illegible] बालों को सोने की कंघी से सँभालने का उद्योग किया हो।

गर्मी के दिनों में जो ज़ोर की आँधी आती है वह कैसा विकराल रूप धारण करती है, किस किस तरह अनर्थ करती है! परन्तु मनुष्य के छोटे से हृदय में हर एक वस्तु का ज्ञान रखनेवाला जो मन होता है, यदि उसमें कहीं तूफ़ान आ गया तो वह कम विकरालता नहीं दिखलाता। वह तो और भी अधिक तेज़ और अधिक भयङ्कर होता है।

घर में जितने भी लोग थे, उन सबकी सतर्क दृष्टि बचाकर सुधांशु बहुत-से कदम के फूल चुन लाया। उन सबको एक पतली सी सींक में लगा लगाकर वह रथ बना रहा था, बीच बीच में मस्तक उठा-उठाकर एक एक कड़ी वह गीत भी गाता जाता था। इतने में उतावली के साथ चलते हुए अरुण की चट्टी की खटखटाहट उसके कान में पड़ी। सुधांशु ने तुरन्त ही गाना बन्द कर दिया। मुँह ऊपर किये हुए वह चुपचाप ताकने लगा।

वहाँ भी तरुण और सुन्दर मस्तक पर श्रावण का ही एक मेघ ज़ोरों से छाया हुआ था। अरुण ने कोमल स्वर से कहा—सुधांशु, जा न भाई। ज़रा नानी जी से कह आ कि मैं आज ही घर जाऊँगा।

अरुण की इस बात से सुधांशु को बड़ा विस्मय हुआ। जिज्ञासाभरी दृष्टि से उसके मुँह की ओर ताकते हुए सुधांशु ने कहा—आज?

"हाँ, आज ही। तू जा न। ज़रा झट से नानी जी से कह न आ।"

इतने पर भी सुधांशु को विश्वास न हुआ। उसने कहा—पानी जो आ रहा है। जाइएगा कैसे?

कुछ रोष का भाव प्रदर्शित करते हुए अरुण ने कहा—मैं कैसे भी जाऊँगा। तू कह तो आ।

सुधांशु उदास होकर चला गया। उससे ज़रा ही देर के बाद तेज़ी से पैर बढ़ाता हुआ हीरक आया। उसने कहा—यह क्या बात है? आज ही तुम तैयार हो गये? ऐसी कौन-सी जल्दी पड़ी है?

"बात कोई वैसी नहीं है। परन्तु पिता जी ने जल्दी ही लौटने को लिखा है। इससे—"

"तो लौटने के लिए क्या और कोई दिन ही नहीं है? इस तरह के पानी में भी भला कोई घर से बाहर निकलता है?"

अरुण ने दृढ़ स्वर से कहा—बरसने दो पानी, मैं तो आज ही जाऊँगा। गाड़ी में बैठ गया तब फिर पानी-पत्थर मेरा क्या करेगा?

अरुण की बात को उपेक्षा से उड़ा देने के विचार से हीरक ने कहा—पागल तो नहीं हो गये हो? आज का दिन कहीं घर से निकलने लायक़ है?

"निकलने लायक़ क्यों नहीं है? देखना, मैं जाता हूँ या नहीं।"

हीरक हार मानकर दादी के पीछे पड़ा। दादी ने ज़रा-सा मुँह फुलाये हुए कहा—जो बात नहीं मानता उससे आग्रह करने या उसे पकड़ने से क्या लाभ है? उन लोगों के मन में जो आवे, उन्हें करने दो।

अरुण के मामा ने भी यही बात कही। परन्तु उनके कहने का ढंग कुछ और था। मन ही मन वे भी काफ़ी क्षुब्ध हो उठे थे।

हीरक ने फिर बहुत ही अनुनय करके कहा—आज के दिन और रह जाओ अरुण! ऐसे पानी में न जाओगे तो क्या होगा? केवल रात भर रह जाओ। तुम्हारा कौन-सा ऐसा ज़रूरी काम आ गया है कि रात ही भर में चौपट हो जायगा।

अरुण ने हँसते हुए कहा—हमारे न रहने से तुम्हारी ही कौन ऐसी हानि हो जायगी जो इतना रोक रहे हो।

"हानि कोई नहीं है। परन्तु ऐसे दिन में—"

"इस तरह का दिन है, इसी से तो और भी जाने को जी हो रहा है।"

हीरक क्रोध में आकर चुप हो गया। उसके आग्रह की ओर ध्यान न देकर अरुण उसी दिन कटक से चल पड़ा। परन्तु वहाँ से चला वह अत्यधिक क्षोभ और मनोव्यथा लेकर। उसके इस सारे क्षोभ का कारण था पिता का अप्रत्याशित निश्चय। उसके पिता भी इतने उग्र और गम्भीर प्रकृति के थे कि उनके सामने अपना असन्तोष प्रकट करना उसके लिए ज़रा भी सम्भव नहीं था। अरुण को मालूम था कि उसका यह असन्तोष हृदय में काँटे की तरह चुभता हुआ केवल क्लेश ही देता रहेगा, इससे उसे कोई लाभ न होगा। यह जानते हुए भी वह अपने आपको इस दुर्बलता से बचा न सका।

अरुण के मन में एकाएक आया कि उसने तो कोई अपराध किया नहीं है। फिर पिता जी ने साहब लोगों की तरह देख-सुनकर विवाह करने की बात क्यों छेड़ी? युवा अवस्था की कल्पना थी। युक्ति-तर्क को उसमें स्थान नहीं था। उसका आधार केवल भावुकता ... जिसके कारण अरुण के मन में क्रोध का सञ्चार हो ... था। उग्र विद्रोह के पथ पर ही वह नाच रहा ... स्नेह की स्निग्ध छाया उसे कहीं दिखाई न प... विश्वव्यापी मरु के समान एक शुष्कता, एक र... उसके नेत्रों के सामने मानो मूर्तिमान् होकर उदित ... आई।

चलती हुई ट्रेन के गर्भ में बैठे बैठे बाहर के ... झंझावात का ताण्डव-नृत्य देख देखकर अरुण यह अनु... कर रहा था, मानो यह मेरे ही अन्तःकरण का ... चलता-फिरता प्रतिरूप है, जो विभिन्न दिशाओं में ... खाता हुआ घूम रहा है।

(४)

एक बड़ा-सा टेबिल था। उस टेबिल पर ढेर के ... काग़ज़-पत्र लदे हुए थे। एक बग़ल कुर्सी पर ज़मीं... जगत बाबू बैठे हुए थे। टेबिल पर चींटे की तरह ... रजिस्टर और काग़ज़-पत्र जमा थे उन्हीं पर मस्तक ... हुए वे अपनी क़लम चला रहे थे। पास ही एक मुह... खड़ा था। वह एक के बाद एक काग़ज़ उनके ... करता जाता था। ठीक सामने की खुली हुई खिड़... ज़मींदार साहब की गोरी गोरी सुन्दर खोपड़ी दि... पड़ रही थी। उस पर जितने बाल थे वे सब झड़ ग...

जितने भी नौकर-चाकर थे, सभी भयभीत होकर ... अपने काम में लगे थे। डर के मारे कोई खिड़की के ... तक जाने का साहस नहीं करता था। जगत बाबू ... ही गम्भीर पुरुष थे। वे कभी अधिक बक-झक नहीं ... थे, परन्तु मुँह से एक बार भी जिससे जो काम कर... कह देते उसके सम्बन्ध में ज़रा भी किन्तु-परन्तु कर... साहस कर सके, इस तरह का कोई आदमी घर ... नहीं था। इतनी दृढ़ता रहा करती थी उनक... में। अवस्था काफ़ी न होने पर भी जगत बाबू में ... वस्था के लक्षण आ गये थे अवश्य, परन्तु मुख ... तेजस्वितापूर्ण दृढ़ता थी उसमें ज़रा भी व्यतिक्र... हुआ था।

जगत बाबू का आफ़िस का जो कमरा था उस... से लेकर फाटक तक एक सड़क बनी हुई थी। उस... पर लाल रङ्ग के कंकड़ बिछे थे। उनके कारण ...

...ह सड़क ऐसी जान पड़ती थी, मानो लाल किनारे की ...ड़ी का चौड़ा किनारा हो। सड़क के दोनों बग़ल ...र्धचन्द्र के आकार का बग़ीचा था। अगणित देशी और ...देशी फूलों से वह भरा था। हरे रङ्ग के ग़लीचे की ...रह की नरम घास पर घर के पुराने बूढ़े माली का ...ड़का उस समय घास काटने की मशीन ठेलता हुआ घूम ...रहा था। माली हाथ में बड़ी-सी कैंची लिये हुए मेहँदी ...के पेड़ों के सिरों को काट काट कर बराबर कर रहा था। ...बग़ीचे के बहुत-से पेड़ों में छोटे छोटे नीले रङ्ग के खिले ...हुए फूलों के गुच्छे लटक रहे थे।

अरुण ने अपने आने की सूचना नहीं दी थी। स्टेशन से ...वह पैदल ही चला आ रहा था। मुँह उसका बिलकुल ...सूखा हुआ था। उसे इस प्रकार आते देखकर सब लोग ...चकित हो गये।

मोटर-ड्राइवर सतीश उस समय फ़ुरसत में था। ...वह बग़ीचे के ही एक कोने में बैठा हुआ निश्चिन्त मन ...से बह सिगरेट पी रहा था। अधजला सिगरेट पेड़ ...के तने में घिसकर उसने बुझा दिया और उसे दूर फेंक- ...कर सोचने का प्रयत्न करने लगा कि मुझसे किसी ने ...गाड़ी स्टेशन ले जाने को कहा था या नहीं। नहीं तो, ...किसी ने तो कुछ कहा नहीं, इससे वह निर्दोष है, डरने ...की कोई बात नहीं है।

आफ़िसवाले कमरे के बरामदे में बैठे बैठे अर्दली ...और सिपाही आदि चुपके चुपके बातें कर रहे थे। एका- ...एक अरुण को देखते ही वे सब सम्मानपूर्वक उठकर खड़े ...हो गये।

अरुण सीधे पिता के पास गया और उन्हें प्रणाम ...किया। क्षण भर के लिए उन्होंने काग़ज़ों के ऊपर से ...मुँह उठाया। पुत्र के सूखे हुए मुँह की ओर विस्मित ...भाव से देखते हुए उन्होंने कहा—पैदल ही चले आ ...रहे हो?

अरुण ने चुपचाप मस्तक हिलाते हुए सूचित किया—हाँ।

पिता ने कहा—पहले से सूचना दे देनी चाहिए थी। ...मोटर स्टेशन पर चली जाती।

अरुण मस्तक झुकाये हुए चुपचाप खड़ा रहा। पिता ...ने पूछा—वहाँ का सब समाचार ठीक है न?

"सब अच्छा है।"

जगत बाबू ने क़लम उठाई और वे फिर काग़ज़ पर झुक पड़े। अरुण जाकर धीरे धीरे घर के भीतर घुसा।

डेढ़ वर्ष पहले अरुण की छोटी बहन कमला का विवाह हुआ था। तीन मास हुए, मा को रुलाकर उसने सदा के लिए विदा ले ली। जाते समय वह एक नवजात पुत्र छोड़ गई थी।

कमला सबसे छोटी थी। उसके बाद उसकी माता को कोई और सन्तान नहीं हुई। इसके सिवा माता-पिता की वही एकमात्र कन्या थी। इस कारण उसके शोक से माता मेनका बहुत ही अधीर हो उठी थीं। मा की गोद से बिछुड़े हुए बच्चे को वे छोड़ नहीं सकीं। कमला की स्मृति का चिह्न होने के कारण आज वह उनके समस्त हृदय पर अधिकार किये हुए था। एक आँख का जल पोंछकर और एक आँख से रोती हुई वे उस शिशु का पालन कर रही थीं।

इस अवस्था में मा को खोकर जो भाग्यहीन जीवित रहता है वह केवल मा को ही नहीं खो बैठता, मा के साथ ही साथ उसे बाप को भी खो बैठना पड़ता है। बीस वर्ष की अवस्था में जिसका पत्नी-वियोग हुआ है उसे दूसरी पत्नी प्राप्त करने में डेढ़ मास से अधिक विलम्ब नहीं लगा। इससे उसे इस बात का ध्यान तक नहीं रह गया कि मेरी एक पत्नी की मृत्यु हो चुकी है। अपनी नूतन प्रियतमा के समीप पुरातन की स्मृति ही वह नहीं जागृत होने देना चाहता था। ऐसी दशा में लड़के की भी बहुत कम खोज-ख़बर लेना उसके लिए स्वाभाविक ही था।

बहन की इस अकाल मृत्यु के बाद मा से अरुण की यह पहली मुलाक़ात थी। इसी लिए मा के पास जाकर खड़े होने में उसे न जाने कैसा क्लेश हो रहा था। वह जानता था कि एक-मात्र कन्या कमला माता के हृदय को कितनी प्रिय थी।

बच्चे को पालने पर लिटाकर मेनका नौकर को बाज़ार करने के लिए भेजने जा रही थीं। इतने में उन्हें सूचना मिली कि अरुण आया है। पैसे गिनना बन्द करके उन्होंने कहा—अरुण आ गया? कहाँ है? कोई ख़बर तो उसने दी नहीं थी।

मा की यह बात समाप्त भी न हो पाई थी कि

अरुण ने आकर चरणों में प्रणाम किया। पुत्र को देखते ही उनका शोक उमड़ा आ रहा था; किन्तु लड़के का सूखा हुआ मुख, मुर्झाया हुआ चेहरा देखकर वे मुँह से कोई बात न निकाल सकीं। मन की बात मन में ही दबाकर वे रह गईं। एक बहुत गहरी आह भरकर उन्होंने कहा—अरुण, शायद तेरा शरीर अच्छा नहीं है?

पालने पर लेटे हुए बच्चे की ओर ताकते हुए अरुण ने कहा—नहीं मा, अच्छी तरह तो हूँ।

मा ने कहा—हाँ, बहुत अच्छी तरह हो! तुम्हारा चेहरा ही गवाही दे रहा है कि तुम कितनी अच्छी तरह हो। कटक गये थे न?

"गया था। वहीं से तो आ रहा हूँ।"

"कनक का विवाह हो गया न? कैसी है बहू?"

"कैसी क्या है? अच्छी ही है।"

"तो भी? रंग कैसा है? हीरू की बहू की तरह का है न?

अरुण ने कहा—मुझे यह सब कुछ नहीं मालूम है। मैं तो केवल इतना जानता हूँ कि बहू अच्छी मिली है। किसका-सा रंग है, किसकी-सी आँखें है, किसका-सा गठन है, यह सब तो मैं लिखकर लाया नहीं हूँ।

मेनका ने अरुण से कहा—अच्छा, तुम जाओ, हाथ-पैर धो आओ। यह कहकर वे उसके भोजन की व्यवस्था करने लगीं।

तीन-चार दिनों के बाद एक दिन जगत बाबू ने अरुण को बुलवाया। उन्होंने अपनी स्वभाव-सुलभ संक्षिप्त भाषा में उसे सूचित किया कि तुम्हारा विवाह पक्का होगया है। वे लोग आशीर्वाद देने के लिए आवेंगे। इससे तुम्हें घर पर ही रहना चाहिए और तैयार रहना चाहिए।

जिस अरुण ने पिता के सामने मस्तक उठाकर कभी मुँह से कोई बात नहीं निकाली थी, जीवन में कभी पिता की बात का प्रतिवाद नहीं किया था, उसी अरुण ने बहुत ही संयत कण्ठ से सूचित किया कि मैं विवाह करूँगा, किन्तु स्वेच्छा से नहीं, केवल पिता की आज्ञा से। उसने यह भी कह दिया कि इस विवाह के सम्बन्ध में किसी प्रकार के कर्त्तव्य का बन्धन मेरे ऊपर कभी न रहेगा।

अरुण की यह बात पिता को अपने निश्चय से वि[चलित] करने में समर्थ नहीं हो सकी।

कन्या-पक्षवालों के कानों तक वर महोदय की यह बात पहुँच पाई या नहीं, इसका पता नहीं [चल] सका। किन्तु इस घर में शीघ्र ही होनेवाले शु[भ] कार्य की तैयारियाँ ज़ोरों के साथ होने लगीं। [इस] धूम-धाम ने मेनका के शोक से आहत हृदय को [भी] मानो पूर्णरूप से आरोग्य कर दिया।

घर में काम-काज की काफ़ी भीड़ थी। ज़रा [सा] साँस लेने भर को भी अवकाश नहीं मिलता था, तो भी मेनका को एक दिन कुछ अवसर मिल [ही] गया। पुत्र की ओर दृष्टिपात करते ही उन्हें कु[छ] सन्देह-सा हुआ कि लड़के के चित्त में स्फूर्ति [क्यों] नहीं है, वह इस तरह निरुत्साह क्यों है?

मेनका जो काम करने जा रही थी उसे उन्[होंने] वहीं छोड़ दिया और अरुण के पास जाकर बैठ गईं। अरुण उस समय एक किताब लिये हुए लेटे-लेटे [पढ़] रहा था। मा को देखते ही वह उठकर बैठ गया और बोला—क्या है मा?

"कोई वैसी बात नहीं है बेटा!"

"कोई न कोई बात तो अवश्य है। बतला[ओ] न। क्या बात है?"

"अच्छा अरुण, आज का दिन बीतते ही [कल] तेरा विवाह होगा और तू इस तरह मन मारे [हुए] रहता है। इसका क्या कारण है, ज़रा बतला [तो] तुझे हुआ क्या है?

ज़रा देर तक मौन रहने के बाद अरुण ने [कहा] तो क्या विवाह का समय आते ही घूम घूम[कर] नाचना पड़ता है? इस तरह की बात तो मैंने सुनी नहीं। इसके सिवा यदि ख़ुशी के मारे [गली] गली नाचते भी फिरें तो जो देखेगा वही [पागल] कहेगा।

"ज़रा इस पागल लड़के की बातें तो सुनो! बेटा! तू प्रसन्नता प्रकट करेगा, हँसेगा, खेलेगा, त[भी तो] विवाह का सुख है।"

सुधा-वितरण

"परन्तु यह सब कहाँ हो रहा है ? मेरी प्रसन्नता या अप्रसन्नता का किसी के कुछ ध्यान भी है ?"

"किन्तु यदि घर में कोई और नहीं आयेगा तो मैं अकेली किस तरह रह सकूँगी बेटा, ज़रा यह तो सोचो ! इतने दिनों तक मेरी कमल...

मा फफक-फफक कर रोने लगी। बेटा अनिमेष दृष्टि से ऊपर की ओर ताकता हुआ कड़ी-बरँगे गिनता रहा। मुहूर्त भर तक किसी ने कुछ नहीं कहा। शङ्कित माता का हृदय सन्तान के अमङ्गल की आशङ्का से बहुत अधीर हो उठा। परन्तु अब तो प्रतीकार का समय रहा नहीं। कोई उपाय भी नहीं रह गया। मा ने मन ही मन सोचा—मालिक ! यह क्या कर बैठे ?

विवाह से एक दिन पहले हीरक भी आ पहुँचा। भीड़-भाड़ चाहे कितनी भी कम की जाय, ये दोनों भाई तो किसी प्रकार छूट नहीं सकते थे।

मेनका इधर कई दिनों से सब देवी-देवताओं की तरह तरह की मनौतियाँ करती आ रही थीं कि अरुण का चित्त प्रसन्न हो, वह खुश हो जाय। परन्तु अरुण के भावों में कोई वैसा परिवर्तन नहीं दिखाई पड़ा।

बारात चलने का समय जब आया और मित्र और सम्बन्धी लोग उसे सजाकर अधिक से अधिक आकर्षक बनाने का उद्योग करने लगे, केवल उसी समय वह तर्क-वितर्क करने बैठा। जितनी भी बातें उसके मुँह से निकलतीं, सभी बहुत कठोर व्यंग्य से भरी होतीं। परन्तु बातें कर रहा था वह खूब हँस हँसकर।

मेनका ने कई लरों का बड़ी बड़ी मोतियों का एक हार लाकर अरुण के गले में पहना दिया और वे चली गईं। यही हार पहनकर अरुण के पिता-पितामह भी विवाह करने गये थे। मा जब चली गई तब अरुण ने हँसकर कहा—यह क्या पहना गई हैं ?

हीरक ने कहा—पहने रहो, यह एक अलङ्कार है। "क्या निकल कर रक्खा है इन्होंने। इसकी क्या ज़रूरत थी ?"

"नहीं इसका पहने रहना ज़रूरी है। कोई भी अलङ्कार न पहने रहोगे तो क्या सोचेंगे वे लोग ?"

"वे लोग ? वे लोग तो इसे खूब पहचान पावेंगे। कि ये क्या चीज़ें हैं।"

"सोचेंगे क्या ? क्या समझेंगे कि ये क्या हैं।"

"आहा ! ये छोटे छोटे फल हैं, ये घुँघची हैं ! सोचेंगे कि शायद घुँघची की माला पहन कर आया है यह।"

"यह भी कैसी बात आई है तुम्हारे दिमाग़ में पागल कहीं का।"

हीरक और कनक हँस पड़े। इस तरह उमङ्ग में आ आकर लड़के जो मनोरञ्जक बातें करते करते हँस रहे थे, बग़ल के कमरे में बैठी हुई मेनका वह सब सुन रही थीं। इससे उन्हें बहुत सान्त्वना मिल रही थी। सोचती थीं, सम्भव है, हँसी की तरङ्ग से, आनन्द की हवा से अरुण के हृदय में जो मेघ छाया हुआ है, वह कट जाय और उसका हृदय फिर 'निर्मल' हो जाय।

घर से बारात के चलते समय अरुण ने किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की। दूसरे लोगों की तरह वह भी माता का आशीर्वाद मस्तक पर धारण करके छोटे भाई शुभेन्दु का हाथ पकड़े हुए जाकर गाड़ी में बैठ गया। अरुण की दूर के रिश्ते की एक दादी थीं। उन्होंने उसे इस प्रकार जाते हुए देखकर कहा—बाप रे ! वह चिन्ता के ही मारे मरी जा रही थीं। इधर लड़के के तो ज़रा भी देरी सह्य नहीं हो रही है। वह सब आजकल के लड़कों का ढङ्ग है। परन्तु इसके लिए भी लोग चिन्ता करने बैठ जाते हैं।

मेनका के जो इतनी चिन्ता हो उठी थी उसका एकमात्र कारण यह था कि वे पुत्र का मन कभी प्रसन्न नहीं देखती थीं, उसमें किसी प्रकार की स्फूर्ति या उत्साह का भाव नहीं दिखाई पड़ रहा था। इसके सिवा लड़के के मन की और कोई बात ही वे नहीं जानती थीं। परन्तु उनके लड़के के हृदय में जो ज्वाला धधक रही थी उसका परिचय जिन लोगों के उनकी अपेक्षा अधिक था वे लोग भी इस कार्य में खूब उत्साह के साथ ही योगदान कर रहे थे। वे लोग यह नहीं समझते थे कि अरुण के हृदय की अशान्ति ऐसी की ऐसी ही बनी रहेगी। उनकी धारणा थी कि जो एक अनजान तरुणी नारी पदार्पण करनेवाली है उसके स्निग्ध कोमल मुख के प्रभाव से उसके मन की यह सारी अशान्ति निस्सन्देह ही दूर हो जायगी। विवाह हो जाने के बाद जब गृहस्थी आरम्भ हो जाती है तब फिर कौन बीती हुई बातों को हृदय में स्थान देना चाहता है या दे सकता है। [क्रमशः

आचार्य द्विवेदी के पत्र

स्वर्गीय पण्डित पद्मसिंह शर्मा के नाम

(१)

कानपुर
१८-१०-०५

प्रिय पण्डित जी

कृपा-पत्र आया। यह रसीद, पारसल में (१) तरुणोपदेश, (२) सोहागरात, (३) शिक्षा-सरोज ६ भाग, (४) देशोपालम्भ (कविता) हैं, पहुँच लिखिए। (१) का जीर्णोद्धार करके (२) के साथ पढ़ चुकने पर वापिस कीजिएगा, (३) आपके लिए है।

कहीं कहीं एक आध किताब में हमने पेन्सिल से संशोधन किये हैं, वे मिट सकते हैं, रीडर्स हमारे पास और नहीं, सिर्फ़ वही जोड़ा है, जो हमने आपको भेजा है।

हमारे जीवन-चरित में क्या रक्खा है? आपको जो हमारा चरित्र (!) बहुत ही पसन्द हो तो आप ही लिखिएगा। इस संसार में हमारे आगे पीछे कोई नहीं है। वसीयतनामा लिखकर राही मुल्क़ दक्षा होने के लिए तैयार बैठे हैं, अपने चरित के नोट्स लिखने को हमें फ़ुरसत नहीं है।

ठाकुर शिवरत्नसिंह का समाचार सुनकर बड़ा आनन्द हुआ। ऐसे स्वाधीनचेता, विद्या-व्यसनी और देशभक्त सज्जनों को ईश्वर चिरायु करें।

देशोपालम्भ सिर्फ़ आपके देखने के लिए है प्रकाश के लिए नहीं।

श्रीमदीय
महावीरप्रसाद

पुनश्च—

माफ़ कीजिए हमने इस टुकड़े ही पर आपको यह पत्र लिख दिया।

म० प्र०

(२)

कानपुर
११-१२-०

बहुविधा प्रणामानन्तर निवेदन—

७ तारीख का कृपापत्र मिला।

पहले पत्र का उत्तर जालन्धर गया है, न मिला हो मँगा लीजिएगा। पुस्तकें मिलीं, टोपी भी, 'मेनी थैंक्स'।

गुप्ता जी की बाबत हम पहले पत्र में आपको लि चुके हैं।

हम इनके मसखरेपन और कुटिल कटाक्षों की ओ दृक्पात नहीं करते आये।

पर कई आदमियों की राय है कि व्याकरण का वि महत्त्व का है।

इसमे इस दफ़ा जवाब देना चाहिए।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

(३)

जूही, कानपु
११-१-०६

प्रणाम !

कृपा-पत्र मिला। हमने तो लाला मुंशीराम को लि था कि क्यों आपने हमारे पत्रों का जवाब नहीं दिया, अब आप कहाँ हैं? एक कार्ड हमने जालन्धर को नाम भेजा है, उसे मँगा लीजिए, और उसी को प्रयाग कर हमारी दोनों रीडर्स इण्डियन प्रेस से मँगा लीजि उन्होंने कृपा करके अपनी प्रतियों में से दो प्रतियाँ देने का वादा किया है! हमने कोई २०-२५ पृ वेंकटेश्वर और भारतमित्र के (दो अङ्कों के) का उत्तर लिखा था, पर प्रयाग में इस विषय का जो विचार हुआ उसमें यह स्थिर हुआ कि मूर्खों की बात का उत्तर न दिया जाय।

हमने दो-एक व्यङ्गचपूर्ण और हास्यरसानुयायी गद्यपद्यमय लेख लिखे हैं, उनका सम्बन्ध ऐसे लोगों की समालोचनाओं से है जो कुछ नहीं जानते पर सब कुछ जानने का दावा करते हैं। अगर सलाह हुई तो उनको शायद हम क्रम क्रम से प्रकाशित कर दें। भाषा और व्याकरण पर एक और लेख लिखने का हमारा इरादा है। उसमें भी हम हरिश्चन्द्र की त्रुटियाँ दिखलायेंगे, और अच्छी तरह दिखलावेंगे। काशी के कई पण्डितों ने अनस्थिरता को साधु बतलाया। संस्कृतपत्रिका के सम्पादक अप्पा शास्त्री विद्यावागीश ने तो कई तरह से उसकी साधुता साबित की।

आप कब तक जालन्धर वापस जाइएगा। आपने जो वन्दे मातरम्‌वाले श्लोक भिजवाये थे, उनका निर्णय हमने लिख भेजा था, आप हमारा सीमा से अधिक गौरव करते हैं। हम आपके सामने ऐसे मामलों में कोई चीज़ नहीं। हमारा निर्णय पसन्द आया या नहीं।

श्रीमदीय
महावीरप्रसाद

(४)

कानपुर
२२-१-०६

प्रणाम !

२० ता० का कृपा-पत्र मिला। भाषा और व्याकरण पर एक और लेख लिखा है—उसमें कुछ आक्षेपों का जवाब भी है, यहाँ सब लोगों की सलाह हुई तो छपैगा।

वन्दे मातरम्‌वाले श्लोक हमने कांगड़ी हरिद्वार भेजे हैं, ला० मुंशीराम के पास—उन्हीं ने हमको भेजा था, उसे हमारा फ़ैसिला भी उन्हीं के पास गया।

ठाकुर साहब की पुस्तकें अभी रक्खी हैं, शिक्षा हमें ठीक पसन्द है। पहले उसी के लिखने का विचार है। यह सुनकर बड़ी ख़ुशी हुई कि आपको नौकरी की विशेष चिन्ता नहीं। फिर क्या ज़रूरत जालन्धर जाने की? इस समय समालोचनाओं की ज्वाला जल रही है, कुछ दिन [illegible]लय की पुस्तकों की बात नई न कीजिए—आप चाहें तो कुछ तब तक लिख रक्खें, मगर, हमसे अभी कुछ न लिखाइए, नहीं तो प्रलय हो जाने का डर है, आपको नूह बनना पड़ेगा।

भवदीय
महावीर

(५)

कानपुर
२-२-०६

प्रणाम,

३० का पत्र मिला—आपने जो अनुमान किया ठीक है—नलदम्भ के बारे में लिखना ज़रूर चाहिए था, न लिखना हमारी भूल है, ख़ैर अब लिख देंगे, पाञ्चाल के सम्बन्ध के लेख हमें पढ़ने हैं। फ़ुरसत मिले तो इकट्ठे करके पढ़ें—बहुत करके आप ही का अनुमान ठीक होगा। इँगलेंड और अमेरिका से हमारे पास दो एक ऐसी सामयिक पुस्तकें आती हैं, जिनमें ऐसी ऐसी अद्‌भुत अद्‌भुत बातें रहती हैं सच है या झूठ राम जाने रीडर्स पहुँच जायें तब लिखिएगा—और सब कुशल है. बंगवासी में किसी ने "आत्माराम की टें टें" लिखना शुरू किया है।

भवदीय
म० प्र०

(६)

फ़तेहपुर
४-६-०६

प्रियवर,

कृपा-पत्र मिला। दो चार दिन के लिए यहाँ हम कृत्रिम हीरावालों से मिलने आये हैं, आपकी राय हमने उनको सुनाकर ख़ुश किया और, और ऐसे ही लेख लिखने के लिए उत्तेजित भी किया।

चाँदनी का पता ठिकाना मालूम नहीं, बिना पता के वह लेख हमारे पास आया था, लिखना तो पुरुष का ऐसा मालूम होता था, पर सम्भव है वह स्त्री ही का हो।

नाथूराम जी की कविता को कई सज्जनों ने तारीफ़ की है, वे सचमुच सुकवि हैं, हमने उनसे और भी कविता भेजने के लिए प्रार्थना की है। आपका साधुवाद भी हम उन्हें भेजते हैं। हाँ, ये वही "शङ्करसरोज" वाले हैं बड़े सज्जन जान पड़ते हैं।

हिन्दी-ग्रन्थ-माला का पहला अङ्क निकल गया, शिक्षा का अनुवाद शुरू क्या आधा हो गया। देखने पर आपको मालूम होगा कि उसका ढङ्ग कैसा है, उर्दूवाले से अच्छा नहीं तो बुरा भी न होगा। शिक्षा का संस्कृत-अनुवाद मैसूर में किसी ने किया है पर अधिक पता नहीं चला। मैसूर प्रेसवाले ने लिख भेजा, कोई कापी शेष नहीं।

श्रीहर्ष, मोमिन और ग़ालिब के एकार्थबोधक पद्य जरूर देंगे, दया करके हमारे लिए एक छोटा सा नोट भेज दीजिए और उसी में इन तीनों पद्यों का तारतम्य दिखला दीजिए, इतना काम हमारे लिए नहीं तो "सरस्वती" के लिए कीजिए, हमको बड़ा काम है।

लाला देवराज के सिवा और लोगों ने भी "सरस्वती" को लूटना शुरू किया है। बम्बई के कई गुजराती अखबार उसके लेख गड़प कर रहे हैं। पटने के विद्या-विनोद ने भी कृपा की है।

भवदीय—
महावीर

(७)

कानपुर
१७-६-०६

प्रिय पण्डित जी प्रणाम,

कृपा-पत्र मिला, पं० भीमसेन जी के श्लोक हम सरस्वती में धन्यवादपूर्वक प्रकाशित करेंगे, द्रारिद्रय के विषय में चारुदत्त और मोमिन की उक्ति खूब मिलती है।

वह नोट हमने लिख लिया है, आप कष्ट न उठाइएगा।

"नोट के लिए अभी कुछ उपयुक्त सूझा नहीं क्या लिखूं"

वाह क्या आप भी बहानेबाजी करने लगे? साफ़ इनकार लिखा कीजिए।

दो-चार दिन में एक महीने के लिए अपने गाँव जाने का इरादा है।

आम की फ़सल आगई—

भवदीय
महावीरप्रसाद

(८)

दौलतपुर
२६-७-०६

नमोनमः,

काव्यमाला के १३ वें गुच्छक के ८ वें पृष्ठ पर रामभद्र दीक्षितकृत "वर्णमालास्तोत्र" का यह श्लोक पढ़िए :—

"सर्गस्थितिप्रलयकर्म्मसु चोदयित्रि,
माया गुणत्रयमयी जगतो भवन्तम्।
ब्रह्मेति विष्णुरिति रुद्र इति वृथा ते,
नाम प्रभो दिशति चित्रमजन्मनोऽपि॥

इसमें "वृथा" शब्द का "वृ" संयुक्त अक्षर क्यों माना गया है, क्या "ऋ" व्यञ्जन भी कभी माना जाता है, अथवा वृथा क्या कभी व्रथा भी लिखा जाता है।

इस विषय में एक महाराष्ट्र पण्डित से हमसे विवाद हो चुका है।

क्या आपने "समयमातृका" और "कुट्टिनीमत" काव्य देखे हैं?

भवदीय—
म० प्र०

(९)

दौलतपुर
२६-७-०६

प्रिय पण्डित जी,

१९ ता० का कृपाकार्ड मिला, सरस्वती को लोग बीच ही में रोक लेते हैं, प्रेसवालों का अपराध नहीं, जून की एक संख्या हमारे पास थी, उसे आज आपको भेजते हैं।

'आर्य मुसाफ़िर' को धन्यवाद—उस अङ्क की कोई कापी आपके पास फ़ालतू हो तो भेज दीजिए, "कुचकला" को आपने पसन्द किया है तो किसी समय प्रकाशित करना ही होगा। ५-७ दिन में कानपुर लौटने का इरादा है।

भवदीय
महावीरप्रसाद

(१०)

कानपुर
११-८-०६

प्रणाम,

७ ता० के कृपा-पत्र के लिए धन्यवाद। "आर्य मुसाफ़िर" की कापियाँ मिलीं, पढ़ लीं, वापस भी आज करते हैं, पहुँच लिखिएगा।

आपकी कला की बीमारी का वृत्त सुनकर रंज हुआ, ईश्वर शीघ्र ही उसे अच्छा करे।

सरस्वती की कापी लौटाने की ज़रूरत नहीं, इस देश में कोई बात प्रचलित हो जाने से उसका छूटना कठिन हो जाता है—चाहे कितना ही प्रयोगाभाव क्यों न हो—"हिन्दू" शब्द लोगों के हाड़-मांस में प्रविष्ट हो गया है, अतएव जब तक सब लोग आर्यसमाज के ऐसे विचारों के न हो जायँगे इसका प्रयोग बन्द न होगा। शब्दों के अर्थ हमेशा बदला करते हैं। बुरे का भला और भले का बुरा हो जाया करता है। "आर्य" शब्द के विषय में भी एक लेख देना है।

परलोक के पत्र मन-गढ़न्त मालूम होते हैं। कहिए ऐसी बातें न लिखा करें। पर लोग पढ़ते बड़े भाव से हैं। "दो कदीम शहर" अँगरेज़ी Archæological Reports की बदौलत है।

खजुराहो, देवगढ़ की पुरानी इमारतें, मथुरा का कंकाली टीला आदि इस तरह के कई लेख तैयार हैं, पर नीरस होने के कारण देने को जी नहीं चाहता।

शेक्सपियर के कई नाटकों की आख्यायिकायें निकल चुकी हैं। "और भी निकालेंगे" की सूचना के लिए धन्यवाद।

संस्कृत में "पवनदूत" है, पर यह उसकी नक़ल नहीं, संस्कृतवाले को पढ़े हमें थोड़े ही दिन हुए।

पं० भीमसेन जी के खिचड़ी पद्य छापेंगे, तब तक उन्हें धन्यवाद दीजिए, जयपुर के पं० रामकृष्ण ने ऐसे अनेक श्लोक "जयपुरविलास" में लिखे हैं। पंडित जी का योगदर्शन आया है, उत्तम है, लाहौर के एक पण्डित की भूमिका में अच्छी ख़बर ली है।

भवदीय
म० प्र०

(११)

कानपुर
२१-८-०६

प्रणाम!

आपकी कला की मृत्युवार्ता सुनकर रंज हुआ, बच्चों को इस तरह के चिर वियोग से तो शायद न होना ही अच्छा पर क्या किया जाय, शोक चाहे कितना ही क्यों न हो धैर्य ही धरना पड़ता है।

आज्ञानुसार योगदर्शन की आलोचना करेंगे।

विनयावनतः—
महावीर

(१२)

कानपुर
५-९-०६

श्री पंडितवर,

२ ता० का कृपापत्र मिला, यह हम देख रहे हैं कि यदि 'सरस्वती' में स्थान मिले तो धीरे धीरे विक्रमाङ्क-चर्चा छाप दें, और साथ ही कुछ कापियाँ उसकी अलग भी कर लें, यदि यह न हो सका तो इंडियन प्रेस से हम कहेंगे कि वह अलग ही छाप दी जाय, कालिदासविषयक हमारे पास कुछ सामग्री इकट्ठी है, कुछ और हो जाय तो एक छोटा-सा प्रबन्ध कविकुलगुरु पर हम लिखें, संस्कृत-पत्रिका में कालिदास पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है, सो आपने देखा ही होगा। बंगालियों में बाबू रामदास सेन ने भी कुछ लिखा है।

विक्रमाङ्क-चरित आपने पढ़ लिया, कृपा की, नव साहसाङ्क-चरित भी शायद आपने पढ़ा होगा। "शिक्षा" का संस्कृत-अनुवाद Curator, Govt. Book Depot के यहाँ मिलता था, शायद किसी मदरासी का किया हुआ है, परन्तु क्यूरेटर साहब ने जवाब दिया है कि सब कापियाँ बिक गईं।

अनुवादक की तलाश में हम हैं, पता लग गया तो उससे मँगवावेंगे। बहुत अच्छा, यदि हुआ होगा, तो मराठी का भी अनुवाद मँगावेंगे।

बिजनौर से कोई माँग किताबों की नहीं आई, आप अपने मित्र से इस बारे में कुछ न कहिएगा। ठाकुर शिवरत्नसिंह को हम पुस्तकें भेज देंगे।

आपकी इस कृपा के लिए धन्यवाद अनेक धन्यवाद। व्याकरण बनाने के लिए बहुत विद्या, बुद्धि, पठन, और सामग्री दरकार है। वह हममें नहीं, फिर हम करें क्या क्या? "शिक्षा" को लिखें या कालिदास को लिखें या 'सरस्वती' को लिखें, किस किसको लिखें, आप तो बहुत काम बतलाते हैं। हम कल से एक छोटा-सा प्रबन्ध "भाषा और व्याकरण" पर लिख रहे हैं। उसमें जब तब का भी ज़िकर आवेगा। कहिए, आपके पास पहले देखने को भेज दें? "वेंकटेश्वर" इत्यादि 'सरस्वती' का नाम शायद इसलिए नहीं लेते क्योंकि हमने आज तक उनकी समालोचना नहीं की। इससे हम असन्तुष्ट नहीं, सरस्वती के रक्षक आपके सदृश विद्वान् हैं।

औरों ने यदि उसका नाम भी लिया तो कोई हानि नहीं। तीन दिन हुए ला० बदरीदास का पत्र आया था, उन्होंने लिखा है कि हमारा पत्र उन्होंने लाला देवराज को दिखाया, वे माफ़ी माँगने को तैयार हैं। और कहते हैं यथासम्भव उन्होंने सरस्वती का नाम देने की कोशिश

की है। किसी अच्छे लेखक के न मिलने से उन्होंने किताबें लिखी हैं। और यदि हम सूचना दें तो उसके अनुसार संशोधन भी करने को तैयार हैं। हमने लिखा है, हमारा पत्र कमिटी में पेश कीजिए। सरस्वती का नाम देने की कोशिश नहीं की गई। अच्छी किताबें लिखनेवाले मिल सकते थे, और अब भी मिल सकते हैं। आज "शिक्षामणि" आई है। लालासाहब की किताबों से अच्छी है। मौक़ा आने पर उसका भी हम हवाला देंगे। और आगे आपकी क्या राय है? हाँ, आपसे एक काम है, झाँसी में जब तक हम रहे पंजाब से पट्टी मँगा-कर जाड़े के सूट बनवाते रहे। अब मार्ग बन्द हो गया, आप अमृतसर, और लाहौर के पास हैं। आक्टोबर के शुरू में क्या आप एक शुतरी (बादामी) रंग की अच्छी पट्टी नौ, दस रुपये की मँगाकर भेज सकते हैं। एक उसी रंग की मलीदे की किश्तीनुमा टोपी भी चाहिए, गोल मिले तो और अच्छा, नाप टोपी की रुपयों के साथ पहले भेजेंगे।

श्रीमदीय——
महावीर

(१३)

कानपुर
२९–९–०६

प्रणाम,

कृपाकार्ड मिला, आपकी बीमारी और तीमारदारी का हाल सुनकर दुःख हुआ। आशा है अब सब प्रकार कुशल होंगे। हम भी ८ रोज़ बुख़ार में मुब्तिला रहे। अब अच्छे हैं। सैयद साहब दमोह ज़िले के रहनेवाले हैं। हिन्दीकविता से शौक है। आप शायद तिजारत करते हैं। उस 'नोट' के लिए लेखक महाशय ने शिकायत की है एतदर्थ एक और नोट देना पड़ा। वह आक्टोबर में निकलेगा। सचमुच महाराज साहब का कोई दोष नहीं। अगस्त की ग्रन्थमाला निकले एक महीना हुआ, आप दूसरी कापी मँगाइए, पहली शायद खो गई।

भवदीय महावीर

(१४)

कानपुर
१०-१०-०६

प्रियवर!

कृपापत्र मिला——कई रोज़ से हमारे नेत्र विकृत हो रहे हैं। लिखने में कष्ट होता है, कहीं धृतराष्ट्रता को न प्राप्त हो जायँ, यही डर रहता है, पर आपका पत्र पढ़-कर उत्तर दिये बिना नहीं रहा जाता। आपके पत्र बड़े ही विद्वत्तापूर्ण और मनोरंजक होते हैं। इस [illegible] को हमने दो दफ़े पढ़ा। "भागा" वाला पद्य हमारी पाकेटबुक में पहले ही से नोट है। खूब मनोरंजक है। प्रकाशित करेंगे, सूचना के लिए धन्यवाद, उसी के [illegible] पंडितराज जगन्नाथ राय का यह श्लोक भी नोट किया हुआ है।

"मत्तातपादै रचिते निबन्धे निरूपिता नूतनयुक्तिरेषा।
अङ्गङ्गवां पूर्वमहो पवित्रं कथन्नवा रासभधर्मपत्न्याः॥"

इसमें क्या खूबी है, सो ठीक ठीक ध्यान में नहीं आती। आप लिखिए, साधारण अर्थ में तो कोई विशेषता नहीं, क्या नवा और न वा के भङ्गश्लेष पर तो पंडितेन्द्र नहीं टूटे।

महिला जी मिर्ज़ापुरवासिनी बंगालिनी हैं। पति उनके विद्वान् हैं। वहीं एक अँगरेज़ी वणिक के यहाँ नौकर हैं। महिला जी को हिन्दी, बँगला दोनों में शौक है। चिरौरी और अकचकाकर इधर खूब [illegible] जाते हैं। इन शब्दों में हमें एक प्रकार की सरसता मालूम होती है। इससे हमने नहीं निकाले।

कान्यकुब्जअबलाविलाप को आपने खूब पहचाना। आपका अनुमान ठीक है। हाली का "चुप की दाद" देखकर ही हमने उसे लिखा है। बरेलीअनाथालय के शेरसिंह का हाल हमें एक सज्जन ने पहले ही लिखा था, [illegible] छप भी गया। इस महीने की सरस्वती में आपको मिलेगा।

शङ्कर जी की कविता का क्या कहना है। पञ्चाधिक उत्कृष्ट कविता है।

तिस पर भी ना० प्र० वाले सरस्वती की कविता को भद्दी बताते हैं। "स्त्रीणामशिक्षित [illegible]" पद्य समय पर याद नहीं आया, नहीं तो हम ज़रूर लिख देते, सम्भव है शङ्कर जी ने अपने पद्य में इसी कालिदास की उक्ति की छाया ली हो। आपकी सरस्वती पर [illegible] कृपा है। आप और भी एक आध कविता लिख रहे हैं। "चकास्ति योग्येन हि योग्यसङ्गमः।" आपने खूब [illegible] पर 'सरस्वती' अभी अपने को योग्य नहीं समझती। [illegible] तरह अनामिका बाई ने कालिदास की सहृदयता [illegible] आक्षेप किया था, आप श्रीहर्ष की सहृदयता पर, [illegible] कीजिए। नैषध से दो-चार श्लोक चुनकर आप [illegible] आलोचना कीजिए।

आप हमारा कभी कहना नहीं करते। कभी हमारी प्रार्थना नहीं सुनते, पर हम आपकी आज्ञा यथाशक्ति सदा पालन करते हैं। ऐसा क्यों? अच्छा, बहुत अच्छा, हम 'सरस्वती' के प्रसिद्ध प्रसिद्ध लेखकों के चित्र आपकी आज्ञा से देने जाते हैं। बहुत जल्द इसका आरम्भ होगा, और भी दो एक सज्जनों ने इस विषय में हमें लिखा है। पर आप ही की आज्ञा को हम अधिक महत्त्व देते हैं। अब आप नैषध की आलोचना भेजिए। और साथ ही अपना एक अच्छा फ़ोटो भी।

शिक्षा समाप्त हो गई, बाबू शिवरत्नसिंह की पुस्तक कहाँ लौटावें, क्या वे अभी तक जालन्धर ही में हैं।

इंडियन प्रेस में बेहद काम रहता है।

ग़नीमत समझिए जो सरस्वती निकल जाती है। विक्रमाङ्कचर्चा आधी छपी हुई खटाई में पड़ी है, हम उन्हें याद भी नहीं दिलाते। ख़ुशी होगी तब छापेंगे।

जब तक "विष" का प्याला सामने न आवे तब तक "औषध" तैयार करना ठीक नहीं, व्यर्थ श्रम न करना पड़े, कौन ठिकाना शायद धमकी हो, क्योंकि "जानि न जाय निशाचर माया" मसाला तैयार है, समय आते ही बहुत जल्द पुस्तक छप जायगी।

सरस्वती की ग्राहक-संख्या अब १५०० तक पहुँचने चाहती है। यदि "औषध" बनी तो कोई मात्रा बाक़ी न रह जायगी। बल्कि दो-चार चीजें जो आजतक किसी ने नहीं देखीं वे भी घोल दी जायँगी। "रमताराम" हैं श्री पंडित माधवप्रसाद मिश्र। उनका और हमारे मित्र का षडाष्टक योग है, और है किसका नहीं? वेंकटेश्वर, बंगवासी, मोहिनी, भारतजीवन, सरस्वती सबसे आपका वही सम्बन्ध है जो ३६ का एक दूसरे से है।

प्रेमास्पद——
महावीर

(१५)

जुही, कानपुर
४–११–०६

सविनय प्रणाम!

२६ ता० का कृपापत्र यथासमय मिला। उधर आप बुख़ार में परेशान, इधर हम। आज ७-८ रोज़ में चित्त कुछ स्वस्थ हुआ है। परन्तु आलस्य अधिक है। इससे छोटा ही पत्र लिखेंगे, आपका पत्र तो बड़ा ही मनोरंजक है। उसे हमने दो बार पढ़ा।

आप अपना फ़ोटो ज़रूर भेजिए। और नैषध पर एक लेख भी लिखिए। टालबाज़ी से काम न चलेगा। ठाकुर शिवरत्नसिंह को हमने जालन्धर पत्र भेजा था, पर वहाँ से उत्तर अब तक नहीं आया। शङ्कर जी की कविता अवश्य अच्छी होती है। हम तो चित्रों पर उन्हीं से कविता लिखाना चाहते हैं। पर तीन चित्र भेजे ६ महीने हुए। इतने दिनों में उन्होंने सिर्फ़ तारा पर कविता लिखी। अभी दो उनके पास और हैं। आप ही कृपा करके हमारी सिफ़ारिश कीजिए।

सरस्वती की आक्टोबरवाली संख्या में जो "शरद" है, वह प्रायः अनुवादमय है। किरात के कई पद्यों का अविकल अनुवाद उसमें है।

टेनू के विषय में जो कुछ ज्ञात था लिखा, आगे की राम जाने।

हमें कादियानी का बहुत कम हाल मालूम है, इसी से हमने उसका चरित छाप दिया। तिस पर भी हमने नोट दिया ही है। उसका चित्र रह गया था, समय पर न आया था, सो प्रेसवालों ने इस महीने की सरस्वती में लगा दिया। आप एक छोटा सा लेख उसके उत्तर में भेजिए, हम छाप देंगे। शिष्टता का उल्लङ्घन न हो। और धार्मिक बातें जहाँ तक बचाई जा सकें बचाइएगा। सिर्फ़ कादियानी से सम्बन्ध रखनेवाली ही बातें लिखिएगा। योगदर्शन की आलोचना निकलेगी, क्या करें स्थल ही नहीं मिलता। इससे समालोचनायें रह जाती हैं। भर सक इस महीने कुछ निकलेंगी। शरद्वर्णन में माघवाला श्लोक प्रसिद्ध ही है। पर अब शरद् गई, इससे इस विषय के अब और कोई पद्य सरस्वती में न निकालेंगे। पर आपने जो श्लोक भेजे उत्तम हैं। हेमन्तवाला "लज्जा प्रौढ़े मृगीदृशाँ" दिसम्बर में निकालने की कोशिश करेंगे।

नवम्बर के लिए शरद् पर कविता गई। इस "मृगीदृशां" वाले में "प्रणयिता वाराङ्गनानामिव" की जगह "प्रणयिनो वाराङ्गनानामिव" हो तो कैसे? "वासराः" का उपमान "प्रणयिता" ठीक होगा?

भवदीय——
महावीरप्रसाद

कविताविषयक पद्य बहुत करके आपको दिसम्बर में मिलेंगे।

(शेष अगले अंक में)

जाग्रत नारियाँ

भारत के प्राचीन अंगराग

लेखिका, श्रीमती कमला सद्गोपाल बी० ए०

हिन्दुस्तान के नागरिक अंगरागों का उपयोग हज़ारों वर्ष पूर्व से ही करते आ रहे हैं। कई लोगों का अनुमान यह है कि हिन्दुस्तान में अंगरागों का उपयोग पश्चिमी सभ्यता के साथ ही आरम्भ हुआ है, परन्तु यह बात ठीक प्रतीत नहीं होती; क्योंकि संस्कृत की प्राचीन पुस्तकों में अंगराग और सुगन्धित पदार्थों का वर्णन बहुधा पाया जाता है। इन पुस्तकों के पढ़ने से यह मालूम होता है कि प्राचीन काल में अंगराग की महत्ता आज-कल से कहीं अधिक थी। इसके अतिरिक्त प्राचीन अंगरागों और सुगन्धित पदार्थों का उपयोग न केवल भारतवर्ष तक ही सीमित था परन्तु विदेशों में भी इनकी माँग बहुत थी और हमारे अंगराग तथा इत्र इत्यादि सबसे उत्तम माने जाते थे। ईरान, मिस्र, ग्रीस और रोमन-साम्राज्य आदि देशों की ऐतिहासिक पुस्तकों में भी इन बातों के बहुत प्रमाण मिलते हैं। मिस्र के हज़ारों वर्ष पुराने पिरेमिडों की खुदाई करने पर उनमें से हमारे देश के धूप और इत्र इत्यादि पदार्थ मिले हैं। पूजा के समय हिन्दू लोग मन्दिरों में देवताओं को इत्र, पुष्प और सुगन्धित पदार्थ चढ़ाते आये हैं।

प्राचीन भारतवर्ष के अंगरागों का वर्णन सबसे अधिक वात्स्यायन की पुस्तक 'कामसूत्र' और 'नागर

[लेखिका]

सर्वस्वम्' में मिलता है। परन्तु इसी विषय पर भी बहुत सी प्रसिद्ध पुस्तकें निम्नलिखित हैं :—

शार्ङ्गधर का 'गन्धदीपक' ईश्वर की 'गन्धायु... और वराहमिहिर की 'बृहत्संहिता'। इन पुस्तकों ... वालों के तेल बनाने, शरीर की दुर्गन्ध दूर करने ... घरों को सुगन्धित रखने के लिए कई विधियाँ ... गई हैं। संस्कृत और प्राकृत के नाटकों, उपन्यासों ... काव्यों में भी अंगरागों के उपयोग के बहुत मि...

[अमृतसर के अलक्ज़ेंडर स्कूल हाल में कुमारी अमिताराय द्वारा प्रदर्शित तितली-नृत्य।]

...र मनोरंजक वर्णन आते हैं। नट और नटियाँ अभिनय ...र जाने से पूर्व प्रत्येक अंग की सजावट इतने अच्छे ...कार से किया करती थीं कि मानों वे अंगराग की कला ...बहुत ही प्रवीण हैं। स्त्रियाँ अपने प्रियतम के ...गत करने से पूर्व आँखों में काजल, पलकों में अंजन, ...दे पर सौभाग्य-बिन्दु लगाकर और सुन्दर तथा ...न्धित वस्त्र पहिन कर तैयार हुआ करती थीं। इन ...णों से यही सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में अंगराग ... महत्ता एक उच्च सीमा तक पहुँच चुकी थी और ...क स्त्री और पुरुष के लिए इस कला में प्रवीण ... गार्हस्थ्य धर्म में प्रवेश करने के पहले आवश्यक ... जाता था।

'नागर सर्वस्वम्' के लेखक ने पुरुषों को निम्न-...त सम्मति दी है :—

"प्रवीण पुरुष अपने शरीर पर सुन्दर वस्त्र धारण करे, वस्त्रों पर ऋतु और समय के अनुकूल इत्र लगावे, बहुमूल्य, रत्नजटित आभूषण और फूलों की माला गले में पहिने और सुवासित मुखवास का उपयोग करके अंगरागों से शरीर के प्रत्येक अंग को विभूषित करे।"

भारत में प्राचीन काल में वैज्ञानिक यन्त्र और साधन न होने के कारण लोग सब अंगराग अपने हाथों से ही सुगन्धित वनस्पतियों, भस्मों और कस्तूरी आदि जान्तवीय पदार्थों से ही बनाया करते थे।

कामसूत्र में गृहस्थों की दिनचर्य्या का उल्लेख इस प्रकार किया गया है :—"प्रातःकाल उठकर मनुष्य दाँत साफ़ करे, स्नान करे, शरीर और वस्त्रों पर सुगन्धित द्रव्यों का प्रलेप करे, अलकरस से ओष्ठ लाल करे, गले में फूलों की माला पहिन कर मुँह में कोई सुगन्धित वस्तु चबाये। प्रत्येक तीसरे रोज़ हजामत करे, शरीर पर मालिश करे और फेनक लगावे"।

[मीराबेन सीमाप्रान्त के दीर्घ-कालीन प्रवास के बाद वर्धा को लौट रही हैं।]

दशनांगराग—हिन्दू लोग प्राचीन काल से ही सुगन्धित वृक्षों की ताज़ी शाखाओं से दाँत साफ़ करते चले आ रहे हैं। वर्तमान काल में वैद्य और वैज्ञानिक भी प्राचीन काल के दातुन की अधिक प्रशंसा करते हैं। प्राचीन काल में दातुन का उपयोग अग्र-लिखित ढंग से किया जाता था—सुगन्धित वृक्ष की ताज़ी शाखा (जिसे हम दातुन या दतुअन कहते हैं) ... लेकर गाय के मूत्र में भिगो दिया करते थे और उसके पश्चात् इसको दालचीनी, इलायची, शहद काली मि... और कूट से सुगन्धित किये गये पानी में डाल दि... जाता था। प्राचीन काल के वैज्ञानिक और अंगराग कला में निपुण लोग गाय के मूत्र को बहुत महत्त्व दे... थे क्योंकि उन्होंने यह सिद्ध कर दिखाया था कि गा... का मूत्र कई प्रकार के कीटाणुओं का नाशक है। ... रोगजन्तुघ्न और रक्षोघ्न कहा जाता है।

दातुन के काम में आनेवाली निम्नलिखित ... दायक शाखायें हैं:—वट, मधुक, करञ्ज, पलाश, अ..., खदिर, बिल्व, साल, अश्वकर्ण, कदम्ब, नीम, करवीर, शमी, अर्जुन, दाड़िम, प्रियञ्जन, अपामार्ग, जम्बू और चतुरश्क।

हिन्दू-रति-शास्त्रों में 'स्नानीयवास' और वसनांगराग के वर्णन बहुत मिलते हैं। शरीर पर मालिश करने ... लिए क्षार और खरी का मिश्रण सर्वोत्तम माना गया ... ये दोनों वस्तुएँ शरीर के रोमकूपों को साफ़ करके ... नाहट लाती हैं। स्नान के पानी को दालचीनी, ... कस्तूरी, खस और अगर या अगर के इत्र से सुगन्धित किया जाता था। हिन्दुस्तान गरम देश है। गरमी ... कारण पसीना यहाँ पर बहुत आता है और ... शरीर में से दुर्गन्ध आने लगती है। इस दुर्गन्ध को ... करने के लिए कस्तूरी, कपूर चन्दन, की लकड़ी, नागपुष्प ... अगर—इन सब वस्तुओं को इकट्ठा पीस कर शरीर ... दुर्गन्ध-हर के रूप में लगाया जाता था। खस, ... बिल्व वृक्ष के पत्ते, नागपुष्प, मिमोसा और पद्म... मिश्रण भी इसी काम के लिए बहुत लाभदायक ... गया है। पसीने को रोकने के लिए लोध्र, चन्दन की ... कई प्रकार के सुगन्धित फूल, कमल फूल की जड़ और ... के छिलके का चूर्ण लगाया जाता था।

हिन्दुस्तान में कई राज्यवंशों के उतार-चढ़ाव के ... कई व्यवसायों में घोर परिवर्तन हुए हैं परन्तु इ... व्यवसाय की प्रसिद्धि वैसी ही अचल रही। सबसे ... मुग़ल बादशाह जहाँगीर की पत्नी नूरजहाँ से अकस्मात् गुलाब के इत्र का आविष्कार हुआ था। उसके स्नान ... पानी गुलाब के फूलों से सुगन्धित किया जाता था। ... दिन जब वह स्नान कर रही थी, उसने पानी के पटल के ऊपर कुछ तैल की बूंदें तैरती हुई देखीं। नूरजहाँ ने उनको इकट्ठा कर लिया। परीक्षा करने पर पता चला कि उस तैल की सुगन्ध तो गुलाब के फूलों की तरह है। फिर गुलाब का इत्र जिसे 'रूह गुलाब' भी कहा जाता है निम्न-लिखित विधि से तैयार किया जाने लगा—

ताज़े गुलाब के फूलों को उनसे दुगुने पानी के साथ ताम्बे के बर्तन में डालकर आग के ऊपर स्रावण किया जाता है। उसके पश्चात् स्रावण किये गये पदार्थ को रात्रि की शीतलता में बाहर खुला रख देते हैं। ठंड के कारण गुलाब का सुगन्धित तैल जम जाता है और इकट्ठा होकर पानी के पटल के ऊपर तैरने लगता है। फिर इस पटल पर तैरते हुए तैल को पोंछकर अलग कर लिया जाता है।

प्राचीन काल में लोग साबुन के स्थान पर "फेनक" का उपयोग करते थे। संस्कृत में फेन झाग को कहते और जो पदार्थ फेन को पैदा करता है उसे फेनक कहते हैं। फेनक में इत्र और खुशबू भी मिला दी जाती हैं। यह शरीर को कोमल और सुगन्धित बनाता है और रोम-छिद्रों को साफ़ करता है।

[श्रीमती रेणुबाला मुकर्जी, आप मुंगेर म्यूनिसिपेल्टी की सदस्य निर्वाचित हुई हैं। बिहार में इस पद को ... वाली आप प्रथम महिला हैं।]

[कुमारी अञ्जाबाई सामल जो पंजाब-विश्वविद्यालय की आई॰ ए॰ परीक्षा में सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुई हैं।]

हिन्दुस्तान में स्त्री का सौंदर्य लम्बे, काले और घने बालों में ही माना जाता है। बालों को सुन्दर, काले, लम्बे और घने बनाने के लिए कई प्रकार के तैलों का उपयोग किया जाता था और उन तैलों को सुगन्धित बनाने के लिए उनमें इत्र मिलाये जाते थे।

आज-कल योरप में तैल बनाने के लिए पुष्पोपासना-विधि बहुत प्रचलित है। यह विधि भारतवर्ष में हज़ारों वर्षों से चली आ रही है। तिल्ली के बीज को बहते हुए पानी के साथ ख़ूब अच्छी तरह धो लिया जाता है, ताकि वह साफ़ होकर बिलकुल सफ़ेद हो जावे। तैल को साफ़ और स्तरवर्धक बनाने के लिए तिल्ली को अच्छे प्रकार से धोना आवश्यक है तब उस तिल्ली के ऊपर इच्छानुसार गुलाब, बेला और केतकी इत्यादि फूलों से पुष्पोपासना करते जाना चाहिए जब तक कि आवश्यक

सुगन्ध तिल्ली में संतृप्त न हो जाये। इसके पश्चात् बीजों को तैल बनानेवाले यन्त्र में डालकर पेरते हैं। इस काम के लिए चन्दन की लकड़ी के बने हुए यन्त्र अधिक उपयोगी हैं। इस प्रकार के बनाये गये तैल अपने शीतल और सुगन्धित गुणों के लिए प्रसिद्ध हैं।

केशहीनता के लिए गुञ्जा का फल, शहद और तिल्ली में अच्छे प्रकार से जला हुआ हाथीदाँत का चूर्ण बहुत लाभदायक माना जाता है।

"सुभगकरणम्" अथवा शरीर के चर्म को सुन्दर और कोमल बनाने के लिए प्राचीन पुस्तकों में बहुत-सी विधियाँ बताई गई हैं। इसके लिए कूट और तुलसीपत्र का अवलेपन बहुत लाभदायक समझा जाता था। राई के बीज, तिल्ली, हरिद्रा और कूट का मिश्रण शरीर को बहुत कोमल और सुगन्धित बनाता है। स्त्रियाँ अपने चेहरे को कोमल और आकर्षक बनाने के लिए सफ़ेद राई के बीज, साफ़ जौ, और लोध्र लगाया करती थीं। कच्चे दूध में आटा और निम्बू मिला कर चेहरे पर लगाने का लेप बनाया जाता था। स्त्रियों में ऐसे मिश्रणों का उपयोग बहुत प्रचलित था और आज-कल भी है। ये चर्म के रोमकूपों को साफ़ करने के लिए सबसे उत्तम माने जाते हैं। हिन्दुस्तान में आकर मुसलमान लोगों ने भी यह प्रथा हिन्दुओं से ग्रहण कर ली। उनके दो प्रसिद्ध चूर्ण निम्नलिखित हैं--

(१) अबीर, जो गुलाब, अगर की लकड़ी, चन्दन की लकड़ी, हरिद्रा और सिवेट मिला कर बनता है।

(२) चिक्सा, जो कि आटा, पानड़ी, चन्दन, राई के बीज, कनुगरीक और खस के मिलाने से बनता है।

प्राचीन काल में स्त्रियाँ आँखों में काजल का उपयोग करती थीं; पलकों में अञ्जन लगाती थीं और हाथों और पाँवों की हथेलियों पर मेंहँदी लगाती थीं। वे प्रायः शरीर के ऊपर केतकी और लोध्र के चूर्ण का उपयोग करती थीं। शरीर को सुगन्धित बनाने के लिए चन्दन का लेप और वस्त्र को सुगन्धित करने के लिए धूप लगाती थीं। प्राचीन काल के लोग नाखूनों का बहुत ध्यान रखते थे। वात्स्यायन ने लिखा है कि नाखून प्रत्येक चौथे दिन काटे जाने चाहिए और गोल-सुन्दर और साफ़ होने चाहिए।

लोमनाशक पदार्थों के लिए शंख और हरताल का चूर्ण अथवा चूना और पीली हरताल का चूर्ण बहुत प्रचलित रहा है। ऐसे मिश्रण लोमों को जड़ से नाश कर देते हैं। और इन मिश्रणों के उपयोग के बाद कुसुम्ब--फूल व बादाम के तेल का उपयोग अवश्य करना चाहिए जिससे रोमकूप और चर्म कोमल हो जायें।

प्राचीन पुस्तकों के पढ़ने से हमें ऐसा विदित होता है कि उस काल में भारतवर्ष में हर प्रकार के अंगराग प्रचलित थे परन्तु उनकी महत्ता वर्तमान काल में विदेशी, सस्ते और अधिक आकर्षक अंगरागों के आने से कम हो गई है। नये वैज्ञानिक यन्त्रों-द्वारा विविध अंगराग शीघ्र तैयार हो जाते हैं, किन्तु प्राचीन पदार्थ साधारणतया बड़ी कठिनाई से तैयार होते थे। विदेशी, सस्ते और अधिक आकर्षक अंगराग आने पर भी हिन्दुस्तान के ९५ प्रतिशत लोगों की माँग अभी प्राचीन अंगरागों-द्वारा ही पूरी होती है। केवल ५ प्रतिशत माँग इन नये प्रकार के अंगरागों की है।

आज इस वैज्ञानिक युग में आवश्यकता यह है कि हमारे प्राचीन अंगरागों का पूर्ण अध्ययन किया जाय और उनमें उचित परिवर्तन समय की दृष्टि से किये जायँ। जिससे हिन्दुस्तान की यह सहस्रों वर्ष पुरानी कला फिर से पुनरुज्जीवित हो सके।
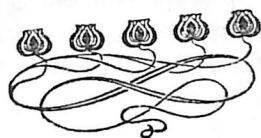
हिन्दू-जाति की सामाजिक विजय

लेखक, स्वर्गीय लाला हरदयाल एम० ए०, पी-एच० डी०

(२)

इन बातों को जान लेने से सामाजिक विजय की रूप-रेखा का हमें बोध हो जाता है। अब देखना यह है कि ब्रिटिश सरकार इन्हें किस-किस रूप में इस देश में कार्य में ला रही है।

१—अँगरेज़ हिन्दुओं के सब कार्यों व आन्दोलनों पर अपना सिक्का जमाने की चेष्टा कर रहे हैं। जैसा कि निम्न व्याख्या से स्पष्ट हो जायगा।

शिक्षा--सरकार ने स्कूल और कालेज खोल रक्खे हैं, जिनमें हमारे बच्चे अँगरेज़ों के तत्त्वावधान में शिक्षा पाते हैं। अँगरेज़ों के आने से पहले इस देश में जिस जातीय शिक्षा-प्रणाली का प्रचलन था उसे उन्होंने नष्ट कर डाला; क्योंकि वह उनके मार्ग में बाधक थी। उसके संचालक ब्राह्मण थे। उसमें राष्ट्रीय इतिहास और राष्ट्रीय साहित्य को अधिक महत्ता दी जाती थी। उससे राष्ट्रीय व्यक्तित्व को प्रोत्साहन मिलता था। वह जाति विशेष को गुरु-पद का सम्मान प्रदान करती थी। अँगरेज़ यह सम्मानास्पद पद अपने लिए चाहते थे। शिक्षा के राज्य में भी दो राजा नहीं रह सकते। ब्राह्मण निकल गये या निकाले जा रहे हैं, और अँगरेज़ उनके स्थान पर आ रहे हैं।

चिकित्सा--मेडिकल कालेज को विद्या का राजाश्रय प्राप्त था; उसने इस देश की 'दक़ियानूसी चिकित्सा-प्रणाली' आयुर्वेद को गिरा दिया। सन् १८३१ की शिक्षा की रिपोर्ट में यह उल्लेख करते हुए सन्तोष प्रकट किया गया है कि 'योरपीय चिकित्सा-प्रणाली' आयुर्वेद को बाहर करने में सफल हो रही है।

प्रत्येक ज़िले के सदर मुकाम में एक सिविल-सर्जन रहता है, जो अपने को उत्कृष्ट कोटि का चिकित्सक दिखाने का दंभ करता है। हममें से कुछ उसकी मुँह-माँगी क़द्र भी करते हैं। हिन्दुस्तानी असिस्टेंट सर्जन स्वयं को उसका शिष्य समझते हैं। जब किसी कठिनाई को हल करने में वे स्वयं को असमर्थ पाते हैं तब दौड़कर सिविल-सर्जन के पास जाते हैं। वही शफ़ाख़ानों का संचालन करता है। बीमारों के लिए तो वह सच्चा मसीहा समझा जाता है। जिस प्रकार सब नदियों का जल सिमट कर समुद्र में एकत्र होता है, उसी प्रकार छोटे-छोटे डाक्टरों-द्वारा अच्छे किये गये रोगियों का यश सिविल-सर्जन को प्राप्त होता है, क्योंकि उसी की पद-च्छाया में बैठकर छोटे-छोटे डाक्टर चिकित्सा-कार्य सीखते हैं। हिन्दू वैद्य अंधकार में विलीन होते जा रहे हैं; मानो वे पुरातत्त्व की कोई उपेक्षणीय वस्तु हों। उन्होंने जो कुछ थोड़ी-बहुत प्रतिष्ठा प्राप्त की वह भी अब उनसे हटकर उनके प्रतिस्पर्धियों--डाक्टरों--के पास पहुँच रही है। चिकित्सा के रूप में यह नया मैदान विदेशियों ने और मारा है। 'चिकित्सक' पद ब्राह्मण के महत्त्व और सम्मान का पर्यायवाचक था, अब वह अँगरेज़ों का बन रहा है।

धर्म--धर्म के क्षेत्र पर अभी तक पश्चिम का प्रभाव नहीं है। यही हमारा अंतिम शरण है। ब्रिटेन ने लग-भग हमारी सभी वस्तुओं पर क़ब्ज़ा कर लिया है, पर उसके कर्कश हाथों ने हमारे धर्म के कोमल शरीर को अभी तक नहीं छू पाया। पर इसके शोषण और दलन के लिए भी एक अनुक्रम का आरंभ किया गया है, जिसके दो पहलू हैं--

(१) हिन्दू-धर्म के विनाश की बाह्य चेष्टायें--सरकार सब धर्मों के प्रति समान सहिष्णुता प्रकट करने का दंभ करती है। हिन्दू-जाति इस प्रकार की है कि वह अन्य धर्मावलंबियों को अपने धर्म में दीक्षित नहीं करती। इस परिस्थिति में हिन्दू-धर्म का ह्रास होना स्वाभाविक है। हम तो अन्य धर्मवालों को हिन्दू-धर्म में दीक्षित नहीं करते, पर सरकार ईसाइयों को इस बात के लिए खुली आज्ञा देती है कि वे हमारे बच्चों को बपतिस्मा दें। इस परिस्थिति में हम ईसाइयों का मुक़ाबिला नहीं कर सकते। साथ ही वह शिक्षा भी, जिसे सरकारी प्रोत्साहन प्राप्त है, हिन्दू-धर्म की नींव पोली कर रही है। जिन्होंने भारत में अँगरेज़ी-शिक्षा-प्रसार की योजना बनाई थी उन्होंने यह परि-

णाम पहले से ही सोच लिया था।' उदाहरणार्थ, बंबई के प्रथम अँगरेज़ गवर्नर माउण्ट स्टुअर्ट एलफिन्स्टन ने सन् १८२३ में लिखा था—

"इसके साथ ही एक बात और है। हमारे और हमारी प्रजा के बीच में धर्म-सम्बन्धी एक गहरी खाई है। फलतः वे बात-बात में हमसे भड़कते हैं। इससे हमारे शासन की नींव सदैव हिलती रहती है। इस खतरे को दूर करने के लिए कुछ उपाय करना आवश्यक है। वह उपाय केवल यह है कि हम युक्तियुक्त शिक्षा के प्रचार-द्वारा उनकी पुरानी धारणाओं को मिटा दें और उनके दिमाग़ों में अपने सिद्धान्त भर दें।"

स्कूलों और कालेजों को स्थापित करते समय सरकार ने हिन्दुस्तानियों की सम्मति नहीं ली थी, इसे प्रमाणित करने के लिए मैं उच्च सरकारी अधिकारियों के उद्धरण और भी दे सकता हूँ। सर चार्ल्स ट्रेवेलियन ने हाउस-ऑफ़ लार्ड्स के समक्ष गवाही देते हुए सन् १८५३ में कहा था—

"हम यह नहीं चाहते कि हम हिन्दू-धर्म की प्राचीन व्यवस्था के संरक्षकों के साथ विरोध करके उन्हें चिढ़ावें या उनके हृदयों में अपने लिए घृणा के भाव भर दें; बल्कि यह चाहते हैं कि भारतीयों के हाथ में उच्चतर ज्ञान की एक कुंजी दे दें। इस नवीन व्यवस्था के साथ परिचय होने का पहला फल यह होगा कि उनके हृदयों से प्राचीन व्यवस्था का प्रभाव एकदम मिट जायगा। यह एक महान् सत्य है कि नई पीढ़ी ही आगे चलकर कुछ वर्ष बाद जाति का रूप धारण कर लेती है। अतः यदि हम लोगों के चरित्र में कोई प्रभावशाली परिवर्तन करना चाहते हैं तो हमें चाहिए कि हम उन्हें नई उम्र में ही उस मार्ग पर चलना सिखायें जिस पर उन्हें ले जाना हमारा अभीष्ट है। तभी हमारे धन का सदुपयोग होगा और हमें उस जाति के विरोध का सामना नहीं करना पड़ेगा। हमें ऐसे व्यक्ति मिल जायँगे जिनके मस्तिष्क में परिवर्तन कर देना अत्यन्त सरल होगा। हम कुछ ही दिनों में प्रभावशाली तथा मेधावी युवकों का एक ऐसा दल पैदा कर देंगे जो हमारी सहायता के बिना ही हमारी व्यवस्था के प्रचारक बन जायँगे।"

(२) हिन्दू-धर्म के विनाश की आभ्यन्तरिक चेष्टायें—अँगरेज़ पुरुषों और महिलाओं का एक दल कुछ ही दिन पूर्व हमारे देश में आया है। ये लोग अपने को 'हिन्दू-धर्म का शिष्य' कहते हैं। ये हमें हमारे पवित्र धर्मशास्त्रों के पढ़ाने का ढोंग रचते हैं। ये हमारे धर्म के प्रति अपनी बड़ी श्रद्धा प्रकट करते हैं। सम्भव है, इनमें से कुछ को सरकारी सहायता भी मिलती हो, क्योंकि हमें ज्ञात हुआ है कि इस दल के कुछ व्यक्ति देशी राजाओं तक पहुँचते हैं और उनसे एकान्त में घंटों वार्तालाप करते हैं। अपरिचित स्थान की रहनेवाली एक अँगरेज़ महिला, हमारे राजा-महाराजाओं की परामर्शदात्री नहीं बन सकती थी; अगर उस पर सरकार को ज़रा भी सन्देह होता। इसे भी जाने दीजिए। हम देखते हैं कि 'सेन्ट्रल हिन्दू कालेज' के लिए सरकार सभी कुछ करने के लिए तैयार है। हम पढ़ते हैं कि उक्त कालेज के हाते के समीप बनी हुई कुछ गन्दी झोंपड़ियों को मोल लेने के लिए सरकार ने चट 'लेंड एक्वीज़िशन एक्ट' लागू कर दिया। यद्यपि यह बात भी विवादास्पद है कि उक्त एक्ट को लागू करने के लिए जिस 'जनसाधारण की संस्था' का ज़िक्र एक्ट में आया है, ऐसी संस्थाओं में ही सेन्ट्रल हिन्दू कालेज की भी गणना की जा सकती है या नहीं? क्या सरकार ऐसी ही उदारता कांगड़ी के गुरुकुल और नदिया के विश्व-विद्यालय के लिए भी दिखा सकती है? हमने पढ़ा है कि 'हिन्दू-कालेज' काश्मीर के शिलान्यास के अवसर पर श्रीमती एनी बेसेंट व रेज़ीडेंट महोदय, दोनों ने भाषण किया। वह कालेज 'हिन्दू-धर्म-प्रेमी' अँगरेज़ों के अधिकार में है। इसी प्रकार सेन्ट्रल-हिन्दू-कालेज के विषय में हम पढ़ते हैं कि उसकी प्रबन्ध-कारिणी सभा में जितने पद गौरव व उत्तरदायित्वपूर्ण हैं उन्हें अँगरेज़ पुरुषों व महिलाओं ने घेर रक्खा है। सम्भव है, ऐसा घटनावश हो गया हो; पर एक बात हमारा ध्यान आकृष्ट किये बिना नहीं रह सकती। वह यह कि उसी कालेज के बोर्ड ऑफ़ ट्रसीज़ की—जिसके मेम्बर बड़े-बड़े हिन्दू लखपति और तिलकधारी कर्मठ पंडित हैं—प्रेसीडेंट हैं मिसेज़ एनी बेसेंट! १९०६ की कार्य-कारिणी की रचना पर ध्यान दीजिए—

प्रेसीडेंट—	मिसेज़ एनी बेसेंट,
वायस प्रेसीडेंट—	मिस्टर रिचार्डसन,
मंत्री और कोषाध्यक्ष—	मिस्टर अरुण्डेल।

संस्था का नाम 'सेन्ट्रल हिन्दू कालेज', पर उसकी प्रबन्ध-समिति में उत्तरदायित्वपूर्ण स्थान पर एक भी हिन्दू नहीं! यही नहीं, उक्त कालेज में एक 'विद्यार्थी-सहायक-सभा' है। यह छात्रों की एक छोटी-सी अपनी सभा है, पर उसमें भी अँगरेज़ों का हाथ मौजूद है। उसकी संरक्षिका हैं श्रीमती एनी बेसेंट और सिक्रेटरी व कोषाध्यक्ष मिस्टर अरुण्डेल। अन्त में हम यह भी देखते हैं कि सेन्ट्रल हिन्दू कालेज के गर्ल्स स्कूल में प्रिन्सिपल हैं श्रीमती अरुण्डेल और वायस प्रिन्सिपल हैं मिस पाल्मेर! आनरेरी सिक्रेटरी हैं मिस विलसन (१९०५-६ की वार्षिक-रिपोर्ट)

इसी रिपोर्ट में पृष्ठ १७ पर एक बड़ी मज़ेदार सूचना दी गई है—

"मिस्टर अरुण्डेल ने डिबेटिंग-सोसाइटियों में एक दिलचस्प नवीन प्रणाली को प्रचलित किया है—जिसने उसे स्थानीय पार्लियामेंट का रूप दे दिया है। इसमें डिबेटिंग के लिए 'हाउस ऑफ़ कामन्स' की पद्धति का अनुकरण किया जाता है—पालिटिक्स पर बोलना वर्जित है।" वह पार्लियामेंट जिसमें पालिटिक्स पर बोलना वर्जित हो, सचमुच दिलचस्प होगी।

इस प्रकार काशी के पंडितों और धनिकों-द्वारा संगठित सभा की प्रधान एक अँगरेज़ महिला हो और वे लोग स्वेच्छापूर्वक उसका सम्मान करें! पराजित जाति जब विजेता जाति का सम्मान हृदय से करने लगे तब समझना चाहिए कि सामाजिक विजय पूर्ण होगई। सामाजिक विजय का यह मुख्य चिन्ह है कि हममें से कुछ लोग अँगरेज़ पुरुषों और अँगरेज़ महिलाओं का धर्मगुरुओं की भाँति सम्मान करें। इस चिन्ता-जनक परिस्थिति पर ध्यान दीजिए, इसके गम्भीर प्रभावों पर विचार कीजिए। इससे प्रमाणित होता है कि हिन्दू-जाति अब मरणासन्न है। उसके घुटने टूट गये हैं। इस कोढ़ में एक फोड़ा और है! हमने देखा है कि मिसेज़ बेसेंट के स्थापित कराये उक्त 'हिन्दू गर्ल्स स्कूल' में हिन्दुओं की लड़कियाँ अँगरेज़ और [illegible]न अध्यापिकाओं के चरणों में बैठकर पढ़ती हैं। यह है सामाजिक विजय की अन्तिम सीढ़ी। धर्मगुरुओं और शिक्षकों के रूप में शासकों ने हमारे अन्तःपुर में भी प्रवेश कर लिया। उन छोटी लड़कियों का शब्द—जो अपनी विदेशी अध्यापिकाओं के चरणों के पास बैठी अपना पाठ दुहरा रही थीं, मेरे कानों को बड़ा अप्रिय लगा। मुझे तो उस समय यह अनुभव हुआ मानो इतिहास हमारे राष्ट्र के शव को विस्मृति के अनन्त स्मशान की ओर लिये चला जा रहा है और ये लड़कियाँ दुःखपूर्ण-वैराग्य के शब्दों में कह रही हैं—'राम नाम सत्य है।'

हिन्दुओं में गम्भीर विचारकों का अभाव है। यदि हममें स्वयं कुछ सोचने की बुद्धि नहीं रही है तो हमें कम-से-कम उन बयानों को पढ़कर कुछ शिक्षा लेनी चाहिए जो हमारे धर्म के शत्रुओं ने समय-समय पर अपने पापों को स्वीकार करते हुए दिये हैं। मिस्टर जे० एन० फ़र्रुख़हर, एक ईसाई प्रचारक हैं। वे हिन्दू-धर्म के कट्टर विरोधी हैं। 'कन्टेपररी रिव्यू' नामक अख़बार में अपने एक लेख में वे लिखते हैं—

कैसी अजब बात है! हिन्दुओं का केन्द्रीय संगठन और उसका नेता न कोई हिन्दू, न कोई ब्राह्मण—बल्कि एक अँगरेज महिला! एक विदेशी महिला ब्राह्मणों के धर्म का नेतृत्व करे, इसमें भी एक रहस्य है। यह इस सत्य का साकार रूप है कि 'शत्रु क़िले के अन्दर पहुँच चुके हैं'।

मिसेज़ बेसेंट और उनके साथियों की हिन्दुओं के धार्मिक जीवन पर अधिकार करने और उसका नेतृत्व करने की चेष्टा उस सामाजिक विजय के अंतिम प्रयत्न की परिचायक है जिसका आरम्भ स्कूलों, कालेजों, अस्पतालों और दवाख़ानों की स्थापना के साथ किया गया था।

'हिन्दू-धर्म के अँगरेज़ मित्र' शायद अपने कार्यों की महत्ता से अनभिज्ञ होंगे। यह भी हो सकता है कि उनका यह कार्य निश्छल हो और सर्वभूतानुकम्पा से किया जा रहा हो। यह धारणा भी मिथ्या हो सकती है कि सरकार उन्हें हानिकारक नहीं समझती। पर इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि अपने कार्यों में जो कुछ सफलता उन लोगों को मिली है उसकी पूर्त्ति सामाजिक विजय के रूप में होगी। उन कार्यकर्त्ताओं का लक्ष्य भले ही कुछ और रहा हो, पर उनके कार्यों का प्रभाव अन्त में यही होगा।

वे अँगरेज जो सरकारी नौकरियों में हैं, यह प्रयत्न कर रहे हैं कि ब्राह्मणों को वैद्य, अध्यापक आदि के प्रतिष्ठित पदों से निकाल दिया जाय, साथ ही वे अँगरेज जो सरकारी नौकरियों में नहीं हैं, यह प्रयत्न कर रहे हैं कि ब्राह्मणों के उक्त प्रतिष्ठित पदों पर हमारा अधिकार हो जाय। इस प्रकार जब ब्रिटेन अध्यापक, वैद्य और पुरोहित के स्थान पर प्रतिष्ठित हो जायगा, वह चाहे देशी ईसाइयों के पादरी के रूप में हो या हिन्दुओं के असली या नक़ली नेता के रूप में हो, सामाजिक विजय का कार्य पूर्ण हो जायगा। तभी फ़ौज का भारी-भरकम खर्च भी जिसके लिए कांग्रेस हमेशा शिकायत किया करती है, कम हो जायगा।

(३) **सामाजिक व्यवहार के लिए एक स्थल जिसका निर्माण असमता के आधार पर हुआ हो**—ब्रिटिश राज्य के प्रभाव और जातीय राज्य के अभाव तथा अँगरेजी स्कूलों-कालेजों-द्वारा जात्यभिमान के विनाश के बाद भी सामाजिक विजय के लिए जो कुछ आवश्यकता रह जाती है उसकी पूर्ति ब्रिटिश सरकार स्वयं कर देती है। भारतीयों को राज-काज में शामिल करने की पालिसी का फल यह होता है—कि हमारे नेताओं के लड़के अँगरेज अफ़सरों के नेतृत्व में पहुँच जाते हैं। जब किसी ज़मींदार का लड़का जो मालगुज़ारी तथा अन्य कर देता है और राष्ट्रीय विजय के स्मृति-स्वरूप क़ानूनों को मानता है, आगे बढ़ता है और किसी ऐसे पद के लिए उम्मीदवार होता है जो ज़िला-कलेक्टर या गवर्नर के हाथ में हो, तब वह अपनी सामाजिक विजय में स्वयं सहयोग देता है। कोई क़ानून तो उसे 'गवर्नमेंट-सर्वेंट' बनकर संसार की दृष्टि से स्वयं को गिराने के लिए विवश करता नहीं। यह सभी जानते हैं कि कलक्टर उस अपने मातहत ज़मींदार के लड़के को उसी प्रतिष्ठा की दृष्टि से नहीं देख सकता जिस प्रतिष्ठा की दृष्टि से वह उसके पिता—एक स्वतंत्र तालुक़ेदार—को देखा करता है।

कौंसिलों की गणना भी ऐसे ही स्थलों में है। उनमें प्रेसीडेंट तो रहेगा अँगरेज, पर उसके नेतृत्व में बड़े-बड़े महाराष्ट्र पंडित, सिक्ख सरदार और राजपूत कुँवर एकत्र होंगे। इस प्रकार वायसराय देश के समस्त 'नेताओं का नेता' के रूप में खड़ा होता है। क्या हम लोगों ने कभी यह भी सोचा है कि अँगरेज़ लोग अपने क्लबों में तो हिन्दुस्तानियों का जाना क्यों गवारा नहीं करते, भले ही वे डिप्टी-कमिश्नर, सिविलियन, या जज ही क्यों न हों, फिर वायसराय आप-से-आप कौंसिलों के लिए हम लोगों को क्यों निमंत्रण देते हैं। सरकार ने सन् १८६२ में कौंसिलों का निर्माण स्वयं किया था, उससे उसे लाभ हुआ। फलतः सन् १८९२ में उसने उन्हें और भी विस्तार दे दिया। क्लब भी सामाजिक संस्थायें हैं और कौंसिलें भी। फिर भी इन दोनों की परिस्थिति में भेद है। क्लबों में लोग स्वच्छन्दतापूर्वक खाते-पीते, हँसी-मज़ाक करते और नाचते-गाते हैं, पर कौंसिलों के टेबलों पर तो वे यह सब नहीं कर सकते। यह भेद क्यों है? क्यों अधिक-से-अधिक शिक्षित हिन्दुस्तानी क्लबों में नहीं जाने पाते, पर कौंसिलों में वे आप-से-आप बुलाये जाते हैं? जब सरकार जानती है कि हिन्दुस्तानियों के साथ मैत्री-पूर्ण व्यवहार से ब्रिटिश शासन की जड़ें मज़बूत होती हैं तब वह क्यों उन्हें क्लबों में—अपने प्रिय साम्राज्य को सुदृढ़ करने के दृष्टिकोण से ही—नहीं शामिल करती? बात यह है कि क्लबों में होता है समानता का व्यवहार। पर अँगरेज़ लोग हिन्दुओं से ऐसा व्यवहार पाना पसन्द नहीं करते। वे नहीं चाहते कि हिन्दुस्तानी हमसे इतने हिल-मिल जायँ कि सामाजिक व्यवहारों में बेतकल्लुफ़ी आ जाने का डर हो। वे चाहते हैं कि हम हिन्दुस्तानियों से सामाजिक व्यवहार तो रक्खें, पर उसका आधार असमानता हो, अर्थात् वे हमको अपने से श्रेष्ठ समझते रहें। स्कूल-कालेजों की कक्षायें, कौंसिलें, दरबार, म्यूनिसपल और डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड ऐसे ही स्थल हैं जहाँ वे अपनी श्रेष्ठता का सिक्का हिन्दुओं के दिलों पर और भी अधिक जमा सकते हैं। जब मैं कुलीन ब्राह्मण-क्षत्रियों को एक ऐसे अँगरेज की अध्यक्षता में एकत्र देखता हूँ जिसका बाप विलायत में कसाई, रोटीवाला, नाई, खानसामा, मिस्त्री खोनचेवाला या मोची का काम करता है तब मेरी आँखों में आँसू आ जाते हैं। हमारे बच्चे उस गौरांग को, ब्राह्मणों से भी ऊँचे आसन पर बैठा देखकर, ऋषि सन्तानों

होंगे! ठीक वैसे ही, जैसे शेली को कवियों का कवि माना जाता है, वे उसे 'ब्राह्मणों का ब्राह्मण' समझते होंगे। जब वे रोज़ देखते हैं कि उनके गुरुजन एक निकृष्ट कोटि के अँगरेज़ को—केवल अँगरेज़ होने के कारण—अपने से बढ़कर मानते हैं तब उनके हृदयों में आत्म-गौरव और जात्यभिमान की भावनायें कैसे पनप सकती हैं?

महाराजा-कालेज में जो राजकुमार शिक्षा पाते हैं उनके लिए उस कालेज के प्रिन्सिपल को रोज़ सलाम करना आवश्यक है। इसका परिणाम यह होता है कि प्राचीन, उच्च-राजवंशों के वंशज आक्सफ़र्ड या कैम्ब्रिज के एक मामूली ग्रेजुएट को सामाजिक स्थिति में अपने से उच्च समझने लगते हैं। इसके लिए क़ानून न होने पर भी सरकार ने परिस्थितियों का जुटाव ऐसे कौशल से किया है जिससे उसका अभीष्ट परिणाम ही निकले।

सामाजिक विजय का यह एक अनोखा ढंग है कि बाहर से देखनेवाले को यह अनुमान भी नहीं हो सकता कि किसी पर बेजा दबाव डाला जा रहा है, और काम हो ही जाता है। वस्तुतः यदि दबाव स्पष्ट और अधिक हो जाय तो सामाजिक विजय की महत्ता कम हो जाती है।

यही नहीं, कभी-कभी हम खुद अँगरेज़ों को अपना पुरोहित बनने के लिए आमंत्रित करते हैं। हममें से कुछ ऐसे हैं जो योरपीयों की अध्यक्षता में कान्फ़रेंसें करते हैं। यहाँ तक कि हमारी 'प्रतिष्ठित महासभा' भी जो भारत भर की बुद्धिमत्ता और देश-प्रेम की सम्मिलित प्रतिनिधि समझी जाती है, आत्माभिमान से इस क़दर शून्य है कि वह संस्कृत-ज्ञान से शून्य, हमारे शास्त्रों से घृणा करनेवाले, गोमांसभक्षी योरपीयों को सभापतित्व के लिए आमंत्रित करती है। ब्रिटिश भारत के 'देश-भक्तों' की 'महासभा' और उसका सभापति एक अँगरेज़! शासक-जाति का एक अंग! क्या हम १२०० ईसवी में भी हिन्दुओं की किसी ऐसी राष्ट्रीय महासभा की कल्पना कर सकते हैं जिसका सभापतित्व मुहम्मद ग़ोरी ने किया हो? या क्या १६६० में हिन्दुओं की 'नेशनल कांग्रेस' शायस्ता ख़ाँ के सभापतित्व में हो सकती थी?

अँगरेज़ी स्कूल-कालेजों की शिक्षा ने हमारी राष्ट्रीय भावना को कैसा कुचल दिया है, इसका नमूना हमें बाबू विपिनचन्द्र पाल के भाषण के निम्न वाक्य से मिल सकता है। यह भाषण उन्होंने सन् १९०४ में सर हेनरी काटन की अध्यक्षता में होनेवाली कांग्रेस में दिया था—

'महिलाओ और सज्जनो, और किसी कार्य से किसी अधिकारी के सामने हाथ जोड़कर जाने में मुझे लज्जा आती है; पर ऐसे व्यक्ति के सामने जिसे हमने अपना नेता और इस राष्ट्रीय महासभा का सभापति चुना है, हाथ जोड़े जाने में मैं अपना गौरव समझता हूँ। मुझमें आत्माभिमान और देशप्रेम प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं।"

वस्तुतः मिस्टर पाल को उस समय तक सच्चे राष्ट्रीय धर्म की दीक्षा नहीं मिली थी। 'शिक्षित-हिन्दुओं की उस महासभा को उस बेहूदे और जंगली-पन के ढंग से उस विदेशी की तारीफ़ करते देखकर—जो उसी जाति का है जिसने उसके देश को दासता की जंजीरों में जकड़ दिया है—किसी भी विदेशी को हँसी आती होगी। क्या इससे यही प्रमाणित नहीं होता कि न तो हम 'देशभक्त' थे और न हमें 'देश-प्रेम' और 'आत्म-सम्मान' शब्द के अर्थ का भी ज्ञान था। इस प्रकार भारत का शिक्षित-वर्ग संसार का उपहास-भाजन बन रहा था और सामाजिक विजय की अग्नि क़दम-ब-क़दम बढ़ती हुई हमारे आत्माभिमान और राष्ट्रीय गौरव को भस्म कर रही थी।

सामाजिक विजय की आवश्यकता से अँगरेज़ों को क्लासरूम में अध्यापक के रूप में, दफ़्तरों में बड़े साहब के रूप में, डिस्ट्रिक्ट व म्यूनिसिपल बोर्डों में चेयरमैन के रूप में, अस्पतालों में सिविलसर्जन के रूप में तथा दरबारों व कौंसिलों में चेयरमैन के रूप में हिन्दुस्तानियों से मिलने के लिए बाध्य होना पड़ा। क्लबों और विश्रामागारों में मित्र के रूप में मिलने की उन्हें कोई आवश्यकता ही नहीं थी। वे मालिक, अभिभावक और सरपरस्त का पार्ट अदा करना पसन्द करते हैं, मित्र का नहीं। उनका लक्ष्य है सामाजिक विजय, जिसके लिए असमानता के आधार पर सामाजिक व्यवहार को स्थापित करना

फा १०

चाहिए। इसी प्रयोजन से वे ऐसे ही स्थलों का निर्माण
कर लेते हैं जिनमें उनकी श्रेष्ठता क़ायम रहे।

(३)

जो जाति जीवित और स्वस्थ होगी उसके युवक
अपनी सामाजिक विजय में स्वयं सहयोग न देंगे। वे कर
चुका देंगे और चुप रहेंगे। म्यूनिसपल बोर्ड या कौंसिलों
की मेम्बरी-द्वारा सम्मान पाने की लालसा से आगे न
बढ़ेंगे। ब्रिटिश भारत में हाईकोर्ट की जजी, कौंसिलों
की मेम्बरी और डिप्टी कमिश्नरी की अपमानपूर्ण जगहों
के लिए जो धक्का-मुक्की होती है उससे पता लगता है कि
सामाजिक विजय का प्रभाव हमारे देश में कहाँ तक व्याप्त
हो गया है और ब्राह्मणों को अपदस्थ करके उनके स्थानों
पर क़ब्ज़ा जमाने में सरकार कहाँ तक सफल हो चुकी है।
जो ब्राह्मण किसी अब्राह्मण की उपस्थिति में एक गिलास
पानी पीने से परहेज़ करता है वह एक ईसाई, गोभक्षक
और विदेशी के सभापतित्व में उससे नीचे स्थान पर बैठ-
कर क्यों गौरव का अनुभव करता है? क़ानून तो हमें
इस सामाजिक तिरस्कार को सहन करने के लिए विवश
नहीं करता। हम गर्म दल के हों, चाहे नर्म दल के,
पर यदि अपनी पराधीन जाति की सामाजिक विजय में
सहयोग देने से इनकार कर दें तो हम उचित ही करेंगे।
अपने राजनैतिक पतन का विरोध हम नहीं कर सकते,
क्योंकि ऐसा करते ही हम पर राज-विद्रोह का आरोप किया
जा सकता है; पर अपनी सामाजिक विजय को, जान-माल का
खतरा बिना उठाये भी, हम रोक सकते हैं। पढ़े-लिखे हिन्दु-
स्तानी पूर्णतया अराष्ट्रीय और पतित हो जाते हैं। उनमें
से अधिकांश घृणित पैसे के लोभ में अपनी राष्ट्रीयता की
जड़ खोदने के निन्दनीय काम में लग जाते हैं। अँगरेज
अध्यापकों के शिष्यों, अदालत के वकील-बैरिस्टरों, सर-
कारी अहलकारों, सिविलियनों और सिनेट, सिण्डीकेटों व
कौंसिलों के मेम्बरों और ऐसे आन्दोलनों के संचालकों की
हैसियत से जो अँगरेज़ों का नेतृत्व स्वीकार करने से ज़रा
भी नहीं हिचकते वे लोग निरन्तर हिन्दू-राष्ट्र को रसा-
तल में ले जा रहे हैं। वे उन गुणों को जड़ से मिटाने की
कोशिश कर रहे हैं जो राष्ट्रीय जीवन-गर्व, आत्मसम्मान
और जातीय व्यक्तित्व की भावना के मूल स्रोत हैं। 'शिक्षित'
भारतीयों की बदौलत ही केर हार्डी हीरो बन बैठा, जैसे
वह कोई ऋषि, संन्यासी या हरीसिंह नलवा की भाँति
वीर हो। फिर एक ऐसा दृश्य उपस्थित हो गया जिसने
सिद्ध कर दिया कि हम तीव्र गति से हबशियों की मानसिक
और नैतिक अवस्था को पहुँच रहे हैं--सैकड़ों कुलीन
ब्राह्मण और सम्पन्न हिन्दू नेता एक ऐसे आदमी को, उसके
अँगरेज़ होने के कारण ही, सम्मानपूर्ण पार्टियाँ देने लगे, जो
वस्तुतः इँग्लेण्ड के चमारों, लुहारों और कुलियों का नेता
था। इस प्रकार उन्होंने स्वयं को इँग्लेण्ड के कुलियों व
मोचियों से भी निम्न श्रेणी में रख लिया। भारत के
अँगरेज़ी अफ़सर अपनी सामाजिक विजय की नीति को
सफल होते देखकर बड़े प्रसन्न होते होंगे।

सामाजिक विजय का परिणाम है ग़ुलामी और स्थायी
बन्धन। जो इस कार्य में सहायता देते हैं वे अपने को
पारिया की श्रेणी में सम्मिलित करते हैं। राष्ट्र का
सैनिक और राजनैतिक नेतृत्व तो ऋषियों के हाथों से
निकल कर अँगरेज़ों के हाथों में पहुँच ही चुका है। अब
क्या सामाजिक नेतृत्व भी उन्हीं के हाथों में पहुँच जायगा
जो ब्राह्मणों और ऋषियों का एकाधिकार था। यदि सामा-
जिक विजय पूर्ण हो गई तो हमारे राष्ट्र के लिए फिर
कोई आशा नहीं। इस कार्य के दुष्परिणाम तो अभी
आरम्भ में ही दिखाई देने लगे हैं। राष्ट्रीय पुनर्निर्माण
की तैयारी के लिए इनका मुक़ाबिला करने की आवश्य-
कता है। इस समय मैं सामाजिक विजय का प्रतिरोध
करने के उपायों का ज़िक्र नहीं करना चाहता। मैं केवल
हिन्दू-भारत से यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न करता हूँ कि क्या
'अँगरेज़' तुम्हारा पुरोहित होगा?
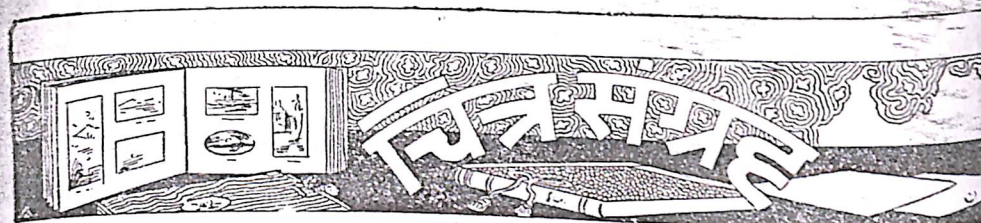
पंजाब के महाराज रणजीतसिंह के पुत्र महाराज शेरसिंह, जिन्होंने महाराज खड्गसिंह के बाद सन् १८४० से १८४४ ईसवी तक राज्य किया।
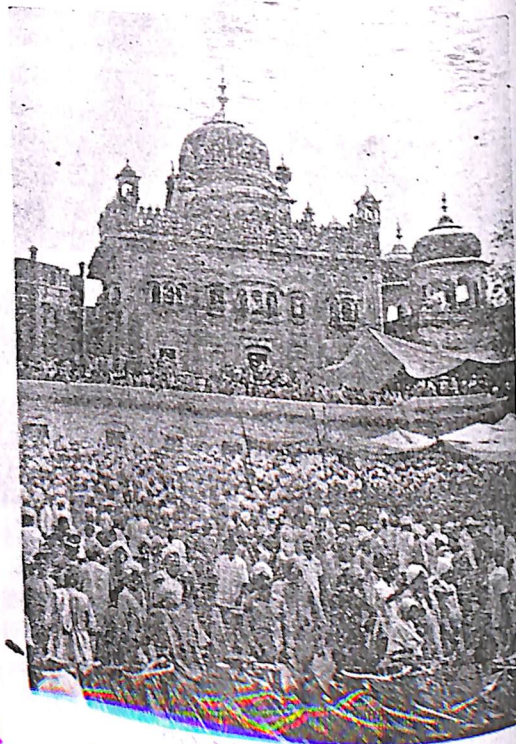
महाराज रणजीतसिंह-शताब्दी-उत्सव के उपलक्ष्य में लाहौर में उनकी समाधि के पास एकत्र जनता का एक दृश्य।
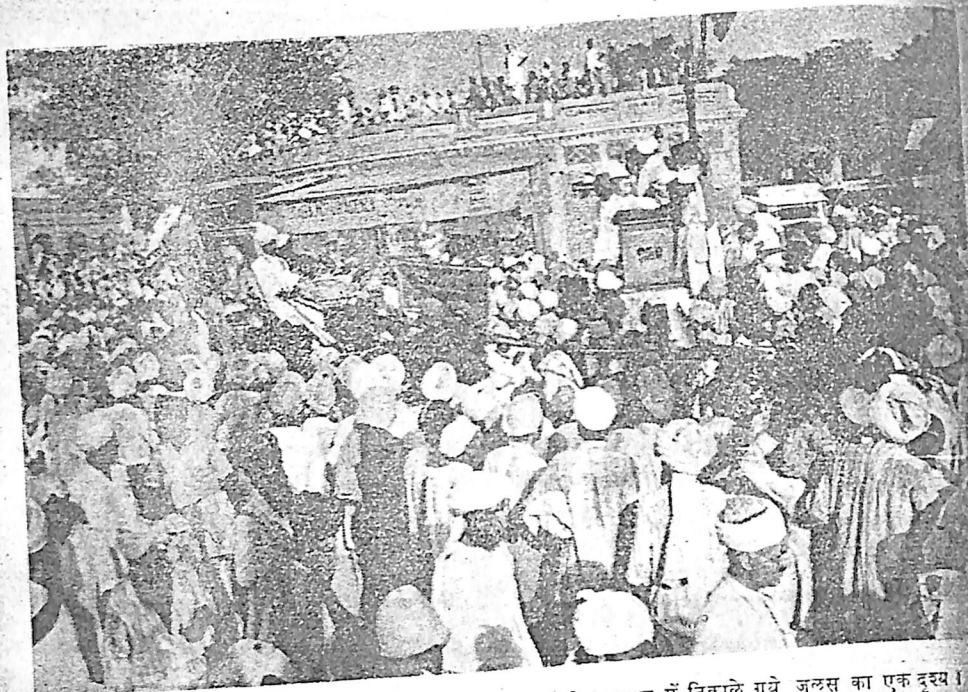
गुरुद्वारा-प्रबंधक कमेटी-द्वारा महाराज रणजीतसिंह-शताब्दी के उपलक्ष्य में निकाले गये जुलूस का एक दृश्य।

श्रीमती किरण बोस (कलकत्ता), जो लीग आफ़ नेशन की एडवायज़री कमिटी में भारत का प्रतिनिधित्व करने गई हैं।

संयुक्तप्रांत के न्यायमंत्री डाक्टर कलाशनाथ काटजू के पुत्र पण्डित शिवनाथ काटजू का विवाह अभी हाल में श्रीमती राजकुमारी के साथ सम्पन्न हुआ है।

एबटाबाद में महात्मा जी स्त्रियों की एक सभा में भाषण कर रहे हैं।
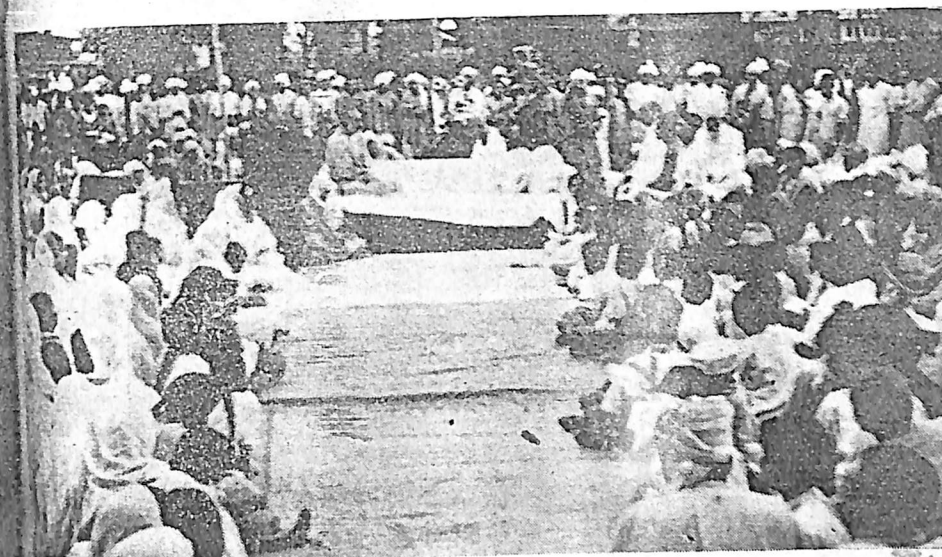
एबटाबाद (सीमाप्रांत) में महात्मा गांधी—महात्मा जी व खान अब्दुल गफ़्फ़ार खाँ बीच में आमने-सामने बैठे संध्या की प्रार्थना कर रहे हैं।

डैंजिग-सिनेट के प्रेसीडेंट हर ग्रिसलर

नई पुस्तकें

१—श्री वाल्मीकि-रामायण—रूपान्तरकार, पंडित ...वानदास अवस्थी एम० ए० हैं। प्रकाशक, ज्ञान-लोक, ...रागंज, प्रयाग है। पृष्ठ-संख्या ५६०, छपाई-सफ़ाई ...छी और मूल्य १॥=) है।

यह वाल्मीकीय रामायण के सातों काण्डों का सरल और सुबोध हिन्दी में अनुवाद है। मूल के भाव सुरक्षित ...ने की पूरी चेष्टा की गई है, साथ ही संक्षिप्त-शैली ...भी पर्याप्त अनुसरण दिखलाई देता है। कथा शृंखला ...वस्थित है अतः पढ़ने में पूरा आनन्द आता है। केवल ...न्दी जाननेवाले पाठकों को आदि कवि की काव्य-सुधा ...आस्वादन कराने के लिए यह पुस्तक सहायक हो ...ती है।

२-४—गीता-प्रेस गोरखपुर की ३ पुस्तकें—

(१) श्री भगवन्नामकौमुदी—अनुवादक, पाण्डेय ...नारायणदत्त शास्त्री हैं। छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-...या २९२ और मूल्य ॥=) है।

यह विद्वद्वर श्री लक्ष्मीधररचित इसी नाम की ...त-पुस्तक का हिन्दीरूपान्तर है। अनुवाद अच्छा ... इसमें भगवन्नाम की 'अनन्त महिमा' का शास्त्रीय ...ष्टिकोण से विवेचन किया गया है। जो कीर्तनवादी अपने ...की शास्त्रोक्त व्याख्या देखने के उत्सुक हों उनके ... यह पुस्तक उपयोगी है।

(२) सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र—लेखक, श्रीयुत शान्तनु-...री द्विवेदी हैं। छपाई-सफ़ाई साधारण, पृष्ठ-संख्या ... और मूल्य ।–) है।

इसमें पुराण-प्रसिद्ध राजा हरिश्चन्द्र का चरित्र वर्णन ... गया है। कई सुन्दर रङ्गीन व सादे चित्र भी हैं। ... सरल है।

(३) श्वेताश्वतरोपनिषद्—पृष्ठ-संख्या २५० और ... ॥=) है।

इस पुस्तक में श्वेताश्वतर उपनिषद् का मूल पाठ ... उस पर शांकरभाष्य देकर साथ ही सरल हिन्दी अनुवाद भी दे दिया गया है। अनुवाद अच्छा व सरल है। पुस्तक मुमुक्षुओं के लिए संग्रहणीय है।

५—राष्ट्रभाषादर्शन (प्रथम भाग)—लेखक, गायनाचार्य पंडित महादेव शास्त्री गोखले और प्रकाशक, प्रकाशन-मण्डल सांगली हैं। छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या ७० और मूल्य ।=) है।

यह हिन्दी का व्याकरण है जो महाराष्ट्र विद्यार्थियों के लिए लिखा गया है। महाराष्ट्रों को राष्ट्रभाषा पढ़ने में सहायक हो सकता है।

६—इस्लामधर्म की खूबियाँ—अनुवादक, श्रीयुत जगतनारायण बी० एस-सी० और प्रकाशक, डायमंड-जुबली थियासोफ़ीकल पब्लिशिंग हाउस, बाँकीपुर, पटना है। पृष्ठ-संख्या ३६ और मूल्य =)॥ है।

यह श्रीमती एनीबेसेंट के एक लेक्चर का हिन्दी-रूपान्तर है। विषय नाम से स्पष्ट है। पुस्तक रोचक व शिक्षाप्रद है।

७—मज़दूर-जगत्—लेखक, श्रीयुत श्यामविहारी शुक्ल 'तरल' हैं। प्रकाशक, पंडित कालिकाप्रसाद मिश्र विद्यानिकुंज, कानपुर हैं। छपाई भद्दी, पृष्ठ-संख्या ५० और मूल्य =) है।

इसमें मजदूरों पर लिखी गई लेखक की कुछ रचनायें संगृहीत हैं जो पढ़ने में अच्छी लगती हैं। भाषा में प्रवाह है और भावों में साम्यवादी मनोवृत्ति की झलक।

८—विश्वमंच का खिलाड़ी—लेखक, श्री राधाकृष्ण तोषनीवाल (प्रफुल्ल) हैं। प्रकाशक, श्री राजस्थान हिन्दी-उपासना-मंदिर, अजमेर है। छपाई-सफ़ाई मामूली, पृष्ठ-संख्या १४८ और मूल्य १॥) है।

यह पुस्तक तोषनीवाल महोदय के कुछ निबन्धों का संग्रह है जिनमें विश्व-प्रहेलिका पर हिन्दूधर्म-ग्रन्थों के दृष्टिकोण से विचार किया गया है। इन निबन्धों को पढ़ने से ज्ञान होता है कि लेखक ने पुराणों का अध्ययन तो काफ़ी किया है, पर उनका मनन नहीं किया; फलतः

उसके विचारों में सामंजस्य और दृढ़ एकरूपता नहीं है। भाषा भी अशुद्ध है और वाक्य-विन्यास तो निहायत भद्दा अशुद्ध तथा अव्यवस्थित है।

९—झिलमिल—लेखक, श्री जोतिनप्रसाद हैं। प्रकाशक, ग्रन्थमाला कार्यालय, बाँकीपुर हैं। छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या ८५ और मूल्य ।।=) है।

यह सुन्दर उपन्यास है। कथानक ग्रामीण है। चरित्र-चित्रण में अच्छी सफलता मिली है। रोचक भी ख़ूब है। लेखक महोदय ने निस्सन्देह किशोरों की मनोवृत्ति के अनुकूल मसाला ही उनके हाथों में दिया है।

१०—ग्राम-संगठन—लेखक, श्रीयुत रामाचल पाण्डेय और प्रकाशक, हिन्दी-पुस्तक एजेंसी, ज्ञानवापी बनारस हैं। छपाई-सफ़ाई मामूली, पृष्ठ-संख्या ६६ और मूल्य ।।) है।

यह एक उपन्यास है जिसमें एक ग्राम-सेवक का चित्रण किया गया है। पुस्तक सामयिकता की दृष्टि से अच्छी है, कला की दृष्टि से साधारण।

११—विचारसुमनावली—लेखक व प्रकाशक, स्वामी कैलासानन्द, भीकनगाँव, इन्दौर स्टेट हैं। छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या १९० और मूल्य ।।) है।

इस पुस्तक में आदर्श वाक्य संगृहीत हैं, जिनके पठन-मनन से सदाशयिता और सद्भावनाओं को प्रेरणा मिलती है। ऐसी पुस्तक जीवन-कानन में निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने के लिए भटकते हुए पथिक का पथ-प्रदर्शन करती है। नवयुवकों को इसे अवश्य पास रखना चाहिए।

१२—शिक्षा-सरोज—लेखक, श्री बच्चीलाल गुप्त 'योगन्द्र' और प्रकाशक योगेन्द्र-कुटीर, बराटा, बड़ागाँव, झाँसी हैं। छपाई-सफ़ाई मामूली, पृष्ठ-संख्या २८ और मूल्य ।) है।

इसमें लेखक महोदय की ३३ रचनायें संगृहीत हैं जिनमें अधिकांश समाजसुधार के दृष्टिकोण से लिखी गई साधारण तुकबन्दियाँ हैं। उक्त उद्देश्य के लिए पुस्तक उपयुक्त है।

१३—जापान-दिग्दर्शन—लेखक, पंडित सुरेन्द्रनाथ दुबे, विद्या-भूषण, बी० ए० और प्रकाशक, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ हैं। छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या १५४, चित्रसंख्या १९ और मूल्य ।।।) है।

फ़तेहगढ़ (फ़र्रुख़ाबाद) के वकील पंडित चिरंजी[illegible] लाल मिश्र सन् १९३७ में जापान गये थे। वहाँ की [illegible] सहन और आदर्शों का उनके मन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। उनकी इच्छा थी कि वे जापान-सम्बन्धी [illegible] अनुभवों को सर्व-साधारण पर प्रकट करें। इसके लि[illegible] कई बार उन्होंने आम सभाओं में व्याख्यान भी दिये [illegible] अब उन्होंने अपने एक मित्र-द्वारा यह पुस्तक अपने [illegible] के प्रतिबिंब के रूप में प्रकाशित कर दी है। [illegible] जापान-सम्बन्धी समस्त ज्ञातव्य बातें बहुत साफ़ भाषा [illegible] विस्तारपूर्वक समझाई गई हैं। मिश्र जी ने [illegible] भूमिका में सब कांग्रेस-मन्त्रियों और विशेषतः शिक्षा[illegible] मन्त्रियों को अपनी ज़ोरदार सलाह दी है कि वे [illegible] १-१ महीने के लिए जापान अवश्य हो आयें। [illegible] ज्ञात होता है कि जापान-निवासियों की रहन-सहन, [illegible] और संस्कृति का मिश्र जी के हृदय पर बड़ा गहरा [illegible] पड़ा है। जापान-भ्रमण की इच्छा रखनेवालों या [illegible] बैठकर ही जापान-भ्रमण का मज़ा लूटने की [illegible] रखनेवालों के लिए यह पुस्तक विशेष उपयोगी [illegible] यथावश्यक चित्रों के दे देने से पुस्तक और भी रोचक बन गई है।

१४—श्रीरामकृष्णलीलामृत—यह परमहंस [illegible] कृष्णजी का विस्तृत जीवन-चरित है जो दो [illegible] में छपा है। पहले भाग की पृष्ठ-संख्या ३३७ और [illegible] १।=) और दूसरे भाग की ३९० और मूल्य [illegible] है। यह मराठी की पुस्तक का हिन्दी-अनुवाद [illegible] है। मराठी-पुस्तक के लेखक स्वर्गीय श्री न० रा० [illegible] ने परमहंस जी का चरित बड़ी खोज के साथ [illegible] था। उन्होंने परमहंस जी के मुख्य शिष्य [illegible] शारदानन्द की बँगला-पुस्तक 'श्री रामकृष्णलीला[illegible]' के आधार पर तो इसकी रचना की ही, साथ ही [illegible] प्रामाणिक अँगरेज़ी और बँगला पुस्तकों से भी सहायता ली। प्रसिद्ध फ़्रेंच विद्वान् रोमां रोलां ने भगवान् [illegible] जो चरित फ़्रेंच-भाषा में लिखा है, उसका भी [illegible] उपयोग इस पुस्तक में किया गया है। इस प्रकार पुस्तक को सर्वांग पूर्ण बनाने के लिए लेखक ने [illegible] प्राप्त सामग्री का उपयोग किया। इस दृष्टि [illegible]

परमहंसदेव का चरित एक प्रामाणिक रचना है और इसमें उनके अलौकिक चरित का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। हिन्दी में परमहंसदेव का कोई प्रामाणिक चरित नहीं है अतः इस अनुवाद से बड़े भारी अभाव की पूर्ति हुई है। अनुवादक पण्डित द्वारकानाथ तिवारी बी० ए०, एल-एल० बी० ने इसका अनुवाद सावधानी से किया है। अनुवाद की भाषा सरल और साफ़-सुथरी है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन श्री रामकृष्णआश्रम, धन्तोली, नागपुर (सी० पी०) ने किया है। इस महत्कार्य के लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। हिन्दी के प्रेमियों को इस उत्तम चरित का अवश्य संग्रह करना चाहिए क्योंकि इसके पठन-पाठन से आधुनिक भारतीयों को अपनी तथा देश की उन्नति करने की प्रेरणा प्राप्त होगी।

१५-१६—कर्मकाण्ड-सम्बन्धी दो पुस्तकें—

(१) दशगात्र-प्रभा—झङ्ग के के० जी० सी० हाई स्कूल के संस्कृताध्यापक पण्डित गौरीशङ्कर जी शास्त्री, विद्याभूषण महोदय ने यह परमोपयोगी पुस्तक सङ्कलित की है। इसमें प्रेत की सद्गति के लिए मृत्युकाल से लेकर दशगात्र अर्थात् मृत्यु के दसवें दिन तक के सभी प्रकार के आवश्यक कर्त्तव्यों तथा विधि-अनुष्ठान आदि का सङ्कलन किया गया है। मोटे अक्षरों में हर एक कर्म के मन्त्र दिये गये हैं और सरल हिन्दी में उनकी विधि समझा दी गई है। दाह-कर्म और श्राद्ध करने के कौन-कौन से लोग अधिकारी हैं और किस दिन के श्राद्ध के लिए कौन-कौन सी सामग्री अपेक्षित है, ये सभी बातें इस पुस्तक में लिखी हुई हैं, इससे इसकी उपयोगिता और बढ़ गई है। पुस्तक का मूल्य छः आना है और यह पण्डित हरिदत्त जेतली, कूचा पीपलवाला, झङ्ग सिटी को लिखने से मिल सकती है।

(२) सङ्कल्पसारप्रभा—यह भी उक्त पण्डित गौरीशङ्कर जी शास्त्री की कृति है। इसमें भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुओं के दान तथा भिन्न भिन्न प्रकार के धार्मिक कृत्यों एवं अनुष्ठानों की सङ्कल्प-विधि लिखी गई है। देवताओं और पितरों की तृप्ति तथा [illegible]जीवन की सद्गति के लिए आस्तिक हिन्दू को जितने प्रकार के कर्म-काण्ड करने पड़ते हैं, उन सभी का सङ्कल्प इसमें लिखा हुआ है। मूल्य पाँच आने है और यह मेहरचन्द लक्ष्मणदास, संस्कृत-पुस्तकालय, सैद मिट्ठा बाज़ार, लाहौर से मिल सकती है।

१७—श्री दुर्गा-प्रयोग-प्रभा—इस पुस्तिका में पण्डित गौरीशङ्कर जी शास्त्री ने नवरात्र में श्री दुर्गा-सप्तशती के पाठ की विधि लिखी है और उस अवसर पर किये जानेवाले कर्म-काण्ड की विधि तथा आवश्यक मन्त्रों का भी सङ्कलन किया है। नई बात इस पुस्तक में यह है कि लेखक महोदय ने प्रमाण उद्धृत करते हुए लिखा है कि नवरात्र में अनुष्ठान की पूर्ति के लिए साढ़े नौ पाठ करना आवश्यक है और वे साढ़े नौ पाठ किस तरह किये जाते हैं। इसका मूल्य =) है और यह के० जी० सी० हिन्दू हाई स्कूल, झंग के पते पर उक्त शास्त्री जी को पत्र लिख कर मँगाई जा सकती है।

—ठाकुरदत्त मिश्र

१८—जैनधर्म—लेखक, मुनिराज विद्याविजय जी हैं, पृष्ठ-संख्या १५५ और मूल्य ≡) है।

पुस्तक हिन्दी और सिन्धी में पहले ही निकल चुकी है। गुजराती भाषा में जैनधर्म के मूल-सिद्धान्तों की व्याख्या करके धर्म का प्रसार करना इस पुस्तक का ध्येय है। पुस्तक सरल भाषा में लिखी गई है और जैनधर्म के प्रचार में सहायक होगी ऐसी आशा है।

मुनिराज विद्याविजय जी ने जैनधर्म पर कई पुस्तकें लिखी हैं और उनकी विद्वत्ता के विषय में जैन-धर्मावलम्बियों को कोई सन्देह नहीं होगा। परन्तु प्रस्तुत पुस्तक में एक सुबोध व्याख्या के अतिरिक्त अन्य बातों की कमी है। पुस्तक की प्रस्तावना में विद्याविजय जी कहते हैं—"जैनों के मान्य चौबीस तीर्थङ्करों में से कई तीर्थङ्करों के नाम वेद में आये हैं। इससे स्पष्ट है कि जैनधर्म वेदकाल से प्राचीन है।" हो सकता है कि विद्याविजय जी का सिद्धान्त ठीक हो परन्तु यदि वे इस विषय पर कुछ और प्रकाश डालते तो शायद हम उनसे सहमत होते।

—गङ्गाशङ्कर पण्ड्या

१९—झाँसी की रानी—रचयिता, श्रीयुत ईशदत्त पाण्डेय 'श्रीश' साहित्यरत्न, शास्त्री, काव्यतीर्थ हैं।

प्रकाशक, श्रीयुत माधवप्रसाद मिश्र 'माधव', माधव-मन्दिर, रानी भवानी गली, काशी हैं। पृष्ठ-संख्या ८० और मूल्य ।।) है।

प्रस्तुत पुस्तक 'श्रीश' जी लिखित हिन्दुस्तानी भाषा की एक रोचक काव्य-पुस्तक है।

इसमें नत्थे-पराजय से ह्यरोज़ की झाँसी-विजय तक का ओजमयी भाषा में विशद वर्णन है। पढ़कर भुजायें फड़क उठती हैं तथा हृदय में उत्साह एवं देशभक्ति की भावना जाग्रत हो जाती है। 'रण-हुंकार', 'नत्थे-पराजय', 'प्रश्न', 'उत्तर', 'महासमर', 'विदा', 'जागो', आदि विशेष पठनीय हैं। 'जागो' शीर्षक स्तम्भ में एक स्थान पर 'श्रीश' जी कहते हैं—

"चिर ताड़ित अपमानो! जागो! आकृतिमय वलिदानो! जागो!
साहस का कवच पहन कर नर-सिंहों की सन्तानो! जागो!"
माँ है विपदा में पड़ी हुई उसका कुछ हाहाकार सुनो!"

छपाई-सफ़ाई सुन्दर है। भाषा उर्दू शब्दों की बहुलता के कारण खटकती है तथापि राष्ट्रीय कविता-प्रेमियों के लिए, ख़ास तौर से युवकों के लिए संग्रहणीय है।

—गोविन्दाव मराठे

२०—प्रात प्रदीप—लेखक, श्रीयुत उपेन्द्रनाथ 'अश्क' और प्रकाशक शर्मा ब्रदर्स, १८४ अनारकली लाहौर हैं। मूल्य १) है।

'अश्क' मूलतः उर्दू के लेखक हैं। इधर हिन्दी में कहानीकार के रूप में प्रसिद्ध हुए। उन्हें बहुत दिन नहीं हुए। इसी बीच में यह कथाकार कविता भी करने लगे हैं। कहते हैं आदि कवि के हृदय में कविता का जन्म क्रौंच की वेदना के कारण हुआ था। 'अश्क' की कविताओं के पीछे भी उसकी प्रियतमा पत्नी की मृत्यु अमर सत्य के रूप में स्थिर है। वैसे तो हिन्दी के लेखकों में 'अश्क' जैसे अलमस्त और हँसोड़ कहाँ हैं?

कविता हृदय की अनुभूति है। प्रियतमा की मृत्यु ने 'अश्क' के हृदय में इसी अनुभूति को जन्म दिया है। वियोगजन्य अनुभूति में कितनी कसक और करुणा है। प्रकृति की अमर सुन्दरता में भी उसने विषाद को देखा है—

"निश्वासें हैं और समीरण,
आज कहाँ भ्रमरी का गुंजन,
शूल हुआ कलियों का यौवन,
लतिकाओं को भी लगती है,
लहराने में लाज।"

और

"देख तनिक पावस का रोना,
पागल करना पागल होना,
पतझर का झर जीवन खोना
संसृति के कनकन में व्यापक,
पीड़ा देख अपार।"

सारी पुस्तक में यही कहानी है और हमारी समझ में ज़रूरत से कुछ अधिक है। कवि को इतनी भावुकता शोभा नहीं देती लेकिन कवि का प्रथम प्रयास समझकर हम आगे अधिक स्थिरता की आशा करते हैं।

चन्द्रकीर्ति

२१—पञ्चांग १९९६—पंचाग हिन्दूगृहस्थों की एक आवश्यक चीज़ है, परन्तु ये सभी संस्कृत में होते हैं और इनका उपयोग केवल संस्कृत जाननेवाले कर पाते हैं, पर सभी हिन्दू संस्कृत जानते नहीं, अतएव वे संस्कृत के पञ्चांग से लाभ नहीं उठा पाते और उन्हें असुविधा का सामना करना पड़ता है। परन्तु यह आलोच्य पंचांग हिन्दी में है, साथ ही आकार-प्रकार में भी छोटा है, अतः इसका थोड़ी भी हिन्दी जाननेवाले उपयोग कर सकते हैं। इसमें साल भर के भिन्न भिन्न विषयों के मुहूर्त तथा त्यौहारों के संक्षिप्त विवरण भी दिये गये हैं। यदि कहीं थोड़े में पंचाग देखने की विधि भी बतला दी जाती तो और भी अच्छा होता। इसके प्रकाशकों ने इसे 'दि काशी आयुर्वेदिक सिंडीकेट लिमिटेड' नाम की ओषधियों की कम्पनी की विज्ञप्ति के लिए निकाला है। साथ ही इस बात की सूचना भी छाप दी है कि वे अगले साल से हिन्दी में पंचांग भी निकाला करेंगे। हम उनकी इस सूचना का स्वागत करते हैं, क्योंकि उनके इस प्रयत्न से एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति होगी। उक्त पञ्चांग के मिलने का पता—दि काशी आयुर्वेदिक सिंडीकेट लिमिटेड, १६६, हरिसन रोड, कलकत्ता।

२२—प्रभात-फेरी—लेखक श्री नरेन्द्र और प्रकाशक, प्रकाश-गृह, कालाकाँकर (अवध) हैं। पृष्ठ-संख्या १२४ तथा मूल्य १।) है। छपाई-सफ़ाई उत्तम है।

'शूल-फूल' और 'कर्ण फूल' की चुनी हुई तथा अन्य अप्रकाशित कविताओं को इस नवीन संग्रह में स्थान दिया गया है! इसमें कुल ७७ कवितायें हैं जो अधिकतर १९३२ से १९३५ तक की लिखी हुई हैं।

यद्यपि श्री नरेन्द्र जी हिन्दी के नई पीढ़ी के कवियों में अपना निश्चित स्थान बना चुके हैं, फिर भी इस संग्रह को लेकर उपस्थित होते हुए उन्हें विश्वास नहीं कि आलोचक उनका किस प्रकार स्वागत करेंगे। वे अपने में इतनी क्षमता और साहस नहीं पाते कि कह सकें—"सुरीले कंठों का अपमान जगत में सह सकता है कौन?" अपने नम्र और मधुरस्वभाव के अनुकूल उनकी याचना है—

"भाई मुझे घृणा मत करना
नन्हा-सा उर है सुकुमार!

× × ×

आओ, दो दिन के जीवन में
प्रेम-भरे दो बोल बोल लो

× × ×

दो दिन का नश्वर संसार!"

परन्तु हम उन्हें विश्वास दिला सकते हैं कि उनके ऐसे से सुकुमार हृदय को, सरलता कोमलता तथा माधुर्य को, प्यार न करके संसार उसके साथ नहीं, अपने साथ अन्याय करेगा। कवि को इतनी क्षमायाचना की आवश्यकता नहीं।

प्रभात-फेरी में विविध प्रकार की कवितायें हैं। जहाँ एक ओर वह बंदी मानव को आश्वासन देता हुआ उसकी चेतना को जाग्रत् करने के लिए कहता है—

"सृजनहार के सृजनहार तुम, तुम ही प्रतिपालन बंदी!
संसृति के गृह में दीपक-सा
वह उपयोगी है पर नश्वर
उसका तो जलना बुझना भी
मानव की इच्छा पर निर्भर,
जीवन क्रम में ईश्वर नश्वर केवल तुम शाश्वत बंदी!"

संसार के दुख-दैन्य से आकुल होकर किसी शाश्वत सत्ता के सामने उसका शिर झुक जाता है और उसके मुँह से ईसामसीह की भाँति यह प्रार्थना निकल पड़ती है—

"विधना जग में यदि दुख है,
मुझको दे दो जग का दुख,
ये तो सब सुख से खेलें,
खेलें जग में सुखनिधियाँ!

परन्तु इसमें भी एक बात ध्यान देने की है। चाहे वह ईश्वर की प्रार्थना करे या उसकी भर्त्सना उसका हृदय जगती के मानवों के लिए सुखसंकलन में लगा हुआ है। व्यक्तिगत ऐश्वर्य की उसे आकांक्षा नहीं। निश्चय ही वह ऐसा ईश्वर-भक्त कवि नहीं है जिसे प्रार्थनाओं और याचनाओं में वास्तव में कोई विश्वास हो। कंगालों के दयनीय जीवन को देखकर तो वह यहाँ तक कह देता है—

"जिसे तुम कहते हो 'भगवान',
उठाते हो सत्ता का भार,
जो बरसाता है जीवन में
रोग-शोक-दुख-दैन्य अपार,
जिसने तुमको उदर दिया है
और अँगारों का संसार
उसे सुनाने चले पुकार?
कौन सुनता है यह चीत्कार?

× × ×

भूल गया है ईश्वर जग को
या मादक अधिकार!"

कवि की यह विद्रोह भावना बीसवीं सदी के उपयुक्त ही है। हम उसका स्वागत करते हैं।

यह विद्रोह भावना केवल उस सत्ता के ही प्रति नहीं है, जिसे टामस हार्डी ने 'महती नपुंसकता' के नाम से याद किया है, वरन वह परम्परा से स्वीकृत, पाप-पुण्य के विचारों को भी व्यर्थ आडंबर समझता है। पर उसे 'गुरुओं' को खरी-खरी सुनाने का साहस नहीं होता, वह तो केवल प्रार्थना भर कर सकता है—

"यहाँ कौन इस जग में पापी?

× × ×

देखे फूल, कली, किसलय-दल
क्रीड़ातुर हो उठे चपल-चल!"

हाँ, तथा कथित पाप की ओर फिसल जाने का कारण

वह मानव की सहज-दुर्बलता ही समझता है। कौन इससे बच सकता है? कभी-कभी तो हम अनिवार्य आवश्यकताओं के वशीभूत होकर भी 'भूलें' करने को बाध्य हो जाते हैं:—

> "प्यास लगी, देखी मरीचिका,
> भूल गये, अपनापन मरु में,
> भूख लगी, देखे सुवर्ण-फल
> भूले शिशु सोने के तरु में
> कौन नहीं हो उठता चंचल?
> कौन नहीं भूला जीवन में?"

आदि-मानव के 'अपराध' की कहानी भी तो यही है?

'रूढ़िवाद' शीर्षक कविता में रूढ़ियों के सुदृढ़ प्राचीर से सर टकराकर हार मानते हुए कहता है:—

> "पाषाण-शिलाओं से निर्मित यह रूढ़िवाद जिसको अब तक न डिगा पाई विधवाओं की भी करुणा विगलित अश्रुधार।
> छवि के उपवन में कुसुम चयन करनेवाले ये कवि बेकर क्या उसे नष्ट कर पायेंगे कर नित शिशुवत् मुष्टिक प्रहार?"

इसी लिए वह 'शिवशंकर' का आह्वान करता है—

> "खूनी खप्पर से वह वह कर
> रुद्र! झरे शोणित के निर्झर,
> होवे जग-जीवन-मरु उर्वर.
> फूले फूलों में नवस्फूर्ति
> नव जागृति जागे कलियों में
> उमड़ पड़े विश्वास स्नेह फिर
> मानव की पुलकावलियों में!"

इस संग्रह में कवि की जग-जीवन-सम्बन्धी कवितायें बहुत नहीं हैं। 'कवि के प्रति' कृषकों की आत्मा ने जो करुण पुकार की है उसे कवि ने १९३५ में सुना था। १९३५ के बाद की कवितायें इसमें थोड़ी ही हैं।

कवि के व्यक्तिगत गीतों में उसके सुकुमार व्यक्तित्व को पूर्ण प्रकाशन मिला है! इन कविताओं के शब्द-शब्द में कोमलता, माधुर्य और मादकता भरी हुई है।

हम इन कविताओं को 'यौवन-वेला' से आरम्भ करके पढ़ना चाहते हैं—

> "अलि झूम झूम आई वेला यौवन की!
> तू देख अली! कचनार कली,
> यह नई-नई खुल खेल रही"
> अलि खिली आज यौवन बहार जीवन की!

इस यौवन की मादकता से प्रेरित कविता में जीवन के प्रति असीम अनुराग, सौन्दर्य के प्रति उद्दाम प्रेम, छलक रहा है! कवि जानता अवश्य है कि मानव-जीवन नश्वर है, पर केवल इसी लिए वह 'आज का कल' से विनिमय नहीं करना चाहता कि 'उस पार न जाने क्या होगा'? प्रेम करना, मानव-जीवन की स्वाभाविक वृत्ति है—जवानी का तक़ाज़ा है! कवि में हम कीट्स के समान एन्द्रिकता पाते हैं—

> "अभी रात है, चुम्बन में मधु,
> यौवन में मद है कोमल तन।
> तरुण अरुण अगणित प्रभात प्रिय।
> मूँदे हैं मदमाते लोचन,
> मूँदे रहो नयन सुकुमारी!"

इसकी चरम परिणति 'आज न सोने दूँगी' बालम में हुई है। कुछ लोगों को आलिंगन-चुम्बन की यह कहानी भले ही अरुचिकर प्रतीत हो, पर है यह कविता—सत्य और सुन्दर यह निर्विवाद है। उसके जीवन के अनुराग का हम स्वागत करते हैं।

स्थानाभाव से हम अधिक उद्धरण नहीं दे सकते यद्यपि कवि के साथ न्याय करने के लिए उनकी आवश्यकता है!

अन्त में हम श्री नरेन्द्र को उनके इस संग्रह पर बधाई देते हैं। १२४ पृष्ठों की कविता-पुस्तक का दाम १) बहुत नहीं है। हमारा विश्वास है कि हिन्दी के पाठक इसका स्वागत करेंगे।

—व्रजेश्वर

शान्तिनिकेतन का बचपन
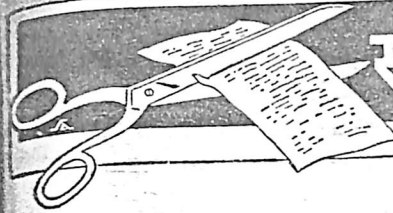
आचार्य क्षितीमोहन सेन, विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शान्तिनिकेतन के एक स्तम्भ और अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान् हैं। उन्होंने 'विश्वभारती न्यूज़' में 'शान्तिनिकेतन में अपने आरम्भिक दिनों के संस्मरण' छपाये हैं। पाठकों के मनोरंजन के लिए उस लेख का प्रमुख अंश हम नीचे देते हैं।

शान्तिनिकेतन की स्थापना तो महाकवि द्वारा ७ वर्ष पूर्व ही हो चुकी थी पर मैं वहाँ अध्यापक बनकर जुलाई १९०८ में गया। जब मैं बोलपुर स्टेशन पहुँचा रात हो चुकी थी और मूसलधार पानी गिर रहा था। सवारी के लिए केवल बैलगाड़ियाँ उन दिनों मिलती थीं। जैसे-तैसे वह रात मैंने स्टेशन पर ही बिताई और दूसरे दिन तड़के ही पैदल शान्तिनिकेतन की ओर चल दिया। बोलपुर उन दिनों एक छोटी-सी बस्ती थी; मैं कुछ ही दूर पहुँचा था कि प्रातःसमीरण में प्रवाहित सङ्गीत की लहरें मेरे कानों में पड़ीं। कवि अपनी कुटी 'देहली' के छज्जे पर बैठे हुए अपने मधुर गीतों द्वारा उदयोन्मुख सूर्य का स्वागत कर रहे थे। उन दिनों उनका कण्ठ ग़ज़ब का सुरीला था और प्रभात के शान्त वातावरण में उनका गान एक मील की दूरी से साफ़-साफ़ सुनाई देता था। उस सुरीली आवाज़ की स्मृति, जिसने मेरा इस प्रकार अभिनन्दन किया, आज भी मेरे हृदय में वैसी ही ताज़ी है।

आश्रम उन दिनों छोटा-सा था। कुछ झोपड़ियाँ थीं। छात्र और अध्यापक साथ-साथ रहते थे। केवल एक कुटी अलग थी जिसमें स्वर्गीय जगदानन्द राय अपने बच्चों के साथ रहते थे। हम लोग सब मिलाकर संख्या में ५० थे। सब एक ही भोजनालय में भोजन करते थे। अपने साथियों व सहकारियों में दो पुराने सहपाठियों—श्री विधुशेखर भट्टाचार्य और श्री भूपेन्द्रनाथ सान्याल—को पाकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। जब हम लोग बनारस में थे, इन दोनों ने मेरा नाम "ठाकुर दादा" रख छोड़ा था, जिसका भेद मुझे यहाँ आने पर मालूम हुआ।

उन दिनों आश्रमवासी अपने परम शुभचिन्तक सतीशचन्द्र राय का दुःख धीरे-धीरे भूल रहे थे। वे एक अद्भुत प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति थे। रविबाबू का 'गुरुदेव' नाम जो कि आश्रम में आज दिन प्रचलित है, उन्हीं का रखा हुआ है।

'देहली' जो कवि की कुटी का नाम था एक छोटी सी इमारत थी। मुझे आश्चर्य हुआ कि कवि इतने छोटे मकान में क्यों रहते हैं। पीछे से मेरी समझ में आया कि वे केवल किसी वस्तु के छोटे या शानशौक़तरहित होने के कारण ही उससे घृणा नहीं करते हैं। उनके इसी गुण ने उन्हें बच्चों से प्रेम करना सिखाया, और उनके मन में इस छोटे से आश्रम के संचालन के लिए उत्साह और विश्वास उत्पन्न किया।

प्राचीन भारत की साधना के लिए कवि के हृदय में गम्भीर विश्वास है। इसी विश्वास ने उन्हें भारत के शिक्षण-सम्बन्धी पुरातन आदर्शों की ओर चलने का सन्देश दिया। वे शिक्षा के ठीक ढंग को स्थापित करना चाहते थे जिसमें छात्र प्रकृति के निकटतम संसर्ग में रहकर शिक्षा प्राप्त करें। साथ ही वे बच्चों के भोले-भाले मस्तिष्क को स्कूलों की चहारदीवारी के बन्धन से और शुष्क पाठ्यक्रम के कारागार से मुक्ति दिलाना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि छात्र और शिक्षक में रुचिकर व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित हो। बोलपुर स्टेशन के निकट एक सुन्दर टीले पर कवि ने केवल दो छात्र लेकर अपने शिक्षण-प्रयोगों का आरम्भ किया था। धन थोड़ा था और बाधायें बहुत। बुद्धिमान् पुरुष इस कार्य की दिल्लगी उड़ाते थे; यह स्वाभाविक ही था क्योंकि उन्हें ये बातें 'कवि का स्वप्न-मात्र' लगती थीं। 'महत्कार्यों का आरम्भ क्षुद्र ही होता है', इसे पहचानने की शक्ति भगवान् थोड़े मस्तिष्कों को देता है।

आश्रम में कई व्यक्ति अछूत वर्ग के भी थे पर कवि के प्रभाव के कारण उनके साथ अछूतों जैसा व्यवहार करने का साहस किसी को न होता था। देश के सामूहिक रूप से अछूतोद्धार का आन्दोलन उठाने के वर्षों पूर्व से आश्रम में इसका प्रचलन हो गया था।

कवि का बच्चों को पढ़ाने का ढंग भी अनोखा था। वे बच्चों के निकटतम सम्पर्क में रहते थे जिससे बच्चे उन्हें अपना साथी समझते थे। वे उन्हें कवितायें और कहानियाँ सुनाते, फूलों और पौदों की रक्षा करना सिखलाते और उनके साथ नाटक खेला करते। इन कार्यों में शिक्षकों व छात्रों को मिलकर काम करना होता था। उनकी यह सहयोग-शिक्षा-प्रणाली आगे चलकर बच्चों के मानसिक विकास के लिए सबसे अधिक उपयोगी प्रमाणित हुई। विदेशों में भी उसका अनुकरण हुआ।

भट्टाचार्य जी के अतिरिक्त वहाँ जगदानन्द राय, हरिचरण वन्द्योपाध्याय और अजीतकुमार चक्रवर्ती ये तीन शिक्षक और थे। चक्रवर्ती जी अनोखे मेधावी थे। मेरे आने के एक वर्ष बाद नेपालचन्द्र राय भी आ गये थे जो करना तो वकालत चाहते थे, पर 'कुछ दिनों के लिए आश्रम में आये थे। पर उनका वह 'कुछ दिनों' २५ वर्ष तक रहा। कवि ने अपने भतीजे दिनेन्द्रनाथ टागौर को भी बुला लिया था। ये कवि के गीतों के संरक्षक थे। कवि कोई गीत रचने पर तुरन्त इन्हें बुलाते थे और स्वर-ताल-सहित सिखा देते थे। क्योंकि प्रायः ऐसा होता था कि दूसरे गीत के आनन्द में लीन होकर कवि पहले गीतों को प्रायः भूल जाते थे। किसी-किसी दिन तो दीनूबाबू अबेर-सबेर आठ आठ बार तक बुलाये जाते थे। टागौर के सङ्गीत को सुरक्षित रखने का श्रेय एक मात्र दीनूबाबू को है। वे स्वयं भी एक उत्कृष्ट गायक हैं।

कवि की इच्छा थी कि पुरातन ऋषियों के ऋतु-उत्सवों को पुनर्जीवित किया जाय। एक बार आश्रम से किसी काम के लिए बाहर जाते समय उन्होंने हम लोगों से वर्षाऋतु के उत्सव का आयोजन करने को कहा। हमने इसकी तैयारी की। आपस में काम बाँट लिया गया। कार्य सफलता से सम्पन्न हुआ और उसकी प्रशंसा अख़बारों में छपी तो गुरुदेव ने भी सन्तोष प्रकट किया।

जब शरत् आया तब तब मुझे उत्सव के लिए वेदों में से उपयुक्त मन्त्र चुनने का भार सौंपा गया। गुरुदेव स्वयं नये गीत लिखने लगे। उस ऋतु में होनेवाले [illegible] के पुष्पों की भाँति प्रचुर गीत कवि के मस्तिष्क में [illegible] रहे थे। कवि चिन्ता में थे कि उन्हें किस प्रकार क्रमबद्ध किया जाय। इस प्रकार 'शरदोत्सव' नामक पद्य-नाटक की रचना हुई। उसके खेलने का नम्बर आया। उसमें एक पात्र था 'ठाकुर दादा'। मेरे साथियों ने मेरा [illegible] नाम रख छोड़ा था। अतः मुझे उसका पार्ट लेने की आज्ञा हुई। पर एक कठिनाई थी। उस खेल के 'ठाकुर दादा' को गाना पड़ेगा और यह "ठाकुर दादा" संगीत के नाम से शून्य! जब 'कवि' से मैंने अपनी यह कमज़ोरी निवेदन की तब उन्हें इस पर विश्वास न हुआ। वे समझ ही नहीं सकते कि कोई व्यक्ति सङ्गीत से रहित कैसे हो सकता है। ख़ैर बड़ी कठिनता के बाद मेरा वह पार्ट [illegible] अजीत चक्रवर्ती को दिया गया और मुझे संन्यासी [illegible] पार्ट दिया गया। आगे चलकर एक बार 'संन्यासी' [illegible] भी गाना था। मैं उलझन में पड़ गया। पर इस [illegible] कवि ने मेरी सहायता की; उन्होंने मुझे गाने का अभिनय करने को कहा और स्वयं जाकर नोले पर्दे के पीछे [illegible] गाने लगे। दर्शकों में आतंक फैल गया। सब यही [illegible] लगे कि कि आख़िर कवि के टक्कर का एक सङ्गीतज्ञ [illegible] हो ही गया। पर असल भेद हम दोनों ही जानते थे। दर्शकों में भारत के सभी भागों के व्यक्ति थे। नाटक [illegible] सफलता से समाप्त हो गया पर मुझे यह भय बहुत दिन तक बना रहा कि यदि बाहर की कोई संस्था मुझे [illegible] गाने के लिए आमन्त्रित करे तो मैं क्या उत्तर दूँगा। गाना तो मुझे जैसा आता है वैसा मैं ख़ूब समझता हूँ पर जो लोग उक्त शरदोत्सव के उत्सव में मुझे गाते [illegible] गये हैं वे यह बात कैसे मान सकते थे कि मुझे सङ्गीत नहीं आता?

खादी का प्रसार

खादी का देश में अब संगठित रूप से प्रचार किया जा रहा है। चर्खा-संघ ने सन् १९३८ का [illegible] जो विवरण प्रकाशित किया है उससे इस सम्बन्ध में ख़ासा प्रकाश पड़ता है। उक्त विवरण का कुछ [illegible] हम यहाँ 'कर्मवीर' से उद्धृत करते हैं—

अखिल भारत-चर्खा-संघ ने अपना सन् १९३८ का कार्य-विवरण हाल ही में प्रकाशित किया है। रिपोर्ट को ध्यान से देखने पर यह भी पता चलता है कि फ़िलहाल खादी जनता में कितनी गहरी उतर गई है और इसकी लोकप्रियता दिनानुदिन किस प्रकार बढ़ती जा रही है। जहाँ १९३७ में कुल ३० लाख, १५ हज़ार, ३ सौ, ३९ रुपया मात्र की खादी तैयार हुई थी, वहाँ १९३८ में ५४ लाख, १३ हज़ार, ६ सौ, १७ रुपया की बनी और बिक्री ४५,३२,१२९ रुपया से बढ़कर सिर्फ़ ५४,९६,७३५ रुपया पर पहुँची। पिछले साल कतवैयों की संख्या १९,७७,४९६ थी, इस साल वह बढ़कर २८,८३,६८० हो गई। बुनकरों की संख्या १७,८१९ और खादी के काम में लगे रहनेवाले अन्य कारीगरों की संख्या ६,७२५ है। संघ की शाखाओं के ज़रिये १९३७ मे १०,२८० गाँवों में खादी का काम होता था। १९३८ में यह काम १३,००९ गाँवों में चला।

इस समय हिन्दुस्तान भर में ३५४ खादी-उत्पत्ति-केन्द्र हैं, जिनमें २०७ संघ के और १४७ संघ से प्रमाणित हैं। कुल केन्द्रों में १,८९७ कार्यकर्ता हैं। कत्तिनों, बुनकरों, कारीगरों और सभी कार्यकर्ताओं में संघ न १९३८ में १८ लाख, ८८ हज़ार, ५८० रुपये वितरित किये। इसमें यदि हम अन्य कारीगरों के बीच बाँटी गई रक़म को हटा दें तो सिर्फ़ कत्तिनों और बुनकरों में ३३,४९,०५० रुपया बाँटे गये।

विवरण से यह भी मालूम होता है कि लगभग ३,०६,१८७ कातने और बुननेवाली ग्रामीण जनता अपने टपकते कपड़े पहनकर स्वावलम्बन का लाभ उठा रही है।

युक्तप्रान्त की अदालतों में हिन्दी

'अभ्युदय' में पण्डित कुबेरनाथ शुक्ल एम० ए०, व्याकरणाचार्य ने उक्त शीर्षक में एक महत्त्वपूर्ण लेख लिखा है। उसी का मुख्यांश संकलित करके यहाँ दिया गया है—

किसी भी देश में प्रान्त की अदालतों की भाषा वही होनी चाहिए जो उस देश या प्रान्त के अधिक से अधिक स्त्री-पुरुषों-द्वारा बोली जाती हो तथा लिखी-पढ़ी जाती हो।

दुर्भाग्यवश हमारे युक्तप्रान्त में इस बात की बड़ी शिकायत है। यहाँ की कचहरियों तथा सरकारी दफ़्तरों की भाषा उर्दू है, यद्यपि इसके भाषियों की संख्या दस प्रतिशत से ज्यादा नहीं है। इस प्रान्त के ९० सैकड़ा लोग हिन्दी बोलते हैं, अतः यही इस प्रान्त की भाषा है। प्रान्त के डाइरेक्टर जेनरल ने अपनी १८४४-४५ की रिपोर्ट में लिखा है—"इस प्रान्त में हिन्दी सबसे प्रचलित भाषा है।" प्रान्तीय शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर ने अपनी १८७७-७८ की रिपोर्ट में यह स्पष्ट कर दिया है कि "हिन्दी ही इस प्रदेश की भाषा है।"

यह कहा जा सकता है कि यदि उर्दू इस प्रान्त की भाषा नहीं है तो अदालतों में इसका प्रवेश कैसे हुआ? मुस्लिम-साम्राज्य-काल में तथा उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम भाग में अदालतों की भाषा फ़ारसी थी। इससे प्रान्तीय जनता तथा अँगरेज शासकों को अनेक असुविधाओं का सामना करना पड़ता था। फलस्वरूप सरकार ने सन् १८३७ में घोषणा कर दी कि "अदालतों की कार्यवाहियाँ फ़ारसी के स्थान में देशी भाषाओं में हुआ करें।" बम्बई, मदरास और बंगाल इत्यादि प्रदेशों में जहाँ हिन्दी और उर्दू का प्रश्न नहीं था देशी भाषाओं में कचहरियों का काम होने लगा। परन्तु जिन जिन प्रान्तों में हिन्दी और उर्दू बोली जाती थीं उनमें हिन्दुस्तानी के नाम से उर्दू का प्रयोग किया गया। फलस्वरूप १८३७ के घोषणानुसार उत्तरी भारत में सब जगह उर्दू का प्रचार हुआ। बाद में सन् १८८१ में बिहार और मध्य प्रदेश में तो इस भ्रम का संशोधन हुआ, परन्तु संयुक्त-प्रान्त की अदालतों में उर्दू का अखण्ड साम्राज्य आज तक बना हुआ है।

अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जब लगभग सौ वर्ष से सारा अदालती काम उर्दू में होता आ रहा है तब तो क्या यह सम्भव है कि उर्दू के स्थान पर प्रान्त की एक मात्र प्रतिनिधि भाषा हिन्दी बैठाई जाय। केवल प्राचीनता के आधार पर किसी अनुचित कार्य का समर्थन नहीं किया जा सकता। सुधार जभी से हो तभी से अच्छा है।

उर्दू के अदालती भाषा होने के कारण इस प्रान्त में शिक्षा की उन्नति नहीं हो सकी है। प्रान्त के सुशिक्षित होने के लिए यह आवश्यक है कि प्रान्तीय भाषा ही अदालतों की भी भाषा हो। अदालतों में जीविकोपार्जन के लिए लोग अदालती भाषाओं को पढ़ते हैं। यदि इन भाषाओं का प्रान्तीय भाषाओं से सामञ्जस्य नहीं है, प्रान्त में शिक्षा की यथेच्छ उन्नति नहीं होती है। बंगाल, मदरास तथा बम्बई में इन दोनों भाषाओं का सामञ्जस्य है। फलस्वरूप वे युक्त-प्रान्त की अपेक्षा विशेष शिक्षित हैं। दूसरी बात यह है कि इससे प्रान्त की जनता को अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं। हमारे ग्रामीण भाइयों को विवश होकर उर्दू में अर्ज़ियाँ देनी पड़ती हैं। वे अदालती काग़ज़ों को स्वयं पढ़ नहीं सकते हैं। दूसरों की आँखों से सदा लिखते-पढ़ते हैं और नित्य धोखा खाया करते हैं। मुहर्रिर लोग अनुचित रूप से लिखाई लेते हैं। भाषा की अनभिज्ञता के कारण बहुत से लोग अपना मुक़दमा तक हार जाते हैं। सारांश यह है कि उर्दू के कारण लोगों को न्याय कराने में बहुत अड़चनें पड़ती हैं।

भाषा और लिपि की दृष्टि से भी उर्दू का समर्थन नहीं किया जा सकता। उर्दू-भाषा की लिपि अरबी है। वह विदेशी होने के साथ साथ इतनी अवैज्ञानिक, अपूर्ण तथा भ्रामक है कि एक बार जो लिखा गया है उसका ठीक ठीक पढ़ना अत्यन्त ही कठिन है।

पूज्य पंडित मदनमोहन मालवीय तथा काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के प्रशंसनीय उद्योग तथा अध्यवसाय से १८९८ में हिन्दी और देवनागरी अक्षरों का प्रवेश युक्त-प्रान्त की अदालतों में हो गया। परन्तु यह बहुत दुख और लज्जा की बात है कि इन चालीस वर्षों में अदालती दुनिया में हिन्दी की कोई विशेष उन्नति नहीं हो सकी है। इसके लिए हम प्रान्तीय सरकार को दोषी नहीं बना सकते हैं। अधिकार पाने पर भी हिन्दी-भाषा और देव-नागरी-लिपि का उचित सम्मान न कर हमीं लोग सर्वथा दोष-भाजन हैं। आजकल हिन्दी की उपेक्षा करनेवाले वकीलों, मुख़्तारों, मुहर्रिरों, महाजनों तथा व्यवहार करनेवाले लोगों की विशेषतः हिन्दुओं की जो कुछ भी निन्दा की जाय वह थोड़ी है। आशा है, अदालतों में काम करनेवाले प्रान्त के सच्चे नागरिक प्रान्तीय उन्नति के लिए हिन्दी-भाषा और साहित्य का यथोचित सम्मान करेंगे।

आसवारिष्टों पर प्रतिबन्ध

'विज्ञान' में स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य ने [illegible] शीर्षक में जो लेख लिखा है उसका कुछ अंश यह है—

कांग्रेसी प्रान्तिक सरकारों के द्वारा मद्यनिषेध-योजना का कार्य-क्रम जब से आरम्भ हुआ है तब से उन प्रान्तों के स्वास्थ्य-विभागाधिकारियों ने नशीली चीज़ों के रखने, बनाने व बेचने से सम्बन्ध रखनेवाले एक्साइज़ एक्ट में बहुत कुछ संशोधन व परिवर्तन किये हैं और मादकता-निषेध-योजना के लिए जो-जो आवश्यक व सहायक बातें हैं उनमें बढ़ाई हैं। इसी क्रम में कुछ आयुर्वेदिक ओषधियों को सम्मिलित कर लिया गया है, जिनका उपयोग नशा के अर्थ में नहीं होता था, किन्तु उन ओषधियों में मदकारी अंश का कुछ न कुछ भाग अवश्य पाया जाता है। प्रतीत होता है कि मदकारी अंश का पाया जाना ही इस भ्रम का मूल कारण हुआ और वे ओष-धियाँ भी निषेध-भाग में सम्मिलित कर ली गईं।

भारतवर्ष की अधिक जनता शराब, भाँग, चरस, तम्बाकू आदि नशाकारक वस्तुओं का सेवन कर अत्यन्त हानिकर दुर्व्यसनों में पड़ रही है, जिससे धन, आरोग्य, सुख सब ही मिटते जा रहे हैं। इस बुराई से जनता को बचाने के लिए प्रान्तीय सरकारों ने जो मद्य-निषेध-योजना बनाकर उसको कानून का रूप दिया है, उसके इस काम के लिए जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। यह योजना थोड़े ही दिनों में देश को नवजीवन प्रदान करेगी, ऐसी पूर्ण आशा है।

किन्तु इस मद्य-निषेध-योजना की धुन में उन कार्य-जनों-द्वारा उसको क़ानून का रूप देते समय उसमें ऐसी बातें सम्मिलित कर ली गई हैं जो एक विशेष समुदाय को हानि पहुँचानेवाली सिद्ध हो रही हैं।

मद्य-निषेध-योजना के विचार से प्रान्तिक [illegible] सरकारों ने एक्साइज़ एक्ट में कुछ संशोधन बढ़ाये [illegible] मालूम होता है। उन संशोधनों को रखनेवाले [illegible] को कुछ एक बातों की स्थिति का ठीक ज्ञान नहीं [illegible] सका। तभी ये अप्रिय बातें क़ानून के रूप में बिना लोक-मत लिये मद्य-निषेध-योजना को जल्दी लागू करने की इच्छा से पास कर डाली गईं। जब उस विशेष समुदाय को इसका पता लगा और उसने आन्दोलन उठाया तब उन्होंने अपनी कही बात के औचित्य को सिद्ध करने के लिए अनेक ऐसी बातें गढ़ लीं जो सत्य नहीं। हम यहाँ पर कांग्रेसी सरकारों का ध्यान आसवारिष्टों की ओर दिलाना चाहते हैं। उन्होंने आसवारिष्टों को मद्य-निषेध-योजना में सम्मिलित करके इन पर बिना विचारे प्रतिबन्ध लगाकर वैद्यों के प्रति अन्याय ही नहीं किया, प्रत्युत उस आयुर्वेद के प्रति भी महान् अन्याय किया जिसने कभी स्वप्न में भी मादकता के लिए आसवारिष्टों का निर्माण व सेवन का आदेश नहीं दिया था।

जो चीज न कभी मादकता के लिए बनाई जाती हो, और न उसका उपयोग कोई वैद्य मादकता के लिए करता हो उस पर प्रतिबन्ध लगाना उस विवर्द्धनशील आयुर्वेद की गति का अवरोध करना है जिसकी उन्नति का वह स्वयम् इच्छुक है।

कांग्रेसी सरकारों को आसवारिष्ट पर प्रतिबन्ध लगाने से पूर्व किसी भी वैद्य से यह अवश्य पूछना या लोक-मत जानना चाहिए था कि क्या यह आसव नशे के लिए पिये जाते हैं? और न सही, तो उन्हें महकमा पुलिस के ही काग़ज़ातों-द्वारा पता लगा लेना था कि कभी शराब-वत् नशे का कोई केस आसव का भी आया है। यदि दस-बीस वर्ष की फ़ाइलों में दो-चार केस ऐसे भी उन्हें मिल जाते तो उनका इस पर प्रतिबन्ध लगाना न्याय-संगत था। परन्तु इन दोनों शहादतों से इसकी पुष्टि न हो सकी तो फिर उस पर प्रतिबन्ध लगा कर उन्होंने सरासर वैद्यों के साथ अन्याय किया और आयु-र्वेद का अहित साधन किया है।

ईरान का हाल

प्रयाग के सैयद रज़ीउद्दीन हसन अपने कुछ मित्रों के साथ ईरान गये थे। वहाँ का भ्रमण कर वे हाल में ही लौटे हैं। उन्होंने ईरान के सम्बन्ध में अपने जो अनुभव बताये हैं वे स्थानीय 'लीडर' में छपे हैं। वे संक्षेप में इस प्रकार हैं—

ईरान की सरकार ने पर्दे का निषेध कर दिया है। वहाँ अब कोई भी स्त्री नक़ाब डालकर बाहर नहीं निकल सकती। यही नहीं, स्त्री-पुरुषों को अँगरेज़ी पोशाक पहनना पड़ता है। स्त्रियों को बाल कटवाने पड़ते हैं। वहाँ योरपीय और ईरानी स्त्रियो में अन्तर नहीं जान पड़ता है। ईरानी स्त्रियाँ रंग में योरपीय स्त्रियों की तरह गोरी होती हैं, पहनावा एक हो जाने स वे भी गोरी स्त्रियाँ जैसी हो गई हैं।

ईरान में जाति-पाँति का भी भेद नहीं है। होटलों में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सब एक साथ बैठकर मेज़ पर खाना खाते हैं और भोजन में शराब और सूअर का मांस भी दिया जाता है। हाँ, जो व्यक्ति इन चीज़ों को न लेना चाहे उसे नहीं दी जातीं।

वहाँ धर्म के प्रति लोगों में वैसा अनुराग नहीं है। शिया या सुन्नी या अन्य कोई व्यक्ति किसी मक़बरे में या अपने घर में मजलिस नहीं कर सकता है। वहाँ किसी मक़बरे में या उसके आस-पास सामूहिक नमाज़ भी नहीं पढ़ी जा सकती है। उलेमा लोग अपनी धार्मिक पोशाक पहनकर बाहर नहीं निकल सकते। वे भी योरपीय पोशाक में ही बाहर आ-जा सकते हैं। वही उलेमा अपनी पोशाक पहन सकता है जिसे सरकार से उसके पहनने के लिए लाइसेंस प्राप्त रहता है।

ईरान में पुलिस संख्या में बहुत अधिक है। भारतीय शहरों में पुलिस के जितने सिपाही दिखाई देते हैं, वहाँ के शहरों में दस गुने अधिक दिखाई देंगे। वहाँ की पुलिस तीन दलों में विभक्त है।

ईरान में अन्न की बिक्री पर सरकार का नियंत्रण है। सरकार किसानों से १० या १२ सेर फ़ी तुमन अन्न ख़रीद कर २½ सेर फ़ी तुमन बेचती है। इसी प्रकार कपड़े पर भी उसका नियंत्रण है। दर पहले से [illegible] कर दी जाती है। प्रत्येक व्यापारी को बिक्री का हिसाब रखना पड़ता है, जिसकी प्रतिदिन पुलिस जाँच करती है और बिक्री के लाभ में सरकार कुछ फ़ी सदी लेती है। सरकार वहाँ प्रत्येक आदमी की आय में २० फ़ी सदी लेती है। इस कर से वहाँ कोई भी मुक्त नहीं है।

ईरान के समाचार-पत्रों में भारत की कुछ भी चर्चा नहीं रहती है। वहाँ फ़ारसी और फ़रासीसी बोली जाती है। यहाँ के स्कूलों में जैसे अँगरेज़ी पढ़ाई जाती है, वैसे ही वहाँ फ़रासीसी-भाषा का बोलबाला है।

पहले राज्य की आय का आधा भाग प्रतिवर्ष मक़बरों की मरम्मत आदि के लिए अलग कर दिया जाता था। अब सारी आय बादशाह ले लेता है। अब आधी आय का केवल दसवाँ भाग ही मक़बरों आदि में खर्च किया जाता है।

सैयद साहब ने ईरान को ग़रीब पाया। उन्हें वहाँ एक भी अमीर आदमी नहीं मिला। चाहे जो हो, आज का ईरान पहले की अपेक्षा कहीं अधिक स्वतन्त्र और शक्तिशाली है।

दहेज़-बिल का स्वरूप

संयुक्त-प्रान्त की असेम्बली में श्रीयुत वंशगोपाल जी एम० एल० ए० ने दहेज़ की प्रथा को रोकने के लिए एक बिल पेश किया है, जिसका वर्णन 'साप्ताहिक आज' में श्रीयुत परमेश्वरी गुप्त ने अपने लेख में दिया है। उस लेख का मुख्यांश यह है--

यह उपयोगी बिल युक्तप्रान्त (आगरा व अवध) के समस्त वर्ण, जाति, उपजाति और समाज के हिन्दुओं पर लागू होगा। इस बिल के अनुसार 'विवाह' का तात्पर्य उस प्रत्येक कृत्य से होगा जिसके अनुसार किसी स्त्री और पुरुष के बीच पति-पत्नी का सम्बन्ध स्थापित किया जाय, चाहे वह धार्मिक बन्धन हो या स्वीकृत प्रस्ताव अथवा समझौते के रूप में हो।

वैवाहिक कृत्य के अर्थ में लग्न, बरक्षा, तिलक, रोचना, द्वारचार, अगवानी, कन्यादान, पायपूजी, कलेवा, कटोरा, रुखसती (बिदाई), चौथी, गौना (द्विरागमन) तथा विवाह की बातचीत के आरम्भ से विवाह तक होनेवाले समस्त कृत्य और इसके बाद के भी वे सारे कृत्य जो विवाह और गौने के सम्बन्ध में किये जायँ सम्मिलित होंगे।

उपर्युक्त किसी भी कृत्य के अवसर पर नाच, आतिश-बाज़ी, फुलवारी आदि का प्रदर्शन करना और बारातियों तथा कन्यापक्ष के रिश्तेदारों और नौकरों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों को भोज देना इस बिल के स्वीकार हो जाने पर अपराध समझा जायेगा।

इसी प्रकार, वर और कन्या की आर्थिक परिस्थिति के अनुसार विवाह तीन श्रेणियों में विभक्त किये गये हैं--(१) उच्च, (२) मध्यम, (३) साधारण। उच्च श्रेणी के विवाह में २५, मध्यम में १५ और साधारण में ९ बारातियों से अधिक ले जाना अपराध समझा जायेगा। इन अभियोगों के लिए एक महीने की साधारण क़ैद अथवा १००० रुपये तक जुर्माना या दोनों की सज़ा हो सकेगी।

विवाह से ६ मास पूर्व से विवाह के ६ मास बाद तक खुले या चुपके चुपके, नक़द या सामान आदि के रूप में दहेज लेना, देना या तय करना इस बिल के अनुसार तीसरा अपराध होगा, जिसके लिए ६ मास की साधारण सज़ा या १०००) जुर्माना या दोनों की व्यवस्था होगी। इस कार्य में यदि कोई मध्यस्थ का काम करता है तो उसे भी सज़ा होगी; जो ३ मास की साधारण क़ैद या ५००) जुर्माना या दोनों होंगे। इस बिल के अनुसार पुरोहितों या नाइयों की भी खैर नहीं। यदि उन्होंने कोई ऐसा विवाह कराया, जिसमें दहेज़ लिया दिया गया हो, तो उन्हें भी एक महीने जेल या १००) तक जुर्माना या दोनों की सज़ा होगी।

दहेज़ का तात्पर्य, इस क़ानून में, उन सब वस्तुओं से होगा जो कन्या के पिता या अभिभावक की ओर से नक़द या वस्तु के रूप में वर, उसके पिता या अभिभावक या उसके पक्ष के किसी व्यक्ति को, या वर पक्ष की ओर से कन्या, उसके पिता या अभिभावक या उसके पक्ष के किसी व्यक्ति को विवाह के किसी कृत्य के अवसर पर खुले तौर पर या छिपाकर अथवा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दिया जायेगा। इस परिभाषा से निम्नलिखित वस्तुएँ मुक्त हैं।

(क) नक़द, जो एक रुपया हो या एक रुपये से कम का कोई सिक्का हो और किसी वैवाहिक कृत्य पर दिया जाय किन्तु जिसके कुल जोड़ की संख्या उच्च विवाह होने की अवस्था में २१) और मध्यम तथा साधारण विवाह होने की अवस्था में ११) से अधिक न हो।

(ख) सोने-चाँदी के गहने जैसे नथ, बिछिया, टीका, कड़ा, पायजेब, पोंगी या इसी प्रकार के कन्या के पहनने योग्य दूसरे गहने जिनकी संख्या तथा मूल्य निम्नानुसार से ज्यादा न हो।

	संख्या	मूल्य
उच्च विवाह	११	१०१)
मध्यम विवाह	७	५१)
साधारण विवाह	५	३१)

(ग) बर्तन, कपड़े या दूसरे सामान जो सोने या चाँदी के न हों और जिनका मूल्य निम्नानुसार से ज्यादा न हो--

उच्च विवाह	२०१)
मध्यम विवाह	१०१)
साधारण विवाह	२१)

इस रक़म से अधिक खर्च दहेज माना जायेगा और वह अपराध समझा जायेगा।

उच्च श्रेणी का विवाह कोई उसी समय कर सकेगा जब वर या कन्या के पिता या अभिभावक के निज नाम कम से कम एक हज़ार रुपये मालगुज़ारी की ज़मींदारी हो या वह १००) मासिक वेतन पाता हो या इनकम टैक्स देता हो। इसी प्रकार मध्यम श्रेणी का विवाह वही कर सकेगा जो या तो २५०) का मालगुज़ार हो या २५) वेतन पाता हो। इन लोगों के अतिरिक्त अन्य लोग साधारण श्रेणी का विवाह कर सकेंगे।

वर्ग नं० ३६ का नतीजा

प्रथम पुरस्कार २००) (शुद्ध पूर्ति पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ६ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को ५०) मिले।

(१) धर्मपालमित्तल, c/o बाबू भगवानदास, पोस्टल पेंशनर गाज़ियाबाद।
(२) ए० मुकर्जी, c/o मुकर्जी ब्रदर्स, सिरामपुर, हुगली।
(३) मिसेज़ इलारानी, c/o नन्दलाल बोस, चक्रतीर्थ, पुरी।
(४) लोकनाथ डरिया, c/o मुकर्जी ब्रदर्स, पुरानी बाज़ार सिरामपुर, हुगली।
(५) हरचरनलाल, ०६९, गनेशगंज, लखनऊ।
(६) रामचरनलाल १०६९, गनेशगंज, लखनऊ।

द्वितीय पुरस्कार ८४) (एक अशुद्धि पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित २ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को ४२) मिले।

(१) शंकरलाल मेहता, धरमपुरी, धार राज्य।
(२) नन्दलाल बोस, चक्रतीर्थ पुरी।

तृतीय पुरस्कार १००) (दो अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ५ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को २०) मिले।

(१) मिसेज़ रामपतीदेवी गोयल, ४३, पानदरीबा, इलाहाबाद।
(२) मदनकिशोर गोयल, शराफ़ बाज़ार, धामावाला, देहरादून।
(३) भगवानदास पोस्टल पेंशनर, गाज़ियाबाद।
(४) सुमित्रादेवी, c/o धरनीधर कोर्ट सब इन्स्पेक्टर, सीतामढ़ी।
(५) कुमुदिनीदेवी " " " " ज़िला मुज़फ़्फ़रपुर।

चतुर्थ पुरस्कार १६) (तीन अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित १६ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को १) मिला।

(१) जगन्नाथप्रसाद घी वाले, महावीरगंज, अलीगढ़।
(२) यमुनाप्रसाद द्वारिकाप्रसाद हेड नेमिल, इं० स्टीट्यूट गोरखपुर।
(३) सूरजसहाय सक्सेना कलक्टरी उरई।
(४) हरीशंकरलाल खत्री c/o गोलागली, बनारस।
(५) जगमोहनलाल मिश्र, बिलमड़ पुवाँयाँ, राजका पुर, एटा,
(६) राजेन्द्रप्रसाद मिश्र, बिलमड़ पुवाँयाँ, राजका पुर, एटा।
(७) हरिहरप्रसाद पाठक, दारागंज, इलाहाबाद।
(८) श्यामा अग्रवाल, गाड़ीवान टोला इलाहाबाद।
(९) शिवबालकप्रसाद बाजपेयी, रुरकी इंजीनियरिंग कम्पनी, इलाहाबाद।
(१०) इन्द्रसिंह भैसोंड़ा, अटरबेत पट्टी माल्ही, थल, अलमोड़ा।
(११) कमलप्रसाद उपाध्याय, नैपाली कोठी, रामपुरा, बनारस।
(१२) शिवरामप्रसाद शर्मा, लक्ष्मीप्रेस, बुलानाला, काशी।
(१३) दलीपसिंह, आसौदा, रोहतक।
(१४) सरस्वतीदेवी w/o धरनीधर नारायण, सीतामढ़ी मुज़फ़्फ़रपुर।
(१५) विष्णुसिंह कारुकी, आनी, थल, अलमोड़ा।
(१६) सुन्दरलाल पोस्टमैन, अम्बिकापुर, सरगुजा स्टेट।

उपर्युक्त सब पुरस्कार ३१ अगस्त को भेज दिये जायँगे।

नोट—जाँच का फ़ार्म ठीक समय पर आने से यदि किसी को और भी पुरस्कार पाने का अधिकार सिद्ध हुआ तो उपर्युक्त पुरस्कारों में से जो उसकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा। केवल वे ही लोग जाँच का फ़ार्म भेजें जिनका नाम यहाँ नहीं छपा है, पर जिनको यह सन्देह हो कि वे पुरस्कार पाने के अधिकारी हैं।

जिनको १) का पुरस्कार मिला है उन्हें १) के दो प्रवेश-शुल्क-पत्र भेज दिये जायँगे, जो नियम के अनुसार तीन महीने के भीतर इसके साथ दो पूर्तियाँ भेज सकेंगे।

व्यस्त रेखा शब्द पहेली

CROSSWORD PUZZLE IN HINDI

३००) शुद्ध पूर्तियों पर

२००) न्यूनतम अशुद्धियों पर

नियम :—

(१) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जितनी पूर्ति-संख्यायें भेजना चाहे, भेजे, किन्तु प्रत्येक वर्ग-पूर्ति सरस्वती पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म पर होनी चाहिए। इस प्रतियोगिता में एक व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। इंडियन प्रेस के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकेंगे। प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगाड़ कर या काटकर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

(२) प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए जो फ़ीस वर्ग के ऊपर छपी है, दाख़िल करनी होगी। फ़ीस मनीआर्डर-द्वारा या सरस्वती-प्रतियोगिता के प्रवेश-शुल्क-पत्र (Credit voucher) के द्वारा दाख़िल की जा सकती है। इन प्रवेश-शुल्क-पत्रों की किताबें हमारे कार्यालय से ३) या ६) में ख़रीदी जा सकती हैं। ३) की किताब में आठ आने मूल्य के और ६) की किताब में १) मूल्य के ६ पत्र बँधे हैं। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति जिनका पता-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा अपनी अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं। वर्ग-पूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी। मनीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग-नम्बर ३७, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

(३) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र नत्थी होकर आना अनिवार्य है। रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी। लिफ़ाफ़े के दूसरी ओर अर्थात् पीठ पर मनीआर्डर भेजनेवाले का नाम और पूर्ति-संख्या लिखना आवश्यक है।

(४) जो वर्ग-पूर्ति २८ अगस्त तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में शामिल नहीं की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २८ तारीख को पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिए और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद को डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान्य होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के अगले अङ्क में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता-अशुद्धता की जाँच कर सकें।

(५) वर्ग-निर्माता की पूर्ति से, जो मुहर लगा करके रख दी गई है, जो पूर्ति मिलेगी वही सही मानी जायगी। यदि कोई पूर्ति शुद्ध न निकली तो मैनेजर शुद्ध पूर्ति का इनाम जिस तरह उचित समझेंगे, बाँटेंगे।

बाँयें से दाहिने

१–यह राजाओं-महाराजाओं की रक्षा के लिए रहता है।
५–लोगों में उत्साह भरने के लिए ही यह प्रायः निकाला जाता है।
८–यह उलटते ही तर हो जायगा।
९–इस देश का एक पुराना पहनावा।
११–इसकी वृद्धि दुःखदाई होती है।
१२–थोड़ी सी भी असावधानी होते ही बच्चों की. . . . में दर्द शुरू हो जाता है।
१३–यहाँ पहुँचने पर ही वास्तविकता का ज्ञान होता है।
१५–धनी लोगों को पग-पग पर इसकी आवश्यकता पड़ती है।
१७–पदों के चुनाव में इसका पैदा हो जाना स्वाभाविक है।
१९–मधुर शब्द।
२०–शौक़ीन इसे अपने पास अवश्य रक्खेंगे।
२२–आज-कल के नवयुवक ऐसी दवाओं की खोज में रहते हैं।
२४–किनारा।
२५–विवाह इत्यादि उत्सवों में इसके बिना बड़ी कठिनाई होती है।
२८–हलका मीठा दर्द।
२९–यह आवश्यक नहीं है कि यह बरसात ही में सुनी जाय।
३१–जहाँ पशु होंगे वहाँ यह भी होगा।

ऊपर से नीचे

१–प्राचीन काल के युद्ध में ये ही चलते थे।
२–कार्य आरम्भ करने के पहले इसे जान लेना आवश्यक है।
३–पूर्व काल के धनी लोग सवारी के लिए इसी का प्रयोग करते थे।
४–अगर यह न होती तो सूती कपड़े कैसे बनते?
६–पेड़-पौदे भी इससे झुलस जाते हैं।
७–राज-दरबार इन्हीं से शोभा पाता है।
१०–यह जितनी ही अधिक चौड़ी होगी लोगों का स्वास्थ्य उतना ही अच्छा रह सकेगा।
१२–इसकी लोलुपता बड़े से बड़े नेताओं का पतन कर देती है।
१३–गर्मी में स्वभावतः इसकी इच्छा होती है।
१४–अपने को पहले जलाता है, और को पीछे।
१५–छोटा पलंग।
१६–प्राचीन काल के युद्ध में इसके द्वारा शरीर-रक्षा होती थी।
१८–इसकी सहायता से अध्यापक लड़कों से गुप्त [illegible] का पता लगा लेता है।
२१–ऐसे लड़कों से दूसरे लड़कों का डरना स्वाभाविक है।
२३–बूढ़े आदमियों का किसी वस्तु के लिए. . . . उपहास जनक होता है।
२५–काव्यों में इसका प्रधान स्थान है।
२६–बूढ़े आदमियों का. . . जवानों को अधिक बुरा लगता है।
२७–सभ्य देशों में इसका न होना आश्चर्य की बात है।
३०–एक स्वास्थ्यदायक वस्तु।

अपनी याददाश्त के लिए वर्ग ३७ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ पर कर लीजिए। और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

वर्ग नं० ३६ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर ३६ की शुद्ध पूर्ति जो बंद लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जा रही है।

र	मा	नि	वा	स	■	■	प्र	मा	द
व	ल	■	■	र	ली	■	चा	द	र
नी	■	■	प	ल	क	■	र	क	द
■	मा	ला	■	■	■	क	■	■	वं
प	द	■	अ	नु	स	र	शा	■	द
वं	र	■	मा	या	वि	नी	■	का	■
न	■	से	व	■	ता	■	■	म	म
कु	श	■	स	गा	■	अ	■	दा	य
मां	र	क	■	री	■	बे	श	र	म
र	म	शा	■	■	भा	र	त	■	त
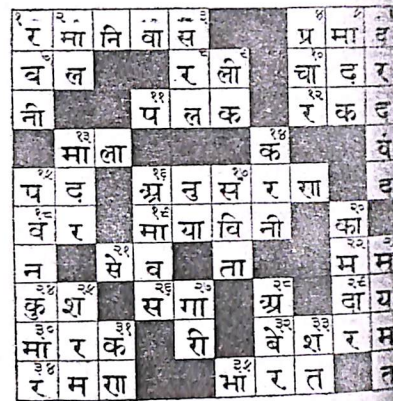
वर्ग नं० ३६ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० ३६ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति
नं०. . . में { कोई अशुद्धि नहीं है। / १, २, ३ अशुद्धियाँ हैं।
मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर ————

पता ————

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

नोट—जो पुरस्कार आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बँटेगा और फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि पूर्ति ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जो समझें कि उनका नाम ठीक जगह पर छपा है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं। यह फ़ार्म १५ तारीख़ के बाद नहीं लिया जायगा।
इसे काटकर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

मैनेजर वर्ग नं० ३७
इंडियन प्रेस, लि०,
इलाहाबाद
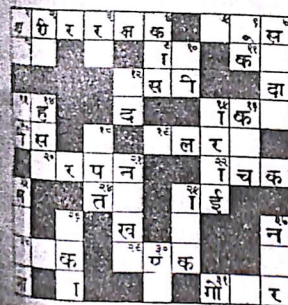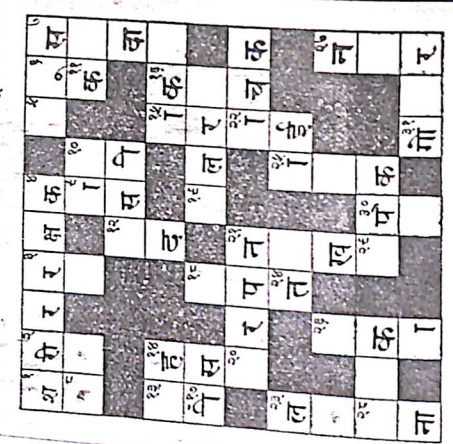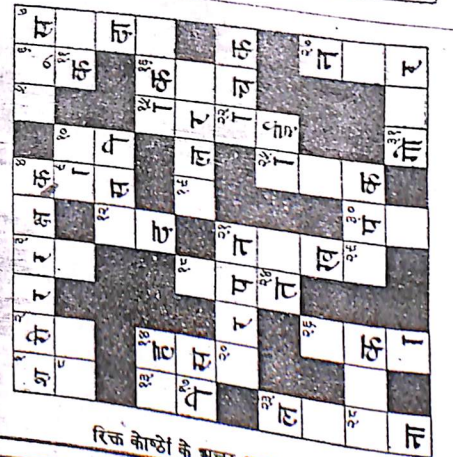
मुफ़्त कूपन की नक़ल यहाँ कीजिए।

इस लाइन से काटिए

वर्ग नं० ३७ पूर्ति नं०. . . फ़ीस ॥
वर्ग नं० ३७ पूर्ति नं०. . . फ़ीस ॥)
वर्ग नं० ३७ मुफ़्त कूपन पूर्ति नं०. . .

रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा रहित और पूरा है।

नाम ———— पता ————

नोट—ये तीनों कूपन यहाँ एक साथ केवल एक व्यक्ति के भरने के लिए दिये जा रहे हैं। तीनों कूपनों को एक साथ काट कर भेजना चाहिए। जो एक कूपन भेजना चाहें वे दो को यों ही छोड़ दें। जो दो भेजेंगे उन्हें तीसरे कूपन की फ़ीस न देनी पड़ेगी। यानी वे १) में तीनों कूपन भेज सकेंगे। विशेष ब्योरा पृष्ठ २०० पर देखिए।

शंका-समाधान

वर्ग नं० ३४

'दरब' नहीं 'हरख' (नं० ३० ऊपर से नीचे)

आपने संकेत पर पूरा-पूरा ध्यान नहीं दिया। संकेत यह था कि "बहुत से लोग इसके लिए अपने को तैयार करते हैं।" आपका कहना है कि 'संसार में ऐसा कौन प्राणी होगा जिसे दरब की इच्छा न होगी; अतः यहाँ पर दरब देना ही ठीक था।

परन्तु यह भी सोचना चाहिए कि दरब की इच्छा भी मनुष्य किस लिए करता है? मन में प्रसन्नता लाने के लिए ही न! फिर प्रधानता तो हरख की रही ही। और दरब जोड़ना ही क्यों, संसार में मनुष्य या कोई जीव-जन्तु जो कुछ काम करता है वह इसीलिए करता है कि उससे मन को प्रसन्नता प्राप्त हो। फिर जब 'हरख' इतना व्यापक शब्द है कि उसमें 'दरब' के अलावा और भी ऐसे ऐसे सैकड़ों पदार्थों का अन्तर्भाव हो जाता है जिनको पाने की इच्छा मनुष्य अपने को प्रसन्न करने के लिए ही करता है। इस प्रकार यहाँ पर 'हरख' शब्द ही उपयुक्त है, 'दरब' नहीं।

'खरका' नहीं 'ढरका' (नं० ३२ बायें से दाहिने)

इसमें आपके कथनानुसार 'खरका' लिखना शुद्ध है। पर आपने इस सम्बन्ध में युक्ति कोई नहीं दी है। आपको ज्ञात होना चाहिए कि 'खरका' बाँस का ही नहीं बनता, चाँदी-सोने का भी बनता है, पर 'ढरका' बाँस का बनता है। 'यही इस संकेत का बल था और इसीलिए यह दिया गया था। 'ढरके' के लिए आपने जो नया संकेत गढ़कर बतलाया है वह 'संकेत' नहीं है। वह तो सीधा-सादा अर्थ है जो कोष में दिया गया है। संकेत में थोड़ा-बहुत पेंच यदि न हो तो उससे विचारणा-शक्ति को प्रोत्साहन देने का वह अभिप्राय कैसे पूर्ण हो सकता है जिसके लिए 'पहेली' की आवश्यकता है?

अपनी यादगार के लिए वर्ग नं० ३७ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ कर लीजिए, और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

इस लाइन से काटिए

वर्ग नं० ३७ मुफ़्त कूपन पूर्ति नं०...

वर्ग नं० ३७ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)

वर्ग नं० ३७ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)

रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रारहित और पूर्ण हैं

नाम—

पता—

आवश्यक सूचनायें

(१) इस बार पाठक देखेंगे कि एक कूपन में एक नाम से अधिक भरने की गुंजाइश नहीं है परन्तु प्रत्येक कूपन में ऐसी सुविधा की गई है कि वर्ग नं० ३७ की तीन पूर्तियाँ एक साथ भेजी जा सकेंगी। दो आठ आठ आने की और तीसरी मुफ़्त। मुफ़्त पूर्ति सिर्फ़ उन्हीं की स्वीकार की जायगी जो दो पूर्तियों के लिए १) भेजेंगे। और तीनों पूर्तियाँ एक ही नाम से भेजेंगे। एक पूर्ति भेजनेवाले को भी पूरा कूपन काटकर भेजना चाहिए और दो ख़ाने ख़ाली देने चाहिए।

(२) स्थानीय पूर्तियाँ 'सरस्वती-प्रतियोगिता-बक्स' जो कार्यालय के सामने रक्खा गया है, दिन में दस और पाँच के बीच में डाली जा सकती हैं।

(३) वर्ग नम्बर ३७ का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दिया गया है, ता० २९ अगस्त सन् १९३९ को सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में ११ बजे दिन में सर्वसाधारण के सामने खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें वहाँ उपस्थित होकर उसे देख सकते हैं।
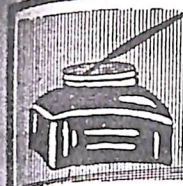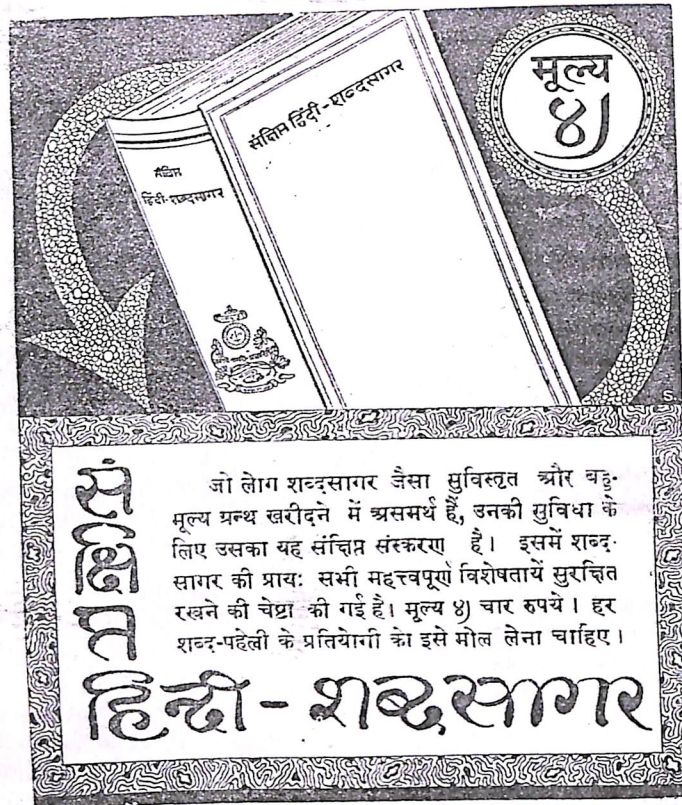
संसार की राजनीति की दुरवस्था

संसार का अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र पहले की ही तरह विक्षुब्ध और अशान्त बना हुआ है, यही नहीं, हाल की कुछ घटनाओं से तो उसकी स्थिति और भी खराब हो गई है। डेंज़िग में भीतर ही भीतर लड़ाई की नहीं तो आत्मरक्षा की व्यापक तैयारी हो रही है। वहाँ के जर्मन जर्मनी में मिलने के लिए बहुत अधिक उत्सुकता प्रकट कर रहे हैं। और इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए वे अधिक से अधिक बलिदान करने को तैयार जान पड़ते हैं। जर्मनी भी बड़े धैर्य के साथ उनका मनोरथ पूरा करने के लिए यत्न कर रहा है। उसने अपने काफ़ी अधिक आदमी वहाँ भेज दिये हैं, साथ ही गोला-बारूद और अस्त्र-शस्त्र भी पूर्वी प्रूशिया से वहाँ बराबर पहुँच रहे हैं। इन सब बातों के फल-स्वरूप डेंज़िग धीरे-धीरे योद्धाओं और युद्ध-सामग्री का भांडार बनता जा रहा है। यदि पोलेंड ने तथा उसके साथ ब्रिटेन ने बार बार अपनी दृढ़ता का परिचय न दिया होता—या स्पष्ट शब्दों में यह न कह दिया होता कि यदि जर्मनी डेंज़िग की वर्तमान अवस्था में फेरफार करने का यत्न करेगा तो उसका मुक़ाबिला शस्त्र से किया जायगा—तो आज मेमल की तरह डेंज़िग भी जर्मनी का एक अंश हो गया होता। पोलैंड और उसके साथ ब्रिटेन का उग्र रूप देखकर जर्मनी ने आगे क़दम नहीं बढ़ाया। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वह चुप हो गया है। जर्मनी और सो भी आज का शक्तिशाली जर्मनी महायुद्ध के पहले की अपनी सारी जायदाद लिये बिना नहीं रहेगा। और जब तक उसकी मनोवाञ्छा पूरी नहीं हो जायगी तब तक योरप की क्या, सारे संसार की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति का ऐसा ही भयानक रूप बना रहेगा।

इसमें सन्देह नहीं है कि इस परिस्थिति को सुधारने के लिए ग्रेट ब्रिटेन ने बड़ा यत्न किया, परन्तु वह नहीं सुधर सकी, इसी से वह अपने पक्ष को सबल बनाने के लिए रूस और अमरीका के संयुक्त-राज्यों को अपनी ओर ले आने का भारी प्रयत्न कर रहा है। परन्तु ये दोनों राष्ट्र इस समय अगले युद्ध में लड़ने को तैयार नहीं दिखाई दे रहे हैं। और यही मुख्य कारण है, जिससे न तो युद्ध छिड़ रहा है और न राजनैतिक स्थिति का ही सुधार हो रहा है। इसके विपरीत पिछले दिनों जापान की नई गतिविधि से राजनैतिक स्थिति और भी बिगड़ गई है।

अभी तक जापान चीन से लड़ने में भिड़ा था या विजित भूभागों में अपने तत्त्वावधान में नई चीनी सरकारों का संगठन कर रहा था। इस प्रकार चीन से लड़ते लड़ते तीन वर्ष बीत गये और यद्यपि उसने उसका अधिकांश अपने अधीन कर लिया, तथापि आज भी चीन पहले की तरह उससे लड़ रहा है। बात यह है कि चीन को अमरीका के संयुक्तराज्यों, ग्रेट ब्रिटेन और रूस से समुचित सहायता मिलती रही है और आज भी मिल रही है। यही सब देखकर जापान खीझ उठा है और उसका अब एक ओर रूस की सीमा पर रूसियों से तथा चीनी बन्दरगाहों पर ब्रिटेन से संघर्ष छिड़ गया है। पिछले दिनों बाहरी मंगोलिया की सीमा पर तो रूस और जापान का भयानक हवाई और स्थल युद्ध भी हो चुका है। अब इधर उसने टीन्स्टिन आदि बन्दरगाहों का घेरा डालकर वहाँ के अँगरेज़ों को इसलिए तंग करना शुरू कर दिया है कि ब्रिटेन चीन का साथ देना छोड़ दे और चीन में जापान का प्राधान्य क़ायम करने में उससे सहयोग करे। इस समय जापान चीन के बन्दरगाहों में रहनेवालें योरपीयों के साथ जो अपमानजनक व्यवहार कर रहा है तथा ब्रिटेन आदि के जहाज़ों के आवागमन में जो बाधायें उसने डाली हैं उन सबको लेकर जापान का ब्रिटेन से युद्ध तक छिड़ जा सकता है। परन्तु ब्रिटेन की शान्ति-प्रिय सरकार जापान के दुर्व्यवहारों का राजनैतिक विरोध करके चुप होकर जापान-सरकार से समझौता की बात-चीत कर रही है। प्रशान्त सागर के उस अञ्चल की राजनैतिक स्थिति जापान के वर्तमान टेढ़े रुख के कारण भयावह हो

गई है। क्योंकि ब्रिटेन आदि बातचीत में जहाँ शान्ति का भाव ही व्यक्त कर रहे हैं, वहाँ वे समुचित तैयारी करने में भी जुटे हुए हैं। सिंगापुर में जहाज़ी अफ़सरों की पिछले दिनों जो सभा हुई थी उससे यही प्रकट हो रहा है कि प्रशान्त महासागर के उस अञ्चल की भी अवस्था चिन्ताजनक है। सिंगापुर की उस सभा में ब्रिटेन, फ्रांस और हालेंड के बेड़ों के अफ़सरों ने परस्पर बातचीत करके अपना कार्यक्रम निर्धारित किया है। ये सब बातें जापान को मालूम हैं, और वह इन प्रदर्शनों से ज़रा भी भयभीत नहीं हुआ है। चीन और उसके साथ रूस से भी वह भिड़ा ही हुआ है और अब यदि ब्रिटेन आदि भिड़ना चाहेंगे तो वह विमुख नहीं होगा। वह चीन में अपना अबाधित प्रभुत्व क़ायम करने की अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ है।

ऐसी दशा में कहना ही पड़ता है कि संसार की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति दिन दिन बिगड़ती ही जा रही है।

कांग्रेस का संकट

कांग्रेस का यह संकट-काल है। इस अवस्था का बहुत कुछ कारण उसका अनूठा 'पर्जवाद' है।

पर्जवाद अर्थात् विरोधियों को अपने संगठन से निकाल बाहर करने की नीति का प्रारम्भ कांग्रेस में पिछले सत्याग्रह-संग्राम के बाद से हुआ है और आज दिन वह, जान पड़ता है, ज़ोरों पर है। अनुशासन-भंग के नाम पर अब तक कितने ही छोटे-बड़े कार्यकर्त्ता कांग्रेस से निकाले जा चुके हैं, जिनमें बम्बई के प्रसिद्ध नेता श्री के० एफ़० नारीमैन, मध्यप्रान्त के भूतपूर्व प्रीमियर डाक्टर खरे और वम्बई-प्रान्त के भूतपूर्व प्रीमियर श्री बी० जे० खेर जैसे बड़े लोग भी हैं। परन्तु अब तो कांग्रेस की गन्दगी दूर करने के लिए बम्बई की हाल की अखिल भारतीय कांग्रेस-समिति ने एक प्रस्ताव ही पास कर दिया है, जिसके अनुसार वही व्यक्ति कांग्रेस का सदस्य हो सकेगा जो पिछले दो वर्षों से उसका सदस्य रहा है। इस प्रकार कांग्रेस में 'पर्ज' की व्यवस्था की गई है, ताकि उसमें ऐसे सदस्य न रह जायँ जो अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व का अभिमान रखते हों। संगठन को सुदृढ़ बनाये रखने के लिए ऐसे अनुशासन की प्रत्येक संस्था के लिए आवश्यकता है। परन्तु यही बात कांग्रेस की फूट का कारण हो रही है। उधर प्रसिद्ध देशभक्त सुभाष बाबू अपने रिवोल्यूशनरी अर्ज पर ज़ोर दे रहे हैं। वे चाहते हैं कि कांग्रेस क्रान्ति की भावना से प्रेरित होकर अपनी तीव्र गतिविधि प्रकट करे। और कांग्रेस के सूत्रधार उनके विरुद्ध हैं। वे कहते हैं कि इस समय देश क्रान्तिकारी कार्यक्रम ग्रहण करने को तैयार नहीं है। परन्तु सुभाष बाबू और उनके जैसे विचार के लोग कांग्रेस के सरदारों के इस मत से सहमत नहीं हैं और इस बात को लेकर उनके विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा किया है। बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस-समिति ने उपर्युक्त प्रस्ताव के सिवा सत्याग्रह छेड़ने एवं कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डलों की आलोचना करने के विरुद्ध दो ऐसे भी प्रस्ताव पास किये हैं, जिनका सुभाष बाबू और उनके साथियों ने उसी बैठक में विरोध किया था, परन्तु अल्पमत में होने से वे हार गये। फलतः उन्होंने उन प्रस्तावों के विरुद्ध देश में एक नियत दिन पर विरोधसभायें करने की सूचनायें निकालीं। वर्तमान राष्ट्रपति श्री राजेन्द्र बाबू ने तार-द्वारा श्री सुभाष बाबू को सूचित किया कि वे ऐसी अनियमित कार्रवाई न करें। परन्तु सुभाष बाबू नहीं माने और उन्होंने नियत दिन पर सभा करके कांग्रेस के उन प्रस्तावों का विरोध किया। उनके आदेश के अनुसार अन्य कई जगहों में भी वैसी सभायें हुईं। उन्होंने घोषित किया है कि अगस्त में सभायें करके वे यह भी प्रमाणित करेंगे कि देश सत्याग्रह करने को तैयार है—केवल नेता ही नहीं तैयार हैं। इस प्रकार सुभाष बाबू की क्रान्तिकारी 'अर्ज' अर्थात् प्रेरणा ने देश की राजनीति में विषम समस्या उत्पन्न कर दी है। अब देखना है कि कांग्रेस की कार्य-समिति किन किन के साथ अनुशासन-भंग की कार्रवाई करती है।

चाहे जो हो, यह तो अब एक प्रकट बात है कि कांग्रेस का संगठन पहले की तरह सुदृढ़ नहीं है और उसके बहुत से लोग कांग्रेस के सूत्रधारों से मन ही मन असन्तुष्ट हैं। आज सुभाष बाबू को कांग्रेस का विरोध करते देखकर वे सब उनके साथ हो गये हैं। यही बात हम इस तरह भी कह सकते हैं कि जब सुभाष बाबू ने देखा कि उन्हीं की तरह और बहुतेरे लोग कांग्रेस के सरदारों से असन्तुष्ट हैं तब उन्होंने उनका विरोध करने का साहस किया है। इस समय कांग्रेस की राजनीति की यही दशा है। कहाँ वह अपने भीतर की गन्दगी दूर करने को सन्नद्ध हुई थी, कहाँ उसमें फूट हो जाने की सम्भावना हो गई है।

यों तो मतभेद का वातावरण कांग्रेस में बहुत पहले से अस्तित्व में रहा है। यहाँ तक कि इधर उसके भीतर तीन नये दल तक संगठित हो गये हैं। श्रीयुत एम० एन० राय का दल, कांग्रेस साम्यवादी और वर्गवादी दल ही वे दल हैं। अल्पमत में होने के कारण इन दलों के नेता अभी अपने मन की नहीं कर पाते हैं। परन्तु उनका कांग्रेस के सरदारों से मेल-जोल नहीं है, जिससे कांग्रेसियों का एक अच्छा समूह उसकी कार्रवाइयों में उतने उत्साह के साथ सहयोग नहीं कर रहा है। और अब तो सुभाष बाबू एवं राय महोदय के तीव्र विरोध के कारण कांग्रेस में फूट के स्पष्ट लक्षण दिखाई दे रहे हैं।

इस प्रकार कांग्रेस आपस की मैं-मैं तू-तू के फल-स्वरूप ध्वस्तः हो रही है। उधर देश के सम्प्रदायवादी मुसलमान, हिन्दू आदि काफ़ी अधिक बल पकड़ गये हैं। यहाँ तक कि मुस्लिम लीग ने तो भारत को हिन्दू हिन्दुस्तान और मुसलमानी हिन्दुस्तान में बाँट देने तक की माँग पेश की है। हिन्दू भी पीछे नहीं हैं। उनकी महासभा भी हैदराबाद-सत्याग्रह में भाग लेकर अपना प्रचार-कार्य ज़ोरों से कर रही है।

कहने का मतलब यह है कि भारत में इस समय फूट का बाज़ार गर्म है, और राष्ट्रहित की भावना इस समय इस भूखण्ड से कोसों दूर चली गई है।

इस अवस्था का एक कारण यह है कि कांग्रेस ने शासन-भार ग्रहण कर लिया है। यह देखकर उसके विरोधी दल आपे से बाहर हो गये हैं और वे इस प्रयत्न में लगे हुए हैं कि कांग्रेस बदनाम हो जाय, जिससे जनता में उसकी कोई वक़त न रह जाय।

परन्तु कांग्रेस इतने पर भी सबसे अधिक बलसम्पन्न है। दूसरों की अपेक्षा उसका संगठन काफ़ी सुदृढ़ है। इसके सिवा उसका भारत के अधिकांश पर शासन-चक्र भी चल रहा है। ऐसी दशा में उसको पदभ्रष्ट कर सकना हँसी-खेल नहीं है और जो लोग इस कृत्य में लगे हुए हैं वे उसका कुछ बना-बिगाड़ तो सकेंगे नहीं, उल्टा ख़ुद ही बाद को उपहासास्पद बनेंगे। हाँ, अपनी बाधक कार्रवाइयों से वे देश की प्रगति को कुछ समय तक अलबत्ता रोक सकेंगे। इस समय हो भी यही रहा है। इससे अधिक कांग्रेस के लिए और क्या संकट का समय हो सकता है।

स्वामी लक्ष्मीराम का स्वर्गवास

जयपुर के स्वामी लक्ष्मीराम जी भारत के सबसे बड़े चिकित्सकों में गिने जाते थे। वे आयुर्वेद के असाधारण पण्डित तो थे ही, चिकित्सा-कुशल भी वे प्रथम श्रेणी के थे। दुख की बात है कि १० जुलाई को ६६ वर्ष की आयु में उनका स्वर्गवास हो गया। ४-५ वर्ष हुए उन्होंने एक लाख रुपये के दान से एक ट्रस्ट स्थापित किया था। इस रक़म में से २०,०००) आयुर्वेद के दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशनार्थ, ४०,०००) दादूपन्थ-विद्यालय के लिए, २०,०००) छात्रवृत्तियों के लिए व्यय किये जायँगे। स्वामी जी दादूपन्थ से सम्बन्ध रखते थे और जीवन भर ब्रह्मचारी रहे। वे एक लाख रुपये का भवन छोड़ गये हैं, जो उनके उत्तराधिकारी स्वामी जयरामदास को मिला है।

स्वामी लक्ष्मीराम जी नि० भा० आयुर्वेद महामण्डल और आयुर्वेद विद्यापीठ के चिरकाल तक प्रधान रहे। वे कलकत्ता के प्रसिद्ध वैद्य श्री द्वारकानाथ सेन के शिष्य थे। उनके देहान्त से जो क्षति आयुर्वेद और वैद्य-समाज को पहुँची है उसकी पूर्ति होना असम्भव है।

सेवा-उपवन की पंडित-सभा

काशी संस्कृत के पण्डितों की नगरी है। बाहर के साधारण लोग यही समझते हैं कि काशी में घर घर संस्कृत के विद्वान् निवास करते हैं और आस्तिक हिन्दू-समाज काशी के उन विद्वानों की सम्मतियों को सादर ग्रहण करता है। यही नहीं, लोगों का यह भी विश्वास है कि आज तक काशी से कोई जीतकर नहीं गया है। ऐसी ही काशी में वहाँ के देशभक्त रईस बाबू शिवप्रसाद गुप्त ने अपनी दिवंगत पत्नी के वार्षिक श्राद्ध के अवसर पर काशी के माने हुए पण्डितों की अपने सेवा-उपवन में एक बृहत् सभा करने तथा उस सभा में हिन्दुओं की

वर्तमान अवस्था-सम्बन्धी कुछ प्रश्नों पर वाद-विवाद करके व्यवस्था देने का आयोजन किया था।

गुप्त जी की प्रश्नावली संक्षेप में इस प्रकार थी—

१—(क) हिन्दू-समाज और हिन्दू-धर्म के ह्रास का कारण क्या है?

(ख) जातिच्युत कर देने की प्रथा इसका एक कारण है या नहीं?

(ग) हिन्दू-समाज में जन्मना ऊँच-नीच तथा छूत-अछूत का जो विचार फैला हुआ है वह इस ह्रास में कारण है या नहीं?

(घ) हिन्दू-धर्म तथा हिन्दू-समाज के इस ह्रास को रोकने के क्या उपाय हैं?

२—पाणिग्रहण के क्षण में कन्या का गोत्र—

(क) यदि बदल जाता है तो क्या गोत्र की अपेक्षा वर्ण का बदल जाना अधिक कठिन है?

(ख) यदि यह मर्यादा विद्वत्परिषद् स्थिर करे कि पाणिग्रहण के साथ कन्या का वर्ण भी बदल जाय तो इससे समाज की रक्षा और वृद्धि होगी या नहीं?

श्रीमान् गुप्त जी ने १८२ पण्डितों को निमंत्रण दिया था। इनमें से १० व्यक्ति उस अवसर पर काशी में उपस्थित नहीं थे, अतएव उन्हें निमंत्रण नहीं मिला। ४ व्यक्तियों ने निमंत्रण नहीं स्वीकार किया और घर पर भेजी गई दक्षिणा भी लौटा दी। शेष १६८ पण्डितों ने निमंत्रण ले लिया, पर उनमें भी ९२ पण्डित नहीं आये। इन न आनेवालों में से २५ पण्डितों ने घर पर भेजी गई दक्षिणा लौटा दी, किन्तु ६७ पण्डितों ने चुपचाप ले ली। आये हुए पण्डितों में दो ने दक्षिणा नहीं ली। निमंत्रण स्वीकार करनेवाले पण्डितों में से ८ कार्यवश काशी से बाहर चले गये थे। इस प्रकार सभा में केवल ७५ पण्डित एकत्र हुए और उन्होंने हिन्दू-जाति के ह्रास के कारणों पर विचार किया तथा उसके उद्धार का उपाय बताया।

श्रीमान् गुप्त जी ने अपने वक्तव्य में कहा है कि उनकी प्रश्नावली के 'अधिकांश उत्तर अपूर्ण, अस्पष्ट और अपुष्ट हैं'। वे उनके छपवाने का प्रबन्ध कर रहे हैं। उत्तर चाहे जो हो, उनसे कम से कम आधुनिक भारत को अपने श्रद्धाभाजन काशीस्थ पण्डित-समाज के विचारों के जानने का अवसर तो मिल जायगा।

काशी के पण्डितों ने इस अवसर से लाभ नहीं उठाया और अधिकांश ने अपनी कट्टरता का ही प्रदर्शन किया।

बंगाल में मुसलमान-शासन

बंगाल-प्रान्त का शासन वहाँ की असेम्बली के मुसलमान-दल के हाथ में है। वहाँ वह दल इसलिए अधिकारारूढ़ है कि उसे योरपीय दल को सहायता मिली हुई है। फलतः बंगाल के शासन-प्रबन्ध में मुस्लिम साम्प्रदायिकता का प्राधान्य हो जाना अस्वाभाविक नहीं है। इस समय वहाँ 'कारपोरेशन-बिल' का खासा विवाद छिड़ा हुआ है। इस बिल के द्वारा वहाँ का मुस्लिम-मंत्रिमण्डल-कार्पोरेशन में भी पृथक् निर्वाचन का प्रवर्तन करना चाहता है। अपने बहुमत के ज़ोर से उसने उस बिल को असेम्बली में पास करा ही लिया था और अब वह कौंसिल से भी ज्यों का त्यों पास कर दिया गया है। कौंसिल में उस बिल की बहस के सिलसिले में खाँ बहादुर अब्दुल करीम ने जो सरकारी दल के नेता हैं, एक बड़े मज़े की बात कही है, जो उपेक्षणीय होते हुए भी ध्यान देने के योग्य इसलिए है कि उससे बंगाल की मुसलमान-सरकार के प्रमुख व्यक्तियों के विचारों का पता लगता है। खाँ बहादुर का कहना है—

"हमारा लक्ष्य बंगाल में मुसलमानों का प्राधान्य स्थापित करना है। यहाँ हमारा प्राधान्य सन् १७६५ तक रहा है जब कि अँगरेज़ों ने दीवानी का अधिकार पाने पर यहाँ का शासनाधिकार मुसलमानों से अपने हाथ में ले लिया था। और अब जब कि नये सुधारों को जारी करके वे उसे देशवासियों को लौटा रहे हैं जिन्हें न्यायतः मिलना चाहिए था तब यह स्वाभाविक ही है कि यथापूर्व स्थिति क़ायम होनी ही चाहिए।"

सो बंगाल के इन खाँ बहादुर ने इस प्रसंग में पुरानी इतिहास की बात आगे लाकर एक अनोखा आदर्श उपस्थित किया है। यदि अन्य प्रान्तों के मंत्रिमण्डल भी उनकी प्रेरणा ग्रहण कर अपने अपने इतिहास की बातें इसी तरह ला उपस्थित करें और सिक्ख लोग

पंजाब में एवं मराठे महाराष्ट्र में अपने अपने राज्य के दावे करें तो देश की राजनैतिक अवस्था विलक्षण रूप धारण कर जायगी, जिसका विश्लेषण करना बड़ों बड़ों के लिए भी कठिन हो जायगा। भारत ने राष्ट्रीयतावाद की भावना का प्रसार करके यहाँ प्रजातंत्रीय शासन प्रचलन करने के लिए अब तक जो महान् से महान् त्याग किया है, जान पड़ता है सम्प्रदायवादियों के कुचक्रों से सबका सब बंटाधार हो जायगा। ऐसी परिस्थिति में कोई क्या कह सकता है? केवल यही न कि परमात्मा इस अभागे देश पर दया दिखायें।

आग मार्क का घी

भारत-सरकार का अग्रीकल्चरल मार्केटिंग सर्वे नाम का एक महत्त्व का विभाग है। यह देश की कृषि-सम्बन्धी उपजों की बिक्री की जाँच पड़ताल करता है। इस विभाग ने एक बहुत ही महत्त्व का काम अपने हाथ में लिया है। वह है घी और फलों को उनके विशुद्ध रूप में बाज़ार में प्रस्तुत करना। और उसे अपने इस प्रयत्न में काफ़ी सफलता भी मिली है। हम यहाँ घी की बात लेते हैं। सन् १९३८ में इस विभाग के आदेशानुसार देश की १४ फ़र्मों ने आग मार्क के घी का देश में प्रचार किया। इन फ़र्मों में दो तो कलकत्ते में हैं और एक एक नई दिल्ली, कानपुर, आगरा, बम्बई, कराची, अलीगढ़, लायलपुर, खुर्जा, ओकर, नवानगर और पोरबन्दर में हैं। सन् १९३८ में इन फ़र्मों ने इकतीस हज़ार मन घी गलाया और उसकी डिब्बाबन्दी करके उसमें से उन्तीस हज़ार मन घी पन्द्रह लाख रुपये में बेचा यह प्रारम्भ अच्छा हुआ है। इस सम्बन्ध में मार्के की बात यह है कि यह आग मार्क का घी रासायनिक विश्लेषण और परीक्षण के बाद ही मुहरबन्द डिब्बों में भरा जाता है। इसके लिए इस घी को बेचनेवाली फ़र्मों को अपने यहाँ प्रयोगशाला स्थापित करनी पड़ती है। यहाँ रासायनिक घी का परीक्षण करते हैं। इसके बाद जो घी शुद्ध ठहरता है उसका नमूना कानपुर की घी की केन्द्रीय प्रयोगशाला को भेजा जाता है। वहाँ से पास मिल जाने पर ही उस घी की डिब्बेबन्दी होती है। पर यहीं यह काम खत्म नहीं हो जाता। इस बात की जाँच के लिए इन्स्पेक्टर नियुक्त हैं कि बाज़ार में प्र... होनेवाला आग मार्क का घी कहाँ तक शुद्ध बि... है। इन्स्पेक्टर लोग बाज़ार में बिकनेवाले उस... के नमूने एकत्र कर केन्द्रीय प्रयोगशाला को भेजते है... यदि वह जाँच करने पर दूषित ठहरता है तो जिस... का वह घी होता है उसका अनुमति-पत्र रद कर दि... जाता है। निस्सन्देह, घी के सम्बन्ध की यह व्यव... अति आवश्यक है, क्योंकि बाज़ारों में विशुद्ध घी ... मिलना असम्भव-सा हो गया है, जिसकी बदौलत ... देश के लोग अपने अमूल्य स्वास्थ्य से हाथ धो बैठे हैं।

'हिन्दी ही तमाम हिन्दुस्तान की भाषा हो सकती है'

इन्दौर की 'मध्यभारत हिन्दी-साहित्य-समिति' ... मानपत्र के उत्तर में भाषण देते हुए इन्दौर के प्र... मन्त्री एतमाउद्दौला रायबहादुर कर्नल दीनानाथ ने कहा— "समिति क़ायम होने के समय से अब तक बराबर ... सरकार की मदद मिली है और मुझे पूरा यक़ीन है ... आइन्दा भी इसी प्रकार इमदाद मिलती रहेगी। ... आकर मुझे आज ख़ास ख़ुशी हासिल हुई, क्योंकि ... साल सन् १९१४ ई० में समिति की शुरुआत हुई थी ... साल में यहाँ आया था। मुझे ख़ूब याद है कि उस ... क्या क्या योजनायें हिन्दी के मुताल्लिक़ चल रही ... हमारे स्वर्गीय डाक्टर सरजूप्रसाद जी ने इस समिति ... क्या क्या ख़िदमात की वह आप सबको मालूम है। ... पोशीदा बात नहीं कि सन् १९१४ ई० में हिन्दी-भाषा ... लिए ऐसा वक़्त था जब कि हिन्दी सरकार की ... रहेगी या नहीं यह मामला सरकारी अधिकारियों ... रहा था, क्योंकि यह मराठी स्टेट है। मगर उस ... श्रीमन्त सरकार ने हिन्दी की सहायता की और ... में तय पाया गया कि हिन्दी हमेशा के लिए राज... रहेगी। उस वक़्त मैं भी हुज़ूर का एक नाचीज़ असि... सेक्रेटरी था। मुझसे श्रीमन्त सरकार ने राय माँ... और अभी तक हुज़ूर-आफ़िस में हिन्दी के मुता... मेरा नोट होगा। मैंने उस वक़्त बड़े ज़ोर से कहा ... हिन्दी-भाषा ही एक ऐसी भाषा है जो कि न सिर्फ़ ... में ही, बल्कि सारे हिन्दुस्तान में राजभाषा हो सकती ... हिन्दी से मेरी दिलचस्पी तभी से है जब से मैं पहले...

यहाँ राज्य की सेवा में आया था। इसकी खिदमत जो कुछ भी मैंने की वह इसलिए नहीं की यह मेरी भाषा है, बल्कि यही ऐसी भाषा है जो सारे भारत की भाषा हो सकती है।

इन्दौर के नये प्रधान मंत्री कर्नल साहब ने हिन्दी-सम्बन्धी परिस्थिति को स्पष्ट करके हिन्दी को जो गौरव प्रदान किया है उसके लिए हिन्दी-भाषी उनके सदैव कृतज्ञ रहेंगे।

——

मैसूरराज्य और मुस्लिम-एजुकेशन एडवाइज़री कमेटी

मुस्लिम एजुकेशन एडवायज़री कमिटी और मैसूर-राज्य के शिक्षा-विभाग के वर्त्तमान डायरेक्टर के बीच में आजकल बड़ी चख-चख चल रही है। कमेटी को गवर्नमेंट की ओर से यह अधिकार दिया गया है कि वह मुस्लिम हितों को दृष्टिकोण में रख कर शिक्षा-विधान में उचित हेर-फेर करा सकती है। फलतः वह आये दिन एक ऐसी योजना गढ़कर पेश कर देती है जिसे अमल में लाना डायरेक्टर के लिए ग़ैर मुमकिन हो जाता है। इन योजनाओं के कुछ ताज़े नमूने ये हैं—पहले उसने मैसूर के शिक्षा-विभाग से अनुरोध किया कि बँगलौर के फोर्ट हाई स्कूल में सब विषयों के लिए उर्दू ज़बान को अनिवार्य माध्यम बना दिया जाय; पर डाइरेक्टर ने जवाब दे दिया कि एक भी छात्र उर्दू पढ़ना नहीं चाहता और न उनके अभिभावक उन्हें उर्दू पढ़ाने को राज़ी होते हैं। दुबारा उसने आग्रह किया कि मुस्लिम समाज से बेकारी दूर करने के लिए मुसलमान छात्राओं के लिए घरेलू दस्तकारी की शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय, तो जवाब मिला कि 'जनाब ये सब बातें ख़याली हैं। इस तरह कहीं बेकारी दूर होती है। स्कूलों में घरेलू दस्तकारी की शिक्षा देना तब तक बिलकुल बेकार है जब तक छात्रायें घर पर भी उसे अमल में न लायें। और छात्रायें इतनी तकलीफ़ गवारा करना पसन्द नहीं करतीं। पिछले दिनों लड़कियों के स्कूलों में चरखा कातना अनिवार्य कर दिया गया था, पर बेकार; क्योंकि स्कूल के बाद घर पर किसी लड़की ने हाथ भर भी सूत कात कर न दिया और न उनके सूत को बाज़ार में किसी भाव लिया गया। मजबूरन चरखा-क्लास बन्द कर देना पड़ा।'

तीसरी बार कहा गया कि मैसूर के 'सेन्ट्रल गर्ल्स मिडिल स्कूल' में एक ऐसी मुस्लिम महिला नियुक्त की जाय जो विदेशी विश्वविद्यालयों की ग्रेजुएट हो; तब जवाब मिला कि 'मुझे कोई एतराज़ नहीं है; पर कठिनाई यह है कि इस प्रकार की मुस्लिम महिला मुझे तो मिलती नहीं, हाँ, यदि कमिटी तलाश कर देगी तो नियुक्त अवश्य हो जायगी।' चौथी बार आग्रह किया गया कि मैसूर के 'जनाना ट्रेनिंग स्कूलों' से अनट्रेन्ड अध्यापिकायें निकाल दी जायँ और उनके स्थान पर ऐसी मुस्लिम अध्यापिकायें नियुक्त की जायँ जो ट्रेन्ड ग्रेजुएट हों,' तब डायरेक्टर को कहना पड़ा कि अभी मुस्लिम अध्यापिकायें ट्रेन्ड ही नहीं हैं फिर ग्रेजुएट और ट्रेन्ड अध्यापिकाओं का मिलना तो एकदम असम्भव है, इसी लिए अभाव में अनट्रेन्ड अंडर ग्रेजुएट अध्यापिकाओं को रखना पड़ रहा है।

आशा है कि जिन्ना साहब या और समझदार नेता कोई ऐसी तदबीर बतायेंगे जिससे कमिटी की ये योजनायें मैसूर में सफलतापूर्वक अमल में आजायँ?

——

वैद्यनाथ-धाम के यात्रियों को सुविधा

भारत के अन्य प्राचीन तीर्थों की भाँति वैद्यनाथ-धाम का इतिहास भी अज्ञात है। प्राचीन काल में इसकी गणना प्रधान 'देवी-पीठों' में थी। कहते हैं कि जब विष्णु ने सती का शरीर चक्र से काटा तब उनका हृदय यहीं पर गिरा था। इसी कारण यह स्थान परम पवित्र माना जाता है। त्रेता में रावण ने यहाँ शिव-लिंग की स्थापना की और तभी से यह 'शैव-पीठ' नाम से प्रख्यात हो गया।

वैद्यनाथ-धाम के दर्शन की पुण्य-तिथि भाद्रपद की पूर्णिमा है। इसी तिथि पर वहाँ एक बड़ा सुन्दर मेला भी होता है। पहले यह स्थान दुर्गम माना जाता था, पर अब रेलवे लाइन बन जाने से यह सर्व-सुलभ बन गया है। इसी अवसर के लिए ई० आई० आर० ने सस्ते 'वीक-एण्ड-रिटर्न' टिकिट जारी कर दिये हैं। वैद्यनाथ-धाम के यात्रियों को इनसे लाभ उठाना चाहिए।

Printed and published by K. Mittra at The Indian Press, Ltd., ALLAHABAD

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्र—उमेशचन्द्रदेव

सितम्बर १९३९ } भाग ४०, खंड २ संख्या ३, पूर्ण संख्या ४७७ { द्वितीय श्रावण १९९६

कलिका से; कलिका की ओर से

लेखक, श्रीयुत 'एक भारतीय आत्मा'

क्यों मुसका दी बोलो आली!
जाड़ा है, रात अँधेरी है, सन्नाटा है, जग सोया है,
फिर यह काँटों की टहनी है, कैसे मुसका उट्ठीं आली?

क्यों तुम्हें रात में दीख रहा?
तुम योगी हो? अथवा उलूक?
क्यों हास्य बिखरता है, बोलो
कर कर मृदु सम्पुट टूक टूक?

क्यों आँख खोल दी? क्या अपना जग,
फूला फूला-सा दीखा?
क्या मुँदी आँख में, यह सपना जग
भूला भूला-सा दीखा

क्या इन पत्तों ने जगा दिया,
फर फर कर करके सूने में?
क्या फर फर में पुकार सुन ली
जागना छू लिया छूने में?

क्या कहूँ साँसवाले जग को?
जो निशिदिन सो सो जगता है?
क्यों मेरा जगना एक बार भी,
इसे अनोखा लगता है?

मेरा जगना, मेरा हँसना
जग-जीवन का उल्लास कहाँ ?
मैं हँसूँ मुँदूँ मनचाही-सी
विधि का मुझ पर विश्वास कहाँ !

तुम हँसते हो चुप हो होकर
चुप होकर मुसका जाते हो ?
मैं हँसी, कि कैसे पाप हुआ ?
क्यों प्रश्न पूछने आते हो ?

कोमल रवि-किरणें आती हैं
वे मुझे ढूँढ़ती घूम घूम।
अपने बिजली से ओठों से,
मेरा मुँह लेती चूम चूम !

क्या कहूँ हवा से, यह सौतिन,
चुप धीमे धीमे आती है––
फिर मुझे हिलाती हौले से,
मेरी आँखें खुल जाती हैं।

पत्रों का, इन मदमत्तों का
वह झूम झूम कर गा देना,
कुछ कभी ताल-सी दे देना,
कुछ यों चुटकियाँ बजा देना !

पंखों से हवा में जग न उठे
यों ठण्डी मेरी आग कहाँ ?
मेरा मीठापन वह न उठे
वह क़ाबू का अनुराग कहाँ !

डूबते हुए इन तारों से
बोलूँ तो क्या बोलूँ आली !
इनकी समाधियों पर मेरी मुसकान ?––
––कौन थाती पाली ?

तेरा हँसना वह हँसना है,
जिससे मेरा उद्धार नहीं,

मेरा हँसना वह हँसना है,
ज़िस पर टिक पाया प्यार नहीं।

मेरा हँसना वह हँसना है,
जीने का जो एतवार नहीं !
मेरे हँसने में मानव-सा,
पापी विधि हुआ उदार नहीं।

जग आँख मूँद कर मरता है
मैं आँख खोल कर मरती हूँ !
मेरी सुन्दरता तो देखो,
मरने के लिए उभरती हूँ !!

रवि की किरनों को तो देखो,
वे जगा विश्व-व्यापार, चलीं !
मेरी क़िस्मत !––
वे ही मुझको यों हँसा हँसा कर मार चलीं

मैं जगी कि जैसे मीठा-सा,
प्रिय का कोई सन्देह जगा !
मधु बहा कि जैसे सन्तों का,
धीमे धीमे सन्देश जगा !

मैंने हाँ वर भी पाया,
––मैं जिसकी गोदी में बड़ी हुई,
जिसका रस पी, मधु-गन्धमयी,
खिल-खिल कर ऊँची खड़ी हुई।

आई बहार, मैं उसके ही चरणों पर नत हो
झुकी सखी !
फिर जी की एक एक पंखुड़ि, उस पर वार
मैं कर चुकी सखी !

मैं बलि का गान सुनाती हूँ,
प्रभु के पथ की बन कर फ़क़ीर
माँ पर हँस-हँस बलि होने में,
खिच,––––––हरी रहे मेरी लकीर

'मीराबाई'––नाम

लेखक, श्रीयुत डाक्टर पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल,
एम० ए०, डी० लिट्

इस लेख में डाक्टर बड़थ्वाल ने बड़ी छानबीन के साथ यह सिद्ध किया है कि मीराबाई नाम नहीं किन्तु उपनाम है, साथ ही मीरा एक विदेशी शब्द है।

मीराबाई के व्यक्तित्व के कारण उसका नाम हमारे लिए इतना प्रिय हो गया है कि साधारणतया हमें यह ध्यान भी नहीं आता कि उसमें कोई असाधारणता है और उसके सम्बन्ध में सोच-विचार की भी आवश्यकता है। परन्तु यदि इस नाम पर थोड़ा भी विचार किया जाय तो पता चलेगा कि यह नाम है बहुत असाधारण।

इस नाम पर विचार करने के पहले यह उल्लेख करना आवश्यक है कि राजस्थान में जहाँ की रहनेवाली मीराबाई थी, नाम का उच्चारण मीरांबाई है। 'रा' का यह आनुनासिक उच्चारण व्याकरण की किसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए आया है अथवा केवल राजस्थानी की उच्चारण-मात्र की एक विशेषता है, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। राजस्थानी में विभक्तियों के पहले बहुवचन में विकारीरूप बहुधा आँ-कारवाले होते हैं, जैसे "धण संभालै कंचुवौ प्री मूछां रा वालि" में मूछां है। मुझे यह भी बतलाया गया है कि जैसे मीरां का मीरां होता है, वैसे हीरा का हीरां। इस 'आँ'-कार का चाहे जो कारण हो, 'मीरा' और 'मीरां' हैं मूलतः एक ही चीज। हिन्दी में मीराबाई चलता है, फिर से मीरांबाई चलाने का प्रयत्न करना उचित नहीं। विभिन्न भाषाओं में एक ही नाम के अलग अलग उच्चारण हो जाते ही हैं। मीरां से मीरा में जो परिवर्तन हुआ है, वह अपने आप हुआ है, किसी के सज्ञान प्रयत्न से नहीं।

ऊपर मैंने इस नाम की असाधारणता का उल्लेख किया है। यह बात नहीं कि हिन्दी में इस शब्द का प्रयोग ही न हो। है तो, किन्तु बहुत विरल। अभी तक मुझे बाबू श्यामसुन्दरदास जी के द्वारा सम्पादित 'कबीर-ग्रंथावली' में आई हुई निम्नलिखित तीन साखियों में 'मीराँ' शब्द का प्रयोग मिला है––

चौहट्टै चिन्तामणि चढ़ी, हाड़ी मारत हाथि।
मीरां मुझ सूं मिहर करिइब मिलौं ना काहू साथि॥

चिन्तामणि (आत्मा मायाविष्ट होकर जीव के रूप में) खुले बाज़ार (जगत् में) बिकने आई है। इसी से डाकू (यम) उस पर हाथ मार रहा है। हे प्रभु ! मुझ पर दया कर। मैं किसी के साथ मिलना नहीं चाहता (मायोपाधिक जगत् में नहीं आना चाहता, निर्लेप रहना चाहता हूँ जिससे जन्म-मरण के बन्धन से छूट जाऊँ।)

कबीर चाला जाइ था आगैं मिल्या खुदाइ।
मीरां मुझ सूं यूं कह्या, किन फुरमाई गाइ॥

कबीर परम्परागत मार्ग पर चला जा रहा था कि आगे खुदा मिल गया। प्रभु ने मुझसे इस प्रकार कहा––'गो (-वध) की आज्ञा किसने दी है ?'

हज कावै ह्वै ह्वै गया केती बार कबीर।
मीरां मुझमें क्या खता मुखां न बोलै पीर॥

(कबीर कभी हज्ज करने तो गये नहीं थे। भीतरी भाव को ही वे असली हज्ज मानते थे। इसी लिए उनका कथन है कि) मैं न जाने कितनी बार काबे की हज्ज को हो आया हूँ। फिर भी यदि (दुनियावी) पीर मुझसे बोलता नहीं, (मुझे भक्त नहीं मानता) तो हे प्रभु ! इसमें मेरा क्या दोष ? (दोष पीर की बहिर्मुख वृत्ति का है। साखी का उद्देश्य बहिर्मुख कर्मों की व्यर्थता सिद्ध करना है।)

इन साखियों में, जैसा उनके साथ दिये हुए अर्थों से स्पष्ट है, 'मीराँ' का अर्थ प्रभु या ईश्वर जान पड़ता है। इस शब्द के माने मीर भी हो सकते हैं (मीर के सम्बन्ध में आगे चलकर कुछ कहने की आवश्यकता पड़ेगी)। परन्तु वह इनमें खपता नहीं है। दूसरी साखी 'मीराँ' का अर्थ 'हे मीरो !' मानने में बाधक नहीं, परन्तु उसका अर्थ ईश्वर मानने में भी वह अड़चन नहीं डालती। तीसरी में उसका अर्थ ईश्वर लगाना ही अधिक संगत है क्योंकि अन्यथा 'पीर' के विरुद्ध अपील सामान्य मीर के पास ले जाने के कोई माने नहीं। पहली साखी में तो

'मीराँ' के माने स्पष्ट ही ईश्वर हैं। बिना उसके यह माने लगाये उक्त साखी का अर्थ ही नहीं बैठ सकता। इसलिए 'मीरां' के माने हुए 'प्रभु' और 'मीरांबाई' के 'प्रभु-पत्नी', 'परमात्मा की स्त्री'। और जो

मेरे तो गिरिधर गुपाल, दूसरा न कोई।
जा के सिर पै मोर मुकुट मेरो पति सोई॥

की तान से परिचित है वह जानता है कि यह कितना सच है।

अब प्रश्न यह उठता है कि यह मीराँ शब्द है कैसा? वह किसी अन्य भाषा का तत्सम या तद्भव है या देशज? राजस्थान के एक प्रमुख विद्वान् से मैंने जब मीराबाई नाम के सम्बन्ध में पूछा तब उन्होंने कहा कि यह ख़ास राजस्थानी का शब्द है। परन्तु उस दशा में उसका व्युत्पत्ति-सम्मत अर्थ क्या होगा, यह उन्होंने कुछ नहीं बताया। कबीर-बानी के कबीर-ग्रन्थावली के ढंग के अधिकांश हस्तलेख या तो राजस्थान में, या किसी राजस्थानी के लिए या किसी राजस्थानी के द्वारा लिखे मिलते हैं इसलिए यदि मीराँ राजस्थानी का अपना शब्द है तो उसका मूल चाहे जो हो, यही अधिक संभव है कि जिस अर्थ में उसका प्रयोग कबीर-ग्रन्थावली में हुआ है, राजस्थानी में भी उसका वही अर्थ होगा। राजस्थानी शब्द मानने पर भी उसका मूल कहीं से ढूंढ़ना ही पड़ेगा। क्योंकि स्वयं राजस्थानी बोली में इस नाम के अतिरिक्त कहीं उसका प्रयोग नहीं मिलता जिससे हम उसे राजस्थानी का मूलतः अपना अथवा देशज शब्द मान सकते। किसी शब्द को देशज मानने का भी अर्थ कभी कभी यही होता है कि हम उसका मूल नहीं जानते।

हिन्दू नारी का नाम होने के कारण पहली आशा यही होती है कि इसका मूल भारतीय होगा। परन्तु मीरा या मीराँ को संस्कृत से निकालना बहुत खींचतान से ही सम्भव हो सकता है। संस्कृत-कोशों में एक शब्द 'मीर' आता है, जिससे इसकी व्युत्पत्ति सम्भव हो सकती है। मेदिनी-कोश में फेंकने के अर्थ में (प्रक्षेपणे) डुमिग् धातु से क्रन् प्रत्यय लगा कर इसकी सिद्धि की गई है। थियोडोर और बेन्फ़ी ने इसे 'मी' धातु से निकाला है। मोनियर विलियम्स के और सेंट पोटर्सबर्गवाले तथा अन्य कोशों में सब जगह अर्थ सागर दिया गया है। (प्रभु, ईश्वर) नारायण का निवास सागर है। अतएव सम्भवतः बड़ी तोड़-मरोड़ के बाद मीरा के माने नारायण या ईश्वर लग सके। फिर भी संस्कृत में मीर शब्द का कहीं साहित्य में वास्तविक प्रयोग न मिलने से यही कहना पड़ता है कि इससे शायद ही मीरा बना हो। कोशों में सिद्धान्त-कौमुदी से यह शब्द लिया गया जान पड़ता है। वहाँ उणादिप्रकरण में उसका उल्लेख हुआ है। अतः तो कहा नहीं जा सकता कि यदि कहीं साहित्य में उसका प्रयोग नहीं मिलता तो वह कभी बोल-चाल में भी प्रयुक्त न होता रहा होगा, अन्यथा वह व्याकरण में ही कैसे आता। किन्तु यह शब्द अब इतना अपरिचित हो गया है कि उसे सहसा सुनते ही संस्कृत के विद्वान् भी संस्कृत का मानने को तैयार नहीं होते*। ऐसे शब्द से निकले हुए शब्द का प्रयोग हिन्दी में भी केवल कबीर में मिले इसकी कम सम्भावना है।

* इस सम्बन्ध में एक बहुत रोचक तथ्य प्रकाश में आया है। लखनऊ-विश्वविद्यालय में संस्कृत-विभाग के अध्यक्ष तथा फ़्रेञ्च-भाषा के अध्यापक श्रीयुत डा० ए० एस० आयर ने बताया है कि फ़रासीसी भाषा में मेर (mer) सागर के अर्थ में अब भी प्रयुक्त होता है। भूमध्य सागर के लिए फ़रासीसी पर्याय है Law mer meditterannee (the sea mediterranian)। इटालियन भाषा में भी इससे मिलते-जुलते शब्द का सागर के अर्थ में प्रयुक्त होना कहा जाता है। इससे भी यही पता चलता है कि व्याकरण में निरावार ही इस शब्द का उल्लेख नहीं हुआ है। संस्कृत तथा योरपीय भाषाओं के बहुत-से शब्द एक ही मूल से निकले हुए हैं। संस्कृत के 'मीर' और फ़रासीसी 'मैर' का भी एक ही मूल जान पड़ता है। हो सकता है कि संस्कृत के क्षेत्र में वह बोलचाल ही तक सीमित रह गया हो, साहित्य में न आ पाया हो। आयर महोदय तो यह सम्भव समझते हैं कि इस शब्द का मूल विदेशी है और सम्भवतः यवनों (ग्रीकों) के संसर्ग से यह संस्कृत में गृहीत हुआ है। संस्कृतकोशों का यह 'मीर' चाहे भारतीय हो अथवा विदेशी, उससे 'मीरा' का कोई सम्बन्ध नहीं जान पड़ता। —लेखक

तो क्या यह शब्द विदेशी है? फ़ारसी में एक शब्द 'मीर' है, जिससे इसकी व्युत्पत्ति सम्भव हो सकती है। फ़रहंगे अनंदराज में मीर अमीर या मीरह का संकुचित रूप माना-गया है। तेहरान से प्रकाशित एस० हैम के फ़ारसी-अँगरेज़ी-कोष में इसकी निरुक्ति अमीर से की गई है। माने दोनों कोषों में एक-से हैं। मीर शुद्ध वंश के सैयदों के नामों के पहले आदर प्रदर्शन के लिए जोड़ा जाता है और उसके माने सरदार या मालिक के होते हैं। यही अर्थ हिन्दी-शब्दसागर में भी दिया गया है। डाक्टर ताराचन्द के एक लेख में शाह मीरां जी शम्सुल उश्शाक का ज़िक्र आया है। मैंने उनसे पूछा कि इस नाम में आया हुआ 'मीरां' क्या है। उन्होंने उत्तर में लिखा कि यह मीर का बहुवचन है। यह व्युत्पत्ति कबीर-ग्रंथावली में मिलनेवाले प्रयोगों के विरुद्ध भी नहीं जाती। यद्यपि इस्लाम में अल्लाह के सम्बन्ध में 'मीर' शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता, फिर भी लाक्षणिक प्रयोग से परमात्मा को मालिक कह सकते हैं, विशेषकर वे जो इस्लाम के अन्तर्गत नहीं हैं, जैसे कबीर। जान पड़ता है कि हिन्दी में आदर-प्रदर्शन के उद्देश्य से इस अर्थ में इस शब्द का सीधा बहुवचन रूप ही लिया गया है।

परन्तु सोलहवीं सदी के मध्य की किसी हिन्दू नारी के नाम में किसी फ़ारसी-मूलवाले शब्द का प्रयोग है विचित्र बात। आज भी जब कहीं कहीं पुरुषों में रामदत्त-सिंह रामबख़्शसिंह में बदल गये हैं, हिन्दू स्त्रियों के नामों में विदेशीपन नहीं आया है। अतएव यह कम सम्भव जान पड़ता है कि मीराँबाई मा-बाप का रक्खा हुआ नाम हो। मीराबाई के पीछे तो मीरा नाम का सर्वप्रिय होना स्वाभाविक है। परिणामतः आजकल कई स्त्रियों के नाम मीरा मिलते हैं। किन्तु सम्भवतः मीराबाई पहली मीरा थी और सम्भवतः मीराबाई उसका नाम न हो कर उसकी व्यक्तिगत विशेषता की द्योतक उपाधि (या उपनाम) मात्र थी, जो सम्भवतः साधु-सन्तों के द्वारा उसे मिली हो और जिसके आगे उसका असली नाम विस्मृति के गह्वर में चला गया हो। मीरा की प्रेम-लक्षणा भक्ति प्रसिद्ध है। वह परमात्मा को अपना पति-समझती थी और परमात्मा के अतिरिक्त किसी को पुरुष नहीं मानती थी। यह नाम उसकी इसी विशेषता का द्योतक है और सम्भवतः इस बात का भी कि इस विशेषता का मूल कबीरी विचार-धारा है। जैसा देख चुके हैं, कबीर में ही पहले-पहल हमें यह शब्द मिलता है। और सम्भवतः उन्हीं की-सी विचारधारावाले साधु-सन्तों से मीरा को यह नाम या उपाधि मिली हो। कबीर के द्वारा, जिसे मैं जात-मुसलमान मानता हूँ और जिसका मुसलमान कुल में पालापोसा जाना सब मानते हैं, फ़ारसी मूल से निकले हुए इस शब्द का प्रयोग अस्वाभाविक भी नहीं है। यह प्रसिद्ध है कि रैदास मीराबाई के गुरु थे। मीरा के नाम से मिलनेवाली 'बानी' में तीन स्थलों पर इस बात का उल्लेख है। यह भी प्रसिद्ध है कि रैदास रामानन्द के शिष्य और कबीर के गुरु भाई थे। नाभा जी ने स्वामी रामानन्द के शिष्यों को प्रेम लक्षणा भक्ति का (जिसको उन्होंने 'दशधा' कहा है, आगर ('दशधा के आगर') बताया है, यही मीरा की भी विशेषता है।
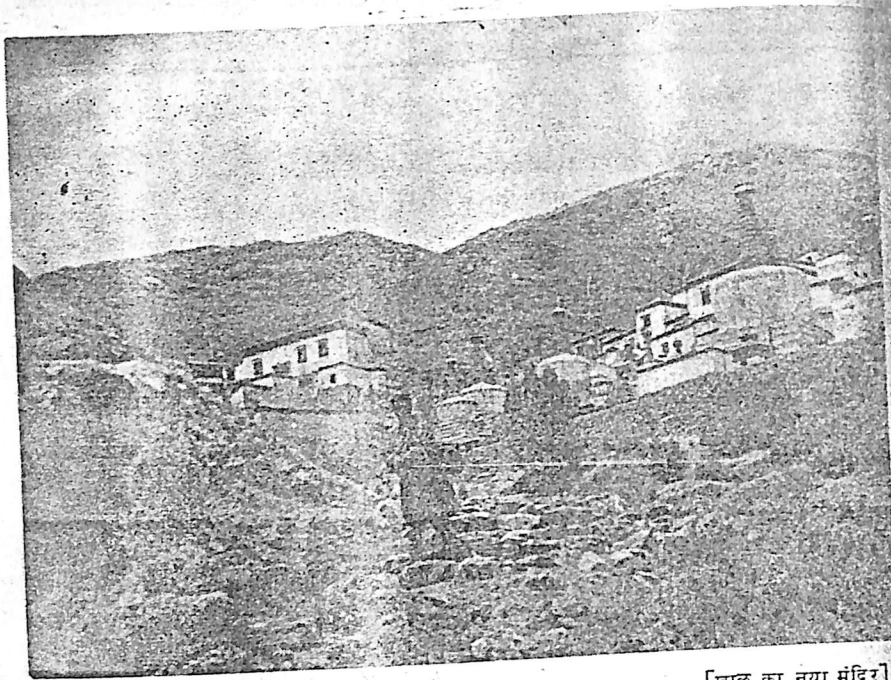
[खालू का नया मंदिर]

मैं तिब्बत कैसे गया ?

लेखक, श्रीयुत फेनो मुकर्जी, कलाकार ए० सी० ए०; आई० ए० एस०

२६ मई को सवेरे साढ़े पाँच बजे फिर चल पड़े। कल की तरह हर एक गाँव में रुकते और खच्चर बदलते हुए हम लोगों ने क़रीब १२ मील का सफ़र तय कर नुरबू चंग ज़े के गाँव में पहुँचकर दोपहर का भोजन किया। आराम किये बिना ही हम लोग फिर आगे बढ़े। क़रीब ३ बजे शाम को एक भयानक आँधी का सामना करना पड़ा। दुर्भाग्य से मेरा खच्चर बिगड़ने और आगे चलने से इनकार करने लगा असबाब से लदे खच्चर और नौकर इतनी दूर थे कि तूफ़ान के धुन्ध में ग़ायब हो गये थे। उनकी देख-भाल के लिए गेशीला जी और अभयसिंह जी आगे झपटे। राहुल जी को मेरे साथ आने को छोड़ गये थे।

उनके चले जाने के बाद राहुल जी भी उस आँधी में घबरा कर आगे बढ़ गये। मैं अपने बिगड़ैल खच्चर की बदौलत उस तूफ़ान में अकेला तिब्बत के मैदान में भटकने लगा। रेत आँखों में भर गई थी, पत्थर के छोटे छोटे टुकड़े उड़ उड़कर चेहरे पर लग रहे थे। साथ साथ बारिश की बौछार और बर्फ़ भी गिरने लगी। उस समय मैं बड़े संकट में पड़ गया था। न तो मुझे कोई राह बतानेवाला था, न मैं तिब्बती भाषा ही जानता था और सन्ध्या हो रही थी। आत्म-रक्षा के लिए मेरे पास सिवाय एक चाक़ू के और कोई अस्त्र भी न था। तिस पर खच्चर आगे चलने से साफ़ इनकार कर रहा था। अंत में उतर कर उसकी एक लगाम निकाली और जी भर कर उसे पीटा। बेचारा बेज़बान जानवर दुःख से दुःखी होकर बुरी तरह रेंकने लगा।
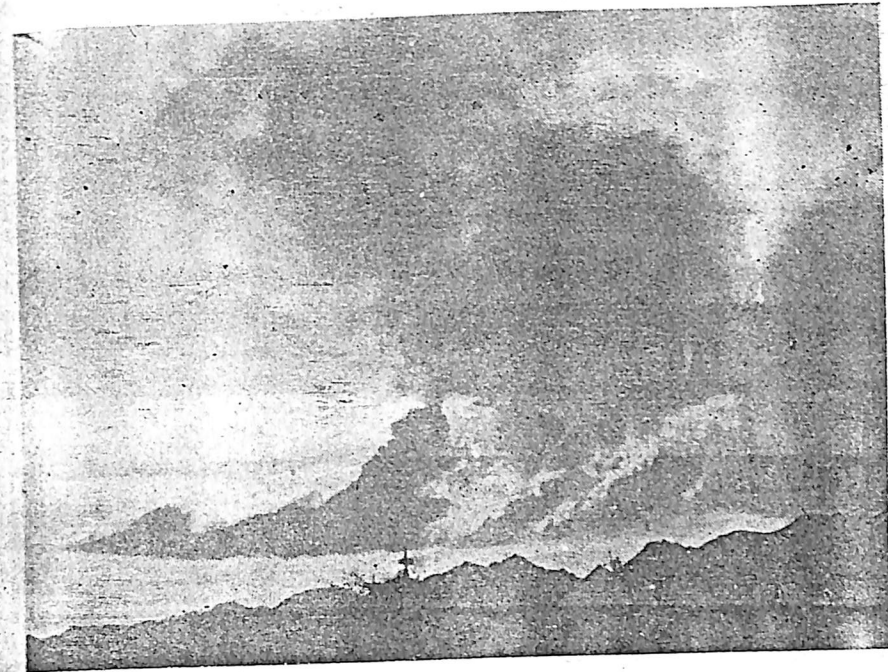
[रेत का भयंकर तूफ़ान]

पहले तो उस मैदान में रास्ता कहाँ है, इसी का पता लगाना कठिन था, दूसरे गर्द में कुछ सूझता भी नहीं था। लाचार होकर मैं फिर सवार हुआ और लगातार मारते हुए खच्चर को आगे बढ़ाया। वह बेतहाशा भागता भागता जाकर पानी के एक गढ़े में गिर पड़ा और उसके पैर कीचड़ में फँस गये। परन्तु सौभाग्य से चोट हम दोनों में से किसी को न लगी। मेरी छाती में पहली चोट का असर अभी तक था। इस भग-दौड़ और इस अचानक झटके से वह फिर दुखने लगी। भूख, प्यास, डर और दर्द की कमज़ोरी से मैं पागल-सा हो गया। मैं कीचड़ में उतर पड़ा, खच्चर को पूरी ताक़त से बाहर निकाला, ढीले ज़ीन को कसा और फिर सवार होकर चल पड़ा। थोड़ी दूर चलकर एक छोटी-सी बस्ती में पहुँचा। वहाँ के काले रँगे हुए आदमियों को देखकर मैं डर गया। बड़ी हिम्मत से उनके समीप गया और बात-चीत करने की कोशिश करने लगा। मैंने यह अच्छा नहीं समझा कि मैं उन पर यह प्रकट होने दूँ कि मेरी हालत बहुत बुरी है और मैं बड़े संकट में हूँ। खच्चर को पूरी तेज़ी से भगाते हुए बड़ी शान से उनके पास गया। वे मुझको देख कर सहम गये और जीभ निकाल कर सिर खुजलाते हुए चुपचाप खड़े हो गये। तिब्बती-भाषा के जो दो-चार शब्द सीखे थे उनको कुछ हिन्दी और कुछ पंजाबी-बंगाली के शब्दों के साथ मिलाकर इस्तेमाल किया। उनके जवाब के ढंग से और हाथ के इशारे से मैं समझ गया कि हमारे साथी लोग आगे के गाँव में ठहरे हैं। मैंने उनको धन्यवाद दिया और आगे बढ़ा।

सूरज डूब चुका था। केवल काली क्षितिज सामने दिखाई दे रही थी। आगे निकलकर मैं जी में सोचने लगा कि अब क्या किया जाय। आगे बढ़ने की न हिम्मत थी, न शक्ति ही थी। फिर विचार किया कि आज की रात
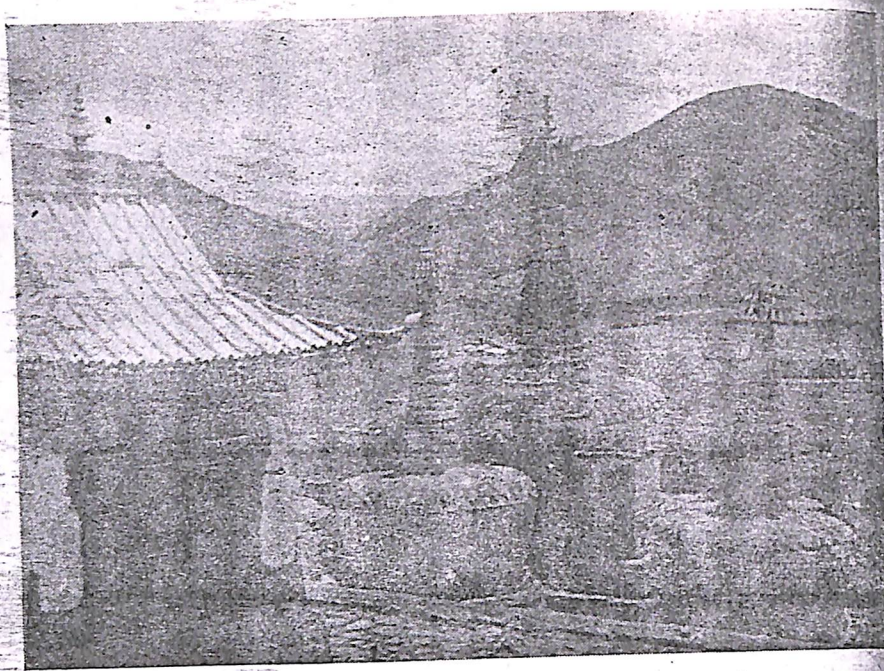
[शेलू के मंदिर की सोने की छत। पास में मंदिर सस्थापकों के तीन स्मारक हैं]

मैदान में ही क्यों न गुज़ार दूँ। इतने में दूर से किसी सवार के आने की आवाज़ कान में आई। मारे डर के खून सूख गया! सोचा, सिवाय डाकू के और कौन इस समय आ रहा होगा। थोड़ी देर बाद ही कान में आवाज़ आई—"फेनी!"

इस शब्द में कितनी मधुरता, कितना ढाढ़स और कितना आकर्षण था! तुरन्त समझ गया, मेरे दयालु भाई गेशेला आ गये हैं। उनके साथ साथ बात-चीत करते हुए २० मिनट चलने के बाद वे मुझे उस झोपड़ी में ले गये, जहाँ आज का डेरा पड़ा हुआ था। राह में कहने लगे कि राहुल जी को अकेले आते देखकर मैं घबरा गया और तुम्हें ले आने के लिए दौड़ा आया।

अन्दर जाकर मैं ज़मीन पर गिर पड़ा। भूख, प्यास, कमज़ोरी और दर्द से मैं बेहोश हो गया। राहुल जी से मैं बोल न सका। रात में सबों ने जब खाना खा लिया तब गेशेला ने मुझको गरम दूध पिलाया और नौकरों ने मुझको खींचकर बिस्तरे पर डाल दिया। तमाम रात थकावट और सीने में दर्द बढ़ जाने से मैं सो नहीं सका।

कल के अपने कटु अनुभव से मैं अधिक सावधान हो गया था। दूसरे दिन एक पिस्तौल अपने कन्धे से लटकाई। कुछ खाने पीने का सामान और ज़रूरी चीज़ें चमड़े के दो बेगों में रखकर अपने खच्चर पर लाद और तिब्बती-भाषा की ज़रूरी बातें अपने पाकेट-बुक में लिख लीं। इस तरह संकट के समय अपने बचाव की मैंने यथासाध्य तैयारी कर ली।

यह रात हमने तोये गाँव में बिताई थी। हिसाब लगाने पर मालूम हुआ कि कल हम लोगों ने ... मील से ज़्यादा ही सफ़र किया। २७ मई को हम ... खालू की बस्ती में पहुँच गये। दूर से चारों ओर का ... बहुत ही सुहावना था। चारों तरफ़ पीले और ... रंग के सूखे पहाड़ों की एक क़तार बनी हुई थी। खालू की पुरानी बस्ती पहाड़ की तराई में बसी है और उसके इर्द-गिर्द हरे-भरे पेड़ लगे हैं। पास की पहाड़ी पर खालू की नई बस्ती बसी हुई है। नया गुम्बा वहीं बना है। लामा भी वहीं रहते हैं। इसलिए पुरानी बस्ती बिलकुल उजाड़ मालूम होती है। सब दरवाज़ों में ताले पड़े हुए हैं और जगह जगह भयानक तिब्बती कुत्ते सोये हुए हैं। अन्दर घुसते ही सारे कुत्ते जाग पड़े और एकाएक दौड़ पड़े। नौकरों की मदद से बड़ी कठिनाई से पत्थर चलाकर उन्हें रोका। सारी बस्ती घूम डाली पर एक भी आदमी नहीं दिखाई दिया। आखिर ऊब कर खच्चरों को उन खम्भों से बाँध दिया और सारे सामान ज़मीन पर डालकर हम भी उसी सड़क पर बैठ गये। सूखा सत्तू और सूखा भुना मांस चाभने पर जब कुछ शान्ति आई तब हमारे अभयसिंह जी एक खच्चर लेकर झपटे और पहाड़ी पर

[खालू-मंदिर में महान् बौद्ध पंडित भट्टन की मूर्ति]

चढ़ कर नई बस्ती में दाखिल हुए। वे पहले भी वहाँ गये थे और वहाँ के लामा से काफ़ी परिचित थे। वे लामा जी के मकान की चाबी और दो नौकर साथ लेकर वापस आये।

इस जगह का मन्दिर बहुत ही पुराना है। इसकी छत लकड़ी और ताँबे के पत्र से बनी हुई है। यह मन्दिर बहुत ही सुन्दर ढंग का है। हमारे गेशेला तिब्बती कला के पूर्ण ज्ञाता थे। पूछने पर मुस्कराकर कहा—"फेनी जी, आज आप तिब्बत के सबसे पुराने शहरों में से एक शहर में घूम रहे हैं। जो कारीगरी आप देख रहे हैं, ग्यारहवीं सदी की है।

राहुल जी ने अभयसिंह को सारे तिब्बत में तालपत्र की किताबें खोजने के लिए नियुक्त किया था। उस यात्रा में वे इस गुम्बा में भी आये थे। उस समय वे यहाँ के लामा से काफ़ी मेल-जोल बढ़ा गये थे। अभयसिंह
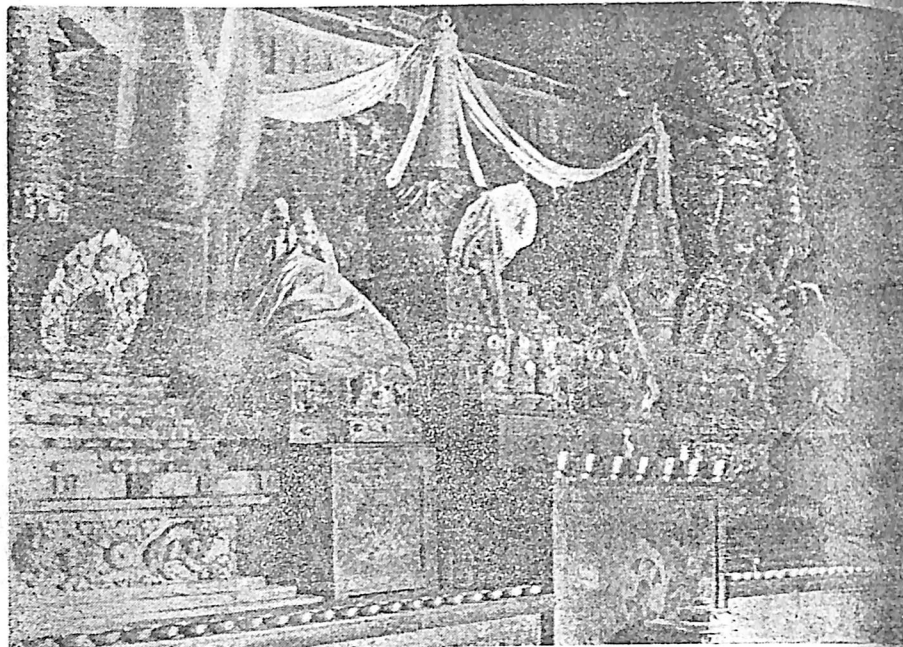
[खालू के प्राचीन मंदिर का भीतरी दृश्य]

इन दो वर्षों में तिब्बती-भाषा लिखने और बोलने में काफ़ी अभ्यस्त हो गये थे। बात-चीत, पहनावे, रहन-सहन
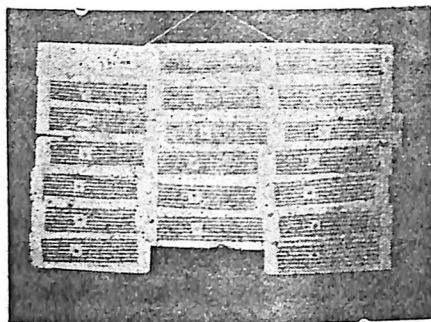
[ताड़पत्रों की पुस्तक का एक चित्र]

और खाने-पीने में बिलकुल तिब्बती मालूम पड़ते [illegible] उसी प्रकार बहादुरी और हिम्मत में भी कुछ कम न[illegible] पहले जब वे यहाँ आये थे तब लामा से हम लोगों [illegible] में बहुत कुछ कहा था कि बड़े बड़े धार्मिक भिक्षुक हि[illegible] से इस मन्दिर में किताबें पढ़ने को आ रहे हैं। [illegible] काफ़ी मालदार हैं और यहाँ काम सफल होने पर [illegible] दान भी देंगे।

यहाँ के लामा का धार्मिक नाम "रिसुरखा[illegible] है। दूसरे दिन राहुल जी ने अभयसिंह से कहा कि [illegible] किताबों के बारे में लामा से बातचीत कर [illegible] हम सबकी यही धारणा थी कि किताबें मकान पर [illegible] की आज्ञा नहीं मिलेगी और रोज़ वहीं जाकर [illegible] फ़ोटोग्राफ़ लेने होंगे। वह जगह एक पहाड़ की च[illegible] ऊपर थी और क़रीब ६ मील का बहुत ही ख़राब [illegible] था। इसलिए रोज़ वहाँ का आना-जाना एक समस्या [illegible]
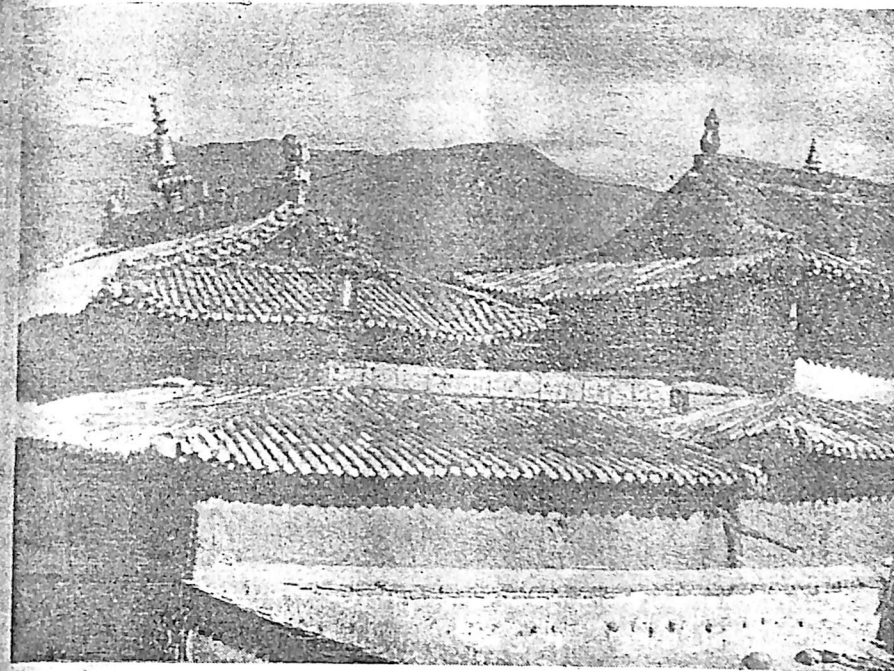
[खालू के पुराने मंदिर की छत]

[illegible]यसिंह यह कहकर चले गये कि आप लोग घबरायें [illegible], सब काम ठीक हो जायगा। शाम को जब लौट कर [illegible] तब देखा कि लामा के नौकरों पर लादकर सारी [illegible]तावें उठा लाये हैं। उनको देखकर हम लोगों की [illegible] का ठिकाना न रहा। हमारी यात्रा का पहला [illegible]म यही था, जहाँ इस प्रकार सफलता मिलती देख [illegible] हम लोगों का साहस बढ़ गया। पर मुझे बड़ी चिन्ता [illegible]। सारा भार मेरे ऊपर ही था। इस देश की हवा, [illegible], उँचाई, तापमान और सारी विभिन्न रुकावटों [illegible] हल करते हुए मुझको चित्र उतारने का काम करना [illegible]। शाम का खाना मुझसे नहीं खाया गया। सारी [illegible] सोचते सोचते गुज़र गई। दूसरे दिन सवेरे उठकर [illegible]ग्राफ़ी की दवाइयाँ घोलीं। फ़ोटो बनाने का अँधेरा [illegible] तैयार किया। काफ़ी तादाद में पानी मँगवा कर जमा किया। फिर केमरा लगा कर मुनासिब रोशनी का प्रबन्ध किया। २९ मई की सुबह को साढ़े १० बजे दो फ़ोटो लिये। उनको फ़ौरन अँधेरी कोठरी में ले जाकर बनाया। बाहर आकर उजाले में देखा। मारे ख़ुशी के दीवाना हो गया। अभयसिंह और गेशेला भी इस सफलता से बहुत ख़ुश हुए और मुझे उत्साह देने लगे।

आज सारा दिन मैं फोटोग्राफ़ी के विषय की पुस्तकें पढ़ता रहा। जो कुछ भी त्रुटि आज के काम में देख रहा था उसको पूरा करने की चिन्ता में लगा रहा। उधर उन सब किताबों की सूची बनाने और पन्ने लगाने का काम होता रहा।

दूसरे दिन ३० मई को सवेरे ८ बजे काम आरम्भ कर दिया और शाम को ४ बजे तक काम करता रहा। हर एक बात नई थी और भिन्न भिन्न असुविधाओं के

[१२ वीं शताब्दी के एक मंदिर के पलस्तर पर बना हुआ भट्टिन नामक विद्वान् का चित्र।]

[हाथीदाँत की नक्क़ाशी का एक नमूना। यह भूटान की मुख्य कला है]

कारण काम बहुत नहीं हो सका। कुल २२ फोटो ग्राफ़ ले सका। शाम होते ही क़रीब ७ बजे अँधेरी कोठरी में गया और ११ बजे रात तक काम करता रहा। वहाँ भी सैकड़ों तरह की कठिनाइयाँ आईं, जिनके कारण इतनी देर लगी। बाहर जब निकला, लालटेन की रोशनी में देखा कि सारे 'निगेटिव' बहुत ही ठीक बने हैं। उस समय सब सो रहे थे—चारों ओर सन्नाटा था।

लगभग एक बजे तक सादे पानी में उनको धोकर साफ़ किया और तागे में क्लिप लगा कर सूखने के लिए लटका दिया, भूख बहुत लगी थी। आज खाना नहीं खाया था लेकिन सारे नौकर सो रहे थे। मालूम न था कि सत्तू की थैली और सूखे मांस के टुकड़े कहाँ हैं। फोटोग्राफ़ी के लिए जो पानी जमा कर रक्खा था वह बर्फ़ के जैसा ठंडा था। उसी को पेट भर कर पिया और एक कोने में सिकुड़ कर लेट रहा। पर मेरा हृदय आज एक विजयी सैनिक से किसी मात्रा में भी कम प्रफुल्ल नहीं था।
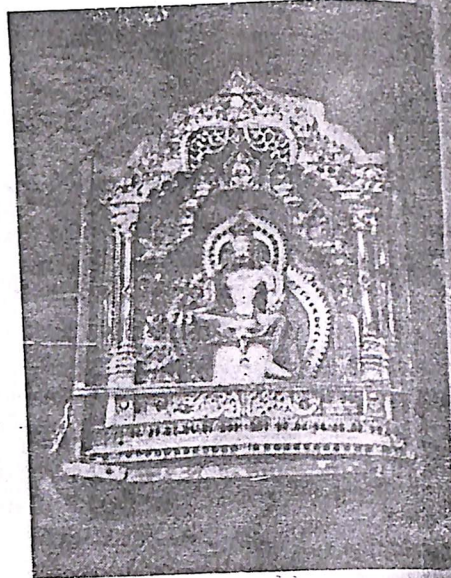
बेकारी का पिशाच

लेखक, श्रीयुत योगेन्द्रनाथ शर्मा

पात्र-परिचय—

आलोक—एम० ए० पास युवक, पिछले विद्यार्थी-जीवन के घोर परिश्रम से घुना हुआ क्षीण, इकहरा शरीर; मुख-प्रदेश पर नैराश्य की स्पष्ट छाप; सरल, विनोदमयी प्रवृत्ति गांभीर्य और चिन्ता से दबी हुई।

प्रभा—आलोक की नवागता पत्नी, शिक्षा और रूप में अर्द्ध-ग्रामीण, तप्त स्वर्ण की तरह दग् दग् करता हुआ सौंदर्य, यौवन के प्रथम चरण का चाञ्चल्य और तरल हास्य पति की खिन्न मुद्राओं के अनुकरण में अपना उत्सर्ग-सा कर रहे हैं।

योग—आलोक का चिर-मित्र और एम० ए० का पुराना सहपाठी, सुगठित, सुन्दर शरीर, आचार और भूषा में पश्चिम की गहरी नक़ल।

लता—हिन्दुस्तानी क्रिश्चियन बैरिस्टर की पुत्री, योग की प्रेयसी और भावी पत्नी, स्फटिक की तरह गोरी, पाश्चात्य संस्कृति से सराबोर, सोलहो आना मेम।

अन्य गौण पात्र—पड़ोसी बालक, और जनाने क्लिनिक अस्पताल की स्त्री-डाक्टर।

प्रथम दृश्य

समय—पौष का उग्र शीत, रात्रि के दस बजे।

स्थान—घर की बाहरी दालान।

(आलोक का जीर्ण गृह, दालान में पृथिवी पर एक पुराना कम्बल बिछा है। एक मटमैला दीपक दीवट पर मन्द मन्द जल रहा है; दीवार में गड़ी खूँटी पर कते हुए सूत का एक बंडल टँगा है; एक कोने में रुई का गड्ड लगा हुआ है; दीवार से लटकने वाले विशाल चित्र में महात्मा गांधी चरखा चला रहे हैं। एक ओर खद्दर की फटी धोती और मोटे ऊन के ओढ़नेवाले कम्बल टँगे हैं। बाँस की दो कुर्सियाँ और बेंत के दो नाटे मोढ़े एक ओर पड़े हैं। बाहर का द्वार बन्द है; दालान से गृह में प्रवेश करने का मार्ग खुला है।

प्रभा सस्ते खद्दर की धवल साड़ी पहने है, अंचल फटा हुआ है, एक हाथ में लाख की एक चूड़ी है, दूसरा हाथ सूना है; कम्बल पर बैठी देहाती चरखा कात रही है। चरखे के हरहर-भनभन में अपना कोकिला-स्वर मिलाकर गीत की एक लड़ी को बार बार गा रही है।)

हमारे चरखे के नव-गान,
वायु में घुल करके चुपचाप,
जगा दो निर्जीवों में जान।

(चलाते चलाते जब हाथ थक जाते हैं तब चरखे के साथ गान भी थोड़े समय के लिए रुक जाता है, बीच बीच में उलझे हुए सूत को दीपक के क्षीण प्रकाश में आँखें गड़ाकर सुलझाती है; फिर वही चरखे की हरहराहट और उसका मधुर संगीत।)

हमारे चरखे के नव-गान!

....

(बाहरी द्वार से खट-खट की ध्वनि होती है। प्रभा अपने गान को पंचम में खींचती जाती है।)

खट खट ...... खट खट

(चपला की तरह बल खाकर प्रभा पीछे मुड़ती हुई उठती है, द्वार की संकल खोलती है, आलोक भीतर आता है, प्रभा संकोच में गड़-सी जाती है।)

आलोक—(खद्दर की टोपी उतारकर हाथ में लेता हुआ) तुम्हें बार बार मना किया कि रात में इतनी देर तक चरखा न काता करो।

प्रभा—(मिश्रित गाम्भीर्य में) सोचा था कि तुम्हारे आने के साथ ही चरखा चलाना बन्द करूँगी; तुम देर से आये, इसलिए चरखा भी देर तक चलता रहा।

आलोक--(कुर्सी पर बैठता हुआ) वाह ! मेरे आने और चरखे में कौन-सी समानता ! तुम्हें ये अनोखी दलीलें कहाँ से मिल जाती हैं ? गाना तो आपका ......।

प्रभा--(बात को बीच में काट कर संकुचित होती हुई) रुक क्यों गये ? कह दो, नन्दन के कोयल-स्वर को भी मात करता है।

आलोक --(मुस्कराता हुआ) नन्दन न सही, इस संसार की अमराई ही मान लो। अरे! तुमने कड़ाही में आग क्यों नहीं रख ली ? ठंडक इतनी कड़ी, और आप साड़ी का अंचल ओढ़ कर बैठी हैं तपस्या करने।

प्रभा--(फटे अंचल को सँभालती हुई) रोज़ तो आग रहती ही है, आज नहीं सही; चरखे के साथ रहने में सरदी कम लगती है।

आलोक--(हँसता हुआ) आपको गर्मी देने के लिए अच्छा साथी मिला है। और यह कम्बल किस दिन के लिए है ? उतार कर ओढ़ क्यों नहीं लिया ? तुम तो जान ही देने पर तुल गई हो; इसमें भी कोई बहाना गढ़ लो।

प्रभा--(बिछे कम्बल पर बैठती हुई) बहाना नहीं जी (हँसती जाती है) ... सच मानो, अपनी क़सम, सोच ही रही थी कि कम्बल उतारूँ। तब तक तो तुम आ ही गये।

आलोक--अच्छा अब ओढ़ लो; आग भी लेती आओ।

प्रभा--तुमको तो हर घड़ी मेरी ही चिन्ता सवार रहती है--देर तक चरखा न चलाओ....ठंडक से बचो...यह न करो....वह न करो। अपनी बात भी तो कुछ बताओ; जिस काम के लिए गये थे उसका क्या हुआ ?

आलोक--(निकलते उच्छ्वास को भीतर ही दबाकर) सब अच्छा हुआ।

प्रभा--तुम्हें तो गोल माल उत्तर देने की लत-सी पड़ गई है। कोई बात पूछो--'सब ठीक है'...'कोई चिन्ता नहीं' यही कह कर टाल देते हो। आज तुम्हें बताना ही पड़ेगा--सचसच--कि क्या हुआ।

आलोक--हुआ क्या ! श्रीश के यहाँ गया था--एम० ए० के पुराने साथी हैं, वे भी दो बरस से घर बैठे हैं; फिर भी उनकी बात क्या चलानी! लक्ष्मी ने उन्हें पहचान लिया है, घर के सम्पन्न हैं, नौकरी के लिए कोई विशेष व्यग्रता नहीं है। दो साल से डिप्टी-कलेक्टरी की परीक्षा में बैठ रहे हैं, इस साल भी विचार है। मेरे लिए उन्होंने भरसक प्रयत्न करने को कहा है; ग्राम-सुधार-समिति के दफ़्तर में मेरा कोई काम अवश्य लग जायगा। तब तुम्हें भी वहीं ले चलूँगा।

प्रभा--(टूटे दिल से) मैं वहाँ चलने की भूखी नहीं। यह बताओ, क्या तुम डिप्टी-कलेक्टर नहीं बन सकते हो ?

आलोक--(उँगली से आँखों को रगड़ता हुआ) मेरी अवस्था बहुत अधिक हो गई है। मुझे सरकारी काम नहीं मिल सकता।

प्रभा--(आश्चर्य से अँगूठे को चिबुक पर लगाती हुई) अरे, दुनिया कैसे देखती है ? अभी तो तुम पूरे जवान भी नहीं हुए और सरकार तुम्हें अधिक उम्र का बताने लगी। कह क्यों नहीं देते कि तुम्हारी अवस्था उतनी नहीं जितनी सरकार सोचती है।

आलोक--(गर्दन को कुर्सी की पीठ पर लटकाता हुआ) तुमको भला कैसे समझाऊँ ? जवानी और बुढ़ापे का सवाल नहीं है; दो बरस तो मुझे नौकरी खोजने में लग गये। उम्र तो बैठी नहीं रहेगी। बात यह है कि मैं अब हो गया छब्बीस का, और चौबीस वर्ष के बाद सरकारी नौकरी में ठिकाना ही नहीं लगता।

प्रभा--(कपोल को दाहिनी मूठी पर दबाती हुई) ईश्वर की आँख में भी ऐसे ही लोग खटकते रहते हैं। (साँस भरती है) जीवन के सरस और रंगीन भाग को तो किताबों के पन्ने चूस जाते हैं और बदले में हाथ लगते हैं--शीशे के नेत्र, टूटी हुई रीढ़, (हाँफती हुई)...और भयानक निराशा। सुवर्ण जैसी प्यारी देह पढ़ते-पढ़ते घिस जाती है, तब भी मरी नौकरी की छाती नहीं पसीजती। (कहत कहते आँखें बन्द कर लेती है)।

आलोक--(कुर्सी को प्रभा के सन्निकट खींचता हुआ विनोद से उसके गिरे मन को हँसाने का प्रयत्न करता है) नौकरी आपकी तरह उदार नहीं है कि प्रत्येक प्रार्थी पर द्रवित हुआ करे। दोष मेरा कि मैं उसे पा नहीं सकता और आप क्रोध उतार रही हैं नौकरी पर !

प्रभा--(आलोक की ओर कटाक्ष फेंकती हुई) आज-कल के शिक्षित बेकारों का तो हृदय भी पत्थर होता जा रहा है। सिर पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ता है, और दिल हिलता तक नहीं, भीतर निराशा की आँधी रहती है, बाहर चेहरा इतना ताजा और सतर्क कि जैसे अभी स्नान किया हो।

आलोक--(प्रभा की आँखों से अपनी आँखें जोड़ते हुए) इस घोर ठंडक में स्नान का नाम न लो... (हँसता है, प्रभा की भी हँसी नहीं रुकती; प्रभा की शून्य कलाई पर हाथ फेरता हुआ) अरे ! इसमें की लहरी क्या हो गई ?

प्रभा--(हाथ को धीरे धीरे खींचती है) चरखे के चक्र से लगकर मुरक गई (अंचल को सँभालती है।)

आलोक--(प्रभा का अंचल अपने हाथ में लेकर) अरे ! यह भी फट गई ! (उँगलियों से दबाता है, अंचल फसफसा कर फटता है, और प्रभा हँस पड़ती है।)

प्रभा--इस फटने से क्या ? इसे तो आँचल की ओर करके पहन लिया है, शेष वस्त्र अभी पोढ़ा है। तुम आँचल का फटना क्या देखने चले, एक छोटी-सी झील को बढ़ाकर समुद्र बना दिया। (रुक रुक कर हँसती है, परन्तु पति की उदास मुद्रा को देखकर गम्भीर होने का बल बाँधती है।)

आलोक--(खद्दर के कते सूत की राशि को देखता हुआ) अरे ! तुमने तो बहुत कात डाला, बस थोड़ी-सी कसर है, इतना ही सूत और तैयार हो जाय तो बदल कर तुम्हें साड़ी और जम्पर ला दूँ।

प्रभा--(कुछ सोचती हुई) अभी तो उस दिन तुमने कहा था कि कहीं आने-जाने के लिए तुम्हारे पास धोती नहीं है, सूत को बदल कर धोती और जवाहिर-जाकिट लावेंगे।

आलोक--नहीं, नहीं; मुझे इधर कहीं जाना नहीं है; इस बार तुम्हारे लिए साड़ी और जम्पर लाऊँगा; मेरी बारी आते आते कौन जाने नौकरी ही मिल जाय।

प्रभा--(चेहरा खिल उठता है) अब की सफ़ेद और बे-किनारे की साड़ी मैं न लूँगी। सफ़ेद खद्दर आज पहनो, कल मैला--धोबी पटक पटक कर उसका सत्त निकाल लेता है, रंगीन रहेगी तो कई दिनों में मैली होगी, इसलिए उसे धोबी के घर का मुँह भी कम देखना पड़ेगा।

(नेपथ्य में घंटे का रव; बारह बजते हैं, आलोक एक एक करके बारहों टन टन को गिनता है।)

आलोक--(चौंक कर) अरे, बारह बज गये ! प्रभा, मैंने तो श्रीश के यहाँ खा लिया है। तुम अब तक यहाँ बैठी ही रहीं ? जाओ भोजन करके चौके से आग लेती आओ। बाहर बड़ी सर्दी थी; हाथ-पैर ठिठुर गये हैं।

प्रभा--(ईंधन के घट जाने के कारण भोजन के लिए चूल्हा नहीं जलाया था, इस बात को छिपाती हुई) तुम भी अजीब बातें करते हो ! क्या हम लोग रात भर बैठे जगा करें तो आग भी जगी रहेगी ? वह तो कभी की बुझ गई।

आलोक--अच्छा, आग रहने दो; जाओ खाना खाओ। एक बड़ी सुन्दर बात सुनाऊँगा। (प्रभा का कन्धा पकड़कर उठाता है।)

प्रभा--(चिबुक को संकोच से छाती में गड़ाती हुई) आज तो लकड़ी घट गई थी और पैसे भी न थे कि मँगाऊँ; तुमसे संकोच के मारे कहा भी नहीं, क्योंकि तुम्हारे पास जो थोड़े से पैसे थे वे धोबी माँग ले गया था। (हँसती है) रोज़ तो खाया ही जाता है एक दिन नहीं सही। तुम तो बात बात में मन गिरा लेते हो; अच्छा वह अपनी सुन्दर बात तो सुनाओ।

(आलोक आँखों में छाई हुई अश्रु-बूँदों को बरौनियों में समेट लेता है, अपनी कंगाली की अन्तर्वेदना को प्रभा पर प्रकट नहीं होने देता; हँसते हुए प्रभा के कंधे पर हाथ रख कर कहता है)।

आलोक—तुम्हारी एक मेम से भेंट कराऊँगा।

प्रभा—मेम क्या? (आश्चर्य से)

आलोक—साड़ी के स्थान पर पाँवों तक लटकता हुआ घाँघरा, ऊची एड़ी का जूता, हाथ में चमड़े का थैला, सिर पर पगड़ी की तरह नीली टोपी .... बात बात में खिल-खिलानेवाली, विलायती ठाठ की स्त्री; डरना मत; जब वह अपना हाथ बढ़ाये, तब तुम भी अपना हाथ बढ़ा देना।

प्रभा—(मुस्कराती हुई) आखिर ये हैं कौन? कहाँ से आवेंगी और किस लिए? क्या वे इसी तरह घूमा करती हैं?

आलोक—वाह! तुम क्यों नहीं घूमती हो; अरे, ये मिस लताकुमारी हैं, मेरे मित्र श्रीश की शादी उन्हीं से ठहरी है। वे हम लोगों के विवाह पर तुम्हें बधाई देने को श्रीश के साथ यहाँ आवेंगी (कुछ सोचता हुआ आह भरता है) उन लोगों का स्वागत कैसे किया जायगा?

प्रभा—इसकी चिन्ता न करो; अभी मेरे विवाहवाली सोने की नथुनी बची है। वह कभी प्रयोग में नहीं आती। उसे गिरवीं रख कर उन लोगों के स्वागत का प्रबन्ध कर लेना।

आलोक—(ऊपर देख कर निश्वास भरता हुआ) केवल नथुनी बच रही है! .... वह भी विवाह का शुभ स्मृति-चिह्न है। हा! नौकरी की खोज में पचासों बार की दूर की यात्रा में मैंने तुम्हारे कंगन, चन्द्रहार, टीका, कर्णफूल, किंकिणी और पायल सब बंधक में रख दिये, अब तक वे मुक्त न हो सके, भविष्य में भी उनके छूटने की कोई आशा नहीं।

प्रभा—(पति के विकल चित्त को अपने विनोद से बहलाने का प्रयत्न करती है) वाह! तुम तो इतनी ऊँची शिक्षा पाकर भी गहनों की कुरीति का समर्थन करते हो। आजकल बड़े घराने की स्त्रियाँ आभूषण पहनने में अपनी हेठी समझती हैं; मैं कौन उनसे कम हूँ? मैंने माना कि इस नथुनी को वधू आजन्म अपने पास सुरक्षित रखती है—यह धर्म है। परन्तु प्रिय अतिथि का सत्कार करना किस धर्म से कम है? फिर कभी रुपया होगा तो नथुनी लौट आवेगी।

आलोक—अच्छा, तुम्हारे पहनने के लिए कोई बे-गर्द साड़ी तो है ही नहीं। इसका क्या होगा?

प्रभा—तब तक तो सूत ही पूरा हो जायगा। अरे कब वे लोग आ रहे हैं?

आलोक—रात-दिन लगातार परिश्रम करो तो भी सूत के तैयार होने में एक सप्ताह से कम नहीं लगेगा; वे लोग कल ही आवेंगे, ठीक समय नहीं बताया है, जभी आ जायँ?

प्रभा—मेरी एक साड़ी है—रेशमी नीला कपड़ा और चाँदी की तरह चमचमाती हुई गोट। ऐसे अवसर के लिए वही ठीक है; लाल साटनवाला जम्पर तो उसी का साथी है। जब लोग आवें तो मुझे बताना, झट काम-काज छोड़ कर वही साज सजाकर आ जाऊँगी। क्या राय है?

आलोक—तुम्हारी सोची हुई बात और ठीक न हो इधर तीन-चार दिन तक लाग से सूत कात दो नित्य के प्रयोग के लिए साड़ी और जम्पर आ जाय। देखो, इस साड़ी का अंचल मैंने छुआ भी नहीं कि फसफसा कर निकल गया।

प्रभा—(मुस्कराती है) जब मैं थक जाऊँगी तब तुम कातना और जब तुम थक जाओगे तब मैं—इससे जल्दी हो जायगी—क्यों?

आलोक—बस, बस; पक्की बात।

(बाँह में बाँह उलझाये दोनों अन्तर्द्वार से गृह प्रवेश करते हैं)

पटाक्षेप

दूसरा दृश्य

(जनाने पब्लिक अस्पताल का एक प्रकोष्ठ; पीली पत्ती की तरह मुरझाई हुई प्रभा ज्वर में घुल गई है, आँखों में धुन्ध छा गई है, कानों से ऊँचा सुनाई देता है, भरी हुई देह राँगे की तरह गल गई है। चारपाई पर लेटी हुई हरी चादर ओढ़े है; सिरहाने से सटा आलोक कुर्सी पर बैठा है, आलों में दवा की शीशियाँ और बोतलें रक्खी हैं; रोगी के और भी आवश्यकीय सामान इधर-उधर यथास्थान पड़े हैं।)

आलोक—(प्रभा के ऊपर झुकता हुआ, कुछ ऊँचे स्वर में) आज कैसी तबीअत है?

प्रभा—सारी देह में, उँगली के पोर-पोर में झुनझुनी की तरह पीड़ा हो रही है, दिन में जगते समय भी बुरे बुरे स्वप्न आते हैं, उठने भर को भी ज़ोर नहीं बचा है, हा! (कराहती है)

(लेडी डाक्टर का प्रवेश; छींट का गाउन, ऊँची एड़ी का जूता, अवस्था अनुमानतः पच्चीस; रंग उजला; चेहरे पर गम्भीरता की छाप; आते ही प्रभा के मुँह में थर्मा-मीटर लगाती है, और मुड़कर आलोक से बात करती है।)

लेडी डाक्टर—मिस्टर आलोक, बीमारी का बढ़ाव तो बड़े वेग से हुआ है; क्या आप इनके रोग का पूरा इतिहास, जैसे मैं पूछती हूँ, बता सकते हैं?

आलोक—हाँ, अवश्य, पूछिए।

ले० डा०—क्या गत एक महीने के भीतर कभी छः-सात दिन तक इन्होंने कड़े शारीरिक परिश्रम का कोई लगातार कार्य किया था?

आलोक—(दाँतों से ओठों को पकड़ता हुआ) हाँ, छः दिन तक, और कामों से अवसर पाने पर, रात-दिन चरखा काता करती थीं।

ले० डा०—बस, बस, यही बात है; क्या इन्हें कुछ शीत भी लगी थी?

आलोक—वैसे तो कहीं बाहर सर्दी में नहीं निकली थीं; हाँ ठंडी रात में कभी-कभी एक-दो बजे तक चरखा चलाया करती थीं।

ले० डा०—आखिर सूत कातने की इन्हें कौन-सी तेज़ी पड़ी थी; ओह! जाड़े की रात और वह भी एक-एक बजे तक; पूरी नींद के भयानक अभाव से ही इस रोग ने शरीर को जीत लिया है। आप तो शिक्षित हैं, इन सब बातों का ध्यान रखना चाहिए था।

आलोक—(भाल को हथेली में रखता हुआ) डाक्टर साहबा, कहने से कहानी बढ़ जायगी, संक्षेप में यही समझ लीजिए कि इन्हें अपने हाथ से काते सूत के साड़ी-जम्पर पहनने की साध थी; इसी झक में सूत की कमी को भरने के लिए इन्होंने न रात देखा न दिन, नित्य चरखे से जुती रहीं, मैं रात में मना करके सो जाता था, ये चोरी चोरी देर तक चरखा चलाती रहती थीं।

ले० डा०—इनका कण्ठ भी बढ़कर शुष्क हो गया है, क्या बोलती बहुत थीं, या कभी अधिक रोना या चिल्लाना पड़ा था?

आलोक—(नेत्र मूँद कर साँस खींचते हुए) हाँ, ठीक; चरखा चलाने के साथ नित्य गीत गाया करती थीं; कहती थीं कि गाने की धुन में चरखे का परिश्रम अखरता नहीं।

ले० डा०—देखिए इनकी आँखों में धुन्ध छा गई है; क्षीण प्रकाश में आँखों का कोई महीन काम तो इन्होंने नहीं किया था?

आलोक—(आह खींचकर) जब कभी रात को खद्दर का धागा उलझ जाता था तो उसे टूटने के डर से दीप के मन्द प्रकाश में सुलझाया करती थीं।

ले० डा०—इन्हें कुछ दिनों से कोई भयानक चिन्ता तो नहीं घेरे थी?

आलोक—(कुछ रुक कर) चिन्ता तो दूसरी न थी; केवल यही कि मैं नौकरी के बिना बेकार बैठा था; और साधारण जीवन-निर्वाह में कुछ कठिनता होती थी।

ले० डा०—बस, बस, सारा पता मिल गया। (प्रभा के मुँह से थर्मामीटर निकाल कर) मिस्टर आलोक आप भी पढ़िए; कुछ दिनों से तापक्रम में रोज दो-दो अंश की वृद्धि हो रही है, इस समय १०५ है। 'टायफ़ाइड' की अन्तिम श्रेणी है; अवस्था बड़ी ही दयनीय है; आप इन्हें लखनऊ में मिस फॉक्स को दिखाइए, उनका अनुभव तीव्र और पुराना है। असाध्य रोगों को तो वे बहुत अधिक लेती हैं, परन्तु मेरा पत्र दे दीजिएगा, आपका काम केवल सौ-डेढ़ सौ रुपये में हो जायगा। यह कार्य जितना ही शीघ्र हो उतना ही अच्छा है।

(लेडी डाक्टर जाती है; आलोक प्रभा के सिरहाने वाली कुर्सी पर बैठता है)।

प्रभा--(क्षीण ध्वनि में) क्या कह रही थीं?

आलोक--यही कि अब घबराने की बात नहीं, दो-तीन दिन में अच्छी हो जाओगी; कल तुम्हें लखनऊ ले चलूँगा, वहाँ जाते ही बीमारी छूमन्तर हो जायगी (प्रभा के ललाट पर हाथ फेरता है)।

प्रभा--मुझे ले चलने के लिए किराये को रुपये कहाँ मिलेंगे? दवा का व्यय कैसे चलेगा? (कराहती हुई) हा! सूत में एक ही दिन की कसर थी कि मैंने चारपाई पकड़ ली; अब तक तो साड़ी-जम्पर आगया होता। यह विवाह की साड़ी भी कहीं कहीं मसकने लगी है। बिअहुती साड़ी और नथुनी को सुरक्षित न रखने का ही फल मुझे मिल रहा है।

आलोक--(आँखें डबडबा कर) तुम रुपये की चिन्ता न करो, घर को गिर्वी रखने से दो-तीन सौ रुपये सरलता से मिल जायँगे; उसी में तुम्हारी दवा का खर्च, किराया और दूसरे व्यय होंगे।

प्रभा--(पति के हाथ को अपने वक्षःस्थल से चपकाती हुई) अब मेरे ऊपर रुपये लगाना व्यर्थ ही होगा; घर भी बन्धक हो जायगा, मैं भी न रहूँगी, दोनों ओर से हाथ धोना पड़ेगा। आखिर घर गिरों र[illegible]ोगे तो रहोगे कहाँ? अब मेरी आशा छोड़ अकेले रहोगे, कम खर्च में जीवन निवह जायगा; अब तक नौकरी नहीं मिली तो आगे का कौन ठिकाना? (हाँफती है)

आलोक--(शोक-विह्वल होकर विकृत स्वर में) प्यारी प्रभा, दिल मत छोटा करो; अच्छी हो जाओगी; मैंने सूत तैयार कर लिया है, तुम्हें कल किनारी-दार रंगीन साड़ी और सुन्दर जम्पर ला दूँगा।

प्रभा--साड़ी-जम्पर लाना बेकार होगा, अपने लिए धोती और जवाहर-जाकिट ले लेना (कहती हुई पति की हथेली से अपने नेत्र ढक कर सुसकती है)।

आलोक--हा! मेरी बेकारी के पिशाच ने तुम्हें भी खा लिया! अब यह अकेला जीवन तुम्हारी भी आयु से जुड़ कर और भी लम्बा हुआ! (आँखों से दो बड़ी बड़ी बूँदें प्रभा के कपोलों पर टपकती हैं।)

(पर्दा गिरता है)

पुकार

लेखक, श्रीयुत अंचल

तुमने कहीं पुकारा!
रोम रोम जैसे ध्वनि पीता गूँज उठा तन सारा
यह आवाज़ पिघलते शीसे-सी कानों में आती
चीख गगन मंडल में बिजली बेपरदा हो जाती
किन्तु अँधेरी निशि सी प्राणों में जगती व्याकुलता
अणु-अणु बन चीत्कार अमावस के प्रदीप सा जलता
दूर खड़ी सन्ध्या सी होकर तुमने कहीं पुकारा
तुमने कहीं पुकारा!
किसके जीवन के तट की तुम निस्संगिनि रँगरेली
इस अभाव-पूजक की पलकें भरने चलीं अकेली
और अवश अंगों में कैसी गहन-व्यथा भर आती
जग में अर्थहीन अनियम मैं केवल-प्यास न जाती
एक, सृष्टि की भूल तुम्हारे मुखर कंठ की धारा
तुमने कहीं पुकारा!

शासकों की कमज़ोरी

लेखक, श्रीयुत पंडित मोहनलाल नेहरू

कांग्रेस का पिछला चुनाव जीतने के बाद आम लोगों को ही नहीं, बरन कांग्रेसी नेताओं और अर्द्ध नेताओं तक को कांग्रेस का ज़ोर मालूम हो गया। फिर क्या था? उसके झंडे के नीचे ऐसे ऐसे सज्जन आ उपस्थित हुए जो पहले उसके नाम से भी भड़क जाते और नाक-भौं सिकोड़ते थे। ऐसे लोग जो उससे बहुत कुछ आशा रखते थे और अब भी रखते हैं उसकी जीत पर बहुत ही खुश थे। मगर उसके अर्द्ध नेताओं और वालंटियरों के हृदय तो गर्व से फूल उठे और जब पद-ग्रहण का मसला हल हो गया तब फिर तो उनका पूछना ही क्या! उनमें से प्रत्येक अपने को सरकार का एक भारी अंग समझने लगा। कहा तो यहाँ तक जाता है कि उन्होंने कचहरी-दरबार तक के मामलों और पुलिस के इंतज़ाम में भी हाथ डालना शुरू किया। एक साहब ने तो एक दफ़ा एक शहर के कोतवाल को टेलीफ़ोन किया कि उनको रिपोर्ट मिली है कि अमुक इक्केवाले पर अमुक कांस्टबिल ने डंडा चलाया है, अतएव इसकी जाँच करके उनको रिपोर्ट दें कि क्या कार्रवाई की गई। अन्त में हाईकोर्ट को कुछ ऐसे सज्जनों को सीधा रास्ता दिखाना पड़ा। ख़ैर, ये भूलें तो हो सकती थीं। जब अपने हाथ कोई इन्तज़ाम आता है तब शुरू में ग़लती करना कोई आश्चर्य की बात नहीं। ग़लती करने से ठीक इन्तज़ाम करना आता है और आ भी अवश्य जाय अगर ऐसा मौक़ा कुछ दिनों तक मिला रहे।

चुनाव आदि के वास्ते यह ज़रूरी है कि वोटर उस दल के भक्त बने रहें जो उनका वोट लेना चाहता है। कांग्रेस ने अपनी सेवाओं और अपने त्यागों के द्वारा हिन्दू-जनता को तो पूरी तौर से और कुछ मुसलमानों और ईसाइयों को भी अपनी तरफ़ कर लिया है। कांग्रेसी नेताओं की बात पर अधिकतर जनता विश्वास करती थी और जब उन्होंने पद-ग्रहण के बाद यह घोषणा की कि वे सबके साथ न्याय करेंगे तब जहाँ तक मेरा ख़याल है, बड़े से बड़े विरोधी ने भी उनका स्वागत किया।

मैं स्वयं न्याय करने का यह मतलब नहीं समझता कि पुरानी सभी बातें क़ायम रक्खी जायँ। अगर आदमियों का एक जत्था धन-दौलत दबाये बैठा है तो उससे कुछ लेकर दूसरों को देना या उनकी उन्नति के वास्ते ख़र्च करना बेशक न्याय है। अगर ज़मींदार काश्तकार के साथ ज़्यादती करता है तो उसके अधिकार कम कर देने में न केवल काश्तकार के साथ न्याय होगा, बरन उस ज़मींदार के साथ भी होगा, क्योंकि उसका झूठा अभिमान कुछ चूर हो जायगा। मगर वहीं पर रुक कर और शिकमी काश्तकार की दयनीय दशा की अवहेलना कर जाना अन्याय है। शिकमी के साथ काश्तकार का वही रिश्ता है जो काश्तकार का ज़मींदार के साथ है तब वह क्यों भुलाया जाय? शायद आगे चलकर उसका भी ख़याल आ जाय। मगर यह न भूलना चाहिए कि जब तक ज़मींदारी की प्रथा क़ायम है, ज़मींदार के साथ अन्याय इस मानी में न हो कि जितना वह काश्तकार से पावे उससे अधिक उसे देना पड़े। जो हो, ये बातें ऐसी हैं जिनसे थोड़े लोग तो नाराज़ होंगे, मगर बहुत लोग राज़ी भी होंगे, और शायद अधिक संख्या का राज़ी रखना बहुत ज़रूरी बात है।

हमारे दुर्भाग्य से हमारी गवर्नमेंट ने न मालूम क्यों इसका ख़याल नहीं रक्खा। बड़े ज़मींदार तो अधिकतर कांग्रेस के विरोधी रहे थे ही, उनको छोड़ दीजिए; दुःख की बात तो यह है कि उसने अपने मित्रों को ही सबसे पहले नाराज़ करना शुरू किया। सम्भव है, उसने यह सोचा हो कि अपने असली विरोधियों को यानी मुस्लिम-लीग को ख़ुश कर लो, पूरी ताक़त अपनी हो जायगी। इसमें उसकी नेकनियती अवश्य थी, मगर वह ज़रूरत से इतनी ज़्यादा बढ़ गई कि मित्र असन्तुष्ट होते जा रहे हैं।

सबसे पहले तो हिन्दू-जनता को यह खटकता है कि हमारे नेता मुस्लिम लीग की अकारण ख़ुशामद कर

रहे हैं। महात्मा गांधी और पंडित जवाहरलाल नेहरू ने तो ऐसी बातें तक कीं जिनसे यह कहना कि उन्होंने जिन्ना साहब की चौखट पर माथा टेका, ग़लत न होगा। जनता यह जानती थी, और शायद वे स्वयं भी जानते होंगे कि इसका नतीजा यह होगा कि लीग की माँगें और बढ़ जायँगी और वही हुआ। अगर लीग को राज़ी करना ही था तो पद-ग्रहण करने के समय ही कैबिनेट में एक-दो जगहें लीगवालों को दे क्यों न दीं? जिन्ना महोदय के दरवाज़े पर हमारे महान् नेताओं को धक्का खाने की अपेक्षा वह ज़्यादा अच्छा होता। कम से कम उससे यह फ़ायदा होता कि रोज़मर्रा के बलवे बन्द हो जाते और सैकड़ों जानें न गई होतीं। हरदम यह झूठी बात न सुननी पड़ती कि कांग्रेस-गवर्नमेंट मुसलमानों पर अत्याचार कर रही है। परन्तु जो अत्याचार कांग्रेस-गवर्नमेंट ने मुसलमानों पर किया है, अगर मुस्लिम लीग की गवर्नमेंट बंगाल में हिन्दुओं पर वही करती तो वहाँ वे उसका तो गुण गाते। हमारे प्रधान मंत्री को और बिहार के प्रधान मंत्री को एक से अधिक दफ़ा यह सफ़ाई देने की आवश्यकता पड़ी है कि नौकरी-चाकरी के मामले में मुसलमानों को इतना बढ़ा दिया गया है कि उसके वे मुस्तहक़ नहीं। यह तो उन्होंने मुसलमानों को राज़ी करने के लिए किया। मगर क्या ८० प्रतिशत से ऊँची संख्यावाले हिन्दू यह पूछने के मुस्तहक़ नहीं कि जब मुसलमानों की संख्या केवल १४ प्रतिशत या उससे भी कम है तब वे ५० या उससे भी अधिक फ़ी सदी किसी भी महकमे में क्यों भर्ती किये गये। बंगाल के शेर-चीतों ने तो उसका बिलकुल ही उलटा किया और बड़े गर्व से उसका बखान किया है। जिसे हमारी गवर्नमेंट ने खुश करने और पास लाने के वास्ते कोई उपाय उठा न रक्खा वह उससे और भी नाराज़ होकर और भी दूर भागा; जिसके वास्ते उसने अपने सगे-सम्बन्धियों और दोस्तों को नाराज़ किया वह उसका और अधिक शत्रु बन गया; यहाँ तक कि रोज़ ही झूठे इलज़ाम "मुसलमानों पर अत्याचार के" लगाने लगा। अपना किया गवर्नमेंट के सिर झोंकने लगा और वह जवाब में खर्रे के खर्रे बयान निकालने लगी और एक एक बात की सफ़ाई देने लगी। किसको! जो न सुनता है, न मानता है। वहाँ तो मुर्ग़ी की एक टाँगवाला मसला है। रोज़ ही नई धमकी तैयार है और नई माँगें गढ़ी जाती हैं। और हमारी गवर्नमेंट दबती ही चली जाती है।

हम रोज़ ही देखते हैं कि मुसलमान, अल्प-संख्या में होते हुए भी, तरह तरह की धमकी देते रहते हैं और कांग्रेस-गवर्नमेंट रोक-थाम करना तो दूर, उन्हें राज़ी ही करने की चेष्टा करती रहती है। उदाहरण के वास्ते नई धमकी हैदराबादवाली निकली है। उसी को ले लीजिए, तुरन्त ही मदरास और बम्बई की गवर्नमेंटों ने हिन्दुओं पर रोक-थाम लगा दी। देहरादून में भी कुछ वैसी ही कार्रवाई हुई है। कितना ही भड़काने के वास्ते कोई क्यों न करे, उसकी संयुक्त-प्रान्त में कुछ भी रोक-थाम नहीं है। अगर इसका चौथाई भी बंगाल या पंजाब में कोई आदमी करे तो वहाँ तो उसे फाड़ खाने को शेर-चीते मौजूद ही हैं। ऐसी कमज़ोरी पर मित्रों का नाराज़ होना क्या कोई बेजा बात है?

राजनैतिक क्षेत्र में समझौते से भी बहुधा काम चलता है। अगर लीग की खुशामद ही करनी है तो अब भी उसे दो-एक जगहें देकर कैबिनेट में क्यों नहीं ले लिया जाता या फिर उसका डर छोड़कर मुसलमान जनता के पास क्यों सीधे नहीं पहुँचा जाता?

यह तो हुई हिन्दुओं की बात जो आसानी से नाराज़ नहीं होते। शिया मुसलमान बहुत कुछ कांग्रेस के साथ थे। कम से कम उन्हें हिन्दुओं की हर बात मुसलमानों के विरोध में नहीं दिखाई देती थी। वे तबर्रा खुले खज़ाने नहीं पढ़ते थे, क्योंकि वे जानते थे कि उससे एक जत्था नाराज़ हो जाता है। उनके लीडर खुद उन्हें रोकते थे। मगर ग़लत या सही 'मदहे सहाबा' को अपने मत के खिलाफ़ समझते थे। हमारी गवर्नमेंट को ऐसी हालत में क्या लाज़िम था? यही कि दोनों की रोक-थाम करती। मगर मार्च के महीने में एक जत्थे को तो मदहे सहाबा पढ़ने की इजाज़त मिल गई और दूसरे पर पाबन्दी लगा दी गई। यह कहना कि मदहे सहाबा में किसी की बुराई नहीं की जाती, उसका पढ़ना कोई हर्ज नहीं करता, ग़लत बात है। अगर कोई जत्था जनरल हा[illegible] की तारीफ़ खुले खज़ाने पढ़ने लगे तो क्या उसे इजाज़त दी जायगी? हमारे सुन्नी मित्र समझे थे कि जैसे उन्हें

हिन्दुओं के जलूसों या धार्मिक कामों में रोक-थाम कर रक्खी है, वैसे ही शियाओं के मज़हबी मामलों में भी आसानी से कर लेंगे। मगर शिया भी तो आखिर उसी ज़मीर के बने हैं। बड़े बड़े वक्तव्य ख़िताबयाफ़्ता लोग निकाल रहे हैं और सब ही शियाओं को दब जाने की सलाह दे रहे हैं और मुझे तो दुःख यह है कि हमारी सरकार भी उन्हीं लोगों की सहायता कर रही है जो धींगा-धींगी करने पर तुले हैं।

हज़ार बरस से मुसलमान नमाज़ पढ़ते आये हैं। न तो किसी बाजे ने नमाज़ में उनका हर्ज किया, न शंख और घड़ियाल ने। और शिया मुसलमानों का तो हर्ज अब भी उससे नहीं होता। आज भी सिनेमा के इश्तहार की बारातें रोज़ सड़कों पर घूमती हैं। वे भी हर्ज नहीं करतीं, न उन सैकड़ों मोटरों के हार्नों से जो मसजिद के नीचे शंखों से ज़्यादा गला फाड़ा करते हैं। तो क्या केवल हिन्दू की शादी की बारातों में या हिन्दू-जलूसों में ही कोई ऐसे गुण हैं जो नमाज़ियों के निमाज़ को भंग करने लगे हैं और वह भी गत १८ बरस से ही। इन बारातों या जलूसों पर क्यों रोक-थाम लगाई जाती है? इसी वास्ते न कि एक जत्था पैदा हो गया है जो उसे ग़लत या सही कहता है। क्या हम यह नहीं जानते कि ये बातें केवल झगड़ा शुरू करने के वास्ते की जाती हैं और वही लोग करते हैं जो शायद नमाज़ कभी ध्यान लगाकर पढ़ते भी नहीं? असल नमाज़ी को इससे क्या वास्ता कि उसके चारों तरफ़ क्या हो रहा है? यह जानकर भी कांग्रेसी गवर्नमेंट समझा-बुझाकर फ़साद रोका-थामा चाहती है। जनता को इससे मतलब नहीं कि फ़साद कैसे रोका जाय। वह तो कांग्रेस-सरकारों से इन्साफ़ की आशा रखती है। हिन्दू-जनता यही चाहती है कि उसे भी अपने जलूसों के निकालने में पूरी सुविधायें दी जायँ और उसके साथ न्याय हो। वह अपने हिस्से में मुसलमान या ईसाई को भाग देने को तैयार है, मगर सबका सब देने को तैयार नहीं, शायद वह सब भी खुशी से दे देती। मगर बंगाल के 'शेर चीतों' की गवर्नमेंट ने जिसका असर दूसरे प्रान्त के मुसलमानों पर पड़ा है, उसकी आँखें खोल दी हैं। यही क्या कम है कि वह पंजाब या बंगाल की तरह आबादी के हिसाब से अपना हिस्सा नहीं माँगती? फिर भी वह इन्साफ़ चाहती है और मुझे तो आशा है कि अब भी हमारी गवर्नमेंट उसके साथ इन्साफ़ करेगी, देर में ही सही। देर आयद दुरुस्त आयद।

विशेष भूल यह भी है कि कांग्रेस को सदा से ही कल-कारख़ानेवाले मदद करते आये थे। जब भी पैसे की ज़रूरत होती, यही लोग देते। कोई काम भी पैसे के बग़ैर नहीं चल सकता। इनमें से कुछ तो खुले बन्द देते, कुछ चोरी-छिपे। १९२१ की बात है जब मैं सूबा-कांग्रेस-कमिटी का सेक्रेटरी था। एक शाम को दो-तीन आदमी मेरे घर पर आये और कहने लगे, कुछ चन्दा देना है। मैंने पूछा—आप कहाँ से आये हैं? बोले—हमें बताने का हुक्म नहीं। रुपया ले लीजिए। यह कहकर उन्होंने दस हज़ार के नोट मेरे सामने रख दिये। ज़माना नाज़ुक था। मैंने कहा रुपया ज़्यादा है। आप बैंक में खुद ही जमा करा दें। इस पर वे राज़ी हो गये और दूसरे दिन मेरे साथ जाकर बैंक में कांग्रेस-कमिटी के हिसाब में जमा करा दिया। यह मैंने मिसाल के तौर पर लिखा है। यों तो यह सभी जानते हैं कि तिलक-स्वराज्य-फ़ंड के करोड़ रुपये इन्हीं लोगों ने जमा करा दिये थे। जब कांग्रेस ने कुछ ताक़त पकड़ी तब इन दोस्तों पर भी नज़ला उतरा। कांग्रेस के ही कुछ लोग कारखानों में रोज़ हड़तालें कराने लगे। नई नई माँगें और ऐसी ऐसी जो आज-कल की हालत में पूरी करना असम्भव है, पेश होने लगीं। उन लोगों के वास्ते जो चार दिन पहले हमारे सहायक समझे जाते थे, बुरे से बुरे शब्दों का प्रयोग होने लगा। उनके कल-कारखाने मज़दूरों के खून से सने गारे से बने दिखने लगे और वे खून चूसनेवाले हो गये! कहनेवाले यह भूल गये कि यही और दूसरे ऐसे ही छोटे-बड़े कारखाने जो आगे जन्म लेंगे, मुल्क का उद्धार करेंगे। किसी देश का उद्धार दौलत के इधर से उधर करने में नहीं होता, वरन दौलत पैदा करने से होता है। यों ही हमारे यहाँ कल-कारखानों की कमी है और बेकारों की भरमार है। मगर नासमझी में ये लोग उन्हें भी बन्द करा बैठे और बेकारी और मुसीबत ही नहीं बढ़ाई, वरन दो करोड़ रुपये का हमारे प्रान्त की क़ौमी दौलत का खाली कानपुर में नुक़सान करा दिया। मज़दूर को काम देना बुरा है, मगर उससे ज़्यादा बुरा है इतना देना

जिससे कारखाना ही बैठ जाय और काम भी हाथ से जाय। सोवियट सरकार तक ने ऐसा नहीं किया। ज्यों ज्यों क़ौमी दौलत मज़दूर-द्वारा बढ़ती गई, त्यों त्यों वेतन में वृद्धि की गई। पक्के साम्यवादी श्री राहुल सांकृत्यायन जो हाल में ही रूस से लौटे हैं, हमें बताते हैं कि क्रान्ति के पहले रूस में मज़दूर का औसत वेतन २५ रूबल था। मगर १९२८ से १९३२ तक की पंचवर्षीय योजना के ज़माने में वह तिगुना तक हो गया और अगली पंचवर्षीय योजना में वह उसका दुगना हो गया। ऐसा तो तभी हुआ जब रूसियों ने देश का कच्चा माल पूरी मेहनत लगाकर अपने घर में खपा लिया। उन लोगों ने इन दस वर्षों में मज़दूर से इतनी मेहनत ली कि साम्राज्यवादी देश उसकी मेहनत को 'स्लेव-लेवर' कहने लगे थे। उसी स्लेव-लेवर ने आज रूस को ऊँचे स्थान पर पहुँचा दिया है और अब जिस्मानी या दिमाग़ी मज़दूर ही उसका लाभ लूट रहे हैं। हमारे प्रचारक भाई बिना जाने या बिना सोचे पहले ही दिन से अधिक पैसे और अधिक छुट्टी की माँग पेश कर बैठे। हमारी कांग्रेस-गवर्नमेंट उन्हें रोक न सकी, जो दुःख की बात है। आन्दोलन को ठीक रास्ते पर लगाने के वास्ते हुल्लड़बाज़ी काफ़ी नहीं है।

हमारी गवर्नमेंट ने बहुत से सुधारों के वादे किये थे। अपने भरसक वह उनके पूरे करने में तत्पर है। मगर भूल इतनी कर रही है कि सारे सुधार एकदम करना चाहती है। कोई भी सुधार हो, कुछ लोग उससे अवश्य नाराज़ होंगे। एक एक सुधार करके उसे पूरा करा दो तब आगे चलो तो दूसरे के जारी करने में सुविधा हो जायगी। फिर पैसा भी चाहिए। शराबबंदी, लगान में कमी, देहातों में सफ़ाई, पढ़ाई का इन्तज़ाम, कम वेतन पानेवालों के वेतन में वृद्धि आदि सुधारों के वास्ते पैसे की ज़रूरत है, और यह पैसा उसी हालत में मिल सकता है जब राष्ट्र की सम्पत्ति में काफ़ी वृद्धि हो। और इसका अभी कोई इन्तज़ाम नहीं। ये सब सुधार ज़रूरी हैं, मगर एकदम जारी होना ज़रा मुश्किल बात है। थोड़ी-सी मौजूदा दौलत का उलट-फेर काफ़ी नहीं। शराब और निरक्षरता के खिलाफ़ गवर्नमेंट ने जेहाद बोल रक्खा है, मगर उसके खर्च के वास्ते जो टैक्स लगाया उसका ताक़तवर लोग बेजा विरोध कर रहे हैं जैसा मैं पहले देख भी चुका और उसके शुरू करने में विलम्ब हो रहा है। काश्तकार भी टेनेन्सी ऐक्ट के पास होने की मुँह फाड़े प्रतीक्षा ही कर रहे हैं। उसमें भी तरह तरह की बाधायें डाली जा रही हैं और कौन जानता है कि कब उसके बरते जाने की नौबत आवे। जब तक इन सुधारों का असर दिखने न लगे तब तक देहाती कैसे जानें कि उसकी सरकार ने वादे पूरे किये। ग्राम-सुधार भी इतना नहीं फैला है कि आँखों से दिखाई दे सके। यह तो देर में दिखने की चीज़ है। कुछ लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि जो लोग इस सुधार के वास्ते रक्खे गये हैं वे कुछ काम ही नहीं करते। ग़लत हो या सही, मगर शिकायत है अपने तरफ़दारों तक की। मैं तो यह कहूँगा कि ऐसी शिकायत को यह कह कर टालना ठीक नहीं कि विरोधियों ने की है। कुछ खुफ़िया जाँच होती रहनी चाहिए कि कहाँ क्या हो रहा है। क़ानून पास कर देना सहल है, उसके बरतने का इन्तज़ाम काफ़ी अच्छा होना चाहिए। यों तो शारदा-ऐक्ट भी प्रचलित है, मगर कितनी ही बच्चियों के विवाह रोज़ होते जाते हैं।

मेरा यह मतलब नहीं है कि मैं कांग्रेस-गवर्नमेंट की नुक्ताचीनी करूँ या उसकी भूलों पर ज़ोर दूँ। मुझे यह देख कर दुःख होता है कि कांग्रेस के बहुत से हिमायती उसके विरोधी होते जाते हैं और केवल इस वास्ते कि वह पुराने विरोधियों को राज़ी करने में उन्हें भूल गई है। मुट्ठी भर उपद्रवियों को जो कभी कभी खुले खज़ाने हिंसा की धमकी देते हैं, वह दबाने के पूरे यत्न नहीं करती। अगर सुधारों का मज़ा चखने में आगया होता तो शायद उपद्रवियों को एक धक्का पहुँच जाता, मगर उसमें बाधा डालनेवाले भी पैदा हो गये हैं, यह न भूलना चाहिए। विरोधियों को समझा-बुझाकर और पुचकार कर अपनी तरफ़ करना बहुत ही अच्छी बात है, मगर जब वह विरोध ईमानदारी का विरोध रखता हो तब। अगर मैं एक बात समझने को ही तैयार नहीं तो आप समझावेंगे कैसे? समझनेवाला तो मैं हूँ।

इतना होने पर भी हमें यह न भूलना चाहिए कि कांग्रेस हमारी संस्था है और उसके द्वारा हम आज इस दर्जे पर पहुँचे हैं और अगर हम उसे पूरी सहायता देते रहें तो बावजूद विरोधियों के अगले १० वर्ष में

असली स्वराज्य नहीं तो उसके पास तक वह हमें पहुँचा देगी।

आज कांग्रेस-गवर्नमेंट में ज़रूर कुछ कमज़ोरी दिखाई दे रही है, मगर जनता के लाभ और उन्नति के वास्ते उसने कोई कसर उठा नहीं रक्खी है। ग्राम-सुधार की तरफ़ पूरा ध्यान दिया जा रहा है और अगर ठीक आदमी मिल गये तो थोड़े ही दिनों में उसका असर दिखने लगेगा। भारी वेतन उसने कम कर दिये हैं और मंत्रि-मंडल तो पिछले मंत्रियों के मुक़ाबले चौथाई खर्च पर काम कर रहा है। किसानों या ग़रीबों के हक़ की तरफ़ किसी गवर्नमेंट ने आज तक ध्यान तक न दिया था। उनकी दुर्दशा को दूर करने का बीड़ा इसी गवर्नमेंट ने उठाया है। कल-कारख़ाने खोलने की भी तजवीज़ है और छोटे छोटे देहाती व्यवसायों को तरक़्क़ी भी यह दे रही है। शराबियों और उनके बाल-बच्चों की दुर्दशा की तरफ़ उसने विशेष ध्यान दिया है और जहाँ कहीं भी उसे सफलता मिली है, वहाँ से ख़बरें आई हैं कि कितने ही लोग शराब बन्दी से अपने क़र्ज़ तक अदा कर सके। इन बातों को ध्यान में रखते हुए हमें उसकी सहायता पूरी तरह करनी चाहिए।

आज-कल चारों तरफ़ से हिन्दू-मुस्लिम-मेल की पुकार उठ रही है। और यह तो मानी हुई बात है कि बिना इसके स्वराज्य का पता भी न होगा। मगर यह मेल एक तरफ़ के दबने से न होगा। हमारी गवर्नमेंट को हिम्मत से काम लेना होगा। इस झगड़े की जड़ को काटना होगा; वह है अलग अलग जातियों के अलग अलग प्रतिनिधि चुने जाना। हिम्मत करके सम्मिलित चुनाव कर दो, उपद्रव अगर हो तो सख़्ती से रोको; थोड़े दिनों में सब अपने आप ठीक हो जायगा। उपद्रव तो यों भी हो रहे हैं और कम हिम्मती रही तो और भी होंगे। आख़िर सिंध जो एक मुसलमान सूबा है, सम्मिलित चुनाव की बात सोच ही रहा है।

घन-सुन्दरी

लेखक, श्रीयुत शम्भूनाथसिंह 'रसिक' बी० ए०

री गगन-वाले ! अरी घन-सुन्दरी !

बाँधकर जीवन-सुधा को
स्नात निज धूमिल अलक में
एक विद्युत्-द्युति समेटे
सो रही अपने पलक में
विहँस चिर स्मिति-सी सतत स्नाता परी !

कामरूपा मोहिनी जग
की दुलारी नयन-प्यारी
धूप छाया के करों से
नापती जग की व्यथा री !
तार, तर नभ-साँस-धारा की तरी !

साँस में झंझा छिपाये
नयन में बरसात आली
अधर में कुछ गुनगुनाती
सी प्रलय की बात आली
अग्नि-रेखा तव अरुण-मुस्क्यान री !

जाग री अब जाग, अपना
पालना तज प्रिय-पवन का
देख विद्युत् के नयन से
सघन दुख-तम जग-भवन का
रो रहा है करुण जग-जीवन अरी !

काँप जाये आज अग-जग
बन्द कर निज मुग्ध लोचन
सृष्टि यह नूतन बने चिर
सजनि, विस्मृत हो पुरातन
तान वह छेड़ो प्रलय की किन्नरी !
री गगन-वाले ! अरी घन-सुन्दरी !

मुलतान

लेखक, श्रीयुत सी० बी० कपूर, एम० ए०, एल-एल० बी०

[श्रीयुत सी० बी० कपूर]
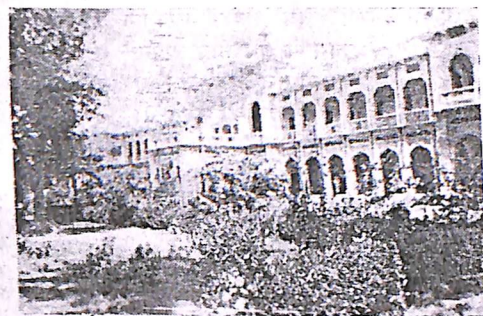
मैंने हाल में ही मोटर-साइकल पर कुल भारतवर्ष का भ्रमण किया है, परन्तु मुलतान जैसा पुराना और असल हिन्दू-शहर मुझे कहीं देखने में नहीं आया। मुलतान न सिर्फ़ पूर्व-इतिहास-कालीन पुराना शहर है, बल्कि इसको हिन्दुओं का एक तीर्थस्थान होने का भी सौभाग्य प्राप्त है। हिन्दुओं का कहना है कि सत्ययुग में अपने भक्त प्रह्लाद की रक्षा के लिए भगवान् विष्णु को नृसिंह-रूप में इसी नगर में प्रकट होना पड़ा था। मुसल्मानों के भी कई औलिये यहाँ हो गये हैं। वे भी इसे 'मुलतान शरीफ़' कहकर आदर देते हैं।

मुलतान पंजाब-प्रान्त का एक प्रसिद्ध नगर है। यहाँ की छावनी तो नये ढंग की बनी हुई है, परन्तु शहर अभी पुराने ढंग का ही है। इसके पुराने हिन्दू-मन्दिर, मकानों और पुराने हिन्दू-ढंगों को देखकर सहसा महाभारत के समय की याद आ जाती है। पुराने दिनों के स्त्री-पुरुषों का पहनावा भी बहुत विचित्र और पुराने ढंग का है। यहाँ के लोगों की बोली भी निराली है, परन्तु सुनने में बहुत मीठी और प्यारी मालूम होती है। न तो वह सिन्धी है, न पंजाबी। यहाँ के हिन्दुओं का धर्म-भाव भी कुछ निराला है। उसको हम पुरातन सनातन-धर्म कह सकते हैं। बहुत-से देवी-देवताओं के मानने के कारण उनके यहाँ सप्ताह में ८ से अधिक त्योहार मनाये जाते हैं।

मुलतानी लोगों ने सफ़ाई को हद से भी ज़्यादा ऊँचा दर्जा दे दिया है, इसलिए यहाँ अभी तक छूत-छात का बहुत अधिक दौरदौरा है। महात्मा गांधी के अछूतोद्धार का यहाँ कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा है। इन बातों को देखकर यात्री बड़ी आसानी से कह सकता है कि मुलतानियों की सभ्यता पंजाब भर में ही नहीं, कुल भारतवर्ष में निराली है।

यहाँ के लोग बड़े अन्ध-विश्वासी हैं। आज भी यहाँ कई एक बीमारियों का इलाज मंत्र-तंत्र से या किसी विशेष स्थान पर एक-दो कोके चोबने से या गले में कोई यंत्र-तावीज़ बाँधने से या देवी-देवता की कई दिनों तक पूजा करने आदि से किया जाता है।

प्रायः हर एक घर में एक 'पवित्र स्थान' होता है, जहाँ कोई पत्थर या मूर्ति या कोई और ऐसी ही वस्तु रक्खी हुई होती है, जहाँ घर के सब स्त्री-पुरुष बैठकर पूजा-पाठ करते हैं।

पुराणों में इस शहर का नाम कश्यपपुरी दिया गया है। जब सिकन्दर ने इस शहर को जीता था तब इसका नाम कश्यपपुरी था। यहाँ एक 'महील'-जाति निवास करती है, जो आज-कल 'मुहाल ब्राहमन' के नाम से विख्यात है। कुछ समय तक इस जाति के लोगों का यहाँ राज्य रहा। उस समय इस शहर का नाम 'महील-स्थान' हो गया था। यही महील-स्थान बाद में मुलतान हो गया।

हिन्दू राजाओं के बाद इस नगर पर मुसलमानों का अधिकार क़ायम हुआ। महमूद ग़ज़नवी ने यहाँ के निवासियों के साथ निर्दयता का व्यवहार किया था। अन्त में सिक्खों ने पठानों को परास्त कर इस पर अपना

[रुकन आलम क़िले की सबसे ऊँची इमारत]।

[मुलतान का सिविल-अस्पताल]

[शहर मुलतान का विहंगम दृश्य]
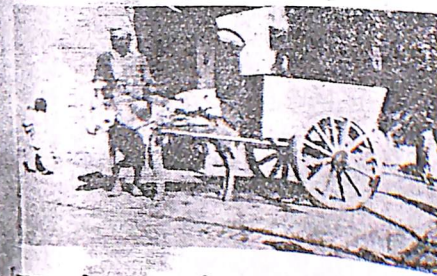
[मुलतान की एक गधा-गाड़ी। यह पतली सड़कों के लिए होती है]
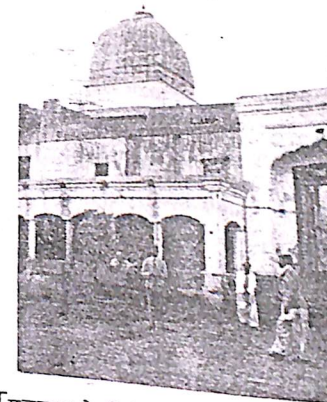
[मुलतान के क़िले में प्रह्लादपुरी-मंदिर]
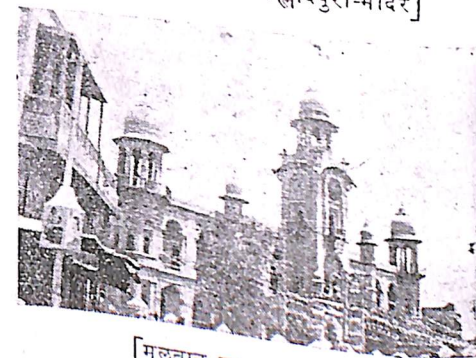
[मुलतान का टाउन हाल]

[मुलतान का क़िला और उसमें खानगाह बहाबल हक़ की इमारत]

[मुलतान-शहर का एक द्वार]

अधिकार जमाया। इसके लिए महाराज रणजीतसिंह को मुसलमानों से आठ बार युद्ध करना पड़ा था। अन्तिम युद्ध में अहमदशाह दुर्रानीवाली भंगी-तोप से यहाँ के क़िले पर गोलाबारी की गई थी।

सिक्खों के राज्य में यहाँ तीन सूबेदार रहे—दीवान सुखदयाल, दीवान सावनमल और दीवान मूलराज। दीवान मूलराज से मुलतान अँगरेज़ों के क़ब्ज़े में आया। इन तीनों दीवानों में से सावनमल का नाम अब तक लोग याद करते हैं। इनके इन्साफ़ की कथायें भी दूर दूर तक कही जाती हैं। अपराध करने पर इन्होंने अपने दो लड़कों को भी दण्ड दिया था। उस समय न स्टाम्प-तलवाना था, न मिस्लें बनती थीं, न वकील और मुख़्तार थे। सब काम ज़बानी होता था, तो भी दूर दूर तक अमन और अमान क़ायम रहता था।

मुलतान शहर क़िले की तरह एक ऊँचे टीले पर बसा हुआ है। इसके चारों ओर ५० फ़ुट ऊँची दी... है, जिसे 'फ़सील' कहते हैं। शहर से बाहर जाने को ... ६ बड़े बड़े फाटक हैं। शहर के अन्दर सिवा ... मुसलमानों के सबके सब हिन्दू ही बसते हैं। मूलराज ... शहर से मुसलमानों को निकाल दिया था। और ... कुछ मुसलमान शहर में रहते हैं, हिन्दू बनकर रहते ... फ़सील के बाहर सबके सब मुसलमान बसे हुए ... दंगों के दिनों में हिन्दू तो शहर से बाहर निकलते ... और मुसलमान लोग बाहर से उनका जितना भी नुक़सान कर सकते हैं, करते हैं। जिन दिनों मैं वहाँ था, ... कुछ ही समय पहले एक भीषण दंगा हो चुका था ... मैंने शहर के चारों ओर घूम-फिर कर देखा। बहुत जले हुए मकानों और दूकानों को देखकर बहुत दुःख हुआ। समझ में नहीं आता कि ये दंगे क्यों हो जाते हैं।

मुलतान शहर की आबादी क़रीब १ लाख के ... शहर के अन्दर कई मकान तो पाँच सौ वर्ष से भी ... के बने हुए हैं, बाज़ार, गली-कूचे बहुत ही ... हैं। कई गलियाँ तो इतनी तंग हैं कि उनसे ... लिए निकलना कठिन हो गया था। आमने-साम... वाले तीसरी मंज़िल की खिड़कियों से ... अच्छी तरह हाथ मिला सकते हैं। गर्मी ओ...
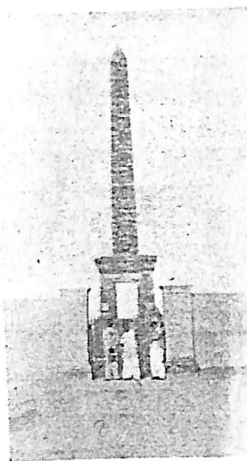
[मुलतान के क़िले में स्मारक ...

के कारण यहाँ के कई एक बाज़ार ऊपर से भी पटे हुए हैं। ज़मीन की तंगी के कारण मकान तीन मंज़िल से कोई भी कम नहीं है। थोड़ी थोड़ी ज़मीन पर वहाँ के लोग मकान बना लेते हैं। एक मकान की ज़मीन की लम्बाई कोई ८ फ़ुट और चौड़ाई ६ फ़ुट के क़रीब थी। मैं इन छोटे छोटे परन्तु आसमान से बातें करनेवाले मकानों को देखकर हैरान रह गया था। कई गली-कूचे और मकान ऐसे हैं जिनमें सैकड़ों वर्षों से कभी सूर्य्य का प्रवेश ही नहीं हुआ है। और मकानों में तो कई कमरे ऐसे होंगे जिनमें कहीं रोशनी के प्रवेश करने का भी रास्ता नहीं है और दिन में भी दीवे जलाकर उनके भीतर जाना पड़ता है।

तमाम शहर पक्का बना हुआ है, और उसके अन्दर कोई बाग़ आदि नहीं है। उसमें वृक्ष भी कोई एक दर्जन से अधिक न होंगे। प्रत्येक गली-कूचे में पानी के बहुत गहरे गहरे कुएँ हैं। इन्हीं में तमाम गली की स्त्रियाँ पानी भरती हैं। मुलतान में कोई भी ऐसा मकान न होगा जिसकी आख़िर की मंज़िल में कबूतरों के रहने के लिए कई-एक घर न बने हुए हों और न कोई ऐसी गली मिलेगी जहाँ कोई देवी या देवता की मूर्ति या पूजने योग्य कोई पवित्र पत्थर आदि न पड़ा हो। इतने पर भी तमाम शहर मन्दिरों, मस्जिदों, और क़ब्रों से भरा हुआ है।

मुलतान की चार चीज़ें मशहूर हैं—गर्द, गर्मी, क़ब्रें और फ़क़ीरी। यहाँ के लोग वास्तव में बहुत ग़रीब हैं। यहाँ बाज़ार में अभी तक कौड़ियों का चलन है। खाना पकाने में यहाँ के हिन्दू पंजाब भर में मशहूर हैं। यहाँ जैसी स्वादिष्ठ और सस्ती वस्तुएँ कहीं भी नहीं मिलतीं। ग़रीबी, गर्मी, और शहर की ज़िदगी के कारण यहाँ के सुन्दर लोगों के मुख पर ख़ून नहीं दिखाई देता। गर्मी और ख़ुश्की के कारण यहाँ के लोग तेल का अधिक व्यवहार करते हैं। यहाँ के लोगों के मुख कभी कभी ऐसे लगते हैं, जैसे अभी तेल से निकाले गये हों। स्नान करने से पहले लोग तेल से कोई आधा घंटा तक मालिश करते हैं।

यहाँ जात-पाँत का अभी तक बहुत ज़ोर है। विवाह आदि की तो बात ही क्या, दूसरी जाति के आदमी के साथ खाना-पीना तक नहीं करते। अछूत के छू जाने पर स्नान करना और वस्त्रों का बदलना ज़रूरी समझा जाता है। बाल-विवाह के कारण बाल-विधवाओं की

[...गी-तोप, अहमदशाह दुर्रानीवाली, जो मुलतान को फ़तह करने के लिए सिक्ख लाहौर से साथ लाये थे]

[श्री योगमाया का मन्दिर]
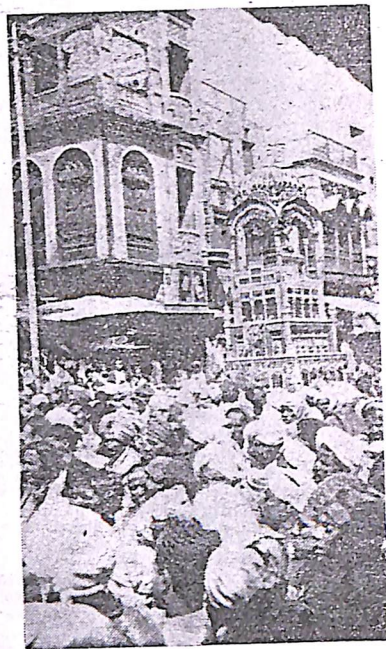
[मुलतान का ताज़िया-जुलूस]

संख्या अधिक है। मेरे समझाने पर भी मुझे यही उत्तर मिलता—"लेकिन जनाब, विधवा-विवाह हिन्दू-धर्म के तो विरुद्ध है, चाहे इसमें कितना पाप क्यों न हो।" यहाँ के लोगों पर किसी तरह के प्रचार का भी असर नहीं होता। वे ऐसी पुरानी दुनिया में बसते हैं जिसकी कोई हद ही नहीं! वे पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृति के बिलकुल ही विरुद्ध हैं।

मुलतान में कई देवताओं के पुराने सुन्दर मन्दिर बने हुए हैं। ऐसे प्रसिद्ध मन्दिर संख्या में १२ हैं, जिनमें से कुछ का वर्णन यहाँ किया जाता है।

प्रह्लाद-पुरी—यह मन्दिर मुलतान के प्रसिद्ध क़िले पर बना हुआ है। इसमें भगवान् नरसिंह की और भक्त प्रह्लाद की मूर्तियाँ हैं। इनके पीछे महल का स्तम्भ भी बना हुआ है। इसको बहुत दूर दूर के लोग देखने आते हैं। हर साल जेठ के महीने में यहाँ बड़ा मेला लगता है। मुसलमानों के राज्य में जब क़िले में जाने के लिए इजाज़त लेनी पड़ती थी तब हिन्दुओं ने इसकी नक़ल का एक दूसरा मन्दिर शहर के अन्दर बना लिया था। यह मन्दिर भी देखने के योग्य है।

तोतला माई का मन्दिर—यह मन्दिर शहर में है। पहले यह स्टेशन के समीप था। जब औरङ्गज़ेब ने पुराने मन्दिर को गिरवा दिया था तब कहा जाता है कि उसकी मूर्ति एक कुएँ में जा छिपी थी, साथ ही बादशाह का लड़का बीमार पड़ गया था। मन्दिर के महन्त ने शाहज़ादा को आराम कर दिया। इस पर ख़ुश होकर बादशाह ने मन्दिर के ख़र्च के लिए सौ रुपया साल लगा दिया था।

स्टेशन के बाहर योगमाया का मन्दिर है। इसमें हर समय 'जोत' जगती रहती है। यह भी बहुत पुराना मन्दिर है और देखने के योग्य है। शहर से थोड़ी थोड़ी दूर पर बहुत-से मन्दिर और समाधियाँ बनी हुई हैं, जहाँ साल में कई बार मेले लगते हैं।

मुलतान के हिन्दू त्योहारों को दिल खोल कर मनाते हैं। ऊँटों को सजाकर उन पर सवार होकर गाते हुए जाते हैं।

मुसलमानों की भी कई एक मशहूर और पुरानी मस्जिदें और ख़ानगाहें यहाँ हैं। क़िले में बहावल-हक़ की ख़ानगाह बहुत बड़ी और सुन्दर है। बहावल-हक़ हज़रत मुहम्मद की जाति के थे। इनके मुरीदों की यहाँ बहुत बड़ी संख्या है। यह ख़ानगाह बहावल-हक़ साहब ने ख़ुद ही बनवाई थी। मुलतान में कई एक फ़क़ीर आये जिनकी याद में कई एक सुन्दर ख़ानगाहें और क़ब्रें यहाँ हैं। मुहर्रम के दिनों में इन ख़ानगाहों से बहुत से सुन्दर ताज़िये निकलते हैं। रुकन आलम की ख़ानगाह भी क़िले में एक सुन्दर इमारत है। रुकन आलम बहावल-हक़ के पौत्र थे। सिक्खों के राज्य में इन ख़ानगाहों में फ़ौज रहती थी।

क़िले में मेमोरियल टावर भी देखने योग्य है। यह टावर उन दो जवान अँगरेज़ों की स्मृति में बनाया गया है जो दीवान मूलराज से क़िले का अधिकार लेने गये थे और जिन्हें उसने मरवा डाला था। यह कोई ६० फ़ुट ऊँचा है और लाल रंग के पत्थर का बना है।

मुलतान का क़िला जब अपनी अच्छी दशा में था तब इसका रक़बा १$\frac{1}{4}$ मील था और इसके चारों ओर रावी बहती थी, जिसको पार करने के लिए एक पुल बना-हुआ था। इसके अन्दर एक सर्दख़ाना था, जिनका उपयोग दीवान सावनमल और मूलराज गर्मी की ऋतु में किया करते थे। क़िले का दमदमा बहुत ऊँचा है, जहाँ से सारा शहर दिखाई देता है। मुलतान छावनी के बनने के पहले अँगरेज़ी फ़ौज इस क़िले में रहती थी। परन्तु आज-कल यह बिलकुल उजाड़ पड़ा हुआ है।

मुलतान शहर के म्युनिसिपल बोर्ड ने शहर को सुन्दर और साफ़-सुथरा बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी है, अतएव यहाँ की तङ्ग गलियों और बाज़ारों की हालत आगे से बहुत अच्छी हो गई है। तंग रास्तों के कारण शहर की गंदगी गधों की छोटी छोटी गाड़ियों के द्वारा दूर की जाती है। ये छोटी अनोखी गाड़ियाँ देखने में बड़ी अजीब-सी मालूम होती हैं। इससे पहले शहर की गन्दगी बैलों पर लाद कर उठाई जाती थी। इन सब प्रयत्नों के होते रहने पर भी मुलतान अभी तक गन्दा, तंग और अस्वास्थ्यकर है। शहर की फ़सील के बाहर कई-एक सुन्दर बाग़ और इमारतें हैं। परन्तु मुलतानी लोग शहर से बाहर बहुत कम निकलते हैं! यहाँ के नये टाउन हाल, सिविल हास्पिटल, कालेजों आदि की भी इमारतें सुन्दर हैं।

इन नये परिवर्तनों के साथ साथ मुलतान के लोगों के विचारों में कोई उन्नति नहीं हुई है। क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, सभी के विचार तंग और पुराने के पुराने ही हैं। और यही कारण है कि मुलतान में हिन्दू-मुसलमानों में प्रायः दङ्गे होते रहते हैं।
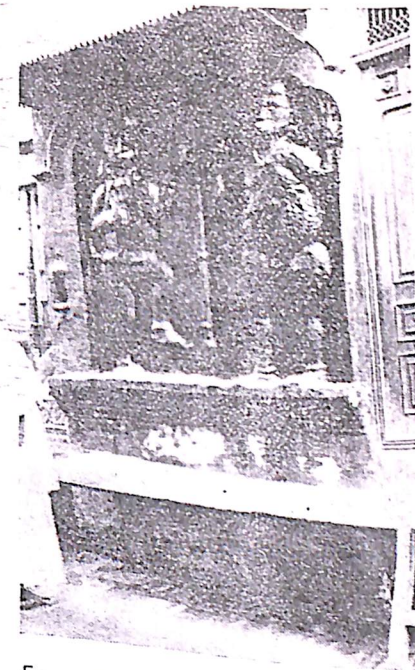
[एक गली में मंगल और शनिश्चर की मूर्तियाँ]

साधना

लेखक, प्रोफ़ेसर विश्वनाथप्रसाद, एम० ए०

जीर्ण विपञ्ची के तारों को जोड़-जोड़ तैयार किया।
विजन विश्व की नीरवता में शान्त अशान्त विचार किया॥
मींड़ खींचने लगा, छिदी उँगली, न रुदन बेकार किया।
गाया गान सँभाल ताल-लय-सुर में लय संसार किया॥
फिर भी क्यों स्वर में मच जाता हाय! स्वार्थ का हाहाकार?
रह-रहकर क्यों बज उठती है हन्त! कामना की झनकार?

एक भावपूर्ण कहानी

मूक माली

लेखक, श्रीयुत उदय

वह देखो नीचे भगवान् का सच्चा प्रतिरूप। समय-चक्र को चलाते-चलाते अब बड़े पिता भी ऐसे ही वृद्ध होंगे—ऐसी ही लम्बी-लम्बी स्वच्छ दाढ़ी, श्रान्त-कृश देह और लोचनों में स्फूर्ति की निशानी वही लालिमा होगी। उस पिता के सभी प्रतिनिधि एक लँगोटी बाँधे इस भूमि से लगे रहे। वैसे ही सरल-स्नेह का देखो। यह साक्षात् पुतला अपनी छोटी-सी सृष्टि को बिगाड़ने-बनाने में जुटा है। सुखद नींद में जहाँ सोना है, और सुखद श्रम में जहाँ जगना! कैसी सुडौल, मनोहर सृष्टि! इसका प्रत्येक प्राणी छोटा या बड़ा, पुष्पयुक्त अथवा रहित, सुगन्ध वा निर्गन्ध, इसका है। देखो, न ज़रा उस ओर, कैसे क्यारी के उस पौधे के अचानक चले जाने से, सबकी बेचैन दृष्टि उस रिक्त स्थान की ओर लगी है। लगी ही रहेगी, जब तक वह उजड़ा स्थान फिर लहलहाने न लगेगा। उनका जीवन साम्य का जीवन है। वे विकल देखने लगते हैं—उसी ओर, जिधर कोई मुरझाता, गिरता नज़र आता है। क्यों न हो, जिनका ऐसा चतुर सृजनहार।

इसी सृष्टि के बाँयीं और एक छोटी-सी कुटी देखने में आती है। उसी में बैठे-बैठे वह अपने बच्चों का खिलवाड़ देखता है; हुक़्क़े की गुड़गुड़ में उनकी भविष्य चिन्ता करता है और चक्कियों की गड़गड़ाहट में उनके साथ हिलोर लेता है; सुबह उठकर एक सिरे से दूसरे सिरे तक जो स्नेह की बौछार करता है, तो सब उससे तरबतर हो जाते हैं—क्या गुलाब और क्या बेरी। उसकी हलकी-सी मुस्कान में वह आनन्द-कम्पन छिपी रहती है, जिससे उस वाटिका के प्राणी हरे-भरे हो जाते हैं; क्या छोटा और क्या बड़ा। और जिसकी एक-ही दुःखद निश्वास के साथ उनका सारा रंग फ़क हो जाता है। तब क्यों न भूल बैठे वह भी भूख-प्यास शीत-दाह, हानि-लाभ ऐसे सहृदय बच्चों के पीछे!

और दुलारे बच्चों का लालन-पालन करनेवाले ये कोमल-कोमल हाथ उन्हें दुरुस्त करने को कठोर भी हो जाते हैं। वह साम्य के द्रोही को वहाँ से विदा भी सहज-भाव से कर देता है। यदि तीनों लोक में न्याय-दया और प्रेम एक ही जगह आकर मिले हैं, तो वह यहाँ। और कहीं नहीं। जिसकी सृष्टि में न अन्याय है, न अराजकता। जहाँ गुलाब सस्नेह देखता है बेरी की ओर, और बेरी गुलाब की ओर। जहाँ सब ही हिल-मिल कर जीते हैं और हिल-मिल के मरते हैं। सृष्टि के प्रारम्भ में बड़े बाबा ने बड़ी-बड़ी भूलें कीं। पैग़म्बर पर पैग़म्बर आते हैं उन्हें सुधारने; पर अब वे उसकी प्रकृति-सी हो गई हैं। उन्हीं के लिए इस छोटे पिता ने मानों यह आदर्श तैयार किया है।

दिवस का अवसान समीप ही आ गया। अब भी देख लो वह परमात्मा का प्यारा किस मुस्तैदी से उस वीथिका में निनान कर रहा है।

"कल नया वर्ष लगेगा। टन-टन कर इस जीवन की साठ घड़ियाँ बीत गई होंगी; और न जाने कितना समय और बाक़ी बचा है।" बस, कुछ ऐसे ही गुनगुनाता बढ़ा जा रहा है। हर पौधे के पास ठहरता है। कुछ कहता है, कुछ सुनता है; पसीने का मोती ललाट से ढुलक पड़ता है और चट दोनों की रूह मिलकर एक हो जाती है। उस क़तार में थोड़े ही पौधे बाक़ी बचे थे और शायद आज इतना ही काम करना हो; उसकी तेज़ी धीरे-धीरे मन्द होने लगी थी। जब लल्लू भैया ने धीरे से कान में आकर कहा, "मानू बाबा, बाबू जमनी दादी है, न? वह बाबू जी कहते थे शहर अस्पताल में मर गई।" उस समय तीन-चार ही बाक़ी थे। सूर्य्य देवता अपने दूसरे लोक को प्रस्थान कर चुके थे।

मानू बाबा ने कहा—"हैं भैया जी!"

और ज्यों ही, "हाँ, अस्पताल से मोहन आया..." लल्लू भैया ने कहा कि त्यों ही पीछे से बड़े भैया ने पुकार कर कहा—"क्यों लल्लू, बाबू जी को कहूँ क्या? क्या कह रहे हो बाबा को।" बस, हो चुका। बड़े भैया ने रोक कर लल्लू भैया के कथन की पुष्टि कर दी।

काम समाप्त हो चुका था। वह उठा। उसका फटा कुर्ता झाड़ी पर था, खुरपा वहीं पौधे की जड़ में, हुक़्क़ा मेंड़ पर। वीथिका के बीच से सिर नीचा किये चला। उस समय फलों में न रंग था, न सुगन्ध। पक्षियों का रव भी एकाएक बन्द हो गया था। कोठी के कुटने-पिटने की आवाज़ भी न थी और सामने टेनिस कोर्ट की वाह-वाह और क़हक़हे कण्ठों में ही रुक गये थे। केवल कुटिया ही झलकती थी जहाँ तक वह पहुँच गया। लगभग तीन घंटे तक वह कुटिया के दरवाज़े पर सिर नीचा किये बैठा रहा। सबने देखा झोपड़े में आज चिराग़ न था। न क्यों, किसी ने पूछा; न यों, किसी ने कहा। उस समय वाटिका के अनाथ जीव रो रहे थे, कोठी में गाना-बजाना हो रहा था। गाना एक बजे ख़त्म हुआ। रोना सुबह आठ बजे कुछ रुका; पर ख़त्म कभी न हुआ।

दूसरे दिन सुबह मैंने कोठी के मालिक से जाकर कहा—"मैं उस जगह एक समाधि बनाना चाहता हूँ?

उन्होंने पूछा, "क्यों?"

"आपको क्या कुछ एतराज़ है?"

—मैंने कहा।

"इसमें मेरा क्या जाता है!"

अब वहाँ एक समाधि खड़ी है। मैं अपने बाल-बच्चों-सहित अक्सर वहाँ दर्शन को जाया करता हूँ।
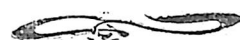
क्षण-भंगुरता

लेखक, श्रीयुत जगमोहननाथ अवस्थी 'मोहन'

आदि में अन्त व्यथा में छिपा सुख,
भूत भविष्य बना करता है।
राग-विराग में आह में गान,
कहीं तम तेज छना करता है॥
पाप में पुण्य विकास में ह्रास का,
नित्य वितान तना करता है।
मानव योंहीं बना बिगड़ा,
जग-पंक-कलंक सना करता है॥

क्यों अभिमान-विमान चढ़े हम,
स्वप्न के विश्व में घूमते जाते।
नित्य ही आशा-घनावली के,
कलकल्पित बुन्द को चूमते जाते॥
मोह के कोमल तन्तु बँधे,
परतंत्र बने पर झूमते जाते।
काल कराल के चक्कर में पड़,
चाक कुम्हार-से घूमते जाते॥

शान्ति न पा सका कोई यहाँ,
सब रोते-रुलाते अकेले चले गये।
धूप औ छाँह में दीन धनी,
जग आँगन में सँग खेले, चले गये॥
ज्ञान न मुक्ति विधान बता सके,
सैकड़ों ही गुरु चेले चले गये।
केवल नेकी बदी के निशान ही,
अन्त हिसाब में दे-ले चले गये॥

अवधी और बघेली बोली की भिन्नता

लेखक, श्रीयुत लाल भानुसिंह बाघेल

हिन्दी-भाषा के क्षेत्र में ब्रजभाषा एवं अवधी बोलियों का विशेष स्थान है। ब्रजभाषा के भीतर बुन्देली और अवधी के अन्दर कनौजी, बैसवाड़ी, बघेली एवं छत्तीसगढ़ी बोलियाँ हैं। आचार्य्य रामचन्द्र शुक्ल अवधी और बघेली में कोई अन्तर नहीं मानते हैं पर ब्रजभाषा में जो स्थान बुन्देली बोली का है वही अवधी में बघेली का है। साधारण दृष्टि से बहुत कम अन्तर प्रतीत होता है अवश्य; पर जब अवधी के अत्यन्त निकट बैसवाड़ी और अवधी में ही कुछ अन्तर है तब अवध से सुदूर बघेलखण्ड-प्रान्त की बोली में क्यों न अन्तर हो ? यह सत्य है कि बुन्देलखण्ड के अत्यन्त निकट होते हुए भी बघेली बोली पर बुन्देली बोली का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा और सैकड़ों कोस दूर अवधी का उस पर इतना प्रभाव पड़ा कि दोनों एक मानी जाने लगीं। विचारने की बात है कि यद्यपि बुन्देली के द्वारा पश्चिमी अवधी से बघेली का नित्य का सम्बन्ध होना चाहिए, पर ऐसा न होकर यह अपने से सुदूर पूर्वी अवधी को ही अधिक अपनाती है। जैसे पश्चिमी अवधी के साधारण क्रिया 'आवन' 'जान' आदि रूपों का बघेली में व्यवहार न होकर पूर्वी अवधी के 'आउब' 'जाब' आदि रूपों का पूर्ण रूप से व्यवहार होता है।

सर्वनाम शब्दों के बहुवचन में बघेली में 'पाँच' शब्द जोड़ने की प्रवृत्ति है, यह अवधी में कहीं नहीं पाई जाती।

अवधी		बघेली	
एकवचन	बहुवचन	एक व०	ब० व०
आप	आप	अपना	अपनों पाँच
ई	इन, ए	इया	ईं पाँच
ऊ	उइ	उआ	ऊं पाँच
मइ	हम	मैं	हम पाँच
तुइ	तुम, तू	तुम, तूं	तुम पाँच

प्रायः सब भाषाओं में शब्दों का एकवचन से बहुवचन बनने में रूपान्तर हो जाता है, पर बघेली में तब तक रूपान्तर नहीं होता जब तक बहुवचन के पीछे किसी कारक-चिह्न (विभक्ति) की आवश्यकता नहीं पड़ती। केवल क्रिया में अन्तर पड़ जाता है, जैसे 'घोड़ आया है' और 'घोड़े आये हैं' का बघेली अनुवाद 'घोड़ आवा है' और 'घोड़ आये हैं' होगा।

अवधी		बघेली	
एक० व०	बहु० व०	एक व०	बहु व०
घोड़वा	घोड़वे	घोड़	घोड़ (घोड़न [illegible])
आव	आँव	आमा	आमा (आमन [illegible])
रोटी	रोटी	रोटी	रोटी (रोटिन [illegible])
गोरू (पशु)	गोरू	गोरू	गोरू (गोरुअन [illegible])

क्रियाओं में भी अन्तर है। जहाँ अवधी के वर्तमान काल में 'है', 'अहै', 'बाटै', तीनों होते हैं वहाँ बघेली में खड़ी बोली की भाँति केवल 'है' होता है। इसी प्रकार जहाँ अवधी के भूत काल के एकवचन क्रिया में 'रहे', 'रहै' और बहुवचन में 'रहन', 'रहों', 'रहै', है वहाँ बघेली में केवल 'रहा' (एकवचन में) 'रहे' (बहुवचन में) होता है। यही स्त्रीलिंग में [illegible] और 'रहीं' हो जाता है।
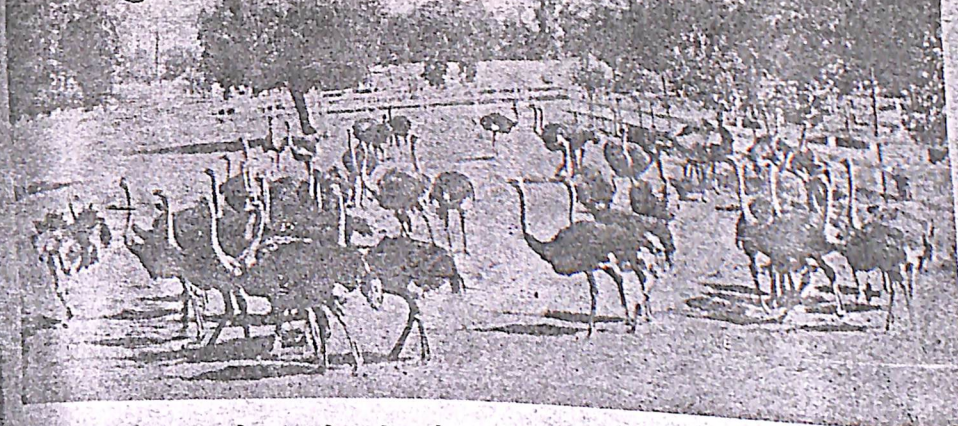
लेखक, श्रीयुत सेठ गोविन्ददास, एम० एल० ए०

(३)

जंजीबार

मुम्बासा से जंजीबार जाने में जहाज़ को सिर्फ़ एक रात लगती है। शाम को हम मुम्बासा से रवाना हुए और दूसरे दिन सुबह जंजीबार पहुँच गये। जंजीबार की जमीन भी उषाकाल से ही दिखाई [illegible]ने लगी थी। जंजीबार एक टापू है और मुम्बासा से भी [illegible]दा हरा-भरा। जहाज ने लंगर डाला क़रीब ७ बजे [illegible] जंजीबार के इंडियन नेशनल एसोसिएशन के [illegible] सभापति आनरेबिल मिस्टर गुलामअली [illegible]ी मिस्टर पटेल, 'जंजीबारवायस' के सम्पादक मिस्टर [illegible]ीम तथा वहाँ के अनेक प्रतिष्ठित सज्जन हमें [illegible]के लिए जहाज पर पहुँच गये।

जंजीबार के डाक पर इतना पानी न था कि जहाज [illegible] तक पहुँच सकता, अतः हम लोग एक छोटे मोटर-[illegible] में बैठकर वार्फ़ के लिए रवाना हुए। समुद्र में [illegible]रे के कारण लहरें उठ रही थीं और वह छोटा-[illegible] मोटर-बोट खूब डगमगा रहा था। जहाज की झूमती [illegible]ल और इस नाव की डगमगाहट में कितना अन्तर था। वार्फ़ पर मेरे लेने के लिए एक बहुत बड़ी भीड़ इकट्ठी [illegible] बन्दे मातरम् और महात्मा गान्धी के जय-घोष द्वारा मेरा स्वागत किया गया। भीड़ में मुसलमान अधिक थे। इन सबका इस प्रकार का कांग्रेस-प्रेम देखकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ, पर यह हर्ष बहुत देर तक न ठहरा। इसका कारण था। मैंने भीड़ में से एक व्यक्ति से पूछा—"यहाँ तो कांग्रेस के प्रति बड़ा प्रेम है।"

"जब से लोगों के व्यापार का झगड़ा उठा है तभी से यह प्रेम हो गया है।" उसने उत्तर दिया।

यद्यपि इस उत्तर को सुनकर मेरा हर्ष बहुत कम हो गया तथापि एकाएक मेरे मन में उठा—आपत्ति में ही भगवान् याद आते हैं, आफ़त में ही कांग्रेस याद आती है। यदि हम लोगों के दुःख और बढ़ जायँ तो शायद हम जल्दी आजाद हो सकें। क्रान्ति कष्ट का परिणाम है। क्रान्ति के लिए हमें अभी और कष्टों की जरूरत है।

मिस्टर गुलामअली ने मेरे स्वागत में एक छोटा-सा भाषण वार्फ़ पर ही दे डाला। मुझे उसका जवाब देना पड़ा। भाषणों के बाद ही हम लोग मिस्टर गुलाम-अली के मकान की तरफ़ रवाना हुए।

जंजीबार टापू तो नित्य नये वृक्षों और पौधों के द्वारा नये प्रकार से हरा-भरा होता रहता है, परन्तु शहर में कोई नवीनता नहीं है—वह बहुत पुराना है। शहर

[ज़ंजीबार में लौंगों का वृन्तों से पृथक् करना]

में एक भी सड़क नहीं है, सब छोटी-छोटी गलियाँ हैं। मकान भी नये ढंग के न होकर सब पुराने फ़ैशन के हैं। बड़े ऊँचे ऊँचे मकान हैं, जिनके कारण गलियों में कुछ क्षणों के लिए ही सूर्य्य की किरणें प्रवेश कर पाती हैं। गलियाँ पत्थर की चौड़ी चौड़ी पटियों से पटी हुई हैं। मकानों के दरवाज़ों की चौखटें और पल्ले ज़्यादातर खुदावदार हैं। सारा नगर देखकर भारत की काशीपुरी का स्मरण आये बिना नहीं रहता।

थोड़ी देर तक मिस्टर गुलामअली के मकान में ठहर कर हम लोग लौंगों की उपज और शहर के बाहर भारतीयों के निवासस्थलों को देखने के लिए रवाना हुए।

जिस तरह आम के बगीचों में आम के वृक्ष कतार में लगाये जाते हैं, उसी प्रकार लौंग के वृक्ष लगे थे, पर लौंग के वृक्ष आम के वृक्षों के समान घेरदार नहीं होते। इसके सिवा वे एक दूसरे से इतनी दूर भी नहीं ... जाते जितने आम के। वे थे पतले और सीधे और ... लम्बाई थी क़रीब २२ फ़ुट। लौंग न फल है, न फूल ... जो पेड़ फूल जाता है उसमें तो फिर लौंग होती ... नहीं। लौंग निकलती है छोटी-छोटी टहनियों ... पर। तीन तरह की लौंग होती है—हरी, लाल ... मोटी लाल जिसे लौंग की मा कहते हैं। हरी ... प्रथम श्रेणी की समझी जाती है। भारत में यही आती ... लाल द्वितीय श्रेणी की मानी जाती है। यह मो... कुछ देशों को जाती है। वहाँ उससे तेल निकाला ... है। यही लाल लौंग जब ठीक समय पर नहीं तोड़ी ... तब मोटी होकर लौंग की मा बन जाती है ... इसका बीज है। हर चौथे वर्ष लौंग की एक बड़ी ... होती है। यह साल बड़ी फ़सल का साल ...
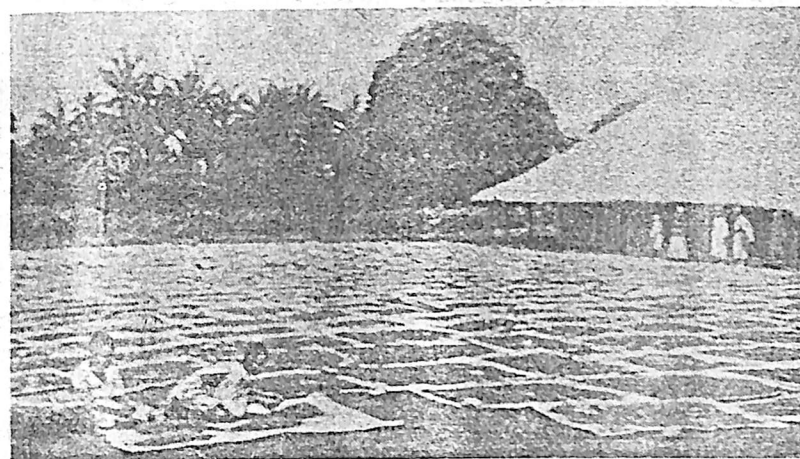
[ज़ंजीबार के एक मैदान में लौंगें सुखाई जा रही हैं]

...का हर एक वृक्ष लौंग के गुच्छों से लदा हुआ था। ... चलती हुई वायु में लहरा कर लौंग की सुगन्ध से ... ज़ंजीबार टापू को सुगन्धित कर रहे थे।

...क्लब डिक्री क़ानून के सबब हिन्दुस्तानियों ने लौंग ...व्यापार का बायकाट कर दिया था। इससे लौंग ...ने के लिए हमें बहुत कम मज़दूर दिखाई दिये। ... वृक्षों से झड़ झड़ कर धूल में मिल रही थी। ...मैंने यह पूछा कि जिस तरह अभी लौंग तोड़ी जा रही ...उस तरह तो शायद आधी से ज़्यादा फ़सल बरबाद ...जायगी, तब मुझे कहा गया कि क्लब ग्रोअर्स एसो...शन ने जान बूझ कर तुड़ाई का ठीक इन्तज़ाम नहीं ...है। वह चाहता है कि ज़्यादातर फ़सल बर...हो जाय, जिससे निर्यात का प्रश्न बहुत जटिल ...पाये। मालूम नहीं, इस बात में कितनी सत्यता ...र इतना मैं अवश्य कह सकता हूँ कि यह बात ...भव नहीं हो सकती।

...ज़ंजीबार में लौंग की खरीद और निर्यात वहाँ के ... व्यापारी करते थे। उपज का आधा हिस्सा ...को आता था। जब क्लब डिक्री के इस क़ानून ... ज़ंजीबार के भारतीय व्यापारियों ने ज़ंजीबार ...की खरीद और निर्यात तथा भारत में भारतीय व्यापारियों ने लौंग के आयात के व्यापार का बायकाट कर रक्खा था और यह साल बड़ी फ़सल का साल था तब क्लब ग्रोयर्स एसोसियेशन की यह चाल असम्भव नहीं हो सकती।

लौंग के सहस्रों वृक्षों के इन उपवनों को देख और लौंग की सुगन्धि से मस्तिष्क को परिपूर्ण कर हम लोग भारतीयों की शहर के बाहर की बस्ती में पहुँचे। इन बस्तियों में भारतीयों के साथ अरब भी रहते थे और दूर दूर पर सुहेलियों के भी झोंपड़े थे। मुंबासा में शहर के बाहर की इस तरह की बस्तियाँ हमें देखने को न मिली थीं। ज़ंजीबार में पहले पहल हमने इन्हें देखा। ये बस्तियाँ नारियल, लौंग और केले के दरख़्तों से भरी हुई थीं। भारतीयों तथा अरबों के मकान ईंट और मिट्टी के बने थे, जिन पर टीन छाया हुआ था—ज़्यादातर कनस्टरों का टीन। मकान एक-दूसरे के बहुत नज़दीक थे। दोनों जातियाँ साथ साथ बन्धुओं के समान प्रेम से रहती थीं। सुहेली दूर-दूर पर पृथक्-पृथक् झोंपड़ों में रहते थे। झोंपड़े गोल घास के बने हुए थे। घास से ही छाये गये थे। हर एक झोंपड़े में सिर्फ़ एक छोटा-सा दरवाज़ा था। हर झोंपड़े के चारों तरफ़ ज़्यादातर केले के दरख़्त थे। मालूम
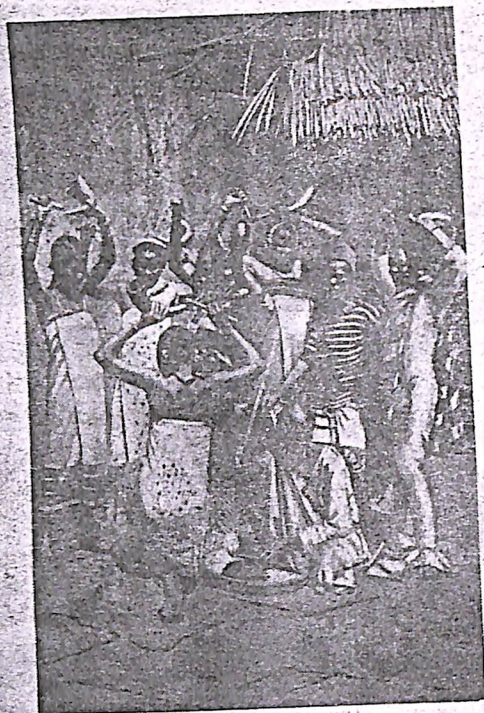
[सुहेलियों का एक उत्सव-नृत्य]

हुआ कि केला ही सुहेलियों का प्रधान भोजन है। यह भी सुना कि कुछ वर्ष पहले सुहेली कपड़े नहीं पहनते थे। पत्ते की तीन अंगुल चौड़ी लँगोटी ही स्त्री और पुरुष दोनों के लिए काफ़ी थी, अतः घास का झोंपड़ा, पत्ते की लँगोटी और झोंपड़े के आस-पास पैदा हुए केले इन तीनों चीज़ों के सिवा सुहेलियों को किसी दूसरी चीज़ की ज़रूरत न थी। आवश्यकता ही उत्पत्ति की जननी होती है। जब सुहेलियों को किसी चीज़ की ज़रूरत ही न थी तब सभ्यता की इस दौड़ में उनका पीछे रह जाना शायद स्वाभाविक था। मैंने इन बस्तियों में लौंग के उत्पादक कई अरबों और सुहेलियों से क्लव डिक्री और भारतीयों-द्वारा इस व्यापार के बायकाट के विषय में बात की। वे मेरी भाषा नहीं समझे। बीच में ऐसे आदमी की ज़रूरत हुई, जो हिन्दुस्तानी और सुहेली दोनों भाषायें जानता हो। यहीं ... ऐसा आदमी मिल गया। उसने मेरी बात उन्हें ... उनकी मुझे समझा दी। कुछ बातें इशारों में ... हुईं। मुझ पर तो इस सबका यही प्रभाव पड़ा ... अरबों और सुहेलियों को भी व्यापार में ये ... बन्धन पसन्द नहीं हैं और उन्हें डर है कि ... बन्धनों के सबब शायद सारा रोज़गार नष्ट न हो जाय।

हमारा लञ्च था ज़ंजीबार के सबसे पुराने व्यापारी सेठ पोपट वीर जी के यहाँ। पोपट वीर जी ज़ंजीबार के सबसे पुराने और सबसे बड़े व्यापारियों में एक ... यद्यपि सेठ जी की अवस्था ७२ वर्ष की थी, तथापि ... हृदय तरुणों जैसा था। वे इस बात को बड़े गर्व से कहते थे कि जब महात्मा गांधी दो बार ज़ंजीबार आये थे तब उन्हीं के यहाँ ठहरे थे। ऐसे ... के यहाँ लञ्च खाने को जाने में हमें भी आनन्द हुआ। लञ्च खाकर हम सब इस बात पर विचार करने बैठे कि मुझे आज की सार्वजनिक सभा में क्या ... चाहिए। चूँकि इस समय लौंग के व्यापार के सम्बन्ध में ज़ंजीबार और भारत दोनों जगह ही एक ... बड़ा आन्दोलन चल रहा था, इसलिए बिना सारी ... को अच्छी तरह समझे और वहाँ के ज़िम्मेदार व्यक्तियों से सलाह लिये मैंने कोई बात कह ... मुनासिब न समझा।

लौंग के व्यापार के सम्बन्ध में जितना ... प्रकाशित हुआ था वह मैं बम्बई से रवाना ... बाद जहाज़ पर ही पढ़ चुका था। इस अध्ययन ... मेरी राय हो गई थी कि यहाँ के भारतीय और ... आदि सभी व्यापारियों के साथ ज़ंजीबार की ... ने घोर अन्याय किया है। मेरा यह मत भी ... था कि सुहेलियों के हितों की रक्षा के नाम पर ... रोज़गार पर एकाधिकार स्थापित किया जा ... जो एक-न-एक दिन किसी योरपीय कम्पनी या ... केट के हाथ में दे दिया जायगा। मैं इस सब ... को ब्रिटिश गवर्नमेंट की भारतीयों को अर्थ ... बाहर निकाल देने की नीति का एक हिस्सा ... था। ज़ंजीबार में मैंने जो कुछ देखा और वहाँ ... से जो बातचीत की उससे मेरी यह राय और ... गई। मैंने अपने भाषण के प्रत्येक प्वाइन्ट को नोट ... ज़ंजीबार के सभी कार्यकर्ताओं से हर प्वाइन्ट पर सलाह की। जब मेरे भाषण के प्रत्येक हिस्से को वहाँ ... लोगों ने ठीक समझ लिया तब मैंने भाषण देने का निश्चय किया। मेरे भाषण में एक प्वाइन्ट मिस्टर गुलामअली ने जुड़वाया वह था—उपनिवेशों के सम्बन्ध ... भारतीयों के प्रति ब्रिटिश गवर्नमेंट का जो रुख है उसे देखते हुए ब्रिटिश गवर्नमेंट को इस बात की चेतावनी कि यदि उसका यह रुख ऐसा ही रहा तो उपनिवेशों में बसे हुए भारतीयों को भी ब्रिटिश साम्राज्य से पृथक् होने की घोषणा करनी होगी।

संध्या को ५ बजे रायल सिनेमा में सार्वजनिक सभा थी। भीड़ इतनी हुई कि एक-एक कुर्सी पर दो-दो आदमियों के बैठने और अनेक के खड़े रहने पर भी सिनेमा-हाउस में सब लोग न समा सके और बहुतों को बाहर रहना पड़ा। मिस्टर गुलामअली सभा के अध्यक्ष थे। मैं क़रीब सवा घंटे के बोला। मेरे भाषण का अधिकांश हिस्सा लौंग के व्यापार और उसके प्रतिबन्ध के विषय में जो क़ानून बने थे उनसे सम्बन्ध रखता था। जब मैंने ज़ंजीबार के सम्बन्ध में असेम्बली के स्थगित करने के प्रस्ताव की चर्चा की और जनता को बतलाया कि मिस्टर जिन्ना के कारण किस प्रकार वह प्रस्ताव पास न हो सका तब सभा ने मिस्टर जिन्ना पर शेम शेम के नारे लगा कर अपना घोर असन्तोष प्रकट किया। सभा में ज़्यादातर मुसलमान थे। मिस्टर जिन्ना पर ज़ंजीबार के मुसलमान कितने नाराज़ हुए थे यह बात उस सभा में साफ़ साफ़ मालूम हो गई। मैंने वहाँ के व्यापारियों का एक सिद्धान्त पर अड़े रह कर सब कुछ त्याग करने की तैयारी पर बधाई दी और उन्हें आश्वासन दिलाया कि हिन्दुस्तान में एक छोटी सी लौंग न बिके इसे कांग्रेस करके दिखा देगी। मेरा भाषण मौखिक ही हुआ, पर जिन प्वाइन्टों पर चर्चा हो चुकी थी उनके बाहर मैं ज़रा भी न गया। ब्रिटिश गवर्नमेंट को चेतावनी की बात मैंने अन्त के लिए रक्खी थी। मिस्टर ग़ुलामअली इस बात के लिए बड़े चिन्तित थे कि कहीं वह बात रह न जाय। इसी लिए जब सभा समाप्त हुई तब उन्होंने मुझसे कहा कि मैं तो आपको उस बात की याद दिलाने के लिए एक चिट देने वाला था।

[शृङ्गार किये हुए एक सुहेली महिला]

रात को ७॥ बजे मुझे हिज़ एक्सलेंसी ब्रिटिश रेज़ीडेंट ने मिलने के लिए बुलाया। मैं मिस्टर गुलामअली के साथ ठीक समय उनसे मिलने पहुँचा। अँगरेज़ों को जब कोई गम्भीर बात कहनी होती है तब मौसम की चर्चा से शुरू होती है, यह मैं जानता था। रेज़ीडेंट ने पहले तो ज़ंजीबार आने पर मेरा हार्दिक स्वागत किया और फिर ज़ंजीबार की उस समय के मौसम पर चर्चा हुई। आख़िर लौंग के व्यापार की बात आई। रेज़ीडेंट बोले—"मैं चाहता हूँ कि यह झगड़ा किसी तरह नि... जाय। भारतीयों और उनकी पूँजी की पूर्व-अफ़्रीका में बड़ी ज़रूरत है, यह मैं मानता हूँ।"

मैंने रेज़ीडेंट को भारतीयों के सम्बन्ध में उनके विचारों पर धन्यवाद दिया और कहा—"हर्ष की ...

है कि आपके विचार अन्य अँगरेज़ों के समान नहीं हैं, जो भारतीयों का इस देश में रहना यहाँ के मूल-निवासियों के हितों के प्रतिकूल समझते हैं।"

मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ जब रेज़ीडेंट ने मेरे इस कथन पर प्रमाण चाहे। मैं पूर्व-अफ़्रीका के गोरों और हिन्दुस्तानियों के संघर्ष का काफ़ी अध्ययन कर चुका था, अतः मैंने कीनिया में सन् १९१८ में नियुक्त हुए 'इकनामिक कमीशन' और योरपीयन एसोसियेशन के कन्वेंशन की सिफ़ारिशों की तरफ़ उनका ध्यान आकर्षित किया, जिनमें हिन्दुस्तानियों को हज़ारों गालियाँ देकर यह कहा गया था कि उनका पूर्व-अफ़्रीका में रहना अफ़्रीकनों के हितों के विरुद्ध है। मैंने कीनिया के हाईलैंड्स के सारे झगड़े का उन्हें स्मरण दिलाया और ज़ंजीबार में भी हिन्दुस्तानियों की व्यापार-पद्धति आदि के सम्बन्ध में जो कुछ अँगरेज़ों और ज़ंजीबार-गवर्नमेंट द्वारा नियुक्त कमेटियों ने कहा था उस सबकी भी उन्हें याद दिलाई।

शायद रेज़ीडेंट को यह उम्मीद न थी कि मैंने वहाँ के मसलों पर थोड़ा-बहुत अध्ययन किया है। अतः और कोई उपाय न देख उन्होंने उस चर्चा को ही उड़ा दिया।

कालोनीज़ के अण्डर सेक्रेटरी आफ़ स्टेट लार्ड डफ़रिन जनवरी की ९ तारीख को ज़ंजीबार आनेवाले थे। आखिर रेज़ीडेंट ने यह इच्छा प्रकट की कि दक्षिण-अफ़्रीका से लौटते हुए मैं लार्ड डफ़रिन से अवश्य मिलूँ, यह मुलाक़ात समाप्त की।

टायरिया उसी रात को ज़ंजीबार से जा रहा था। मैंने टायरिया से ही दारुस्सलाम जाने का निश्चय कर लिया। ज़ंजीबारवालों में मेरे वहाँ एक ही दिन रहने से असन्तोष था। वे मुझे ज़ंजीबार-राज्य के अन्तर्गत वहीं के निकट एक अन्य टापू पैम्बा में जहाँ ज़ंजीबार की ८० प्रतिशत लौंग पैदा होती है, ले जाना चाहते थे। पैम्बा-निवासी भी बड़ी उत्कण्ठा से मेरा रास्ता देख रहे थे। मैंने ज़ंजीबार-निवासियों को वचन दिया कि दिसम्बर को दक्षिण के लिए मैं ज़ंजीबार से ही रवाना होऊँगा और ४ को फिर ज़ंजीबार आकर ५ दिसम्बर को पैम्बा चलूँगा।

अर्द्ध रात्रि के समय जहाज़ चलता था। छोटी-सी मोटर-बोट में बैठ कर हम लोग जहाज की ओर रवाना हुए। चन्द्रमा निकल आया था। उसकी किरणें समुद्र की लहरें चमक रही थीं। उन्हीं चमकती हुई लहरों पर डगमगाता हुआ वह डोंगा जहाज़ की ओर बढ़ रहा था।

अर्द्धरात्रि होते हुए भी ज़ंजीबार के सभी प्रमुख प्रसिद्ध व्यक्ति जहाज़ पर मुझे पहुँचाने आये। उन्होंने जब मुझसे यह कहा कि जो थोड़े से व्यापारी लोग रोज़गार के बायकाट में डगमगा रहे थे वे मेरे आने के सबब से फिर दृढ़ हो गये हैं तब मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। मैंने समझा, मेरा ज़ंजीबार आना सफल होगया।

ठीक बारह बजे रात को टायरिया मन्द-गति से दारुस्सलाम की ओर चल पड़ा।

[क्रमशः

एक धारा में

लेखक, श्रीयुत 'विष्णु'

कुर की पत्नी ने सतृष्ण नेत्रों से सब कुछ देखा। माँगनेवालों की लम्बी कतार धीरे धीरे घटने लगी। अनाज से भरी बोरियाँ खाली हो गईं। पुराने और नये कपड़ों की जो गठरियाँ फूली पड़ी थीं वे अब रीती थीं। ठाकुर अकेले ही हिसाब लिखने लगे। एक लम्बी साँस खींचकर वह किवाड़ों के पास से हट गई। हृदय का भारीपन उसे असह्य हो रहा था। विचारों ने उसे पूरी तरह जकड़ लिया था। वह सोचने लगी—हम ठाकुर हैं। दान नहीं ले सकते। वह पाप होगा। लेकिन खाने के लिए जब घर में दाना न हो और तन ढँकने के लिए कपड़ा भी न मिल सके तब दान लेना पाप कैसे हो सकता है? आखिर वे लोग ऐसे ही असहायों की तो मदद करना चाहते हैं। हम आलसी भी नहीं हैं। तब मैं आज उनसे कहूँगी कि प्राण-रक्षा के लिए, पेट भर खाने के लिए, योग्य दान लेने में कोई पाप नहीं होगा.......।

लेकिन वे कहेंगे—छी! छी! क्या कहा तुमने? ठाकुर होकर हाथ फैलाऊँ तो उससे मरना कहीं आसान है। तुम्हारा गला घोंट सकता हूँ, बच्चे को जीता गाड़ सकता हूँ, पर किसी के आगे हाथ नहीं फैलाऊँगा.....

और उसके सामने ठाकुर मानो सचमुच आ खड़े हुए। उनकी आँखें लाल हो रही थीं, चेहरे से लहू टपक रहा था, कह रहे थे—तुम.....तुम मुझे दान लेने को कहती हो, पापिन इत्यादि......।

पत्नी बड़े भयंकर वेग से काँप उठी। जाड़े में भी मानो उसने महसूस किया कि वह पसीने से तर हो गई है—छी! छी! अरे! मैं क्या सोच गई? यह भी होनेवाली बात है। ज़रा सी विपत्ति में इतना घबरा गई...और वह फिर स्वस्थ हो चली—ऊपर परमात्मा भी तो देखता है। वह क्या नहीं जानता होगा। अवश्य मदद करेगा। यह तो दुनिया है। कष्ट न हो तो इसके सुख को जाने कौन?

वह सोच रही थी कि उसका सात वर्ष का लड़का भीम वहाँ आगया है। बोला—अम्मा! बताओ मैं क्या लाया हूँ?

वह चौंक पड़ी। बोली—क्या लाया है तू? मिट्टी की गोलियाँ होंगी? भीम हँस पड़ा—तुम नहीं बता सकती। देखो.....।

और उसने एक टोपी और एक कोट अम्मा की गोद में पटक दिया। बोला—बापू के पास बहुत से पड़े थे। एक उठा लाया हूँ। उन्होंने देखा नहीं...... वह एकटक भीम को देखती रही—बोली नहीं।

भीम कहता रहा—तू भी उनसे मत कहना, नहीं तो मारेंगे। क्यों न अम्मा? देख तो आज सारे गाँव-वाले नये नये कपड़े पहने फिर रहे हैं।

अम्मा उसी तरह स्थिर....।

भीम अम्मा को ऐसा चुप देखकर घबरा गया। पास आकर बोला—अम्मा आ, आ....

लेकिन अम्मा पत्थर की मूर्ति की तरह जड़वत् थी। आँखें स्थिर पर भीग आई थीं, जिनसे क्षण बीतते बीतते गरम गरम पानी की बूँदें पृथ्वी पर टपक पड़ीं।

भीम को कुछ और और सा लगा। उसने कपड़ों को उठाया और कहा—मैं इन्हें वहीं रख आता हूँ अम्मा!

पत्थर में प्राण लौटे। अम्मा जाग कर बोली—अपने बापू से कहकर आना!

भीम ठिठका—बापू मारेंगे अम्मा!

वह बोली—नहीं मारेंगे। तू कहना, बापू भूल हो गई, फिर न करूँगा।

डरता, काँपता भीम जैसे आया था, वैसे ही लौट गया। उसके आँखों से ओझल होते ही ठाकुर की पत्नी जैसे

अवलम्ब खोकर पिघल पड़ी। उसकी आँखों से पानी वह पड़ा। वह फूट फूटकर रोने लगी!

कुछ देर के बाद ठाकुर रिपुदमनसिंह बाहर से लौटे। वे बड़े अन्यमनस्क-से हो रहे थे। भीम उनके साथ था। वह चुपके से अम्मा के पास आकर बोला—अम्मा! बापू ने मुझे मारा नहीं!

"तूने क्या कहा था?"

"मैंने कहा—बापू! मैं ग़लती से कपड़े ले गया था। फिर कभी न लूँगा। बापू कुछ भी नहीं बोले। कपड़े लेकर गठरी में बाँध दिये, पर अम्मा....."

भीम जैसे झिझका।

"पर क्या रे?"

भीम अधिक पास आगया—अम्मा वह कोट बड़ा अच्छा लगता है। तुम एक हमें भी बनवा देना! अच्छा!

अम्मा क्या कहे? पर बच्चे को तो ढाढ़स देना ही था। बोली—अब की फ़सल कटते ही तुझे एक कोट ज़रूर बनवा देंगे!

भीम खुश हो गया। उसे इस बात का ध्यान तो था नहीं कि खेत सूखे पड़े हैं, उनमें कुछ भी पैदा न होगा। अम्मा की इस बात से उसे जान पड़ा कि कोट उसने पहन लिया है।

(२)

और ठाकुर रिपुदमनसिंह!

वे खाना खा रहे थे और उनके जी में अनेक विचार उठ रहे थे। बार बार चाहते थे कि कहूँ—भीम की अम्मा! इस प्रकार नहीं चलेगा.......

इतने में पत्नी बोल उठी—कितने रुपये हैं उन लोगों के पास?

"यही बीस हज़ार।"

"हाँ आँ....." जैसे उसे विश्वास न आया!

ठाकुर बोले—अरे! २० हज़ार से क्या होता है? सारा ज़िला अकाल से पीड़ित है। हज़ारों आदमी अन्न-वस्त्र बिना मरे जा रहे हैं। और बेचारे जानवर! उनकी दशा कौन जाने? गाँव के गाँव सूने पड़े हैं। हाँ अपने ही गाँव में देखो न। एक तिहाई भी गायें नहीं रहीं।

और यह कहते कहते ठाकुर के दिल में अपनी ... भी उठी—हम भी ग़रीब हैं। अन्न नहीं, वस्त्र नहीं। ... गायें थीं; एक मर गई। दो न जाने, कहाँ चली ... कौन ढूँढ़े.......?

ठाकुर भी काँप उठे—गायें न होकर लड़की ... तो सारा देश छान डालता। उनके लिए बाहर भी ... गया।

पत्नी भी यही सोचती कि यदि ढूँढ़ भी लाते ... खिलाते क्या। वे भूख से मरतीं! अच्छा है, हम ... मरते न देखेंगे। वह कहने लगी—सुना है, लोग ... गायें शहर ले जाते हैं। दो-दो तीन-तीन रुपये में ... देते हैं या यों ही छोड़ आते हैं।

ठाकुर बोले—हाँ। मुफ़्त भी तो लोग नहीं ... रहे हैं। सब गायें कसाइयों के हाथ पड़ती हैं।

बोलते बोलते ठाकुर काँप उठे—हमारी गायें भी ....।

पत्नी भी काँपी—हमारी गायें भी ....

तब ग्लानि, लज्जा और करुणा से दोनों के हृदय ... आये। पत्नी बोली—रोटी लाऊँ?

"नहीं।"

और तब दोनों चुप, पर हृदय दोनों के न जाने ... उमड़-घुमड़कर प्रश्न पर प्रश्न करते चले गये। ठा... एकदम बोल उठे—भीम, की बात सुनी तुमने?

"क्या?" जैसे वह जानती ही न हो!

"पहले उसका जी ललचा होगा। एक कोट ... लाये। फिर जाकर बोले—बापू! ग़लती से एक ... ले गया था। आख़िर ठाकुर-बच्चा है।" कहते ... ठाकुर गर्व से भरकर पिघल चले। आँखों में ... भर आये। पत्नी ने यह सब देखा। आत्माभिमान ... उसकी छाती भी फूल उठी पर.......।

वह बोली—कल के लिए अनाज नहीं है।

ठाकुर जैसे चौंक पड़े। बोले—यह मेरे सोचने ... बात नहीं है।

पत्नी जैसे हँस पड़ी—और कौन सोचेगा, सुनूँ तो ...

"भगवान् सोचेगा।"

"भगवान् तो सभी के हैं। कितना अकाल पड़ा है? उन सबके लिए क्यों नहीं सोचते?"

"सोचते क्यों नहीं? देश भर उनके लिए पागल है यह भगवान् की ही तो आज्ञा है।"

पत्नी के दिल में कहने को बहुत कुछ था पर जानती थी कि वह तर्क में ठाकुर से जीतेगी नहीं। इससे चुप हो गई। मन में उसने कहा—भगवान् सोचे, यही तो मैं भी चाहती हूँ।

(३)

उसी रात को।

ठाकुर सोते सोते चौंक पड़े—कल के लिए घर में अनाज है ही नहीं नहीं है। तो मैं क्या करूँ? और उन्होंने आँखें मींचकर करवट बदली, पर नींद बुलाने पर भी नहीं आई। फिर न जाने किसने कहा—तुम भूखे मर सकते हो, पर भीम है, उसकी मा है।

ठाकुर उठकर बैठ गये। उस निपट अँधेरी कोठरी में उन्हें न जाने क्या दिखाई देने लगा। उस काले अँधेरे में ही अनाज की अनेक बोरियाँ आकर बिखर गईं। किसी ने कहा—लो ठाकुर! तुम भी लो। तुम भूखे हो।

"नहीं, नहीं! मैं दान नहीं लूँगा! मैं ठाकुर हूँ।" ठाकुर जैसे आप ही आप फुस फुस कर उठे!

यह दृश्य बदला और पत्नी की छाया-मूर्ति पास आती नज़र आई। उसने कहा—कल से फिर उपवास की बारी है। अपनी तो चिन्ता नहीं, पर भीम क्या करेगा?

"मैं नहीं जानता"—ठाकुर फिर फुस फुस कर उठे।

"मैं नहीं जानता"—न जाने किसने कहा और फिर चारों तरफ़ से "मैं नहीं जानता।" "मैं नहीं जानता" सुन पड़ने लगा। ठाकुर काँप उठे। उन्होंने कानों में उँगलियाँ दे लीं। तभी देखा, सामने कोई है।

कौन? उन्होंने पहचाना और दूसरे ही क्षण पहचान कर वे घबरा उठे। उन्होंने कहा—अरे! यह तो भीम है—संज्ञाहीन स्थिर!

"यह भूख से मरनेवाला है"—न जाने कौन बोल उठा!

"नहीं, नहीं!"—ठाकुर घिघिया कर बोले। वाणी उनकी पूरी खुली नहीं, पर हृदय रो उठा—"भीम नहीं मर सकता, कभी नहीं मर सकता।"

और जैसे वह दृश्य भी ग़ायब हो गया। ठाकुर ने आँखें फाड़ फाड़कर देखा—कुछ भी नहीं, केवल अन्धकार, निपट काला अन्धकार था, मानो उसी की साकार मूर्ति से वे बोल रहे थे। मन उनका बहुत भारी होगया—पास की कोठरी में अनाज की बोरियाँ भरी हैं और मैं भूख की बात सोचता हूँ। न जाने कितनों को मैंने अन्न दिया। उन्होंने मुझे झुक झुक कर जुहार की, आशीर्वाद दिये। और मैं ऐसा हतभाग्य कि बेटे को भूख से मरते देखूँ!

"उस लम्बी सूची म एक नाम और जोड़कर तुम भी अन्न ले सकते हो। कौन देखता है?" यह सोचते सोचते ठाकुर काँप उठे। उन्होंने कहा—नहीं, नहीं।

तभी जान पड़ा कि पास की कोठरी में कोई है। ठाकुर चौंक पड़े—अवश्य कोई चोर है। अनाज चुराने आया है। मन उनका घृणा से भर गया। माँगने पर मिलता है, फिर भी चोरी करते हैं।

बस ठाकुर के सब विचार नष्ट होगये और उन्होंने लालटेन जला ली। चाँदनी में उन्होंने देखा—यहाँ कोई नहीं है। अवश्य ही अनाजवाली कोठरी में है। वे लाठी लेकर उधर ही बढ़े कि देहली पर पहुँचते पहुँचते उनका शरीर थर थर काँप उठा। आँखें फाड़ कर उन्होंने देखा—सामने एक पलिया में अनाज भरे पत्नी खड़ी है। उन्होंने कहा—तुम! क्रोध से जैसे वे फट पड़े!

पत्नी भय से जड़वत् हो गई, मानो लज्जा और ग्लानि उस पर फटी पड़ने लगी, जैसे ज़मीन फटे तो वह समा जाय। वह नीची दृष्टि किये खड़ी की खड़ी रह गई। लेकिन आश्चर्य! क्षण बीतते बीतते ठाकुर का क्रोध न जाने कहाँ उड़ गया! वे मन को हलका कर हिल उठे। बोले—आओ!

पत्नी भी हिली। आँखों से जलधारा बहने लगी। इतना ही बोली—केवल भीम के लिए........।

"जानता हूँ"—ठाकुर बहुत ही नम्र हो रहे थे। इस नम्रता ने पत्नी को और भी हिला दिया। चकित-सी वह उन्हें देखती ही रह गई।

ठाकुर लालटेन रखकर बोले—तुम्हें अचरज होगा, मैं भी सोच रहा था कि सूची में एक नाम बढ़ा कर अनाज क्यों न ले लूँ ? और कहते कहते ठाकुर बड़े ज़ोर से हँस पड़े, लेकिन हँसी ऐसी कि रुदन से पूर्ण थी।

पत्नी बिना बोले एक टक उन्हें देखती रही !

वे फिर बोले—सुनो भीम की अम्मा ! यह क्या हुआ इस पर अब विचार न करके हमें कुछ करना होगा ! नहीं तो न जाने कब क्या पाप हमसे हो जाय ? पास के गाँव में जो कताई होती है वहाँ तुम जा सकती हो। मैं भी सड़क बनाने का काम देखूँगा।

पत्नी ने ठाकुर की आँखों में झाँक कर देखा। उनमें विवशता नहीं थी, दृढ़ता थी। वह बोली—मैं जाऊँगी।

और वह अपनी खाट पर न जाकर वहीं ठाकुर के पैरों के पास बैठ गई।

कवि का असन्तोष !

लेखिका, श्रीमती सुमित्राकुमारी सिनहा

जीवन के पहले ही चरण से रो रोकर हँसना सीखा।
नन्हें से उर के बदले जीवन भर मर मिटना सीखा।
अरमानों की डगमग गति से अनुदिन बस चलना सीखा।
मदिर-सुरभि से सने प्यार के सपनों से छलना सीखा।

उर-घावों की पीड़ा में ढो ढो भर पाहन-भार लिये।
जीवन में लांछना-भरे अपमानों का उपहार लिये।
चिर दिन मन में प्यास नयन में अविरल जल की धार लिये।
चलते जाना, मुरझाते अरमानों का संसार लिये।

पाया क्या, जग से क्षण भर को हँसने का वरदान कभी !
पाया क्या, अपने दुख के सपनों का भी अभिमान कभी।
पाया क्या, मर मिट कर भी समवेदन या सम्मान कभी।
पाया क्या, सरिता की लहरों-सा मृदु कल-कल गान कभी।

कौन सका लख, कैसी कंटक-राजि खड़ी किसके मग में ?
कौन सका लख, रोते, कितने छाले फूट किसी पग में ?
कौन सका लख, आग लगी कैसी किसके उजड़े जग में ?
कौन सका लख, रत्नाकर हैं खेल रहे कितने दृग में ?

कब मुरझा कर गिर पड़ने को किसी चरण की धूल मिली ?
कब किस उर के प्यार-भरे संकेतों की मृदु भूल मिली ?
कब डगमग नैया को जग-सागर में दिशि अनुकूल मिली ?
कब आशा-परियों की सुरधनु-रंजित चारु दुकूल मिली ?
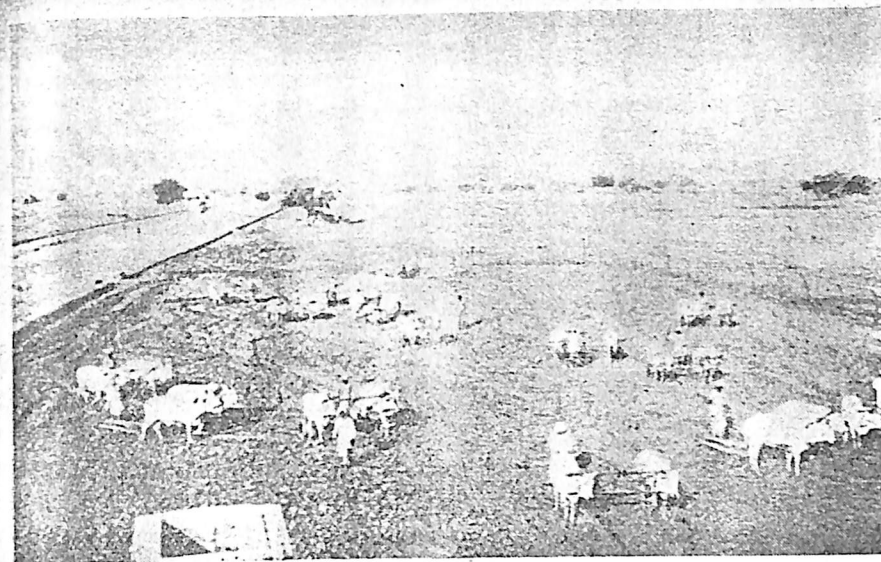
[इन्स्टीटयूट के एक खेत का दृश्य—सिरावन चल रहा है।]

भारत-सरकार का कृषि-अनुसंधानालय

लेखक, श्रीयुत आत्मानन्द मिश्र, एम० ए०, बी० एस-सी०, एल-एल० बी०

भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। यहाँ के लगभग सत्तर प्रतिशत लोग गाँव में रहते हैं। अतएव यहाँ कृषि-सम्बन्धी अनुसन्धान की व्यवस्था करना परमावश्यक है। भारत-सरकार ने एक कृषि-अनुसन्धानालय खोल रक्खा है, जो इम्पीरियल एग्रीकलचरल इन्स्टीट्यूट के नाम से प्रसिद्ध है। गत तेंतीस वर्ष से इस संस्था ने अपनी उपयोगी खोजों-द्वारा देश की खेती में बहुत कुछ सुधार किया है, जिसमें पैदावार में उन्नति, खेती करने के खर्च में कमी, अनाज की व्यावसायिक तथा स्वास्थ्य-वर्द्धक गुणों में वृद्धि तथा दुधारु पशुओं की नस्ल में बहुत कुछ उन्नति हुई है।

भारत-सरकार ने सन् १९०५ में बिहार-प्रान्त के पूसा नगर में यह इन्स्टीटयूट खोला था। इसके संस्थापन का श्रेय उस समय के भारतवर्ष के वाइसराय लार्ड कर्ज़न तथा शिकागो के दानी श्री हेनरी फ़िप्स को है। इस परोपकारी वृत्तिवाले अमेरिकन ने इन्स्टीट्यूट को लगभग साढ़े चार लाख रुपया दिया था। अतएव इसी के नाम पर इन्स्टीटयूट की प्रयोगशाला 'फ़िप्स लेबरेटरी' कहलाई। उस समय भारतवर्ष में यह संस्था अपने ढंग की एक ही थी। इसने तीस वर्ष तक कृषि में क्रान्तिकारी अनुसन्धान किये, किन्तु गत बिहार-भूकम्प में १५ जनवरी सन् १९३५ को इन्स्टीट्यूट की इमारत के आरपार दो बड़ी गहरी और भयानक दरारें हो गई, जिससे उसके दो विभागों की इमारत की नींव ऐसी फट गई कि उसने इमारत को बेकाम कर दिया। बहुत सोच-विचार के पश्चात् इन्स्टीटयूट को दिल्ली में बनवाने की राय हुई। केन्द्र होने के कारण सभी स्थानों के लिए दिल्ली सुगम थी तथा वहाँ की भूमि और मिट्टी बहुत ही उपयुक्त दिखाई दी। आब-हवा सूखी और तर दोनों प्रकार की
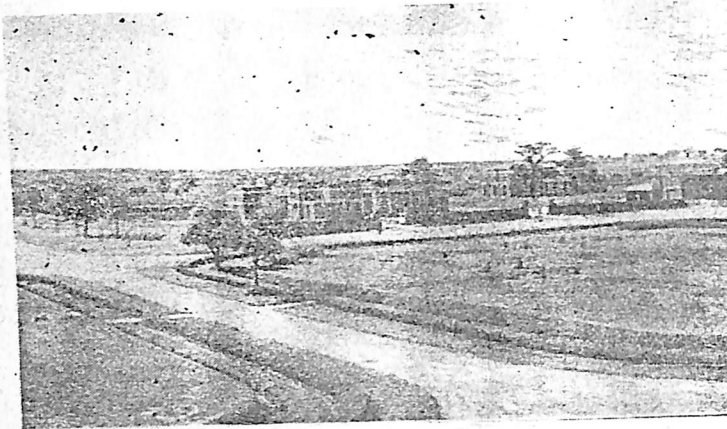
[दिल्ली के इन्स्टीटयूट का एक दृश्य]

होने के कारण पूसा से कहीं अधिक उत्तम थी, जिससे अन्यान्य प्रकार के अनाजों पर प्रयोग करने की पर्याप्त सहायता मिलने की सम्भावना जान पड़ी। अतएव फ़रवरी सन् १९३५ में लार्ड विलिङ्गडन ने नये भवन का दिल्ली में शिलान्यास किया तथा उसके दो वर्ष पश्चात् ७ नवम्बर सन् १९३७ को इन्स्टीटयूट को मारक्वीज आफ़ लिनलिथगो ने खोला।

इन्स्टीटयूट को पूसा से दिल्ली ले जाना १३०० की आबादी के एक गाँव को चल-अचल सामग्रीयुक्त एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर बसाना था। मनुष्यों, पशुओं तथा पौधों के खाने-पीने, स्वास्थ्य, देख-रेख आदि का प्रबन्ध एक साथ ही तीन स्थानों पर—पूसा में, मार्ग में रेल पर तथा दिल्ली में—करना पड़ा था। तब कहीं यह दुष्कर कार्य चार-पाँच महीने में समाप्त हो सका था। व्यय के लिए रुपये का प्रबन्ध पूसा की समस्त भूमि में गन्ने बुवा और बेच कर किया गया था।

दिल्ली का नया इन्स्टीट्यूट—नया इन्स्टीटयूट नई दिल्ली के करनाल स्टेशन के आस-पास आठ सौ एकड़ भूमि में बसा हुआ है। इसमें लगभग २७५ एकड़ भूमि में इमारतें और चरागाह है और शेष भूमि कृषि-अनुसन्धान के लिए छोटे छोटे खेतों में बाँट दी गई है। इन खेतों में जाने के लिए सुन्दर सड़कें और फाटक बने हैं तथा सींचने के लिए यमुना नदी का पानी भोला भटियारी घाट से पाइप, नालियों और झरनों के द्वारा खेतों तक पहुँचाया जाता है।

अनुसन्धानालय एक मंज़िले बने हैं और पूसा की भाँति सब एक ही इमारत में नहीं रक्खे गये हैं। प्रत्येक विभाग का भवन अलग अलग बना है। इनमें अनुसन्धान के लिए बहुमूल्य आधुनिक यंत्र तथा वैज्ञानिक सामग्री एकत्र की गई है। कार्यकर्ताओं के निवास-स्थान बहुत ही उत्तम और सुविधाजनक बनाये गये हैं।

इन्स्टीटयूट का पुस्तकालय केन्द्र में स्थित एक सुन्दर विशाल भवन में है, जिसमें लगभग दो लाख पुस्तकों के रखने की व्यवस्था की गई है। इन्स्टीटयूट के द्वारा प्रकाशित ५०० से ऊपर पुस्तकों के अतिरिक्त इसमें अन्यान्य देशों की अमूल्य कृषि-सम्बन्धी पोथियाँ, पत्र-पत्रिकायें, वैज्ञानिक सभाओं की रिपोर्टें तथा बुलेटिन आदि रक्खी जाती हैं, जिनकी संख्या ७०,००० से अधिक ही होगी। उच्च अध्ययन के लिए यह पुस्तकालय कृषि-साहित्य की दृष्टि से पूर्वी देशों में सर्वोत्तम समझा जाता है। इसमें एक विशाल वाचनालय भी है, जो आठ बजे सवेरे से आठ बजे रात तक पढ़ने के लिए खुला रहता है।

विभिन्न विभाग

कृषि-विभाग—दक्षिणी चहारदीवारी के निकट बनी इसकी इमारत दो भागों में विभाजित है। एक में आधुनिक सुविधाओं से युक्त गोशाला, पशु-चिकित्सालय, रोगी-गृह, पशु-व्यायामशाला, बछड़ों को रखने के सन्दूक तथा साँड़-दौड़ का स्थान है। इसमें केवल साहीवाल पशु रक्खे जाते हैं। दूसरे भाग में बीजों के रखने का स्थान, गोदाम, औज़ार रखने का कमरा तथा टूटी-फूटी वस्तुओं की मरम्मत करने का कारखाना है। इसके साथ ही खेती और प्रयोग के लिए ४७५ एकड़ भूमि है, जहाँ की मिट्टी इतनी उत्तम है कि उसमें सभी प्रकार के अन्न बोये जा सकते हैं।

[इन्स्टीटयूट का लिनलिथगो-पुस्तकालय]

वनस्पति-विभाग—इसकी प्रयोगशालायें उत्तम वैज्ञानिक यंत्रों से सुसज्जित हैं, जिनमें पौधों की उत्पत्ति-सम्बन्धी अनुसन्धान हुआ करता है तथा अधिकाधिक लाभदायक नये अनाजों की खोज की जाती है। गेहूँ, जौ, मक्का, आलू, दाल, तेलहन तथा तम्बाकू के पालन-पोषण की सबसे अधिक उपयुक्त रीतियों पर प्रयोग करने के लिए पचास एकड़ भूमि इस विभाग के पास है, जो बीजों को अधिक से अधिक गुणकारी बनाने का प्रयत्न कर रहा है।

रसायन-विभाग—यह विभाग बहुत बड़ा है। इसके अन्तर्गत रासायनिक विश्लेषण, सूक्ष्म जीव-विद्या, भूमि-विज्ञान, पदार्थ-विज्ञान तथा जीवधारी और पौधों की रासायनिक खोज के लिए अलग अलग प्रयोगशालायें बनाकर उत्तम व्यवस्था की गई है। इसमें समतापक्रम रखने के लिए एक भुईंधरा, ठंडा कमरा, फ़ोटोग्राफ़ी का अँधेरा कमरा तथा मरम्मत करने के लिए कारखाना है। इस विभाग की दो विशेषतायें हैं—इसमें खेती से नष्ट-भ्रष्ट होनेवाले पदार्थों का उचित उपयोग करने तथा खाद्य अन्नों के स्वास्थ्य-वर्द्धक गुणों को बढ़ाने का यत्न करने के लिए पर्याप्त व्यवस्था है। इसमें उपजाऊ मिट्टी और कीटाणु पर भी खोज होती है।

कृषि-अध्ययन-विभाग—इसमें फ़सल को हानि पहुँचानेवाले कीड़े-मकोड़ों का अध्ययन होता है। विभिन्न प्रकार के कीड़ों की खोज करने के लिए एक कमरा अलग बना दिया गया है, जिनमें अनेक प्रकार के कीड़े पाले जाते हैं। अनुमान किया जाता है कि लगभग १०,००० प्रकार के विभिन्न कीड़े फ़सलों को नष्ट करते हैं। इसी में एक और विभाग है, जो इन कीड़ों के भक्षक कीड़ों की खोज करता है, जिससे फ़सल नष्टकर्ता दूसरे पराश्रयी कीड़ों-द्वारा नष्ट कर दिये जा सकें।
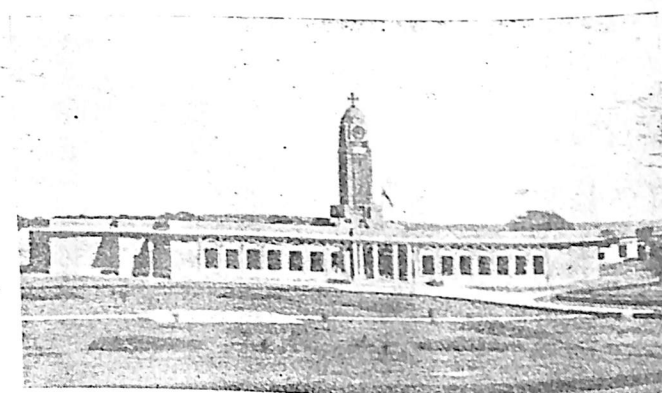
वृक्ष-रोग-विभाग—इसमें फंगी, बैक्टीरिया तथा अन्य विषैले पदार्थों की जिनके द्वारा नाज तथा फल के पौधों में नाना प्रकार की बीमारियाँ हो जाती हैं, खोज होती है। वे समस्त दशायें जो ऐसे हानिप्रद पदार्थों को बढ़ाने में सहायक होती हैं, ढूँढ़ी जा रही हैं, जिससे फ़सलें उनसे बचाई जा सकें। कई ऐसे गृह भी बनाये गये हैं, जिनके भीतर पौधों के बोने से किसी प्रकार के कीटाणु का भय नहीं रहता। यहाँ अनुसन्धान-कार्य बड़े वेग से चल रहा है।

अन्य योजनायें—कृषि-सम्बन्धी अनुसन्धानों के अतिरिक्त यह इन्स्टीटयूट निम्नांकित योजनाओं को भी आर्थिक सहायता देता है, जिसके द्वारा पर्याप्त लाभ होने की सम्भावना है।

पूसा में एक छोटा वनस्पति-अनुसन्धानालय है, जहाँ विलम्ब से तैयार होनेवाले अथवा नहरों के द्वारा सींचे जानेवाले अनाजों की पैदावार पर खोज होती है।

शिमला में सन् १९३५ में एक नई प्रयोगशाला खोली गई है, जो उत्तरी भारत में उत्तम आलू की
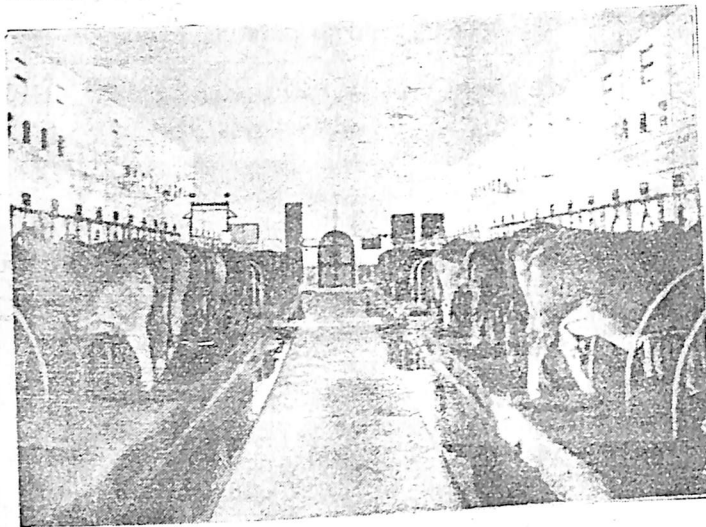
[साहीवाल गौओं की गोशाला]

खेती कराने के प्रयोग करती है। ऐसे आलू पैदा करने का प्रयत्न किया जा रहा है जिनमें जल्दी कीड़े लगने तथा सड़ने का भय नहीं होगा और वे बहुत दिनों तक टिक सकेंगे।

गन्टूर में सिगरेट बनाने की तम्बाकू तथा उसे नष्ट करनेवाले कीड़ों पर खोज हो रही है।

गन्ने की खेती में वृद्धि तथा दो प्रकार के गन्ने मिला कर गन्ने की एक नई बलिष्ठ नस्ल पैदा करने के प्रयोग कोयम्बटूर में हो रहे हैं। उत्तरी भारत की जलवायु में गन्ने पर खोज करने के लिए इस विभाग में भी एक अस्थायी प्रयोगशाला खोली गई है।

गन्ने के रोगों तथा कीड़ों का पता लगाने और फ़सल को उनसे बचाने के लिए कई अनुसन्धानालय खोले गये हैं, जो मुख्यतः पूसा, करनाल तथा कोयम्बटूर में स्थित हैं। गन्ने की रासायनिक खोज भी हो रही है।

कृषि-सम्बन्धी उच्च शिक्षा—यद्यपि इन्स्टीटचूट का मुख्य ध्येय अखिल भारतीय कृषि-समस्याओं को सुलझाना अथवा ऐसी कृषि-सम्बन्धी अनुसन्धान की व्यवस्था करना है जिनमें प्रान्तीय सरकारें असमर्थ हों, तथापि इन्स्टीटचूट ने कृषि की उच्च शिक्षा का भी प्रबन्ध किया ... विद्यार्थियों के लिए ... कालेज तथा छात्रावास ... है, जो अनेक आधुनिक ... निक सुविधाओं से सुस... बनाया गया है। ... एम० एस-सी० अथवा ... श्रेणी में उत्तीर्ण बी० ... सी० (कृषि) पास विद्या... भर्ती किये जाते हैं। ... की उपज और उत्पत्ति ... के सम्बन्ध में समग्र ... कृषि-अध्ययन, पौधों के रो... उनका निदान और निरा... रण, तथा खेत-निर्माण ... उसकी व्यवस्था आदि ... पर उच्च शिक्षा दी जा... है। यह प्रतिवर्ष आक्टोबर से आरम्भ होती है और ... वर्ष के अध्ययन के बाद परीक्षा में उत्तीर्ण होने ... विद्यार्थी इन्स्टीटचूट एसोसियेट बना लिया जाता ... इसके अतिरिक्त उन अन्य विषयों पर भी शिक्षा ... जाती है जिनकी व्यवस्था भारतवर्ष में और कहीं ... हो सकती। विभिन्न प्रान्तीय सरकारों के द्वारा ... गये उच्च अन्वेषण करनेवाले विद्यार्थियों को यहाँ ... सुविधायें दी जाती हैं।

पशु-उन्नति—इन्स्टीटचूट ने दुधारू पशुओं ... उन्नति की ओर बड़ा प्रशंसनीय कार्य ... है। पुरानी साहीवाल तथा सिंधी गायें दूध ... की दृष्टि से भारतवर्ष में सर्वश्रेष्ठ मानी ... हैं। सन् १९०४ में बड़ी खोज करने पर पंजाब ... माण्टगोमरी ज़िले में चौदह गायें और एक साँड़ ... था। धीरे धीरे उन्हीं की संख्या बढ़ाकर इन्स्टीटचूट ... चार सौ से अधिक साहीवाल गायें और साँड़ दे... विभिन्न भागों में भिजवाये हैं। उनके दूध देने ... मात्रा में भी भारी वृद्धि हुई है। सन् १९१४ में ... गायें ढाई सेर दूध देती थीं वे आज पन्द्रह सेर ... पच्चीस सेर तक देती हैं। गायों और साँड़ों ... अवस्थाओं में रखकर इस बात की खोज की ... रही है कि अधिकाधिक दूध तथा बलिष्ठ नस्ल पैदा ... के लिए किन बातों की आवश्यकता है। बछड़ों ... पोषण की अनेक रीतियाँ निकाली गई हैं, जिससे ... पर वे बलवान् गायें तथा साँड़ हो सकें।

देहाती उद्योगों की उन्नति—किसी अन्न की ... वार में उत्पन्न होनेवाले प्रत्येक अंश का सदु-... योग करने तथा उसका बाज़ारू मूल्य बढ़ाने ... लिए बड़े परिश्रम से काम हो रहा है। खेती की ... होनेवाली वस्तुओं को खाद्य में परिणत करने के ... ढंग निकाले गये हैं। गाँवों में अच्छे आलू और ... तरकारियाँ तथा उत्तम मक्खन और नेनू पैदा करने के ... सरल उपाय भी ढूँढ़े गये हैं।

गाँवों के कृषि-सम्बन्धी धन्धों को प्रोत्साहन देने ... ध्यान से गुड़ तथा गुड़ से शक्कर बनाने की रीति ... पर्याप्त उपयोगी परिवर्तन किये गये हैं। अब बिना ... किसी यंत्र-विशेष की सहायता के देहाती रीतियों के ... द्वारा ही अच्छा गुड़ और सफ़ेद शक्कर बनाई जा ... सकती है।

रेशम के कीड़ों की वृद्धि, शहतूत के वृक्षों का कीड़ों ... बचाव, तथा थोड़े खर्च में अधिक उपज कराने का ... यत्न किया जा रहा है, जिससे किसान को अधिक ... लाभ हो सके। इसी प्रकार लाख और शहद की मक्खी ... सम्बन्ध में भी खोजें हुई हैं, जिनकी सूचना ग्रामीणों को ... भाषा की पुस्तकें बाँट कर दी गई है।

अनेक प्रकार के अन्न, मिर्चें, गन्ने आदि की दो विभिन्न जातियों को मिला कर बोने से नये प्रकार के उत्तम अन्न तथा मोटे गन्ने पैदा किये गये हैं। इस प्रकार अन्न और फल की नस्ल में वृद्धि करने की उपयोगी खोज हो रही है, जिससे बड़ा और अधिक उपयोगी अन्न तथा फल पैदा हुआ करे। कोयम्बटूर में गन्ने की ऐसी नस्ल पैदा की गई है जो अधिक रसदार तथा गुणकारी प्रमाणित हुई है।

इन्स्टीट्यूट का उपयोगी कार्य—गत तीस वर्षों में सन् १९०६-१९३७ तक भारत-सरकार ने इन्स्टीटचूट पर २,८१,९१,९४८) व्यय किया है और १९३४-३५ में इन्स्टीटचूट के कार्यों से देश की कृषि से आय में ४,२३,३६,५१७) की बढ़ती हुई है। इस प्रकार इन्स्टीटचूट ने भारत को अपने ऊपर व्यय हुए तीस वर्ष के रुपये से कहीं अधिक एक वर्ष में ही चुका दिया है। कोयम्बटूर के उत्तम गन्ने के होने से पचास प्रतिशत का लाभ हुआ है। सन् १९२४ में प्रति एकड़ भूमि में ११.०५ टन गन्ना निकलता था, किन्तु इसके दस वर्ष पश्चात् यह १५.९ टन प्रति एकड़ हो गया। सन् १९३१-१९३५ में भारतवर्ष में लगभग ४,७८,००० टन शक्कर पैदा हुई और आवश्यकता पूरी करने के लिए ५,१४,००० टन शक्कर विदेश से मँगाई गई। किन्तु सन् १९३४-३५ में स्वदेश में ७,९५,००० टन उपजी और केवल २,२०,००० टन बाहर से आई। इसका श्रेय कोयम्बटूरी गन्ने के अनुसन्धान को है। इसके अतिरिक्त अन्य दिशाओं में भी इन्स्टीटचूट ने लाभप्रद कार्य किया है।

रिक्ता

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

मेनका की कामना थी कि जिस तरह चन्द्रमा का टुकड़ा सा लड़का है, उसी तरह की बहू भी परी की तरह सुन्दरी हो। परन्तु मालिक के मुँह से कोई बात न सुनने पर भी दूसरों के मुँह से उन्होंने यह सुन रक्खा था कि उनकी यह कामना पूर्ण होने की सम्भावना नहीं है। तो भी मालिक से कुछ कहने का साहस वे नहीं कर सकीं। कहतीं तो उसका कोई फल भी न होता। इतने दिनों से साथ साथ जीवन व्यतीत करती आने के कारण मेनका को इतना ज्ञान तो अवश्य हो उठा था। इसके सिवा वे यह भी जानती थीं कि बिना सोचे-समझे मालिक कोई भी काम नहीं करते। इस सम्बन्ध में भी उन्होंने कोई अच्छाई ही समझी होगी।

भाग्य को दोष देकर ही मेनका को अपने आपको सँभालना पड़ा। परन्तु मन भी कहीं किसी के वश में होता है! मनुष्य यह जानता है कि चिन्ता करने से कोई लाभ नहीं होता। फिर भी चिन्ता किये बिना वह रह नहीं सकता। वे अपने आपको समझाने लगीं। उनके मन में आया कि रूप यदि उसके नहीं है तो न सही, कुछ गुण हो तो भी अच्छा है। लड़के को किसी तरह खुश कर ले, इतना ही बहुत है। वह तो केवल देखने की ही सामग्री नहीं है कि उसके लिए सुन्दरी होना ही सबसे अधिक आवश्यक हो। किन्तु तो भी इस बात की कल्पना तक करना अच्छा नहीं मालूम पड़ता कि ऐसे सुन्दर लड़के की बहू सुन्दरी नहीं है।

मेनका को इस सौन्दर्य का ही इतना आग्रह था। बहू अत्यधिक रूपवती हो, यही उनकी एकमात्र कामना थी। तो क्या इसी लिए भगवान् ने उनकी यह कामना नहीं पूर्ण होने दी। जो अरुण शौक़ीनों का सिरताज है वही क्या रूपहीना स्त्री पसन्द करेगा?

(५)

अरुण का विवाह हो गया। किसी प्रकार का बाधा-विघ्न उपस्थित नहीं हुआ। कोई वैसी धूम-धाम हुई नहीं, इससे कुछ झंझट भी नहीं हुआ। फिर भी जो बारात में गये थे वे तृप्त होकर ही लौटे।

विवाह के दूसरे दिन वही दरिद्र गृहस्थ के घर की कन्या अरुण के साथ आकर ऐश्वर्य्य के स्वर्ग में ... हुई। लड़की कोई वैसी छोटी नहीं थी, इससे ... अवस्था का अनुभव कर लेना उसके लिए अधिक कठिन ... हुआ। भय और संकोच से वह मानो काठ हो उठी ...

विवाह के समय केवल एक बार अरुण की ... पूर्ण दृष्टि स्त्री के ऊपर पड़ी थी। उस समय ... मुख घूँघट से ढँका हुआ था। उसके दोनों हाथ ... दिखाई पड़ रहे थे, जो गोरे नहीं थे, साँवले रंग के ... अरुण के गोरे गोरे सुन्दर हाथों पर वे हाथ नितान्त ... श्रीहीन, नितान्त ही असुन्दर जान पड़ रहे थे। ... ने दाँतों से होंठ दबा कर एक कठोर हँसी हँसी ... बिजली के प्रकाश में जिस प्रकार आग रहा करती ... उसी प्रकार उसकी इस हँसी में भी अपरिमित उत्ताप ...

विदाई से कुछ समय पहले कन्या की माता ... अरुण को बुलवा भेजा था। परन्तु अरुण ने ... बैठे ही बैठे मस्तक हिलाकर वह बुलावा सुन भर ... उठकर गया नहीं।

कन्या की माता को दामाद से मिलने की ... उत्कण्ठा थी। उसने सोचा कि जो कन्या इतने ... तक मेरे हृदय का धन थी उसे आज मैं दूसरे के हाथ में सौंप रही हूँ। परन्तु अपनी गोद से अलग ... से पहले उसके सम्बन्ध में समझाकर दो-चार ... तो कह दूँ। इसी आशा से उसने अरुण को बुलवाया था। अन्त में उसकी यह आशा मन की मन में ही ... गई। दामाद से उसकी मुलाक़ात ऐसे समय में हुई ... कि विदाई की रस्म अदा करने का अवसर आ गया ... उस समय वहाँ बहुत से लोग एकत्र थे, इसलिए ... से कोई बातचीत नहीं हो सकी। आँखों में आँसू ... हुए उसने कन्या को गाड़ी पर बिठा दिया।

पण्डिताई की वृत्ति पर निर्वाह करनेवाले ...

...ण के घर की कन्या को ऐसा सुन्दर और गुणी ... मिल सका है, इसके लिए पास पड़ोस के सभी लोग ...के सौभाग्य की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे। जितने ...त्मीय स्वजन थे, जितने पड़ोसी थे, सभी वर की प्रशंसा ... द्वारा कन्या की माता के तत्काल की उत्पन्न हुई ...ह-व्यथा से पीड़ित हृदय को शान्त करने का उद्योग ...रके चले गये। उनकी बातों का प्रभाव भी अच्छा ही ...आ। दुर्गापूजा के अवसर पर बङ्गाली लोग पूजा के ...ए जो मूर्ति स्थापित करते हैं, विजयादशमी को उसका ...विसर्जन कर देने पर पूजा का गृह शून्य हो जाता है। उस ...मय उस शून्य चण्डी-मण्डप में प्रवेश करने पर केवल ... बात की कल्पना ही मन को सान्त्वना प्रदान ...रती है कि आगामी वर्ष फिर मण्डप देवी की मूर्ति ... सुशोभित होगा। इसी प्रकार केवल कन्या के भावी ... का चित्र ही माता के हृदय पर सान्त्वना के रूप ... दिखाई पड़ा।

सोहाग-रात का दिन था। मेनका स्वयं मज़दूरिनों ...और नौकरानियों को लिये हुए अरुण का कमरा सजाने ... जुटी हुई थी। पढ़ने के कमरे को शयनागार का रूप ...ने के लिए जिस समय दुनिया भर की उथल-पुथल ... मचाये हुए थी, उसी समय अरुण एक बार आया ... माता का यह उद्योग देखकर हँस पड़ा। उसने ...हा—यह क्या हो रहा है मा?

अरुण की हँसी के शब्द के साथ ही साथ मेनका ...चौंक कर देखा और बोली—तू है! तेरी इस ... की अचानक की हँसी से मैं तो चौंक पड़ी।

अरुण ने कहा—शायद आज तुम्हें कोई काम-काज ... है मा? बैठे बैठे यह सब क्या झंझट खड़ा किये ... जाओ, आराम से बैठो।

मेनका ने स्नेहपूर्ण हँसी हँसकर कहा—नहीं, ... मुझे और कोई काम-काज नहीं है। तू जा और ... लोगों को बतला दे कि तेरा वह पुराने कैटलागों ... गट्ठर कहाँ रख दिया जाय। तेरा जो नीचे का ...ने का कमरा है उसी में मैंने वह सब भेज दिया है।

"बड़ा अच्छा तो किया है! भला हमारे कमरे में ... तरह की उलट-फेर करने की क्या आवश्यकता ...था? कितनी ज़रूरी ज़रूरी चीज़ें रक्खी थीं इसमें!"

"ज़रूरी चीज़ें थीं तो क्या मैंने उन सबको खा डाला है रे? बाहर रखवा दिया है। तू छाँट छाँट कर ले न ले।" यह कह कर मेनका मेज़ पर बहू के लिए क़लम-दावात सजाने लगी।

अरुण नौकरों के सामने मुँह से कोई बात निकाल नहीं सका। परन्तु उसके मन में यह बात आई कि इस क़लम-दावात की अपेक्षा इस नई बहू को तो ग्वाले के घर का ही काम अधिक शोभा देता।

मा के पास से हट कर अरुण दालान में चला गया। वहाँ खड़े खड़े वह एक पपीते के वृक्ष की ओर ताकने लगा। एक कौवा निर्विघ्न भाव से पपीते के एक पक्के फल पर चोंच मार मार कर खा रहा था।

कनक ने आकर कहा—यहाँ क्या कर रहे हो अरुण? छोटी बुआ तुम्हारा कमरा सजा रही हैं। देखा है न तुमने? बिलकुल नये नये सामान—

अरुण ने त्योरी बदल कर कनक की ओर देखा। परन्तु उसके इस प्रकार के रोष-प्रदर्शन से कनक दबा नहीं। उसने हँसते हुए कहा—क्यों, इसमें तुम्हारे अप्रसन्न होने की कौन-सी बात है जो इस तरह घूर घूर कर मेरी ओर ताक रहे हो?

"तो क्या आँखें बन्द कर रक्खूँ? चकाचौंध तो लगी नहीं है।"

कनक ने आश्चर्य में आकर कहा—चकाचौंध क्यों लगे?

अरुण और कुछ नहीं बोला। अभिनय आक्षेप से उसका मुँह काला हो उठा।

"छिः छिः, तमाशा करने के लिए क्या तुम्हें कोई और बात नहीं मिलती?"

सोहाग-रात के लिए सजाये गये कमरे में जो पलँग बिछा था वह पायताने से लेकर सिरहाने तक फूलों से सजाया गया था। उसके ऊपर बहुत ही कोमल बिस्तर लगा था। उस बिस्तरे के कोने में लेटी हुई तरुणी सविता निस्तब्धभाव से अपने हृदय की धुकधुकाहट सुनते सुनते किसी समय अपने घूँघट के भीतर ही सो गई।

गृहस्थ-जीवन में प्रवेश करने के लिए दो तरुण प्राणी पहले-पहल मार्ग में पैर रखने जा रहे थे। इन

नव-दम्पति के प्रथम मिलन के लिए जो कमरा निर्दिष्ट किया गया था उसमें हज़ारों प्रकार की ऐसी विलासिता की सामग्रियाँ एकत्र की गई थीं जो उनके हृदय की सुप्त आकांक्षा को जाग्रत् करने में समर्थ हो सकें। कमरे की सजावट इतनी सावधानी से की गई थी कि वह स्वर्ग के ही समान अविराम सुख का आगार बन सके। लज्जा से पीड़ित सविता जब तक जाग रही थी तब तक अपनी पतली साड़ी के घूँघट के भीतर से विस्मय-विमूढ़ नेत्रों से कमरे की सजावट ही देखती रही।

सविता जितनी बार भी पैर हटाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखती उतनी ही बार उसे शायद यह अनुभव होता कि फूलों को पैरों से रौंदकर कहीं मैं अक्षम्य अपराध न कर बैठूँ। साथ ही साथ उसे अपने पिता के यहाँ के जीवन की भी याद आती थी। कहाँ यहाँ का इस तरह का ठाट-बाट, इस तरह की सजावट, और कहाँ उसके पिता के यहाँ का सीधा-सादा, शान्तिमय जीवन। यह बिजली की बत्तियों से जगमगाता हुआ, चारों ओर सजाकर लगाये गये फूलों से सुगन्धित, राजप्रासाद के ऐश्वर्य्य को भी मात करनेवाला स्थान सुखकर है या घनी छाया में बसे हुए उस छोटे से गाँव का बहुत दिन का बना हुआ छप्पर का घर, यह उसकी समझ में न आ सका।

सविता को अभी निद्रा आई थी कि एकाएक घड़घड़ के शब्द से वह जाग पड़ी। उसने दृष्टि बढ़ाकर देखा तो उसके स्वामी कमरे के बीच में खड़े हुए पैरों से धक्का दे देकर एक कोच को ठेलते ठेलते खिड़की के पास कर रहे हैं। कमरे के बीच में रक्खे हुए टेबिल पर उस समय भी बहुत बड़ा-सा ज्वेल लैम्प लप लप जल रहा था, किन्तु उनके नेत्रों की उदास दृष्टि किसी ओर भी नहीं पड़ी।

कोच को ठेलते ठेलते खिड़की के पास ले जाकर अरुण ने खट से खिड़की खोल दी। जब खिड़की खुल गई तब उसके पास उसने स्लीपर उतार दिये और कोच के ऊपर ही लेट गया। उसके श्वेत कमल के समान शोभायमान सुन्दर सुन्दर खुले हुए दोनों चरणों के ऊपर सविता की दृष्टि पड़ी। किन्तु तुरन्त ही उसने आँखें फेर लीं।

बाहर उस दिन चन्द्रमा का प्रकाश फैला हुआ था। आकाश पर लहराते हुए मेघरूपी समुद्र के भीतर से चन्द्रमा का धुँधला प्रकाश मूर्च्छाग्रस्त सुन्दरी के समान चारों ओर लोट-पोट हो रहा था। अरुण ने एक बार भी घूम कर यह नहीं देखा कि इसी कमरे में ... आग्रहपूर्ण व्याकुल दृष्टि उसी की ओर लगी हुई है।

सविता आश्चर्य्य में आकर सोच रही थी कि ... अद्भुत स्वभाव के आदमी हैं ये।

टन टन करके रात के दो बज गये। सविता का हृदय उस समय अत्यन्त ही संकुचित हो उठा। ... यह भली भाँति समझ लिया कि एक बार भी ... ओर ताके बिना ही स्वामी ने मेरे यहाँ होने की बात जान ली है। इसी लिए कोच पर पड़े पड़े रात ... रहे हैं। क्या आवश्यकता थी ऐसा करने की।

अरुण ने भी इस प्रकार रात्रि व्यतीत करने ... निश्चय इसलिए किया कि उतावली में आकर ... प्रकार का बतबढ़ाव करने से कहीं घर भर में ... शोर न मच जाय।

हाथ-पैर सिकोड़ कर बिस्तरे पर पड़े-पड़े सविता ने बची हुई रात भी काट दी।

चौथे पहर की रात में खिड़की से होकर ... के जल के संसर्ग से स्निग्ध शीतल वायु आई और ... दोनों के ही संतप्त मस्तक का चुम्बन करके ... गई।

प्रातःकाल होने पर पूर्व का आकाश जब ... भाँति साफ़ नहीं हो पाया था तभी सविता उठकर ... हुई। टेबिल पर जो लैम्प रक्खा हुआ था वह सारी रात पूरी ताक़त से जलते जलते बुझता जा रहा था ... प्रभात के मस्तक पर दीप्तिमय टीके के समान चमक रहा था केवल शुक्रतारा।

प्रातःकाल के प्रकाश में स्वामी की ओर सविता ने एक बार दृष्टि बढ़ाकर फिर देखा। अरुण उस समय भी उस कोच के ही ऊपर हाथ पर माथा रक्खे ... रहा था। उसकी आस्तीन मुड़ी हुई थी। कमल के फूल की पँखुरी के-से रंग के बलिष्ठ और मोटे ... हाथों की ओर सविता ने ध्यान से देखा। उनसे ... सौन्दर्य्य-सम्बन्धी दीनता की तुलना करके लज्जित ...

... उतावली के साथ वह द्वार के पास गई और किवाड़े को ठेला।

किवाड़ में साँकड़ नहीं लगी थी, इससे ठेलते ही वह खुल गया। सविता भी निकल कर बाहर खड़ी हुई। इतने बड़े मकान में उस समय बिलकुल सन्नाटा था। घर भर में एक भी आदमी जाग नहीं रहा था। सविता दालान की रेलिंग पकड़े हुए खड़ी रही। रेलिंग के अगल-बग़ल टबों में जो फूलों के वृक्ष लगे थे उनमें दो-एक विदेशी फूल खिले थे।

ज़रा देर के बाद मेनका उठ कर दालान में आई और कहने लगी—अभी उठ गई हो बहू? इतने सबेरे?

सविता मुँह नीचा किये हुए खड़ी रही। मेनका पूछने ही जा रही थी कि अरुण उठा या नहीं, ठीक उसी समय वह कमरे से निकला और सीधा बाहर चला गया।

मेनका पुत्र की ओर देखकर सोचने लगी—ऐं, अरुण का मुख वैसा प्रसन्न कहाँ है? कल जिसका विवाह हुआ है, आज उसके मुख पर आनन्द की ज़रा-सी रेखा तक क्यों नहीं झलकती हुई दिखाई पड़ रही है? क्या लज्जा के कारण? न, लज्जा इसे तो कहते नहीं।

मेनका का मुस्कराहट से खिला हुआ प्रसन्न मुख चिन्ता के मारे काला हो उठा। इधर सविता के भाग्य-रूपी आकाश पर जो उमड़-घुमड़ मची थी, उसने ज़ोर पकड़ कर उसे और भी भयभीत कर दिया।

(६)

सविता बहुत सुन्दरी नहीं थी। परन्तु उसे कुरूप भी नहीं कह सकते थे। उसका मुख ज़रा अधिक साफ़ था। बड़ी बड़ी आँखें उसकी शरद्-ऋतु के प्रातःकाल के नीले नीले कमल के समान, सुन्दर-स्वच्छ बड़ी बड़ी, और बुद्धि की आभा से उज्ज्वल थीं।

सविता इस समृद्धिशाली परिवार में दरिद्र के घर से आई थी। परन्तु सदा की दरिद्र वह नहीं थी। उसके पितामह गाँव के पण्डित थे। आध्यात्मिक उन्नति की ओर वे जितना आग्रह प्रदर्शित किया करते थे, उतना ध्यान वे घर-गृहस्थी की ओर नहीं दे पाते थे। परन्तु अपनी एकमात्र कन्या का विवाह उन्होंने उत्तम घर-वर देख कर किया था।

सविता के पिता जिस वर्ष डिप्टी मैजिस्ट्रेट होकर राँची गये थे, उसी वर्ष उसने जन्म ग्रहण किया था, उस समय सभी लोग उसका आदर करते थे, कहते थे कि इस बालिका में बड़े उत्तम लक्षण हैं। परन्तु उसका यह आदर, यह लाड़-प्यार, अधिक दिनों तक न रह सका। सात वर्ष की ही अवस्था में पितृ-हीन होकर माता के साथ वह नाना के यहाँ लौट आई।

सविता के पिता के यहाँ की अवस्था उस समय भी अच्छी थी। पितामह की मृत्यु हो चुकी थी। चाचा लोग थे, परन्तु कन्या के विवाह के झंझट से बचने के विचार से उन लोगों ने विधवा भौजाई की आज तक कोई खोज-ख़बर नहीं ली। परन्तु यह विवाह पक्का हो जाने की ख़बर जब उन्हें मिली तब उनके स्नेह का समुद्र एकाएक लहरा उठा। उन्होंने आदमी और चिट्ठी भेजकर सूचित किया कि सविता के पिता नहीं हैं, यह हमारे लिए बड़े दुर्भाग्य की बात है। परन्तु वह कन्या तो हमारी ही है। उसका विवाह पिता-पितामह के घर पर न हो सकेगा, इसका हमें दुःख है।

सविता की माता ने बड़े तेजस्वितापूर्ण शब्दों में उत्तर दिया—आप लोगों को चाहे कितना ही दुःख क्यों न हो, किन्तु इस ग़रीब और अनाथिनी की कन्या का विवाह उसी तरह होगा, जिस तरह एक ग़रीब की कन्या का विवाह होता है।

भौजाई का इस तरह का उत्तर मिल जाने पर देवरों ने लोक-लज्जा से छुटकारा ले लिया। इतने दिनों तक तो कन्या के विवाह के ख़र्च से बचने के लिए वे रास्ता ही बचाते आये थे। आज यह पत्र मिल जाने पर उन लोगों ने दस आदमियों को दिखलाया और कहा कि विधवा भौजाई जब इस तरह का रूखा व्यवहार कर रही है तब इसमें हमारी क्या ज़िम्मेदारी है। यह कारण दिखला कर देवर लोगों ने सिद्ध कर दिया कि उदासीन रहने के लिए हम बाध्य हैं।

देवरों का उदासीन रहना भी एक प्रकार से ठीक ही था, कुछ ग़लत नहीं था। एक अनाथिनी विधवा की इतनी लम्बी लम्बी बातों का खोंचा कौन सह सकता था? परन्तु सविता की मा को इसका ध्यान नहीं था। उसमें ऐसा एक तेज था। उत्तराधिकार

के रूप में सविता ने भी माता का यह तेज कुछ कुछ प्राप्त किया था।

माता का-सा तेज प्राप्त करके सविता अहङ्कारिणी हो गई थी, यह बात नहीं थी। उसमें जो कुछ तेज था, वह और प्रकार का था। अहङ्कार नहीं था, कोई और ही चीज थी। रूपहीन होने के कारण स्वामी के हृदय में वह जरा भी स्थान नहीं प्राप्त कर सकी। तब उसकी अवस्था उस पथश्रान्त पथिक की-सी हो गई जो अपने स्थान से खदेड़ भगाये जाने पर एक देश की मायाः आजन्म के लिए छोड़कर दूसरे देश में जाता है, परन्तु वहाँ भी वह देखता है कि मेरे लिए सभी द्वार बन्द हैं।

उस समय भी अरुण के समस्त हृदय पर अधिकार किये वही एक दिन का देखा हुआ, सुन्दर, हँसता हुआ मुख लोट-पोट किया करता था। काले भौंरे की तरह के लीला से चञ्चल उसके दोनों नेत्रों के सामने सविता की शान्त नम्र दृष्टि को निमेष भर में ही पराभव स्वीकार कर लेना पड़ता। इसके सिवा उसकी जो दृष्टि थी उसे ही आँख उठाकर देखनेवाला कौन था?

विवाह हुए एक मास व्यतीत हो चुका था। अरुण अपने कलकत्तेवाले स्थान को चला गया था। उस सोहागरात के दिन के बाद उसने स्त्री को फिर कभी देखा तक नहीं।

मेनका यह बात जानती थी। परन्तु लोगों से उसने इसे और तरह से बतलाया। उसने कहा—मालिक की यह इच्छा नहीं है कि पढ़ने के समय लड़का और बहू एक-दूसरे से अधिक मिलें-जुलें। उसकी इस बात से सविता के दुर्भाग्य की लज्जा बहुत कुछ ढँकी तो रहती, किन्तु सभी लोग इस बात पर विश्वास नहीं कर पाते थे।

परीक्षा समीप ही थी। अरुण यह कहकर कि घर में रहने से पढ़ने-लिखने में व्याघात होगा, कलकत्ते चला गया। उसकी यात्रा के समय सविता दोमंजिलेवाले कमरे की खिड़की के सींखचे पकड़ कर खड़ी हुई। नीचेवाली सीढ़ी के सामने आकर गाड़ी खड़ी हुई।

माता-पिता को प्रणाम करके मुस्कराता हुआ अरुण जाकर गाड़ी पर बैठा। सोने के चश्मे से ढँकी उसकी आँखों की हँसती हुई दृष्टि यदि एक बार ... की ओर उठती तो वह देख पाती कि वहाँ जो व्य... पूर्ण, व्याकुल मुख है उसका समस्त रक्त उतर ... है—किस तरह पीला होगया है वह मुँह।

मेनका के ऊपर पहुँचने से पहले ही सविता ... अञ्चल से अपनी डबडबाई हुई आँखों को पोंछ ... और उतावली के साथ दौड़ती हुई वह छोटे बच्चे ... प्यार करने को बैठ गई। इस घर में वह नन्हा ... बच्चा ही उसका एकमात्र मित्र हो गया था। जब ... भी वह अवसर पाती, उस बच्चे को ही लेकर बैठती।

मेनका ने सीढ़ी से होकर ऊपर जाते जाते कहा—ओ सविता, बच्चे को दूध पिलाने का समय बीत गया ... शीशी में जरा सा दूध तो भर दो। जरा जल्दी करना।

सविता उस समय शीशी में दूध भर कर बच्चे को दूध ही पिला रही थी। उसे ऐसा करते देख कर ... मेनका सन्तुष्ट नहीं हुई। उसने मुँह को गम्भीर बना ... कहा—ओह तुम दूध पिला रही हो?

मेनका के मुख की ओर देखकर सविता अवाक् ... गई। वह सोचने लगी कि दूध पिलाने के समय मैं ... पिला रही हूँ, यह भी क्या मेरा कोई अपराध है ... तुरन्त ही उसके मन में यह भाव आया कि अभी लड़के ... परदेश के लिए विदा किये आ रही हैं, इसी लिए मालकिन का मुँह गम्भीर हो गया है।

बच्चे को दूध पिलाने के बाद उसे गोद में लि... सविता अपने कमरे में गई। सविता जब यहाँ आई ... उससे पहले उस कमरे में अकेले अरुण का ही अधि... था। उस समय भी कमरे की दीवारों पर उसका ... कुछ चिह्न अङ्कित था।

कमरे की एक ओर की दीवार पर तीन भाई ब... का फ़ोटो टँगा हुआ था। वह चित्र इन सबके छुटपन ... था। एक बग़ल में अरुण था, दूसरी बग़ल में शुभें... बीच में फ़राक पहने हुए, मस्तक के बालों को ... रिबन से बाँधे हुए बालिका कमला थी।

सविता ने कमला को देखा नहीं था। गोद में ... उसी के बच्चे को लिये हुए थी। फ़ोटो में कमला को ... देखने पर वह उससे उसका मिलान करने लगी। एक ... गोद के सुन्दर, हृष्ट पुष्ट बालक की ओर देख लेती, ...के बाद ही वह फ़ोटो में उसकी दिवंगत माता का रूप ...ती। इस प्रकार माता पुत्र के रूप की तुलना करने ... उसे बड़ा आनन्द आ रहा था।

जरा देर के बाद बच्चे की दाई आई। वह बच्चे ... टहलाने के लिए ले जानेवाली थी। फूल के एक ...छे की तरह के बच्चे को छाती से लगाकर सविता ... उसका मुँह चूमा और उसे दाई की गोद में दे दिया। ...के बाद खाली हाथ वह चुपचाप खाट पर बैठी रही।

कमरे में दूसरी ओर अरुण का साल भर पहले ... एक फ़ोटो था। उसे देख कर वह स्वामी को जरा-... पहचानने की कोशिश करने लगी।

फ़ोटो की छाया अलमारी के आइने पर पड़ रही थी। वह मुख तो इस तरह अकाल में ही गम्भीर होकर आभाहीन नहीं हो उठा था। सविता ने इस घर की एक पुरानी मजदूरिन से सुना था कि यह फ़ोटो अरुण ने कमला के विवाह के दूसरे दिन खिचवाया था। उस समय उसने हँसते हँसते यह भी कहा था कि एक फ़ोटो मैं खिचवाऊँगा अपने विवाह के दूसरे दिन।

और भी कुछ दिन बीत गये। बाहर की कोई बात बहुधा सविता के कानों तक नहीं आ पाती थी। वह यह नहीं समझ पाती थी कि मेरे नाना ने आज तक मुझे ले जाने का नाम तक क्यों नहीं लिया।

मानव से

लेखक, श्रीयुत त्रिलोचन

नर रे!

तम में द्युति में आया बस कर
बीता, जीता सुधि-साहस कर
स्वर पर निर्भर; स्वर-जीव अपर
जग देख रहा तुझको आया,
भर मुखर-तृपा की लहर अधर रे!

जीवन की बाधायें तरते
अपने अधिकारों पर मरते
सबने परखा जय-तप करते
भरते धृति जागे भव-निधि में
पहुँचे पहले उस पार उतर रे!

प्रतिघात अशेष हुआ सारा
तुमने बदली अपनी धारा
दिखलाया रंग नया—न्यारा
निज लाल रुधिर से सींच चले भू
कह जग-जीवन अमर समर रे!

जाग्रत नारियाँ

जापान में नारी-जीवन

लेखक, श्रीयुत श्यामसुन्दरलाल गुप्ता

आधुनिक जापान की स्थापना १८६८ के लगभग हुई थी, जब जागीरदारी प्रथा का अन्त कर जापान एक संयुक्त राष्ट्र बनाया गया था। आधुनिक सभ्यता का भी आगमन उसी समय से आरम्भ हुआ। युवक सम्राट् ने जहाँ सारे जापान को एक सुदृढ़ राष्ट्र बनाने के स्वप्न देखे वहाँ उनको पूरा करने में भी बड़ी ही बुद्धिमत्ता से कार्य्य किया। जापान की महिलाओं की हीन दशा देखकर भी उनसे नहीं रहा गया। सम्राट् ने उन्हें भी राष्ट्र के लिए उन्नतिशील बनाने की योजना रक्खी। उन्होंने कहा--"यदि स्त्रियों को शिक्षा दी जाय और वे बुद्धिमती हों तो हमको उनका भी आदर करना होगा।" और देश के लिए यो महिलाओं को उत्पन्न करने के विचार से उन्होंने सन् १८७१ में एक राजाज्ञा जारी की जिसके अनुसार महिलाओं का एक दल अमेरिका भेजा गया। अमेरिका भेजने का उद्देश्य था कि 'स्त्रियाँ स्वयं जाकर स्त्रियों की शिक्षा--माताओं, वहनों और लड़कियों के कर्त्तव्यों का अध्ययन करें और उनकी अच्छी बातों को अपने राष्ट्र में प्रचलित करें।' इनका सारा व्यय राज्य ने देना स्वीकार किया। जापान छोड़ने से पहले वे 'ईदो' (वर्त्तमान तोक्यो) में बुलाई गईं और प्राचीन रीति के अनुसार उन्हें राजसभा के प्रत्येक सदस्य ने लाल रंग का एक एक खूबसूरत फ़ीता भेंट किया।

[कुमारी शारदा बी० ए०। विहारशरीफ़ के प्रसिद्ध रा[illegible] सेवी नागरिक श्रीयुत महेशलाल की सुपुत्री हैं। इन्होंने पंजाब-विश्वविद्यालय से बी० ए० की परीक्षा योग्यतापूर्वक पास की है।]

इन पाँचों में सबसे छोटी 'उमेतसुदा' केवल [illegible] वर्ष की थी। लौटकर उसने तोक्यो में 'त्सुदा [illegible]

[illegible]' स्थापित किया। यह कालेज कन्याओं के लिए [illegible]त्तम विद्यालयों में से समझा जाता है और जापानी [illegible]-जीवन की जागृति में इसका बहुत बड़ा हाथ है। [illegible]२८ में जब कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर जापान आये [illegible]ब वे इस कालेज में निमन्त्रित किये गये थे। वे [illegible] कालेज को देखकर वहुत प्रसन्न हुए थे।

प्राचीन काल की रूढ़ियों को नष्टकर स्त्रियों का [illegible]माजिक स्थान ठीक करने में जापान को बहुत काफ़ी [illegible] लगा है। लगभग २० वर्ष के पश्चात् राष्ट्र में स्त्रियों [illegible] व्यक्तिगत अधिकारों को स्थान प्राप्त हुआ। १८९८ [illegible] सिविल नियमों के अनुसार उनके अधिकार ठीक तरह [illegible] किये जा सके। बहु-विवाह अनियमित ठह[illegible] गया, स्त्री की इच्छा के बिना शादी करना रोका [illegible], २० वर्ष से ऊपर की स्त्री को अपने आप [illegible] ढूँढ़ने तक का अधिकार दिया गया और वर [illegible] में परिवार के स्वामी का अधिकार नहीं रक्खा [illegible]; स्त्रियों को अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति रखने का [illegible]कार भी दिया गया और विवाहित स्त्रियों को अपने [illegible] की आज्ञा से व्यवसाय करने का अधिकार भी [illegible]।

इन नियमों, अधिकारों और सुविधाओं के कारण [illegible] की महिलाओं की बड़ी उन्नति हुई। लड़कों के [illegible] ही लड़कियों की भी प्राइमरी शिक्षा अनिवार्य [illegible] गई। इससे महिलाओं ने केवल अपने घर तथा [illegible] परिवार को अधिक उन्नतिशील नहीं बनाया, बरन [illegible]ट्रीय जागृति में बहुत अधिक हाथ बँटाया। इन अधिकारों [illegible]रिवारों में से गृहयुद्ध को मिटा दिया और उनको [illegible] उन्नत बना दिया। लड़कियों की शादियाँ अब भी [illegible] माता-पिता ही करते हैं। पर शादियाँ २० वर्ष [illegible] ऊपर की ही अवस्था में होती हैं। इसके अतिरिक्त [illegible]-लिखी होने के कारण स्त्रियाँ घर का प्रबन्ध इस [illegible]पता से करती हैं कि पति को घर के झंझटों [illegible] बिलकुल फ़ुर्सत रहती है और वस्त्र, साग-भाजी, [illegible]ज इत्यादि की फ़िक्र में उसे अपना सिर खपाने [illegible] आवश्यकता नहीं पड़ती। यही नहीं। खाली समय [illegible] स्त्रियाँ राष्ट्रीय कार्य्यों में भी पूरा सहयोग देती [illegible] जैसे, हवाई हमले के समय सारे महल्ले की रक्षा का प्रबन्ध, सैनिकों की सहायता, घायलों की सेवा-शुश्रूषा इत्यादि।

[श्रीमती ज्ञानवतीदेवी। आपने इस वर्ष हिन्दू-विश्वविद्यालय काशी से बी० ए० की परीक्षा प्राइवेट दी थी। उसमें आप सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुई हैं।]

इस प्रकार जापानी स्त्रियों ने समाज में अपना स्थान उतना ही महत्त्वपूर्ण बना लिया है जितना कि पुरुषों का है। दोनों के क्षेत्र चाहे अलग अलग हों, पर महत्त्व कम नहीं होता। महिलाओं का क्षेत्र केवल घर ही नहीं, किन्तु सारे ऐसे काम हैं कि जिन्हें वे कर सकने में समर्थ हैं। मास्टर, डाक्टर, इंजीनियर, नर्स, फ़ैक्टरी-वर्कर, टेलीफ़ोन-एक्सचेंजर, रेल, ट्राम, बस के गाइड और गार्ड इत्यादि सारे क्षेत्रों में आपको लड़कियाँ पुरुषों की ही तरह काम करती मिलेंगी। हाँ, ऐसे काम जैसे स्टील-फ़ैक्टरी, इंजिन-ड्राइवरी इत्यादि जो कठिन हैं और जिन्हें केवल पुरुष ही कर सकते हैं, वे नहीं करती हैं। इनके अतिरिक्त महिलायें राष्ट्रीय अधिकारों के लिए भी लड़ रही हैं और नित्य उनकी माँगें बढ़ती

[सुदवरी के लायन्स क्लब में होनेवाली सौन्दर्य-प्रतियोगिता में ये लड़कियाँ क्रमशः १९३९ की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरियाँ घोषित की गई हैं--(१) मिस डी कूपर (बीच में) (२) मिस डब्लू प्रेस्टन (बाई ओर) (३) मिस नैस (दाहिनी ओर)]

ही जाती है
तरह हर क्षेत्र
उन्होंने क़दम
है और अपनी
उन्नति के लिए
इतना कम समय
किया है कि
अँगरेज़ के शब्दों
"जितनी उन्नति
में ५०० वर्षों से
थी उतनी जापान
की स्त्रियों ने
वर्षों में की है
एक दूसरे अँगरेज़
२५ वर्ष बाद
तोक्यो आने पर
विचारों का
निम्नप्रकार किया

"सबसे आश्च
परिवर्तन स्कूल जाने
वाली लड़कियों और
युवतियों में
था। ढीले शरीर
और गिरे हुए
के स्थान पर
बदन और
लाल कपोल दिखाई
देते थे। सुस्त
के स्थान पर बड़े
क़दम थे। स्कूलों
अपनी नित्य प्रति
व्यायाम-शिक्षा
जापानी औसत ऊँचाई
को दो इंच बढ़ा दिया
था और उसी हिसाब
से उनके शरीर के
में भी वृद्धि हुई थी।

[श्रीमती सरोजिनी नायडू। इसी महीने में बम्बई में मद्य-निषेध के सम्बन्ध में होनेवाली महिलाओं की एक सभा में आप सभानेत्री बनी थीं।]

जापान जानता है कि यदि उसे मज़बूत बच्चे पैदा करने हैं तो मज़बूत मातायें होनी चाहिए। जापान उन्हें मज़बूत बना रहा है। जाड़ों में पहाड़ों पर बर्फ़ में 'स्की' खेलने के लिए जहाँ आपको युवक जाते मिलेंगे, वहाँ युवतियाँ भी अपनी कमर पर सामान कसे हुए जाती मिलेंगी। लड़कियाँ मोटर, हवाई रेस और दौड़ सभी में भाग लेती हैं।

इस तरह, जापान ने अपनी लड़कियों को 'माडर्न गर्ल' बनाया है। जापानी में इसे 'मोगा' कहते हैं (माडर्न का 'मो' गर्ल का 'गा' 'मोगा')। परन्तु जापान की अपनी पुरानी ख़ूबी इसमें भी है। जहाँ जापानियों में समय के अनुसार बदलने की अपूर्व शक्ति है, वहाँ उनकी अपनी बातें भी उनमें मिली रहती हैं। जापानी आँखें मूँदकर नक़ल करनेवालों में नहीं हैं। वे बदलते हैं, पर अपने आवश्यकतानुसार और केवल उन्हीं बातों में जिनमें वे अपना लाभ देखते हैं। एक 'मोगा' के बारे में ऐसा विचार कर लेना जैसा कि भारत में साधारणतया होता है, सर्वथा अनुपयुक्त ही होगा। 'माडर्न गर्ल' का कर्त्तव्य तथा परिवार के साथ उसका सम्बन्ध वही रहता है जो पहले उसकी सादी अवस्था में था। घुँघराले बाल, योरपीय जाकेट और जम्पर, पाउडर और लिपस्टिक, टोप और ऊँची एँड़ी-वाले जूते प्रयोग करने पर भी घर में उसका काम—और परिवार में उसका स्थान वही रहता है। माता-पिता की दृष्टि में वह साधारण और माता-पिता उसकी दृष्टि में साधारण, वे ही पहलेवाले रहते हैं। श्री उएनोदा नामक एक जापानी ने अपनी एक पुस्तक में 'मोगा' का वर्णन अग्रलिखित प्रकार किया है—

"पहले की जापानी लड़की कम खाती थी, शर्माकर बात करती थी और 'दूसरों के सामने स्त्रियों को हँसना शोभा नहीं देता' ऐसा समझकर बहुत कम हँसती थी। उन दिनों स्त्री-सौन्दर्य्य की सर्वोत्तम प्रतिमा वह लड़की गिनी जाती थी जिसका मुँह छोटा और चेहरा लम्बा होता था। इसे जापानी में 'उरीज़ानेगाओं' कहते हैं, जिसका अर्थ है 'खरबूज़े के बीज के समान'। परन्तु ऐसे सौन्दर्य्य के लिए अब कोई स्थान नहीं है। आज की लड़की दिल खोल कर बातें करती है, खूब खाती है और अच्छी तरह हँसती है।"

ऊपर के वर्णन से हमें जापानी 'माडर्न-गर्ल' को समझने में सहायता मिलेगी। उसे स्वाधीनता है, परन्तु उसका दुरुपयोग नहीं होता। केवल नये फ़ैशन में रहने से ही उसे माता-पिता सन्देह की दृष्टि से नहीं देखते। कार्य्यशक्ति बढ़ाने के लिए शरीर को सुसंगठित करने के लिए तथा आधुनिक संसार में सभ्य कहलाने के लिए यदि उसे अपनी पोशाक बदलनी पड़ती है तो क्या हर्ज है?

हमारी आधुनिक लड़की और जापानी मोगा में बड़ा ही भेद है। उसी योरपीय सभ्यता को जो भारतीयों के जी का जंजाल हो रही है, जापान ग्रहण करके उन्नतिशील हो रहा है। उसी अँगरेज़ी-भाषा को जिसे भारतीय सन्तानें घृणा करने लगी हैं, जापानी विद्यार्थी रात-दिन मेहनत करके पढ़ते हैं और एक स्त्री को आधुनिक विद्या और सभ्यता के प्रकाश में लाना जो भारत की स्त्रियों को पथभ्रष्ट करनेवाला कहा जाता है, जापान के लिए उन्नति का एक मूल-कारण बना हुआ है।

जापान की औद्योगिक उन्नति में मोगा लड़कियों और स्त्रियों का बहुत बड़ा हाथ है। प्रत्येक क्षेत्र में उन्होंने अपनी स्थिति को सुदृढ़ बना लिया है। सारे जापान की २७,९०,००,००० औरतों में से श्रम करके पेट पालनेवालियों की संख्या ९९,३०,००० है। यह संख्या सारे जापान के श्रमजीवियों (पुरुष और स्त्रियों) में आधे से अधिक है। इससे यह स्पष्ट है कि सारे जापान का आधे से अधिक श्रम स्त्रियों के हाथ में है।

कताई और बुनाई में सबसे अधिक काम करनेवाली स्त्रियाँ ही हैं जब कि पुरुषों की संख्या १,५८,२८[illegible] लड़कियों की १,४०,५११ है, अर्थात् पुरुषों की [illegible] ८२·४ प्रतिशत! दूसरे औद्योगिक धन्धों में जैसे [illegible] गैस, मशीन, धातु, खाद्यपदार्थ, छपाई, जिल्द[illegible] और लकड़ी-कटाई इत्यादि में पुरुषों की अपेक्षा [illegible] संख्या इतनी अधिक नहीं है, लेकिन है अधिक [illegible] इन अन्य धन्धों में वे ५३·४ प्रतिशत हैं। यह [illegible] है कि वे केवल मज़दूरी ही करती हैं, परन्तु बड़े [illegible] कार्य्यों में भी योग्यतापूर्वक सहयोग दे रही हैं। १९३१ में ३,९८६ स्त्रियाँ फ़िज़िशियन और फ़ार्मे[illegible] और १,५४,१५३ के लगभग नर्सें और दाइयाँ [illegible] १९२८ में स्त्री-अध्यापकों की संख्या ९६,०८१ [illegible] संवाद भेजने (टेलीफ़ोन इत्यादि) में ४६,७३७ [illegible] ९,४५२ स्त्रियाँ रेलवे में गार्ड, गाइड तथा [illegible] कार्य्यों में सहायता कर रही थीं। इन क्षेत्रों में हर [illegible] वे सारा कार्य्य सुन्दरता, स्वच्छतापूर्वक और साथ [illegible] योग्यतापूर्वक निबाहती हुई मिलेंगी और इनमें अधि[illegible] आपको वही 'माडर्न गर्ल' कही जानेवाली लड़कियाँ मिल[illegible] इस तरह कताई-बुनाई के अलावा इन दूसरे कामों [illegible] सबका जोड़ लगाकर देखा जाय तो जहाँ पुरुषों [illegible] संख्या ७,७४,०९८ है, वहाँ स्त्रियों की ८,८६,२३४। अर्था[illegible] ६३·४ प्रतिशत। तोक्यो की सत्रह हज़ार श्रमजीवी स्त्रि[illegible] में ७७ प्रतिशत के लगभग अपने परिवारों का भरण[illegible] करती हैं और इनमें भी अधिक संख्या 'माडर्न गर्ल' [illegible] आयु १६ और २५ के बीच के लगभग होती है, [illegible] करती हैं। इनको औसतन ३० येन (लगभग [illegible] रुपये) के लगभग वेतन मिलता है।

इस तरह हम यह भली भाँति समझ [illegible] हैं कि जापान में स्त्रियों की जितनी सहायता मिल [illegible] है वह केवल उनके उन्नतिपूर्ण ढंगों और आधु[illegible] सभ्यता को ठीक तरह अपनाने के कारण ही। प्र[illegible] क्षेत्र में वे उन्नति कर रही हैं। राजनीति में भी [illegible] तरह उन्होंने अब क़दम बढ़ाना आरम्भ किया है।

स्वर्गीय पंडित पद्मसिंह शर्मा के नाम

(१६)

दौलतपुर, डाकघर—भोजपुर
रायबरेली
१४-११-०६

प्रिय मित्र!

८ ता० का कार्ड मिला। हमारी वृद्ध माता सख्त बीमार हैं। इससे उनकी आज्ञा पाकर हम यहाँ आये हैं। उनका हाल देखकर कानपुर जायँगे।

"प्रणयिनः" पर आपने जो भाष्य रचा सो हमारी मोटी बुद्धि में ठीक ठीक नहीं आया। हमें क्या करना है। हम आपका प्रेमी "प्रणयिता" ही रहने देंगे।

योगदर्शन की आलोचना लिखी रक्खी है, किसी संख्या में अवश्य निकलेगी। कविताविषयक पद्य बहुत करके इसी महीने में निकल जायँगे। आपके भी दो एक पद्य उसमें रहेंगे। "शीत" वाला पद्य नोट कर रक्खा है। देने का वादा नहीं करते।

"निद्राकोपकषायितेव दयिता संत्यज्य दूरं गता.....
नो क्षीयते शर्वरी" भी देने लायक़ है। हमारे ख़ास मतलब की जो बात हमारे पत्र में थी उसका उत्तर आपने नहीं दिया। हम भी आपके कादियानीवाले पत्रांश का उत्तर नहीं देंगे। यहाँ एक देहाती ने हमें एक यह श्लोक कल सुनाया—

"मापपेपण मिषेण मृगाक्ष्या दोलितो बहुरतीव—
नितम्बः।
प्रोषिते प्रियतमे चिरकालं विस्मृतं—
सुरतमभ्यसतीव" ॥१॥

विनीत महावीरप्रसाद

(१७)

जुही, कानपुर
७-१२-०६

प्रणाम!

कल रात को यहाँ आये। ख़तरनाक प्लेग है। कल फिर प्रस्थान है।

शायद फ़ैज़ाबाद, गोरखपुर वग़ैरह जाकर कुछ दिन रहें। पत्र-व्यवहार कानपुर के ही पते से रहे। श्रीकण्ठचरित इस उजलत में नहीं भेज सकते।

स्थितिस्थापकता हो जाने पर कानपुर लौटकर भेजेंगे।

कोई अपना चरित (जन्मभूमि आदि का विवरण) बतलावे ही नहीं तो क्या किया जाय।

हम तो वही चाहते हैं जो आप पर लाचारी है। आप अपना फ़ोटो भेजकर, कृपा कर हमारी इस इच्छा को पूर्ण कीजिएगा। आपने नवम्बर की सरस्वती पसन्द की। चलो हमारा परिश्रम सफल हो गया।

"शुष्कस्तनी" विषयक आपका आशय हमारे से अच्छा है।

कृपा करके जब कभी श्लोक भेजा कीजिए तब उनका भाव भी लिख दिया कीजिए। "कन्थाखण्ड" को फिर लिखकर भावार्थ-सहित भेजने की दया दिखाइए। आपने जो समानार्थक संस्कृत, उर्दू, फ़ारसी के पद्य भेजे हैं, सब रक्खे हैं। सब प्रकाशित होंगे।

"माषशिम्बिवत्" का मतलब हमारे ध्यान में नहीं आता।

मुमकिन है कुछ अर्थ होता हो। स्पेन्सर का चित्र मिल सका तो ज़रूर "शिक्षा" के साथ निकाला जायगा।

विनीत महावीर

(१८)

कानपुर

२१-१-०७

प्रणाम !

कृपा-पत्र मिला। कानपुर में कहीं कहीं अभी तक प्लेग बना हुआ है। हमारे पास के एक गाँव में खूब है। उससे हम लोग अलग रहते हैं।

अब की बार अर्थशास्त्र पर एक छोटी-सी पुस्तक लिखने का विचार है। शिक्षा अभी तक हमारे ही पास है।

कविता के लिए धन्यवाद।

गवर्नमेंट की किताबें बहुधा दुबारा कम छपती हैं। Govt Central Book Depot लिखते हैं।

प्रणत

म० प्र०

(१९)

दौलतपुर

डाकघर भोजपुर (रायबरेली)

२९-४-०७

प्रियवर !

आपका कृपा-पत्र बहुत दिनों में मिला।

आजकल हम अपने गाँव में हैं। १० मार्च तक कानपुर जायँगे।

यदि विक्रमांक आपको इतना पसन्द है तो हमारी कापी आप अपने ही पास रहने दीजिए। खेद है, आपने सतसई अभी तक न देखी थी। उत्कृष्ट कविता है। ध्वनि का आकर है। लालचन्द्रिका न मालूम कहाँ मिलती है। कृष्ण कवि ने दोहों की टीका सवैयों में लिखी है। वह भी अच्छी है। एक सतसई बंगवासी-वालों ने निकाली थी, पर हमने नहीं देखी। अम्बिका-दत्त का "बिहारी बिहार" आपने देखा ही होगा। जो दो दोहे आपने भेजे, उनको अकेले क्या छापें, आप और दोहों के साथ भेजिएगा। सतसई की beates आप समझाइए। आजकल हम हाली के दीवान में जो मुक़द्दमा है पढ़ रहे हैं। खूब लिखा है। हम हाली का चित्र सरस्वती में छापना चाहते हैं।

विनीत महावीर

(२०)

चरखारी

हमीरपुर

२९-९-०७

प्रिय पण्डित जी !

बहुत दिनों में आपने हमारी खबर ली। सुनकर रंज हुआ कि आप इतने दिनों तक बीमार रहे। आशा है अब आप बिलकुल अच्छे होंगे।

बाबू साहब ने "पुनन्तु"—इत्यादि तो नहीं कहा पर क्षमा माँगी। इसी से हमने और कुछ लिखने का विचार छोड़ दिया है। "वक्तव्य" अब न छपेगा। प्रेस से वापस मँगा लिया।

कोई साहित्य-संसार में विशेष बात नहीं हुई। हाँ, "भारतमित्र" के गुप्त जी मरे, यह सुनकर दुःख हुआ। "सूनृतवादिनी" कई महीने से नहीं निकली। ... दिन में कानपुर जायँगे, वहाँ से "देवनागर" ढूंढकर भेजेंगे। उसके आजतक शायद दो ही अङ्क निकले हैं।

दुर्भिक्ष यहाँ भी पड़ना चाहता है। प्रजा त्राहि त्राहि कर रही है।

विनीत

महावीरप्रसाद

(२१)

जुही—कानपुर

२२-४-०८

प्रिय मित्र, प्रणाम,

कार्ड मिला। पं० रामदयालु की खबर सुनकर दुःख हुआ। उनसे हमारी समवेदना सूचित कीजिएगा। ईश्वर उन्हें शीघ्र अच्छा करे।

हमारा वह श्लोक दे दिया था? दो एक दिन में हमारा इरादा घर जाने का है। कोई एक हफ़्ते बाद लौटेंगे। बाणभट्ट भेजते हैं। पहुँच लिखिएगा। देखकर लौटा दीजिएगा, कोई जल्दी नहीं है। विद्यावारिधि का ... २ जिल्दों में है। बड़ा है। दाम कोई १० रु० है।

हमें दुनिया के किसी पत्र और किसी भाषा से लेख उद्धृत करने से इनकार नहीं। पर चीज़ उद्धृत करने योग्य होनी चाहिए। "वैरागी" यदि इस लायक़ हो तो भेजिए। आपने जन्मभर में एक लेख भेजा सो भी पूरा नहीं। ... करने में भी आप झंझट बतलाते हैं। वाह साहब! ... कैसे देंगे। आपको पूरा लेख भेजना पड़ेगा। ... पसन्द आवेगा तो आप अपने "उपकारी" में छाप ... लीजिएगा।

भवदीय—

म० प्र०

(२२)

दौलतपुर

डाकघर—भोजपुर

रायबरेली

१६-७-०८

प्रणाम,

आजकल हम अपने जन्म-ग्राम में हैं। ४ अगस्त को कानपुर जाने का विचार है। आपका कृपा-पत्र मिला। समानार्थक पद्यों के लिए धन्यवाद।

वे National गीत हम सरस्वती में न छापेंगे। आजकल की राजनैतिक स्थिति आपसे छिपी नहीं है। ... को सूचना दे दीजिएगा।

और सब कुशल है। पानी थोड़ा यहाँ भी बरसा। कृपा पूर्ववत् बनी रहे, यही प्रार्थना है।

भवदीय—

महावीरप्रसाद

(२३)

जुही—कानपुर

६-८-०८

प्रणाम,

... डाला शर्मा जी को।

अच्छा किया। सरस्वती को गालियाँ दे देकर ... शेर हो गये थे। सो, आपने उन्हें गीदड़ बनाने का ... किया है।

आषाढ़ के "परोपकारी" में आपके लेख को पढ़कर ... जी पर हमें बड़ी दया आई है।

कृपा करके राजवैद्य पं० रामदयालु जी से कोई ... रामबाण दवा शर्म्मा जी को भिजवाइए। ... आपका लेख पढ़कर शर्म्मा जी को ज्वर आये बिना ... रहेगा।

विनीत महावीरप्रसाद

(२४)

जुही—कानपुर

१६-८-०८

प्रणाम,

१४ का कृपा-पत्र मिला, जवाब मुख़्तसिर देंगे। पं० गिरिधर शर्मा (झालरापाटन) आज हमारे यहाँ पधारे हैं। उनके साथ अभी शहर जाते हैं। यही कारण है।

चित्र के लिए प्रेस को लिख दिया। तैयार होने पर आप "शङ्कर" के करकमलों से कविता लिखा दीजिएगा। उन्होंने "हिजड़े की मजलिस" नाम की कविता भेजी है। उसके छापने में हमें पस व पेश है। इससे शायद वे कुछ नाराज़ हो जायँ। एक बात सुनकर आश्चर्य हुआ। भक्त-राम बी० ए० को क्यों उभार रहे हैं?

वे तो आपके पास के बैठनेवाले हैं। किसी का कुछ किया न होगा। आप डरिएगा नहीं। वहाँ की नौकरी कौन लाख टके की है। जहाँ तक सम्भव होगा आपके पद्य सितम्बर में निकाल देंगे। हमें आपके श्लोक देने में उज्र नहीं। पर याद रखिए संस्कृत-श्लोकों के ज्ञाता एक ही दो हैं। आप अपना-सा हाल स . का न जानें। आपका इस बार का पद्य अशुद्ध छप गया इसका खेद है।

शङ्कर जी की कविता के संग्रह के बारे में फिर लिखेंगे।

उनकी कविता हमारे सचित्र "कविताकलाप" में निकल जाने दीजिए, फिर देखा जायगा।

सतसई की आलोचना आपको पहले सब भेजनी होगी। हम आपके सब प्रणयानुरोधों की रक्षा करते आये हैं। आपको भी हमारे इस अनुरोध की रक्षा करनी होगी।

"भू भ्रमण खण्डन" नहीं देखा।

बाणभट्ट का काम हो गया हो तो लौटाइएगा।

विनीत म० प्र०

(२५)

जुही—कानपुर

२१-८-०८

प्रणाम,

कृपा-कार्ड १-८ का मिला।

शङ्कर जी के पास कई चित्र कोई एक वर्ष से पड़े हैं। एक पर भी कविता नहीं लिखी। उर्म्मिला पर

तुरन्त लिख देंगे, यह कैसे आशा की जा सकती है ? हमने उन्हें लिख दिया है कि चित्र में वही भाव रक्खा जायगा जो आपकी कविता में होगा। आप पहिले कविता लिखिए।

"सतसईसंहार" थोड़े में पूरा करके भेजिए। हम उसे यथासम्भव शीघ्र छापना शुरू करेंगे। "परोपकारी" के बदले "सरस्वती" मिलती है या नहीं ?

भवदीय—
महावीर

(२६)

जुही—कानपुर
२४–९–०८

विनयपूर्वक निवेदनमिदम्।

ला० हरिश्चन्द्र जी आज मिले। कुछ पुड़ियाँ दीं। ४–५ दिन से हमने जल-चिकित्सा फिर शुरू की है। उसका परिणाम देखकर यह दवा खायँगे। "वाणभट्ट" मिल गया। "शङ्कर" जी को हमारी तरफ़ से धन्यवाद दीजिएगा। गौरीशङ्कर जी को सरस्वती भेजने के लिए लिख देंगे। "प्रचारक" में यदि कोई सप्रमाण, साधार, और तर्क-संगत बात हो तो कृपा करके अपनी कापी का कटिङ्ग आप ही भेज दीजिए। यदि प्रलाप मात्र हो तो जाने दीजिए।

तबीअत हमारी अभी तक वैसी ही है। घंटे आध घंटे रात को मुश्किल से नींद आती है। लाला हरिश्चन्द्र से आपकी बहुत बातें होती रहीं।

न मालूम आपके अब कब दर्शन हों।

विनीत
महावीर

(२७)

जुही—कानपुर
११–१०–०८

प्रिय पंडित जी महोदय,

जिस समय हमारे पत्र के विस्तृत उत्तर की जरूरत थी उस समय आपकी आँख उठ आई। सुनकर दुःख हुआ। हमारा दुर्भाग्य !

खूब किया जो आपने नोट दिया। क्षमा माँगने की क्या ज़रूरत। आप जिस समाज में हैं उसकी सी भी तो कुछ करना चाहिए।

जब वह लेख "आर्य्यमित्र" न छापेगा तब देखा जायगा। हमारे पूर्व पत्र का विस्तृत उत्तर, जो कोई सामाजिक हानि न हो तो, शीघ्र भेजिएगा। हम अपने अभियोक्ताओं को सहज में नहीं छोड़ना ... अतएव ८ आक्टोबर के आर्य्यमित्र से लेकर आगे ... हमारे विरुद्ध उसमें निकले कृपा करके पूरा पत्र भेजते ... इतनी चीज़ें और भी हमें भेजिए। (१) फाल्गुन का परोपकारी (२) शिक्षामञ्जरी (३) बी० एन० शर्मा ... और किताबें जो आपके पास हों (४) १६ ... आर्यमित्र जिसमें बी० एन० ने आपकी आलोचना ... जवाब दिया है। (५) बी० एन० की अपील (६) बाबूराम शर्म्मा की किताब (रामायण की ... या और जो नाम हो)।

इस कष्ट को क्षमा कीजिएगा।

विनीत—
महावीरप्रसाद

(२८)

जुही, कानपुर
१८–१०–०८

प्रणाम !

१६ का कार्ड मिला। फाल्गुन का परोपकारी मिला। थैंक्स।

कल आपको हम पत्र भेज चुके हैं। ये महापुरुष दयालु चौबे कौन हैं ? हम नहीं जानते। याद पड़ता कभी देखा हो। साथ रहना तो दूर रहा।

आपने खूब जवाब दिया, शान्ति तो खड्ग ... क्षमा भी होती है :—

"क्षमाखड्गं करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति"। पं० ... धर शर्मा जी का पत्र दो महीने बाद आया है।

देरी के लिए हमने उलाहना दिया है।

विनीत
महावीर

(२९)

जुही, कानपुर
३०–११–०८

प्रणाम !

३ हफ़्ते के बाद परसों कानपुर लौटकर ... २० नवम्बर का आपका पत्र मिला। अब तबीअत ... अच्छी है। पर नींद न आने की शिकायत बनी ... है।

२३ नवम्बर को आगरे के बा० श्रीराम एक वहीं ... वकील साहब के साथ हमसे लखनऊ में मिले थे। दूसरे ... पं० भगवानदीन मिश्र से भी हमारी मुलाक़ात हुई। ... समाज के जलसे में हमारे कई एक आर्य्य-मित्र भी ... थे। वे भी मिले। सबने बी० एन० शर्म्मा और "आर्य्यमित्र" पत्र के लेखों और पालिसी को धिक्कारा। ... जी ने हमसे क्षमा का मसविदा लिया, और कहा कि ... नवम्बर को हम आपको खबर देंगे कि यह क्षमापत्र आर्य्यमित्र में छपेगा या नहीं। परन्तु आज तक उनका उत्तर नहीं आया। एक हफ़्ता ठहरने के बाद अब हम नालिश दायर किये बिना नहीं रह सकते। विवश हैं। ... जी कहने लगे कि यदि हम बाबूराम को बरखास्त कर दें और आर्य्यप्रतिनिधिसभा की ओर से क्षमा-पत्र छाप दें तो आप संतुष्ट हो जायँगे या नहीं ? हमने ... प्रतिनिधिसभा से हमारा कोई झगड़ा नहीं। इससे ... की क्षमा-प्रार्थना से हमारे चरित की निष्कलङ्कता साबित न होगी। जिन्होंने हमें गालियाँ दी हैं और हम पर मिथ्या दोष लगाये हैं, उन्हें क्षमा माँगनी चाहिए। ... यदि सभा समझती हो कि बाबूराम ने अन्याय किया तो वह उन्हें बरखास्त कर सकती है।

पं० दामोदरप्रसाद का कार्ड पढ़ा। १६ नवम्बर का आर्य्यमित्र भी पढ़ा। अब तक हमारी आर्य-समाज से बड़ी सहानुभूति थी, पर नरदेव शास्त्री ऐसे पंडितों के इस तरह के लेख पढ़कर अब इस समाज से हमें घृणा हो रही है। क्षमा कीजिए। हम न जानते थे कि पढ़े जन भी इतने सङ्कीर्ण-हृदय होते हैं। और त-अस्सुब की आग में इतने जल-भुन सकते हैं।

यदि कोई विशेष कारण न हो तो आप आर्य्यमित्र की सम्पादकता स्वीकार कर लीजिए। आपके कारण उसकी कायापलट हो जायगी। पढ़नेवालों का वह आदर-पात्र हो जायगा। आपके आगरे आने से हम भी शायद कभी कभी आपके दर्शनों का लाभ उठा सकेंगे।

लाला हरिश्चन्द्र कहते थे कि आप और आपके मित्र नरदेव शास्त्री जी आदि मिलकर एक प्रेस करना चाहते हैं।

यदि ऐसा हो तो बहुत ही अच्छी बात है। इस दशा में इंडियन प्रेस या आर्यभास्कर प्रेस की नौकरी करना अभीष्ट नहीं।

तज़करे हज़ारदास्ताँ वाला नोट हमने "ज़माने" में उसका रिव्यू पढ़कर ही लिखा है।

पुस्तक हमने नहीं देखी।

विनीत—
महावीरप्रसाद

क्यों ?

लेखक, श्रीयुत सागरसिंह नागर

क्या-क्या जीवन में देख चुका,
जीवन-रहस्य बतला दूँ क्यों ?
स्वप्नों में किससे प्यार किया,
वह चित्र तुम्हें दिखला दूँ क्यों ?
दो रजत करों में देखी थी,
चंचल गति औ' चंचल रेखा,
कैसे बतला दूँ ज्ञात नहीं—
मैंने जीवन में क्या देखा ?

दो करुण पुकारों में देखी,
जीवन-वियोग की रात एक।
मधु प्रेम या कि मधु मृत्यु यही,
थी जीवन में बस बात एक।
कैसे-कैसे हो गया अन्त,
मधु-सर्ग बताऊँ वह क्योंकर !
तुम जान न पाओगे, अजान !
मैं सिसक न पाई क्यों पल भर !

——
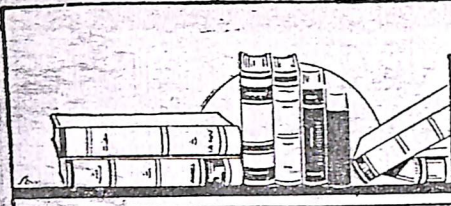
नई पुस्तकें

१--कांग्रेस का इतिहास—लेखक, श्रीयुत सीताराम गुंठे और प्रकाशक, पापुलर पब्लिशर्स, इलाहाबाद हैं। छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या १२४ और मूल्य ॥) है।

इस पुस्तक का विषय नाम से स्पष्ट है। इससे पूर्व कांग्रेस के और भी कई इतिहास निकल चुके हैं जिनमें डाक्टर पट्टाभि सीतारामैया का इतिहास सर्व-प्रसिद्ध है। पर मूल्य अधिक होने के कारण सर्व-साधारण उसका संग्रह नहीं कर सकते। यह पुस्तक इस दृष्टिकोण से अच्छी है। भाषा सरल तथा रोचक है। पढ़ने में उपन्यास का-सा मज़ा आता है। हमें आशा है कि यह पुस्तक स्वाधीनता-प्रेमियों और साहित्य-प्रेमियों के निकट समान आदर पायेगी। तीन-चार चित्रों के संकलन और नेहरू जी द्वारा लिखित प्रस्तावना ने पुस्तक की उपयोगिता को और भी बढ़ा दिया है।

२—सत्य हरिश्चन्द्र नाटक—संपादक, अध्यापक श्रीयुत विश्वनाथप्रसाद मिश्र, एम० ए०, प्रकाशक, सरस्वती-मंदिर, काशी हैं। पृष्ठ-संख्या, ४२+८२+३८, छपाई-सफ़ाई अच्छी और मूल्य ।=) है।

भारतेन्दु जी लिखित नाटकों में सत्य हरिश्चन्द्र का स्थान प्रमुख है। यह नाटक हिन्दी की अनेक परीक्षाओं में पाठ्य-पुस्तक है। इस संस्करण में विद्वान् सम्पादक ने मूल नाटक के साथ ४२ पृष्ठों की टिप्पणियाँ जोड़ दी हैं जिनमें नाट्यशास्त्र के मूल सिद्धान्तों के साथ-साथ सत्य हरिश्चन्द्र के ऐतिहासिक आधार व साहित्यिक उत्कर्ष की विवेचना भी की गई है। अंत में ३८ पृष्ठों में शब्दार्थ व भावार्थ भी दिये गये हैं। इस प्रकार यह पुस्तक विद्यार्थियों व साहित्य-रसिकों के लिए उपयोगी बन गई है।

३—हिन्दी-पद्य-पीयूष—संग्रह-कर्त्ता, पंडित चारुदेव शास्त्री, एम० ए०, एम० ओ० एल०, प्रकाशक, श्री मेहरचन्द-लक्ष्मणदास, सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर हैं। छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या २१६ और १॥) है।

इसमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर इधर के कुछ [illegible] के संक्षिप्त जीवन-चरित देते हुए उनकी कवि[illegible] के उदाहरण संकलित किये गये हैं। यह संग्रह [illegible] पुस्तक बनने के उद्देश्य से किया गया जान [illegible] है। अन्त में शब्दार्थ-कोष भी दे दिया गया है।

जहाँ इस संग्रह में कुछ नितान्त अप्रसिद्ध क[illegible] को भी स्थान मिल गया है, वहाँ हिन्दी के तीन [illegible] परिवर्तनकारी कवियों को स्थान न मिलना आ[illegible]जनक है। 'प्रसाद' जी हिन्दी-कविता की नई धा[illegible] प्रवर्तक माने जाते हैं। उन्होंने हिन्दी-साहित्य को [illegible] कुछ दिया है और सम्भवतः उन सभी कवि[illegible] अधिक दिया है जिनका उल्लेख इस संग्रह में [illegible] है। आधुनिक हिन्दी-युग में बाबू मैथिलीशरण [illegible] का जो स्थान है उसे कौन नहीं जानता? उनकी [illegible] रचनाओं को निकाल देने से इधर के हिन्दी के का[illegible] शेष क्या रह जाता है? 'निराला' जी भी 'इस [illegible] वसंत के अग्रदूत' माने जाते हैं।

इन तीनों नेता कवियों की उपेक्षा करके शास्त्री [illegible] एम० ओ० एल० महोदय ने न केवल हिन्दी-सा[illegible] के प्रति अपनी अनभिज्ञता का परिचय दिया है, [illegible] इस संग्रह को भी व्यर्थ, अनुपयोगी व अनावश्यक [illegible] दिया है। लाहौर के उत्साही प्रकाशक श्री मेहर[illegible] लक्ष्मणदास जी को चाहिए कि वे केवल [illegible] या संग्रहकारों के पुछल्लों को देखकर ही उन्हें पा[illegible] पुस्तकों के उपयुक्त संकलनकर्ता न मान लिया करें, [illegible] भी देखा करें कि उक्त विषय के प्रति उनकी जान[illegible] कितनी है। संग्रह के अन्त में 'पँखुरियाँ'-शीर्षक [illegible] कुछ नये और अप्रसिद्ध कवियों की रचनाओं का [illegible] किया गया है। इसका अभिप्राय समझ में न आया [illegible] तो ये लोग सम्पादक जी की मित्र-गोष्ठी के होंगे [illegible] कुछ और कारण होगा; अन्यथा इन्हें और इनकी [illegible] तुकबन्दियों को इस संग्रह में ठूँसने का प्रयत्न क्यों [illegible] गया, और वह भी 'प्रसाद', 'गुप्त' और 'निराला' [illegible] महाकवियों की उपेक्षा करके!

यह संग्रह हिन्दी के पाठकों और छात्रों को गुमराह [illegible] सकता है।

४-८—'प्रगतिशील पुस्तकालय' बाँकीपुर—[illegible]टना की ५ पुस्तकें—

(१) ज़मीन्दारी क्यों उठा दी जाय?

(२) कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डलों ने किसानों के लिए [illegible] किया?

(३) बकाश्त की लड़ाई—

तीनों के लेखक स्वामी सहजानन्द सरस्वती हैं। प्रत्येक [illegible] मूल्य =) है। विषय नाम से ही स्पष्ट है। देश के [illegible]सानों में जागृति लाने के लिए यह साहित्य [illegible]योगी है।

(४) हुंकार—लेखक, श्रीयुत 'दिनकर' हैं। पृष्ठ-[illegible]स्या १०६ और मूल्य ॥) है। छपाई-सफ़ाई उत्तम है।

इसका 'हुंकार' नाम सर्वथा सार्थक है। वस्तुतः इसमें सर्वत्र हुंकार ही हुंकार है। 'दिनकर' जी का स्थान राष्ट्रीय कवियों में उच्च है। एक आदर्श नवयुवक [illegible] भाँति आपकी 'अँगड़ाई में भूचाल श्वास में लंका के [illegible]नचास पवन' वास किया करते हैं। इसमें लेखक की [illegible] कवितायें संगृहीत हैं, जिनमें कुछ के शीर्षक [illegible] हैं—

असमय-आह्वान, हाहाकार, अनन्त-किरीट, नई-दिल्ली [illegible] प्रति, तक़दीर का बँटवारा, पराजितों की पूजा एवं [illegible]य-यात्रा आदि।

काव्य के कुछ नमूने देखिए—

भूमिका में कवि कहता है—

[illegible]दो बच्चों का घोष, विकट सङ्घात धरा पर जारी है,
[illegible]हि-रेणु चुन स्वप्न सजा लो, छिटक रही चिनगारी है।
[illegible]न्मान की जय, अभीत हो, सुलकर, दिल की पीर बजे,
[illegible]क राग मेरा भी रण में, बन्दी की जञ्जीर बजे।
[illegible]हें उठीं दीन कृषकों की, मज़दूरों की तड़प पुकारें,
[illegible]री! ग़रीबों के लोहू पर, खड़ी हुई तेरी दीवारें।"

आगे कवि कहता है—

"यही शान्ति गरदन कटती हो; पर हम अपनी जीभ न खोलें?
यही शान्ति वे मौन रहें, जब आग लगे, उनकी काया में।
वे भी यहाँ दूध से जो, अपने कुत्तों को नहलाते हैं,
ये बच्चे भी यहीं क़ब्र में, दूध-दूध जो चिल्लाते हैं।"
पिलाने को कहाँ से, रक्त लायें दानवों को?
नहीं क्या स्वत्व है, प्रतिशोध का हम मानवों को?
ज़रा तू बोल तो, सारी धरा हम फूँक देंगे,
पड़ा जो पन्थ में गिरि, कर उसे दो टूक देंगे।"

और सुनिए—

"हाय! छिनी भूखों की रोटी, छिना नग्न का अर्द्ध वसन है,
मज़दूरों के कौर छिने हैं, जिन पर उनका लगा दसन है"।

(५) लालतारा—लेखक, श्रीयुत रामवृक्ष 'बेनीपुरी' हैं। पृष्ठ-संख्या १२० और मूल्य ।॥) है।

इसमें श्रीयुत बेनीपुरी की १८ कहानियाँ संगृहीत हैं। लेखक को सरल भाषा के भीतर भारी भाव भरने में अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। सभी कहानियाँ प्रगतिशील मनोभावना से सम्बन्ध रखनेवाली हैं। कला की दृष्टि से भले ही इन कहानियों का कुछ मूल्य न हो पर साम्यवादी विचारों के प्रचार में इनसे अवश्य सहायता मिलेगी। यही इस पुस्तक की उपयोगिता है।

—दयावान्

९-११—पटना-पब्लिशर्स, पटना, की ३ पुस्तकें—

(१) रानी भवानी (ऐतिहासिक नाटक) लेखक, श्रीयुत परिपूर्णानन्द वर्मा हैं। छपाई-सफ़ाई साधारण, पृष्ठ-संख्या ८५ और मूल्य ॥=) है।

यह एक अभिनेय नाटक है। इसका अभिनय ३ घंटे में समाप्त हो सकता है। कथानक का आधार ऐतिहासिक है।

इसमें मुर्शिदाबाद के नवाब अलीवर्दी खाँ के द्वारा नाटोर के राजा रमाकान्त का राज्यच्युत किया जाना तथा राजा की रानी भवानी का प्रबल प्रयत्न से पुनः गद्दी को हथियाना और अपने अस्तव्यस्त राज्य एवं अपने विलास-विह्वल राजा का सुधार करना आदि का उल्लेख किया गया है। उस समय की रहन-सहन का इसमें अच्छा चित्रण हुआ है। नाटक रोचक भी है और अभिनेय भी।

(२) सुदामा—(पौराणिक नाटक)—लेखक, पण्डित किशोरीदास वाजपेयी हैं। पृष्ठ-संख्या ९६ और मूल्य ।) है।

सुदामा का भी स्टेज में अभिनय हो सकता है। ये एक पौराणिक पात्र हैं। भारतीय साहित्य में कृष्ण के सखा सुदामा पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है; परन्तु सुदामा को राजनैतिक नेता बना देना लेखक की सुन्दर सूझ है। सुदामा को चरित-नायक बनाकर राजनैतिक पुट दे दी गई है, इस प्रकार यह पुराना विषय इस राजनैतिक युग के उपयुक्त हो गया है।

(३) विकास—यह एक सामाजिक उपन्यास है। इसके लेखक २-३ उपन्यास और लिख चुके हैं। उनका 'विदा' उपन्यास हिन्दू-विश्वविद्यालय के बी० ए०, एम० ए० के कोर्स में पाठ्य पुस्तक है। 'विकास' में भी उनको सफलता सुलभ हुई है। भाषा शुद्ध हिन्दी एवं शैली सुन्दर है। हाँ, वर्णन विशेष विस्तृत होने से कहीं-कहीं अरुचिकर-सा हो जाता है। उपन्यास अच्छा है और उपन्यास-प्रेमियों के लिए पठनीय है। इसके लेखक श्री प्रतापनारायण श्रीवास्तव हैं। दोनों भागों की पृष्ठ-संख्या कुल ६२९ और मूल्य ४) है।

—'चन्द्र'

१२-१४—गङ्गा-ग्रन्थागार लखनऊ की ३ पुस्तकें—

(१) जागरण (राष्ट्रीय उपन्यास)—लेखक, ठाकुर श्रीनाथसिंह पृष्ठ-संख्या ४१५ और मूल्य २) है।

(२) दाम्पत्य जीवन—(विवाहित युवकोपयोगी) लेखक, श्रीयुत रामनारायण 'यादवेन्दु', बी० ए०, एल-एल० बी०, छपाई-सफ़ाई साधारण, पृष्ठ-संख्या १३५ और मूल्य १) है।

(३) मन्दार (कविता-संग्रह)—लेखक, श्री गिरिजाशंकर मिश्र 'गिरीश', छपाई-सफ़ाई साधारण, पृष्ठ-संख्या १२६ और मूल्य १) है।

'जागरण' का नाम सर्वथा सार्थक है। प्रायः प्रत्येक पात्र एवं घटनाक्रम में जागरण ही जागरण जगमगा रहा है। इस उपन्यास-युग में अनकानक उपन्यासों का उद्भव हो रहा है; पर ऐसे राष्ट्रीय उपन्यासों की आज भी अधिकता नहीं प्रत्युत अभाव ही-सा है।

ठाकुर साहब की लब्धप्रतिष्ठ लेखनी इस अभाव का अभाव दूर करने में सर्वथा सफल हुई है। विविध [illegible] का वर्णन बहुत ही वास्तविक बन पड़ा है, पर कहीं [illegible] घटना-क्रमों को प्रभावोत्पादक बनाने की धुन में अत्यु[illegible] अतिरञ्जना हो गई है अतः स्वाभाविकता में [illegible] आ गया है। रूढ़ियों को तो ठाकुर साहब की [illegible] कुठार की ही तरह काटती है। राष्ट्रीय दृष्टि-कोण [illegible] आद्यन्त निर्वाह करते हुए राष्ट्र की वर्तमान प्रमुख सम[स्या] ग्राम-सङ्गठन की ओर अधिक झुकाव रक्खा है।

दाम्पत्य-जीवन—इसमें पति-पत्नी-सम्बन्धी [illegible] शिक्षायें हैं। विवाहित युवकों के लिए यह उपयोगी [illegible] पर भूमिका में जैसा दावा किया गया है कि—'[illegible] अधिक पुस्तकें पढ़ कर लिखी गई है, वैसी जँचती [illegible] नहीं। जहाँ आसन गिनाये जाने लगे हैं, वहाँ अश्लील[ता] चिल्ला उठी है। फिर भी केवल-गुण-ग्राहक व संयमशी[ल] युवक प्रस्तुत पुस्तक से पर्याप्त लाभ उठा सकते हैं।

मन्दार—इसमें 'गिरीश' जी की छोटी-बड़ी [illegible] कविताओं का संग्रह है। गाथा के इस आधुनिक युग में [illegible] भी पद्य-गद्य-पुस्तकें पर्याप्त प्रकाशित हो रही हैं, जिन[से] राष्ट्र-भाषा के भाण्डार को लाभ ही है।

'गिरीश' जी अपनी शैली में सफल हुए हैं और उनका [illegible] उत्प्रेक्षा-अलङ्कार पर अधिकार-सा है।

पद्य-प्रेमी, आशा है, इस पुस्तक का आदर करेंगे।

—चन्द्रकीर्तिसिंह

१५—रंजीतसिंह—लेखक, श्रीयुत सीताराम कोहली और अनुवादक, श्रीयुत रामचन्द्र टंडन हैं। प्रकाशक, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद है। छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या ३१० और मूल्य १) है।

प्रोफ़ेसर सीताराम कोहली, एम० ए०, सिक्ख-इतिहास के विशेषज्ञ माने जाते हैं। उन्होंने उर्दू में महाराज रणजीतसिंह की एक जीवनी लिखी थी; प्रस्तुत पुस्तक उसी पुस्तक का हिन्दी-अनुवाद है। इसमें पंजाब-केसरी महाराज रणजीतसिंह की विस्तृत जीवनी दी गई है। छात्रों व इतिहास-प्रेमियों के लिए पुस्तक उपयोगी है।

१६—पुरुषोत्तम—लेखक, श्री तुलसीराम शर्मा 'दिनेश' और प्रकाशक, मीरा-मन्दिर, बम्बई हैं। छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या २७२ और मूल्य २) है।

यह पुस्तक महाकाव्यों की शैली पर लिखी है।

[चरित-]नायक कृष्ण हैं। उन्हीं का चरित 'पुरुषोत्तम' [रू]प में इसमें अंकित किया गया है। कथा का आरम्भ [कृष्ण] के मथुरा जाने और वहाँ कंस आदि को मारने [से] होता है और अन्त दूत-कृष्ण के हस्तिनापुर से लौट [क]र पाण्डवों के पास पहुँच जाने पर। इसके पश्चात् [महाभ]ारत के नेता और पाण्डवों के पल-पल पर [सहा]यक कृष्ण के रूप का चित्रण इसमें नहीं किया गया है; [सं]भवतः पाञ्चजन्यधारी, अनेक अस्त्रों को निगल जाने-[वा]ले और महाभारत-काल में अनोखे शौर्य के प्रदर्शन [कर]नेवाले कृष्ण कवि के 'पुरुषोत्तम' शब्द की सीमा [मे]ं नहीं आते थे। भाषा कुछ तत्सम प्रधान है, पर [कवि]ता सुन्दर और भावमयी है। पात्रों का चरित्र-[चित्र]ण भी कुछ नवीनता लिये हुए है। दो-तीन सुन्दर [भाव]पूर्ण चित्र भी दिये गये हैं। सब मिलाकर पुस्तक [प्रशंस]नीय है। बम्बई का मीरा-मन्दिर कविताओं के [इस] गद्य-पुस्तकों के इस युग में 'निबन्ध-काव्य' को प्रकाशित [क]रने का साहस करने के लिए प्रोत्साहन का पात्र है।

१७—किरण—रचयिता, श्री गोपेश और प्रकाश[चन्द्र]। मुद्रक व प्रकाशक, प्रेम-प्रेस, प्रयाग है। छपाई-[सफ़]ाई मामूली, पृष्ठ-संख्या ११६ और डायरी साइज़ की [पु]स्तिका का मूल्य ।।।) है, जो बहुत अधिक है।

इसमें दो नवयुवक कवियों की रचनायें संगृहीत [हैं]। भाषा, भाव व शैली सभी में 'नवयुवकता' है। [अ]भी सुधार की काफ़ी गुंजायश है—छन्दों में भी और [भ]ाषा में भी। आशा है कि ये ही कवि आगे चलकर [भारती]देवी को कुछ सुन्दर मालायें भी भेंट करेंगे।

१८—धधकती ज्वाला—लेखक, श्रीयुत उमाशंकर [ला]ल श्रीवास्तव प्रकाशक, भारत-पुस्तक-भवन, सैदपुर, [गा]जीपुर हैं। छपाई मामूली, पृष्ठ-संख्या ११२ और [मूल्]य ।।।) है।

यह एक साधारण कोटि का सामाजिक उपन्यास है। [कथ]ानक रोचक है, पर ढंग पुराना है।

१९—पिंगल-प्रवेशिका—लेखक, बाबू प्यारेलाल [अ]ग्रवाल। प्रकाशक, सीताराम बुकसेलर अलीगढ़ हैं। छपाई-[सफ़]ाई मामूली, पृष्ठ-संख्या १६७ और मूल्य ।।।) है।

इसमें हिन्दी व उर्दू के प्रसिद्ध छन्दों के लक्षण व [उ]दाहरण दिये गये हैं। भाषा सरल व सुबोध है। आरम्भिक विद्यार्थी इस पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं।

२०—धर्मवीर-सुदर्शन—लेखक, श्री मुनि अमर, प्रकाशक श्री वीर पुस्तकालय, लोहामंडी, आगरा हैं। छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या १०४ और मूल्य ।-) है।

इसमें जैनियों के एक धर्मात्मा सुदर्शन जी का पद्य-बद्ध चरित लिखा गया है। कविता की दृष्टि से पुस्तक साधारण होते हुए भी जैन-समाज के निकट अवश्य आदर की वस्तु होगी।

२१—श्रीमद्राजचन्द्र—अनुवादक और सम्पादक, पंडित जगदीशचन्द्र शास्त्री, एम० ए० हैं। प्रकाशक, श्रीयुत सेठ मणीलाल, रेवाशंकर जौहरी, श्री परमश्रुत प्रभावक मंडल, बम्बई हैं। छपाई-सफ़ाई उत्कृष्ट, पृष्ठ-संख्या ८७४ और मूल्य ६) है।

गुजरात के मौर्वी राज्य में श्री राजचन्द्रनामक एक प्रसिद्ध महात्मा हो गये हैं। जैन-धर्मावलंबियों में इनकी अच्छी प्रख्याति है। सम्पादक इन्हें पच्चीसवें तीर्थंकर बतलाते हैं। इन्हीं के विविध लेखों, पत्रों व प्राइवेट डायरी आदि का संग्रह इस बृहदाकार ग्रन्थ में किया गया है। पुस्तक जैनियों व मुमुक्षुओं के लिए संग्रहणीय है। साधारण गृहस्थ भी इसके उपदेशामृत से कुछ ज्ञान व शान्ति का लाभ कर सकते हैं।

२२—सिद्धान्त-रहस्य—लेखक, श्री स्वामी जी महाराज हैं। प्रकाशक, श्री लोकेन्दु-साहित्य-मंडल, दतिया है। छपाई-सफ़ाई साधारण, पृष्ठ-संख्या ९४ और मूल्य ।।।) है।

वादी और प्रतिवादी शास्त्रार्थ के अनन्तर जिस निर्णय पर पहुँचते हैं उसे 'सिद्धान्त' कहते हैं। हिन्दू-धर्म-शास्त्र ऐसे ही सिद्धान्तों का समन्वय है। इस पुस्तक में 'सिद्धान्तों' की विवेचना की गई है और बहुत से लोकोपयोगी सिद्धान्त संग्रह भी किये गये हैं। पुस्तक का विषय प्रधानतः आध्यात्मिक है, और यह उसी प्रकार के साहित्य-पाठकों के काम की भी है।

२३-२४—सुख-संचारक कम्पनी मथुरा की दो पुस्तकें—

(१) जच्चा-बच्चा—लेखिका, श्री ज्ञानकुमारी शर्मा हैं। पृष्ठ-संख्या ७४ और मूल्य ।) है।

इसमें जनन-विज्ञान और शिशु-पालन पर थोड़ा-सा प्रकाश डाला गया है। गृहस्थों के लिए यह सस्ती व उपयोगी पुस्तक है। बाल-रोगों की चिकित्सा-सम्बन्धी प्रकरण विशेष उपयोगी नहीं बन पड़ा; शायद इसका कारण लेखिका की एतद्विषयक अनभिज्ञता है।

(२) याद रक्खो—संग्रहकर्त्ता पंडित मदनमोहन शर्मा हैं। पृष्ठ-संख्या १३४ और मूल्य ।) है।

इस पुस्तक में ऐसी शिक्षायें संकलित की गई हैं जिन्हें याद रखने से बड़ा लाभ हो सकता है। साथ ही बीच बीच में कम्पनी की दवाओं का विज्ञापन भी किया गया है। विज्ञापन करने का यह भी एक सफल ढंग है।

२५—Bhawani Dayal Sanyasi—लेखक, श्रीयुत प्रेमनारायण अग्रवाल एम० ए० और प्रकाशक, दि इंडियन कलोनियल एसोशिएशन, अजीतमल, इटावा, यू० पी० हैं। मूल पुस्तक की पृष्ठ-संख्या १८० और परिशिष्ट की ४२ है। मूल्य १॥) है।

श्रीयुत भवानीदयाल संन्यासी ने दक्षिण-अफ़्रीका के प्रवासी भारतीयों की सेवा में अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया है। प्रस्तुत पुस्तक में उन्हीं की जीवन की घटनाओं, उनकी प्रवासी भारतीयों की सेवाओं तथा बृहत्तर भारत की समस्याओं का विशद वर्णन है। श्रीयुत अग्रवाल जी स्वयं इंडियन कलोनियल एसोसिएशन के मंत्री हैं और उन्होंने प्रवासी-समस्या का काफ़ी अध्ययन किया है। अतः इस विषय पर लिखने के वे अधिकारी हैं। पुस्तक की भाषा सरल, तथा काग़ज़ और छपाई सुन्दर है।

२६—भूषण-विमर्श—लेखक, श्री भगीरथप्रसाद दीक्षित साहित्यरत्न और प्रकाशक सरस्वती-प्रकाशन-मन्दिर, इलाहाबाद हैं। परिशिष्ट को मिलाकर पृष्ठ-संख्या ३०४ और मूल्य १।) है।

हिन्दी-साहित्य के इतिहास में जिन कवियों के विषय में भ्रान्तियाँ और मतभेद प्रचलित हैं उनमें कविवर भूषण भी एक हैं। श्रीयुत दीक्षित जी ने भूषण-विषयक प्रचलित धारणा को भंग करते हुए नागरी-प्रचारिणी पत्रिका आदि सामयिक पत्रों में कुछ काल पहले एक आन्दोलन खड़ा किया था। पुस्तक को पढ़ने से मालूम होता है कि लेखक ने अपने मत को ... करने के लिए काफ़ी परिश्रम किया है। हिन्दी-सा... के विद्यार्थियों तथा इतिहास-लेखकों को दीक्षित ... द्वारा उपस्थित की गई समस्याओं पर निष्पक्ष ... विचार करना चाहिए। भाषा और शैली में कुछ ... वैज्ञानिकता विषय के अधिक अनुकूल रहती।

२७—साहित्यिकी—लेखक, श्रीयुत शान्ति... द्विवेदी, प्रकाशक, ग्रन्थमाला कार्यालय, बाँकीपुर ... पृष्ठ-संख्या २५६ और मूल्य १॥) है।

इस पुस्तक में २६ साहित्यिक निवन्ध संगृहीत ... प्रायः सभी निवन्ध आलोचनात्मक हैं। निवन्धों की ... रोचक, एवं विचारपूर्ण है। निवन्धों को पढ़कर पा... को न केवल मस्तिष्क का भोजन मिलता है वरन ... हृदय को स्पर्श करनेवाली भावुकता भी। द्विवेदी ... के निवन्धों की यही विशेषता है।

२८—जीवन-यात्रा—लेखक और प्रकाशक उ... पृष्ठ-संख्या १४८ और मूल्य ॥।=) है।

मानव-जीवन की विविध समस्याओं पर ... पूर्ण एवं भावुक शैली में लिखे गये १७ निवन्धों का संग्रह है। लेखक का दृष्टिकोण तथा कथित भार... है। वह सरल, त्यागमय और सेवामय जीवन का हिमा... जान पड़ता है। पुस्तक रोचक और पठनीय है।

२९—क्रांतिकारी कार्ल मार्क्स—लेखक, स... श्रीयुत लाला हरदयाल एम० ए०, अनुवादक ... श्रीयुत बृजमोहन वर्मा और प्रकाशक 'विशाल भा... पुस्तकालय, १२०।२, अपर सरक्यूलर रोड, कल... है। पृष्ठ-संख्या ७० और मूल्य ॥) है।

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों ... मनुष्य के सामाजिक जीवन में एक भीषण क्रान्ति ... सूत्रपात किया था। आज उसके सिद्धान्त विश्व-... हो रहे हैं। प्रसिद्ध भारतीय क्रान्तिकारी स्वर्गीय ... हरदयाल जी ने बड़े सुन्दर ढंग से संक्षेप में ऋषि मार्क्स ... त्यागमय जीवन का विवरण किया है। अनुवाद ... भाषा भी रोचक है। मार्क्स के वाद शीर्षक ... मार्क्सवाद और वर्गवाद के विकास का संक्षिप्त इ... देकर अनुवादक ने पुस्तक की उपादेयता बढ़ा दी ... पुस्तक पठनीय है।

३०—शेफाली—लेखक, श्रीयुत राजेश्वर गुरु, ...शक, सरस्वती-प्रकाशन-मन्दिर, इलाहाबाद हैं। ...ठ-संख्या ६० और मूल्य १।) है।

प्रस्तुत कविता-संग्रह से जान पड़ता है कि श्रीयुत ...जेश्वर गुरु के सामने कविता का एक सुनहरा भविष्य ...। श्री राजेश्वर गुरु शायद हिन्दी की 'रहस्यवादी ...नी छायावादी' कविता से अत्यधिक प्रभावित होकर, ...ा शायद कैशोर विस्मय से मुग्ध होकर अभी अपने ...म-काव्य का आलम्बन किसी 'कौन?' या 'अनजान' ...ो ही बनाये हुए हैं। पर जिन कविताओं के विषय ...धिक हृदयग्राही हैं उनके आधार पर हम कह सकते हैं ...कि सम्भव है, आगे चलकर ये हिन्दी को कुछ आधुनिक ...काव्य भी प्रदान करें। भाषा में जहाँ-तहाँ शैथिल्य ...है। अधिकांश कविताओं का छंद 'मुक्त' है।

३१—कलापी—लेखक, श्रीयुत आरसीप्रसादसिंह और प्रकाशक, श्रीयुत देवकुमार मिश्र, ग्रंथमाला-कार्यालय, बाँकीपुर हैं। पृष्ठ-संख्या २०८ और मूल्य २) है। छपाई और गेट-अप अच्छा है।

प्रेयसी मेरी जो अज्ञात—
विमल ज्योत्स्ना-सी मृदु-मृदु गात;
कल्पना-सी अवदात!

× × ×

उसी के मानस-वन में मुग्ध

× × ×

करे यह बाल-कलापी नृत्य!

विश्व के प्रकृत-सौन्दर्य को काव्य-भावना से अनुप्राणित करके कवि ने उसे कल्पना-प्रेयसी का रूप दिया है। इस अज्ञात कल्पना-लोक की सुन्दरी को समर्पित कविताओं में अधिकांश ऐसी हैं, जिनमें कल्पना में सौन्दर्य के छाया-पट पर विविध रंगों के चित्र बनाये हैं, जो कवि की कल्पना के प्रेरक हैं—

सान्द्र, सजल घन!
अम्बर में करते गर्जन;

वह स्वयं कहता है—

निरख व्योम में बादल,
मेरी काव्य-प्रिया ने भी है
किया दृगों में काजल;

अपनी काव्य-प्रिया का रूप-वर्णन भी उसने कर दिया है—

अलकों में मणि-बंधन;
आनन पर अवगुंठन!
कुसुमों में भूषित तन;
चरणों में बजता मृदु नूपुर,
कर-मृणाल में कंकन!

सचमुच उसकी काव्य-सुन्दरी मुख पर झीना-सा अवगुंठन डाले, वासंतिक कुसुमों से विभूषित होकर तथा कोमल कलाइयों में कंकन और पगों में नूपुर बाँधे हुए कल्पना के इन्द्र-धनुषी-गगन में विहार कर रही है। 'कलापी' का कवि "मेघ-दूत" के चिर-नवीन सौन्दर्य से काफ़ी प्रभावित हुआ है।

छा रहे मेरे गगन में भी
सजीले श्याम जलधर;

× × ×

नाच रे मेरे शिखी तू,
प्रेम का संकेत आया!
स्पर्श यह शीतल किसी का
बादलों की स्निग्ध छाया!

× × ×

हाय मेरे प्राण-वन में
यक्षिणी यह कौन रोती?
खोजती आश्रय दृगों में
कौन यह कातर कपोती?

× × ×

विरहिणी-सी मधुर-स्मृति
किसकी सिसकती, विकल होती?

अन्तर यह है कि जहाँ कालिदास ने विरह की अभिव्यक्ति के लिए अलकापुरी के यक्ष और यक्षिणी की कल्पना की थी, वहाँ 'कलापी' के कवि ने विरह-भावना और उसके आलंबन तथा आश्रय को एक रहस्यमयी कल्पना से जाग्रत् कर दिया है। परन्तु इस कथन का यह अर्थ नहीं कि हम कलापी और मेघदूत की तुलना कर रहे हैं। दोनों में महान् अन्तर है। तात्पर्य केवल यह है कि 'कलापी' का कवि कालि-

दास और उनके काव्य से बहुत प्रभावित है। 'कवि की मृत्यु' में वह कहता है—

बाँध दिया अपने गीतों से अखिल विश्व का अन्तर
एक सूत्र में तुमने, उपमाओं के हे जादूगर!
प्रथम-प्रथम भेजा था तुमने मेघ-दूत को लेकर
प्रणय-मिलन-सन्देश यक्ष का अलका में चिर सुन्दर
दूर प्रिया के पास।
× × × ×
× × × मुग्धी के चकित
हृदय में जलती अब भी उसी रूप की ज्वाला।
—आदि।

संसार वही है। अब भी मेघ गरजते हैं, और गरज-गरजकर उन्हीं भावनाओं को आन्दोलित करते हैं। पर उनका प्रकाशन कौन करे? प्रकृति के चिर-नवीन सौन्दर्य को कवि-कल्पना से विभूषित करके कौन उसे प्रेयसी का साकार रूप प्रदान करे?

प्रथम वारि-कण नव-वारिद के पड़ते ही पृथिवी पर
जब होकर उच्छ्वसित धरातल के समस्त विरही नर
अश्रु-अर्घ्य लेकर खोजेंगे तुमको उत्सुक लोचन,
कौन सदय तब हाय, करेगा उनका दुःख-विमोचन?
कहाँ गया वह स्वर्ण-काल उज्जयिनी का बल-वैभव
अतुलनीय? × × ×
× × × ×
किस अतीत के अंधकार में लुप्त हुआ वह जीवन?

जिस कवि ने वाल्मीकि और कालिदास के रूप में अवतार लिया था उसे 'कलापी' का कवि आज न पाकर या भविष्य में न पाने की आशंका ही नहीं, विश्वास करके वेदना-व्यथा से कराह उठा है। 'कवि की मृत्यु' की कल्पना अनूठी है!

ऊपर के उद्धरणों से स्पष्ट हो गया होगा कि 'कलापी' का 'कवि' कल्पना-प्रधान है। संसार के शुष्क जीवन में वह काव्य और सौन्दर्य की पावन-सरिता बहा-कर उसे क्षण-भर के लिए लहलहाता देखना चाहता है। इसी के लिए वह 'विश्व के कोलाहल से दूर' किसी छाया-वन के एकान्त कुंज में 'निश्चल मौन प्रशान्त' बैठकर काव्य-प्रेयसी की आराधना में निमग्न है। कभी कलापी के साथ उसका मन नाच उठता है, कभी 'अमृत-लता' को देखकर वह भाँति भाँति की भावनाओं से सजाने लगता है। कभी वसन्त-विलास में तल्लीन होकर वह गाने लगता है। कभी 'जुही की कली' का [illegible] करके वह मानव की प्रेम-वासना की आलोचना कर उठता है; यहाँ तक कि मरण को भी वह श्याम-[illegible] में कल्पित करके राधा और गोपियों की समस्त प्रण[य]-भावनाओं को उस पर समर्पित कर देता है। सौन्द[र्य]-कल्पना के 'उल्लास' में वह इतना मस्त है—

जला करे नन्दन-वन, कोकिल का
ऋतु-पति-स्वर याद रहे;
आठों पहर चहकती मेरी
मस्ती यह आबाद रहे!

हाँ, कभी-कभी वह आँख उठाकर उधर भी दे[ख] लेता है, जहाँ—

कितने देश, कितने प्रान्त, नगर-विजन!
रोती हैं वहीं पर दीन जातियाँ;
भूख प्यास से व्याकुल सिसकतीं;
और मचतीं उसके आस-पास में
आनन्द-रँगरेलियाँ, बजतीं बधाइयाँ!

इस विषमता को दूर करने के लिए वह 'स्व[र्ण]-पर्व' का आह्वान करता है और उस स्रष्टा का जो उच्चता का शत्रु और दीनता का मित्र है, सं[हार]-नाश करने को आमंत्रित करता है। कवि होने के [नाते] उसकी साम्य-कल्पना निस्सन्देह आदर्शवादी है। सौन्दर्य-वन में सहसा आग लगाकर प्रलयंकर डमरू की ताल पर ताण्डव-नृत्य करनेवाले 'नटराज' से वह कहता है—

घूमो चंडीश्वर घूमो
निर्भय निर्धूम चिता में
भर दो निज मादकता कुछ
इस कवि की भी कविता में!

यद्यपि 'मदिरालय में मधुबाला का आह्वान' करने-वाले 'मधु-सेवी' कवि को घृणा से दुत्कार कर वह स्व[यं] 'विष-पायी' बनने का गर्व कर रहा है; फिर भी मधु-सेवन की वह भावना उसमें भी मौजूद है, [जो] 'कल' के विनाश की आशंका में 'आज' जीवन [का] समस्त आनन्द उठा लेने को प्रेरित करती है।

आओ जब तक नयन खुले हैं,
हो लें एकाकार प्रिये!
यह दुनिया है हम दोनों हैं;
और वासना-ज्वार, प्रिये!
रोके कौन, जगी अन्तर में
जब इच्छा दुर्वार, प्रिये!

यह बात अवश्य है कि उसके—'उल्लास' में एक [illegible] की भावना है, जिसका निराशावाद से उतना [सम्ब]न्ध नहीं। परन्तु क्षणिक में तो वह यहाँ तक कह [गया] है—

दो दिनों का अचिर यौवन;
विश्व की मधु-वीथिका में।
भ्रमर कर ले प्रणय-गुंजन?
आज की मुस्कान, कल के
अश्रु की अनुगामिनी!

[']अनाश्रित विहंगम' में संसार के ठुकराये हुए, प्रेम [निर]ाश व्यक्ति के हृदय का चित्रण है—

मत कहो मैं भी कभी
बेसुध किसी के प्यार में था;
थे सभी आराम में भी
प्रेम के संसार में था।
पैर में थीं बेड़ियाँ; कड़ियाँ
करों में थीं मनोहर!
आज समझा—मैं प्रणय के
लौह-कारागार में था!
पार कर वह द्वार आया
आज मैं स्वाधीन होकर!
उड़ चला तो; पर कहाँ
जाऊँ कहो, उड्डीन होकर?

[अत]ः 'कलापी' के कवि की आत्मा में किसी एक [निश्चित] विचार-धारा का आन्दोलन नहीं है। उसकी [स्वाभा]विक प्रवृत्ति रोमांटिक है। काव्य के सौन्दर्य-[लोक] में विहार करना और स्वयं अपनी मस्ती तथा [उस] पर मस्त होकर गाते जाना उसका स्वभाव-सा [है। इस]ी लिए कविताओं का कलेवर प्रायः आवश्यकता [से अधि]क बढ़ जाता है, तथा भावों की पुनरावृत्ति हो जाती है। गीति-काव्य के लिए यह बात बहुत घातक है। कभी कभी तो परस्परविरोधी भाव एक ही कविता में आगये जान पड़ने लगते हैं। कवि की रोमांटिक-प्रवृत्ति ने एकाध जगह औचित्य की सीमा का भी उल्लंघन कर दिया है। 'जुही की कली' पर अन्योक्ति करते हुए वह उपदेश देकर कहता है कि अभी तेरे तुतले बोल भी नहीं छूटे, अभी तो तेरे बाल-जीवन का विहान भी नहीं हुआ, देखना, कहीं अपना कोष न लुटा देना, क्योंकि संसार बड़ा छली और वंचक है। कोषों में प्रियतम-नाथ का अर्थ मत ढूँढ़ और रात-दिन पर्दे में बैठकर अपना मूल्य आँकती रह—आदि—आदि। परन्तु कवि के उपदेश का ढंग प्रेमोन्मत्त नायक का है, जो 'सखि', और 'सजनि' के संबोधन से स्पष्ट है। 'छिन्न माल' की कल्पना भी कुछ बहुत अच्छी नहीं लगती।

भाषा के विषय में भी दो शब्द कहने की आवश्यकता है। कवि का शब्द-भाण्डार अत्यन्त सम्पन्न तथा पद-विन्यास सुष्ठु और प्राञ्जल होते हुए भी कहीं कहीं क्लिष्टता तथा लम्बी सामासिकता ने औचित्य की सीमा का अतिक्रमण कर दिया है। जैसे—

लुप्त-अग्नि हो सुप्त पीवरी-निद्रासक्त अशक्त?
कहाँ दर्प जीवन, का यौवन-प्रभा-प्रज्वलित तिग्म?

व्याकरण की भूलें कम और उपेक्षणीय हैं।

कवि ने बड़े नम्र-भाव से निवेदन किया है—

प्रिय कहाँ तेरे लिए मैं मधुर पिक का कण्ठ पाऊँ?
विश्व का उपहास सहकर मेंहदी कैसे लगाऊँ?
आज तो इस कर्कशा पर ही लुटेगी विश्व-वाणी!
कर्ण-कटु ध्वनि आज तेरी ही बनेगी राज-रानी!

हम भी उसका समर्थन करके कहते हैं—

नाच तू मेरे शिखी गिरि मल्लिका-मुरली बजाती!
काकली सुन कामिनी की किंकिणी-कलना लजाती।
भूमि नाचे, व्योम नाचे, नाच लें नक्षत्र तारे!
आज तेरे संग नाचे चर-अचर द्रुम-पत्र सारे!

हमारा विश्वास है कि इस चराचर सृष्टि के साथ पाठक का हृदय भी एक बार नाच उठेगा और वह, 'कलापी' के संगीत की लय में तल्लीन हो जायगा।

—ब्रजेश्वर

विचार-विमर्श

कामायनी—एक अध्ययन

लेखक, उमेशचन्द्र देव, विद्या-वाचस्पति

अग्रसर हो रही यहाँ फूट
सीमायें कृत्रिम रहीं टूट
श्रम भाग वर्ग बन गया जिन्हें
अपने बल का है गर्व उन्हें
नियमों की करनी सृष्टि उन्हें
विप्लव की करनी वृष्टि उन्हें
सब पिये मत्त लालसा घूँट।

बुद्धि मानव के लिए प्रकृति की अनोखी देन थी। मानव ने उसका दुरुपयोग करके उसे अधिकार-प्रसार का साधन बनाया और एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी जिससे छुटकारा पाने के लिए वह अनादिकाल से छटपटा रहा है। अपनी अभिव्यक्ति के लिए उसने जिन विधानों और नियमों का निर्माण किया था वे ही उसके लिए जाल बन गये। उसने अपने लिए स्वयं बन्धन निर्माण किया! अब यह बन्धन टूटे किस प्रकार? अधिकार-लिप्सा से निर्मित संसार की यह घोर विषमता कैसे दूर हो? मानवता के ये कृत्रिम खंड किस प्रकार मिल कर एक मानवता की—पूर्ण और सुश्रृंखलित मानवता की—रचना करें? इसी का उपाय वह चिरन्तन से सोचता आ रहा है। हजारों वर्ष पूर्व वैदिक ऋषियों ने एक स्वप्न देखा था—

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्व मनुपश्यतः ॥

यदि मन की ऐसी अवस्था हो सके कि वह सर्वविश्व को अपना ही रूप समझने लगे, उसकी आत्मीयता का ऐसा विस्तार हो जाय कि वह संसार के कण-कण को आवृत कर ले तो उसके मोह और शोक नष्ट [हो] जायँगे। कामायनी के कवि ने भी बीसवीं सदी [के] शुष्क और जनपद-विध्वंसकारी बुद्धिवाद से तंग आ[कर] मानव की समस्याओं का यही हल खोज निकाला है—

..... देखे कि यहाँ पर
कोई भी नहीं पराया
हम अन्य, न अन्य कुटुंबी
हम, केवल एक हमी हैं
ये सब मेरे अवयव हैं
जिसमें कुछ कमी नहीं है
शापित न यहाँ पर कोई
तापित पापी न यहाँ हैं
जीवन-वसुधा समतल है
समरस है जो कि जहाँ है।
सबकी सेवा न पराई
वह अपनी सुख-संसृति है
अपना ही अणु-अणु, कण-कण
द्वयता ही तो विस्मृति है।

सम्भव है, हमारे कवि को इसकी प्रेरणा [इस] वैदिक मंत्र से न मिली हो, फिर भी दोनों में [विचार-]साम्य आश्चर्यजनक है। सत्य तो यह है कि यह क[ल्पना] भारतीय साहित्य में सदा से ओत-प्रोत चली आ रही है। वेदान्त का तो भवन ही इसी आधार पर खड़ा है। यही है भगवान् बुद्ध के निर्वाण का स्वरूप। न [जाने] यह सुख-स्वप्न कब चरितार्थ होगा, यह साम[्य] स्थिति कब प्राप्त होगी!

जो हो, प्रसाद जी ने हमारा ध्यान एक बार फिर [बीते] हुए अतीत की ओर मोड़कर हमें उसकी याद दिला[दी] है। न केवल काव्य का उद्देश्य, कामायनी का कथासूत्र [भी] अत्यन्त पुरातन है। सम्भवतः इतना पुरातन [ज]ितनी कि वर्तमान मानव-सृष्टि। इसका मूल-[रूप] प्रकीर्ण रूप से ऋग्वेद में और कुछ विस्तारयुक्त [व] सुश्रृंखलित रूप से शतपथ ब्राह्मण, महाभारत, मत्स्य-[पु]राण व श्री मद्भागवत में पाया जाता है। यद्यपि इन [ग्र]न्थों के कथानकों में कुछ विभेद है, पर कामायनी के [क]वि ने अपनी प्रखर प्रतिभा की अग्नि से गलाकर [उ]नको एकसूत्रता और सामञ्जस्य के सुन्दर साँचे में [ढा]ल दिया है। ऋग्वेद के ८वें मंडल के २७ से ३१ सूक्त [त]क की ऋचाओं का ऋषि वैवस्वत मनु है। इसके [अ]तिरिक्त बालखिल्य सूक्त की ऋचाओं में भी वैवस्वत [म]नु का अनेक बार उल्लेख हुआ है। श्रद्धा-कामायनी भी [ऋ]ग्वेद के प्रसिद्ध श्रद्धासूक्त का ऋषि है। इडा का नाम [भ]ी ऋग्वेद में भरा पड़ा है। यह मनु की पुत्री, देवताओं [क]ी बहन और मनुष्यों पर शासन करनेवाली कही गई [है]। जलप्लावन का उल्लेख ऋग्वेद में स्पष्ट रूप में नहीं [म]िलता है, यद्यपि—

'ततः समुद्रो अर्णवः समुद्रादर्णवादधि
संवत्सरोऽजायत—

आदि मंत्रों से इसका कुछ आभास हमें अवश्य [म]िल जाता है। इस जलोत्प्लावन का उल्लेख सबसे [प]हले शतपथब्राह्मण में प्रथम काण्ड के अष्टम अध्याय [के] प्रथम ब्राह्मण में हुआ है। वहीं से लेकर समस्त [पु]राणों, बायबिल के 'जेनिसिस' (७ से ९ तक) में, [बेबिलो]नियावालों के 'डैल्यूज-टैबलेट' तथा यूनानियों के [ग्र]न्थों में इसका वर्णन किया गया है। ये उद्धरण [ब]तलाते हैं कि उक्त जलप्लावन विश्व-इतिहास की [क]ोई अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना अवश्य थी और यह भी [कि] पुरातन काल की मानवता में आश्चर्य-जनक एक-[त]ा थी। हमारे पुराणकारों ने तो इसी जलप्लावन [से स]प्तम मन्वंतर का आरम्भ माना है। इस प्रकार [सृ]ष्टि के आरम्भ की एक प्रधान घटना से अपने काव्य [क]ा आरम्भ करके प्रसाद ने मानवता के सूत्र-द्वारा हमारा सम्बन्ध प्रागैतिहासिक काल की सभ्यता के उस प्रथम प्रभात से जोड़ दिया है जिसको देखकर वैदिक ऋषि आनन्द-विभोर होकर नाच उठे थे, और जिस पर आधुनिक इतिहास कोई प्रकाश डाल सकने में असमर्थ है।

कामायनी का कथानक

सर्वथा शृंखलाबद्ध है। उसका विकास भी मनोवैज्ञानिक हुआ है। इसके नायक मनु जो अमर सृष्टि के जीव हैं, एक मत्स्य की कृपा से जलप्लावन से जीवित बच रहे हैं; शेष समस्त जनपद नष्ट हो गया है। वे हिमालय की एक ऊँची चोटी पर बैठे चिन्ता और भयाकुल दृष्टि से इस आकस्मिक प्रलय-काण्ड को देख रहे हैं। भूत की समृद्धि और वर्तमान का रोमांचकारी भय ही उनके विचार का विषय है। भविष्य की मीमांसा करने की न उन्हें आवश्यकता है, न क्षमता। वे सोचते ही जाते हैं। अपने एकाकीपन से उनका मन बहुत दुःखी है। वे एक ऐसे सहयोगी की आवश्यकता का बुरी तरह अनुभव कर रहे हैं जिससे वे अपने हृदय का यह भारी भार कुछ बँटाकर हलका कर सकें। धीरे-धीरे जलप्लावन कुछ घटता है। मनु उठते हैं। अपने लिए पहाड़ के पास ही समुद्रतट पर एक गुहा बनाते हैं और देवयज्ञ का क्रम आरम्भ करते हैं। यज्ञ के शेषान्न को किसी सम्भावित अतिथि के लिए वे प्रतिदिन दूर जंगल में रख आते हैं। इसी अन्न के सूत्र से खोज लगाती हुई श्रद्धा नाम की एक सुन्दरी उनके पास आती है। दोनों में परिचय का आदान-प्रदान होता है। श्रद्धा को मनु के अकेलेपन पर दया आती है और वह सहयोगी के रूप में उन्हीं के साथ रहने का निश्चय कर लेती है। वह मनु को उत्साह दिलाती रहती है। धीरे-धीरे मनु की पूर्व-संस्कारजन्य अधिकार-प्रवृत्ति जाग्रत होती है। वे श्रद्धा को एक मृगशावक को दुलराते देखकर कुछ खिन्न होते हैं। कारण, उनके मन में श्रद्धा के प्रति कुछ अनुराग उत्पन्न हो चुका है, जिसका रूप 'रोमांटिक' है। रोमांस प्रणयपात्र पर एकाधिकार चाहता है, बँटवारा नहीं। पर श्रद्धा भी चतुर है। वह मनु की दृष्टि से ही उनके मन का अध्ययन कर लेती है और मनु पर बहुत अधिक प्रेम प्रदर्शित करती है। जल का वेग आगे बाधा पाकर रुक जाता है, पर वह एकत्र होकर शक्ति-

संचय करने लगता है। ज्यों ही वह बाधा हटी कि प्रवाह द्विगुणित वेग धारण कर लेता है। यही दशा मनु की होती है। उनका मन प्रेम-मद-विभोर हो जाता है। वे समस्त प्रकृति को प्रेमस्नात देखने लगते हैं—

पशु कि हो पाषाण सबमें प्रेम का नव छन्द
एक आलिंगन बुलाता सभी को सानन्द
राशि-राशि बिखर पड़ा है शान्त-संचित-प्यार
रख रहा है उसे ढोकर दीन विश्व उधार!

मनु का हृदय इस रोमांस का सहारा नहीं पाता—धैर्य किनारा कर जाता है:—

छूटतीं चिनगारियाँ उत्तेजना उद्भ्रान्त
धधकती ज्वाला मधुर, था वक्ष विकल अशान्त
वात-चक्र समान कुछ, था बाँधता आवेश
धैर्य का कुछ भी न मनु के हृदय में था लेश।

मन की इसी उत्तेजना में वे श्रद्धा को हृदय समर्पण कर देते हैं—

आह वैसा ही हृदय का बन रहा परिणाम
पा रहा हूँ आज देकर तुम्हीं से निज काम
आज ले लो चेतना का यह समर्पण दान
विश्वरानी! सुन्दरी नारी! जगत की मान!

यह प्रेमोन्माद का आत्म-समर्पण है एक सुन्दरी नारी के लिए, जिसे वह अपने हृदय की रानी मान रहा है और जिसमें वह अपनी वासना की पूर्ति का स्वप्न देख रहा है। इसमें रूप और भोग की लालसा है, विश्व-कल्याण का प्रतिनिधि दाम्पत्य-भावना नहीं। इसी लिए तो कवि ने इसे 'वासना'-सर्ग में रक्खा है।

कामायनी ने अब तक मनु को सहयोगी और सहचर के रूप में देखा था, पुरुष या प्रेमी के रूप में नहीं। अब वासना का संचार होते ही उसमें लज्जा का प्रवेश होता है, जो अनिवार्य है। वासना और लज्जा परस्पर-पोषित भावनायें हैं। वह अपने मन में एक अपूर्व उथल-पुथल का अनुभव करती है। जिन मनु के साथ दैनिक व्यवहार चलाने में उसे कभी संकोच नहीं हुआ था उनके सामने आते ही—

छूने में हिचक देखने में
पलकें आँखों पर झुकती हैं
कलरव परिहास भरी गूँजें
अधरों तक सहसा रुकती हैं।

यह प्रथम प्रेम का आवेग है, जिसके प्रकाश ने वस्तुओं का रंग ही बदल दिया है। बात वही है, उसके अर्थ दूसरे होगये हैं। भाव वही है, पर व्या... में भेद हो गया है। इस वस्तुस्थिति में वह क्या करे? वह मनु की परीक्षा लेने का प्रयत्न करती है, पर अब इतनी दूर आकर वह भी कठिन होगया है—

मैं जभी तोलने का करती
उपचार स्वयं तुल जाती हूँ
भुज-लता फँसाकर नर-तरु से
झूले-सी झोंके खाती हूँ।

यह 'रोमांस' का आवेग है। इसमें सदसद्विवेक की गुंजायश नहीं। श्रद्धा भी मनु को आत्म-समर्पण करना चाहती है और वह समर्पण भी कैसा—

इस अर्पण में कुछ और नहीं
केवल उत्सर्ग छलकता है
मैं दे दूँ और न फिर कुछ लूँ
इतना ही सरल झलकता है।

पर स्त्री-सुलभ लज्जा उसे रोकती है और उसे उस... मूल-धर्म की याद दिलाती है—

'क्या कहती हो, ठहरो नारी
संकल्प अश्रुजल से अपने
तुम दान कर चुकीं पहले ही
जीवन के सोने से सपने

× × ×

आँसू से भीगे अञ्चल पर
मन का सब कुछ रखना होगा
तुमको अपनी स्मित रेखा से
यह सन्धि-पत्र लिखना होगा।

यह है नारी-जीवन की वास्तविकता! त्याग और अनुराग की प्रतिमा का रहस्य! जो आँखों में आँसू भर कर, पर होठों पर हँसी रखकर प्रेम का सन्धि-पत्र लिखती है और उसी में अपने हृदय का सब कुछ समर्पित कर देती है—बिना प्रतिदान या मूल्य की भावना के। इसी केन्द्र-बिन्दु के चारों ओर कामायनी के चरित्र का विकास हुआ है।

पुरुष का रोमांस अभिशाप होता है। यही मनु के ...य में भी सत्य है। वे किलातांकुलि की सहायता से ...करते हैं और उसमें श्रद्धा के स्नेह-पालित मृगशावक का बलिदान कर देते हैं। जिसे सब कुछ दिया उसके ... की अन्यासक्ति श्रद्धा को दुखी कर देती है। वह ...न्त कुटी में जा लेटती है और सोचती है—

कितना दुःख जिसे मैं चाहूँ
वह कुछ और बना हो
मेरा मानस चित्र खींचना
सुन्दर-सा सपना हो,

पुरोडाश और सोम मनु को भौतिक भोगों की प्रेरणा देते हैं। वे श्रद्धा की कुटी में पहुँचते हैं और उससे ...कर प्रार्थना करते हैं—

स्वर्ग बनाया है जो मैंने
उसे न विकल बनाओ।
इस निर्जन में ज्योत्स्ना पुलकित
विधु युत नभ के नीचे
केवल हम तुम और कौन है
रहो न आँखें मीचे।
आकर्षण से भरा विश्व यह केवल भोग्य हमारा।

जब समस्त प्रकृति प्रेमालिंगन-विभोर है, काम ...रूपता-द्वारा अपनी अभिव्यक्ति कर रहा है, युग्म ... भावना कण-कण में व्याप्त है, तब हमीं पृथक् ...यों रहें—

...लता पड़ी सरिताओं की शैलों के गले सनाथ हुए
जलनिधि का अंचल व्यजन बना धरणी का, दो-दो साथ हुए।

श्रद्धा भी मनु का आकर्षण अपनी ओर देखकर प्रसन्न ...जाती है और एक छोटी-सी शर्त के साथ—

औरों को हँसते देखो मनु
हँसो और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्तृत कर लो
सबको सुखी बनाओ।

...कर लेती है। पर कुछ समय बाद गर्भालसा ...द्धा में वह आकर्षण, वे रोमेंटिक-व्यञ्जनायें नहीं रहतीं। ...नु सोचते हैं कि श्रद्धा को क्या हो गया, इसके चुहल-...नोद कहाँ गये, क्यों यह मुझसे कुछ अलग-अलग ...ना चाहती है।

आती है वाणी में न कभी
वह चावभरी लीलाहिलोर
जिसमें नूतनता नृत्यमयी
इठलाती हो चंचल मरोर
× × जब देखो बैठी हुई वहीं,
शालियाँ बीनती अविश्रान्त,

आकर्षण का अभाव मन में उदासीनता को जन्म देता है।

मनु अब भी रोज शिकार खेलने जाते हैं, पर घर की ओर लौटने की उन्हें पूर्ववत् उत्सुकता नहीं होती। इधर से मनोविनोद के साधन बन्द देख वे अन्यत्र उन्हें ढूँढ़ने की सोचते हैं। एक दिन संध्या को मनु घर न जाकर आहत पशु व धनुर्बाण फेंक कर मार्ग में ही बैठ जाते हैं। श्रद्धा शाम को उन्हें खोजने जाती है। उसका गर्भालस शरीर मनु के हृदय में विरक्ति उत्पन्न करता है। श्रद्धा उनके मन का भाव ताड़ जाती है और मुसकाकर आग्रहपूर्वक उन्हें कुटी पर ले आती है। मनु खिन्न होकर उससे उसकी वर्तमान मनोऽवस्था का कारण पूछते हैं। वे कहते हैं कि तुम मेरे प्रति इतनी उदासीन क्यों हो रही हो? मैं शिकार खेल कर मांस और मृग-चर्म लाता हूँ, फिर तुम्हें शाली-संग्रह और सूत कातने में परिश्रम करने की क्या जरूरत? मैं तो चाहता हूँ कि तुम्हारा ध्यान मुझी में केन्द्रीभूत रहे और तुम उसे इधर-उधर बखेर रही हो। श्रद्धा अब 'माता' बनने जा रही है। उसमें गृहिणीत्व और मातृत्व की भावनाओं का साथ-साथ विकास हो रहा है। वह मनु को समझाती है कि जब वस्त्रों से शरीर ढँका जा सकता है, शाली से उदरपूर्ति हो सकती है, दुग्ध-पान से बल बढ़ सकता है, तब हिंसा क्यों की जाय, क्यों न हम सृष्टि को सुख से बढ़ने दें और स्वयं भी उसमें योग दें।

वह मनु को अपनी बनाई हुई कुटी दिखाकर कहती है कि देखो! मैंने यह एक छोटा सा नीड़ बनाया है। चिड़ियों के बच्चे अपने घोंसलों में चहक रहे हैं, पक्षी-दम्पति उनको चूमकर आनन्द-विभोर हो रहे हैं, पर हमारा यह नीड़ अभी सूना है। इसमें जब अतिथि (भावी-सन्तति) आये तब उसे अभाव न रहे और वह जंगली जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य न हो, इसी लिए मैं यह संग्रह कर

रही हूँ। अब, जब तुम बाहर जाया करोगे, मेरा समय एकाकीपन में न बीतेगा। मैं भी चहल-पहल में अपनी सन्तति के साथ समय काटूँगी।

पर गृहिणी की यह भूतदया और संग्रह-भावना मनु को पसन्द नहीं। वे चाहते हैं रोमांस! श्रद्धा की बातों से मनु को धारणा होती है कि श्रद्धा समस्त सुख-संभार को संचितकर स्वायत्त करना चाहती है। फिर मेरी स्थिति एक भिक्षुक की हो जायगी। वह दयापूर्वक जितना प्रेम मुझे दान कर देगी वही मुझे प्राप्त होगा। इस विचार से उनकी अधिकार-प्रवृत्ति भड़क उठती है—

> यह द्वैत! अरे यह द्विविधा तो
> है प्रेम बाँटने का प्रकार
> भिक्षुक मैं? ना यह कभी नहीं
> मैं लौटा लूँगा निज विचार!

अन्त में—

> तुम अपने सुख में सुखी रहो
> मुझको दुख पाने दो स्वतंत्र
> मन की परवशता महादुःख
> मैं यही जपूँगा महामंत्र!

कहकर वे घर से चल देते हैं।

मनु चारों ओर भटकते भटकते सारस्वत-प्रदेश में पहुँचते हैं। मार्ग में उन्हें 'काम के अभिशाप' के रूप में एक भविष्यवाणी सुनाई पड़ती है। काम के अभिशाप में मानवता की चिरन्तन कमज़ोरियों का सुन्दर प्रतिबिम्ब है। मनु को सारस्वत-प्रदेश की रानी इडा के दर्शन होते हैं। इडा अपने राज्य की व्यवस्था के लिए एक चतुर सहायक चाहती है। मनु उसकी बात मानकर व्यवस्था करने लगते हैं। देश आबाद और धन-धान्य-पूर्ण हो जाता है। प्रजा सुखी हो जाती है। पर मनु की उत्सर्पिणी अधिकार-भावना आगे बढ़कर इडा को भी—जो उसी की पुत्री और देवताओं की बहन है—स्ववश करना चाहती है और इस प्रकार सारस्वत-प्रदेश पर पूर्ण अधिकार चाहती है। इडा के प्रति मनु की यह दुर्भावना देवताओं को क्षुब्ध करती है। प्रजा में विद्रोह होता है। युद्ध होता है, मनु घायल होते हैं। प्रजा भी हज़ारों की संख्या में हताहत होती है। श्रद्धा यह दृश्य स्वप्न में देखती है। वह अपने पुत्र के साथ सारस्वत-प्रदेश पहुँचती है। [illegible] शुश्रूषा से मनु स्वास्थ्य-लाभ करते हैं, पर उनका [illegible] क्षोभ और ग्लानि से भरा है, अतः वे रात को उन [illegible] के पास से भाग खड़े होते हैं। श्रद्धा दुखी होती है। [illegible] को भी ग्लानि होती है। वह श्रद्धा से अपनी [illegible] का समाधान और क्षमा चाहती है। श्रद्धा उस[की] मनोभावना को ताड़ जाती है और अपने पुत्र मान[व] को उसे दे देती है। फिर वह अपने पति को खोजती है। मनु मिल जाते हैं, पर वे श्रद्धा से किसी ऐसे स्थान पर चलने को कहते हैं जहाँ उनके मन को शान्ति मिले। श्रद्धा उन्हें हिमवान् की उँचाई पर ले जाती है। मनु थक जाते हैं, पर श्रद्धा उन्हें लिये ही जाती है। अन्त में वे मानसरोवर व कैलाश में पहुँचते हैं, जहाँ सत्व-रज व तम लोक एकाकार हो जाते हैं। वहाँ मनु को शिव का विराट् नृत्य दिखाई देता है, जिसमें सब भेद लय हो जाते हैं तथा समत्व के अपार आनन्द की दिव्य चेतना जाग्रत् होती है।

कुछ दिनों के बाद इडा भी अपने पति के साथ मनु के दर्शन को जाती है। वहाँ मनु उन लोगों को विश्व-प्रेम का उपदेश करते हैं और संसार की विषमावस्था को मिटाने का उपाय बतलाते हैं।

चरित्र-चित्रण

की दृष्टि से भी कामायनी एक सफल रचना है। इसके चरित्रों का विकास नितान्त मनोवैज्ञानिक आधार पर हुआ है। इसमें ३ प्रधान पात्र हैं—(१) मनु, (२) श्रद्धा और (३) इडा। मनु महाप्रलय के बाद संत्रस्त और आतंकित हैं। प्रलय से पूर्व की सृष्टि के अहंभाव और संस्कार उनके हृदय में मौजूद हैं। वे स्वयं को अधिकारी मानते हैं। इस अधिकारिता का विनाश उन्हें ऊहा-पोह में डाल देता है। मनु मानवता के प्रतीक हैं। मानव का स्थान देवत्व और आसुर्य के बीच में है। उसकी एक सीमा देवत्व से और दूसरी आसुर्य्य से संस्पृष्ट रहती है। यही कारण है कि मनु में कभी देवत्व का प्राबल्य हो जाता है, कभी आसुर्य का। मनन इसे मध्यविन्दु मानवत्व पर संतुलित रखता है। पर इस मनन को बाह्य आधार चाहिए। [illegible] अघटित घटना-प्रक्षेप या संघर्ष-द्वारा मिलता है। मानव [illegible] समस्त दुर्बलतायें मनु में हैं। वे भूत-सुखों के [illegible] से सन्तप्त हैं—

> गया सभी कुछ गया, मधुरतम
> सुरबालाओं का शृंगार
> उषा ज्योत्स्ना का यौवन स्मित
> मधुप सदृश निश्चिन्त विहार!
> कंकण क्वणित रणित नूपुर के
> हिलते थे छाती पर हार
> मुखरित था कलरव, गीतों में
> स्वर लय का होता अभिसार।
> सौरभ से दिगन्त पूरित था
> अन्तरिक्ष आलोक अधीर
> सबमें एक अचेतन गति थी,
> जिससे पिछड़ा रहे समीर।

पर ये देव-सृष्टि के सुख-विलास नष्ट होगये। [मनु] को यही चिन्ता है। परन्तु मस्तिष्क इसका भी [समा]धान ढूँढ़ निकालता है। यही मानव-स्वभाव का [illegible] है। अंधकार का कारण और उसमें भी प्रकाश [की] एक किरण पा लेने की उसमें अद्भुत क्षमता है। [illegible]शीलता कभी पराजय स्वीकार नहीं करती, क्योंकि [उस]का जीवन विजय के ऊपर निर्मित है। मनु इस [आक]स्मिक प्रलय का कारण भी खोज लेते हैं—

> स्वयं देव थे हम सब, तो फिर
> क्यों न विश्रृंखल होती सृष्टि
> अरे अचानक हुई इसी से
> कड़ी आपदाओं की वृष्टि

देवसृष्टि की यह धारणा मिथ्या थी कि प्रकृति पर पूर्ण शासन प्राप्त होगया है—

> शक्ति रही हाँ शक्ति, प्रकृति थी
> पद-तल में विनम्र विश्रान्त
> कँपती धरणी उन चरणों से
> होकर प्रतिदिन ही आक्रान्त।

[illegible]क—

> प्रकृति रही दुर्जेय, पराजित
> हम सब थे भूले मद में
> भोले थे, हाँ तिरते केवल
> हम विलासिता के मद में।

यह विलासिता का अतियोग ही सृष्टि-विनाश का कारण बना। यह पराजित मन की विजय-घोषणा है। इसमें आत्म-समाधान की प्रवृत्ति-मात्र है; भविष्य की अवधारणा नहीं। मनुष्य को अपनी भूलें परमप्रिय होती हैं। मनु भी यह जानते हुए भी कि विलासिता ही प्रलय का कारण थी, फिर उसी से लिप्त होना चाहते हैं। भूत-वैभव की स्मृतियाँ उनके चित्त को चैन नहीं लेने देतीं; सोचना समाप्त नहीं होता; गरम वाष्प से बना बुलबुला जब अधिक से अधिक फैल जाता है तब फूटने में ही शान्ति का अनुभव करता है। मनु भी इस परिणामहीन मनन से त्राण चाहते हैं, भले ही वह चेतना के मूल्य में मिले—

> विस्मृति का अवसाद घेर ले
> नीरवते! बस चुप कर दे
> चेतनते! चल जा, जड़ता से
> आज शून्य मेरा भर दे।

पर मनन तो इस जड़ता की आराधना में भी है। वह तो मन के साथ लगा है! जब हमें और कोई चारा नहीं रहता और बाहर से पराजय ही पराजय दिखाई देती है तब हम आत्मालोचन या स्वभर्त्सना-द्वारा ही मन को समाधान करने का प्रयत्न करते हैं। इस मनन का आश्रय आशा होती है। मनु भी इसी पतले धागे के सहारे कुछ अन्न दूर रख आया करते हैं! सम्भव है, कोई भूला-भटका उधर से आ निकले! यहीं श्रद्धा का आगमन होता है। उसके प्रवेश में ही नारी का ओज और प्राणदायिनी शक्ति है। वह मनु को उत्तेजना देकर आत्मरूप की स्मृति फिर से कराती है—

> अरे तुम इतने हुए अधीर!
> हार बैठे जीवन का दाँव
> जीतते मरकर जिसको वीर!

यह प्रलय देखकर क्यों दुखी होगये। इससे तो तुम्हारा हित हुआ है। इसने देव-सृष्टि का आतंक मिटा दिया, अब तुम्हें मानवता के प्रचार-प्रसार का अवकाश मिलेगा—प्रकृति तो सदैव नवीनता चाहती है—

> प्रकृति के यौवन का शृंगार
> करेंगे कभी न बासी फूल

पुरातनता का यह निर्मोक
सहन करती न प्रकृति पल एक—
नित्य नूतनता का आनन्द
किये है परिवर्तन में टेक।

मनु का श्रद्धा के प्रति आकर्षण होता है, जिसका प्रस्फुटीकरण मृगशावकवाली घटना से होता है। अब वे फिर उसी विलासिता में फँस जाते हैं, मानो श्रद्धा के रूप में उन्हें सब कुछ मिल जाता है। वे श्रद्धा के सौन्दर्य-रस से एक बार में ही तृप्ति चाहते हैं, क्योंकि भविष्य के प्रति उनका मन आश्वस्त नहीं है। वासना अतृप्ति को जन्म देती है और अतृप्ति से क्रोध या वैराग्य का जन्म होता है। श्रद्धा का गर्भालस रूप मनु के उद्वेग का कारण बन जाता है, और वे उसे छोड़कर चल देते हैं। पर घर उन्हें बार-बार अपनी ओर खींचता है और अधिकार-वासना बाहर को ढकेलती है। इसी समय इडा की अवतारणा होती है। इडा में मनु को घर और रमणी सब कुछ मिल जाता है। वे अपने को सुखी और पूर्ण अनुभव करने लगते हैं। पर इडा उन्हें पति-रूप में स्वीकार नहीं करती। यहीं पुरुष की अधिकार-भावना फिर ज़ोर मारती है। मनु उसे बलात्कारपूर्वक अपने वश में करना चाहते हैं। देवगण कुपित होते हैं। मनु घायल हो जाते हैं। यहीं श्रद्धा का मातृ-रूप प्रकाश में आता है, जिसे देखकर मनु कह उठते हैं—

रमणी तुम नहीं आह
जिसके मन में हो भरी चाह
तुमने अपना सब कुछ खोकर
वंचित जिसे पाया रोकर
मैं भगा प्राण जिनसे लेकर,
उसको भी, उन सबको देकर।

मातृमूर्ति में स्नेह और त्याग का कितना मधुर संमिश्रण है! उसी की ओर इस उद्धरण में संकेत किया गया है। श्रद्धा के रमणीरूप की झलक हम ऊपर देख ही चुके हैं।

इडा बुद्धि का साकार प्रतीक है। श्रद्धा उसकी विवेचना इस रूप में करती है—

सिर चढ़ी रही पाया न हृदय
तू विकल कर रही है अभिनय
सब निज पथ पर चल रहे शान्त
प्रत्येक विभाजन बना भ्रान्त
चेतनता का भौतिक विभाग
कर जग को बाँट दिया विराग!

इधर इडा अपनी भूलों का सुधार तो चाहती, पर विरक्ति का उपदेश नहीं चाहती—

दो क्षमा न दो अपना विराग
सोई चेतनता उठे जाग!

इडा के हृदय की एक झाँकी वहाँ भी मिलती, जहाँ वह घायल मनु को रखाती हुई अँधेरी रात कहती है—

इसे दंड देने मैं बैठी
या करती रखवाली मैं
यह कैसी है विकट पहेली
कितनी उलझनवाली मैं

मनु के पराभव के कारण का वह कैसा अनुमान करती है—

अपना हो या औरों का सुख
बढ़ा कि बस दुख बना वहीं।

पर सुख की चरम सीमा क्या? कहाँ पहुँच कर रुक जाना चाहिए, यह भी तो निर्धारण नहीं हो सका।

उपर्युक्त उद्धरण यद्यपि इस रचना के—

काव्यगत-सौन्दर्य

को बताने के लिए पर्याप्त हैं, फिर भी इसके अन्य स्थल और भी बड़े सुन्दर हैं। लज्जा का वर्णन देखिए—

कोमल किसलय के अंचल में
नन्ही कलिका ज्यों छिपती सी
गोधूली के धूमिल पट में
दीपक के स्वर में दिपती सी
मंजुल स्वप्नों की विस्मृति में
मन का उन्माद निखरता ज्यों
सुरभित लहरों की छाया में
बुल्ले का विभव बिखरता ज्यों
नीरव निशीथ की लतिका में
तुम कौन आ रही हो बढ़ती
कोमल बाहें फैलाये सी
आलिंगन का जादू पढ़ती

मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ,
मैं शालीनता सिखाती हूँ
मतवाली सुन्दरता पग में
नूपुर सी लिपट मनाती हूँ
लाली बन सरल कपोलों में
आँखों में अंजन सी लगती
कुंचित अलकों सी घुँघराली
मन की मरोर बनकर जगती
चंचल किशोर सुन्दरता की
मैं करती रहती रखवाली
मैं वह हलकी-सी मसलन हूँ
जो बनती कानों की लाली।

गर्भालस सौन्दर्य का चित्र जितना सुन्दर व सुरुचिपूर्ण प्रसाद जी ने खींचा है, उतना कालिदास के अतिरिक्त और किसी से भी खींचते नहीं बना—

श्रद्धा कुछ कुछ अनमनी चली,
अलकें लेती थीं गुल्फ चूम
केतकी गर्भ-सा पीला मुख
आँखों में आलस भरा स्नेह
कुछ कृशता नई लजीली थी
कंपित लतिका-सी लिये देह,
मातृत्व बोझ से झुके हुए
बँध रहे पयोधर पीन आज
× × सोने की सिकता में मानो
कालिन्दी बहती कर उसास
× × श्रम-बिन्दु बना-सा झलक रहा
भावी जननी का सरस गर्व
बन-कुसुम बिखरते थे भू पर
आया समीप था महापर्व

यही क्यों, प्रकृति के एक से एक सुन्दर चित्र कामायनी में मिलते हैं। इनकी टक्कर के चित्र हिन्दी-साहित्य में अन्यत्र कम मिलते हैं। इसमें प्रकृति के दोनों प्रकार के सफल वर्णन हैं—मानव भावानुरूपी या सापेक्ष्य एवं स्वतंत्र या निरपेक्ष्य। इस विषय में प्रसाद की टक्कर का कवि हिन्दी के पुराने कवियों में कोई भी नहीं है। इतना जानने के बाद यह निर्णय करना सरल है कि कामायनी

एक महाकाव्य

है इसमें मानव-जीवन की सम्पूर्ण और मौलिक व्याख्या है। इसमें चिरन्तन जिज्ञासा है और उसकी शान्ति है। इस महल का निर्माण दार्शनिक पृष्टिभूमि पर हुआ है, जिसमें अखिल मानवता का समावेश हो सकता है। रामचरितमानस के बाद हिन्दी में यही एक रचना है, जिसे हम सच्चे अर्थों में महाकाव्य कह सकते हैं। इसकी कल्पना में समुद्र की विशालता, भूमि का प्रस्तार और हिमालय की उच्चता है। इसमें सृष्टि के प्रथम प्रभात का सौन्दर्य है और मानव-संस्कृति की स्थापना का इतिहास है। जो वस्तु इसमें नहीं है वह है—सस्ती भावुकता, जिसके पीछे आज का पाठक दीवाना बन गया है। इसमें मानवता के शुद्ध और मौलिक रूप का चित्रण है और उसकी पूर्णता के लिए मार्ग-निर्देश भी किया गया है। यही सब एक महाकाव्य के अपेक्षित गुण हैं। इसका कथानक, निर्वाह, उठान, वर्णन, चित्रण और दृष्टिकोण सब कुछ इतना महान् है कि पाठक को पद-पद पर आश्चर्यचकित होना पड़ता है। इसकी एक-एक पंक्ति एक-एक ग्रन्थ है। सृष्टि के लिए बीज का गलना, अंकुरित होना, पल्लवित होना, फूलना और फलना सब कामायनी में एकत्र मिलते हैं। इसका मर्त्यलोक स्वर्ग से स्पृष्ट है पर अपनी सत्ता के प्रति सतर्क है; उसमें लालसा है, यत्न है, अधिकार-वासना है, पर गौरव और महत्ता के साथ। इसके जीवन में अधम कामुकता नहीं है। यदि उसके कहीं दर्शन भी हो जाते हैं तो संस्कार-दोष से मिथ्या-धारणा के कारण। 'कामायनी' के रूप में प्रसाद ने हिन्दी को सब कुछ दे दिया है। शताब्दियों के बाद मातृभाषा के अभाव की यह सुन्दर पूर्ति देखकर साहित्य-रसिकों को अपार आह्लाद होगा। हिन्दी की यही एक ऐसी आधुनिक रचना है जिसे हम विश्व-साहित्य के चुने हुए ग्रन्थरत्नों के मुक़ाबिले में सगर्व उपस्थित कर सकते हैं। इस छोटे से लेख में कामायनी का पूरा परिचय दे सकना भी असम्भव है। इसके लिए पूरी पुस्तक लिखनी चाहिए।
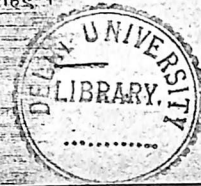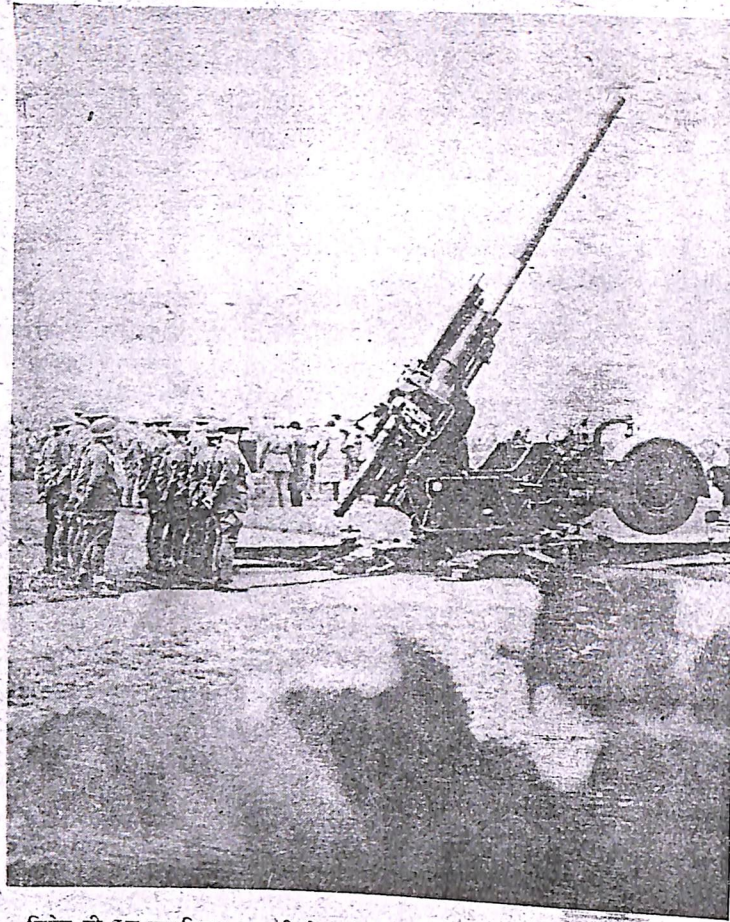
ब्रिटेन की एक आधुनिकतम हवाई तोप, जिसका प्रदर्शन हाइडपार्क में किया गया था।

विन्डसर के ड्यूक अपनी पत्नी के साथ पेरिस के प्रेसस-नाइट-भोज में।

...ननीय श्रीयुत बूटासिंह, जो हाल में खालसा-...जेज, अमृतसर, के डाइरेक्टर नियुक्त हुए हैं।

मिस्टर अब्बास खलील, आई० सी० एस०—आप भारत-सरकार के आडर-सेक्रटरी नियुक्त हुए हैं।

मिस्टर ए० के० विलकिंसन, जो कानपुर के उत्तरी भारत इम्प्लायर्स-एसोसिएशन के चेयरमैन नियुक्त हुए हैं।

दिल्ली में रेलवे-स्टेशन पर किसान-नेता स्वामी सहजानन्द जी का स्वागत।

तक्षशिला-स्कूल के छात्र महात्मा जी को उनकी पिछली सीमाप्रान्त-यात्रा के अवसर पर 'गार्ड-आफ़ आनर' दे रहे हैं।

चीन जाते हुए नेहरू जी को ...मान् हाथीसिंह व माननीया ...मती पंडित बिदाई दे रही हैं।

चीन जाते हुए बमरौली-एरोड्रम पर नेहरू जी।

शिमला के रिक्शा-कुलियों में साक्षरता का प्रचार।

मैसूर के युवराज आप स्वास्थ्य-सुधार के लिए हाल ही मे बाहर गय हैं।

मिस्टर ए० के० विलकिंसन, जो कानपुर के उत्तरी भारत इम्प्लायर्स-एसोसिएशन के चेयरमैन नियुक्त हुए हैं।

दिल्ली में रेलवे-स्टेशन पर किसान-नेता स्वामी सहजानन्द जी का स्वागत।

तक्षशिला-स्कूल के छात्र महात्मा जी को उनकी पिछली सीमाप्रान्त-यात्रा के अवसर पर 'गार्ड-आफ़ आनर' दे रहे हैं।

चीन जाते हुए नेहरू जी को ीमान् हाथीसिंह व माननीया ीमती पंडित बिदाई दे रही हैं।

चीन जाते हुए बमरौली-एरोड्रम पर नेहरू जी।

शिमला के रिक्शा-कुलियों में साक्षरता का प्रचार।

मैसूर के युवराज ' आप स्वास्थ्य-सुधार के लिए हाल ही में बाहर गये हैं।

पोलेंड और डैंज़िग

श्री एम० यू० जेन बनासिस्की महोदय पोलेंड के बम्बई-स्थित राजदूत हैं। हाल में एक सभा में जो बम्बई में हुई थी, पोलेंड और डैंज़िग की समस्या पर उन्होंने अपने विचार प्रकट किये थे। उस भाषण का सारांश 'लोकमान्य' में छपा है, जिसका एक अंश यह है—

डैंज़िग की समस्या पर केवल पोलेंड का ही भाग्या-भाग्य निर्भर नहीं है, बल्कि उसका प्रभाव संसार की राजनीति पर भी पड़ेगा। पोलेंड डैंज़िग की समस्या को भली भाँति समझता है तथा वह उसका मुक़ाबिला करने के लिए भी कटिबद्ध है। पोलेंड डैंज़िग के विषय में ज़रा भी झुकने को तैयार नहीं है और वह सुई की नोक के बराबर भूमि भी दूसरे राज्य को नहीं दे सकता। जर्मनी से किसी भी दशा में वह दबने को तैयार नहीं है।

डैंज़िग की भौगोलिक परिस्थिति ही ऐसी है कि वह पोलेंड का एक अंग कहा जाय, क्योंकि वह विस्चुला नदी के मुहाने पर बसा हुआ एक शहर है। यह नदी पोलेंड से होकर बहती है और इस प्रकार डैंज़िग पोलेंड के लिए स्वाभाविक बन्दरगाह है। डैंज़िग की वृद्धि-संवृद्धि और खपत पोलेंड के कारण हुई है। पोलेंड की भीतरी उपज तथा चीज़ों की खपत के कारण ही डैंज़िग संसार का एक प्रसिद्ध बन्दरगाह बना हुआ है; डैंज़िग पोलेंड की उन्नति और संवृद्धि में सहायक है।

पुराने ज़माने में डैंज़िग पोलेंड का बन्दरगाह था। उस समय वह बाल्टिक सागर के सभी बन्दरगाहों में समृद्धिशाली और भव्य नगर था। परन्तु जब पुराने पोलेंड की स्वतन्त्रता का अपहरण हो गया तब डैंज़िग का महत्त्व जाता रहा। वह जर्मनी के प्रान्त की राजधानी मात्र रह गया। यहाँ पर जर्मन-सेना का अड्डा बनाया गया। योरपीय महायुद्ध के बाद पोलेंड को पुनः डैंज़िग का बन्दरगाह मिल गया। इस [illegible] डैंज़िग के भी दिन फिरे। धीरे धीरे उन्नति करते [illegible] अब उसने बाल्टिक समुद्र के बन्दरगाहों में [illegible] स्थान प्राप्त कर लिया है।

यह अभाग्य की बात है कि डैंज़िग के निवासी [illegible] हैं। परन्तु सुडेटन के जर्मनों की भाँति उन्हें यह [illegible] नहीं है कि उनका प्रान्त दूसरे राज्य में मिला हुआ [illegible] उन्हें हर एक प्रकार की नागरिक स्वतन्त्रता प्राप्त [illegible] यदि वे चाहें तो नाज़ी-संस्कृति के अनुसार भी [illegible] व्यतीत कर सकते हैं। केवल अपनी भौगोलिक [illegible] के कारण ही डैंज़िग पोलेंड का एक भाग बना हुआ [illegible] इसके अतिरिक्त डैंज़िग-सीनेट में और पोलेंड में [illegible] आशय की संधि भी हो चुकी है। इसलिए पो[illegible] निवासियों को पूर्ण अधिकार है कि वे डैंज़िग को [illegible] बन्दरगाह बनावें।

इन सब बातों के होते हुए भी क्या कारण [illegible] कि जर्मनी डैंज़िग पर अधिकार जमाना चाहता [illegible] इसका उत्तर आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व प्रशिया [illegible] फ़्रेड्रिक ने उस समय दिया था जब उसने डैंज़िग [illegible] अधिकार जमाया था। उसने कहा था कि वास्तव [illegible] पोलेंड का राजा वही है जिसके अधिकार में [illegible] का मुहाना और डैंज़िग शहर हो, इससे कोई [illegible] नहीं कि पोलेंड किसके अधिकार में है। डैंज़िग [illegible] हथियाने के लिए जर्मनी ने स्वतन्त्रता और [illegible] की जो दलील पेश की है वह तो केवल बहाना [illegible] है। क्या ये दलीलें उनके मुख से शोभा देती [illegible] जिन्होंने अभी हाल में ही ८० लाख ज़ेकों की स्वतन्त्रता का अपहरण किया है? क्या यह उचित [illegible] ४०० हज़ार व्यक्तियों को स्वतन्त्रता प्रदान [illegible] के लिए ३५० लाख व्यक्तियों की स्वतन्त्रता का [illegible] हरण किया जाय?

परन्तु नाज़ियों को भली भाँति यह विदित [illegible]

[illegible] वे डैंज़िग पर अधिकार जमा लेंगे तो वे पोलेंड [illegible] समुद्र से अलग कर देंगे। आर्थिक तथा सैनिक [illegible]व के कारण वे या तो डैंज़िग को अपने पक्ष का एक [illegible]ष्ट्र बना लेंगे। आप यह पूछ सकते हैं कि जब पोलेंड [illegible] पास अपना बन्दरगाह गायना मौजूद है तब वह [illegible]ज़िग के लिए इतना व्यग्र क्यों हो रहा है? यह [illegible]म्भव है कि पोलेंड अपना कार्य डैंज़िग के बिना [illegible] ले तथा अपना आयात-निर्यात गायना से करे। [illegible]न्तु क्या जर्मन डैंज़िग का इस प्रकार उजड़ना देख [illegible]ते हैं? वे यह कभी सहन नहीं कर सकते। इसके [illegible]रीत जर्मनी की सैनिक तैयारियों के कारण [illegible]लेंड का अस्तित्व सर्वदा ख़तरे में रहेगा तथा उसकी [illegible]तन्त्रता दिखावटी होगी।

ऐसी क्या ज़रूरत पड़ी है जो पोलेंड डैंज़िग पर जर्मनी [illegible] अधिकार न होने देने के लिए युद्ध करे। परन्तु यह [illegible]रण रखना चाहिए कि डैंज़िग को जीतने के बाद [illegible] जर्मन पोलेंड की ३५० लाख जनता को अपने [illegible] में ढालेंगे। इसके बाद वे संसार में सर्वश्रेष्ठ [illegible]ष्ट्र होने का दावा करेंगे। मेमेल, कियोन्सबर्ग, डैंज़िग, [illegible] स्टेटिन पर अधिकार हो जाने से बाल्टिक सागर [illegible] जर्मनी की प्रधानता हो जायगी। स्कैन्डेनेविया और [illegible]कान प्रायद्वीप के सभी राष्ट्र जर्मनी की अधीनता स्वीकार [illegible]रने के लिए बाध्य किये जायँगे। जैसा कि हर हिट[illegible]र ने नाज़ी बाईबिल में लिखा है कि रूमानिया की तेल [illegible] खानें और अकेरनी के मैदान तत्काल ही जर्मनी में [illegible]मिला लिये जायँगे। उस समय संसार के प्रजातन्त्र राष्ट्रों [illegible] लिए अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करना कठिन [illegible]र्य होगा। यह सौभाग्य की बात है कि संसार के [illegible]जातन्त्र राष्ट्रों ने इस महत्त्व को समझ लिया है [illegible] अब डैंज़िग के विषय में कोई समझौता असम्भव [illegible] गया है।

सीलोन के भारतीय

सीलोन से भारत का सदैव घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। पर आज वहाँ भी भारतीयों के साथ अन्याय किया जा रहा है। इस विषय पर 'प्रताप' में श्री नरोत्तमसहाय, बी० ए०, ने अच्छा प्रकाश डाला है। उनके लेख का कुछ अंश इस प्रकार है—

सीलोन के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक 'सीलोन, सीलोनवासियों के लिए', 'भारतीयों को निकाल बाहर करो' आदि अशुभ नारों से परिपूर्ण हो रहा है। कई हज़ार आदमी जो बरसों से सरकारी नौकरी करते आ रहे हैं—चाहे वे मुस्तक़िल हों या दूसरी तरह के, बर्ख़ास्त किये जा रहे हैं। ख़ानगी फ़र्मों से भी कहा गया है कि वे सरकार की नीति के समर्थन में अपने यहाँ काम करनेवाले भारतीयों को निकाल बाहर करें। सीलोन की सरकार ने खेतों में काम करनेवाले मज़दूरों को वोट देने का अधिकार देने से इनकार कर दिया है। मध्यस्थिति-वाले भारतीय ज़मीन नहीं ख़रीद सकते। ख़ानगी फ़र्मों में काम करनेवाले नौकरों की संख्या का पता लगाया जा रहा, ताकि उन पर भी ज़ुल्म ढाये जा सकें।

कुछ वर्षों पहले भारतीयों और लङ्का-निवासियों में किसी प्रकार का कोई मतभेद न था, पर सन् १९३१ में जब डोनोगमोर-विधान लागू हुआ तभी से आशङ्का और पारस्परिक विरोध का वातावरण क्रमशः तीव्र होने लगा। उक्त शासन-विधान के अनुसार देश का शासन लोकप्रिय मन्त्रिगणों के हाथ में चला गया और जो भारतीय लङ्का में ५ वर्ष से अधिक रह चुके थे, उन्हें अन्य सिंहली लोगों के समान वोट देने का अधिकार मिल गया। इस पर सिंहली लोग घबड़ाये। उन्हें भय हुआ कि कहीं भारत के लोकप्रिय नेता वहाँ आकर अपनी प्रभुता स्थापित न कर लें। उन्हें यह भी भय हुआ कि अगर भारतीय मज़दूरों का आना बदस्तूर जारी रहा तो एक दिन उनकी संख्या इतनी बढ़ जायगी कि वे अपना आधिपत्य स्थापित कर लेंगे। परन्तु खेतों के मालिक यह न चाहते थे कि भारतीयों के आगमन पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध लगे, अतः मन्त्रिमंडल भी ख़ामोश रहा। सन् १९३४ में सीलोन की स्टेट-कौंसिल ने यह प्रस्ताव पास किया कि सीलोनवासियों के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति को सरकारी नौकरियों में जगह न दी जाय। इस आज्ञा के होते हुए भी विभागों के अध्यक्ष भारतीयों को सरकारी नौकरियों में स्थान देते ही रहे।

अभी हाल में ही स्टेट-कौंसिल ने एक बिल पास किया है। इस बिल का असर लगभग ९,००० नित्य वेतन पानेवाले कर्मचारियों पर पड़ेगा। इतना ही नहीं, इस बिल के अनुसार उन सभी नित्य वेतन पानेवाले कर्मचारियों को देश से निकालकर भारत भेज दिया जायगा जो पहली अप्रैल सन् १९३४ के बाद सरकारी नौकरियों में प्रविष्ट हुए थे। इन मज़दूरों को सन् १९३९ की पहली जुलाई को नोटिस दे दिया जायगा और जब वे गाँव पहुँच जायँगे तब उनको एक माह की अतिरिक्त तनख्वाह भी दे दी जायगी। शेष ८००० भारतीय कर्मचारियों से यह कहा है कि यदि वे ३१ दिसम्बर सन् १९३९ तक स्वेच्छा से अपनी नौकरी छोड़कर भारत चले जायँ तो उनको थोड़ी सी रक़म मुआवज़े के रूप में दे दी जायगी, अन्यथा किसी भी समय उनको निकाल बाहर किया जा सकता है।

कोलम्बो के विभिन्न भागों में सुप्रतिष्ठित भारतीयों की खुले आम बेइज़्ज़ती की जाती है। ग़ैर ज़िम्मेदार सिंहली कविताओं तथा लेखों-द्वारा भारतीय विरोधी भावना का प्रचार करते हैं। कई बार भारतीयों की सभा में सरे आम पत्थर और ईंटें फेंक कर उसे भंग कर दिया गया। कई बार तो स्थिति इतनी बेक़ाबू हो गई कि पुलिस की सहायता लेना अनिवार्य हो गया। कोशिश यह की जा रही है कि बर्मा की भाँति सीलोन में दंगा हो जाय। सीलोननिवासी भारतीय आज अत्यन्त भयभीत हैं। शिक्षा-सचिव सैकड़ों भारतीय शिक्षकों को निकालने की फ़िक्र में हैं। कोलम्बो-म्युनिसिपल कौंसिल में मज़दूर-नेता मिस्टर ए० ई० गुनेसिंह ने एक बिल इस आशय का पेश किया था कि सभी रोज़ तनख्वाह पानेवाले ग़ैर-सिंहली मज़दूरों को निकाल दिया जाय। उक्त बिल को एक कमिटी के सिपुर्द कर दिया गया है। अगर वह पास हो गया तो ३००० भारतीय और बेकार हो जायँगे। इतना ही नहीं, अभी चन्द दिन पहले सिंहली लोगों से यह अपील की गई कि भारतीय दूकानदारों का बहिष्कार कर दिया जाय।

मन्त्रिगण इस भारत-विरोधी भावना पर बिलकुल खामोशी धारण किये हुए हैं। इसका कारण यह है कि जनता के इस बढ़ते हुए असन्तोष में वे [illegible] शासन-सम्बन्धी कमज़ोरियों को छिपाना चाहते हैं।

मंगोलिया

आज जापान ने चीन का अधिकांश महत्त्वपू[illegible] भाग अपने अधिकार में कर लिया है। इसके [illegible] स्वरूप अब वह रूस के आमने-सामने आ गया [illegible] यही नहीं, मंगोलिया की सीमा पर उसकी सेना[illegible] से रूसी सेनाओं का संघर्ष भी होने लगा है। [illegible] दशा में मंगोलिया का परिचय प्राप्त करना समाचार[illegible] पत्रों के पाठकों के लिए अधिक रुचिकर होगा[illegible] साप्ताहिक 'प्रताप' में मंगोलिया के सम्बन्ध में [illegible] लेख छपा है, जिसका अधिकांश यह है—

मंगोलिया में गत वर्षों से सोवियट रूस, चीन [illegible] जापान का एक त्रिभुजाकार संघर्ष जारी है। इन [illegible] में से प्रत्येक राष्ट्र लगभग १० लाख वर्ग मील के [illegible] प्रदेश—आन्तरिक और बाह्य मङ्गोलिया पर अधिका[illegible] ज़माकर उससे लाभ उठाना चाहता है। युद्ध की आ[illegible] दिन-ब-दिन गम्भीर होती जा रही है। समाचार [illegible] कि वहाँ पर छुटपुट हमले काफ़ी तादाद में किये [illegible] रहे हैं। यदि युद्ध प्रारम्भ हो गया तो समस्त प्रदे[illegible] रक्त से लाल हो जायगा।

मङ्गोलिया का सुविस्तृत प्रदेश चारों ओर पहाड़ि[illegible] से घिरा हुआ है। यहाँ के निवासियों में खानाबदो[illegible] की संख्या अधिक है और देश का एक बहुत बड़ा हिस्[illegible] रेगिस्तान से तथा घास के मैदानों से आवृत है। बा[illegible] मङ्गोलिया ३,६०,००० वर्ग मील का एक पहाड़ी [illegible] है। गोबी के २,६०,००० वर्ग मील लम्बे-चौड़े [illegible] मैदान में जापानी और रूसी सेनाओं में मुठभेड़ [illegible] रही है। जापानी लोगों का कथन है कि इसका मु[illegible] कारण रूस-निवासी हैं। वहाँ के निवासी आम तौर [illegible] सभ्यता के प्रारम्भिक युग में ही हैं। वे जानवर पा[illegible] हैं और उन्हीं को अपना सर्वस्व समझते हैं। जुट[illegible] खेती करना तो आज भी नहीं जान सके हैं। फिर [illegible] देश में उर्वरा शक्ति की कमी नहीं है और इस बात [illegible] सख़्त ज़रूरत है कि भूमि को जोतकर उससे ला[illegible] उठाया जाय।

इतने बड़े देश में केवल ४० या ५० लाख मङ्गोल [illegible] निवास करते हैं। ये लोग अपने को चंगेज़खाँ का [illegible] कहते हैं और बड़े गर्व से उसका नाम लेते हैं। [illegible]भग एक हज़ार वर्ष पूर्व इतिहास में इनका नाम [illegible] न था। पारस्परिक कलह और आपसी संघर्ष में [illegible]होंने युद्ध-कला की शिक्षा ग्रहण की। एकाएक तेरहवीं [illegible]ब्दी में कुशल नायकों के नेतृत्व में इन लोगों ने [illegible]िया ही नहीं, किन्तु योरप के भी बड़े बड़े भू-प्रदेशों [illegible] आधिपत्य स्थापित कर लिया। इन्होंने अनेक राष्ट्रों [illegible] मूलोच्छेदन कर डाला और इसी प्रकार एक के बाद [illegible] देश को जीतते हुए ये हंगरी तक पहुँच गये। अन्त [illegible] 'मङ्गोल' शब्द एक बेहद भयानक चीज़ हो गया। [illegible] उन्नति की चरमसीमा पर पहुँचने के बाद ये उसी [illegible]श में, जहाँ पर बड़ी आनबान से शासन कर चुके थे, [illegible] नगण्य जाति की भाँति जीवन-यापन करने लगे।

बाह्य मङ्गोलिया की आबादी लगभग १० लाख [illegible]। सन् १९१५ में वह चीन से अलग हो गया और [illegible]शासनप्राप्त राष्ट्र मान लिया गया। फिर भी राज[illegible]तिक और आर्थिक दृष्टि से इस पर रूस का आधि[illegible] है। आन्तरिक मङ्गोलिया की आबादी भी लगभग [illegible]नी ही होगी। इस पर कुछ वर्ष पहले चीनी अधिकार [illegible], पर आजकल जापानी शासन का बोलबाला [illegible]। आज के मङ्गोल प्राचीन मङ्गोलों से बहुत भिन्न [illegible]। उनके अन्दर भावना-सम्बन्धी महान् परिवर्तन [illegible]आ है। वे अत्याचारी बहादुर लड़ाके जिनसे किसी [illegible] दुनिया काँपती थी, आज दयापूर्ण दिखाई देते हैं। [illegible]-धर्म ने अहिंसा परमो धर्मः की वाणी से उनके हृदय [illegible] कठोरता को पिघलाकर उनको कोमल बना दिया है।

सम्भवतः अपनी इसी कोमल वृत्ति के कारण वे [illegible], रूस और जापान के शासन को स्वीकार करते [illegible]ये हैं, पर इधर कुछ दिनों से उनके अन्दर की चिर [illegible]सुप्त तन्द्रा भंग हो गई है और वे चाहते हैं कि [illegible]पस में मिलकर एक महान् राष्ट्र की स्थापना करें। [illegible] सम्भव है कि पुनः एक बार मङ्गोल-जाति का [illegible]विष्य उज्ज्वल हो उठे। मङ्गोल-जाति में सैनिक गुणों [illegible] प्राधान्य है।

बाह्य और आन्तरिक दोनों ही मङ्गोलिया नाममात्र को स्वशासनप्राप्त प्रदेश हैं। आन्तरिक मङ्गोलिया को चीन की सरकार ने सन् १९३३ में आज़ादी दी थी। जापानियों ने उनकी नाममात्र की आज़ादी पर आघात करना उचित न समझकर उसे क़ायम रहने दिया है, पर वहाँ का शासन जापानी शस्त्रों की छाया में होता है। जापानियों ने वहाँ की रेल का प्रबन्ध भी अपने हाथों में ले लिया है।

मङ्गोलिया की राजनीति का सिंहावलोकन करने से मालूम होता है कि यहाँ के निवासी किसी बड़ी मशीन के पुर्ज़ों की तरह हैं। इनकी वर्तमान अवस्था पर तरस आता है। मंगोल आज सुदूरपूर्व की राजनीति-रूपी शतरंज की शक्तिहीन मुहरों की तरह है।

आँवले की उपयोगिता

आँवले के गुणों से भारतीय बहुत कुछ परिचित हैं और वे प्रायः कहा भी करते हैं कि 'धात्री-फलं सदा पथ्यम्'। प्रसन्नता की बात है कि उसी आँवले को विज्ञान-विशारदों ने भी अपने परीक्षणों से उपयोगी बताया है, जैसा कि 'दैनिक हिन्दी-मिलाप' के निम्न विवरण से प्रकट होता है—

वैसे तो सभी ताज़े फलों और तरकारियों में विटामिन (पौष्टिक तत्त्व) 'सी' की कुछ न कुछ मात्रा मौजूद रहती ही है, लेकिन आँवले में यह जितना पाया जाता है, उतना शायद और किसी खाद्य वस्तु में नहीं। इसी लिए कहा गया कि जितने खाद्य पदार्थों के सम्बन्ध में अब तक छानबीन की गई है, उन सबमें आँवला ही ऐसा पाया गया है, जिसमें विटामिन 'सी' सबसे अधिक है।

विटामिन 'सी' लवणरक्त नामक चर्मरोग को होने से रोकता और उसे दूर भी करता है। भिन्न भिन्न फलों में विटामिन भी भिन्न भिन्न मात्रा में पाया जाता है, जैसे कि सन्तरे में, जो बहुधा बच्चों को सबसे अधिक दिया जाता है, लगभग ४० मिलीग्राम 'सी' विटामिन होता है जब कि केले में इसका लगभग दसवाँ भाग ही होता है। इसी प्रकार एक छोटे से ताज़े आँवले में सन्तरे की अपेक्षा बीसगुना 'सी' विटामिन अधिक होता है।

ये सब अन्वेषण मदरास की वायकैमिकल लैबरेटरी और बङ्गलोर के इंडियन-इंस्टीटयूट आफ़ साइंस में हुए हैं।

आँवले को बारहों महीना सुरक्षित रख सकते हैं। वैसे तो जब आँवलों की ताजगी निकल जाती है तब उनका विटामिन 'सी' नष्ट हो जाता है, लेकिन आँवले को सुरक्षित रखने की जिन प्रणालियों का पता लगाया गया है उनसे आँवले का 'सी' विटामिन बहुत कम नष्ट होता है।

आँवले को सुरक्षित रखने की प्रणालियों में से सबसे सरल प्रणाली आँवलों को कुचलकर उन्हें छाया में (धूप में नहीं) सुखा लेना है। सूखने पर चूर्ण में 'सी' विटामिन काफ़ी मौजूद रहता है, जो कई महीने तक ज्यों का त्यों बना रहता है।

दूसरी प्रणाली में आँवलों को पहले गरम पानी में दो-चार मिनट भिगोना चाहिए और फिर निकाल कर नमकीन पानी में डाल देना चाहिए। इस प्रणाली से भी बहुत कम विटामिन नष्ट होता है। स्मरण रखना चाहिए कि आँवलों का मुरब्बा या अचार बनाने में उन्हें उबालने से उनका बहुत पौष्टिक गुण चला जाता है।

बहुत-सी आयुर्वेदीय ओषधियों में भी आँवले का उपयोग होता है, फिर भी भारत में अभी इसका जितना उपयोग होता है वह बहुत ही कम है। बच्चों के शरीर में विटामिन 'सी' पहुँचाने के लिए आँवले से बढ़कर और कोई चीज़ नहीं हो सकती, क्योंकि यह रुचिकर भी होता है और पचता भी जल्दी है। आँवले का एक चम्मच रस दैनिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए पर्याप्त है।

प्रान्तीय घूस-निवारक कमिटी की सिफ़ारिशें

हमारे प्रान्त की सरकार घूसखोरी का मूलोच्छेद कर देने के लिए आरम्भ से ही प्रयत्नशील है। मंत्रित्व स्वीकार करने के कुछ ही समय बाद इसने इस सम्बन्ध में सब सरकारी हाकिमों के पास गश्ती चिट्ठियाँ भेजी थीं और इसी काम के लिए एक विशेष अफ़सर भी रख दिया था जिसे घूस के केस पकड़ने तथा उनके सम्बन्ध में उचित कारवाई करने का अधिकार दिया गया था। पिछले दिनों में [illegible] घूस-निवारक कमिटी नाम की एक कमिटी नि[illegible] की थी। इस कमिटी ने सरकार के सामने [illegible] सिफ़ारिशें रक्खी हैं जिनमें से अधिकांश को सर[illegible] ने स्वीकार कर लिया है, वे सिफ़ारिशें निम्न हैं:—

१—जो मनुष्य सरकारी नौकरी में भर्ती हो वह [illegible] अचल सम्पत्ति की एक नामावली बनाकर दे जो उस[illegible] हो या जो उस पर निर्भर कुटुम्बी की हो। ३—सरका[illegible] नौकर जो सामान खरीदें, चाहे दौरे पर हों या न हों उस[illegible] पूरी क़ीमत दें। अपने से नीचे अफ़सरों की मार्फ़त कोई सामा[illegible] न खरीदें। ५—किराये की गाड़ियों में बिना किरा[illegible] दिये सफ़र न करें। ६—सरकारी अफ़सरों के लिए [illegible] नियम बने हुए हैं उनका तय। रुपया उधार लेने [illegible] और खरीदने और बेचने के नियमों का पूरी तरह से पाल[illegible] किया जाय। ७—जिन सरकारी नौकरों को ३०) मासि[illegible] या इससे अधिक वेतन मिलता है उन सबकी हर साल उ[illegible] आला अफ़सर ईमानदारी की सनद दें। १२—जि[illegible] नये नौकर भर्ती किये जायँ उन सबको दफ़्तरों [illegible] केवल सबसे बड़े अफ़सर नियुक्त करें। कचहरी [illegible] सबसे ऊँचा अफ़सर ही मुकदमों के सुनने की तारी[illegible] मुक़र्रर करे। १३—आला अफ़सरों को ऐसी योज[illegible] बनानी चाहिए कि मातहत अफ़सरों में घूसखोरी रो[illegible] जा सके।

बार एसोसिएशन कमिटियाँ बनावें कि वकालत [illegible] क्लर्कों द्वारा होनेवाली घूसखोरी रोकी जाय। १७—[illegible] सरकारी अफ़सरों के चाल-चलन-सम्बन्धी काग़ज़ों [illegible] जाँच की जाय और जिन अफ़सरों की चाल-च[illegible] घूसखोरी के सम्बन्ध में असंतोषजनक पाई जाय उ[illegible] चेतावनी दी जाय। २०—दफ़्तरों के स्थानीय [illegible] अफ़सर इस आशय की सालाना रिपोर्टें पेश करें [illegible] दफ़्तरों में किस हद तक घूसखोरी प्रचलित है और [illegible] मिटाने के लिए क्या क्या प्रयत्न किये गये। २१—[illegible] किसी विभाग का सबसे ऊँचा अफ़सर यह देखे कि [illegible] दर्जे का कोई अफ़सर घूसखोरी पकड़ने के सम्बन्ध [illegible] लापरवाह रहा है तो वह उस अफ़सर के चाल-च[illegible] सम्बन्धी काग़ज़ों में यह बात दर्ज कर दे।

वर्ग नं० ३७ का नतीजा

प्रथम पुरस्कार ३००) (शुद्ध पूर्ति पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ९ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को ३३।-) मिले।

(१) श्रीमती सविता देवी, पूर्णिया, विहार।
(२) राधेश्याम अग्रवाल, ४३, पानदरीबा, इलाहाबाद।
(३) मिसेज़ ओंकारनाथ गुप्त, ७९, पानदरीबा, इलाहाबाद।
(४) श्री गोपाल माहेश्वरी c/o ठाकुरदास लछमनदास, चौक, मथुरा।
(५) वी० जी० माहेश्वरी, c/o ठाकुरदास लछमनदास, चौक, मथुरा।
(६) रमावती पांडेय, c/o सब पोस्टमास्टर, लखना, इटावा।
(७) नीलमणि बनर्जी, ट्रेसर, इक्ज़ेक्यूटिव इंजीनियर्स आफ़िस, हुगली।
(८) स्नेहलता c/o टी० डी० भट्टाचार्य, Balmer Lawrie Office Accts Deptt, Clive Street Calcutta.
(९) चिरंजीलाल, गुरुकुल वि० वि० वृन्दावन, मथुरा।

द्वितीय पुरस्कार १२७॥) (एक अशुद्धि पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ३० व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को ४।) मिले।

(१) दशरूलाल तेली, कक्षा ७ राबर्टसन नार्मल स्कूल, सिवनी (सी० पी०) B. N. R.। (२) खड़ानन्द [illegible]नार, कायस्थपारा, पुरानी बस्ती, ज़िला रायपुर सी० पी०। (३) रवीन्द्रनाथ सलेमपुरी, बैजूप्रसाद, सरजूप्रसाद, चौक बलिया। (४) कृष्णकुमार कक्षा ९, पं० रघुवीर-[illegible] कृष्णकुमार ज्योतिषी, बुलन्दशहर। (५) मिसेज़ [illegible]लाल माथुर, हेड मास्टर वी० एम० एस०, पो० [illegible]धाना (जयपुर स्टेट)। (६) वंशीधर वाजपेयी, मु० [illegible]पुर, पो० इटौंजा, जि० लखनऊ। (७) दलीपसिंह, [illegible]सौदा (रोहतक)। (८) चंडीप्रसाद भुभनूवाला १८७ [illegible]तरंजन एवन्यू, कलकत्ता। (९) यशोदा रानी c/o [illegible]क्त राम टीचर, विरला कालेज पिलानी (जयपुर स्टेट)। (१०) सीताराम टेलरमास्टर c/o विजयनरायन, [illegible]वास्तव चौक बलिया। (११) रघुनाथराव अ० मा० हिन्दी मिडिल स्कूल, धरमपुरी राज्य धार (सी० आई०) (१२) रामभरोसे विश्नोई ए० वी० हाई स्कूल, मु० [illegible]रैया, ज़ि० इटावा। (१३) दाऊदयाल गुप्त c/o [illegible]ताराम सालिगराम, कमीशन एजेन्ट, हाथरस। (१४) के० जी० नाटू c/o डी० के० नाटू, नायब तहसीलदार, गुना, ग्वालियर स्टेट। (१५) मायारानी [illegible]यक c/o राधिकाप्रसाद नायक, सिविल सर्जन आफ़िस, छिन्दवाड़ा (सी० पी०)। (१६) कैलाशपति पाठक, मु० पो० डुमरी, ज़ि० शाहाबाद (आरा)। (१७) कृष्णगोपाल माहेश्वरी, ठाकुरदास लछमनदास सौदागर, चौक बाज़ार मथुरा। (१८) प्यारेलाल गुप्त, मैनेजर सेंट्रल कोआपरेटिव बैंक, विलासपुर। (१९) यमुनाप्रसाद c/o द्वारकाप्रसाद, हेड नेदिल इ० इन्स्टीटयूट गोरखपुर। (२०) विश्वनाथप्रसाद c/o फतहचन्द, मंत्री मु० पो० गुमला, रांची, बिहार (२१) एल० डी० वी० एस० अध्यापक, मुआनी, पोस्ट थल, अल्मोड़ा। (२२) सुन्दरलाल लास्टमैन, अम्बिकापुर (सुरगुजा) स्टेट। (२३) भगवानदास, पोस्टल पेंशनर, गाज़ियाबाद, मेरठ। (२४) सुशीलकुमारी मिश्र 'हर निवास' १४ मोहनी रोड, देहरादून। (२५) सुनीलकुमार मिश्र, 'हर निवास' १४ मोहनी रोड, देहरादून। (२६) ज्वालाप्रसाद श्रीवास्तव, c/o रामप्रसाद नारायन, स्टेशन-मास्टर रक्सौल, चम्पारन। (२७) अमला रानी c/o पं० कृष्णदत्त भारद्वाज, मार्डन हाई स्कूल, नई दिल्ली। (२८) व्रजकिशोर विद्यार्थी, मु० सरंधी, पो० जगनेर, ज़िला आगरा। (२९) प्रकाश मिश्र c/o राजेन्द्र मिश्र, विसौली बदाऊँ। (३०) अभिनय बनर्जी, tracer इक्ज़ीक्यूटिव इंजीनियर्स आफ़िस, हुगली।

तृतीय पुरस्कार ७३) (दो अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ७३ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को १) मिला।

(१) रविप्रताप वर्मा, लक्ष्मीभवन, नरसिंहपुर (सी० पी०) (२) मिसेज़ मदनमोहन टंडन, c/o टंडन ब्रादर्स, सिविल लाईन, मुरादाबाद। (३) विद्यावती कृष्णचन्द्र अग्रवाल, श्री सदन लैन्ड्स ऐंड रोड, मलाबार हिल, बम्बई। (४) सुलभा गुप्ता, श्रीमदन Lands End Road, Bombay (५) रेखा श्रीवास्तव, c/o फ़तहबहादुर सिंह, छोटी बस्की, दारागंज, इलाहाबाद। (६) बलवीर प्रसाद, क्लास XII A गवर्नमेंट इंटर कालेज, इलाहाबाद (७) ननकाई लाल, c/o टेनी, ४२३, कीटगंज, इलाहाबाद। (८) पुष्पा श्रीवास्तव c/o ब्रजविहारी लाल श्रीवास्तव, मेडिकल आफ़िसर, दारागंज, प्रयाग। (९) गोपीनाथ गुप्त c/o बाबू रामलाल मुनीम, दारागंज, प्रयाग। (१०) राधाविनोद बाजपेयी, चौखंडी, कीटगंज, प्रयाग। (११) सुन्दरलाल जैन, सेंट्रल बैंक आफ़ इंडिया लि०, साँभर झील, राजपूताना। (१२) लक्ष्मीनारायण शर्म्मा, पो० रूपधनी, ज़ि० एटा। (१३) श्रीमती गङ्गाधर व्यास, गौरीशंकरभवन, इन्द्रगढ़ (राजपूताना)। (१४) राजा रानी देवी सक्सेना, तमोली पाड़ा, अलीगढ़। (१५) धरनीधर नारायण, कोर्ट इंस्पेक्टर, सीतामढ़ी कोर्ट, ज़िला मुज़फ़्फ़रपुर। (१६) कुमुदिनी देवी, c/o धरनीधर नारायण कोर्ट इंस्पेक्टर, सीतामढ़ी कोर्ट, ज़िला मुज़फ़्फ़रपुर। (१७) राजेन्द्र मिश्र, मदन[illegible]लाल हाई स्कूल, बिसौली, बदायूँ। (१८) र[illegible]नाथप्रसाद, पीतल की दूकान, साक्षीविनायक कटरा, बनारस। (१९) शङ्करलाल, स्टेट स्कूल संगरीय, (बीका[illegible]रराज्य)। (२०) रघुनाथसिंह ओवरसियर, नामनेर, आगरा। (२१) सत्यपाल मित्तल, c/o बा० भगवान[illegible]स पेंशनर, ग़ाज़ियाबाद। (२२) छोटेलाल, मैनेजर खा[illegible] कार्यालय गढ़ा कोटा, सागर, सी० पी०। (२३) लाल[illegible] नीरावत, डग, झालावाड़ (राजपूताना) चौमह[illegible] स्टेशन। (२४) जयालाल लक्ष्मी याज्ञिक c/o माधव[illegible]ल याज्ञिक S. R. K. इंटर कालेज, फिरोज़ाबा[illegible] आगरा। (२५) शालिग्राम, अपर स्कूल, जरगाँव, ज़ि[illegible]रादाबाद। (२६) जी० एल० शृङ्गी, c/o राठौर [illegible], रामपुरा बाज़ार, कोटा (राजपूताना)। (२७) [illegible]जकिशोरी, देवी, साहनपुर स्टट ज़ि० बिजनौर। ([illegible]) अम्बादत्त बंदोणी, Sandaman Library Quetta (२९) सतीशचन्द्र कटियार कक्षा १२ बी०, एन० एस० [illegible] कालेज़, कानपुर। (३०) गोविन्दराव भट्ट c/o विनायकराव भट्ट सब पोस्टमास्टर ललितपुर। (३१) कुँवरसिंह रावत, पो० बैजनाथ, अलमोड़ा। (३२) मार्कण्डेय शुक्ल, ३५ सर्कुलर रोड, [illegible] कटरा, इलाहाबाद। (३३) श्यामलाल शर्मा, [illegible] टैक्स इन्सपेक्टर, मारू गली, आगरा। (३४) रामसजीवन लाल जड़िया, c/o बलदेवप्रसाद जड़िया, स्टेट अजयगढ़ सी० आई०। (३५) लक्ष्मीदास यादव, कोविल, पटना। (३६) कुमार रघुनाथ वर्मा, नामली (रतलाम)। (३७) जगदम्बाप्रसाद तिवारी, ४९४ दारागंज, इलाहाबाद। (३८) श्रीमती मुरारीलाल c/o अरुण कार्य्यालय, ज़िला स्ट्रीट, मुरादाबाद। (३९) विजयपाल अग्निहोत्री, अकबरपुर, कानपुर। (४०) कमलारानी c/o मिस्टर शेरसिंह जज, श्रीगंगानगर, बीकानेर स्टेट। (४१) श्यामसुन्दरलाल पाण्डेय, क्योंटरा, इटावा। (४२) हरीशङ्करलाल खत्री, ७।५० गोलागली, बनारस सिटी। (४३) अमरनाथ c/o बाबू रामसिंहासनलाल, मालगोदाम बलिया। (४४) बी० एस० कार्की, मुआनी, पो० [illegible], ज़िला अलमोड़ा। (४५) शान्तिदेवी c/o छोटेलाल वेंडर, कोटा जंक्शन (राजपूताना)। (४६) शिवप्रसाद गुप्त, हेडमास्टर स्टेट स्कूल, पो० रेनी (बीकानेर स्टेट)। (४७) नारायणस्वरूप क्लर्क, पो० आ० खेतड़ी (राजपूताना)। (४८) कुमारी शीला यादव c/o चौ० सूरजसिंह, S.o.S. खुसाब, ज़ि० शापुर (पंजाब)। (४९) शारदा देवी बाहरी, c/o विद्याधर, सारदा फार्मेसी सोलन, शिमला हिल्स। (५०) हरीदत्त पाठक, बेरीनाग अलमोड़ा। (५१) बृजलाल d.o मेताबजी, स्टेट सुपरिटेंडेंट, रियासत पिपलोंदा बाया जाबरा, मालवा। (५२) जयदेवी c/o डा० रामचरणलाल गुप्त, हुसेनगंज, लखनऊ। (५३) कृष्णादेवी c/o डा० राम चरणलाल गुप्त, हुसेनगंज, लखनऊ।। (५४) माधवप्रसाद शुक्ल, अजगैन, उन्नाव। (५५) रघुवीरसिंह, रामपुरहंस, डा० फ़रीदपुर, ज़ि० बरेली। (५६) मोतीलाल c/o छत्रधारी भगत सत्यनारायण राम, पो० बलिया। (५७) जगन्नाथप्रसादसिंह मुख्तार, सीतामढ़ी कोर्ट, ज़ि० मुजफ्फरपुर। (५८) जगदीशनारायण टोपीवाले

बहादुरगंज, शाहजहाँपुर। (५९) आदित्यनारायणसिंह, धौरानी टोला, मुकामा, ज़ि० पटना। (६०) शिवप्रसाद, कोठी, बलिया। (६१) त्रेतानाथ ओझा, रायपुर (सी० पी०)। (६२) रामचन्द्रसिंह (भाई), राजापुर पो० पटना। (६३) लाला चन्द्रसेन रस्तोगी, सनोता, पो० फलावदा, मेरठ। (६४) एम० ए० नप्पो, डी० ए० स्कूल, राँची। (६५) पहलवानसिंह, प्राइमरी स्कूल, गरौठा, (झाँसी)। (६६) बरकतराम बिड़ला कालेज, पिलानी। (६७) जीतेन्द्रसिंह, बिलाईगढ़, बाया, सारंगगढ़, रामपुर। (६८) मोतीलाल मोहन भाई पटेल, खलघाट, धार। (६९) सरोजकुमारी, पुखराया, कानपुर। (७०) महावीरप्रसाद, रामनगर, बनारस। (७१) विद्यावती देवी, चारबाग, लखनऊ। (७२) हरिप्रिया देवी, हल्द्वानी, नैनीताल। (७३) पुष्पलता, काशीपुर, नैनीताल।

उपर्युक्त सब पुरस्कार सितम्बर के अन्त तक भेज दिये जायँगे।

नोट—जाँच का फ़ार्म ठीक समय पर आने से यदि किसी को और भी पुरस्कार पाने का अधिकार सिद्ध हुआ तो उपर्युक्त पुरस्कारों में से जो उसकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा।

केवल वे ही लोग जाँच का फ़ार्म भेजें जिनका नाम यहाँ नहीं छपा है, पर जिनको यह सन्देह हो कि वे पुरस्कार पाने के अधिकारी हैं।

जिनको १) का पुरस्कार मिला है उन्हें १) के दो प्रवेश-शुल्क-पत्र भेज दिये जायँगे, जो नियम के अनुसार तीन महीने के भीतर इसके साथ दो पूर्तियाँ भेज सकेंगे।

व्यस्त रेखा शब्द पहेली

CROSSWORD PUZZLE IN HINDI

३००) शुद्ध पूर्तियों पर

२००) न्यूनतम अशुद्धियों पर

नियम :—

(१) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जितनी पूर्ति-संख्यायें भेजना चाहे, भेजे, किन्तु प्रत्येक वर्ग-पूर्ति सरस्वती पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म पर होनी चाहिए। इस प्रतियोगिता में एक व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। इंडियन प्रेस के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकेंगे। प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगाड़ कर या काटकर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

(२) प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए जो फ़ीस वर्ग के ऊपर छपी है, दाख़िल करनी होगी। फ़ीस मनीआर्डर-द्वारा या सरस्वती-प्रतियोगिता के प्रवेश-शुल्क-पत्र (Credit voucher) के द्वारा दाख़िल की जा सकती है। इन प्रवेश-शुल्क पत्रों की किताबें हमारे कार्यालय से ३) या ६) में ख़रीदी जा सकती हैं। ३) की किताब में आठ आने मूल्य के और ६) की किताब में १) मूल्य के ६ पत्र बँधे हैं। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति जिनका पता-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं। वर्ग-पूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी। मनीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग-नम्बर ३८, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

(३) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र नत्थी होकर आना अनिवार्य है। रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी। लिफ़ाफ़े के दूसरी ओर अर्थात् पीठ पर मनीआर्डर भेजनेवाले का नाम और पूर्ति-संख्या लिखना आवश्यक है।

(४) जो वर्ग-पूर्ति २७ सितम्बर तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में शामिल नहीं की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २५ ता० को पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिए और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद को डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान्य होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के अगले अङ्क में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता-अशुद्धता की जाँच कर सकें।

(५) वर्ग-निर्माता की पूर्ति से, जो मुहर लगा करके रख दी गई है, जो पूर्ति मिलेगी वही सही मानी जायगी। यदि कोई पूर्ति शुद्ध न निकली तो मैनेजर शुद्ध पूर्ति का इनाम जिस तरह उचित समझेंगे, बाँटेंगे।

अङ्क-परिचय

बाँयें से दाहिने

१—व्रज-भाषा का एक प्रसिद्ध काव्य-ग्रंथ ।
५—रोज़ न हो पर पितृपक्ष में इसकी बड़ी ख़ातिर होती है ।
७—चंचलता भी इसके सौन्दर्य का एक लक्षण माना जाता है ।
८—यदि यह नहीं तो दुनिया में होना न होना एक-सा ।
१०—पंजाब की एक प्रसिद्ध सिक्ख-रियासत ।
११—मूर्ख ही इसका अविश्वास कर सकता है ।
१५—यह कुलीन वंश का है ।
१६—नदी का जल इसके स्थान पर अधिक गहरा होगा ।
१७— ... करे सो मेवा खाय ।
१९—इस पर नींद बड़े सुख की आती है ।
२०—हिन्दू लोग इसे भी देवी कहते हैं ।
२२—मान का पान इसी के समान होता है । २३—गृहिणी ।
२४—स्त्रियाँ इसे आँखों का शृङ्गार समझती हैं ।
२५—जान चली जाय पर इसका छूटना मुश्किल है ।
२८—यह हाथ उलटा पड़ा है ।
२९—कहते हैं कि राम-राज्य में ये भी माँगने पर जल देते थे । ३०—एक प्रकार के साधु ।
३१—जिसे यह कला सिद्ध हो गई वह अमर हो जाता है ।

ऊपर से नीचे

१—न चाहने पर भी मन को कभी-कभी इसमें फँसना ही पड़ता है ।
२—जिसको इसमें हानि-लाभ का भय नहीं होता उसे लोग इज़्ज़त नहीं करते ।
३—मीराबाई की भक्ति इसी प्रकार की कही जाती है ।
४—इसके न होने से समाज में लोग नीची निगाह से देखते हैं ।
६—विज्ञापन को व्यापारी लोग अपने माल के—का साधन समझते हैं ।
९—हवाई जहाज़ों की लड़ाई देखने की साध शौक़ीन इसकी लड़ाई देखकर पूरी करते हैं ।
१२—हिन्दुस्तान के लोग ही इससे रोटी खाते हैं ।
१३—पुत्र परिवार का ऐसा ही धन है ।
१४—हमारे इन भाइयों की समस्या दिन-दिन उलझती जा रही है । १७—रेशमी चादर ।
१८—इससे ही साधु सिद्ध बन जाता है ।
१९—गामा को लोग संसार का सर्वश्रेष्ठ यह समझते हैं ।
२१—गालियाँ सुनकर भी जिसे यह नहीं आता वह या तो कायर है या साधु ।
२२—शरीर का यह निकल गया फिर मिट्टी है ।
२४—जनता एक बार इसका विरोध बड़े ज़ोर से करती है ।
२६—गश्त देनेवाले सिपाही ।
२७—इसमें मोती की चमक लाने के लिए स्त्रियाँ हज़ारों रुपये फूँक देती हैं ।

अपनी यादगार के लिए वर्ग ३८ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ पर कर लीजिए । और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए ।

वर्ग नं० ३७ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर ३७ की शुद्ध पूर्ति जो बंद लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जा रही है ।

वर्ग नं० ३७ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० ३७ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया । मेरी पूर्ति नं०... में { कोई अशुद्धि नहीं है । १,२ अशुद्धियाँ हैं । }

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए । मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ ।

हस्ताक्षर ______

पता ______

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

नोट—जो पुरस्कार आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बँटेगा और फ़ीस लौटा दी जायगी । पर यदि पूर्ति ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी । जो समझें कि उनका नाम ठीक जगह पर छपा है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं । यह फ़ार्म १५ सितम्बर के बाद नहीं लिया जायगा ।

इसे काटकर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

मेनेजर वर्ग नं० ३८

इंडियन प्रेस, लि०,

इलाहाबाद

मुफ़्त कूपन की नक़ल यहाँ कीजिए ।

वर्ग नं० ३८ पूर्ति नं०... मुफ़्त कूपन

वर्ग नं० ३८ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)

वर्ग नं० ३८ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)

इस लाइन से काटिए

नाम

पता

नोट—ये तीनों कूपन यहाँ एक साथ केवल एक व्यक्ति के भरने के लिए दिये जा रहे हैं । तीनों कूपनों को एक साथ काट कर भेजना चाहिए । जो एक कूपन भेजना चाहें वे बीच का भेजें । (विशेष ब्योरा पृष्ठ ३०२ पर देखिए ।)

रक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा रहित और पूर्ण हैं ।

नई शंकायें

मलेपुर
(मुंगेर
२३-७-३९

प्रिय वर्गनिर्माता जी,

मैंने भी ३५ वें वर्ग की पूर्ति की थी पर खेद है कि पुरस्कार पाने में असमर्थ रहा। मैं कुछ शंकायें आपके पास भेज रहा हूँ। आप इनका उचित समाधान कर दें। यों ही सिर्फ़ बात बनाने की कोशिश मत करें। मुझे पूरी आशा है कि पत्र और आपका उत्तर आगामी महीने की सरस्वती में मैं देख सकूँगा—

संकेत :—"जनता इसी से वश में आती है"। आपका उत्तर—'सेना"। हमारे हृदय-सम्राट् गांधी जी ने यह सिद्ध कर दिया है कि "जनता सेवा से वश में आती है।" सेना से विद्रोही वश में आते हैं। पर यहाँ आपके जनता शब्द से यह अर्थ—"विद्रोही जनता"—निकलता—फिर अनुपयुक्त शब्द "सेना" क्यों?

संकेत :—"ज़मींदार इसके लिए बहुत लड़ते हैं" उत्तर है "हल"। अगर मेरी समझ भूल नहीं कर रही हो तो मैं कहूँगा कि इस ज़माने में ज़मींदार "हक़" के लिए लड़ते हैं और "हल" के लिए जनता लड़ती है। ज़मींदारों को "हल" से क्या मतलब? उन्हें तो गगन-चुम्बी अट्टालिकाओं से मतलब है।

भवदीय—
मिश्र ब्रजवल्लभ चतुर्वेदी

C/o Pandit Jagannath Pd. Chaturvedi
Sahitya Bhusan
P.O. Mallehpur
(Monghyr)

—

आवश्यक सूचनायें

(१, इस बार पाठक देखेंगे कि एक कूपन में एक नाम से अधिक भरने की गुंजाइश नहीं है परन्तु प्रत्येक कूपन में ऐसी सुविधा की गई है कि वर्ग नं० ३८ की तीन पूर्तियाँ एक साथ भेजी जा सकेंगी। दो आठ आठ आने की और तीसरी मुफ़्त। मुफ़्त पूर्ति सिर्फ़ उन्हीं की स्वीकार की जायगी जो दो पूर्तियों के लिए १) भेजेंगे। और तीनों पूर्तियाँ एक ही नाम से भेजेंगे। एक पूर्ति भेजनेवाले को भी पूरा कूपन काटकर भेजना चाहिए और दो ख़ाने ख़ाली देने चाहिए।

(२) स्थानीय पूर्तियाँ 'सरस्वती-प्रतियोगिता-... जो कार्यालय के सामने रक्खा गया है, दिन में दस पाँच के बीच में डाली जा सकती हैं।

(३) वर्ग नम्बर ३८ का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े में ... लगाकर रख दिया गया है, ता० २८ सितम्बर सन् १९३... सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में ११ बजे दिन में सर्वसा... के सामने खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें उपस्थित होकर उसे देख सकते हैं।

योरप की कूटनीति

हम देख रहे हैं कि संसार की साम्राज्यवादी महा-शक्तियाँ इस समय संसारव्यापी महायुद्ध छेड़ने का साहस नहीं कर रही हैं, यहाँ तक कि बार बार अवसर आने पर उसे टाल जाती हैं, परन्तु वे उसके लिए अपनी तैयारी में किसी तरह की कोर-क़सर नहीं कर रही हैं, साथ ही वे अपने अपने साम्राज्य के विस्तार के काम एवं अपना प्रभाव बढ़ाने के काम में भी पहले की तरह लगी हुई हैं। जापान, इटली और जर्मनी ने इस सम्बन्ध में जो कुछ किया है वह सर्वविदित है और इसी के लिए वे आज शान्तिप्रिय तथा नीतिमान् राष्ट्रों की नज़रों में गिर गये हैं। परन्तु दूसरी शक्तियाँ भी चुप नहीं हैं। उदाहरण के लिए रूस को लीजिए, वह प्रतिज्ञा कर चुका है कि वह अब किसी दूसरे देश की स्वतंत्रता का अपहरण नहीं करेगा। परन्तु इस बीच चीन के दो प्रदेश—बाह्य मङ्गोलिया और सिंक्यांग—उसी के प्रभाव-क्षेत्र में क्या, अधिकार में हो गये हैं।

ब्रिटेन और फ़ांस ने निस्सन्देह किसी देश को या किसी देश के भूभाग को प्रकट रूप से अपने अधिकार में नहीं किया है, तो भी कतिपय देश उनके अधिकार में आ गये हैं, जो उनके न होकर भी उनके-से हो गये हैं। ब्रिटेन के हाथ में इराक़, ट्रान्सजोरडोनिया, पैलेस्टाइन और मिस्र एवं अफ़्रीका के कुछ जर्मन-उपनिवेश थे। यद्यपि इनमें मिस्र और इराक़ एवं ट्रान्सजोरडोनिया को उसने स्वाधीन देश मान लिया है, तथापि उनकी स्वाधीनता मात्र उसकी कृपा पर निर्भर है। अब रहा पेलेस्टाइन, उसे दस वर्ष बाद स्वाधीनता दी जायगी और जर्मन-उपनिवेश तो विना युद्ध के जर्मनी कदापि नहीं पा सकता। फ़ांस भी सीरिया पर पूर्ववत् अपना अधिकार जमाये हुए है और अफ़्रीका के जो जर्मन-उपनिवेश उसे मिल गये थे उन्हें तो अपने साम्राज्य में मिला लेने की भी उसने घोषणा कर दी है। इस प्रकार राजनैतिक चालों से इन दोनों महान् साम्राज्यों के सूत्रधार अपने पौ बारह करने के काम में पूर्ववत् संलग्न हैं।

यही क्यों? मुसलमान राज्यों में योरप की महा-शक्तियों की कूटनीति की जो कार्रवाइयाँ हो रही हैं उनसे उनकी महत्त्वाकांक्षाओं का भेद प्रकट हो जाता है, साथ ही यह भी कि वे विश्व-शान्ति की कहाँ तक हिमायत करती हैं। अभी अभी तुर्की से ब्रिटेन और फ़ांस का जो मेल हुआ है उसमें जर्मनी और इटली के कूटनीतिज्ञ एकदम मुँह की खा गये। तुर्की ने ७५ लाख पौंड ब्रिटेन से और सीरिया का एक प्रान्त फ़ांस से प्राप्त किया है। इटली उसे सिर्फ़ डोडेकेनीज़ के टापू देकर ही फुसलाना चाहता था। परन्तु तुर्की ने ब्रिटेन और फ़ांस से मेल-जोल करना अपने लिए अधिक हितकर समझा।

तुर्की की बाज़ी में मात खाकर अब जर्मनी और इटली ने अरब देशों पर अपना दाँव लगाया है और नेज्द के सुलतान इब्नसाऊद की आवभगत की जा रही है। कुछ ही दिन हुए इब्नसाऊद का एक राजदूत हिटलर के पास जर्मनी गया था। अब पत्रों में छपा है कि जर्मनी ने सुल्तान को इस बात का आश्वासन दिया है कि उनकी स्वाधीनता का अपहरण नहीं किया जायगा। यही नहीं, इब्नसाऊद के पास हिटलर ने २५ अफ़सरों का एक फ़ौजी मिशन भेजा है। मरुभूमि के युद्ध के उपयुक्त कई सौ हलकी तोपें, बहुत-सी मेशीनगनें, नई चाल की राइफ़िलें, गोली-बारूद, १२५ हवाई जहाज़ भी भेजे हैं, साथ ही कई सौ शिक्षक और विशेषज्ञ भी भेजे हैं। जर्मनी वहाँ दो हवाई स्टेशन और हवाई जहाज़ सुधारने के तीन केन्द्र भी खोलने की व्यवस्था कर रहा है।

इब्नसाऊद का भी जर्मनी की ओर ही झुकाव है। वे खुद भी एक कुशल राजनीतिज्ञ हैं। अँगरेज़ों ने पेलेस्टाइन में मिस्र के प्रिंस अब्बास हिमली पाशा को

गद्दी पर बिठाकर वहाँ का मामला शान्त कर देने का उपक्रम किया था, परन्तु इब्नसाऊद और इराक़ के विरोध के कारण वे अपनी योजना को कार्य का रूप न दे सके। इसके बाद ट्रांसजोर्डन के अमीर अब्दुल्ला को पेलेस्टाइन की गद्दी देने का विचार किया गया। परन्तु इस बार भी अरबों का विरोध आड़े आया।

इस समय अरब देश पर योरप की महाशक्तियों की बाज़ी लगी हुई है। देखना है कि किसकी जीत होती है।

चाहे जो हो, साम्राज्यवादी महाशक्तियाँ अपनी अपनी कार्रवाई में पूर्ववत् लगी हुई हैं। विश्वशान्ति और विश्वबन्धुत्व की बातें तो उनके शिकार खेलने की धोखे की टट्टियाँ हैं।

जापान का डण्डा-वाद

आज जापान का बोलवाला है। उसका चीन के अधिकांश पर अधिकार हो गया है—उस अधिकांश पर जो समृद्ध और उपजाऊ है। परन्तु इतने पर भी चीन की राष्ट्रीय सरकार उसके आगे नत नहीं हुई है। उसके सञ्चालक तथा अध्यक्ष च्यांग-कै-शेक सुदूर देश के भीतरी भाग में चले गये हैं और वहाँ से जापान का सामना करने के काम में पूर्ववत् डटे हुए हैं। जापान जानता है कि चीन की राष्ट्रीय सरकार को बाहर से काफ़ी मदद मिल रही है, अतएव वह खीझ उठा है, यहाँ तक कि उसने विदेशियों को तंग करना शुरू कर दिया है। इस समय उसका संघर्ष अँगरेज़ों से हो रहा है। चीन में अँगरेज़ आदि पाश्चात्य लोगों को व्यापार-सम्बन्धी अनेक सुविधायें नहीं प्राप्त हैं, किन्तु चीन के प्रायः सभी बन्दरगाह विदेशियों के अधिकार में हैं। इन विदेशी शक्तियों की चीन के व्यापार में लाखों की पूँजी लगी हुई है। ऐसा ही एक बन्दरगाह तिनत्सिन है, जहाँ अँगरेज़ों की प्रतिपत्ति है। इस समय जापान ने इस बन्दरगाह का घेरा डाल दिया है। इस सिलसिले में वहाँ अँगरेज़ों को इस समय पद पद पर लांछित और अपमानित होना पड़ रहा है। परिस्थिति ने इतना भीषण रूप धारण कर लिया है कि जापान और ब्रिटेन में राजनैतिक बातचीत शुरू हो गई है, और यद्यपि अभी समझौता नहीं हुआ, तथापि लक्षणों से प्रतीत [होता] है कि ब्रिटेन को म्यूनिख के समझौते की तरह भी दब कर जापान से समझौता करना पड़ेगा।

परन्तु इतना ही तो नहीं है। प्रतीत तो यह [होता] है कि चीन में पाश्चात्य शक्तियाँ अब पहले की शान के साथ व्यापार आदि नहीं कर सकेंगी। जापान का मुँह देखकर वहाँ अपना रोज़ी-रोजगार [करना] पड़ेगा। एक प्रकार से जापान ने उन्हें व्यापार [के क्षेत्र] में भी दबा लिया है। सन् १९१० में चीन के [निर्यात] में १७ फ़ी सदी जापान को जाता था। परन्तु [अब] ५० फ़ी सदी निर्यात अकेला जापान को गया है। [चीन] में अँगरेज़ों की इस समय कुल चार काटन मिलें [हैं] परन्तु जापानियों की ४४ मिलें हैं। गत वर्ष चीन [की] मिलों में १,००,००,००,००० गज़ कपड़ा तैयार [हुआ] था। इसमें जापानी मिलों ने ६०,००,००,००० [गज़] कपड़ा तैयार किया था। चीन में इस समय ७०,०० [,००,]००० पौंड की पूँजी विदेशियों की लगी हुई है। [इसमें] २५,००,००,००० पौंड की पूँजी अँगरेज़ों की है। [इस] प्रकार चीन की वर्तमान परिस्थिति में विदेशि[यों] का कम झमेला नहीं है। इसी की सफ़ाई करने [के लिए] जापान ने अब विदेशियों की ओर ध्यान दिया है [और] दिया है उस अवसर पर जब उसने देख लिया है कि [योरप] की समस्या दिन पर दिन विषम होती जा रही है।

कांग्रेस की नई स्फूर्ति

आखिर कांग्रेस के सूत्रधारों की रगों का [खून] गर्म ही हो उठा। वर्धा में पिछले दिनों उनकी [कार्य-] समिति की जो बैठक हुई उसमें उन्होंने यह प्रस्ताव पास ही कर दिया कि केन्द्रीय असेम्बली के [कांग्रेसी] सदस्य असेम्बली का बायकाट करें, क्योंकि भारत-सरकार ने बिना असेम्बली की अनुमति के भारत की कुछ [सेना] भारत के बाहर भेज दी हैं। इस प्रकार कांग्रेस के सूत्रधारों ने सुभाष बाबू को बता दिया कि उनमें भी [संघर्ष-] मूलक प्रेरणा' है और वे सरकार से लड़ने [को] तैयार हैं, और यह तो बात नहीं है कि पिछले [दिनों] उन्होंने लड़ाई की भावना छोड़ दी थी। यही [नहीं,] उन्होंने अनुशासन-भंग करने के अपराध में स्वयं [सुभाष] बाबू जैसे लोकप्रिय और उच्चकोटि के नेता को तीन [वर्ष] के लिए निकाल बाहर करके भी अपनी लड़ाकू [प्र]वृत्ति का ही परिचय दिया है। चाहे जो हो, कांग्रेस [के] इस क़दम का सुभाष बाबू और उनके भक्त भी [स्व]ागत करेंगे। वे तो यही चाहते हैं कि कांग्रेस के [सूत्र]धार स्वराज्य प्राप्त करने के लिए प्रत्येक क्षण युद्ध [के] मार्ग पर चलते रहें और उन्होंने केन्द्रीय असेम्बली [का] बायकाट करने का आदेश देकर यही प्रकट किया है [कि] वे फिर अपनी स्वाभाविक भूमि में आ गये हैं। तथापि [इ]स भव्य रूप को प्रकट करते समय उन्होंने दूसरी ओर [सु]भाष बाबू जैसे देश के एक महान् नेता का अपमान [क]रके अपने जिस मनोभाव को व्यक्त किया है उससे न [त]ो उनकी बुद्धिमत्ता का प्रमाण मिलता है, न कार्य-[क]ुशलता का ही। भारत-सरकार से स्वराज्य-प्राप्ति का [य]ुद्ध लड़ने के लिए जब वे देश के अपने विरोधी दलों [से] भी मेल करने को तैयार हैं तब अपने ही दल के [ऐ]से लोगों का अपमान करना जो अब तक कांग्रेस पर अपना सर्वस्व निछावर किये रहे थे, उनकी राजनीतिज्ञता [क]ा परिचायक नहीं है। यह तो अपने हाथों अपने [पै]रों में कुल्हाड़ी-सा मारना ही हुआ है। यदि कांग्रेस [क]े सूत्रधार सचमुच ब्रिटिश सरकार से स्वराज्य प्राप्त [क]रने के लिए लोहा लेना चाहते हैं तो उन्हें सबसे पहले [अ]पनी इस भूल का सुधार करना चाहिए।

भारत में दूध का अभाव

भारत में प्रतिवर्ष ६,४०,००,००,००० गैलन [द]ूध होता है। इस विषय में वह संसार में केवल अम[े]रिका के संयुक्त राज्यों से पीछे है। वहाँ प्रतिवर्ष १०,५०,००,००,००० गैलन दूध होता है। परन्तु वहाँ [व]ह दूध प्रतिआदमी ३५ औंस पड़ता है और यहाँ १० [औ]ंस से भी कम। भारत में ब्रिटेन से चौगुना, डेन्मार्क [स]े पंचगुना, आस्ट्रेलिया से छःगुना और न्यूज़ीलेंड से [स]तगुना अधिक दूध होता है। मूल्य में भी वह ३०० [क]रोड़ रुपये के लगभग पहुँचता है। परन्तु इन आँकड़ों [से] क्या जब कि भारत की पशु-संख्या बहुत बढ़ी-चढ़ी [है]। संसार के एकतिहाई पशु अकेले भारत में ही हैं, तो भी यहाँ दूध की उतनी उपज नहीं है जितनी कि होनी चाहिए। इसके कई कारण हैं, जिनमें एक कारण उपयुक्त चारे का अभाव भी है। यहाँ जितने भूभाग में खेती होती है उसमें केवल चार फ़ी सदी भूभाग में ही पशुओं के लिए चारा बोया जाता है। उधर ब्रिटेन में २५ फ़ी सदी और मिस्र में १६ फ़ी सदी भूभाग में चारा बोया जाता है। भारत में पशु-चिकित्सकों का भी अभाव है। यहाँ ८० हज़ार पशु पीछे एक वेटेरिनेरी असिस्टेंट है जब कि २५ हज़ार पशु पीछे एक चिकित्सक होना चाहिए। भारत के भूम्यधिकारी लोग भी पशु-पालन के शौक़ीन नहीं हैं। कहने भर को भारत के हिन्दू गो-भक्त हैं, परन्तु उनके भरण-पोषण की ओर वे जैसा चाहिए वैसा ध्यान नहीं देते। प्रसन्नता की बात है कि पशुओं की दुरवस्था की ओर केन्द्रीय सरकार का ध्यान गया है। हाल में ही दिल्ली में एक ऐसी संस्था की स्थापना की गई है जो प्रतिवर्ष पशुओं की प्रदर्शनी करेगी; साथ ही पशुओं की नस्ल सुधारने एवं उनकी संख्या बढ़ाने का भी प्रयत्न करेगी। परन्तु ऐसी संस्था का तब तक कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा जब तक उसकी शाखाओं का सारे देश में प्रसार नहीं किया जायगा। यह वही भारत है, जहाँ दूध और घी की नदियाँ बहती थीं और आज यह हाल है कि दूध बच्चों तक को पीने को नहीं मिल रहा है।

संयुक्त-प्रान्त में सड़कों का निर्माण

संयुक्त-प्रान्त की सरकार ने प्रान्त की कच्ची सड़कों को पक्की बनवा देने की एक व्यापक योजना बनवाई है। यही नहीं, उसके अनुसार कार्य भी प्रारम्भ हो गया है। इस वर्ष उसने इस मद में १ करोड़ ८५ लाख रुपया के लगभग खर्च करने तथा १,३८८ मील सड़कें पक्की बनवा देने का निश्चय किया है। सरकार का विचार है कि वही सड़कें पक्की बनवाई जायँगी जिनसे किसानों का हित होगा। निस्सन्देह सरकार की इस योजना के पूरी हो जाने पर साधारण लोगों का विशेष लाभ होगा, यदि वह एकमात्र इमारत-विभाग के विशेषज्ञों-द्वारा पूरी की जायगी। परन्तु हमें तो उसके

उस रूप में पूरी किये जाने के लक्षण नहीं दिखाई दे रहे हैं। क्योंकि हम देख रहे हैं कि प्रान्तीय असेम्बली के सदस्यगण इस बात का प्रयत्न कर रहे हैं कि उनके निर्वाचन-क्षेत्र के अमुक अमुक स्थलों की ही सड़कें पक्की की जायँ। हो सकता है कि सदस्यों ने उन्हीं सड़कों के पक्की करने की सिफ़ारिशें की हों जिनसे उन्होंने किसानों का विशेष लाभ सोचा हो। परन्तु हमारा अनुभव इसके विपरीत है। हम इस सम्बन्ध में पहले के बोर्डों के सदस्यों के उदाहरण यहाँ नहीं देना चाहते, जिन्होंने अपने निवास-स्थान को जानेवाली सड़कों की ही सदा मरम्मत करवाई तथा वहीं के स्कूलों को उन्नत करने में अपने कर्तव्य की इतिश्री समझी। हम तो वहाँ एक ताज़ा उदाहरण देंगे। वह है उन्नाव और रायबरेली ज़िले के उस भूखण्ड का जो बैसवाड़ा कहलाता है। इस भूखण्ड के बीच से ई० आई० आर० की एक शाखा रायबरेली से कानपुर को गई है। इसके समानान्तर में एक सड़क भी है, जिसका बीच का अंश, कोई २४ मील लम्बा, अभी तक कच्चा रहा है। सरकार की नई योजना के अनुसार अब यह अंश पक्का किया जा रहा है। इसके बन जाने से रेलवे लाइन के साथ साथ रायबरेली से उन्नाव तक एक पक्की सड़क भी हो जायगी और उससे किसानों का दोहरा हित होने लगेगा। परन्तु इस सड़क के दक्षिण तरफ़ जो भूखण्ड गंगा के तट तक फैला हुआ है और जो अनुमानतः १६ मील चौड़ा और ३२ मील लम्बा है, पक्की सड़क के अभाव का अनुभव सदियों से कर रहा है। उस भूखण्ड से एक कच्ची सड़क रायबरेली से कानपुर को गई है। यदि कहीं यह सड़क पक्की बनाई जाती तो इससे एक ऐसे लम्बे-चौड़े भूभाग के निवासियों को लाभ पहुँचता जो कांग्रेस के वर्तमान युग के नये प्रकाश में भी अन्धकार में ही पड़े हुए हैं, जहाँ कांग्रेस-सरकार के कार्यक्रमों की पहुँच की बात तो दूर रही, कांग्रेस के आन्दोलनों की ही अभी तक वैसी पहुँच नहीं हो पाई है। इस एक उदाहरण के सामने होते हुए हमें तो डर है कि कांग्रेसी सरकार की यह सड़क-योजना भी बहुत कुछ उसी ओर झुकी रहेगी, जहाँ असेम्बली के सदस्य अपने वोटरों को अपने हाथ किये रहने में समर्थ होंगे।

दहेज के विरुद्ध क़ानून की रचना

दहेज की प्रथा को रोकने के लिए सिन्ध सरकार ने सबसे पहले क़ानून बनाकर अन्य प्रान्तीय सरकारों के लिए एक उपयुक्त आदर्श उपस्थित किया है। इस सम्बन्ध में हमने संयुक्त-प्रान्त की सरकार से प्रमाण देकर, बार बार आग्रह किया, यहाँ तक निवेदन किया कि और न सही वह दहेज लेनेवालों पर 'विशेष आयकर' लगाकर ही इस दूषित प्रथा के बन्द करने का प्रयत्न करे। परन्तु हमारा निवेदन अरोण्य-रोदन ही सिद्ध हुआ। संयुक्त-प्रान्त की असेम्बली के तेजस्वी सदस्य ऐसी छोटी छोटी बातों में पड़कर अपनी तौहीन क्यों करने लगे। प्रसन्नता की बात है सिन्ध की सरकार ने जो क़ानून बनाया है उससे दहेज की बुराई दूर होने में काफ़ी सहायता मिलेगी। इस क़ानून के अनुसार सिन्ध में सगाई या विवाह के समय या उसके बाद निर्दिष्ट सूची के सिवा कोई भी रक़म न तो दे सकेगा, न ले सकेगा। पंचायत जो सूची बनायेगी वह सगाई के दिन से विवाह के बाद दो वर्ष तक पाँच सौ रुपये से अधिक न होगी। सिन्ध के इस दहेज-विरोधी क़ानून से निस्सन्देह उस प्रान्त के हिन्दुओं का हित होगा।

भला हो बाबू वंशगोपाल जी एम० एल० ए० का, जिन्होंने संयुक्त-प्रान्तीय असेम्बली में दहेज की प्रथा का उन्मूलन करने के लिए एक उपयोगी बिल पेश करके असेम्बली के सुधारवादी सदस्यों की लाज रख ली। इस महत्त्व के क़ानून की क्या रूप-रेखा है, यह कहाँ तक उपयोगी सिद्ध होगा, दुख की बात है, प्रान्त में न तो विचारवान् लेखकों ने अपने लेखों में चर्चा की, न किसी सुधारक संस्था ने। यों सुधारकों और प्रगतिशीलों की इस प्रान्त में कमी नहीं है। ख़ैर, आँसू पोंछने के लिए साप्ताहिक 'आज' में श्रीयुत परमेश्वरीलाल गुप्त ने इस नये क़ानून की रूप-रेखा बता दी है। उसका स्थूल परिचय हम सरस्वती के पिछले अंक में दे चुके हैं।

इसमें सन्देह नहीं है कि यह बिल बहुत ही उपयोगी है और विश्वास है कि यह शीघ्र ही पास भी हो जायगा। इसके क़ानून का रूप ग्रहण कर लेने पर इस प्रान्त के हिन्दुओं के सिर का एक बड़ा भारी बोझ उतर जायगा और वे वास्तव में सुख की साँस ले सकेंगे।

युक्तप्रान्तीय सरकार और मौलिक शिक्षण-पद्धति

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली दूषित है। यह विचार राष्ट्रभक्त भारतीयों के हृदयों में तभी से काँटे-सा खटकता आ रहा है जब से लार्ड मेकाले की योजना के आधार पर हमारे देश में इस शिक्षा-प्रणाली का सूत्रपात हुआ था। समय समय पर राष्ट्रीय नेता भी इसके दुष्परिणामों की विवेचना करते रहे और मञ्चों तथा पत्रों से भी इसका काफ़ी विरोध हुआ, पर कोई ख़ास नतीजा न निकला। निकलता भी कैसे? शिक्षा कोई ऐसी साधारण वस्तु तो है नहीं कि बिना राज्य की पर्याप्त सहायता के केवल जनता अपने चन्दे से इसे चला सके; और राज्य जो कुछ 'वैधानिकता' के नाम पर कर रहा था उससे अधिक या ज़रा भी इधर-उधर करना आवश्यक न समझता था। फल यह हुआ कि अँगरेज़ी राज्य के आरम्भ से आज तक हमारा शिक्षा-शकट उसी एक लीक पर चलता रहा; चाहे उससे हम अभीष्ट स्थान पर पहुँचे या गुमराह हो गये। इसके परिणाम-स्वरूप हमारे शिक्षितों में जो भयानक बेकारी फैल गई है वह इतनी प्रत्यक्ष है कि उसके लिए आँकड़े देने की आवश्यकता नहीं है।

हमारे देश की आत्मा सदैव इस निष्फल प्रणाली का विरोध करती रही। विरोध ही क्यों, जो कुछ हमारी शक्ति में था उसके अनुसार हमने इसमें परिवर्तन या सुधार करने का भी प्रयत्न किया। वृन्दावन का प्रेममहाविद्यालय, आर्य-समाजों के गुरुकुल और ऋषिकुल आदि संस्थायें इसी प्रयत्न के परिचायक हैं। पर इन [illegible]-संस्थाओं के पीछे न तो पर्याप्त धन-बल था और न सरकारी नौकरी मिल जाने का प्रलोभन! अतः विद्यार्थियों की बड़ी संख्या का आकर्षण उस ओर न हुआ और इसी लिए उन संस्थाओं का कार्यक्षेत्र भी यथेष्ट विस्तृत न हो सका।

इधर जब से कांग्रेस के हाथ में शासन की बागडोर आई है तब से राष्ट्र के कर्णधार इस दूषित शिक्षा-प्रणाली में आमूल परिवर्तन करने के लिए बड़ा परिश्रम कर रहे हैं। कुछ समय पूर्व महात्मा गांधी ने कुछ शिक्षा-विशेषज्ञों की सहायता से एक शिक्षण-योजना तैयार कराई थी, जिसका नाम 'वर्धा-शिक्षा-योजना' प्रसिद्ध हुआ था। देश के बहुमत ने इस योजना का स्वागत किया था। विशेषज्ञों का अनुमान है कि देश की मौजूदा हालत के लिए यही शिक्षा-प्रणाली सर्वाधिक उपयोगी हो सकती है।

इसी वर्धा-शिक्षा-योजना को अधिकाधिक व्यावहारिक रूप देने के लिए गत वर्ष हमारी प्रान्तीय सरकार ने आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में एक कमिटी की स्थापना की थी। इस कमिटी ने बड़े परिश्रम से अपनी योजना तैयार करके पेश की। इसी योजना के आधार पर हमारे प्रान्त की सरकार ने प्रारम्भिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षाओं को चलाने का निश्चय किया है और इसका नाम 'बेसिक' या मौलिक-शिक्षण-पद्धति रक्खा गया है। वर्तमान शिक्षा-पद्धति से इस शिक्षा-पद्धति में सैद्धान्तिक विभेद है मौलिक-प्रणाली का मूलतत्त्व यह रक्खा गया है कि—'शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो मस्तिष्क और शरीर को समान विकसित करे, जिसमें किताबी शिक्षा कम हो—क्रियात्मक अधिक। अर्थात् जिसके द्वारा अध्ययन और श्रम दोनों में सामंजस्य स्थापित हो सके। इसी कारण शिक्षा के समस्त विषय उद्योग और हस्तकौशल को केन्द्र में रखकर सजाये गये हैं, जिससे विद्यार्थियों को प्राथमिक शिक्षा में ही साहित्यिक व पुस्तकीय ज्ञान के साथ साथ एक ऐसे उद्योग की भी शिक्षा मिल सके जिसके द्वारा वे सफल नागरिक बनने के साथ साथ स्कूलों से निकलते ही अपना पेट भी पाल सकें, और आज-कल की भाँति द्वार-द्वार पर धक्के खाते न फिरें। प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करके जो विद्यार्थी जीविकोपार्जन करना चाहेंगे वे तो सांसारिक जीवन में प्रवेश करेंगे, पर जो किसी उद्योग-विशेष में विशेषता प्राप्त करना चाहेंगे वे माध्यमिक शिक्षा (कालेजों की शिक्षा) की ओर बढ़ेंगे। इसके बाद जो लोग ज्ञान-सागर में गहरा गोता लगाकर नये-नये रत्नों का अन्वेषण करना चाहेंगे वे विश्वविद्यालयों में पढ़ेंगे। यही इस नई योजना की रूप-रेखा है, जैसा कि माननीय पंडित गोविन्दवल्लभ पन्त जी ने अपने इलाहाबाद के गत ८ अगस्त के भाषण में बतलाया है।

यद्यपि शिक्षा की वर्तमान प्रणाली को उखाड़ कर उसके स्थान पर किसी नई प्रणाली को स्थापित कर देना बहुत ही व्यय-साध्य एवं परिश्रम-साध्य कार्य है, साथ

ही कोई यह दावा भी नहीं कर सकता कि यही योजना सर्वश्रेष्ठ है और यह सफल भी हो जायगी—और इसी आधार पर कुछ पत्रों ने इसे 'अविचारपूर्ण चापल्य' कहकर इसकी दिल्लगी भी उड़ाई है—पर यह निर्विवाद है कि जिनके हृदयों में देश के लिए कुछ कर गुजरने की लगन है वे अधिकार पाते ही अपनी शक्ति और बुद्धि का प्रयोग अवश्य करेंगे—भले ही जिन्हें बुद्धि का अजीर्ण हो गया है, और जो अपने शासन-काल में दावतें खाने और अभिनन्दन-पत्र बटोरने को ही देश-सेवा समझते थे वे लोग इसे जल्दबाजी कहकर इसका मज़ाक उड़ायें।

हमारे प्रान्त ने इस महान् साहसपूर्ण कार्य में सबसे पहले क़दम उठाया है; इसके लिए हमें गौरव है और हम अपने मंत्रियों—विशेष कर शिक्षा-मंत्री की—सराहना किये बिना नहीं रह सकते। गत ८ अगस्त से इस शुभ कार्य का श्रीगणेश हो गया है। लगभग १,७०० शिक्षक जिन्हें नूतन शिक्षा-प्रणाली की ट्रेनिंग प्राप्त हो चुकी है, इसी योजना को प्रान्त की १,७०० पाठशालाओं में कार्यान्वित करेंगे। इसी वर्ष के अन्त तक यह संख्या ६,००० तक पहुँच जायगी और फिर उत्तरोत्तर बढ़ती ही जायगी।

आशा है, प्रान्त की जनता और अध्यापक भी इस जनोपयोगी योजना को सफल बनाने के लिए कोई बात उठा न रक्खेंगे। राष्ट्रोद्धार एक-दो व्यक्तियों के करने से नहीं होता, न वह एक-दो वर्ष का कार्य है। इसके लिए संचित जन-बल व अधिक धैर्य की अपेक्षा है। यदि यह योजना अच्छी तरह चल निकली, जैसा कि हमें विश्वास है, तो वह दिन दूर नहीं जब हमारे प्रान्त में एक भी बेकार न दिखाई देगा और हमारे घर धन-धान्य से पूर्ण व सुखी दिखाई देंगे।

बनारस का गवर्नमेंट संस्कृत-कालेज

बनारस का गवर्नमेंट संस्कृत-कालेज एक प्राचीन एवं प्रतिष्ठित शिक्षा-संस्था है। सन् १७९१ ई० में इसकी स्थापना हुई थी। तब से यह बराबर वेद-वेदाङ्ग तथा भारतीय संस्कृति के आधार-स्वरूप संस्कृत-साहित्य के विभिन्न अङ्गों की शिक्षा प्रदान कर रहा है। काशी श्रीविश्वनाथ की पुरी होने के कारण से भारत का एक प्रधान विद्यापीठ रही है, अतएव पुण्यतम तीर्थ-स्थान में स्थापित होने के कारण इस कालेज का भी समस्त भारत में समादृत होना स्वाभाविक ही है।

वर्तमान शासन-व्यवस्था के अनुसार यद्यपि कालेज का प्रबन्ध संयुक्त-प्रान्त के शिक्षा-विभाग के अधिकार में है, तथापि अपनी कतिपय विशेषताओं के कारण एक प्रकार से अखिल भारतीय आकर्षण का पात्र बैठा है। भारत का शायद ही कोई ऐसा प्रान्त हो जहाँ के संस्कृत के विद्यार्थी इस कालेज में शिक्षा करने या यहाँ की परीक्षाओं में उत्तीर्णता प्राप्त के लिए न प्रयत्नशील रहते हों।

संस्कृत की परीक्षाओं की अन्यत्र जहाँ कहीं व्यवस्था है, उन सबकी अपेक्षा बनारस के संस्कृत-कालेज की परीक्षाओं का विशेष महत्त्व है और यहाँ के उपाधिधारी अन्य संस्कृत-विद्यालयों की अपेक्षा अधिक और विशेष सम्मान के पात्र माने जाते हैं।

परन्तु इस संस्कृत-कालेज के प्रधान अर्थात् प्रिंसिपल के पद पर आज तक बाहरी लोग ही समासीन किये जा रहे हैं। इस कालेज के किसी उपाधिधारी को सौभाग्य आज तक नहीं प्राप्त हुआ। कदाचित् प्रबन्ध-सम्बन्धी कार्यों की व्यवस्था तथा अन्तर्राष्ट्रीय विद्या-विनिमय की सुविधा की दृष्टि से यहाँ के प्रिंसिपल को संस्कृत के साथ ही साथ अँगरेज़ी का भी विद्वान् होना अनिवार्य समझा गया है और पहले इस प्रकार के व्यक्तियों का प्रायः अभाव-सा था जो यहाँ के आचार्य होने के साथ ही साथ अँगरेज़ी के भी विद्वान् हों। ऐसी दशा में अधिकारियों को बाध्य होकर इस कालेज के प्रिंसिपल की नियुक्ति के समय यहाँ के आचार्यों की उपेक्षा करनी पड़ती थी। परन्तु अब वह बात नहीं रही। आज ऐसे विद्वानों का अभाव नहीं है जो इस कालेज की आचार्य-पदवी से विभूषित होकर अँगरेज़ी-भाषा और साहित्य के भी पारगामी हों। ऐसी दशा में अधिकारियों को चाहिए कि यहाँ के स्नातकों की भविष्य में उपेक्षा न की जाय और उनको भी इस पद के गौरव को प्राप्त करने का अवसर दिया जाय। हर्ष का विषय है कि गवर्न-

सरकार ने इस कालेज की व्यवस्था के सुधार के सम्बन्ध में विचार करने के लिए एक कमिटी नियुक्त की है। क्या ही अच्छा हो कि यह कमिटी सुधार-सम्बन्धी अन्य आवश्यक विषयों के साथ ही साथ इस बात की भी सिफ़ारिश करे कि संस्कृत-कालेज के योग्य आचार्य को भी प्रिंसिपल का पद प्राप्त करने का अवसर दिया जाय। इस प्रकार का नियम जहाँ संस्कृत-कालेज के आचार्यों की अधिकार-रक्षा के लिए आवश्यक है, वहीं इससे कालेज की गौरव-वृद्धि भी होगी। अभी हाल के काशी के एक समाचार से ज्ञात हुआ है कि इस संस्कृत-कालेज को संस्कृत-विश्वविद्यालय का रूप देने के सम्बन्ध में विचार किया जा रहा है। निस्सन्देह यह प्रयत्न बहुत ही उत्तम है और यह यदि सफल हो सका तो इसके द्वारा केवल इस कालेज का ही नहीं, बल्कि हमारे प्रान्त का भी गौरव बढ़ेगा।

—ठाकुरदत्त मिश्र

आग मार्क का घी

पिछले अंक में उपर्युक्त-शीर्षक नोट में जिस घी का वर्णन किया गया है वह वानस्पतिक घृत है, अर्थात् तेल का बना घी, असली घी नहीं। आशा है, पाठक इस त्रुटि की ओर ध्यान देने की कृपा करेंगे। जिस नोट के आधार पर हमने अपना वह नोट लिखा था उसमें यह स्पष्ट नहीं किया गया था कि आग मार्क का घी कृत्रिम घी है। यह बात हमें बाद को मालूम हुई, अतएव पाठकों की जानकारी के लिए उसे हम यहाँ स्पष्ट करते हैं कि आग मार्क का उक्त घी तेल का बना वानस्पतिक घृत है।

स्वर्गीय मुंशी नवजादिकलाल श्रीवास्तव

मतवाला, चाँद आदि के भूतपूर्व सम्पादक तथा जागृति के वर्तमान सम्पादक मुंशी नवजादिकलाल श्रीवास्तव का शूलरोग से एकाएक गत ३० जुलाई को देहावसान हो गया। मुंशी जी हिन्दी के प्रवीण लेखक तथा देशभक्त थे। सम्पादन-कला में विशेष रूप से कुशल थे। 'मतवाला' को सफलतापूर्वक निकालकर उन्होंने अपनी कार्य-कुशलता का विशेष रूप से परिचय दिया था। वे हास्यरस के अच्छे लेखक थे। स्वभाव से सरल, विनम्र और अधिकतर हँसमुख थे। यद्यपि उन्हें लड़कपन में समयोचित अच्छी शिक्षा नहीं मिल पाई थी, तथापि अपने परिश्रम से उन्होंने हिन्दी, बँगला एवं उर्दू के साहित्यों का अच्छा अध्ययन किया था और सबसे अधिक महत्त्व की बात तो यह थी कि उनमें प्रतिभा और शक्ति ऐसी थी कि वे हिन्दी के लोगों में आगे आ गये थे। और जब कि उनकी मातृभाषा की सेवा के लिए सबसे अधिक आवश्यकता थी तब निर्दय काल ने उन्हें हमारे बीच से उठा लिया। उनकी आत्मा की सद्गति के लिए प्रार्थना करते हुए उनके दुःखी परिवार के साथ हम अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं।

राष्ट्र-संघ को नोटिस

समाचारपत्रों के पाठकों को राष्ट्र-संघ का नाम याद होगा। संसार के दुर्भाग्य से आज उस महत्वपूर्ण संस्था की कोई बात तक नहीं करता। यही नहीं, डिक्टेटरों ने उसे इतना अधिक महत्त्वहीन कर दिया है कि स्वीजर्लेंड की सरकार ने संघ को इस बात की नोटिस दे दी है कि अगली नोटिस पर उसे अपना बोरिया-बँधना लेकर स्वीजर्लेंड की सीमा के बाहर चला जाना होगा। राष्ट्र-संघ का कार्यालय स्वीज़र्लेंड के जेनेवा में स्थापित किया गया था और आज भी वह वहीं है। परन्तु चूँकि संघ से डिक्टेटर लोग असन्तुष्ट हैं, अतएव युद्ध छिड़ जाने पर स्वीजर्लेंड की सरकार राष्ट्र-संघ के कार्यालय को अपने यहाँ चलने देना अपने हक़ में लाभप्रद नहीं समझती। अतएव युद्ध की सम्भावना को देखकर वह चाहती है कि उसका कार्यालय जेनेवा से उठा दिया जाय। उक्त सूचना के अनुसार शायद अब संघ का कार्यालय फ़्रांस में खोला जाय। चाहे जो हो, राष्ट्र-संघ का वह महत्त्व नहीं रह गया है, जिसका यह एक और ताज़ा प्रमाण सामने आया है।

दो उपयोगी क़ानून

भारत में पालतू पशुओं का जो अधाधुन्ध संहार आये दिन होता रहता है उसी का यह भीषण परिणाम हुआ है कि देश में घी और दूध का अभाव हो गया है— उस देश में जहाँ घी और दूध की नदियाँ बहती थीं। वर्षों से सरकार से इस बात का आवेदन-निवेदन होता आया है कि वह क़ानून बनाकर कम से कम दूध देने
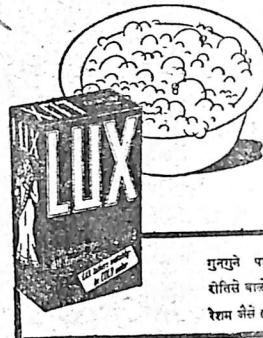
वाले पशुओं के वध की तो रोक-थाम करे। परन्तु सरकार के दरबार में सुनवाई नहीं हुई। प्रसन्नता की बात है कि विहार के प्रसिद्ध लोकनेता कुमार गंगानन्दसिंह बिहार की लेजिस्लेटिव कौंसिल की अगली बैठक में एक ऐसा विल उपस्थित करनेवाले हैं, जिसके क़ानून का रूप धारण करने पर अंधाधुन्ध पशु-वध की रोक-थाम हो सकेगी। इसी प्रकार एक विल गोशालाओं की सुव्यवस्था करने के सम्बन्ध का भी उसी बैठक में पेश किया जायगा। यद्यपि इन विलों के मसविदे अभी प्रकाश में नहीं आये हैं, तथापि उनके उद्देश्यों के सम्बन्ध में जो बातें प्रकाश में आई हैं उनसे प्रकट होता है कि ये दोनों विल उपयोगी हैं और इनका अनुकरण कर अन्य प्रान्तों में भी ऐसे ही विल वहाँ की कौंसिलों या असेम्बलियों में जल्दी से जल्दी उपस्थित होने चाहिए।

———

हैदराबाद का आर्य-सत्याग्रह

पिछले कई महीनों से स्वतन्त्रता और प्रगति के प्रेमी हैदराबाद-सत्याग्रह को चिन्तापूर्ण दृष्टि से देख रहे थे। प्रसन्नता की बात है कि वह अब निज़ाम-सरकार की एक घोषणा के आधार पर स्थगित कर दिया गया है। समाचार-पत्रों के पाठक जानते होंगे कि किस प्रकार यह सत्याग्रह— जिसका मौलिक आधार नागरिकता के अधिकारों की प्राप्ति था—हैदराबाद के हिन्दुओं की समस्या न रह कर अखिल भारतीय प्रश्न बन गया था, और किस प्रकार इसके लिए देश बड़े-से बड़ी क़ुर्बानी करने को तैयार था। हमारी सबसे बड़ी राष्ट्रीय संस्था, कांग्रेस ने यद्यपि इस सत्याग्रह का खुला समर्थन नहीं किया था—क्योंकि वह स्वयं देशी रियासतों के सुधार के लिए व्यापक और संगठित उपाय करने की सोच रही थी, और साथ ही उसे ख़तरा यह भी था कि कहीं यह प्रश्न हिन्दू-मुसलमानों के साम्प्रदायिक प्रश्न का रूप धारण न कर ले, फिर भी उसे सत्याग्रह के उद्देश्यों के प्रति सहानुभूति थी और व्यक्तिगत रूप से इस सत्याग्रह में शामिल होने की इजाज़त उसने कांग्रेस के मेम्बरों को दे दी थी। इस सत्याग्रह को आरम्भ में हैदराबाद के अधिकारियों ने "रियासत के चन्द आरियों की [illegible] बतलाया था, और इसे दमन करने के लिए कोई [illegible] शेष न रक्खा था। यही नहीं, अनेक मुस[illegible] नेता तो इसे खुल्लमखुल्ला मुस्लिम-विरोधी आन्[illegible] कहते थे और यह प्रचार करते थे कि यह सत्याग्रह [illegible] हैदराबाद के निज़ाम को—उनके मुसलमान होने [illegible] कारण से ही अपदस्थ कराने के लिए चलाया गया [illegible] यही नहीं, इसके विरोध में कहीं कहीं तो इतना [illegible] प्रचार किया गया जिसके परिणामस्वरूप हिन्दू-मु[illegible] दंगे तक हो गये। पर इतना सब होते हुए भी सत्या[illegible] अपने व्रत पर अटल रहे, उन्होंने सब प्रकार के [illegible] और यातनाओं का सहन किया और अन्त में [illegible] प्राप्त कर ही ली। आर्य-समाजियों के अतिरिक्त [illegible] भर के हिन्दुओं, सिक्खों यहाँ तक कि कुछ मुस[illegible] और ईसाइयों तक ने इस सत्याग्रह की धन-जन से सहा[illegible] की और यह सिद्ध कर दिया कि यह साम्प्रदायिक [illegible] ग्रह नहीं है—यह तो नागरिकता के अधिकारों की मांग [illegible]

अब समय आगया है कि देशी रजवाड़ों को [illegible] यह अनुभव कर लेना चाहिए कि उनकी प्रजा [illegible] पशु और अपंग नहीं रही; उसे भी मानवता [illegible] सुविधायें प्राप्त करने का प्रकृतिसिद्ध अधिकार [illegible] यदि वे शीघ्र ही मार्ग पर न आये तो उन्हें भी [illegible] परिस्थितियों का सामना आज नहीं तो कल [illegible] करना पड़ेगा, जिसका एक नमूना हैदराबाद [illegible] सत्याग्रह है।

निज़ाम-सरकार ने प्रजा को जिन अधिकारों [illegible] देने की घोषणा अपनी जन्म-तिथि के अवसर पर [illegible] और जिनके कारण उक्त सत्याग्रह रोक दिया गया [illegible] वे यद्यपि काफ़ी असन्तोषजनक और अपूर्ण हैं, [illegible] भी यदि उन्हें ईमानदारी और सद्भावना से प्र[illegible] किया जाय तो जनता के कष्टों में कुछ-न-कुछ [illegible] अवश्य हो सकती है। साथ ही हमें आशा है कि निज़ा[illegible] सरकार निकट भविष्य में ही अपनी प्रजा को अ[illegible] अधिक नागरिक स्वतंत्रता के अधिकार देकर अपने रा[illegible] को एक आदर्श राज्य बनाने का प्रयत्न भी [illegible] करेगी।

———

Printed and published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., ALLAHABAD.

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल—उमेशचन्द्रदेव

नवम्बर १९३९ } भाग ४०, खंड २ संख्या ५, पूर्ण संख्या ४७९ { कार्तिक १९९६

अपराध क्यों है !

लेखक, श्रीयुत 'एक भारतीय आत्मा'

नाथ मुझसे नेक बोलो, इस जलन में स्वाद क्यों है ?
एक अमर लुभावने से पतन में आह्लाद क्यों है ?
क्यों न फिसलन में, पुरानापन कभी आता बताओ ?
और चढ़ने में थकावट का प्रबल अवसाद क्यों है ?

बावली लतिका बता यह फूलने का मोह कैसा ?
फूल नश्वर, अमर काँटे, उन्हीं से जग-द्रोह कैसा ?
टपक पड़ने के दिनों को न्योतना—हे फूल-डाली ?
मिलन-तरु का आमरण फल, यह विषाद-विछोह कैसा ?

है मधुर कितना, कि भू में अंकुरों का ऊग आना,
मोर-पंखों-सा, कि पल्लव-रूप का बाना सजाना,
एक लहर उठी कि, माता भूमि पर, झुक झूम जाना,
और ज़ोर बढ़ा कि काले, कङ्कड़ों तक चूम जाना।

किन्तु धनुषाकार गिरकर धूल पर जब फूल आया,
रोकने को, रात में, निन्दित विचारा शूल आया!
पूछ कर ठिठका, कुसुम, चढ़ना कहाँ तू भूल आया?
फूल रोया—नाश में मैं यार, छनभर भूल आया।
नाश के इस खेल में, ये प्यार-धुम आते भला क्यों?
नाश के संकेत तरु पर उगते जाते भला क्यों?

पतन की महिमा सजग, सुन्दर, लपकती जा रही है,
एक अनहोनी कहानी-सी टपकती जा रही है,
देखकर भी पुतलियाँ हँस-हँस झपकती जा रही हैं—
और नाश-नरेश पर नव मुकुट-मणियाँ आ रही हैं।
ज़रा बतला दो, कि क्षय-क्षण जलन में यह स्वाद क्यों है?
और अमर, लुभावने इस पतन में आह्लाद क्यों है?

नाश का ही खेल है, तो विरह-दुःख अगाध क्यों है?
नाश का ही खेल है, तो अस्त फिर एकाध क्यों है?
नाश का ही खेल है, तो, यह पहेली ज़रा खोलो?
हर अमर तम नाश पर, झट उगने की साध क्यों है?

एक और,— कि वस्तु जिसकी है उसी के चरण-तल पर—
फूल-फूल बिखर गई तो नाथ,—यह अपराध क्यों है?
एक दिन जो फेंक देना है—कि मधुर दुलार क्यों है?
कुचलने के बाद, हाहाकार का शृंगार क्यों है?

एक झोंका वायु से ले, सिर हिलाकर ठुमक जाना,
और मीरा का मनोहर नृत्य बनकर छुमक जाना,
भूमि से विद्रोह!—ऊँचा सिर उठाना, खूब ऊँचा!!
पत्तियों की ताल बनकर, फिर स्वरों पर घुमक जाना।
अये किस दिन के लिए?—पतझड़ बना व्यापार क्यों है?
लाडिली, दुःखद बताकर, नाश का त्यौहार क्यों है?

पल्लवों के बीच से, कलिका उठी क्यों सिर उठाये?
क्यों उदार-विनाश-वेला के भ्रमर ने गीत गाये?
क्यों बताओ क्षणिक फूलों में अमर काँटे न ऊगे?
और खिलकर द्रुमों ने वे कौन से उपहार पाये?
एक माटी से उठी रेखा, कि कलियों तक खिंची थी,
जगत आशिक़ था कि जब तक फूल की आँखें मिची थीं!

—

सिग्मंड फ्राइड और उनके अन्वेषण

लेखक, प्रोफ़ेसर एस० पी० कनल

गैलीलो और डार्विन के बाद वैज्ञानिक जगत् में सिग्मंड फ्राइड का ही नाम आता है। मनोविकारों के विषय में उन्होंने ऐसे-ऐसे तथ्यों की खोज की है जिनका पता संसार में अब तक किसी को न था। निस्सन्देह उनकी इस जीवन भर की साधना ने चिकित्सकों के मार्ग की एक बहुत बड़ी कठिनता को दूर कर दिया है और अब हिस्टीरिया, अपस्मार व उन्माद जैसे रोग भी असाध्य नहीं रह गये हैं। इन अमूल्य तथ्यों की खोज करने में फ्राइड महाशय को कैसी कठिनाई का सामना करना पड़ा था और किस प्रकार वे अन्ततोगत्वा अपने कार्य में सफल हुए, इसी का वर्णन लेखक महोदय ने इस लेख में किया है।

मनोविज्ञानाचार्य सिग्मंड फ्राइड का गत मास में देहान्त हो गया। आप संसार के उन गिने-चुने मनस्वियों में थे जो घोर विरोध, तिरस्कार और दारिद्र्य का सामना करते हुए भी जीवन भर सत्य की साधना में लगे रहते हैं और अपने पीछे ज्ञान की ऐसी संचित राशि छोड़ जाते हैं जो आगामी पीढ़ी की सभ्यता को शताब्दियों आगे बढ़ा देती है। विज्ञान के इतिहास में वस्तुतः उनका वही स्थान है जो गैलीलो और डारविन का। जिस प्रकार जड़-जगत् के विषय में गैलीलो ने हमारे ज्ञान-चक्षुओं को खोल दिया है और प्रमाणित कर दिया है कि जड़ और चेतन कही जानेवाली सृष्टियों की रचना में मूलतः कोई वैभिन्य नहीं है; जिस प्रकार डारविन ने अपने अकाट्य प्रमाणों से सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य विधाता की कोई पृथक् सृष्टि नहीं है, वह तो पशु की विकसित अवस्था-मात्र है, उसी प्रकार फ्राइड ने भी मन के अचेतन-भाग के सम्बन्ध में ऐसे ऐसे तथ्य खोज निकाले हैं जिनसे मनोविज्ञान में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित हो गया है।
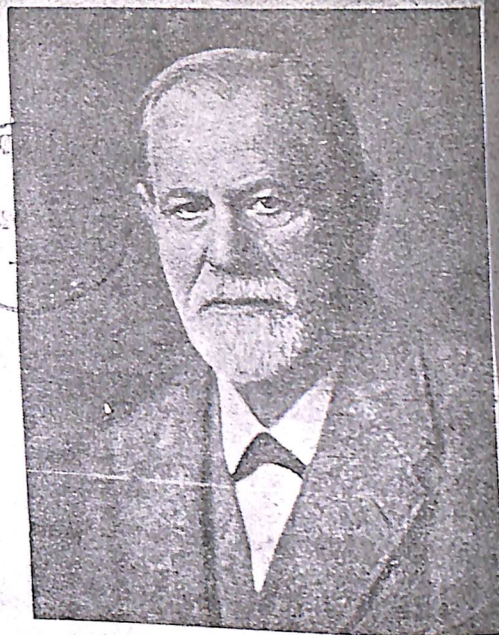
[मनोविज्ञानाचार्य सिग्मंड फ्राइड]

अन्य विज्ञानवेत्ताओं तथा मनुष्यों के सच्चे पथदर्शकों के समान ही फ़ाइड को भी मान के स्थान पर अपमान ही सहना पड़ा। इसका कारण एक तो यह था कि वे यहूदी थे और यहूदी-जाति पाश्चात्य देशों में सदैव लोगों की घृणा का पात्र रही है। यहूदी होने के कारण ही उन्हें पिछले दिनों ८० वर्ष की वृद्धावस्था में जेल की हवा खानी पड़ी थी। यदि संसार के लोकमत का दबाव न पड़ता तो बहुत सम्भव था कि वे वहीं मौत के घाट उतार दिये जाते।

दूसरा कारण यह था कि फ़ाइड ने मनुष्य को मानसिक रूप से उतना महान् और गुणवान् नहीं दिखाया जितना कि वह स्वयं को दिखाता है। यह वैज्ञानिकों और मनुष्य-जाति की प्रचलित धारणाओं के बिलकुल विरुद्ध था; यही कारण है कि फ़ाइड को इतने कठोर विरोध का सामना करना पड़ा। उनके नवीन मत का विरोध इस सीमा तक पहुँचा कि जिन अध्यापकों ने उसे स्वीकार किया उन्हें भी अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ा, उनकी पुस्तकों की भी झूठी आलोचनायें की गईं। और उनके मत को दबाने में कोई कसर बाक़ी न रक्खी गई। परन्तु वे साधारण व्यक्ति नहीं थे, न उनकी खोज

के निष्कर्ष ही ऐसे थे जो यों ही उड़ा दिये जा सकते। अन्ततोगत्वा उनकी विजय हुई और उनके अन्वेषणों से मानसिक रोगों की चिकित्सा के एक नये और सफल ढंग का आविर्भाव हुआ। आजकल उनकी रचनायें सभी पाश्चात्य विश्वविद्यालयों में मनोवैज्ञानिक अध्ययन का आवश्यक भाग बन गई हैं।

फ़्राइड का जन्म ६ मई १८५८ को ज़ेकोस्लोवेकिया के फ़्रीवर्ग नाम के एक छोटे शहर में हुआ था। जब वे चार वर्ष के थे तब उनके माता-पिता उन्हें वायना ले गये। वहाँ उनकी शिक्षा आरम्भ हुई। उन्होंने सात साल तक पाठशाला में पढ़कर उच्च श्रेणी में वार्षिक परीक्षा पास की।

फ़्राइड के पिता की आर्थिक दशा बहुत अच्छी न थी। तथापि वे चाहते थे कि फ़्राइड अपनी रुचि के अनुसार शिक्षा प्राप्त करें।

सन् १८७३ में फ़्राइड ने यूनिवर्सिटी में प्रवेश किया। यहूदी होने के कारण वहाँ वे बहुत तंग किये गये। वे विद्यार्थियों तथा अध्यापकों की घृणा के पात्र बन गये। परन्तु उन्होंने दुर्व्यवहारों की तनिक परवा न की। उनको दृढ़ विश्वास था कि उनकी जैसी मानसिक शक्तियाँ रखनेवाला पुरुष परिश्रम से संसार में केवल जीवित ही नहीं रह सकता, प्रत्युत यश भी प्राप्त कर सकता है। इस विषय में उन्होंने लिखा है—"यूनिवर्सिटी में पहले-पहल मुझे जो अनुभव हुए हैं वे बाद में मेरे लिए बड़े उपयोगी प्रमाणित हुए। बाल्यकाल में ही वहाँ मुझे लोक-विरोध का अनुभव कराया गया और बहु-संख्यक जाति की घृणा और विरोध का परिचय मिला। इस प्रकार मेरे जीवन के आरम्भ में ही आत्म-विश्वास और निर्भयता की नींव रक्खी गई।"

यूनिवर्सिटी में आने पर फ़्राइड को यह अनुभव हुआ कि यद्यपि उनको डाक्टरी के अनेक विषयों का अध्ययन करने का उत्साह था, तथापि वे केवल एक-दो विषयों में ही सफलता प्राप्त कर सकते हैं। फलतः उन्होंने शरीर-विज्ञान का अध्ययन एकाग्र होकर शुरू किया। उन्होंने ब्रुक की शरीर-विज्ञान-शाला में काम करना शुरू किया। वहाँ वे स्नायु-प्रणाली की गवेषणा का काम करने लगे और इसमें उनको सफलता प्राप्त हुई। इस सफलता से उत्साहित होकर उन्होंने स्वतंत्र रूप से इसी विषय की वर्षों तक खोज की। उनको डिग्री प्राप्त करने की चिन्ता न थी, चिन्ता थी केवल ज्ञान-प्राप्ति की। इसी से वे सन् १८८१ में डिग्री प्राप्त कर सके। १८८२ में अपने एक अध्यापक की प्रेरणा से स्वावलंबी बनने के लिए वायना के सबसे बड़े अस्पताल में उन्होंने काम आरम्भ किया। उनकी योग्यता से प्रसन्न होकर अस्पताल के प्रवन्धकर्त्ताओं ने उनको स्थानीय डाक्टर के पद पर नियुक्त कर दिया। सौभाग्य से यहाँ भी उन्हें खोज करने का काम मिल गया। यहाँ उन्हें मनुष्य की स्नायु-प्रणाली, विशेषकर मस्तिष्क के मज्जा-दण्ड-मूल पर खोज करने का काम दिया गया। इस काम के साथ साथ उन्होंने अपनी आर्थिक दशा को सुधारने के लिए स्नायु-प्रणाली के रोगों की चिकित्सा का काम आरम्भ किया। उनके इस काम से खुश होकर अधिकारियों ने उनको ज्ञान-तन्तु-निदान का अध्यापक बना दिया। ब्रुक के प्रशंसा-पत्र के बल पर उनको छात्रवृत्ति भी दी गई।

छात्र-वृत्ति मिलने पर फ़्राइड पेरिस गये। वहाँ वे प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक चारकोट के विद्यार्थी बने। एक दिन पढ़ाते समय चारकोट ने यह इच्छा प्रकट की कि उनके लेक्चरों का जर्मन-भाषा में अनुवाद हो। फ़्राइड अनुवाद करने को तैयार हो गये। इसी सिलसिले में चारकोट की उनसे मित्रता हो गई और वे उनको अपनी प्रयोगशाला में काम दिखाने लगे। यहाँ फ़्राइड को हिस्टीरिया के रोग का वास्तविक परिचय प्राप्त हुआ। चारकोट ने उन्हें यह बात भी सप्रमाण बतलाई कि हिस्टीरिया पुरुषों को भी होता है। हिस्टीरिया का मूल-कारण चारकोट ने रोगी के काम-भाव की तृप्ति में बाधा पड़ जाना बतलाया।

चारकोट के पास शिक्षा समाप्त करके जब फ़्राइड वायना को लौटे तब वे बर्लिन होकर लौटे। बर्लिन में बालकों के रोगों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए वे ठहर गये। वायना में बालकों के रोगों के इलाज की संस्था के प्रधान कासोविज़ ने उनको वचन दिया था कि उनके वापस आने पर वे उनको बालकों की स्नायु-प्रणाली के रोगों के विभाग का प्रधान बना देंगे। वायना आने पर फ़्राइड ने कई वर्ष तक कासोविज़ की संस्था में काम किया। इस काल में उन्होंने बालकों की मस्तिष्क-सम्बन्धी ांशिक और द्वांशिक पक्षाघात पर पुस्तकें लिखीं। जब पेरिस से वायना आ गये तब डाक्टरों की जिस सभा ने उनको छात्रवृत्ति दी थी उसमें चारकोट के मत के विषय में व्याख्यान देने का प्रबन्ध किया गया। उन्होंने अपने भाषण में चारकोट के हिस्टीरिया-सम्बन्धी खोजों की विस्तारपूर्वक व्याख्या की। उस भाषण से सभा के प्रधान अप्रसन्न हो गये। उन्होंने फ़्राइड के कथन पर अविश्वास प्रकट किया। एक सभासद् ने उन्हें चुनौती दी कि हिस्टीरियाग्रस्त पुरुष रोगी को सभा में पेश करें। फ़्राइड ने चुनौती स्वीकार की। परन्तु उनको हिस्टीरिया का पुरुष-रोगी मिलना कठिन हो गया। उनके मार्ग में डाक्टरों ने बाधायें डालीं और उन्हें अपने अस्पताल के रोगियों को देखने तक न दिया। डाक्टरों के विरुद्ध हो जाने पर भी उन्होंने जिस सत्य का प्रमाण चारकोट के पास देखा था उसकी घोषणा बिना शंका या उपहास के डर के पूरी वीरता के साथ की। उसका प्रमाण जुटाने के लिए वे बराबर प्रयत्न करते रहे। सौभाग्यवश एक पुरुष मिल गया जो हिस्टीरिया का रोगी था। उन्होंने उसको डाक्टरों की सभा में पेश किया। परन्तु डाक्टरों की सभा के अधिकांश सभासद् इसी मिथ्या विश्वास के अनुयायी थे कि पुरुष को हिस्टीरिया नहीं हो सकता, इसलिए उन्होंने उनका प्रमाण स्वीकार नहीं किया और उन्हें अध्यापक का पद भी नहीं दिया।

अब उन्होंने स्नायु-प्रणाली के रोगों से मुक्ति पाने की विधि का पता लगाने का काम शुरू किया। इस प्रकार के रोगों की चिकित्सा की दो विधियाँ उन दिनों प्रचलित थीं। एक बिजली-द्वारा और दूसरी हिप्नोटिज्म-द्वारा। इनमें से बिजली की विधि की असफलता का ज्ञान उनको शीघ्र ही हो गया।

अतः सन् १८९१ के पश्चात् फ़्राइड ने मानसिक रोगों की खोज और उनसे मुक्ति पाने की विधि का योजना ही अपने जीवन का मुख्य लक्ष्य बना लिया। यहीं से उनके मनोविश्लेषण के कार्य का आरम्भ होता है। इस सम्बन्ध में उन्हें डाक्टर ब्रुय्यर के प्रयोगों से अमूल्य सहायता मिली। डाक्टर ब्रुय्यर वायना के एक बहुत बुद्धिमान् और सम्मानप्राप्त चिकित्सक थे। उनसे फ़्राइड का परिचय विद्यार्थी-अवस्था में ही हो गया था।

जब वे अर्नेस्ट ब्रुक की प्रयोग-शाला में काम करते थे तब उनकी डाक्टर ब्रुय्यर से मित्रता हो गई थी। जब उन्होंने उपर्युक्त खोज का काम अपने जीवन का आदर्श बनाया तब वे फिर डाक्टर ब्रुय्यर के पास गये और उनसे विस्तारपूर्वक हिस्टीरिया के रोग से पीड़ित एक लड़की के इलाज की कथा सुनी। इस लड़की की चिकित्सा में डाक्टर ब्रुय्यर को अनेक नई बातों का पता चला था। फ़्राइड ने लगातार कई वर्षों तक हिस्टीरिया के अगणित रोगियों पर डाक्टर ब्रुय्यर के सिद्धान्तों की परीक्षा की। इसके बाद डाक्टर ब्रुय्यर के साथ सन् १८९५ में हिस्टीरिया पर एक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में हिस्टीरिया-सम्बन्धी घटनाओं के आधार पर उन्होंने यह सिद्ध किया कि—

(१) मानसिक जीवन में भावों का सबसे अधिक महत्त्व है, क्योंकि यही मानसिक जीवन के प्रचालक हैं। इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी के विज्ञान-वेत्ताओं का यह मत कि मनुष्य की पशु से विशेषता और भिन्नता इस बात में है कि जहाँ मनुष्य केवल दिमाग़ी शक्तियों से चलता है, वहाँ पशु प्राकृतिक शक्तियों से चलता है, फ़्राइड ने ग़लत प्रमाणित कर दिया। अब सब मनोविज्ञानी इस सचाई में विश्वास करते हैं कि मन को चलानेवाली प्राकृतिक शक्तियाँ ही हैं और दिमाग़ी शक्तियाँ प्राकृतिक शक्तियों के हाथ में केवल यन्त्र-रूप हैं।

(२) हमें चैतन्य मन के अनुभवों की सत्ता को स्वीकार करना चाहिए क्योंकि इसके बिना हम मानसिक जीवन की अनेक घटनाओं को नहीं समझ सकते।

(३) हिस्टीरिया के रोगी की असाधारण क्रियायें और गतियाँ उसके दबे भावों के चिह्न हैं।

(४) हिस्टीरिया के रोग से तभी छुटकारा हो सकता है जब दबे हुए भाव हिस्टीरिया की गतियों में व्यय होने के स्थान पर स्वाभाविक प्रवृत्तियों की ओर लगाये जायँ।

(५) जिस विधि से हिस्टीरिया के रोग से छुटकारा होता है उसका नाम डाक्टर ब्रुय्यर ने 'केथारटिक मेथड' रक्खा, जिसका अर्थ है शुद्धि अर्थात् मन की सफ़ाई की विधि। क्योंकि डाक्टर ब्रुय्यर ने हिस्टीरिया से मोक्ष

देने में जिस विधि का प्रयोग किया था उसका मुख्य उद्देश्य रोगी के दबे हुए भावों की तृप्ति और शुद्धि करना था। इसलिए इसका यह नाम उन्होंने रक्खा। इस शुद्धि-विधि की दो सीढ़ियाँ हैं—एक हिप्नोटिक दशा में दबे हुए अचैतन्य मानसिक अनुभवों का पता लगाना, दूसरा उन दबे हुए भावों के मालूम होने पर उनको सद्गति में लगाना।

इस पुस्तक के छपने के बाद डाक्टर ब्रुय्यर ने हिस्टीरिया के रोगियों की परीक्षा करनी छोड़ दी, क्योंकि उक्त पुस्तक की एक प्रसिद्ध डाक्टर ने बुरी आलोचना की जिससे वे निराश हो गये। अब फ़्राइड अकेले रह गये, तो भी दस वर्ष तक दुनिया के विरोध, घृणा और आक्रमण को सहते हुए मानसिक रोगों की खोज का काम करते रहे।

जब रोगियों के जीवन का परीक्षापूर्वक अन्वेषण करते करते उन्होंने रोगी के मन के गठन का ज्ञान प्राप्त कर लिया तब यह खोज आरम्भ की कि क्या मन की साधारण क्रियाओं और गतियों में भी यही गठन काम करता है? क्या जो नियम पागलपन में सत्य हैं वे ही मन के साधारण रूप में भी सत्य हैं। पहले-पहल उन्होंने स्वप्न की परीक्षा की क्योंकि स्वप्न पागलपन की अवस्था से मिलता-जुलता है और वह मन की साधारण तथा स्वस्थ क्रिया भी है। इसकी परीक्षा करने पर उनको ज्ञात हुआ कि इसमें जो गठन पाया जाता है वह वही है जो पागलपन में मौजूद है। इसके पश्चात् उन्होंने नित्य की लिखने, बोलने और अन्य व्यवहारों-सम्बन्धी साधारण भूलों की परीक्षा की और उनको यह पता लगा कि उनमें भी मन का वही गठन काम कर रहा है जो पागलपन में करता है। केवल इतना भेद अवश्य है कि उस गठन का मन की स्वस्थ अवस्था में इतनी मात्रा में उपयोगी नहीं होता जितना कि पागलपन में होता है।

इस खोज के समाप्त होने पर फ़्राइड का ध्यान चेतना की ओर गया और उन्होंने मन के गठन का निर्णय किया। अन्त में वे इस परिणाम पर पहुँचे कि मनुष्य का मन उत्पत्ति के समय अचेतन होता है। मन की इस अवस्था को 'इड' कहते हैं। धीरे धीरे प्राकृ[illegible] घटनाओं से इड का कुछ भाग चेतन हो जाता है। [illegible] चैतन्य भाग को साधारण अन्तःकरण कहते हैं। [illegible] इसमें से वह भाग जो हमारे शुभ भावों से निर्मित [illegible] 'उच्च अन्तःकरण' कहलाता है।

मन की क्रियाओं और गतियों पर दो नियमों [illegible] अधिकार है। एक सुख का नियम है जिसके अनु[illegible] मन सुख चाहता है और दुःख से बचना चाहता है। [illegible] का अधिक मात्रा में अधिकार मन को वास्तविक [illegible] से दूर ले जाता है और सत्य को अस्वीकार करने [illegible] लिए उत्तेजित करता है। परन्तु मन जब तक कुछ मा[illegible] में प्रकृति की पठनाओं का ज्ञान न प्राप्त कर ले तब [illegible] मन अपने भावों की तृप्ति नहीं कर सकता। इसलिए [illegible] अपनी इच्छा के विरुद्ध प्रकृति की पठनाओं का [illegible] किसी न किसी मात्रा में प्राप्त करने का यत्न करना प[illegible] है। मन के इस यत्नस्वरूप भाव को वास्त[illegible] नियम (Reality Principle) कहा है। जित[illegible] मात्रा में इस नियम का अधिकार मन पर [illegible] है उतनी ही मात्रा में मन का स्वास्थ्य [illegible] रहता है।

इस प्रकार मन के गठन के अध्ययन के बाद फ़्रा[illegible] ने मन के आदि भावों या प्राकृतिक शक्तियों की [illegible] शुरू की। अपने नवीन परिपक्व विचारों के अनु[illegible] उन्होंने मानसिक भावों को दो भागों में विभक्त कि[illegible] है। एक 'काम-भाव' और दूसरा 'विनाशकारी भा[illegible]' जिसका आपने (Death instinct) का नाम दिया [illegible] मानव-मस्तिष्क की इन सूक्ष्मता चेतनाओं का ज्ञान [illegible] जाने से उनको मानव-द्वारा संचालित आन्दोलनों [illegible] मनोवैज्ञानिक आधार-खोज निकालने में सरलता हो [illegible] है। आपकी इस खोज ने हिस्टीरिया की सफल चिकि[illegible] तो खोज ही निकाली है साथ ही मनुष्य अपने मौलि[illegible] मनोवैज्ञानिक-रूप में क्या है, इसका निर्णय करने का [illegible] मार्ग सरल कर दिया है।

मनुष्य-समाज को अभी उनसे बहुत कुछ आशा [illegible] पर दुर्दैव को यह कैसे सहन हो सकता था?

सैन्निनबारी*

लेखक, श्री श्यामसुन्दरलाल गुप्त, टोकियो

इस कहानी के लेखक श्रीयुत सुन्दरलाल गुप्त जापान के टोकियो नगर में बहुत दिनों से रह रहे हैं। जापानियों के जीवन के सम्बन्ध में उनका निजी और प्रत्यक्ष का अनुभव है। इस कहानी में आपने दिखलाया है कि आबालवृद्ध वनिता-जापानियों के हृदय में देश-प्रेम की लहर कितने ज़ोर से चल रही है और वे लोग चीन के साथ चलनेवाले वर्त्तमान युद्ध के प्रति कितने सक्रिय और सचेष्ट हैं।

(१)

चीन-जापान-युद्ध हो रहा था। सारा जापान युद्ध की तैयारी में मग्न था। छोटे-बड़े, अमीर-ग़रीब [illegible]को युद्ध की लगन थी। स्त्री-पुरुष, बच्चे और बूढ़े सब [illegible] ही रंग में डूबे हुए थे। कोई समरक्षेत्र में लड़ते हुए [illegible]निकों को आहार भेजता तो कोई प्रस्थान करते हुए [illegible]निकों की सहायता करने में ही अपना सौभाग्य [illegible]मझता। जीवन के प्रत्येक विभाग में युद्ध-सम्बन्धी [illegible]र्यों और विचारों का प्राधान्य था। उद्योग-धन्धों [illegible] साहित्य-क्षेत्र में, सामाजिक व्यवस्थाओं में, आहार-[illegible]वहार में समरक्षेत्र की ही तैयारी हो रही थी। शिक्षा [illegible] शासन-विभाग में, कला-कौशल में, आमोद-प्रमोद में [illegible] युद्ध के ही मोर्चे बाँधे जा रहे थे। त्याग की [illegible]ही भावना, स्वदेश के भविष्य की वही चिन्ता और कार्य [illegible]रने की वही लगन सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रही थी। [illegible]माचारपत्रों के लिए वही एक विषय रह गया था—[illegible]द्ध-स्थिति को ठीक तरह समझाते रहना। असाधारण [illegible]करण निकलना तो साधारण बात हो गई थी। कवियों [illegible] लिए 'कूच करते हुए सैनिक' और 'महान् जापान' ही [illegible]ल्पना के विषय रह गये थे। सभाओं के विषय भी [illegible]सी तक सीमित रह गये थे। पाठशालाओं में प्रातःकाल [illegible]देश का विषय 'युवकों का कर्त्तव्य' रह गया था। प्रधान [illegible]ध्यापक के प्रातःकाल के छोटे से भाषण में समरक्षेत्र [illegible] दृश्य का वर्णन ही प्राधान्य रखता और साथ में होता [illegible]वकों के लिए उपदेश। क्या प्राइमरी शिक्षालय और [illegible]या विश्वविद्यालय, सबमें यही आवाज़ कानों में पड़ती [illegible] कि यह करना चाहिए और वह करना चाहिए।

आमोद-प्रमोद तक में वही लहर देख पड़ती [illegible]। डिपार्टमेंट स्टोरों का प्रदर्शन नित्य ही बदलता रहता। उनमें रंगबिरंगी रोशनियों से जगमगाते हुए बड़े बड़े नक़शों और सैनिक वस्तुओं की सजावट ही मुख्य रहती। बड़े बड़े मकानों के अन्दर रोशनियों से ऐसे दृश्य बनाकर प्रदर्शित किये जाते मानो हम युद्धक्षेत्र में खड़े हों। सड़क पर जगह जगह युद्ध-क्षेत्र की बड़ी बड़ी तसवीरें लगी होतीं। सिनेमा-घरों में समाचारों के फ़िल्म युद्ध-क्षेत्रों के ही होते। सजावट में मुख्य स्थानों पर तथा रेलवे लाइनों के दोनों ओर की बड़ी बड़ी इमारतों पर बहुत बड़े बड़े शब्दों में "सम्राट् चिरंजीवी हों", "शाही सेना की विजय" लिखे रहते। नया वर्ष आया तो दूकानों की सजावट में लगे सामानों में हवाई जहाजों और सैनिकों के कूच, मशीनगनों के धुआँ उगलते हुए दृश्य और आग लगते हुए गाँवों की ही तसवीरों की अधिकता थी। नये वर्ष के कार्ड, फ़ोटो एलबम, सिगरेट-केस और तरह-तरह के उपहारों के सामानों पर ऐसे ही चित्र चित्रित रहते!

फ़ैक्ट्रियाँ रात-दिन धड़ाधड़ चलती रहतीं। रेलवे कर्मचारी पूरी मुस्तैदी से युद्ध-सामग्री ढोते रहते, सिनेमा-कम्पनियाँ देश को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति तथा स्वरक्षा के उपायों को बताने के हेतु नित्य नये फ़िल्म तैयार करने में संलग्न रहतीं। उनमें दूसरे देशों की स्थिति से जापान की तुलना की जाती तथा करने योग्य आवश्यक कार्यों के दृश्य दिखाये जाते। पाठशालाओं में प्रातः युद्ध-गान होता, मिडिल स्कूलों में सैनिक-शिक्षा दी जाती। अमीर से लेकर ग़रीब तक सभी युद्ध की धुन में मस्त थे। मजदूर को पैसे मिलते तो सिनेमा में जाकर समाचारों का फ़िल्म देखता। पिछले दिनों जीते हुए क़िलों, सैनिकों का कूच, तोपों की गड़गड़ाहट, हवाई जहाजों की बमबाजी, विध्वंस होते हुए गाँवों और अपने सैनिकों-द्वारा किये जानेवाली कठिन मेहनत को वह अपनी आँखों के सामने देखता। और जहाँ सैनिकों की

* सैन्निनबारी अर्थात् "एक सहस्र सुई के टाँके।"

कठिनाइयों को देखते हुए लोगों की आँखों से आँसू और दिलों से आहें निकलतीं, वहाँ जय-घोष के समय उनके चेहरे खिल पड़ते। युवक निशानेबाज़ी सीखते। दूर तक के गाँवों में झंडे बनाने की कितनी ही दूकानें खुल गईं।

जापान का आकाश युद्ध के गानों से गूँज रहा था। बच्चे-बच्चे तक को युद्ध-गान याद था। यहाँ तक कि शराब पीकर नशे में आते हुए मनुष्य के मुँह से यदि कुछ निकलता तो युद्ध का गान। युवक जहाँ युद्ध में जाते, युवतियाँ सैन्निनवारी तैयार कराने में संलग्न रहतीं। सारा देश मानो तपस्या कर रहा था। सबकी मानो एक ही साधना थी। ऐसे समय में किमिको यदि शाम को जल्दी लौट कर घर के काम में माता का हाथ नहीं बँटा सकती थी तो इसमें माँ को क्या आपत्ति होती? वह मिडिल स्कूल की तीसरी कक्षा में पढ़ती थी और प्रायः शाम को चार बजे घर लौटकर काम में माता का हाथ बँटाया करती थी। परन्तु इधर कुछ दिनों से स्कूल में उसकी कक्षा की सारी लड़कियाँ मिलकर सैनिकों के लिए लिहाफ़ तैयार कर रही थीं। अपने देश के लिए लड़ते हुए सैनिक युद्ध-क्षेत्र में घायल होकर लौटते हैं और ग़ज़ब का जाड़ा है—यही विचार उनके मस्तिष्क में घूमता रहता और वे पाठशाला समाप्त होने पर भी काम करती रहतीं।

(२)

एक दिन किमिको शाम को जब घर लौटी, उसके बाल-मस्तिष्क में न जाने क्या क्या विचार चक्कर लगा रहे थे। उसका हृदय रह रह कर चीनी अफ़सरों की कुटिलता पर कुढ़ रहा था। उसने सोचा कि आज वह अवश्य ही जाकर सिनेमा में समाचारवाले फ़िल्मों को देखेगी। उसका हृदय सैनिकों की भग-दौड़, तोपों की गड़गड़ाहट, हवाई जहाज़ों की बमबाज़ी, बिध्वंस होते हुए गाँवों और जीते हुए क़िलों पर अपने सैनिकों का जयघोष—यह सब देखने और सुनने के लिए लालायित हो रहा था। इन्हीं विचारों में पड़ी हुई न मालूम कब वह घर पहुँच गई।

भगवान् सूर्य संसार से विदा ले चुके थे। रजनी अपने पदार्पण की तैयारी कर रही थी। तिमिर ने अपना राज्य फैलाना आरम्भ कर दिया था। किमिको घर पहुँची तब उसने माता को प्रतीक्षा करते पाया। उसका एकान्त देखकर उसके हृदय को और भी ... लगी। वह यह भी भूल गई कि उसका भाई इस समय घर से कई मील दूर हरी हरी पत्तियों पर लेटा हुआ अपनी कक्षा के अन्य साथियों के साथ जंगल की स्वच्छ वायु का आनन्द उठा रहा होगा।

उसने पूछा—"माँ, भाई अभी नहीं लौटा?"

"आज थोड़े ही लौटेगा!" माँ ने उत्तर दिया।

"क्यों?" अनायास ही किमिको के मुंह से निकल गया।

"पगली! किधर ध्यान है?" माता ने हँसते हुए कहा—"मालूम नहीं कि वह कहाँ गया है? सारी कक्षा तो सैनिक-शिक्षा के लिए गई है।"

किमिको का ध्यान बातों में लग ही नहीं रहा था। वह बहुत ही उदास थी। उसका मस्तिष्क तो न मालूम किन किन प्रश्नों को सुलझाने में मग्न था। हाथ जोड़ते हुए उसने कहा—"माँ! लड़कियों को भी इसी तरह सैनिक-शिक्षा के लिए क्यों नहीं ले जाते?"

माता ने देखा कि लड़की बहुत ही उदास है। बातों में उसका चित्त ठीक तरह नहीं लग रहा है। उसने कहा—"देखो खाना खा लो और फिर नहा कर सो जाओ। पानी गरम हो रहा है।"

"पिता जी तो अभी लौटे ही नहीं"—यह कहकर किमिको समाचार-पत्र के सन्ध्या-संस्करण को पढ़ने बैठ गई।

पिता जी लौटे तब नौ बज चुके थे। खड़े होकर किमिको ने अभिवादन किया, मानो प्रातः कही हुई किसी वस्तु को पाने की आशा में पिता को देखकर बालक खड़ा हो जाय। माता ने स्वागत किया। कपड़े बदलवाये और तीनों छोटी चौकी को घेरकर अँगीठी के सहारे गद्दों पर बैठ गये।

किमिको ने पूछा—"पिता जी, आज बहुत देर हो गई।"

"हाँ बेटी, आजकल बहुत अधिक काम है।"

फिर हँसते हुए उन्होंने कहा—"देखो, आजकल लड़ाई हो रही है। उसके लिए बन्दूक़ें बहुत-सी चाहिए। उन्हें पूरा करने के लिए अधिक काम करना चाहिए। तुमको, क्यों देर हो गई?"

उसके पिता आज विशेष प्रसन्न दिखाई पड़ते थे। बातें तो वह और भी करती, पर माता चौकी पर खाना लाकर रख चुकी थी।

खाना खा चुके तब किमिको के पिता ने उसकी माता को एक काग़ज़ लाकर दिखाया, मानो लड़की अपने पति के यहाँ से बुलावे का पत्र पिता को दिखाये। माता ने उस काग़ज़ को देखा। बाद में लड़की और पति की ओर देखा। उस दृष्टि में न मालूम कितने भाव छिपे पड़े थे। वृद्धा माता मानो अपनी लड़की के ससुराल जाने का समाचार पढ़ रही हो। भविष्य की चिन्ता ने उसके हर्ष को दबा लिया था।

यह राष्ट्र की तरफ़ से बुलावा था। रणचण्डी जीवित मनुष्यों की बलि चाहती थी। जो एक दफ़ा उसके लिए घर से निकल जाता उसके लौटने की आशा नहीं की जाती थी। यह विदा मानो जीवन की अन्तिम विदा होती थी—आँसुओं के स्थान पर मृदुमुस्कान से, शोक के स्थान पर अपार हर्ष से, घर के स्थान पर सारे राष्ट्र से, ईश्वर के यहाँ जाने के स्थान पर ईश्वर-स्वरूप सम्राट् के लिए जाने के लिए।

दूसरे दिन किमिको के पिता अपने पारिवारिक कर्तव्यों से मुक्त होकर राष्ट्र की निधि बन चुके थे। उनका शरीर ही नहीं, वरन आत्मा और हृदय भी अब पूर्णतया राष्ट्र की वस्तु हो चुका था।

(३)

किमिको के जीवन में इस घटना ने बहुत परिवर्तन कर दिया। एक विचार रह रह कर उसके हृदय में उठने लगा। वह पहले घर से निकलती तो 'बस' में बैठकर रेल के स्टेशन और रेल से पाठशाला पहुँच जाती। कुल तीस मिनट लगते। मिनट तो अब भी तीस ही लगते थे पर अब इस समय में होनेवाले कार्य की महत्ता बढ़ गई थी। पहले रेल में जाती तब मानो घर में बैठी हो। पुस्तक पढ़ती चली जाती। कितने ही आते और उतर जाते, पर उसे मानो पता ही नहीं हो, दोनों ओर की इमारतों को क्या देखती? उनमें भी क्या कोई नई बात थी? बाज़ारों में जाती तो घूमती-घामती निकल जाती।

पर अब? जिन [illegible] किमिको का ध्यान शायद ही [illegible] आकर्षण उत्पन्न हो चला था। [illegible] खिड़की पर खड़ी हो जाती। [illegible] चिरंजीवी हो" का वास्तविक मह[illegible] हुआ। बाज़ारों में अब युद्ध-क्षेत्र [illegible]। नया वर्ष आया तब उसके लि[illegible] तथा उसके हृदय के लिए एक अ[illegible] दूकानों में जाकर अब वह विदेशी [illegible] पात्रों की तसवीरों पर इतना ध्यान [illegible] शहरों के भग्नावशेषों, दुर्गों [illegible] अधिक आनन्द मिलता। नवीन [illegible] हवाई जहाज़, समर-क्षेत्र [illegible] इत्यादि उसे अधिक आकर्षित क[illegible] नये खिलौनों को भी वह देख[illegible] बच्चों के लिए सैनिक टोपियाँ, [illegible] इत्यादि की भरमार रहती। खि[illegible] और टैंकों की अधिकता रहती। पर [illegible] जो इन खिलौनों से खेलती और [illegible] और न आदमी ही थी कि कुछ [illegible]।

परन्तु इस सारे वाता[illegible] किमिको के कर्तव्य-पथ को निश्चित करने में बहुत [illegible] क्यों न मैं अपने देश के लिए लड़नेवाले वीरों की जीवन-रक्षा और लम्बे जीवन का प्रबन्ध [illegible] शत्रुओं का अधिक संहार कर सकें और शीघ्र ही विजयी हों। उसके हेतु क्यों न शीघ्र से शीघ्र 'सैन्निनवारी' तैयार कराकर समर-क्षेत्र भेजूँ? देर ही [illegible] पीला लम्बा कपड़ा लेना है, जो पेट पर चारों ओर लपेटा जा सके और इस कपड़े पर [illegible] टाँके लगवाने हैं। बाज़ारों में [illegible] रहती है, इसलिए टाँके स्त्रियों के ही [illegible] आवश्यकता में तो कुछ भी हानि नहीं है, [illegible] कपड़े पर एक ही टाँका लगाये, इसमें [illegible] समय लगेगा। एक दिन में शायद एक तैयार [illegible]। एक सहस्र स्त्रियाँ एक दिन में मिल जायँ तो शायद तैयार हो जाय।

× × ×

इसके बाद किमिको को 'सैन्निनबारी' तैयार करने की धुन सवार हो गई। स्कूल समाप्त होता तो घर लौटकर शीघ्रता से खाना खाती और फिर उसी की जल्दी में घर से निकल पड़ती। पीला कपड़ा लेकर और सुई में लाल धागा पिरो कर वह बाजार में जाकर खड़ी हो जाती। आती-जाती स्त्रियों से झुककर जब वह प्रार्थना करती तब वे टाँका लगाकर चली जातीं। वह जानती थी कि झुकने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वे स्त्रियाँ भी तो टाँका लगा देना अपना धर्म समझती हैं। फिर भी आदर का भाव उसे झुका ही देता। स्त्रियाँ आतीं; आदर से झुकतीं, टाँका लगातीं, फिर झुककर कपड़ा लौटा देतीं। आदर से फिर दोनों झुक जातीं। एक धन्यवाद देती तो दूसरी अपना धर्म बतलाती।

(४)

किमिको के संसार में आमोद-प्रमोद का स्थान बहुत कम रह गया। खेल-कूद का मानो कुछ महत्त्व ही नहीं था। उसे यही धुन थी कि जितनी भी हो सके उतनी ही सैन्निनबारी तैयार कराकर भेजूँ और जितना शीघ्र हो सके उतना ही शीघ्र भी। प्रातः पाठशाला जाती। लौटकर आती तो उसी धुन में बाजार चली जाती। बीच में ज़रा भी विश्राम न करती और शाम को बहुत देर तक खड़ी रहती। जब देखती कि अब स्त्रियों का आना-जाना प्रायः बन्द-सा हो गया है तब विवश होकर घर लौट आती।

घर लौटती तो थकी हुई। इतने परिश्रम का अभ्यास न होने के कारण कभी कभी सिर में दर्द होने लगता, कभी पाचन-क्रिया में विघ्न पड़ता। रात को देर से लौटने के कारण ज़ुकाम हो जाता, पर वह मशीन की तरह काम में लगी ही रहती। माँ कहती कि बेटी इस तरह शरीर खोकर तो काम किया नहीं जाता, पर वह कुछ उत्तर नहीं देती। जाकर सो रहती और प्रातः होते ही फिर वही चरखा लेकर बैठ जाती।

जाड़े के दिन थे। कभी कभी मेंह बरसता। ग़ज़ब की ठंड थी। लोग-बाग बाहर निकलने के बजाय घर में आराम करना अधिक पसन्द करते। भीड़-भाड़ कम रहती। और बाहर निकलनेवाले हाथ, पैर, गर्दन, मुँह सब इस तरह ढँके रहते, मानो चोर चोरी की वस्तु छिपाने की चेष्टा करे। मुँह पर सब मास्क लगाये रहते, पर इससे क्या होता है, जाड़ा-ज़ुक़ाम घर घर चल रहा था। कल की बर्फ़ ने स्थिति को और भी बिगाड़ दिया था।

पर किमिको धुन की पक्की थी। उसे न शीत का डर था, न मेह की परवाह थी। चाहे कितना ही जाड़ा पड़े, कितनी ही तेज़ हवा चले, पर वह घर से निकल कर अपने काम में बराबर लगी रहती। पर आख़िर था तो शरीर ही, जवाब दे गया। बर्फ़ से ठंड लग गई। क्या करती, मजबूर थी।

किमिको शय्या-सेवी हो गई। कठिन ज्वर चढ़ आता था। शीत का प्रकोप था। बहुधा बक-झक करने लगती। बकझक में भी ऐसी ही बातें निकलतीं, मानो युद्ध-क्षेत्र में खड़ी हो। कभी कभी बाज़ार में भी खड़ी हुई मालूम होती, मानो अब भी उन्हीं की तैयारी में मग्न हो।

माता के हाथ-पाँव फूल गये। वह अब क्या करे। उसने बहुत सेवा-शुश्रूषा की। अस्पताल का डॉक्टर दिन में कई दफ़ा आता। परन्तु कुछ अन्तर नहीं पड़ा। पाँचवें दिन जाड़ा कम हुआ। किमिको ने आँखें खोलीं।

माता ने पूछा—"बेटी कैसी तबीअत है?"

"अब तो अच्छी है। माँ, अच्छी हो जाऊँ तब बाजार चली जाने देना! माँ! मेरी सैन्निनबारी क्या हुई?"

"वह तो उसी दिन भेज दी थी।"

"पर वह तो अधूरी थी।"

"वह अभी रक्खी है।"

इसके बाद किमिको कुछ बात नहीं कर सकी। उसकी आँखें बन्द हो गईं, और ऐसी बन्द हुईं कि फिर नहीं खुलीं। चौथे दिन उसकी आत्मा इस लोक के सारे बन्धनों से मुक्त हो अनन्त में लीन हो गई।

मरते समय किमिको को सन्तोष था तो यही कि उसकी 'सैन्निनबारी' समर-क्षेत्र में भेजी जा चुकी है।

× × ×

उसी समय किमिको के पिता का तार आया। नानकिंग का पतन हो चुका था और वे प्रसन्नचित्त सैनिक अस्पताल में बिस्तरे पर पड़े थे। उनकी टाँगों में थोड़ी चोट आई थी। किमिको की 'सैन्निनबारी' उन्हें मिल चुकी थी।

दुर्गापूजा

लेखक, श्रीयुत राय रामप्रसादचन्द बहादुर

श्विन मास में शुक्ल पक्ष के आरम्भिक नौ दिन समस्त भारतवर्ष के हिन्दुओं में महाशक्ति या देवी के नाम से पवित्र माने जाते हैं। पर बंगाल में इन दिनों दुर्गा की पूजा जैसी समारोह से होती है वैसी अन्यत्र नहीं देखी जाती। वहाँ देवी की एक प्रतिमा मृत्तिका की बनाई जाती है। आरम्भ के ४ दिन तक (षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी और नवमी) उसका धूमधाम से शृंगार किया जाता है, फिर पाँचवें दिन (दशमी को) बड़े उत्सव के साथ जल में विसर्जन कर दी जाती है।

दुर्गापूजा की प्रतिमा एक समूह में होती है। इस समूह के मध्य भाग में दुर्गा की मूर्त्ति होती है, जिसके दसों हाथों में खड्ग होता है और वह महिषासुर से युद्ध करती हुई दिखाई जाती है। इसीलिए उसका नाम 'महिषमर्दिनी' होता है। इस मूर्त्ति की कल्पना में असामान्य है। देवी राक्षसों के साथ युद्ध करती है, पर उनके साथ उसके दो पुत्रों—स्वामिकार्तिक और गणेश जी—को छोड़कर और कोई सेना-सहायक नहीं है। ये दोनों भी शान्तिपूर्ण मुद्रा में बैठे हैं। इनके अतिरिक्त दो साथी और हैं—एक लक्ष्मी और दूसरी सरस्वती। हिन्दू-पुराणों ने लक्ष्मी की उत्पत्ति क्षीर-सागर से लिखी है और सरस्वती को ब्रह्मा की पुत्री बतलाया है। पर बंगाली जनता की परम्परागत कथा में ये दोनों शिव से उत्पन्न दुर्गा की पुत्री कही जाती हैं। पद्मपुराणान्तर्गत देवी-माहात्म्य में दुर्गा की कथा में इन दोनों का कोई उल्लेख नहीं है। महिषासुरमर्दिनी की जो प्राचीन मूर्ति बंगाल में मिली है उसमें भी लक्ष्मी, सरस्वती, गणेश और स्वामिकार्तिक नहीं हैं। दुर्गा की मूर्ति में इन देवी-देवताओं का समावेश सम्भवतः पीछे के काल की बात होगी जब बंगाली हिन्दुओं ने दुर्गा की आख्यायिका को वह कल्पित रूप दे दिया होगा जिसमें वह आज-कल प्रचलित है। इस कथा के अनुसार दुर्गा अपने पुत्रों और पुत्रियों के साथ अपने मा-बाप से मिलने शान्तिपूर्वक हिमालय-प्रदेश ... इस आधुनिक

[महिषमर्दिनी की एक प्राचीन प्रतिमा]

[महिषमर्दिनी की कांस्य-प्रतिमा]

मूर्ति ने दुर्गा के शक्तिरूप को उनके देवीरूप से दवा दिया है और उन्हें पारिवारिक पुर्नमिलन का रूप दे दिया है। पर शायद परम्परा के दवाव के कारण देवी के इस रूप में भी दुर्गा-रूप के लक्षण फिर भी विद्यमान रह गये हैं।

दुर्गा की प्राचीन दशभुजी मूर्तियों में से हम पहले उस चित्र पर विचार करना चाहते हैं जो ममल्लीपुरम् के महिषमंडप की दीवारों पर वनाया गया है। इस चित्र का शृंगार अद्भुत है। दृश्य में एक ओर शिव-पार्षदों के सैन्य के साथ सिंहवाहिनी दुर्गा हैं। और दूसरी ओर अपने राक्षस, सैनिकों के साथ महिषासुर। दुर्गा आगे वढ़ रही हैं और ससैन्य महिषासुर पीछे हट रहा है। असुर के पृष्ठ भाग को सिंह अपने मुख में दवाये है। चित्रकार ने विजेता और पराजित के वीच सीमा निर्देश करने में अद्भुत कुशलता का परिचय दिया है। चित्र का प्रत्येक अंकन, छोटा या वड़ा, सजीव और स्पष्ट है और उसके सादृश्य की रक्षा भी कलापूर्ण ढंग से की गई है। दुर्गा की मूर्ति की ओर एक नज़र डालने से ही प्रतीत होता है कि असुर की परावृत्ति में कितनी गतिशीलता है।

चित्रकार ने दुर्गा को पुरुषों की तरह टाँगें फैलाकर सिंह की सवारी किये हुए अंकन करने में भी कमाल का कौशल दिखलाया है। दस में से केवल आठ भुजायें दिखलाई पड़ती हैं, पर प्रत्येक चार भुजाओं के कार्यों में ऐसा सन्तुलन है कि वेखने से यही ज्ञात होता है, मानों दुर्गा दो ही भुजाओं से सब अस्त्रों का संचालन कर रही हैं। दुर्गा का धनुष कान तक तना है और उनके वाण का लक्ष्य ठीक महिषासुर की ओर है। दुर्गा के अंग-प्रत्यंग पर धनुपाकर्षण और लक्ष्य-साधन का असर वहुत स्पष्ट दिखाई देता है। सम्भवत: यह कलापूर्ण चित्र सातवीं सदी का वना हुआ है।

[लक्ष्मी और सरस्वतीयुक्त दुर्गा की मूर्त्ति]

ममालीपुर की मूर्ति भी द्रविड़-कला का अच्छा नमूना है, जिसमें अंग-परिचालन का चित्रण ही प्रधान रहता है।

ईसाई-युग के आरम्भ से ही भारतीय मूर्त्ति-कला में एक विशेष परिवर्तन देखा गया। भारतीय कला का आदर्श 'ध्यान' था। बुद्ध और जैन-मूर्त्तियों की नाँई आर्य भी देवी और देवताओं के चित्र ध्यानावस्थित मुद्रा में वनाते थे। उनकी दृष्टि नासिका के अग्रभाग की ओर लगी और स्थिर होती थी। दृष्टि का यह निरा... आत्मवोध का परिचायक था। पुराने आर्यों के दिव्य पुरु... का देवत्व 'ध्यान-मुद्रा'-द्वारा ही प्रदर्शित किया जाता था। इस प्रकार आर्य-कला 'ध्यान' की शिक्षा देती है। चूँकि ध्यान-योग आर्य-कला के देवताओं का विशेष लक्षण था,

...यह आवश्यक था कि दुर्गा की मूर्ति में भी इसका अंकन ...ा जाता। पर महिषासुर के साथ युद्ध करती हुई दुर्गा ...चित्रण में ध्यान-योग का समावेश करना अनावश्यक ...था और असंभव भी, इसी लिए शिल्पी ने ऐसी उपहा...सद चेष्टा करने की मूर्खता नहीं की। 'ध्यान' और ...हार' इन दोनों कार्यों को साथ-साथ प्रदर्शित करने के ... ही आर्य-कलाकारों ने दुर्गा की मूर्ति का अंकन उस ...स्था में किया है जब कि संहार का कार्य समाप्ति ...है।

भुवनेश्वर के वैताल देवल मन्दिर पर महिष...र्दनी की सामूहिक प्रतिमा-कला का एक अच्छा ...मूना है। देवी दशभुजा है पर आठ भुजायें दिखाई देती ...। देवी का दक्षिण पद भूपतित असुर के वक्ष पर है और ...वी का वाम हस्त राक्षस के सिर को ऊपर की ओर झुकाये ...है। त्रिशूल राक्षस के दक्षिण-स्कन्ध में प्रवेश कर गया ...। इस मूर्ति में योद्धाओं के वलपूर्ण अंगपरिचालन के ...न की चेष्टा नहीं है। कलाकार का उद्देश्य केवल असुर-संहार के कार्य का इस प्रकार दिखलाना है, मानो वह दुर्गा के लिए एक आवश्यक किन्तु साधारण कार्य था, जिसमें उसे अधिक प्रयास करने की आवश्यकता नहीं थी। यह अंकन संभवत: ९वीं शताब्दी का है।

महिषमर्दिनी की एक और मूर्ति किचिंग के शिव-मन्दिर में है। किचिंग मयूरभंज की राजधानी है। इस मूर्त्ति में देवी एक और ही रूप में असुर को वेधती हुई दिखाई गई है। वह राक्षस के धड़ से प्रकट हुई है और उसके हाथ में त्रिशूल है। देवी का मुखमंडल शान्त है और अर्द्धोन्मीलित नेत्रों से मरणासन्न असुर के प्रति दया और वात्सल्य के भाव प्रकट हो रहे हैं।

जिसे सौन्दर्य की परख है वह इन मूर्त्तियों को देखकर विना प्रभावित हुए न रहेगा। जो किसी कला में आदर्श-विशेष के अन्वेषक हैं वे भी इससे यह आदर्श ग्रहण कर सकते हैं कि स्वयं पर पूर्ण शासन रखते हुए अपनी कुप्रवृत्तियों का दमन किस प्रकार किया जा सकता है।

आवाहन

लेखक, श्रीयुत हरशरण शर्मा 'शिव'

खोल प्रतीची का वातायन,
अगम-सिन्धु का कर अवगाहन,
उतर धरा पर अरुण-रश्मि सी,
मुकुलित करो विश्व के लोचन।

वहे प्रभञ्जन फहरे अंचल,
भू-धर के दृढ़-पद हो चंचल,
उड़ें मलिन भावों के रज-कण
वसुधा पर छा जावे परिमल।

बरसें सुधा-बिन्दु चितवन से,
शीतल हों उर-उर हिम-कण से,
पुलकित हों मानव वसुधा पर,
पाकर मधुमय रस जीवन से।

जय की ध्वनि गूँजे अम्बर में,
मुखरित हो ज्यों रव मन्दिर में,
उर-तन्त्री के तार बज उठें,
स्वर-लहरी लहरे अन्तर में।

छूटे पद-जावक की लाली,
फैले दिशि-दिशि अरुण-प्रभाली,
रंजित हों फूलों के मृदु-उर,
रस-स्नात हो प्रेम-द्रुमाली।

डायन

लेखक, श्रीयुत 'उदय'

सी चौड़े आँगन में नीम का एक घना पेड़ था, ग्रीष्म-काल में जिसके तले पड़ोस की २-४ प्रमुख स्त्रियाँ मिश्राणी जी के पास साधारणतः प्रतिदिन ही आ बैठती थीं। यद्यपि साड़ी-संसार की ये प्रोवीजनल कमिटियाँ अकसर अपने चित-परिचित जनों के चारित्रिक, शारीरिक एवं आर्थिक अवस्थाओं पर निष्पक्ष मत प्रकट करने की गरज से ही होती थीं, तथापि उन चलती समस्याओं पर विचार-विनिमय के साथ ही समय की अमूल्यता से अवगत वे कुछ न कुछ करती भी रहती थीं। कार्य-प्रणाली का उनका वह आदर्श अनुकरणीय है।

आज मिश्राणी जी झाड़ू-बुहारी से भी पूरी निपट न पाई थीं कि पंडिताइन जी "राम-राम, सुना है, वक़्त की बात!" कहती हुई लोटे का पानी तुलसी के गमले में डालने लगीं।

मिश्राणी जी ने साश्चर्य पूछा—"क्या हुआ?"

"अभी तो बाक़ी है, बाक़ी—अभी हुआ ही क्या है!" पीछे से बालू की माँ (साथ में श्यामा भी थी) ने दालान में पैर रखते हुए ज़रा उच्च स्वर से कहा। बेवक़्त यह खलबली सुनकर विधवा कमला भी अपनी झरोखे की खिड़की पर दौड़ आई।

"बात क्या हुई आखिर?" मिश्राणी जी ने भयातुर पूछा।

बालू की माँ—"सुना नहीं? रात सारा गाँव तो जग गया और तुमने सुना तक नहीं!"

"तुम्हारे मिश्र जी कुछ कहते तो थे; पर बालू की माँ, मैं सोई पड़ी थी। तुम जानो, दिन भर काम से चैन मिलता ही कहाँ है! तनिक ठहरो। मैं दूध को चूल्हे से उतार आऊँ। अभी आई।" मिश्राणी जी यह कह कर घर में घुस गईं। कमला कुछ नवीन समाचार पाने को उत्सुक कान लगाये रही और इधर 'कृष्ण, कृष्ण' कहती हुई बालू की माँ भी बैठ गई। श्यामा और पंडिताइन जी ने भी उसका साथ दिया।

श्यामा—'क्यों मौसी, वह कारखाने भी तो [illegible] है न?"

"हूँ, जांता-वाता है; और इसी जाने ने तो सत्या[illegible] किया है—अब तुम ही बताओ पंडिताइन जी, 'धर्म [illegible] कि गया!' 'कृष्ण-कृष्ण'! और इन मर्दों की मर्दा[illegible] तो देखो। पुलिस के दिवान जी कहते हैं, 'छोकड़ा [illegible] हराम की खाओ और हर-हर गाओ।'"

"क्या पुलिस भी आ गई थी, मौसी?"

तब तक मिश्राणी जी भी अपने काम से शीघ्राति-शीघ्र निवृत्त होकर समर की ओर उन्मुख हुई ही थीं [illegible] बालू की माँ ने पुकार कर कहा—

"मिश्राणी जी, ज़रा सुपारी का टुकड़ा [illegible] आइयो! सुबह से मुंह ऐसा फ़ीका हो रहा है! [illegible] कृष्ण-कृष्ण।"

श्यामा ने फिर अपना प्रश्न दुहराया—

"क्यों मौसी, क्या पुलिस भी आ गई थी?"

पंडिताइन जी—"हाँ, वह तो आई ही होगी।"

मौसी—"हैं—आई ही क्या, सारी कोतवाली [illegible] थी। सब निखट्टू हैं, हरामज़ादे हैं! है है [illegible] चले गये।"

मिश्राणी ने सुपारी का टुकड़ा लाकर दिया। 'कृष्ण भला करे', 'कृष्ण भला करे' कहती हुई बुढ़िया ने मुंह में रक्खा और थोड़ा टुकड़ा श्यामा को भी दिया। अब कार्यवाही आगे बढ़ी। कमला बहुत ध्यान से का[illegible] लगाये थी, पर कुछ साफ़ समझ न पड़ा। अखिर उसने भी सम्मेलन में भाग लेने का ही निश्चय किया। रुकते-रुकाते उसने घर के किवाड़ लगाये और ज्यों ही उसने मिश्राणी के आँगन में पैर रक्खा कि बालू [illegible] माँ के—

"समझीं मिश्राणी जी। अपना रूप लिये छमक छमक यों फिरा करती हैं ये सती देवियाँ। कृष्ण [illegible] कोई क्या करे?"—ये शब्द कानों में पड़े।

"कमला भाभी आ रही है"—श्यामा ने धीरे से कहा।

"हूँ, यह कौन-सी कम है महामाया।"—मौसी ने ज़बान दबाते हुए कहा।

"आ री कमला!"—मिश्राणी जी बोलीं।

सबके यथाविधि पैर छूकर कमला ने कहा—"तनिक [illegible] दो बबुआ की माँ।"

"हाँ, हाँ, देख ज़रा। वह चाकी तले पड़ी होगी। [illegible]"

कमला जब तक कैंची लेकर बाहर न हो गई कोई [illegible] न बोला। सिर्फ़ पंडिताइन जी ने इतना ही पूछा—"क्यों [illegible] दी क्या?" और मौसी की नज़र तो मानो [illegible] जाने को उसके पीछे शुरू से आखिर तक लगी रही। [illegible] उसके जाते ही बोली—

"ओफ़! देखा मिश्राणी जी, महामाया की मीठी बोली।"

पंडिताइन जी—"अरे नहीं बालू की माँ। यह तो [illegible]ारी दुखी है। कुछ भी कहो।"

"दुखी है! कृष्ण! कृष्ण! सुना मिश्राणी जी! [illegible]ताइन जी तो कल की बातें ही भूल गईं। अरे भोली [illegible]ताइन! इसके हंगामे तो अभी-अभी रुके हैं।"

मिश्राणी जी—"और फिर भी भगवान् जाने, बालू [illegible] माँ।"

मौसी—"कृष्ण! कृष्ण! टेवा की बात और बेवा [illegible] घात का कोई ठौर ठिकाना नहीं।"

पंडिताइन जी—"होगी भई, ! दुनिया है।"

मौसी—'तू ही तो कहती थी श्यामा—यही केदार। [illegible] की तो जाने भी दो।"

पंडिताइन जी—"वह तो बिलकुल झूठ।"

श्यामा—"नहीं जी पंडिताइन जी।"

मिश्राणी जी ने भी विहसते हुए कहा—"बात तो सही [illegible]। पंडिताइन जी न माने तो क्या।"

श्यामा—"ठीक है जी—वे तो मेरा दादा और—[illegible]—मिश्र जी थे, नहीं यह आज की फ़जीहत, यहाँ झरोखे [illegible] होती यहाँ।"

(हाथ से कमला के झरोखे की ओर संकेत किया)

मौसी—"कृष्ण! कृष्ण! कभी दाई से पेट छिपा [illegible]। यह तो मिश्राणी जी हैं—"मिश्राणी जी जो साँप [illegible]ती हैं आस्तीन में।

मिश्राणी जी ने बात का रुख बदलते हुए कहा—"है [illegible], फिर भी देखो-देखो कैसे-कैसे कुजात काम करने की [illegible]मत लोग करते हैं! राम! राम!"

मौसी—"और हम क्या सदा ऐसी ही थीं? तुम तो नहीं जानती। मैंने तो सारी उम्र रँड़ापा भुगता है और यह देखो श्यामा......"

"क्यों मिश्राणी जी, आज तो तुम्हारा व्रत है न?" बात काटते हुए श्यामा ने कहा।"

मिश्राणी जी—"हाँ बाई जी अगर तुम्हारे बाबा करने दें तो।"

पंडिताइन जी—"अब चलूं मिश्राणी जी, धंधा यों ही पड़ा है। आज स्कूल की भी छुट्टी है। वे भी आ गये होंगे।" कहते-कहते अपना लोटा उठा चल दीं। अन्य सदस्यों ने रोकने की चेष्टा भी की, पर व्यर्थ। चले जाने पर श्यामा ने कहा—

"कुछ भी कहो मौसी। पंडिताइन भी बहुत बनती है।"

मौसी—"देखो मिश्राणी जी, एक बात तो मुझे भी बुरी लगी उस दिन।"

श्यामा—"क्या? क्या मौसी?"

मौसी—"यह तेरी ससुराल रह आई है न, श्यामा?

उत्सुक श्यामा पर जैसे बिजली गिरी—"हाँ, थोड़े दिन रही होगी!"

मौसी—"यह तो कहती थी, कोई तीन बरस।"

श्यामा—"रही होगी। कौन इसके बरस गिनने बैठी थी।"

मिश्राणी जी—"रही होगी बाबा। इससे क्या लेना-देना?"

मौसी—"नहीं-नहीं यह बात नहीं। मुझे गुस्सा लगा जब इसने कहा कि श्यामा का भाई इसको ससुराल से इसलिए ले आया कि इसके सास-ससुर ने...."

श्यामा—"चुड़ैल कहीं की।"

मिश्राणी जी—"जा री, बावली माया! दुनिया है। यों ही कहती है। (बालक के रोने की आवाज़ पर चौंक कर) अरे, वह जग गया। दौड़ो बाई जी, अभी धम से नीचे आ जायगा।"

उधर श्यामा "हो हो! करती हुई दौड़ गई, इधर मिश्राणी जी ने मुंह खोला—"हाँ चौकस रहा करो बाबा। कल ही फूसी का लड़का हाट पर से धम नीचे गिर पड़ा। "कृष्ण! कृष्ण! भेजा फट गया—लोहू-लुहान हो गया।"

मिश्राणी जी—"हाँ ! हाँ ! अब कैसा है जी ? तुम्हारे मिश्र जी तो जाते भी हैं तो पूरी-पूरी खबर भी नहीं लाते।"

मौसी—"किसी चुड़ैल की दृष्टि बैठी है मिश्राणी जी, लड़का हाथ से जाता रहेगा। बड़े लोग कह गये हैं न कि डायन लेगी या देगी।"

मिश्राणी जी—"हैं ! कैसी बालू की माँ ?"

इतने में श्यामा ने बालक को गोद में खिलाते हुए लाते राह में ही पुकार कर कहा—

"मिश्राणी जी, बबुआ के गले में और हाथों-पैरों में यह क्या बाँध रक्खा है ?

मिश्राणी जी—"यह सब कमला ने बाँधा है, बाई जी।"

मौसी—"धन्य हो, मिश्राणी जी, धन्य है तुम्हें भी। भगवान् ने बड़ों के भाग्य से बच्चा दिया है, इस उम्र में तो क्या यह (स्वर हलका करते हुए) कमला ही मिली बबुआ को खेलाने को?"

श्यामा ने बालक को मिश्राणी जी को देते हुए कहा—"हाँ ! हाँ ! देख न मौसी। क्या जगह-जगह बाँध रक्खा है ?"

"करूँ क्या, बालू की माँ?" मिश्राणी जी ने कहा—"लेती हुई का हाथ तो पकड़ा जा नहीं सकता; फिर भी मैं बहुत रोकती हूँ। पर वह क्यों मानने लगी? यहाँ आयेगी और इसको अपने यहाँ ले जाकर अपने कपड़े पहनायेगी और यह यों ही दिन-दिन मरा जा रहा है।"

मौसी—"हैं ! क्या कह गई ? अपने कपड़े ?"

श्यामा—"हाँ, मौसी, ज़री के कपड़े बनवाये हैं इसके लिए।"

मिश्राणी जी—"अब तो इतना हिल गया है कि ज़रा-सी आहट मिलनी चाहिए कि मुँह से डिडकार छोड़ देगा !"

मौसी—"कृष्ण ! कृष्ण ! बड़ा अच्छा करती हो लक्ष्मी। और इस हालत में जो लड़का हेज छोड़ देगा तो रोया करना बैठ कर। ज़माने को इतना भी नहीं समझतीं ? फिर मुँह में एक बूँद तो डाल देखना।"

मिश्राणी जी—"इधर २-४ दिन से तो वह दूध भी थोड़ा पीता है। ऊपर से पिलाने को तो म... उसे कर दिया था। न जाने पिलाती है कि क्या ... है, बालू की माँ !"

मौसी—"कृष्ण ! कृष्ण ! कमला के हाथ ... दूध !"

मिश्राणी जी—"भगवान् जाने माँ, तुम्हारे मिश्र ... तो मानते नहीं; सच पूछो तो मेरी तो रूह ... है उनसे। ज़रा-सी भनक पड़ती है कि गाली... पर उतारू हो जाते हैं।"

मौसी—"यह सब घर फोड़ने की बातें हैं। ... राधा, अब तो समझ।"

मिश्राणी जी—"अब देखना बालू की माँ। आ... है, सुन ली है न इसके रोने की आवाज़।"

मौसी—"आज देखूं, कैसे ले जाती है ?"

श्यामा अब तक तुलसी के पत्ते तोड़ रही ... कमला को उधर आती देखकर वह भी फिर ... आ बैठी। कमला आ खड़ी हुई और कैंची मिश्राणी ... की ओर बढ़ाते हुए कहा—

"यह लो बबुआ की माँ क़ैंची। क्या वहीं रख दूँ ..."

"नहीं मैं ही रख दूंगी।" मिश्राणी जी ने कैंची ... हुए कहा।

अब कमला भी नीचे बैठ गई और बैठते ही बा... की ओर देखकर—"ओह बबुआ ! उठ गया क्या रे ..."

मौसी—"क्या काटती थी आज ?"

कमला—"ओह कुछ नहीं बालू की माँ। ... आ रे लाला ! आ जा ! आ जा !"

मिश्राणी जी—"तू भी बहू ग़ज़ब की है। अभी ... पिया है। ज़रा सो लेने दो।"

कमला ने बालक की ओर हाथ बढ़ाते हुए कहा—"अभी तो सोकर उठा है। अफ़ीम दे-देकर सुलाया करो ... आ जा ! आ जा !"

श्यामा—"चलती है भाभी घाट पर।"

अब जब कमला ने बच्चे को हाथ लगाया ... मिश्राणी जी बोलीं—"आज तो बच्चे को नहला दूँ ... की माँ।"

कमला—"यह सब मैं कर लूँगी अपने बबुआ ... आ रे लाला !"

मौसी—"हैं ! बड़ी ज़िद करती हो बहू। मिश्राणी ... कुछ कहती-सुनती नहीं इसलिए।"

"मिश्राणी जी कहें-सुनें। क्यों लाला? मैं तुझे ...ऊँगी, खेलाऊँगी आ जा ! आ जा !" कह कर ...ला बच्चे के गुदगुदा कर हँसाने लगी।"

मिश्राणी जी ने बच्चे को गोदी में से कन्धे पर लगाते ... कहा—"बस हो गया, हँस लिया।"

कमला—"ओफ़ हो ! आज—आज क्या हो गया मिश्राणी जी?"

मिश्राणी जी—"आज ही क्या? मैंने तुम्हें कब ...हा है?"

मौसी—"हाँ, बेचारी के हाथ धोकर ही पीछे पड़ ...वे कोई तो करे भी क्या?"

कमला—"इसमें पीछे पड़ने की बात ही क्या है? ...ई डायन हूँ क्या? तुम तो बालक को देखकर राज़ी ...न होती होगी न? इसमें कोई क्या कहे-सुने?"

मौसी—"देखी मिश्राणी जी इसकी माया? ऐसे ...रित्रों से ही तो भगवान् ने—"

कमला—"दो और कहो, बालू की माँ! तुमको ... यह कहना शोभा देता है न! तुम सब चरित्रोंवाली ...। मेरा क्या चरित्र! यही न कि मैं रास्ते की भिखारिन ...।"

मौसी—"मैंने चरित्र की क्या बात कही है, माया? ... इतना उफनती क्यों हो? मैंने तो यही कहा कि—"

मिश्राणी जी—"और कहा है तो क्या डर है जी? ...ह देना मिश्र जी से कि नहीं दिया बच्चे को।"

बच्चा इस हड़बड़ में रोने लगा और मिश्राणी जी—...र दुखदायी क्या खाये ही रहेगा।" यह कहती ... तमक कर उठ खड़ी हुई।"

कमला—"ऐसा क्यों कहती हो? यह लो मैं चली। ...ारी जैसी राँड़ें तो रोज़ होती और मरती हैं। मुझे ...; मुझे कोसो। इसको क्या कहती हो?" कहते-कहते ...मला का गला रुँध गया।

मिश्राणी जी—"यह लो। आई थी कि दो दुःख-... की बातें बैठ कर करूँगी।"

श्यामा—"चलती क्यों नहीं हो मौसी? तुम भी ...कर बैठ जाती हो।"

कमला—"नहीं, नहीं, मैं जाती हूँ। तुम बैठो, तुम रहो। मैं तो डायन हूँ।" यह कहती हुई कमला उठकर चल दी।

मिश्राणी जी—"कह दिया लक्ष्मी, कह दिया। जो कहा उसके लिए माफ़ कर। सागर में रहना और मगर से बैर।"

इस तरह वह मीटिङ्ग बर्ख़ास्त हुई।

(२)

कोई आध घंटा भी नहीं बीता होगा, मिश्र जी एक हाथ में कुछ चूने के पके पत्थर (क़लई के लिए) और दूसरे में डंडा लिये आये। कमला के घर के पास आते ही एकाएक चौंक उठे और थोड़ी देर वहाँ मंत्र-मुग्ध-से खड़े रह फिर आश्चर्य से कमला की रसोई की जाली में देखकर बोले—

"क्यों कमला? क्यों, क्या हुआ?"

कमला ने घूंघट निकाल लिया, पर उत्तर कुछ न दिया।

"अरे पगली!" मिश्र जी बोले—"तू कब तक यों रोती ही रहेगी? क्या इस तरह संसार का काम चलता है? यह सब त्रिलोकीनाथ की माया है, बावली। चल घर। उठ, बबुआ को खेलाना। वह तेरी राह देख रहा होगा। आजकल तू उसको रखती नहीं, इसी लिए तो—अरे! अरे! तुझे हो क्या गया है? मानती ही नहीं। तू यों नहीं मानेगी। अभी बबुआ को भेजता हूँ। तभी मानेगी।"—मिश्र जी यह कहकर अपनी दालान में घुसे और 'जय शङ्कर, मिश्राणी, जय शङ्कर' कहकर हँसते हुए गृहलक्ष्मी को सम्बोधन किया। इस पर चूल्हे के पास बैठी मिश्राणी जी ने धीरे से कुछ बड़बड़ा दिया।

"अरे! मिश्राणी रानी," मिश्र जी ने बाहर खाट पर बैठते हुए कहा—"ज़रा जाना बबुआ को लेकर। आज न जाने कमला क्यों सिहर-सिहर कर रो रही है?"

"अभी हुआ ही क्या है? भगवान् करे, जन्म भर रोते ही बीते। ये आये हैं उसकी हिमायत करने। बबुआ को ले जा।" मिश्राणी ने प्रत्युत्तर में क्रोध से कहा।

"राधा-गोविन्द! देखूँ ज़रा।" यह कहते हुए मिश्र

जी रसोई-घर में घुसे और देखकर बोले—"नारायण ! नारायण ! आज तो माजरा ही कुछ और है। सिंहवाहिनी, दुष्टदाहिनी, काली, जगदम्बा नमोनमः।" यह कहकर मिश्र जी हाथ जोड़कर खड़े हो गये और मिश्राणी जी मुंह फेर कर बाहर निकल आईं।

मिश्र जी पीछे-पीछे—"अरे देवी, सुन तो, ज़रा जा-जा। उसको समझा-बुझा। मैंने तो बहुतेरा कहा। कुछ जवाब ही नहीं देती। बात क्या हुई है ?"

मिश्राणी जी—"तुम्हीं न जाओ; तुमसे क्या वह नहीं बोलती-चालती ? मैं जाऊँ उसके पास समझाने ! मैं उसकी मोल की दासी हूँ ?"

मिश्र जी—"अच्छा अच्छा, सुन तो। बबुआ को तो छोड़ आयेगी; वह आप समझा लेगा। जा, जा मैं चूल्हे के पास बैठा हूँ।"

मिश्राणी जी—"बस, हो गया बहुत। उसकी हालत का भी ख़याल है। बबुआ को उसके पास छोड़ आ। तभी तो वह दिन-दिन गिरता जा रहा है।"

मिश्र जी—"उसके पास रहने से ?"

मिश्राणी जी—"हाँ, उसके पास रहने से—और—और लोग क्या कहते हैं, उसका भी ख़याल है ? तुम तो कान में रूई डालकर बैठ रहते हो। बोलो न। कितनी बार मना किया, इसको दूध हर्गिज़ मत देना, मत देना। वह मानती भी है (रोने लगती है)। मेरी पैर की जूती-सी भी क़द्र नहीं। बच्चा हाथ से चला जायगा तो मैं तो–"

मिश्र जी—"मैं मैं करती है। बच्चा हाथ से चला जायगा। बच्चा हाथ से चला जायगा। जाना होगा तो जायगा। रो लेना बैठ कर।"

मिश्राणी जी—"पर वह दूध तो देगी ही। क्यों न ?"

मिश्र जी—"यह कहा किसने है दूध तो देगी ही। दूध लाना तो बेचारी ने उसी दिन से बन्द कर दिया था। देगी कहाँ से ?"

मिश्राणी जी—"देगी कहाँ से ? संसार कहता है वह झूठ नहीं है।"

मिश्र जी—बिलकुल झूठ। एकदम, सरासर झूठ। संसार का क्या ? वह बैठे को भी हँसता है और चलते को भी। बस थोड़ी-सी बात होती है और रोने लगती है। हैं-हैं रोती क्यों है ? मैंने क्या कहा ?"

मिश्राणी जी—"बस, हो चुका। मैं अपनी मा[illegible] चली जाऊँगी। मुझे विश्वास हो गया, यहाँ [illegible] नहीं जीयेगा। मेरा जी जानता है, यह दर्द मैं [illegible] रही हूँ और अब यह मुझसे बर्दाश्त नहीं हो सकता। बच्चा हाथ से चला जायगा तो मेरा क्या होगा ? [illegible] उसी पापिनी का तुम विश्वास करते हो। चाहे [illegible] चीर डालो, अब बहुत हुआ।"

मिश्र जी—"अरे ! उस बेचारी पर इतना [illegible] क्यों पीस रही है ? वह तो यों ही बड़ी दुखी है, [illegible] अपना सहारा लिया है।"

मिश्राणी जी—"हूँ ! बड़ा पुण्य कमा रहे [illegible]"

मिश्र जी—"सुन भी ज़रा ! क्यों, क्या दूस[illegible] बच्चे को यों किसी को कहीं छाती के लगाते देखा-सुना [illegible] तुम गुस्से में बीसों सुना देती हो। कभी कुछ कहती भी [illegible] पिछली बीमारी में यह न होती तो न तुम रहती [illegible] बच्चा रहता। आज उस उपकार को भूल [illegible] गई !"

मिश्राणी जी—"अच्छा था, पाप कटता इस दु[illegible] तो।"

मिश्र जी—"छूत के डर से कोई हाथ ही न [illegible] लगाता था। 'बबुआ बबुआ' करते उसके तो प्राण [illegible] हैं और चुड़ैल औरतों के बहकावे में आकर कहती है [illegible] हत्यारिनी है।"

मिश्राणी जी—"माफ़ करो। क्यों मुहल्ला [illegible] हो। वह सती सीता है। यहाँ बच्चा पड़ा है। [illegible] और दे आओ। और मैं जाती हूँ अपने मायके।"

मिश्र जी—"यह सब उस सती मंथरा के काम [illegible]"

मिश्राणी जी—"दे आओ न महाराज। यह [illegible] किसको सुना रहे हो ?"

मिश्र जी—"तुम्हें। और किसको ?"

मिश्राणी जी—"मुझे ज़रूरत नहीं है।"

मिश्र जी—"तुम्हें और तुम्हारे संसार को [illegible] ज़रूरत है इसकी।"

मिश्राणी जी—"अच्छा महाराज ! माफ़ करो [illegible] तुमसे बहस में कोई जीतता भी है।"

मिश्र जी—"तब बिल-बिल बिल-बिल क्यों [illegible] करती हो ? कुछ सुनती न समझती हो ? वह रानी [illegible]

[illegible]री क़लई की बानगी। फिर कहोगी वह ऐसी है, [illegible] है।"

मिश्राणी जी—"भाड़ में जाय क़लई। मुझे नहीं [illegible]ए।"

मिश्र जी—"नारायण ! नारायण ! वहाँ से तो [illegible] ही है। वापस जायगी तो पोतोगी क्या ?"

मिश्राणी जी—"राख-कोयला।"

मिश्र जी—"बिलकुल ठीक ही कहा है।"

(३)

इसके ७ ही दिन बाद। कमला के मकान पर।

पंडिताइन जी—"मिश्राणी जी तो यों ही कहने-[illegible] में आ जाया करती हैं; तू बहू, उनकी तरफ़ मत देखा [illegible]।"

कमला—"नहीं पंडिताइन जी, अब मैं जाकर क्या [illegible]गी। अब उनके आपस में कलह बढ़ेगा। लोग कहेंगे, [illegible] दोनों को लड़ाकर घर बिगाड़ रही है। रहा बबुआ—[illegible] उसको देखने की इच्छा होती है, और जब वह बहुत बीमार [illegible] पर मन मारना ही पड़ता है। यहीं खिड़की के [illegible]रे डायन बनी बैठी देखा करती हूँ। भगवान् उसको [illegible] अच्छा कर दें; मैं तो यहीं से एक नज़र उसको देख [illegible] लिया करूँगी। एक-दो बार हिम्मत करके गई [illegible] पर मुझे देखकर किवाड़ लगा दिये। ख़ैर, नसीब [illegible] बात है।"

पंडिताइन जी—"कमज़ोरी क्यों लाती हो बहू ! [illegible] रक्खो। तुम तो खुद समझदार हो बहू !"

[illegible]—"क्या करूँ पंडिताइन जी ? मौत भी तो [illegible] आती। ऐसे तो डूबा भी नहीं जाता।"

पंडिताइन जी—"राम ! राम ! ऐसा क्यों कहती [illegible] ? दुखी कौन नहीं है ? इसी तरह सब कहें तो प्रलय [illegible] जाय।"

कमला—"रात को मीठे-मीठे सपने आते हैं। [illegible]री के किनारे चाँदनी रात में नन्हे-नन्हे बीसों बच्चे [illegible] मुझे आकर घेर लेते हैं। कभी दौड़ते हैं, कभी अपनी [illegible] आँखें मूँदकर छिपते हैं; प्यारे गोरे-गोरे हाथ मेरे गले [illegible] डालकर कहते हैं 'माँ सो जा।' वे मेरे स्वर्गीय पति के [illegible] खड़े-खड़े मेरे महाभाग्य पर हँसा करते हैं और मैं [illegible]गी 'माँ-माँ' सुनते-सुनते सोई नहीं रह पाती, उठ जाती हूँ। दिन भर डायन की तरह ताकती और यहाँ खिड़की के पास बैठकर अपने भाग्य पर रोती रहती हूँ। सोचती हूँ, सदा रात ही रहती तो कैसा अच्छा था, जिससे मेरे दिन इन मीठे सपनों में ही ख़त्म हो जाते। क्यों पण्डिताइन जी ? (उनकी ओर देखते ही साश्चर्य) अरे ! यह क्या पंडिताइन जी रोने क्यों लगी ?"

पंडिताइन जी—"नहीं, कुछ नहीं, ऐसे ही—"

कमला—"मेरे भाग्य पर न ? भला हो तुम्हारा।"

पंडिताइन जी—"मेरी एक बात मानोगी बहू ?"

कमला—"यह क्या बड़ी बात है। यह तो मेरे ही मतलब की बात है। यही कहती हो न कि मैं जाऊँ, बच्चे को देख आऊँ ?"

पण्डिताइन जी—"हाँ, क्योंकि अब उसकी तबीअत ज़्यादा ख़राब है, मैं तुम्हारे साथ चली चलूँगी।"

कमला—"कल मिश्र जी भी दो बार आये थे; पर पीछे बबुआ की मा उन्हें बुरा-भला कह रही थी। मैंने हाथ तो हिला दिया, पर रो पड़ी। क्या करती ? चलूँगी, पंडिताइन जी चलूँगी। तुम्हारी जैसी इस अभागी को कहनेवाली आये तो क्यों न चलूँगी ?"

कोई आध घंटे के बाद दोनों मिश्र जी के यहाँ पहुँचीं। बच्चे का गला बोल रहा था। मुँह ढँका था। पास में मिश्राणी जी बैठी मोर-पंख हिला रही थीं। कमला पर्दा नहीं करती थी, पर आज ख़ूब लम्बा घूँघट डाले थी। कोई विशेष बातचीत न हुई। कमला तो न बोली, न बोल सकती थी। पंडिताइन जी के पूछने पर मिश्राणी जी ने कहा—"अच्छा है। अभी दवा दी है (थोड़ी देर रुक कर) पंडित जी अभी स्कूल से नहीं आये क्या ?"

पंडिताइन जी—"आ तो गये हैं, पर वापस गये हैं। क्यों कुछ काम है क्या ?"

मिश्राणी जी—"नहीं, यों ही।"

पंडिताइन जी—"बाबा जी की दवा से कुछ होता न दिखे तो कारख़ाने के डाक्टर को दिखाओ न।"

मिश्राणी जी—"गये हैं लिवाने। अब आते ही होंगे। बाहर जाओ तो ज़रा राधा को भेजती जाना।"

पंडिताइन जी—"हाँ, हाँ, काम हो तो कहो न, मैं किये जाऊँ।"

मिश्राणी जी—"नहीं, हाट भेजना है । पंडित जी आ गये होंगे तो राह देख रहे होंगे ?"

पंडिताइन जी—"हाँ, अब जाती हूँ । काम हो तो कहलवाना । वे भी आते ही हैं । फ़िक्र मत करो । गोविन्द सब भला करेंगे ।

दोनों घर से बाहर हुईं । बाहर होते ही पण्डिताइन जी बोलीं—'क्यों बहू, आज तुमने घूंघट क्यों निकाल रखा था ? तुम तो कुछ बोली भी नहीं !"

कमला—"मुझे न ले जातीं और अकेली ही जातीं तो बच्चे की सही हालत तो पूछ पातीं—कुछ काम भी आतीं । ख़ुद को तो उठ आना पड़ा है और मुझसे कहती हो बोलने को ! किससे बोलती ? वहाँ कौन था जिससे मैं बोलती ? बताओ न, मेरी वहाँ कौन सुनता ? मुझे कौन सुनाता ?"

पंडिताइन जी—"होना है वह तो होगा ही, पर राम ! राम ! यह कलङ्क—"

कमला—"हैं ! कैसा कलङ्क ! कलङ्क कि पीड़ा ! जाओ, पंडिताइन जी देरी होगी, पंडित जी आ गये होंगे !"

कमला उसी समय दो-चार कपड़ों की एक छोटी-सी गठरी बग़ल में दबाकर घर से बाहर हुई और सीधी गाँव के उस छोर पर अपनी एक सहेली के यहाँ जा पहुँची ।

कमला को देखते ही सहेली ने कहा—"अरे ! कमला, आज ऐसे कैसे ?"

"मिलने को आई हूँ ।"

"अरे ! यह क्या ! इतनी दुबली ! और यह गठरी क्यों लाई ? कहीं बाहर से आ रही हो ?"

"नहीं ।, बाहर जा रही थी । यहाँ आ गई ।"

"बाहर कहाँ ?"

"घर ।"

"हैं ! घर से तो आ ही रही हो !"

"हाँ ।"

"तो जा कहाँ रही हो ?"

"यहाँ ।"

"वाह ! क्या कह रही हो ?"

"बबुआ कहाँ है ?"

"बबुआ ! कौन बबुआ ! प्रह्लाद को पूछ रही हो ?"

"हाँ, हाँ, वही ।"

"अरे ! तो तुम सीधे क्यों नहीं कहती ! ... बाप उसको बाहर ले गये हैं ।"

"तो, मैं ले आऊँ ?"

"हैं ! क्या बावली हो गई है । चल-चल, ... चल । इधर दे गठरी । क्यों मुझे नहीं देगी क्या ..."

"यह बबुआ की है । उसी को मिलेगी ।"

"हैं ! हाँ पर वह आयेगा न तभी । अब बबुआ ... नाम दे दिया । वह तो तेरे मिश्र जी के लड़के का ... है न ?"

"नहीं । हाँ-हाँ, है । पर वह आवेगा कब ..."

"बैठ भी, भीतर चल, अभी आते ही होंगे । ... हैरान होती है । देख क्या शकल हो गई है ! ... अपना ख़याल भी करती है । क्या करेगी इतने ... का जो दुख पा रही है ?"

"रुपया ! कैसा रुपया !"

"क्यों, क्या हुआ ! तेरे जीजा तो कहते हैं, अभी ... एक पैसा भी नहीं लिया बङ्क से ! देख, कमला ... नौकरानी रख ले—मुझे रख ले भई । ठीक है ... रखेगी न ?"

"अच्छा ।"

"आज हो क्या गया है तुझे ? तू न ठीक बोलती ... न हँसती है । तुझे मेरी सौगन्ध है, सच बता, क्या बात है ।"

"नहीं, नहीं कुछ नहीं, माया । देख ऐसी बातें बिलकुल ... कुछ नहीं, झूठ ।"

"चल, हट । वे आ गये ।"

"कौन आ गये ?"

"हट, बावली । तेरा तो आज दिमाग़ ठिकाने नहीं ।" ... कहते-कहते माया ने निर्लज्ज कमला का घूंघट खींच लिया ... उसने कहा—"इतनी बे समझ कब से हो गई ?"

कमला—"है ! है ! यह क्या कर रही है ?"

माया—"तेरा सिर ।"

आगन्तुक—"अच्छा, अच्छा, मैं बाहर चला जाता हूँ ।"

माया—"प्रह्लाद को यहीं छोड़ते जाओ ।"

कमला—"हाँ, इसको तो मुझे देते जाओ । आ रे ... मेरे बबुआ आ ! क्यों बेटा, रोता क्यों है ?" इस तरह ... उसको हिला-डुला कर रखने का प्रयत्न करने लगी ।

माया—"हाँ तो तू अपने बेटे को खेला और मैं चूल्हा जलाती हूँ—पर आज तो तेरे से यह रहता भी नहीं ।"

"ठहर, मेरे बेटे तुझे कपड़े पहना दूं ।" कहती कमला गठरी खोल कपड़े बाहर डालने लगी । माया खड़ी-खड़ी हँसती रही । आख़िर वह बोली—"आज तू सचमुच बावली हो गई है । ऐसे उल्टे-सीधे क्या पहना रही है ? हट, मुझे पहनाने दे । तेरा दिमाग़ ठिकाने नहीं है । अरे ! यह एक ही बहुत है । दो-दो कोट क्यों ठाँस रही है ।" कमला के पागलपन पर माया खड़ी-खड़ी हँसती देखती रही और जब बच्चा रोता न रुका तब बोली—"ला, कमला, इसे इधर दे । भूखा होगा । दूध पिला दूँ । अभी बच्चे को दूध भी तो नहीं मिला । तू ही क्या करे ?"

"मैं पिलाऊँगी अपने बेटे को दूध । तू अपना काम कर । हट-हट, ला इधर दे । जा, चूल्हा जला । ले भई, तेरा बेटा है, तू ही पिला ।"

माया—अरे नहीं । पर तू पिलायगी कहाँ से ? क्या हो गया है तुझे ?" दोनों हँस दीं ।

कमला—"अच्छा, मैं जलाऊँ तेरा चूल्हा ?"

माया—"तेरी इच्छा ।"

कमला—"नहीं । तू ही जलाना; मैं तो बबुआ को सुलाऊँगी ।"

माया—"अब तो यह सोवेगा कमला । हम दोनों बहनें बातें करती जायँगी और रोटी बना लेंगी । क्यों न ?"

कमला—"मैं तो रोटी खाऊँगी । भूख लगी है ।"

माया—"यह तो और भी अच्छा । ऊपर रोटी रक्खी है और अचार पड़ा है । खा ले ।" तीन घंटे तक इसी तरह माया कमला से मग़ज़पच्ची करती रही । कमला पहले तो सोई नहीं, पर बहुत कहने-सुनने पर बच्चे को छाती पर लिये-लिये ही सो गई । क़रीब ७ बजे माया अब घर के गोरखधंधे में लगी । इसी समय प्रह्लाद के पिता हाँफते-हाँफते घर में घुसे और सीधे रसोई-घर में माया के पास पहुँचकर बोले—"क्यों, वह कहाँ है ?"

पति को भयातुर घबराया देख माया चट खड़ी हो गोली—"क्यों, क्या बात है ? इतने घबरा क्यों रहे हो ?"

"अरे ! ग़ज़ब हो गया ।"

"कहाँ ?"

"प्रह्लाद कहाँ है ?"

"क्या बातें कर रहे हो ! प्रह्लाद वह सोया है । आज क्या सभी पागल हो रहे हैं ?"

"नहीं, नहीं, यह बात नहीं है । तुमने सुना है—देखो, वे मिश्र जी हैं न,—वे मिश्र जी ।"

"कमला के पास रहते हैं वे ।"

"हाँ, हाँ, वही—देखो, उनका लड़का मर गया है ।"

"ओह ! तो इसी लिए आज कमला पागल की तरह 'बबुआ-बबुआ' चिल्ला रही है । अब समझी ।"

"नहीं, नहीं, यह बात नहीं है । पूरी बात तो सुन ।"

"सुन ली । पानी लाऊँ । पानी पी लो ज़रा । बात न बात का नाम और हाय तोबा मचा दी ।" यह कहकर माया पानी लेने को चली ।

"माया ! माया !!"

"क्यों चिल्ला रहे हो ? बड़ी मुश्किल से तो कमला सोई है और तुम जगा कर ही रहोगे । क्या कहते हो ?"

"अरी, वह तेरी सखी है, न ।"

"हाँ, कमला !"

"हाँ हाँ यही—है ! सब कहते हैं—"

"क्या कहते हैं ?"

"देखो, कुछ कहते हैं—हाँ, कहते हैं कि डायन बन कर उसको खा गई । याने उस लड़के को, समझी ।"

वाह ! ख़ूब सुनाने आये हो; कहीं सुन लिया और विश्वास भी कर लिया ।"

"यह किसने कहा ? नहीं, हर्गिज़ नहीं । मैं उसका पूरा विश्वास करता हूँ । मैं तो तुम्हें कहने आया हूँ, महज़ कहने—और हाँ, यह सब सच भी तो हो सकता है, माया ।"

"फिर वही बात ।"

"नहीं, मेरा मतलब है, वह है कुछ नहीं, पर अगर प्रह्लाद को उसकी नानी के यहाँ छोड़ आऊँ तो—तो क्या हर्ज; बस यही.........."

"हाँ, ख़ूब कहते हो, वह तो बच्चे का सहारा देख यहाँ आई है और तुम उसको उसकी नानी के यहाँ पहुँचा देने को तैयार हो ।"

"नहीं, नहीं, तुम कहती हो न कि वह पागल है । वह ज़रूर इस बाबू (बबुआ के लिए) की वजह से हो गई

होगी। ठीक है, याने पागल तो है ही, इसलिए पागल के पास से तो उसे हटा देना चाहिए न? और फिर क्या भरोसा?"

"बस, अपनी 'और-और' रहने दो। ये झूठी बातें मुझे बर्दाश्त नहीं होतीं।"

"बर्दाश्त तो मुझे भी उस वक़्त नहीं हुई; पर गरज़ यह है माया कि पराये बच्चे के मरने पर कोई पागल होता भी देखा गया है? हूँ, यह तो अजीब पागलपन है!"

"इसका अर्थ है कि तुम उसे जानते नहीं और जानते भी हो तो बिलकुल ग़लत।"

"राम, राम, यह बिलकुल ग़लत नहीं हो सकता। मैं उसे ख़ूब जानता हूँ। पर यह भी तो जानता हूँ कि आदमी से ग़लती भी तो हो सकती है। और जब सब कहते हैं तब ग़लती ज़रूर हुई है। फिर तुम जानो। मैं कुछ नहीं जानता मैं तुम्हारी मा से साफ़-साफ़ कह दूँगा। "मुझे क्या मालूम, तुम्हारी बेटी जाने।"

"यह तो मैं समझती हूँ कि इस हालत में बच्चा इसके पास नहीं रहना चाहिए, पर इसका यह मतलब नहीं कि वह कुछ कर देती है।"

"नहीं जी, यह भी कभी हुआ है? लोगों का क्या? लोग तो यों ही कह देते हैं। हम तो इसको जानते हैं। और फिर माया तो समझदार है। हाँ, तो तुम ले आओ—चुपचाप, समझीं। बस, मैं अभी उसकी नानी को सौंपे आता हूँ। अरे, राम! राम, सिर हो जाय। तुम्हारी मा।"

'नहीं, नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता। पागल हो तो भी क्या? उसको बच्चे का खयाल है। उसका कुछ नहीं बिगड़ सकता। कहोगे तो समझा बुझा कल इसे घर पहुँचा आऊँगी, पर बच्चे को इसकी गोद से नहीं छीनूँगी।'

"अच्छा, अच्छा, तुम्हारी मर्ज़ी। तुम जानो, पर।"

"पर-वर कुछ नहीं।'

"नहीं नहीं, कुछ नहीं।"

माया एक बार उस कमरे में गई जहाँ दोनों सो रहे थे और फिर अपने काम में लग गई। माया के पति बाहर बैठ गये। थोड़ी देर बाद चुपचाप वे भी उस कमरे में घुसे और देखकर लौट आये। फिर [illegible] उधर टहल कर घुसे और बालक को धीरे छाती [illegible] से उठाया ही था कि कमला चौंक कर उठ बैठी और चिल्ला कर कहा—"बबुआ! बबुआ! इसे कहाँ लिये जाते हो? मैं क्या डायन हूँ? छोड़ो! छोड़ो।"

माया भागी हुई आई—"क्या बात है कमला?"

"माया, माया।" कमला उसके गले से लिपट कर बोली—"ये बबुआ को लिये जा रहे हैं। इन्हें कह दो वे उसे मुझे दे दें। मैं इसको अच्छी तरह रखूँगी। तुम इसे क्यों लिये जाते हो?"

"नहीं, कमला। वे कहीं नहीं जायँगे। यह तेरा है।" कहकर माया ने अपने पति को संकेत किया और उन्होंने कमला की गोद में बालक को दे दिया। रात बड़ी बेचैनी से कटी। सुबह के समय कमला को कुछ नींद आ गई।

माया ने कहा—"कुछ नींद भी आ गई है। अगर कहो तो नदी पर ले जाकर शीतल जल से इसे ख़ूब नहला दूँ। दिमाग़ की गरमी दूर हो जायगी।"

"बहुत ठीक कहती हो, पर—देखो।"

"मैं सब समझती हूँ। हालत सुधर गई तो मेरे साथ रहने में कोई हर्ज नहीं है। और अगर न हुई तो शहर ले जाकर अस्पताल में भर्ती कराना पड़ेगा।"

"एक-दम सही कहती हो, पर अभी प्रह्लाद...."

"क्या पगली समझा है मुझे जो नदी पर ले जाऊँ। हाँ, एक बात और याद आई। इसका रुपया वग़ैरह तो निकलवा लो। वह इसकी दवादारू में काम देगा। नहीं तो लोग खा जायँगे। इसको भी और इसके रुपये को भी।"

"यह सब ठीक हो जायगा, देखो, यह सब कर लूँगा।"

नींद आने से कमला की तबीअत कुछ अच्छी हुई और नदी पर नहाने का प्रस्ताव उसने ख़ुशी-ख़ुशी मान लिया। दोनों कपड़े-लत्ते लेकर नदी के एक साफ़-सुथरे किनारे पर पहुँचीं। माया कपड़े धोने लगी और कमला पास बैठी बैठी कंकड़ चुनने लगी।

"यह क्या करती हो। कमला?"

"खिलौने चुन रही हूँ।"

"बबुआ के लिए?"

"हाँ, वह कहाँ गया, माया?"

"अपने घर है।"

"नहीं, तुम ले आई हो। बताओ, तुमने कहाँ छिपाया बताओ।"

"कमला, तू अपना रुपया क्यों नहीं निकलवा लेती, बैंक का?"

"पर पगली, तूने छिपा काहे को दिया उसे। बता। अरे!"

"अरे—वह क्या! हैं! वह बबुआ-बबुआ! वहाँ बेटा!"

गहरे पानी में 'बबुआ, बबुआ' पुकारती हुई वह विलीन हो गई। कोई कुछ न कर सका। रोक भी कौन सकता? भले आदमियों के बहुत प्रयत्न करने पर भी मौखिक प्रतियों में यह बराबर छपता रहा कि 'डायन' मिश्र जी के बच्चे को खा तो गई, पर हज़म न हुआ।

पंछी

लेखक, श्रीयुत शिवसेवक शर्मा

उड़ चले निज देश पंछी।

प्रात लाई थी सजाकर, स्वप्न की रंगीन लाली,
अधखुले मादक नयन थे, झूमती मन्दार-डाली,
तम फटा, आलोक फूटा,
जग उठी सोती दिशायें,
खग जगे, सपने धुले सब,
खिल उठीं नव वासनायें,
छोड़कर तरु-डाल हिल-मिल,
चल दिये परदेश पंछी!

पन्थ में बहु देश देखे, गिरि, नगर, सागर, किनारे,
बहकते उर में जगीं, नव साधनायें मौन धारे,
मीत से बन आ मिले,
बहु दूर देशों के निवासी,
एक मन, बहु रूप से धर,
बढ़ चले सब देश-वासी,
स्वप्न का नव जाल बुनते,
आ गये नव देश पंछी।

हरित पट का पहन अवगुण्ठन मिली कलियाँ लजातीं,
नयन के संकेत से उर, की मधुर मदिरा दिखातीं,
झूमतीं अवनत लतायें
बिखरती फल-राशि-लाली,
झाँक कर स्वर्णिम पटल से,
खिल रहीं बहु धान्य-बाली,
भूलकर निज देश की सुधि,
रम गये परदेश पंछी।

चुग लिये दस-बीस दाने, सूँघ लीं दस-पाँच कलियाँ,
खा लिये फल, चार दिन में, खेल लीं बहु रङ्ग-रलियाँ,
चुन लिये दो-चार संगी,
सरस उर में रस छिपाये,
प्यार की मधु रागिनी में,
चहककर कुछ क्षण बिताये,
बन न पाये चिर अमर वे,
स्वप्न के सुनिमेष पंछी।

आ गई संध्या निशा के, श्याम अंचल से विहँसती,
विश्व के जाग्रत स्वरों में, सुप्ति का संगीत भरती,
मुँद चले नीरज-नयन नव,
मिट चले रंगीन सपने,
विहग-कुल कल गान तजकर
चल दिये अब देश अपने,
छोड़ कर सुख-दुख कहानी,
उड़ चले निज देश पंछी।

समाजवाद और गांधीवाद

लेखक, श्रीयुत रामनारायण 'यादवेन्दु' बी० ए०, एल-एल० बी०

प्राक्कथन

भारतवर्ष में समाजवाद और गांधीवाद शब्दों का काफ़ी प्रचार व प्रयोग है। आज तो हम भारत की राजनीतिक समस्याओं पर विचार करते समय इन दोनों सिद्धान्तों का विवेचन किये बिना रह नहीं सकते। कांग्रेस-कमेटियों के निर्वाचनों के अवसर पर समाजवादियों और गांधीवादियों के मोर्चे अलग-अलग दिखलाई पड़ते हैं। इस प्रकार गांवों में भी इन शब्दों का प्रचार होने लगा है। पिछले २-३ वर्षों में समाजवाद-गांधीवाद-संघर्ष ने बड़ा अवाञ्छनीय और भयंकर रूप धारण कर लिया है। यह सैद्धान्तिक संघर्ष सिद्धान्त-वाद तक ही परिमित रहता तो किसी राष्ट्रीय अहित की आशंका न थी; परन्तु इस संघर्ष की आड़ में व्यक्तियों का संघर्ष राष्ट्र के लिए बड़ा अहितकर सिद्ध हो रहा है। इन दोनों मौलिक राजनीतिक सिद्धान्तों के संबन्ध में जनता में बड़े भ्रान्ति-मूलक विचार प्रचलित हैं और स्वार्थी प्रचारकों ने अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए दोनों की मनमानी व्याख्यायें जनता के सम्मुख रखने की दुश्चेष्टा की है। इससे जनता विचारधारा-सम्बन्धी मतभेद को भली भाँति समझे बिना इनका अन्धानुसरण कर रही है। हमारे इस लेख का तात्पर्य समाजवाद और गांधीवाद के सम्बन्ध में इस समय प्रचलित भ्रान्तियों का निवारण कर दोनों का यथार्थ रूप प्रकट करना है।

समाजवाद क्या है ?

समाजवाद केवल-मात्र एक राजनैतिक सिद्धान्त ही नहीं है और न वह विशुद्ध आर्थिक सिद्धान्त ही है। समाजवाद तो मानव-जीवन का दर्शन-शास्त्र और सजीव कार्य-प्रणाली है। वह केवल राज्य, समाज या उसकी अर्थनीति से ही सम्बन्ध नहीं रखता प्रत्युत समूचे मानव-जीवन से सम्बन्ध रखता है। समाजवाद ऐसी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था की प्रतिष्ठा करता है जो मानव-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पारस्परिक साम्य और सच्ची सहकारिता को जन्म देकर समाज में शान्ति और आनन्द का राज्य स्थापित करता है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि मानव-जीवन में अर्थ का अधिक महत्त्व है; जीवन की अधिक प्रवृत्तियों के पीछे आर्थिक भावना ही छिपी रहती है। इसी कारण समाजवाद आर्थिक व्यवस्था पर अधिक ज़ोर देता है। आर्थिक व्यवस्था पर अधिक ज़ोर देने के कारण जन-समाज में यह विचार पैदा हो गया है कि समाजवाद केवल-मात्र आर्थिक सिद्धान्त है।

भारत ऐसा देश है जिसमें धर्म का अधिक नाम सुनाई पड़ता है, यद्यपि धर्म के सच्चे स्वरूप को जान कर उसके अनुसार जीवन ढालनेवाले लोग बहुत कम हैं। समाजवादी की इस आर्थिक व्यवस्था के कारण भारत में यह मिथ्या प्रचार भी किया जा रहा है कि समाजवाद ईश्वर और धर्म का विरोधी है। वस्तुतः यह कथन मिथ्या है और हम अगले पृष्ठों में इसके मिथ्यात्व को सिद्ध करने का प्रयत्न करेंगे।

समाजवाद पर तीन दृष्टिकोणों से विचार किया जा सकता है; ये एक ही चित्र के तीन पहलू हैं। इसलिए पाठक इन्हें भिन्न भिन्न चित्र समझने की भूल न करें। समाजवाद के तीन दृष्टिकोण हैं—(१) दार्शनिक, (२) आर्थिक, (३) राजनीतिक। समाजवाद का दर्शन है द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद। इस सिद्धान्त की विशद व्याख्या के लिए यहाँ स्थान नहीं है; प्रत्युत उसके मूल तत्त्व को समझ लेना ही आवश्यक होगा। समाजवादी दर्शन-शास्त्र का लक्ष्य भारतीय दर्शन की भाँति आत्म-दर्शन, मोक्ष या जगत् का केवल-मात्र ज्ञान नहीं, समाजवादी दार्शनिक इस विश्व की पहेली का रहस्य जानने की चेष्टा इसलिए करता है कि वह उसका यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर उसे परिवर्तित कर सके। एंगेल्स का कथन है—"दार्शनिकों ने विश्व को अनेक प्रकार से समझने की चेष्टा की है, प्रश्न यह है कि उसको परवर्तित कैसे किया जाय।" समाजवाद के आचार्य कार्लमार्क्स ने कहा है—"अब तक

दर्शन-शास्त्र ने विश्व की व्याख्या की है, अब उसे संसार को बदलना भी होगा।"

मार्क्स का यह मत है कि मनुष्य में मानवता तथा मानवीय उदात्त गुणों का जो विकास हुआ है, वह भावों की विकास-क्रिया का क्रम नहीं है; समाज में रह कर मनुष्य अपने जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जो उद्योग करता है, उससे उसकी क्षमता में वृद्धि होती है और उसकी क्रमशः यह क्षमता-वृद्धि उसकी सतत कार्य-शीलता का परिणाम है—भावों के विकास का नहीं। मानव ने अपने भोजन, वस्त्र, एवं गृह-सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जो प्रयत्न किये हैं और उनमें उसे जो सफलता मिली है, उसी का नाम प्रगति है। इस प्रयत्न के साथ साथ ही—ज्ञान का विकास हुआ और बस ज्ञान के कारण आंशिक रूप में मानवीय गुणों का विकास सम्भव हुआ। वर्तमान जगत् असामंजस्य एवं अनैक्य से परिपूर्ण होने पर भी गतिवमान् और परिवर्तनशील है और यह परिवर्तन असुन्दर से सुन्दर, अस्पष्ट से स्पष्ट, असामंजस्य से सामंजस्य, अचेतन से चेतन अथवा वस्तुतः असत्य से सत्य की दिशा में हो रहा है।

किन्तु यह परिवर्तन स्वतः नहीं होता। इस परिवर्तन के पीछे एक उद्देश्य और योजना होती है। स्वयं मानव-मस्तिष्क ही इस परिवर्तन का कारण है। मनुष्य ने जगत् को परिवर्तित किया है, किन्तु मनुष्य भी जगत् का ही अंग-विशेष है; इसलिए जगत् के परिवर्तन के साथ-साथ वह अपने को भी परिवर्तित कर रहा है। दृश्यमान जगत् ही प्रकृत वस्तु है; किन्तु वही सब कुछ नहीं है, वही एकमात्र सत्य नहीं है। यह दृश्यमान जगत् परिवर्तनशील है। अतएव सत्य भी इस परिवर्तन के मध्य से होकर, परिवर्तन के मार्ग से परिवर्तन के साथ-साथ प्रकाशित होता रहता है; और इस परिवर्तन के कारण ही कल जो सत्य और प्रकृत था, वह आज मिथ्या हो गया है; और आज जो सत्य और प्रकृत है वही भविष्य में नूतन के साथ मिल कर मलीन हो जायगा, और वह नूतन फिर नवीन सत्य को जन्म देगा।

इस परिवर्तन की सूचना द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद हमें देता है और यह बताता है कि यह परिवर्तन किस प्रकार हुआ ? इस परिवर्तन का अर्थ क्या है ? और यह परिवर्तन किस प्रकार संघटित हुआ ? इस परिवर्तन-प्रणाली का नियम क्या है ? इन्हीं सब प्रश्नों का उत्तर हमें द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद देता है। 'इसे 'द्वन्द्वात्मक' इसलिए कहा जाता है कि इस दर्शन के मत से किसी भी वस्तु के परिवर्तन के मूल में उसका अन्तर्विरोध काम करता है। किसी वस्तु, सामाजिक संस्था के अन्तर्गत जो विरोध होता है, वह विरोध ही उसके परिवर्तन का कारण होता है। और यही अन्तर्विरोध एक समाज-व्यवस्था को बदल कर उसके उत्कृष्ट समाज-व्यवस्था की भित्ति स्थापित करता है। अन्तर्विरोध के कारण ही परिवर्तन होता है, इस प्रकार का जो दृष्टिकोण है, उसे ही द्वन्द्वात्मक कहते हैं।

आचार्य मार्क्स ने समाजवाद की जो तात्त्विक विवेचना की है उसका मूल-मंत्र यह है कि मानव स्वयं अपना भाग्य-निर्माता है। मानव जगत् का एक अंग है परन्तु जगत् का एक अंग होते हुए भी वह उस समाज का निर्माता है जिसमें वह रहता है। इस प्रकार मार्क्स ने भाग्यवाद के सिद्धान्त पर गहरा प्रहार कर संसार को यह बतला दिया कि जो धनी जन यह कहते हैं कि—"संसार में धनी-निर्धन अपने-अपने भाग्य से होते हैं"—वह मिथ्या कथन है, प्रपञ्च है और एक बड़ा मायाजाल है; जो मुट्ठी भर धनिकों ने मानव-समाज के विशाल भाग को शोषित करने के लिए आविष्कृत किया है।

मानव-समाज की प्रगति का विश्लेषण कर आचार्य कार्लमार्क्स इस परिणाम पर पहुँचे कि मानव-इतिहास में समय-समय पर परिवर्तन हुए, एक समाज-व्यवस्था के स्थान में दूसरी समाज-व्यवस्था क़ायम हुई; पहली समाज-व्यवस्था का स्थान नई और उन्नतिशील समाज-व्यवस्था ने लिया। इन परिवर्तनों के समय विश्व में बड़ी बड़ी क्रान्तियाँ और विप्लव हुए हैं; नवीन व्यवस्था ने पुरानी व्यवस्था का नाश करके ही अपनी प्रतिष्ठा की है। रूस की राज्य-क्रान्ति का इतिहास यही बतलाता है। निष्कर्ष यह है कि प्रत्येक नवीन सामाजिक व्यवस्था का अंकुर पुरानी व्यवस्था के गर्भ में जम चुका था।

समाजवाद का मूल आर्थिक दृष्टिकोण है। समाजवाद उत्पादन, वितरण और विनिमय के साधनों पर से व्यक्तिगत स्वामित्व को उठा देना चाहता है। सम्पत्ति

के साधनों पर समाज का स्वाम्य हो कुछ व्यक्तियों का नहीं। कुछ मुट्ठी भर व्यक्ति अपने हितों के लिए विशाल जन-समुदाय का आर्थिक शोषण न कर सकें।

श्री मानवेन्द्रनाथ राय ने अपने एक लेख में लिखा है—"जब समाज के बहुमत के संगठित प्रयत्न और इच्छा के बावजूद सम्पत्तिशालीवर्ग अपनी उस सम्पत्ति को, जिसके बल पर वह सम्पत्तिहीन बहुसंख्यकवर्ग का शोषण करता है, छोड़ने को तैयार नहीं होता, तो दोनों वर्गों का संघर्ष सतह पर आ जाता है; मैदान में खुल खेलने लगता है। यह संघर्ष दबाया या छिपाया जा सकता है, नष्ट नहीं किया जा सकता; क्योंकि जब तक सम्पत्तिशाली और सम्पत्ति-शून्य—अकिंचन-वर्ग रहेंगे, यह संघर्ष भी रहेगा। सम्पत्तिशालीवर्ग की पीठ पर जैसा कि ऊपर भी कहा जा चुका है, सरकार है, राज-व्यवस्था है। इसलिए, वह अपनी इच्छा से अपनी सुविधाओं को नहीं छोड़ सकता। तब उसको रास्ते से हटाना आवश्यक हो जाता है। यह मार्क्स के समाजवाद का राजनीतिक दृष्टिकोण है। मार्क्सवादी राजनीति का अर्थ है, शोषित और पीड़ित जनता का शक्ति हस्तगत करने के उद्देश्य से चलाया जानेवाला संघर्ष।"

समाजवादी-व्यवस्था

पूँजीवादी-वर्ग के हाथ में शासन-सत्ता भी बनी हुई है। जब सम्पत्तिहीन वर्ग पूँजीवादीवर्ग को उसके विशेषाधिकारों से वंचित करने का प्रयत्न करता है, तब उनमें संघर्ष होना अनिवार्य है। इस प्रकार पूँजीवादी शासन-बल से सम्पत्तिहीनवर्ग के दमन करने का प्रयत्न करते हैं।

इसलिए पूँजीवादी-समाज-व्यवस्था में परिवर्तन करने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि समाजवादी शासन-मंच पर अपना अधिकार जमा लें। यह कार्य पूँजीवादीवर्ग के सहयोग से सम्भव नहीं। इसके लिए राज्य-क्रान्ति की आवश्यकता होती है। जब राज्यक्रान्ति के फलस्वरूप शासन-मञ्च समाजवादियों के हाथ में आ जाय तब वे राष्ट्र में सच्ची समाज-व्यवस्था को जन्म दे सकते हैं। शासन-मञ्च पर नियन्त्रण के बिना समाजवादी-व्यवस्था की स्थापना सम्भव नहीं।

समाजवादी-व्यवस्था के साथ क्रान्ति के साधनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। योरप में समाजवादी-व्यवस्था की स्थापना जिस देश में हुई है, वह हिंसा-बलप्रयोग से हुई है। किसी सीमा तक हृदय-परिवर्तन हो सकता है, परन्तु जब वर्गों के पारस्परिक विरोधी मौलिक हितों का प्रश्न खड़ा हो जाता है तब हृदय-परिवर्तन का साधन सफल नहीं हो सकता। जिस वर्ग की सत्ता हिंसा पर स्थिर है और जो व्यवस्था हिंसामयी है, वह शान्तिमय उपायों से कैसे परिवर्तित की जा सकती है। आज तक संसार में ऐसा कोई उदाहरण उपस्थित नहीं हुआ है जब कि किसी सत्ताधारीवर्ग ने स्वेच्छा से अपनी सत्ता का त्याग किया हो। हाँ, व्यक्तिगत उदाहरण मिल सकते हैं। परन्तु किसी वर्ग ने अपनी सत्ता का स्वेच्छापूर्वक त्याग किया हो, इसका उदाहरण मानव-इतिहास में मिलना सम्भव नहीं।

यद्यपि हिंसा, आतंकवाद और हत्याकाण्ड समाजवाद की विशिष्टता नहीं है और न यह समाजवादी-व्यवस्था के अंग हैं; परन्तु समाजवादी-व्यवस्था की स्थापना के लिए बल-प्रयोग की एक सीमा तक आवश्यकता है। भारतवर्ष ने अहिंसात्मक सत्याग्रह-द्वारा भारत की स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए, महात्मा गांधी के नेतृत्व में, जो पथ ग्रहण किया है, वह विश्व की राजनीति में एक नया परीक्षण है जिसका भविष्य अभी गर्भ में है। परन्तु यह तो स्पष्ट ही है कि गांधी जी के इस अहिंसा-अस्त्र का भारत की राजनीति पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। और यह आशा की जाती है कि यदि भारत ने अहिंसात्मक ढंग से पूर्ण स्वराज्य प्राप्त कर लिया तो वह समाज-व्यवस्था में भी अहिंसात्मक ढंग से परिवर्तन कर सकेगा।

महात्मा गांधी ने अनेक वार यह कहा है कि 'गांधी-वाद जैसी कोई चीज़ नहीं है'। गांधी जी ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया है कि—"आप मेरे नाम से इस तरह चिपटे रहेंगे, तो दुनिया आप पर हँसेगी। लेकिन एक दूसरा खतरा भी है वह बड़ा भयंकर है। वह यह है कि आपका संघ कहीं एक सम्प्रदाय न बन जाय। मेरे जिन्दा रहते हुए भी, अब ऐसा हो सकता है, तो मेरे मरने के बाद क्या होगा? जब कोई कठिनाई सामने आयेगी, तो आप कहेंगे—देखो उसने 'यंग-इंडिया' और हरिजन में क्या-क्या कहा है? आप अपनी आपस की

बहस में क़सम खा-खाकर मेरे लेखों का प्रमाण देंगे। अच्छा तो यह हो कि मेरी हड्डियों के साथ मेरे सारे लेख जला दिये जायँ।" गांधी-सेवा-संघ (वर्धा) की ओर से प्रकाशित मासिक 'सर्वोदय' को अपना संदेश भेजते हुए गांधी जी ने कहा—"'सर्वोदय' के संचालक 'गांधीवाद' को भूल जायँ। गांधीवाद जैसी कोई वस्तु नहीं है। मैंने कोई नई चीज़ हिन्दोस्तान के सामने नहीं रक्खी है। उसका उपयोग नये क्षेत्र में करने की चेष्टा की है। इस कारण मेरे विचारों को गांधीवाद कहना उचित नहीं होगा।"*

यद्यपि महात्मा गांधी यह कहते हैं कि गांधीवाद नाम की कोई चीज़ नहीं है और उनके विचारों को गांधीवाद कहना उचित नहीं होगा, तथापि उनकी विचारधारा, उनके दर्शन और कार्य-प्रणाली ने आज एक ऐसा रूप धारण कर लिया है, जिसके लिए एक नाम देना देश आवश्यक समझता है। गांधी जी की विचारधारा के लिए 'सर्वोदय' नाम भी दिया जाता है; परन्तु आज-कल 'गांधीवाद' ही अधिक उपयुक्त और प्रचलित है।

गांधी जी के तीन मौलिक सिद्धान्त हैं— सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह। यद्यपि सत्य-अहिंसा वैदिक-धर्म के मूलतत्त्व हैं और भारतवर्ष में सत्य और अहिंसा का सदैव से बड़ा माहात्म्य रहा है, परन्तु इनका पालन व्यक्तियों तक ही सीमित रहा है। मानव-इतिहास में हम कोई ऐसा युग नहीं पाते जब कि भारत में समाज ने सत्य और अहिंसा का पालन किया हो। राम-राज और वैदिक-काल की समाज-व्यवस्था पर हमारे यहाँ कोई क्रमबद्ध इतिहास नहीं है जिससे यह जाना जा सके कि इन युगों में समाज कहाँ तक अहिंसा का पालन करता था। 'रामचरित-मानस' से हमें राम-राज की सामाजिक व्यवस्था की एक झलक मिलती है, जो समाज के पूरे चित्र का स्थान नहीं ले सकती।

*देखिए 'सर्वोदय' अगस्त १९३८ वर्धा सी० पी०।

महात्मा गांधी की सबसे बड़ी देन यही है कि उन्होंने इन वैदिक सिद्धान्तों का जीवन के सभी क्षेत्रों में व्यापक प्रयोग—सामूहिक प्रयोग करने का परीक्षण किया है। राजनीति में सत्य और अहिंसा का समावेश वास्तव में इतिहास में एक नई घटना है।

इस प्रकार गांधीवाद का मूलाधार आध्यात्मिक है। वह मानवी समाज और भौतिक जगत् से परे भी जाता है। श्री हरिभाऊ उपाध्याय ने लिखा है कि "आँखों को जो कुछ दिखाई देता है उतना ही उसके मनन और शोध का विषय नहीं है, बल्कि बुद्धि, मन, कल्पना, वेदना, अनुभव, जहाँ तक पहुँच सकते हैं या इनसे भी बड़ी शक्ति यदि कोई हो तो उसकी भी पहुँच जहाँ तक हो सकती है, वहाँ तक पहुँच कर वह अपना फ़ैसला देना और अपनी योजना बनाना चाहता है।"

गांधी जी ईश्वरवादी हैं; वे अद्वैतवाद में विश्वास करते हैं। ईश्वर सब जीवों के हृदय में स्थित है और उसमें एकता अनुभव करना ही परम-पुरुषार्थ है। गीता और रामायण के अनुसार ईश्वर-प्राप्ति या आत्म-दर्शन के दो मार्ग हैं—एक ज्ञानमार्ग, और दूसरा भक्तिमार्ग। गांधी जी ने भक्तिमार्ग को अधिक श्रेय दिया है। ईश्वर को सर्वरूप मान कर प्रेम या सेवा करने का यह अर्थ है कि हममें किसी पदार्थ के प्रति आसक्ति का भाव न हो। गांधी जी गीता के अनुसार—फिलासफी के त्याग का अनुकरण करते हैं। उनका त्याग संन्यासी का त्याग नहीं प्रत्युत कर्मयोगी का त्याग है।

सब जीव ईश्वर के अंश हैं, सब मनुष्य ईश्वर के अंश हैं; और उनका परस्पर आत्मीयता का सम्बन्ध है। ईश्वर, जीव और जगत् का घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः आत्मदर्शन या ईश्वर-प्राप्ति का अर्थ है सब जीवों में एकता की स्थापना। गांधी जी सब 'जीवों' में एकता सेवा के द्वारा लाना चाहते हैं। उनके अनुसार सेवा भक्ति का क्रियात्मक रूप ही है। जीवों के साथ एकता प्राप्त करने का उपाय यही है कि हम उनके दुःखों का अनुभव करें। अपने दुःखों की निवृत्ति का यही उपाय है कि हम दूसरों के दुःखों को अपने ऊपर ले लें। इस दृष्टि से व्यक्तिगत दुःखों की निवृति के लिए मोक्ष प्राप्त करना उनकी दृष्टि में कोई अर्थ नहीं रखता। जब तक सबका दुःख निवारण या मुक्ति न हो।

गांधी जी ने लिखा है—"विश्वव्यापी और सार्वभौमिक सत्य की आत्मा का साक्षात्कार करने के लिए मनुष्य को छोटे-से-छोटे प्राणी से अपने ही समान प्रेम करना आवश्यक है। इसका इच्छुक जीवन के किसी भी क्षेत्र

से अलग नहीं रह सकता। मेरे सत्य प्रेम ने ही मुझे राजनीति में ला घसीटा है।" गांधी जी ने अपने आत्म-चरित की भूमिका में स्पष्टतः यह लिखा है कि "जो बात मुझे करनी है, आज बीस साल से जिसके लिए मैं उद्योग कर रहा हूँ, वह तो है आत्म-दर्शन, ईश्वर—का साक्षात् या मोक्ष। मेरे जीवन की प्रत्येक क्रिया इसी दृष्टि से होती है; मैं जो कुछ भी लिखता हूँ, वह सब इसी उद्देश्य से और राजनीतिक क्षेत्र में मैं जो उतरा, सो भी इसी बात को सामने रखकर।"

जो व्यक्ति सब जीवों में ईश्वर की सत्ता मानता है अथवा सब जीवों को ईश्वर का अंश मानता है और सब जीवों की सेवा कर ईश्वर का साक्षात्कार करना चाहता है, वह यह प्रेम, सत्य, अहिंसा, सहयोग, सहिष्णुता से ही कर सकता है—हिंसा, द्वेष, संघर्ष और रक्तपात से नहीं।

सत्य और अहिंसा गांधीवाद के दो पथ-दर्शक सिद्धान्त हैं। इन दोनों सिद्धान्तों के दो-दो स्वरूप हैं। एक मूल स्वरूप और दूसरा दृश्य स्वरूप। सत्य मूलरूप में एक तत्त्व है और दृश्यरूप में यह सारा प्रकट विश्व है अहिंसा मूलरूप में प्रेममयी आत्मीयता है और दृश्यरूप में जीवन के समग्र सरस और मृदुल गुणों का समुच्चय। इस तरह सारा जगत् सत्य से ओत-प्रोत और अहिंसा से सुखदायी एवं प्रगतिशील है। इस सत्य पर दृढ़ रहना, वह जिस समय जैसा अनुभव में आवे उस समय उसी पर दृढ़ रहना, मन को राग और द्वेष से हटा कर आगे सत्य को खोजने और पाने की वृत्ति रखना और हमसे जो मतभेद रखते हैं, उनके प्रति भी सहिष्णुता और प्रेम का व्यवहार करना, इसका नाम गांधी जी ने सत्याग्रह रक्खा है।

इस प्रकार विश्व का समूचा मानव-जगत् प्रेम से ओत-प्रोत है, तब इस गहरी आत्मीयता के कारण प्रत्येक मानव को सर्वोदय की चेष्टा करनी चाहिए। महात्मा जी सारे समाज का उदय चाहते हैं। वे एक ऐसे समाज की पुनः रचना चाहते हैं जिसमें प्रत्येक वर्ग और प्रत्येक हित को समान सुविधायें व सुयोग प्राप्त हों। नारी, पुरुष, बालिका-बालक, युवा-वृद्ध सभी के उत्कर्ष की पूरी सुविधा हो।

गांधीवाद और समाजवाद में मौलिक भेद

समाजवाद और गांधीवाद के निरूपण के बाद हम संक्षेप में यह विचार करना चाहते हैं कि समाजवाद और गांधीवाद में कहाँ तक समता है और उनका मौलिक भेद क्या है।

गांधीवाद का अन्तिम लक्ष्य सर्वोदय है। समूचे मानव-समाज का उत्कर्ष उसका ध्येय है। समाजवादियों का अन्तिम लक्ष्य है ऐसे मानव-समाज का निर्माण जिसमें वर्तमान शोषक-शोषित, पूँजीपति और सर्वहारा न हों, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपने उत्कर्ष के लिए समान सुयोग प्राप्त हों और समाज में व्यक्ति प्रेम, अहिंसा, सत्य और दया आदि मानवीय गुणों का विकास करें, जिसमें बल-प्रयोग और हिंसा का समूल नाश हो जाय। दोनों के इन सामाजिक आदर्शों में समता है; अन्तर केवलमात्र यह है कि गांधीवाद आध्यात्मिक पक्ष पर अधिक ज़ोर देता, है; समाजवाद आर्थिक पक्ष पर अधिक ज़ोर देता है।

समाजवाद और गांधीवाद में लक्ष्य के सम्बन्ध में उतना मतभेद नहीं है जितना कि उसकी प्राप्ति के साधनों के सम्बन्ध में है। गांधी जी ने भी इस प्रकार के विचार अनेक बार प्रकट किये हैं।* अब हम संक्षेप में समाजवाद—भारतीय समाजवाद और गांधीवाद के मौलिक भेद पर विचार करने का प्रयत्न करेंगे।

(१) भारतीय समाजवाद समाज के पुनर्निर्माण के लिए आर्थिक शोषण का अन्त करना आवश्यक मानता है। आज-कल की पूँजीवादी-प्रणाली इस शोषण को जारी रखने में सहायता देती है।

* "समाजवादियों के साथ मेरा मौलिक मतभेद भली-भाँति विख्यात है। मैं मानव-प्रकृति के परिवर्तन और उसके लिए प्रयत्न में विश्वास करता हूँ। वे इसमें विश्वास नहीं करते। परन्तु मैं यह कह देना चाहता हूँ कि हम एक दूसरे के नज़दीक आ रहे हैं। या तो वे मेरे निकट आ रहे हैं या मैं उनके निकट ले जाया जा रहा हूँ।"

—महात्मा गांधी से गांधी-सेवा-संघ (वृन्दावन) में किये गये प्रश्नोत्तर से।

The Search Light May 13, 1939

इसलिए वह शोषकों और शोषितों के भेद को मिटा देना चाहता है। एक शब्द में उसका ध्येय वर्गहीन समाज की स्थापना करना है। वह इस निरन्तर संघर्ष का अन्त कर सदा के लिए सहयोग—स्थायी सहकारिता को जन्म देना चाहता है। इसके लिए वह क्रान्ति का आश्रय लेता है।

दूसरी ओर गांधीवाद प्रचलित समाज-व्यवस्था को क़ायम रखना चाहता है; वह धनी-निर्धन वर्गों का अन्त करना नहीं चाहता। परन्तु वह सहयोग और सामंजस्य द्वारा निर्धनों की स्थिति में सुधार चाहता है। इस प्रकार गांधीवाद समाज-व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं चाहता। वह सुधार से ही सन्तुष्ट है। गांधी जी ने अनेक बार यह कहा है कि ज़मींदारियों का नाश उनका ध्येय नहीं है और वे मिल-मालिकों की पूँजी पर भी कोई आघात करना हिंसा मानते हैं।

(२) गांधीवाद अहिंसा को अपना धर्म (Creed) मानता है। वह प्रत्येक कार्य का औचित्य—अनौचित्य अहिंसा के मानदण्ड से जाँचता है। यदि कोई कार्य या ध्येय हिंसात्मक उपायों से प्राप्त किया जाय, तो गांधीवाद उस ध्येय की प्राप्ति का कोई मूल्य नहीं समझता। महात्मा गांधी जी ने राजकोट के सम्बन्ध में जो उपवास रक्खा था और जिसके फलस्वरूप ग्वायर-निर्णय प्राप्त किया, उसमें उन्हें कालान्तर में हिंसा की झलक मालूम पड़ी। अतः उन्होंने अपने उस व्रत के फल का त्याग कर दिया।

समाजवादी अहिंसा के राज्य की स्थापना करना चाहते हैं; परन्तु उनका यह विचार है कि क्रान्ति-काल और संधिकाल में बल-प्रयोग की आवश्यकता पड़ेगी। भारतीय समाजवादी तो अहिंसा की नीति में विश्वास करते हैं। इसलिए व्यावहारिक राजनीति में यह प्रश्न ही पैदा नहीं होता।

(३) समाजवादी यह कहते हैं कि व्यक्तिगत सम्पत्ति रखने का अधिकार किसी को न रहना चाहिए। उत्पादन, वितरण और विनिमय के समस्त साधनों पर समाज का अधिकार होना चाहिए। महात्मा गांधी अपरिग्रह के पुजारी हैं। वे अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह भी चोरी मानते हैं। गांधी जी मिल-मालिकों और ज़मींदारों को मज़दूरों और किसानों का 'ट्रस्टी' मानते हैं।

(४) समाजवादी उद्योगवाद में विश्वास करते हैं। समाज के लिए बड़े-बड़े उद्योग-धन्धों और कल-कारखानों की आवश्यकता समाजवादी अनुभव करते हैं। समाजवादी कल-कारखानों और मशीनों में कोई दोष नहीं देखते। उनका कथन तो यह है कि इन मशीनों और कारखानों पर व्यक्तियों का स्वामित्व ही शोषण को जन्म देता है। यदि व्यक्तियों के स्थान पर राज्य या समाज के हाथ में इनका अधिकार हो जाय तो इन उत्पादन के साधनों-द्वारा समाज का शोषण न हो सकेगा।

गांधीवादी इसके विपरीत यह मानते हैं कि शोषण के लिए व्यक्तिगत स्वामित्व ही उत्तरदायी नहीं है; मशीनें, कारखाने, मिल भी एक सीमा तक शोषण के लिए ज़िम्मेदार हैं। इसलिए गांधी जी ग्रामोद्योग और खादी-उत्पादन पर अधिक ज़ोर देते हैं।

"गांधीवाद यह नहीं कहता कि यंत्र-मात्र बुरा है। वह सिर्फ़ इतना ही कहता है कि भाफ से चलनेवाले बड़े-बड़े यंत्र जिनसे कई लोगों का काम एक आदमी करके कइयों को बेकार बना देता है और जिनके कारण मज़दूर एक जगह एकत्र होकर कई बुराइयों और व्यसनों में फँस कर अपना जीवन-नाश करते हैं, समाज के लिए हानिकर हैं। मनुष्य को बेकार बनाकर और मानव-शक्ति को बेकार पड़ी रहने देकर यंत्रों से काम लेना आर्थिक दृष्टि से भी उलटी रीति है।"

भारतीय समाजवादी यह मानता है कि ग्राम-उद्योगों को भारत की आर्थिक व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है; वह ग्रामोद्योगों और खादी-प्रचार के कार्यक्रम का समर्थन करता है। दूसरी ओर व्यावहारिक गांधीवादी भी यह अनुभव करते हैं कि बड़े-बड़े कल-कारखाने और मिलों का विनाश सम्भव नहीं।

(५) समाजवादी यह कहता है कि समाज में प्रमुख दो दल हैं; पीड़क और पीड़ित, शोषक और शोषित। इन दोनों दलों के हित परस्पर-विरोधी हैं। वह इस वर्ग-भेद को मिटाकर 'वर्ग-हीन' समाज की स्थापना करना चाहता है जिसमें सब व्यक्ति अपने परिश्रम से धन पैदा कर उससे अपना पालन-पोषण करें। प्रत्येक व्यक्ति को अपने श्रम—मानसिक एवं शारीरिक—का लाभ उठाना

चाहिए। समाजवादी, संक्षेप में, पूँजीवादी-प्रणाली का नाश करना चाहता है।

गांधीवादी यह कहते हैं कि समाजवादियों ने अपने प्रचार से समाज में यह वर्ग-संघर्ष पैदा कर दिया है। वर्ग-युद्ध की कोई आवश्यकता नहीं है। वर्ग-संघर्ष की जगह विविध वर्गों में पारस्परिक सामंजस्य और सहयोग की भावना पैदा करनी चाहिए।

(६) समाजवाद और गांधीवाद में धर्म और ईश्वर के सम्बन्ध में भी मतभेद है। परन्तु यह मौलिक मतभेद नहीं है। समाजवादी-व्यवस्था की सर्वप्रथम स्थापना एक ऐसे योरपीय देश में हुई जहाँ के नागरिक पोप-प्रणाली के भीषण और अमानुषिक अत्याचारों से बुरी तरह पीड़ित थे। रूस के क्रान्तिकारियों ने जहाँ ज़ारशाही का विनाश किया वहाँ उन्होंने पोपशाही का भी अन्त कर दिया जिससे नागरिक धर्म के नाम पर किये जाने-वाले अत्याचारों के शिकार न बन सकें। भारतवर्ष में धर्म योरप की धर्म-संस्था की भाँति सुसंगठित नहीं है; इसलिए भारत में धर्म-संस्था की ओर से इस सम्बन्ध में कोई प्रभावकारी विरोध हो सकेगा। इसकी आशंका नहीं है।

अतः भारतीय समाजवादी के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह ईश्वर और धर्म का भी विरोधी हो। समाजवाद का विकास प्रत्येक देश में उसकी सामाजिक परिस्थिति, और सांस्कृतिक आदर्शों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। एक व्यक्ति सच्चे अर्थों में ईश्वरवादी होते हुए भी—समाजवादी हो सकता है। समाजवाद और ईश्वर में कोई विरोध नहीं है। ईश्वरवादी का अर्थ यह नहीं है कि वह भाग्यवादी बन जाय और वह भाग्य-निर्माता न बन कर परिस्थितियों का दास बन जाय। पुरुषार्थ प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। धर्म के अंग हैं सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप आदि। व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के उत्कर्ष और विकास के लिए इनका पालन अनिवार्य है। कोई भी समाज इनका पूर्ण विकास किये बिना उन्नति नहीं कर सकता। तब समाजवाद इन मानवीय गुणों का विरोधी कैसे बन सकता है?

हाँ धर्म के सत्य-स्वरूप और धर्म के बाह्य रूप में विशाल अन्तर है। धर्म के नाम पर पुरोहित-पुजारियों ने जो आडम्बर रचे हैं और जनता में जो अंध-विश्वास और मानसिक दासता पैदा कर दी है, उससे प्रगति में अवश्य बाधा पड़ती है, और यह स्पष्ट है कि इन बाधाओं का परिहार उन्नति के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

ईश्वर में विश्वास का अर्थ यह नहीं है कि हम अंधे बनकर वर्तमान परिस्थिति का समर्थन करें अथवा प्रगति-शीलता के विरोधी बन जायँ।

परिचय

लेखक, श्रीयुत सुरेशचन्द्र "प्रशान्त"

क्या पूछ रहे मेरा परिचय?
मैं धूम-राशि-सी भ्रमणशील
फिरती जग में मारी मारी—
मैं विकल समीरण-सी चंचल
चीरती वियत संसृति सारी—
अस्थिर है मेरा व्यथित हृदय!
क्या पूछ रहे मेरा परिचय?
मैं दीप-ज्योति-सी प्रतिपल जल
उर बीच दबाये पीड़ा को—
मानस की मृदु प्याली को ले
मैं आई ठुकरा व्रीड़ा को—
हूँ अनल शिखा-सी ज्वालामय
क्या पूछ रहे मेरा परिचय?
है मणि-मुक्ताओं से निर्मित
साकार सुरुचिमय-सी प्याली—
जो मधुर स्नेह मधु से पूरित
जिसकी लहरी में है लाली—
उस मधु का करती क्रय-विक्रय!
क्या पूछ रहे मेरा परिचय?

आसाम की झलक

लेखक, श्रीमन्नारायण अग्रवाल, एम० ए०

हिन्दुस्तान इतना विशाल देश होते हुए भी एक राष्ट्र क्यों कहलाता है, इसका पता उसके विभिन्न प्रान्तों में भ्रमण करने से अपने आप लग जाता है। उसके भिन्न भिन्न प्रान्तों के लोग जुदा जुदा बोलियाँ बोलते हैं, उनके ऊपरी रहन-सहन में भी कुछ अन्तर अवश्य दीखता है, किन्तु इन बाहरी भेदों के होते हुए भी हममें भीतरी ज़्यादा समानता है, हम दूर दूर रहते हुए भी आखिर एक ही माँ के दूध से पले हैं और एक ही संस्कृति से ओतप्रोत हैं।

यों तो आसाम के बारे में हमने काफ़ी पढ़ा था, किन्तु उस प्रान्त को प्रत्यक्ष देखने की बहुत दिनों से इच्छा थी, गत मई में वह मौक़ा भी मिल गया। श्री काका कालेलकर के साथ राष्ट्र-भाषा-प्रचार के लिए आसाम में दस दिन तक भ्रमण किया। गौहाटी से लेकर उत्तर-पूर्व की सरहद, सदिया तक हमने बहुत-से स्थान देखे, बहुत-से लोगों से चर्चा की, कई गाँवों में भी जाने की कोशिश की। यद्यपि इतने थोड़े से समय में उस प्रान्त के जीवन को समझना सम्भव नहीं था; फिर भी इस थोड़े से अर्से में हमें आसाम के निवासियों की संस्कृति की झलक तो मिल ही गई। और इस झलक को पाकर हमें काफ़ी आनन्द और सन्तोष हुआ।

आसाम का प्राचीन नाम कामरूप था। अब उसको वहाँ के निवासी "असम" कहते हैं। आसाम तो अँगरेज़ों का बिगाड़ा हुआ उच्चारण है। 'असम' शब्द से प्रान्त का बोध भी होता है, क्योंकि वह देश ऊँचा-नीचा (अ+सम) है। बड़े बड़े पर्वतों के बीच में ब्रह्मपुत्र और सुरमा नदियों की घाटियाँ हैं। कामरूप शब्द भी ठीक था, क्योंकि उसकी शोभा देखते ही बनती है। जिधर भी निगाह डाली जाय, चित्रण करने लायक प्राकृतिक सौंदर्य है। कहीं भी जाइए, प्रकृति अपनी सुन्दरता से चित्त को खींच लेती है। प्रकृति के सौन्दर्य में दिखावटी मोहकता और थोथा आकर्षण नहीं है। उसमें गहराई और गम्भीरता है। शान्ति और संस्कृति की झलक है। ऊँचे और घने पेड़, विशाल नदियाँ और विराट् पर्वत एक प्राचीन, ऊँची तथा व्यापक संस्कृति की याद दिलाते हैं और केवल आसाम की ही नहीं, किन्तु भारतवर्ष की अतीत सभ्यता का शान्तिदायक दर्शन कराते हैं।

आसाम प्रान्त की जनता भी हिन्दुस्तान के सुन्दर संस्कारों से ओतप्रोत है। यद्यपि वहाँ के लोग आज गिरी दशा में नज़र आते हैं और अफ़ीम के साथी आलस्य ने उनका गला घोट रक्खा है, तो भी उनमें प्राचीन संस्कारों की झलक अभी लुप्त नहीं हुई है और नवीन राष्ट्रीय वातावरण के फैलने से उनके अन्दर की आग में से फिर चिनगारियाँ निकलने लगी हैं। आसामियों में गम्भीरता, सचाई, धर्मनिष्ठा और सरलता कूट-कूट कर भरी हुई है। छल, कपट और कूटनीति उनके रक्त में नहीं समा सकी है। वर्तमान राजनीति के कारण कुछ लोगों में चंचलता और बहुरूपियापन भले ही आगया हो, किन्तु जनता में पुराने संस्कार अब भी जाग्रत् हैं।

आसाम का ग्राम्य जीवन भी काफ़ी सुसंस्कृत और शान्तिमय है। प्रत्येक गाँव चारों ओर ऊँचे और घने वृक्षों से घिरा होता है। बाँस और केले प्रत्येक ग्राम में बहुतायत से मिलते हैं। बाँस बेचकर लोगों को कुछ पैसे मिल जाते हैं और केले खाने के काम में आ जाते हैं। शाक-भाजी भी गाँव में ही पैदा कर ली जाती है। गायों को पाल कर थोड़े-से दूध का भी इन्तज़ाम हो जाता है। धान की खेती से अन्न प्राप्त हो ही जाना चाहिए। बस, फिर वहाँ के ग्रामीणों को और चाहिए ही क्या? वे शान्ति और सन्तोष से रहते हैं। ग़रीब हैं, किन्तु शहरों में जाकर नौकरी करना उन्हें रुचिकर नहीं है। कीर्तन-द्वारा ही उनकी धार्मिक भावना व्यक्त होती है। उनमें कला का भी अभाव नहीं है। सफ़ाई और सरल सुन्दरता का दृश्य अधिकांश गाँवों में दिखलाई देता है।

आसाम को भारतवर्ष के प्राचीन संस्कार देने का कार्य चौदहवीं शताब्दी में शंकरदेव ने किया। शंकरदेव का नाम हिन्दुस्तान में आसाम के बाहर बहुत कम

लोगों ने सुना होगा। किन्तु जो स्थान महाराष्ट्र में तुकाराम का है, उत्तर हिन्दुस्तान में तुलसीदास का है और बंगाल में चैतन्य का है, वही स्थान आसाम में शंकरदेव का है। वे क़न्नौज के कायस्थ थे और उनके पूर्वज लगभग दो सौ वर्ष से आसाम में ही बस गये थे। शंकरदेव ने भागवत का कीर्तनों-द्वारा जनता में खूब प्रचार किया। उन्होंने कुछ नाटक भी इसी हेतु से लिखे। उनके भक्ति-मार्ग में राधा को कोई स्थान नहीं दिया गया है—केवल कृष्ण को सारा प्रेम अर्पण किया गया है। उनके पंथ में साधुओं का गेरुआ वस्त्र धारण करना वर्जित है। शंकरदेव गृहस्थाश्रम का स्वयं पालन करते थे और उनमें व्यावहारिकता की भी कमी न थी। इसलिए उनके द्वारा आसाम को कई प्रकार के सुसंस्कार प्राप्त हो सके। उन्होंने कीर्तन की प्रथा का खूब प्रचलन किया। आज भी आसाम में 'नामफर' (कीर्तन के स्थान) ही संस्कृति के केन्द्र हैं। हमें शंकरदेव के जन्म-स्थान को भी देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उनका जन्म नौगाँव से क़रीब चौदह मील दूर बड़दुआ गाँव में हुआ था। वहीं उन्होंने अपने बहुत-से कीर्तन भी लिखे। उस गाँव में एक पुराना पेड़ है। कहा जाता है कि उसी पेड़ के पूर्वज के नीचे शंकरदेव ने अपने कई ग्रन्थों की रचना की थी। बड़दुआ में एक बड़ा नामफर है, जिसमें आज भी हज़ारों लोग मिलकर बड़े प्रेम और भक्ति से श्री शंकरदेव के कीर्तनों को गाते हैं। नामफरों में केवल 'कीर्तन-भागवत' की पूजा की जाती है, मूर्ति-पूजा को कोई स्थान नहीं दिया जाता।

शंकरदेव के कारण आसामी-भाषा ब्रज-भाषा से बहुत मिलती-जुलती है। यदि वह नागरी-लिपि में लिखी जाय तो उसे पढ़ना और समझना हमारे लिए बहुत ही आसान होगा। उसकी वर्णमाला तो हिन्दी ही जैसी है। कुछ वर्णों के उच्चारण में फ़र्क़ अवश्य है। आसाम के विद्वानों का यह स्पष्ट मत है कि असमिया-भाषा बँगला-भाषा की अपेक्षा हिन्दी के अधिक नज़दीक है। वर्तमान असमिया और बंगाली-लिपियाँ एक-सी ही हैं। बंगाली विद्वानों ने हमें समझाने की कोशिश की कि असमिया-भाषा के लिए बंगाली-लिपि ही उधार ले ली गई है। किन्तु असल बात तो बिलकुल उल्टी ही है। असमिया-लिपि बहुत प्राचीन लिपि है। उसके [illegible] और अर्वाचीन रूपों में कुछ अन्तर है। किन्तु जि[illegible] हम बंगाली-लिपि कहते हैं वह आसाम की ही लि[illegible] विकसित रूप है।

असमिया-साहित्य के बारे में भी हम लोगों [illegible] ग़लतफ़हमियाँ हैं। हम यही समझ लेते हैं कि कुछ [illegible] ग्रन्थों के अनुवादों के सिवा आसाम में कोई [illegible] नहीं है। किन्तु यह बिलकुल ग़लत ख़याल है। [illegible] का पुराना साहित्य तो खूब सम्पन्न है। जब बंगाली-[illegible] का जन्म भी नहीं हुआ था, उस समय असमिया-[illegible] काफ़ी प्रगति कर चुका था। उसका बुरंजी-[illegible] (ऐतिहासिक कथायें) तो शायद किसी भी [illegible] लिए गौरव की चीज़ बन सकेगी। उसकी स्वा[illegible] शैली अध्ययन करने योग्य है। बहुत-सा बुरंजी-[illegible] अभी तक हस्तलिखित ही है। किन्तु कुछ चुने हुए [illegible] संशोधक-समितियों-द्वारा प्रकाशित हो रहे हैं। [illegible] का साहित्य भी ऊँचे दर्जे का है। हाँ, आधुनिक [illegible] अभी तक अधिक उन्नति नहीं कर सका है! किन्तु [illegible] में अब जागृति फैल रही है और उसके फल-स्वरूप [illegible] का भी स्वाभाविक विकास होता जा रहा है।

लोक-जीवन में कला का भी अच्छा स्थान [illegible] गाँवों में लोक-कला दीवारों पर चित्रों के [illegible] देखी जाती है। कीर्तन की वजह से संगीत [illegible] खूब प्रचार है ही। बुनने की कला भी आसाम-[illegible] के लोक-जीवन का एक अंग बन गई है। गाँवों [illegible] शहरों में सभी लड़कियाँ बुनाई जानती हैं, यहाँ तक [illegible] अगर कोई लड़की यह कला नहीं जानती तो [illegible] शादी होना भी बहुत कठिन हो जाता है। जितना ही [illegible] कुटुम्ब हो, उतना ही सुन्दर कपड़ा वहाँ बुना [illegible] चाहिए, ऐसी रवाज वहाँ है। किन्तु हमें यह [illegible] दुःख हुआ कि कताई का अब अधिक प्रचार नहीं है [illegible] बुनाई में अधिकतर मिलों का सूत ही काम में [illegible] जाता है। अगर कताई का वहाँ फिर प्रचार हो [illegible] तो उससे गाँवों का तो बहुत कल्याण हो सकता [illegible] अखिल-भारत-चर्खा-संघ को इस ओर विशेष ध्यान [illegible] चाहिए।

किन्तु कला और उद्योग के साथ साथ [illegible]

आलस्य की मात्रा कम नहीं है। और यह है अफ़ीम की कृपा। अफ़ीम का यहाँ प्रचार मुग़ल-बादशाहों के द्वारा हुआ था। अफ़ीम ने पहले मुग़ल-दरबार में जड़ पकड़ी, और फिर वह धनिक लोगों में फैली। बाद में जो फ़ैशन अमीरों ने चलाया वह ग़रीबों में भी चल गया और इस प्रकार सारी असमिया-जाति अफीम के फंदे में फँसकर अवनति और ग़ुलामी में डूब गई। आसाम पर एक के बाद दूसरे हमले होते गये। पहले इसे ब्रह्मदेश ने पराजित किया, और फिर अँगरेज़ों ने। राजनैतिक पराधीनता के साथ साथ सामाजिक और मानसिक अधःपतन भी होता गया। अब लोगों में कुछ जागरण हो रहा है, और कांग्रेस-सरकार-द्वारा अफ़ीम का निषेध भी किया जा रहा है। किन्तु अगर लोगों ने सावधानी और हिम्मत से इस पुरानी कुरीति को न त्यागा तो प्रान्त और असमिया-जाति का जीवन ही ख़तरे में है।

आसाम-प्रान्त में नौकरी और मज़दूरी के पेशे क़रीब क़रीब दूसरे सूबों के लोगों के ही हाथ में हैं। संयुक्त प्रान्त के पूर्वी ज़िलों के और बिहार के लाखों मज़दूर और नौकर आसाम में बस गये हैं। इसका कारण स्पष्ट है। असमिया लोग सुस्त और कम मेहनती हैं। वे लोग गाँव छोड़कर शहरों में आना भी पसन्द नहीं करते। इसका परिणाम यह हुआ है कि असमिया लोग बहुत ग़रीब हैं। तिजारत और व्यवसाय भी उनके हाथ से निकल गये हैं। चाय की खेती अँगरेज़ों के हाथ में है, और अन्य धन्धे मारवाड़ी इत्यादि बाहर के लोगों ने अपने हाथों में ले रक्खे हैं। बहुत-सी ज़मीन भी बेकार पड़ी है। असमिया लोगों ने मेहनत करके उसे उपजाऊ बनाने की कोशिश नहीं की। इसका फल यह हुआ है कि हज़ारों बंगाली मुसलमान आसाम के ज़िलों में, विशेषकर नौगाँव में, आकर बस रहे हैं, और अपने परिश्रम से भू-माता की सेवा करके अपना जीवन-निर्वाह कर रहे हैं। मुसलमानों के बसने के कारण लोगों को काफ़ी चिन्ता हो रही है। आख़िर ग़लती तो उन्हीं की है। उन्होंने अपने गाय-बैलों की फ़िक्र नहीं की, न उपजाऊ भूमि को जोतकर उससे लाभ उठाया। अब मुसलमान लोग गायों और बैलों को अपने कुटुम्बियों की तरह पालते हैं, और अपना पसीना बहाकर भूमि से अन्न पैदा करते हैं। ऐसी दशा में उनसे असमियों को घृणा और ईर्ष्या करने का क्या हक़ है?

अन्य प्रान्तों की तरह आसाम में भी तंग प्रान्तीयता धीरे धीरे ज़ोर पकड़ रही है। बाहर के लोगों के प्रति जनता में द्वेष-भाव फैल रहा है—प्रान्तीय भावना का बढ़ना देश के लिए दुःख की बात है।

राष्ट्रभाषा-प्रचार के लिए लोगों में काफ़ी दिलचस्पी और उत्साह है। कुछ कट्टर मुसलमानों को छोड़कर किसी का विरोध नहीं है। उनकी असमिया-भाषा हिन्दी के बहुत नज़दीक है, इसलिए उनको उच्चारण के सिवा हिन्दी सीखने में अधिक कठिनाई भी नहीं है। असमिया-भाषा के लिए देवनागरी-लिपि अपनाने की बात भी लोगों को काफ़ी पसन्द है। किन्तु वहाँ कमी पैसे की है। कोई भी पैसा देकर राष्ट्रभाषा सीखने की हिम्मत नहीं रखता।

आसाम की और तो बहुत-सी समस्यायें हैं, लेकिन सबसे बड़ी समस्या तो वहाँ के पर्वतीय लोगों की है। खसी, गारो, जयन्ती, मीर इत्यादि बहुत-सी पर्वतीय जातियाँ आसाम में हैं। उनको लोगों ने कभी अपनाने की कोशिश नहीं की और जंगली मानकर ही हमेशा दूर रक्खा। इसलिए न तो उनमें शिक्षा है और न उद्योग। नये विधान में वे लोग 'पृथक् जाति' के वर्ग में माने गये हैं, और इस तरह आसाम-प्रान्त का काफ़ी बड़ा हिस्सा 'एक्सक्लूडेड एरिया' बन गया है। उन जातियों के ऊपर आसाम-सरकार का सीधा नियंत्रण नहीं है। उनका सम्बन्ध सीधा ब्रिटिश सरकार से है। उनको जनता से पृथक् रखने का यह कारण बतलाया जाता है कि वे लोग अज्ञान हैं और यदि वे असमियों तथा अन्य लोगों से सम्पर्क बढ़ायेंगे तो उनका आर्थिक शोषण होगा। किन्तु बात ज़रा गहरी है। आसाम हमारा उत्तर-पूर्वी सरहदी प्रान्त है। इसलिए ख़तरे के समय पर्वती लोगों से ही मदद मिल सकती है। फिर उनको अपने क़ाबू में रखना तो ब्रिटिश राज्य के लिए स्वाभाविक ही है।

वैसे तो ग़लती हमारी ही है। हमने अपने लोगों की सेवा करनी नहीं सीखी। सुदूर देशों से आकर मिशनरियों ने इन पर्वतीय लोगों की बहुत वर्षों से सेवा की है। लेकिन

हम उनके पड़ोसी होकर भी उनसे दूर ही रहे। अगर आज हमें उनके बारे में ज्ञान प्राप्त करना हो तो मिशनरियों की लिखी हुई पुस्तकों को पढ़ना होगा। हमारे राष्ट्र के ऊपर यह कितना बड़ा कलंक है। इसका परिणाम यह हुआ है कि पर्वतीय लोगों की लिपि रोमन है, और उनको अँगरेज़ी के द्वारा ही शिक्षा मिलती है। रोमन-लिपि के कारण उनका सम्बन्ध आसाम और साथ ही हिन्दुस्तान से टूट गया है। वे हमारे राष्ट्र-प्रवाह में टापुओं की भाँति अलग पड़ गये हैं। श्री काका कालेलकर के आग्रह से आसाम-सरकार इन पर्वतीय लोगों को देवनागरी-लिपि सिखलाने को तैयार हो गई है, यह हमारे लिए खुशी की बात है।

पहाड़ी लोगों में भी हिन्दुस्तान के काफ़ी संस्कार हैं। शिलांग में हम कुछ सुशिक्षित खसी लोगों से मिल सके, खसी विद्यार्थियों को भी देखा। किन्तु हमें इस बात का दुःख हुआ कि शिक्षा का माध्यम अँगरेज़ी हो जाने से उनमें भारतीय संस्कारों की जगह विदेशी संस्कारों का समावेश हो रहा है। वहाँ की सरकार अब कोशिश कर रही है कि पहाड़ी लोगों की शिक्षा मिशनरियों के हाथ में न रहे। हमें मिशनरियों का उपकार तो अवश्य मानना चाहिए। किन्तु अब समय आ गया है कि मिशनरी इस बात को समझें कि प्रत्येक जाति की संस्कृति का विकास करना ही उचित शिक्षण है और दूसरों के संस्कारों को उखाड़ कर उनपर दूसरी संस्कृति लादने की कोशिश करना मानवता का गला घोटना है।

आसाम के सामने आज अनेक कार्य करने के लिए पड़े हैं। किन्तु कमी है सुयोग्य और लगनवाले कार्य-कर्ताओं की। आसाम के नवयुवकों में सेवा की भावना कम है। वे भ्रमण करने के शौक़ीन नहीं हैं, इसलिए अपने प्रान्त के बाहर जाकर और दूसरे लोगों से संपर्क बढ़ाकर उन्हें कुछ सीखने का मौक़ा भी नहीं मिलता। जब अन्य प्रान्तों के लोग वहाँ जाते हैं तब उनका अच्छा आतिथ्य किया जाता है और फिर आने का निमंत्रण दिया जाता है। लेकिन शायद बाहर जाकर दूसरों का आतिथ्य स्वीकार करने में उन्हें खुद संकोच होता है। जो भी हो, जब तक असमिया नवयुवक भारतवर्ष का भ्रमण करके अन्य प्रान्तों से कुछ सीखने का प्रयत्न न करेंगे और फिर आलस्य को छोड़कर अपने प्रान्त की निःस्वार्थ-सेवा में न लग जायँगे तब तक आसाम की उन्नति का होना एक स्वप्न-सा ही रहेगा। कार्य-कर्ताओं को तैयार करने के लिए एक आश्रम की स्थापना आवश्यक है, जहाँ सच्चे लगन के नवयुवक एकत्र किये जायँ। तभी आसाम के पुनरुत्थान का श्रीगणेश होगा।

क्या आसाम के नवयुवक समय पर जागेंगे?

कम्पन

लेखक, श्रीयुत शिवदत्त शर्मा

सो रहे उर-तार मेरे आज भर दो प्राण कम्पन!
सृष्टि का जब था सवेरा बीन तव तुमने बजाई।
प्यार से प्रति तार में निज मधुर ध्वनि तुमने गुँजाई॥
आज तुम क्यों खींच बैठे हाथ अपना हे मृदुल मन।
सो रहे उर-तार मेरे आज भर दो प्राण कम्पन॥
बीन तुम हो तार तुम हो राग इसमें है तुम्हारा।
आज दे दो तनिक इसको कृपा-अंगुलि का सहारा॥
आज वारे प्रेम से जग विहँस अपने नयन के कन।
सो रहे उर-तार मेरे आज भर दो प्राण कम्पन॥
कौन क्षण होगा मधुर जब बीन को मुखरित करोगे?
ललित राग प्रकाश से चिर-सुप्त तन्द्रा-तम हरोगे?
कब करोगे बोल दो प्रिय प्राण में गुंजार अलिगन?
सो रहे उर-तार मेरे आज भर दो प्राण कम्पन॥

हिन्दुस्तानी की ओट में उर्दू का प्रचार

लेखक, पंडित वेंकटेश नारायण तिवारी, एम० ए०

कुछ दिन हुए, 'लीडर' में डाक्टर बाबूराम सक्सेना का बिहार-सरकार की नियुक्त की हुई हिन्दुस्तानी-कमिटी से त्यागपत्र छपा था। डाक्टर साहब ने इस कमिटी से इस्तीफ़ा दे दिया है, क्योंकि उनकी राय में इस कमिटी के द्वारा हिन्दुस्तानी की ओट में उर्दू के प्रचार की कोशिशें की जा रही हैं। हमें बिहार का हाल मालूम नहीं, हमें यह भी नहीं मालूम कि जिस कमिटी से डाक्टर बाबूराम सक्सेना ने त्यागपत्र दिया है उस कमिटी ने अभी तक क्या किया है। हाँ, इतना मालूम है कि उस कमिटी के सदस्यों में प्रयाग-विश्वविद्यालय के वाइस-चांसलर पण्डित अमरनाथ झा और डाक्टर ताराचन्द के-से विद्वान् हैं। डाक्टर बाबूराम सक्सेना तो इस्तीफ़ा दें और हिन्दी के हिमायती पण्डित अमरनाथ झा टस से मस भी न हों, यह एक ऐसी रहस्यमयी बात है जिसपर शीघ्र प्रकाश पड़ना चाहिए। क्या झा महोदय डाक्टर बाबूराम सक्सेना के त्यागपत्र में कही गई बातों से सहमत हैं या नहीं? यदि हाँ तो उन्हें भी त्यागपत्र दे देना चाहिए था। यदि नहीं तो उनका मौन रहना राष्ट्र-भाषा के हित की दृष्टि से अनुचित है, क्योंकि डाक्टर बाबूराम सक्सेना के त्याग-पत्र से हिन्दी-जगत् में एक तरह से सनसनी फैल गई है।

जो कुछ उन्होंने लिखा है उसी को पढ़कर हमारे कान खड़े हो गये हैं। लेकिन इस समय डाक्टर बाबूराम सक्सेना के इस्तीफ़े के सम्बन्ध में जो अफ़वाहें फैल रही हैं वे और भी अधिक चिन्ताजनक हैं। मुझे इन किंवदन्तियों में विश्वास नहीं है, लेकिन बिहार की गवर्नमेंट की नीयत पर यदि बेजा हमले हो रहे हैं तो पण्डित अमरनाथ झा और डाक्टर ताराचन्द का यह कर्त्तव्य है कि वे सही-सही बातों को प्रकाशित कर दें। सम्भव है कि वे डाक्टर बाबूराम सक्सेना के अनौचित्य को सिद्ध कर सकते हों, तभी इन दो विद्वानों ने उस कमिटी से इस्तीफ़ा नहीं दिया। यदि इनका डाक्टर सक्सेना से मतभेद है तो इतने बड़े महत्त्वपूर्ण मसले पर इन दो सम्मानित विद्वानों का मौन-मंत्र का जप करना उचित नहीं। कम से कम पण्डित अमरनाथ झा का चुप रहना तो समझ में आ ही नहीं सकता। क्या झा महोदय बिहार में इस समय जो कुछ हो रहा है उससे सन्तुष्ट हैं? यदि हैं तो उनकी स्थिति का सही सही बोध हमें हो जाना चाहिए। यदि उन्हें सन्तोष नहीं है तो उन्हें हिन्दी के चीर-हरण को भीष्म पितामह की तरह हाथ पर हाथ रखकर चुपचाप देखते रहना शोभा नहीं देता।

हम ऊपर कह चुके हैं कि बिहार में जो कुछ हो रहा है उस सम्बन्ध में हमें पूरा पूरा ज्ञान नहीं है। सिर्फ़ इतना मालूम है कि उस प्रान्त के शिक्षा-मंत्री डाक्टर सैयद महमूद ग़ाज़ीपुरी—आपका जन्म-स्थान युक्तप्रान्त का ग़ाज़ीपुर-ज़िला है—कांग्रेस के अनुरोध के अनुसार हिन्दुस्तानी-भाषा के प्रचार में दत्त-चित्त हैं। जो आज बिहार में हो रहा है, कल वही युक्तप्रान्त में होनेवाला है। यहाँ भी सरकारी दफ़्तरों और सरकारी मदरसों में हिन्दी और उर्दू के स्थान में 'हिन्दुस्तानी' के पढ़ाने की योजना मंज़ूर हो चुकी है। इस दृष्टि से हिन्दुस्तानी का मसला हमारे लिए प्रान्तिक और राष्ट्रीय दृष्टि से न केवल महत्त्वपूर्ण, किन्तु परमावश्यक-सा हो गया है। इसकी उपेक्षा करना प्रत्येक दृष्टि से हानिकारक सिद्ध होगा। इसी लिए मैं इस लेख के द्वारा 'सरस्वती' के पाठकों का ध्यान 'हिन्दुस्तानी' के मसले की ओर दिलाना चाहता हूँ। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने महात्मा जी के आदेश से 'हिन्दी याने हिन्दुस्तानी' को राष्ट्र-भाषा बनाने की घोषणा की है। लेकिन कठ-मुल्लाओं ने अपनी साम्प्रदायिक संकीर्णता और सांस्कृतिक असहिष्णुता से 'हिन्दी याने हिन्दुस्तानी' में से हिन्दी को निकालकर उसे विशुद्ध उर्दू का जामा पहनाने की ठान ली है। हमारी उदासीनता और राजनीतिक उदारता से लाभ उठाकर वे इस समय उर्दू को हिन्दी के स्थान में प्रजासत्तात्मक राज्यों की मदद से राष्ट्र-भाषा बनाने का स्वप्न देख रहे हैं। सम्भव है, यही मार्ग सही हो। सम्भव है, यह मार्ग न सही हो। लेकिन सही हो या ग़लत, हमें यदि इस मार्ग पर चलना ही है तो महज़ दूसरे के कहने पर बिना कुछ समझे-बूझे न चल पड़ना चाहिए।

भेड़िया-धसान की निन्दा हम सभी करते हैं। ऐसी दशा में इस भाषा के प्रश्न पर जिसका हमारे राष्ट्रीय-जीवन से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है, आँख मींचकर भेड़ों की नक़ल करना एक सजीव जाति के लिए परम लज्जा की बात होगी। भाषा किसी समुदाय विशेष की अन्तरात्मा का प्रतिबिम्ब है, उसके विकास की कहानी है। उस भाषा के शब्दों में अमर हैं हमारे सांस्कृतिक अनुभव, हमारी जातीय जय और पराजय, हमारे राष्ट्रीय करुण-क्रन्दन और आनन्दोल्लास, भारत की अभिलाषायें और आकांक्षायें। वे शब्द ही समाज और राष्ट्र के प्राण हैं। वे केवल शब्द नहीं, वे तो हमारे राष्ट्र के हृत्पिंड के टुकड़े हैं। करोड़ों भारतवासियों के रक्त से इन शब्दों का भरण-पोषण हुआ है। मातृ-भाषा के शब्दों में हृदय के स्नायुओं को झंकृत करने की अद्भुत शक्ति होती है। मातृ-भाषा अनन्त-अमोघ शक्ति-राशि का विद्युन्मय आकर है। मंत्र-रूपी ये शब्द हमारे पूर्वजों की अनमोल देन हैं। इसी दुर्लभ वपौती को भ्रष्ट और विकृत करने का भगीरथ प्रयत्न आरम्भ हो चुका है। इसी लिए हमें सतर्क हो जाना चाहिए।

हिन्दुस्तानी क्या है ?

महात्मा गांधी के अनुसार 'हिन्दुस्तानी' वह भाषा है जो देवनागरी और उर्दू दोनों ही लिपियों में लिखी जाय। अर्थात् इस भाषा की दो लिपियाँ हैं। इसके बोलने और लिखनेवालों को शब्दों के प्रयोग के विषय में पूर्ण स्वतंत्रता है। इस भाषा में किसी शब्द का साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से बहिष्कार करना अनुचित होगा। कांग्रेस ने केवल भाषा का नाम बदला है, इससे अधिक कुछ नहीं किया है। इसी लिए हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने भी अपने विगत अधिवेशनों में 'हिन्दी याने हिन्दुस्तानी' का समर्थन किया, अर्थात् हिन्दुस्तानी का वह रूप जो हिन्दुस्तान की भाषा का रूप हो और जिसे हिन्दुस्तान के रहनेवाले 'हिन्दुस्तानी' कहें। हमारे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने इसी राष्ट्रीय दृष्टिकोण से हिन्दी-भाषा की दो लिपियाँ स्वीकार कीं। महात्मा गांधी ने अभी हाल ही में यह भी सलाह दी है कि हिन्दुस्तान की जितनी प्रान्तिक आर्य-भाषायें हैं उन सब को देवनागरी-लिपि को अपनाना चाहिए, अर्थात् हिन्दी, बँगला, आसामी, उड़िया, राजस्थानी, गुजराती, मराठी आदि हिन्दुस्तान में जितनी प्रान्तिक आर्य-भाषायें हैं उन सबकी एक ही लिपि मानी जाय; अतएव बँगाला, आसामी, गुजराती, उड़िया की लिपियों के स्थान में देवनागरी-लिपि का चलन होना ज़रूरी है।

महात्मा जी ने एक बार नहीं, अनेक बार इस बात को कहा है कि 'हिन्दी याने हिन्दुस्तानी' में संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्द, प्राकृत-भाषाओं के शब्द, देशज शब्द और प्रान्तिक शब्दों के साथ साथ अरबी, फ़ारसी, अँगरेज़ी भाषाओं से लिए गये शब्दों का प्रयोग जायज़ है। इसी बात पर पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भी अपने एक निबन्ध में ज़ोर दिया है। लेकिन इसे हमारे मुसलमान भाई नहीं मानते। अतएव काश्मीर की धारा-सभा के निर्वाचित मुस्लिम सदस्यों के अनुसार महात्मा जी और पंडित जवाहरलाल नेहरू साम्प्रदायिकता के प्रचारक हैं। काश्मीर के मुसलमान नहीं चाहते कि वहाँ के हिन्दुओं को देवनागरी-लिपि के द्वारा शिक्षा दी जाय या सरकारी दफ़्तरों में इस लिपि को भी वही स्थान वहाँ मिले जिसे वे उर्दू-लिपि को देना चाहते हैं। जामिया मिल्लिया के प्रसिद्ध डाक्टर ज़ाकिर हुसेन साहब उस शिक्षा-समिति के सभापति थे जिसको काश्मीर-दरबार ने कुछ दिन पहले नियुक्त किया था। इस ज़ाकिरहुसेन-कमिटी ने काश्मीर के लिए यह सिफ़ारिश की है कि उस राज्य के लिए उर्दू-लिपि ही राजलिपि क़रार दी जाय। उनकी सम्मति है कि राष्ट्रीयता के भाव को सबल करने के लिए यही आवश्यक है कि राज्य एक से अधिक लिपियों को राज-लिपि का पद न दे। इधर डाक्टर ज़ाकिरहुसेन युक्तप्रान्त के लिए उर्दू और नागरी की लिपियों का समान प्रचार आवश्यक समझते हैं—निश्चय ही राष्ट्रीयता के हित में। इसी तरह साम्प्रदायिक कठमुल्लाओं ने 'हिन्दुस्तानी' के नाम पर संस्कृत के तत्सम और तद्भव आदि शब्दों के विरुद्ध ज़िहाद बोल दी है।

इन संकीर्ण साम्प्रदायिकतावादियों में आपको ऐसे बहुत-से मुस्लिम और हिन्दू सज्जन मिलेंगे जो कांग्रेसी हैं। महात्मा गांधी हिन्दी को हिन्दुस्तानी कहते हैं। इन बुज़ुर्गों ने हिन्दुस्तानी-शब्द को तो पकड़ लिया और हिन्दी पर हड़ताल फेर दी। इनका तो यहाँ तक कहना है कि हिन्दी तो कोई भाषा ही नहीं है, वह तो महज़ उर्दू का विकृत रूप है, जिसमें अरबी और फ़ारसी के शब्दों के स्थान में संस्कृतके शब्द ठूंस-ठाँस कर रक्खे जाते हैं। अतएव हिन्दुस्तानी वह ज़बान है जिसे मौलाना ज़ाकिर-हुसेन, डाक्टर अब्दुलहक़ तथा ऐसे ही और दूसरे सम्मानित बुज़ुर्ग हिन्दुस्तानी कहें! सहल उर्दू ही उनकी राय में सच्ची हिन्दुस्तानी है और असली हिन्दुस्तानी सहल उर्दू के अलावा और कोई ज़बान नहीं है।

हिन्दी उर्दू से पैदा हुई

ऊपर जो कुछ मैंने कहा है उसके समर्थन में मैं कुछ प्रमाण पाठकों के मनोरञ्जन के लिए नीचे उद्धृत करता हूँ। मेरा अनुरोध है कि पाठक इन्हें ध्यानपूर्वक पढ़ें और उनके परिणामों का मनन करें। प्रमाण के लिए हमें आपको कहीं दूर नहीं जाना है। दिल्ली से एक पुस्तक हाल ही में प्रकाशित हुई है। उसका नाम है 'हिन्दुस्तानी'। इसके प्रकाशित करने का श्रेय 'मकतबा जामिया, देहली' को प्राप्त है। इसके दो संस्करण हैं—नागराक्षरों में और उर्दू में। इस पुस्तक में हिन्दुस्तानी-विषयक उन ६ व्याख्यानों का संग्रह है जो ६ विभिन्न सज्जनों ने दिल्ली के आल इंडिया रेडियो से २० फ़रवरी १९३९ से २५ फ़रवरी १९३९ की अवधि में दिये थे। व्याख्याताओं के नाम हैं—

(१) डाक्टर ताराचंन्द, (२) डाक्टर मौलवी अब्दुलहक़, (३) बाबू राजेन्द्रप्रसाद, (४) डाक्टर ज़ाकिरहुसेन, (५) पंडित ब्रजमोहन दत्तात्रेय और (६) मिस्टर आसफ़अली साहब। डाक्टर अब्दुलहक़ साहब, 'अन्जुमन-ए-तरक़्क़ी-ए-उर्दू' के संचालक हैं। उर्दू का एक बहुत कड़ा कोष भी आपने तैयार किया है। उर्दू के प्रबल प्रचारक हैं, हिन्दी के ऊपर आपकी अकृपा है। अन्जुमन-ए-तरक़्क़ी-ए-उर्दू के प्रतिनिधि डाक्टर अब्दुलहक़ को हिन्दुस्तानी पर बोलने के लिए दिल्ली के आल इंडिया रेडियो ने आमंत्रित किया। लेकिन युक्तप्रान्त में उन्हें डाक्टर ताराचन्द के अतिरिक्त और कोई विद्वान् न मिला, जो इस मसले पर बोलता। जामिया के प्रिंसिपल भी बुलाये गये, लेकिन गुरुकुल के अध्यापकों में दिल्ली के आल इंडिया रेडियोवालों को एक भी ऐसा विद्वान् न मिला जो हिन्दुस्तानी के मसले पर कुछ कह सकता। इन सज्जनों ने अपनी उपर्युक्त वक्तृताओं में जो कुछ कहा है उससे एक-एक, दो-दो वाक्य मैं यहाँ उद्धृत कर देना चाहता हूँ। सुनिए, डाक्टर ताराचन्द हिन्दुस्तानी, उर्दू और हिन्दी के विषय में क्या कहते हैं:—

"फ़ोर्ट विलियम कालिज के प्रिंसिपल जान गिलक्राइस्ट ने इस कमी को इस तरह से पूरा किया कि हिन्दुस्तान से अमीर अम्मन, अफ़सोस, हैदरी, काज़िमअली जवां, विला जैसे उर्दू के अच्छे अच्छे लिखनेवालों को कलकत्ते में बुलाया और उनसे नस्र में किताबें लिखवाईं। ....हिंदुओं के लिए लल्लूजी लाल, बेनी नरायन, वग़ैरह को हुक्म मिला कि नस्र में किताबें तैयार करें। इन्हें और भी ज़्यादा मुश्किलों का सामना करना पड़ा। अदब या साहित्य की भाषा ब्रज थी, लेकिन उसमें गद्य या नस्र नाम के लिए ही था। क्या करते, इन्होंने यह रास्ता निकाला कि मीर अम्मन, अफ़सोस वग़ैरह की ज़बान को अपनाया, पर इसमें से फ़ारसी और अरबी के लफ़्ज़ छोड़ दिये और संस्कृत और हिन्दी के रख दिये.......।"

डाक्टर ताराचन्द की सम्मति में हिन्दी उर्दू का संस्कृत-मिश्रित रूपान्तर है।

डाक्टर अब्दुलहक़ कहते हैं—

"गांधी जी ने हिन्दी-हिन्दुस्तानी का लफ़्ज़ ईजाद किया है। चूँकि बेजोड़ था, मक़बूल न हुआ।

"नतीजा यह है कि आसान उर्दू का नाम हिन्दुस्तानी हुआ। आप फ़रमायेंगे कि आसान हिन्दुस्तानी को हिन्दी क्यों न कहें? ज़रूर कहिए, क्योंकि जैसा कि मैं अभी कह चुका हूँ जदीद हिन्दी उर्दू का ही तो बच्चा है।"

जदीद हिन्दी उर्दू का बच्चा है, इस वाक्य को पढ़कर पाठक चौंकेंगे, अतएव, डाक्टर अब्दुलहक़ की इस विषय में सम्मति को मैं नीचे उद्धृत करता हूँ—

"जदीद हिन्दी जिसकी अशाअत की आज-कल कोशिश की जा रही है, नये ज़माने की पैदावार है। इसने फ़ोर्ट विलियम कालिज कलकत्ते में जनम लिया। दरअस्ल यह उर्दू का बच्चा है। वह इस तरह कि अरबी, फ़ारसी के लफ़्ज़ निकाल कर इनकी जगह संस्कृत के लफ़्ज़ बिठा दिये थे।"

ऊपर के अवतरणों से दो बातें सिद्ध हुई। डाक्टर

ताराचन्द और डाक्टर अब्दुलहक़ इस बात को मानते हैं कि आज-कल की प्रचलित हिन्दी वास्तव में उर्दू का हिन्दू रूपान्तर है। दूसरी बात यह कि संस्कृत और हिन्दी के शब्दों को अरबी और फ़ारसी के शब्दों के स्थान में बिठा देना अनुचित कर्म है, जिसको हिन्दुओं ने अपनी साम्प्रदायिक संकीर्णता से प्रेरित होकर कर डाला है। इस पाप का प्रायश्चित्त कैसे हो, यह एक जटिल समस्या थी। लेकिन इसको हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के भूतपूर्व और इंडियन नेशनल कांग्रेस के वर्तमान सभापति बाबू राजेन्द्रप्रसाद जी ने इन शब्दों में हमें बताया है कि "जितने अरबी-फ़ारसी के लफ़्ज़ों को हिन्दी के अच्छे लिखनेवालों ने इस्तेमाल किया है और जितने संस्कृत के शब्दों को अच्छे उर्दू लिखनेवालों ने व्यवहार किया है उनको हिन्दुस्तानी में ले लेना चाहिए। इनके अलावा आवश्यकतानुसार और भी शब्द लिये जा सकते हैं।"

शायद बाबू राजेन्द्रप्रसाद को यह मालूम नहीं कि डाक्टर अब्दुल हक़ के द्वारा रचित फ़रहंगे आसफ़िया नामक उर्दू-कोष में, उस कोष के रचयिता के अनुसार, केवल ५०० संस्कृत के शब्द हैं। इसका कारण प्रत्यक्ष है।

उर्दू के लेखक फ़ारसी और अरबी की ज़बानों को पढ़ते थे, देशी भाषाओं—जिनमें संस्कृत भी एक है—से उनको कोई सरोकार न था। इसीलिए फ़रहंगे आसफ़िया में जहाँ ७,००० अरबी के, और ६,५०० फ़ारसी के शब्द हैं, वहाँ संस्कृत के केवल ५०० हैं। संस्कृत के शब्दों के चुनाव के मोल का निपटारा बाबू राजेन्द्रप्रसाद जी ने शायद इस सिद्धान्त पर किया है कि अज्ञानी का अज्ञान ही मापदंड हो सकता है किसी शब्द विशेष की साहित्यिक उपयुक्तता के नापने का। दुनिया में शब्दों की परख होती है उनके प्रचार-विस्तार के आधार पर। बाबू जी ने इस सिद्धान्त को तिलाञ्जलि दे दी। इस सम्बन्ध में क्या इससे अधिक कहने की ज़रूरत है?

हमने ऊपर डाक्टर ताराचन्द और डाक्टर अब्दुलहक़ के रेडियो-भाषणों के जो अवतरण दिये हैं उनमें आधुनिक हिन्दी-गद्य को उर्दू-गद्य का संस्कृत-शब्दों से रंजित रूपान्तर मात्र सिद्ध करने की चेष्टा की गई है। डाक्टर अब्दुलहक़ के विषय में हमें कुछ नहीं कहना। विद्वान् होते हु[ए] वे पक्षपाती हैं। अतएव उनमें ज्ञान और विवे[क] संकीर्णता स्वाभाविक है। लेकिन डाक्टर ताराच[न्द] केवल बहुश्रुत पंडित हैं, बल्कि हिन्दी और उर्दू [के] निष्पक्ष समालोचक के पद को जनता की निगाह [में] बहुत दिनों से सुशोभित कर रहे हैं। ऐसे पढ़े-लिखे [आदमी] का यह कहना कि लल्लूजी लाल आदि ने मीर अम्[मन] अफ़सोस वग़ैरह की ज़बान को अपनाया, पर इसमें [से] फ़ारसी, अरबी के लफ़्ज़ छाँट दिये और संस्कृत [और] हिन्दी के शब्द रखकर एक नई ज़बान रंगमञ्च [पर] खड़ी कर दी। क्या डाक्टर ताराचन्द की राय में हि[न्दी] [और] उर्दू में केवल इतना ही भेद है कि हिन्दीवाले हिन्दी [और] संस्कृत के शब्दों को और उर्दूवाले उनके स्थान में फ़ार[सी] और अरबी के शब्दों को तरजीह देते हैं? यदि उनकी [यह] राय है तो मुझे कहना पड़ेगा कि उन्हें हिन्दी-उर्दू की भाषा[ओं] के बुनियादी भेदों का कुछ भी बोध नहीं। जो बा[त] डाक्टर ताराचन्द ने कही उसे यदि कोई नासम[झ] तंगदिल मौलवी कहता तो उसे मैं अनपढ़ गँवार की [बात] समझ हँसकर टाल देता। डाक्टर ताराचन्द [हिन्दुस्तानी] हिन्दुस्तानी एकेडेमी के बहुत दिन से मंत्री हैं। इसी एके[डेमी] डेमी के तत्त्वावधान में डाक्टर ताराचन्द ही ने दिवंगत [श्री] पद्मसिंह शर्मा का 'हिंदी, उर्दू और हिंदुस्तानी" पर ए[क] व्याख्यान कराया था। उस व्याख्यान ही को यदि डाक्टर साहब फिर से एक बार पढ़ने की कृपा करते तो ऐसी भ्रामक और निस्सार बात की ज़िम्मेदारी उठाने की नौबत न आती। डाक्टर ग्रियर्सन के भारतीय भाषाओं-सम्बन्धी बृहद् ग्रंथ का अवलोकन अब भी करलें तो उन्हें पता चल जायगा कि हिन्दी और उर्दू में क्या वास्तविक विभेद है।' उर्दू-भाषा शब्द-योजना, व्याकरण-सम्बन्धी नियमों, विषय और अलंकार की दृष्टि से शामी भाषाओं की अनुवर्तिनी है। उसकी प्रेरणा परदेशी है, स्वदेशी नहीं है। वह तो परमुखापेक्षिणी है। उसकी वस्तुस्थिति में हिन्दुस्तानीपन का नामोनिशान नहीं है। विषय-चयन में भारतीयता से वह कोसों दूर भागती है। क्या लल्लू जी लाल सदल मिश्र आदि ने अमीर अम्मन की इन सब बातों में नक़ल की है? एक के कण कण से विदेशीपन टपकता है। दूसरा रग रग में भारतीय है। लल्लू लाल जी की वाक्य-

[र]चना से इन्शा की 'रानी केतकी' की वाक्य-रचना का [मि]लान कीजिए और आपको दोनों में जो व्यापक अन्तर [है] उसका सहज ही बोध हो जायगा। लेकिन डाक्टर ताराच[न्]द को इन बातों की क्या परवा! शायद उन्हीं के [से] विद्वानों को देखकर एक विद्वान् ने किसी वक़्त यह [कह]ा था—

"आख़िर हिन्दी अलफ़ाज़ को मख़ीफ़ और मुब्तज़ल [स]मझने की वजह क्या है? इसकी वजह साफ़ ज़ाहिर [है]। जो क़ौम अपने दर्जे से गिर जाती है..........वह अपनी [ह]र चीज़ को पस्तोज़लील समझने लगती है......इसी तरह [अ]पनी ज़बान भी उन्हें ग़ैरों की ज़बान की निस्बत नाशा[इ]स्ता (अशिष्ट) और कममाचा (दरिद्र) मालूम होती [है]............यह मैलान गिरी हुई क़ौम के तमाम माम[ल]ात व हालात पर यकसाँ तौर से हावी हो जाते हैं।"
[ड]ाक्टर ताराचन्द ने ऐसी दशा में जो कुछ लिखा वह [अ]चरज की बात नहीं है। उनकी राय में हिन्दुस्तानी [व]ही खड़ी बोली है जिसे मेरठ और दिल्ली के [आ]स-पास के रहनेवाले बहुत पुराने वक़्त से बोलते चले आये हैं और मुसलमानों ने जब दिल्ली को राजधानी [ब]नाया तब से इस बोली की क़िस्मत पलटी। ऐसी दशा [में] डाक्टर ताराचन्द यह स्वीकार करने के लिए विवश [ह]ोंगे कि मेरठ और दिल्ली के आस-पास बोली [ज]ानेवाली 'बोली' भारतीय आर्य-भाषाओं के ढाँचे में [ढ]ाली गई होगी। उसपर शामी व्याकरण के नियमों [क]ा यदि असर पड़ा तो उर्दू लिखनेवालों की बदौलत [ह]ी पड़ा।

लल्लूजी लाल आदि ने जो काम किया वह यह था [कि] उन्होंने हिन्दी-हिन्दुस्तानी गद्य के, विदेशी प्रभावों [के] कारण, विकृत रूप को शोध कर भारतीय आर्य-भाषाओं [क]ी पंक्ति में ला बिठाया। उन्होंने स्वदेशी पद्धति का अनुसरण किया। मीर अम्मन वग़ैरह और उनके अनुयायियों [ने] उसको विदेशी अर्थात् शामी भाषाओं के ढाँचे में [ढ]ालने की अनुचित चेष्टा की। लेकिन डाक्टर ताराचन्द [से] बहस करना समय को नष्ट करना है। हाँ, डाक्टर [सा]हब यदि यह समझते हैं कि उनकी अनर्गल किंवदन्तियों [क]ो लोग ऐतिहासिक सत्य मान लेंगे तो यह उनकी भारी [भू]ल होगी। हाँ, 'उर्दू-दिवस' के जलसों में लोग भले ही उनकी पीठ ठोंक दें। अगर इससे उन्हें सन्तोष है तो मैं उन्हें हताश कदापि नहीं करना चाहता। मेरी निश्चित सम्मति यह है कि लल्लूजी लाल ने मीर अम्मन का अनुसरण नहीं किया। उन्होंने अनुसरण किया तो भारतीय आर्य-भाषाओं की परम्परा का—उस परम्परा का जिसके विरोध में मीर अम्मन वग़ैरह ने बग़ावत की और शामी भाषाओं की अनुवर्तिनी भाषा के फैलाने का देश में असफल प्रयत्न किया।

हिन्दुस्तानी के नाम पर उर्दू का प्रचार

जैसा पाठकों को मालूम है, डाक्टर अब्दुलहक़ आदि की राय में हिन्दुस्तानी सहल उर्दू है और सहल उर्दू हिन्दुस्तानी, जिसका अर्थ यह है कि आर्य-भाषा के नियमों के आधार पर एक नई ज़बान तैयार की जाय, जिसमें से हिन्दी और संस्कृत के प्रचलित शब्द निकाल लिये जायँ और उनके स्थान में फ़ारसी और अरबी के शब्दों का ज़ोरों से चलन किया जाय। इसी का नाम हिन्दुस्तानी-ज़बान है। हिन्दी और संस्कृत के शब्दों से इतनी घृणा क्यों? उनको निकाल फेंकने के लिए इतना उतावलापन क्यों? इसका कारण है। अभी तक तो हमसे यह कहा जाता था कि फ़ारसी और अरबी के शब्दों के स्थान में यदि हिन्दी और संस्कृत के शब्द इस्तेमाल किये जाते हैं तो केवल इस ग़रज़ से कि हिन्दुस्तानी से मुस्लिम कल्चर और इस्लामी असरात और जज़्बात का अन्त कर दिया जाय। डाक्टर अब्दुलहक़ साहब ने एक नई वजह बताई है। आप फ़रमाते हैं—

"अजीब बात है कि इस संस्कृत मिली ज़बान ही की वजह से जुनूबी हिन्दवाले हिन्दी या हिन्दुस्तानी की सख़्त मुख़ालिफ़त कर रहे हैं। उनको यह बदगुमानी है कि हिन्दी के हीले से संस्कृत ज़बान फैलाने की कोशिश की जा रही है और हम उनकी ज़बान और कल्चर को मिटाना चाहते हैं।" इसी लिए शायद दक्खिन हैदराबाद के रहनेवाले डाक्टर अब्दुलहक़ जो हिन्दुस्तानी ज़बान के इस वक़्त बड़े हिमायती हैं, 'दक्खिनी हिन्द' को 'जुनूबी हिन्द' कहते हैं ताकि उनके सम्बन्ध में मदरासियों को यह बदगुमानी न हो जाय कि डाक्टर साहब भी उनकी ज़बान और कल्चर को मिटाना चाहते हैं! डाक्टर साहब सहल उर्दू के हिमायती हैं। अपनी तक़रीर

में उन्होंने खुद कहा है कि जिस ज़बान में वे बोले थे वही हिन्दुस्तानी ज़बान है। इसी लिए शायद उन्होंने 'दक्खिनी हिन्द' को 'जुनूबी हिन्द' कहा, क्योंकि आपकी राय में इस मुल्क में 'दक्खिन' के मुक़ाबिले में 'जुनूब' का कई हज़ारगुना अधिक प्रचार है!

नई हिन्दुस्तानी के कुछ नमूने

विहार-प्रान्त में डाक्टर अब्दुलहक़ के बताये हुए मार्ग पर हिन्दुस्तानी-ज़बान की लढ़िया ढकेली जा रही है। वहाँ इसी नई ज़बान में 'महमूद सीरीज़' में 'राजेन्द्र रीडर्स' प्रकाशित हुई हैं। 'होनहार' नामका एक मासिक पत्र भी प्रकाशित हो रहा है। प्रौढ़ शिक्षा-प्रचार का जिस तरह का प्रयत्न हमारे सूबे में सरकार की ओर से किया जा रहा है, वैसे ही विहार में भी वहाँ की सरकार इस समय कर रही है। विहार में 'सयानों' के पढ़ने के लिए कुछ चार्ट तैयार किये गये हैं। मैं नीचे इन्हीं चार्टों, पोथियों और 'होनहार' से उर्दू उर्फ़ हिन्दुस्तानी ज़बान के कुछ नमूने देता हूँ ताकि पाठकों को मालूम हो जाय कि हिन्दुस्तानी की आड़ में उर्दू के फैलाने का कितना संगठित रूप से प्रयत्न किया जा रहा है।

आइए, पहले आपको 'सयानों' के चार्टों से 'दो सबक़' पढ़ायें—

(१)

रऊफ़ बड़ा बदशौक़ था। ज़रा भी नहीं पढ़ता था। एक दिन वह सफ़र करने निकला। किसी मुक़ाम पर बहुत सी बर्फ़ी खा कर बीमार पड़ा। रात का वक़्त था। चिराग़ भी पास न था। उस मुक़ाम पर अपना कोई न था। ग़रीब बड़े अफ़सोस में पड़ा। रोते रोते आँखें सुर्ख़ हो गईं। ज़रा भी न सोया। खुदा खुदा करते रात कटी। घर बाहर के फ़र्क़ का पता चला। रऊफ़ की सारी शेखी भूल गई। ज्यों त्यों घर पहुँचा। घर के सब लोग बहुत खफ़ा थे। मगर उसे बीमार देख कर अफ़सोस करने लगे।

(२)

रशीद ने अपने भाई को खत लिखा। उसने उस खत में अपने तोते का हाल लिखा था। और यह भी बताया था कि वह तोता उसको किस तरह मिला। तोते के लिये क़र्ज़ लेकर उसे नैपाल की तरफ़ जाना पड़ा था। लौट कर उसने क़र्ज़ का रुपया दे दिया। [illegible] खास तोते आदमी की तरह बोल सकते हैं। तोते [illegible] नज़र बदलना मशहूर है। लेकिन उसको क़ैद कर [illegible] एक बड़ा जुल्म है। उनको पकड़नेवाले एक खास [illegible] के होते हैं। यही काम उनकी रोज़ी का ज़रिया [illegible] मगर यह काम उनकी रोज़ी के वास्ते ज़रूरी [illegible] कहा जा सकता। किसी पर जुल्म करना ठीक नहीं। नैपाल की तरफ़ अजदहा भी पाया जाता है। अजदहे को लोग अजगर भी कहते हैं।

माननीय डाक्टर सैयद महमूद विहार-प्रान्त शिक्षा-मंत्री हैं। आप उर्दू उर्फ़ हिन्दुस्तानी भाषा के प्रचार में दिलोजान से लगे हुए हैं। 'सयानों की पोथी' के [illegible] पर आपका एक सन्देश है। उसे कृपया देखिए—

"पैग़ाम"

"अपने अनपढ़े? भाइयों को कम से कम [illegible] में पढ़ा-लिखा कर उनकी ज़िन्दगी खुशगवार बनाना और उन्हें देश और समाज के लिए मुफ़ीद बनाना हमारा क़ौमी फ़र्ज़ है।"

डाक्टर सैयद महमूद ने 'होनहार' अखबार का स्वागत करते हुए लिखा है—

"रेसाला 'होनहार' देख कर मुझे बड़ी खुशी हुई। मैंने इसे बड़ी दिलचस्पी से पढ़ा। मैं समझता हूँ कि यह रेसाला बच्चों के लिए फ़ायदामन्द साबित होगा। क्योंकि इस रेसाला की ज़बान ऐसी है जो आमतौर से बोली और समझी जाती है। देश और जाति की तरक्की इसी तरह हो सकती है कि सब लोग एक ही ज़बान बोलें और एक ही ज़बान के ज़रिये तमाम बच्चों की तालीम हो। उम्मीद की जाती है कि रेसाला 'होनहार' इस बात की कोशिश करेगा कि इसकी ज़बान बिलकुल साफ़, सरल और ऐसी आसान हो जिसे हर बच्चा आसानी के साथ समझ सके।

"मेरी यह ख़ाहिश बहुत दिन से थी कि देश में ऐसे अदब का प्रचार हो जो कि दोनों ही हरफ़ों में हो, मगर ज़बान एक ही और आसान हो। श्री रामलोचन शरण और मिस्टर अनीसुर्रहमान ने 'होनहार' निकाल कर [illegible] बड़ी कमी को पूरा किया है। मैं उन लोगों की इस कोशिश पर मुबारकबाद देता हूँ।"

ऊपर के दो नमूने तो हैं माननीय डाक्टर सैयद महमूद की हिन्दुस्तानी ज़बान के। अब आचार्य नरेन्द्रदेव की, जो काशी-विद्यापीठ के भूतपूर्व प्रधानाचार्य की उपाधि को विभूषित करते हैं और हमारे प्रान्त की शिक्षा संगठन-कमिटी के भी सभापति थे और जो इस नवीन हिन्दुस्तानी के नये आशिक़ों में से हैं, हिन्दुस्तानी ज़बान का भी एक उदाहरण पाठकों के मनोरंजन के लिए उद्धृत करता हूँ। आपने लिखा है—

"हिन्दुस्तानी ज़बान के माहवारी अखबार 'होनहार' का पहला परचा मेरे सामने है। ज़बान को सहल और आम-फ़हम बनाने की काफ़ी एहतियात रखी गई है। यह कोशिश क़ाबिल-तारीफ़ है और एडीटर को इसमें काफ़ी कामयाबी हासिल हुई ....। मैं इस अखबार की तरक़्क़ी चाहता हूँ। .... उम्मीद है कि यह अपने मक़सद को हासिल करने में कामयाब साबित होगा।"

आचार्य नरेन्द्रदेव की भाषा को पाठक ग़ौर से पढ़ें। उसपर कुछ टीका-टिप्पणी करना मैं उचित नहीं समझता।

'होनहार' की भी 'नौरतन चटनी' का कुछ मज़ा आप लेना चाहेंगे। लीजिए, हाज़िर है—

"ओ देश से आने वाले बता
क्या अब भी महकते मन्दिर से नाक़ूस(?) की आवाज़
आती है,
क्या अब भी मुक़द्दस मस्जिद पर मस्ताना अज़ान थर्राती है?
और शाम के रंगीन सायों पर, एक अज़मत-सी छा जाती है।"

विहार सूबे की 'होनहार' हिन्दी का यह होनहार नमूना है। इसके सम्पादक हैं श्री रामलोचनशरण और श्री अनीसुर्रहमान। 'होनहार' के चौथे अंक में २१ मज़मून हैं— मज़मून, विषय नहीं। पेज हैं, पन्ने नहीं। इन २१ मज़मूनों 'मज़ामीन' के लेखकों में से ११ के लेखक हैं हमारे उर्दू-दाँ दोस्त। रह गई श्री रामलोचनशरण जी की बात। आपका कहना ही क्या। आप तो 'सयानों की पोथी' के सयाने लेखक ही हैं। इसी लिए आपने पोथी में ब्याह को तलाक़ देकर 'शादी' से गठबन्धन करना उचित समझा है। नहीं, नहीं, उचित नहीं, मुनासिब समझा है।

नई हिन्दुस्तानी के काफ़ी नमूने दिये जा चुके। कहते हैं कि जिस ज़बान के ये नमूने हैं वही हिन्दुस्तानी-भाषा है। उदाहरणों से यह बात साफ़ प्रकट होती है कि हिन्दुस्तानी वास्तव में उर्दू है। आचार्य नारेन्द्रदेव इसी हिन्दुस्तानी के हिमायती हैं। 'होनहार' का सभी साथ देते हैं। जैसी बहै बयारि पीठ तब तैसी दीजै। इसी लिए संस्कृत, पाली और हिन्दी के उद्भट विद्वान् आचार्य का लोग अनुकरण करने लगें तो हिन्दी का दुर्भाग्य है। संस्कृत और हिन्दी के शब्दों का इस निर्दयता के साथ बहिष्कार खटकता है। अजगर के बजाय 'अजदहा' और शंख के स्थान में 'नाक़ूस' हमारे बच्चों को पढ़ाया जाय और यह कहकर पढ़ाया जाय कि 'अजदहा' और 'नाक़ूस' को ज़्यादा लोग समझते और बोलते हैं तो हमें अपनी नादानी और नासमझी पर तरस आता है और तरस इस बात पर भी आता है कि सयाने अपने को इतना बड़ा सयाना समझते हैं और दूसरों को इतना मूर्ख कि उनकी समझ में उनके काइयाँपन को कोई ताड़ न पायेगा। राजनीतिज्ञ ग़द्दारी की धमकी दिखा कर जो लोग अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं वे मेरी समझ में क्षणिक लाभ के लिए स्थायी लाभ को ठुकरा बैठेंगे। उन्हें यह न भूलना चाहिए कि इसी हिन्दुस्तान में जहाँ अशोक और अकबर से राजा हुए हैं, वहाँ पर काफ़ी तादाद में मखबूतुल्हवासों ने भी समय समय पर राजसिंहासनों को कलंकित करने में कोई कोर-कसर नहीं उठा रक्खी। यह तो समय का हेरफेर है। काल का चक्र तो घूमेगा ही। लाख कोई कोशिश करे कि उसका घूमना बन्द हो जाय। विद्यापति के प्रान्त में बच्चों को यह गीत पढ़ाया जाय—

"ओ, भारत माता ओ, भारत माता
खुदा की तुझपर रहमत हो"

यह कुछ कम अचरज की बात नहीं। अचरज की बात तो यह है कि यह सब होते देखकर भी बिहारी चुप हैं। कांग्रेस ने तो राष्ट्र-भाषा को हिन्दुस्तानी-भाषा का नाम दिया है। उसने उर्दू का समर्थन नहीं किया और न हिन्दी के बहिष्कार का आदेश दिया। साम्प्रदायिक कठमुल्ले दिन-दहाड़े हिन्दुस्तानी के नाम पर उर्दू का

फा० ६

प्रचार कर रहे हैं। हिन्दी और संस्कृत के शब्दों को चुन-चुनकर पाठशालाओं और मदरसों से निकालने की कोशिशों में लगे हुए हैं। मैं उर्दू का विरोधी नहीं। फ़ारसी और अरबी के शब्दों से मुझे कोई वैर नहीं। लेकिन उर्दू-ज़बान के पीछे जो प्रेरणा है, उसका जो दृष्टिकोण है, उसकी विचार-शैली, उसकी बनावट और सजावट, उसकी रूप-रेखा—इन सब बातों में वह अभारतीय है, राष्ट्रीय भाव की संहारिणी और हमारे जातीय उत्थान की जड़ खोदनेवाली है। संकीर्णता में उसका जन्म हुआ, संकीर्णता ही का वह सन्देश सुनाती है। इस्लाम का उससे कोई सम्बन्ध नहीं, इस्लामिक कल्चर की वह साकार मूर्त्ति नहीं है। ईरान के पतन-काल की विषाक्त सभ्यता और संस्कृति का घातक सन्देश लेकर वह हमारे पास आई है। ऐसी भाषा और ऐसे साहित्य को प्रोत्साहन जो देना चाहते हों वे दें, लेकिन उनका ऐसा करना और करना राष्ट्रीयता के नाम पर, निहायत बेजा हरकत है। किसी भाषा के शब्दों को अपना बना लेना कोई अनुचित काम नहीं है। प्रत्येक सजीव भाषा हर समय ऐसा ही किया करती है। उन्हें अपनाना एक बात है, लेकिन अपने शब्दों को त्याग कर दूसरों का आश्रित होना किसी सजीव भाषा का लक्षण नहीं है। लेकिन जिनकी मनोवृत्तियाँ संकीर्ण हैं, जो राष्ट्रीयता के नाम की रात-दिन रट लगाया करते हैं, पर न जिनमें राष्ट्रीयता के भाव का सर्वथा अभाव है वे ही इस तरह की साहित्यिक तानाशाही का समर्थन करेंगे। हमारा और आपका मार्ग तो साफ़ है। हिन्दी ही हिन्दुस्तानी हो सकती है। वही हिन्दुस्तानी है। उसका शब्द-भाण्डार न संकुचित है और न अपूर्ण। वह तो अजगर की तरह सब भाषाओं के शब्दों को पचाने की क्षमता रखती है और जिस उदार नीति से अभी तक उसका भरण-पोषण हुआ है और विशाल हृदयता से उसके सेवक भविष्य में भी उसको सँवारने-सुधारने में डटे रहेंगे तो विजय उनकी है, भविष्य उनका है और उन्हीं का सबसे अधिक यश होगा। भारत की विभिन्न जातियों को भाषा के एक अटूट बन्धन से बाँधकर एक राष्ट्रीय जाति में परिणत करने का और उसके विशाल पराक्रम, दुर्जेय शक्ति, महत्त्वाकांक्षाओं, सूक्ष्मतम सुकुमार से सुकुमार भावनाओं और धारणाओं को व्यक्त और मुखरित करने का सेहरा भी उसी के माथे पर बँधेगा और इस पुण्य श्रेय के भागी वे सब असंख्य भारतवासी होंगे जो सुख और दुख में, संकट-विपत्ति में, धूप और बरसात में अपनी मातृ-भाषा की आराधना में निरत रहे हैं।
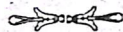
२८वें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष महामना मालवीय जी की घोषणा

बड़े-बड़े धुरन्धर मनोविज्ञानवेत्ताओं का कहना है कि हिन्दी के समान मधुर तथा सुन्दर दूसरी कोई भाषा नहीं है। अतः हमें अपनी हिन्दी-भाषा और नागरी-लिपि की रक्षा करनी चाहिए। हम निस्सन्देह अन्य भाषाओं के ऐसे शब्दों का उपयोग कर सकते हैं, जिनसे हमारी भाषा की शक्ति, प्रवाह तथा भाव-वृद्धि हो। जिस समय से हम लोगों ने अपने देश को स्वतन्त्र करने का ख्याल किया है, उसी समय से हमारे देशभक्त लोग एक ऐसी सहभाषा को अपनाने की बात सोच रहे हैं, जिसके द्वारा हमारा राष्ट्रीय कार्य हो। उन लोगों ने इसके लिए हिन्दी-भाषा को ही स्वीकार किया है, क्योंकि इसे कम से कम २४ करोड़ मनुष्य बोलते हैं।
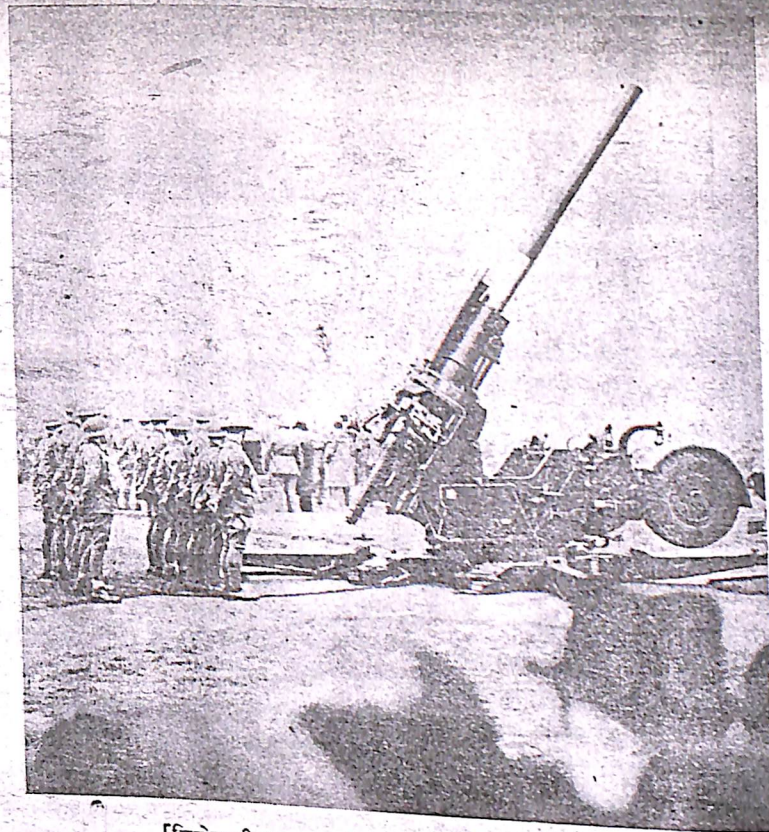
[ब्रिटेन की एक आधुनिकतम वायुयान-संहारिणी तोप]

पश्चिमी-रणस्थल

लेखक, उमेशचन्द्रदेव, विद्यावाचस्पति

पोलैंड पर आक्रमण करके हर हिटलर ने योरप में महायुद्ध का सूत्रपात कर ही दिया। फलतः ब्रिटेन और फ्रांस को अपनी पूर्व-प्रतिज्ञा के अनुसार युद्ध में भाग लेना पड़ा। पोलैंड जाकर उपयुक्त सहायता करने की सुविधा न होने से फ्रांस को जर्मनी की पश्चिमी सीमा पर ही आक्रमण करने को बाध्य होना पड़ा। इन दोनों देशों के बीच का यह सीमावर्ती भू-भाग इन दिनों अभूतपूर्व क़िलेबन्दियों का भयानक रूप ग्रहण कर चुका है। उसका वर्णन पाठकों को रुचिकर ही नहीं होगा, किन्तु उसका जानना ज़रूरी भी है।

योरप के राजनीतिज्ञों को गत महायुद्ध के समाप्त होते ही इसका अनुमान होगया था कि निकट-भविष्य में ही फिर एक महायुद्ध होगा, जिसमें वायुयानों से विशेष काम लिया जायगा। इस महायुद्ध से सबसे अधिक ख़तरा फ़्रांस को था, क्योंकि वह जानता था कि वार्साई की सन्धि की प्रतिक्रिया अवश्यम्भावी है और उसका बदला सबसे पहले चुकाया भी फ़्रांस से ही जायगा। इसीलिए उसने लग्ज़ेमवर्ग से लेकर बेसिल तक, जहाँ फ़्रांस और जर्मनी की सीमा मिली हुई है, जर्मन के

[ब्रिटेन के प्रधानमंत्री मिस्टर नेवायल चेम्बरलेन]

भीतर भीतर ही सारी सीमा पर एक सुदृढ़ क़िलेबन्दी की है। इस क़िलेबन्दी की योजना फ़्रांस के भूतपूर्व युद्ध-सचिव एण्ड्री मैंगिनो के मस्तिष्कर युद्ध हुए। इसी लिए फ़्रांस की इस अजेय दुर्ग ... समस्त उत्तरी ... दिया गया। उन्हीं के नाम पर—

मैंगिनो-लाइन

रक्खा गया है। इस लाइन का भीतरी भाग रहस्यपूर्ण है। इसमें ज़मीन के नीचे ६० फ़ुट की गहराई में सेना के रहने के योग्य मज़बूत तहख़ाने बनाये गये हैं। इन तहख़ानों की ऊपरी छत ४० फ़ुट मोटी तो गिट्टी ... कांक्रीट की ढली हुई है और उसके भी ऊपर ५० हज़ार टन लोहे की चादरें जड़ी हुई हैं। इसे तोड़ने की शक्ति न तो बमों में है, न तोप के गोलों में। इस छत पर भीतर ही भीतर छोटे छोटे बुर्ज भी बनाये गये हैं; जिन पर १५ हज़ार तोपें चढ़ी हुई हैं। हैं तो रोशनदान भी, पर भीतर वाले ही उन्हें जान सकते हैं। इन तोपों के प्रयोग करने की विधि भी वैज्ञानिक है। न निशाना लगाने की ज़रूरत है, न गोले भरने की। कुछ अफ़सर अपने कमरों में बैठे हैं और इस लाइन की ओर आती हुई शत्रु-सेना की गति-विधि दूरबीनों के द्वारा देख रहे हैं। बस, जहाँ शत्रु की सेना लाइन की तोपों की मार के भीतर पहुँची कि अफ़सर ने एक बिजली का बटन दबाया। तोपें स्वयं ठीक निशाने पर आगईं और एक साथ आग बरसाने लगीं। यही नहीं, फ़ायर दागने के बाद वे स्वयं ही फिर नीचे सरक गईं और गोलों से भर कर फिर ठीक निशाने पर आ लगीं। टेलीफ़ोनों और तारों का लाइन भर में जाल बिछा हुआ है और उनकी व्यवस्था इतनी चतुरता-पूर्ण है कि एक तार के काट देने या लाइन के किसी विशेष भाग के नष्ट हो जाने पर भी कोई विशेष बाधा नहीं पड़ती। इस लाइन के क़िलों में १० लाख सिपाहियों के रहने, घूमने, हवा खाने, सोने व मनोविनोद करने की पूरी व्यवस्था है। यही नहीं, भूमि के भीतर ही चिकित्सालय, जलस्रोत, पूजागार और क़बरिस्तान सभी कुछ मौजूद है। खत्तियों में कई महीने की रसद जमा रहती है। शराब और तम्बाकू के तो गोदाम भरे रहते हैं। एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए बिजली की रेलगाड़ियाँ हैं। कई गुप्त-मार्ग भी हैं, जिनमें बिजली का हर समय प्रकाश रहता है। सेना को ऊपर लाने ...

...ड़े लिफ़्ट भी हैं, जिन पर बैठकर २५ हज़ार सेना बटन दबाते ही एका-... शत्रु को आश्चर्य-चकित कर सकती है।

पृथ्वी के ऊपर से भी इस लाइन की रक्षा का प्रबन्ध है। ज़मीन के ऊपर नुकीले लोह-फलक गाड़ दिये गये हैं, जिनके कारण मोटर नहीं निकल सकते। उसके आगे छोटे-छोटे ...मों का जाल बिछा दिया गया है। मोटर उनके ऊपर पहुँचा नहीं कि उड़ा नहीं। तहख़ानों के ऊपर भी कुछ छोटे-छोटे गाँव सैनिकों के रहने के लिए बसाये गये हैं। ये सब गाँव आवश्यकता के समय चट से समेटकर भूगर्भ में विलीन कर लिये जा सकते हैं। इस २०० मील लम्बी लाइन के बनाने में ८ वर्ष, १४ अरब रुपये और १५ सहस्र व्यक्तियों का दैनिक परिश्रम लगा है।

फ़्रांस को इस ढंग की क़िलेबन्दी करते देखकर जर्मनी ने भी अपनी ओर की सीमा में एक ऐसी ही लाइन बनाई है जो

सिगफ़्रीड-लाइन

के नाम से प्रसिद्ध है। यही लाइन फ़्रेंच सेनाओं को आगे बढ़ने से अब तक रोके हुए है।

यह लाइन जल्दी में बनाई गई है, फलतः यह उतनी दृढ़ नहीं होगी जितनी कि मैंगिनो-लाइन है। यह लाइन उत्तर में हालैंड से दक्षिण में स्वीज़रलैंड की सीमा तक विस्तृत है। सीगफ़्रीड जर्मनी का एक प्रसिद्ध वीर होगया है। उसी के नाम पर जर्मनों ने इस लाइन का नाम रक्खा है। कहते हैं कि इसमें तेहरी दुर्ग पंक्तियाँ हैं। इसपर लोहे, गिट्टी और कांक्रीट से निर्मित बारह हज़ार दुर्ग खड़े किये गये हैं। भीतरी तहख़ानों में भी ...ज इत्यादि के लिए कुछ वैसीही व्यवस्था होगी जैसी कि मैंगिनो-लाइन में है। इसके प्रवेश-द्वार बहुत गुप्त रक्खे गये हैं। विदेशी तो विदेशी—जर्मनी के निवासी भी इस लाइन के पास से बिना परिचय-पत्र के नहीं निकलने पाते।

आगे चलकर सम्भव है कि यह युद्ध भी पिछले युद्ध की भाँति विश्व-व्यापी हो जाय, पर इस समय तो वह एक छोटे से भूभाग में सीमित है। यह भूभाग राइन नदी के आस-पास है। राइन का जर्मनों की दृष्टि में वही महत्त्व है जो भारतीयों की दृष्टि में गंगा का।

[जर्मनी के तानाशाह हर हिटलर]

इस महानदी के तटों पर जर्मनी और फ़्रांस का इतिहास सैकड़ों बार लिखा गया है। योरप के इतिहास के

[मैंगिनो-लाइन का वाह्य-दृश्य—ऐसे ही भूभाग के नीचे सारी सीमा में जबर्दस्त क़िलेबन्दी की गई है ।]

में कई भयंकर युद्ध हुए। में राइन का समस्त उत्तरी फ़्रांस को दे दिया गया। भूभाग पर फ़्रांस की स की ऐसी गहरी छाप पड़ी १८०१ में वीयेना की कांग्रेस द्वारा उसका निचला भाग को वापस दिला दिये जाने १८७० के युद्ध के वाद और लारेन के प्रान्त रीख़ (जर्मन साम्राज्य) में सम्मिलित होने के वाद भी वहाँ के निवासियों का रहन-सहन फ़्रांसीसी का ही वना रहा। ये वस्तुतः वड़े सीधे-सादे, धर्म- व युद्ध-भीरु होते हैं।

आरम्भिक दिनों में टयूटन और गाल जातियों के युद्ध इसी नदी के तटों पर हुआ करते थे। इसके बाद रोमनों-द्वारा गाल-देश (वर्तमान फ़्रांस) के जीत लिये जाने पर राइन रोमन-साम्राज्य और टयूटानिक-राज्य की सीमा बनी। टयूटानिकों के आक्रमणों से बचने के लिए रोमनों ने राइन के किनारे-किनारे कई दुर्ग बनवाये। कोलन, वार्म्‌स, स्पेयर और बोन नामक शहरों में ये क़िले अब भी मौजूद हैं। इस प्रकार योरप से प्रारम्भिक युग में राइन के तट और राइन व आधुनिक फ़्रांस के मध्यवर्ती भूभाग में रोमन सभ्यता और संस्कृति शताब्दियों तक फूलती-फलती रही।

रोमन-साम्राज्य की अवनति होते ही जर्मन लोग इस प्रदेश में आकर भर गये। ९वीं शताब्दी में शार्लमैन के शासन-काल में इस प्रदेश की फिर उन्नति हुई और तब से लेकर मध्यकाल तक यह ईसाई धर्म, सभ्यता और संस्कृति का मुख्य केन्द्र बना रहा। १६वीं शताब्दी में इस हरे-भरे व उपजाऊ प्रदेश पर अधिकार पाने के लिए जर्मनी व फ़्रांस

जर्मनी और फ़्रांस के सम्बन्ध राइन के द्वारा दूसरे से मानो प्रकृति ने स्वयं जोड़ दिये हैं। स्विट्ज़रलैंड के बेसिल से लेकर राउटरबर्ग तक १०० मील की में बहती हुई राइन फ़्रांस और जर्मनी की मध्यवर्ती सीमा बनाती है। इन स्थानों पर इसकी घाटी तो चौड़ी उथली है, पर धारा की चौड़ाई ५०० से ६०० फ़ुट है। नदी का जो किनारा फ़्रांस की ओर है उसके

[मैंगिनो-लाइन के एक टैंक का चित्र]
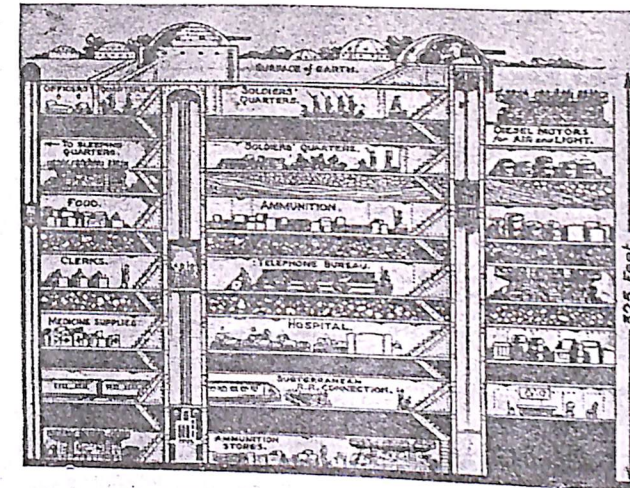
[फ्रान्स की मैंगिनो-लाइन का आनुमानिक-चित्र]

भूमि की एक पतली धज्जी जिसकी चौड़ाई १० से २० मील तक है, चली गई है। इस भूभाग में रेलों और नहरों का जाल-सा बिछा हुआ है। इसी का नाम पूर्वी आलसस है। मुलहूस, कोमर और स्ट्रेसबर्ग के गढ़ इसी में हैं। इस प्रदेश के पीछे से वाजजेस की पहाड़ियाँ शुरू होती हैं। ये पहाड़ियाँ राइन की ओर ढालू और दूसरे किनारे की ओर क्रमशः ऊँची होती चली गई हैं। उँचाई अधिक से अधिक ४,१०० फ़ुट है। वासजेस की पर्वत-श्रेणियाँ फ़्रांस और जर्मनी के बीच में दीवार की तरह खड़ी हैं। केवल एक मार्ग है—स्वीटज़लैंड की सीमा पर मुलहूस में। यहीं एक दर्रा है—बेलथोर्ट के नाम का—जो प्रायः आक्रमणकारियों को निमंत्रण दिया करता है।

वासजेस-श्रेणियों के मुक़ाबिले में ही राइन के दूसरे तट पर जर्मनी की ओर कालावन है। यह १०० मील लम्बा ३६ से १३० मील तक चौड़ा और २,००० फ़ुट की औसत उँचाईवाला पठार है।

राइन लाटरबर्ग के पास पहुँचकर सीमा को छोड़ देती है और सीमा यहाँ से अधिक कोण बनाती हुई पश्चिम को चलती है। १२० मील की दूरी पर लग्ज़ेमबर्ग की छोटी-सी स्वतन्त्र रियासत है। नदी यहीं से पश्चिम की ओर बहती है।

फ़्रेंच और जर्मन राज्यों की सीमा पर बसे हुए लग्ज़मवर्ग नगर से मोसेली नदी ९० मील ऊँचे-नीचे धरातल पर बहकर राइन से मिल जाती है। लग्ज़मवर्ग से कुछ ही दूरी पर उससे सार नदी मिलती है। यह सार नदी इसी नाम के प्रान्त में सर्पाकार १४३ मील तक बहती है। सार-प्रान्त अपने उद्योग-धन्धों के लिए प्रसिद्ध है। इसी सार नदी के बायें तट पर वर्तमान युद्ध का रणक्षेत्र है। कारण यह है कि यही एक ऐसा स्थान है, जहाँ से शत्रु की सीगफ़ीड-लाइन को तोड़कर जर्मनी के अन्दर घुस जाने की कुछ सम्भावना हो सकती है। मोसेली राइन और फ़्रांस की सीमा से घिरा हुआ लाटरबर्ग तक का त्रिभुजाकार प्रदेश, जिसका क्षेत्रफल इलाहाबाद, झाँसी और कानपुर के त्रिभुज के बराबर होगा, रेल की पटरियों-द्वारा राइन-भूभाग और शेष जर्मन देश से जुड़ा हुआ है। कोलन से लेकर मेन्ज़ तक राइन के दोनों किनारों पर रेलवे लाइनें हैं। बाईं ओर की लाइन फ़्रेंच-प्रदेश तक चली गई है। एक और लाइन मोसेली के तटवर्ती ट्रायर नगर को कोलोन से जोड़ती

है और दूसरी जो मोसेली के लगभग समानान्तर गई है, ट्रायर को कोवलेन्स से जोड़ती है। कोवलेन्स और मेन्ज़ के मध्यवर्ती बिन्ज़न से एक लाइन सार को जाती है और दूसरी फ्रेंच स्ट्रेसबर्ग को।

पुलों में सबसे महत्त्वपूर्ण पुल कोलन, कोवलेन्स और मेंज़ के हैं। गत महायुद्ध के बाद ये पुल मित्र-राष्ट्रों के होथ आ गये थे। इस प्रदेश में यद्यपि सड़कों की प्रचुरता है, पर जर्मनी के मुख्य प्रदेश में मित्र-राष्ट्रों की हवाई तोपों के पहुँचने में सबसे बड़ी बाधा राइन को पार करना है। इस प्रकार मानहेम का पुल ही एक ऐसा पुल है जो अपनी परिस्थिति के अनुसार मित्र-राष्ट्रों के हमले के लिए सबसे अधिक सहायक सिद्ध हो सकता है।

युद्ध की दृष्टि से यह बात भी महत्त्वपूर्ण है कि जर्मनी का एक प्रधान औद्योगिक-प्रदेश युद्ध की लपटों से घिरा है और दूसरा भी केवल १४० मील की दूरी पर है। रूहर और सार इस्पात और लोहे के उत्पत्ति के प्रमुख केन्द्र हैं। जर्मनी में रासायनिक पदार्थों के बनाने और वस्त्र बुननेवाले कारखाने भी रायनलैंड के आस-पास हैं।

सार जर्मनी का सबसे सघन प्रदेश है। इसकी औसत आबादी १,०४३ प्रतिवर्ग मील है। सारब्रूकेन भी जो कि अब खाली किया जा चुका है, १,३०,६८६ जनसंख्या-वाला एक प्रमुख नगर है।

युद्धस्थल से प्राप्त संवादों से यहाँ की खानों के [illegible] में बहुत कुछ ज्ञात हो जाता है। इनमें से अधिकांश [illegible] तंग घाटी में हैं जो सारब्रूकेन और निवेनकि[illegible] बीच में है। और इस प्रकार युद्ध-क्षेत्र था सीगफ़्रि[illegible] लाइन के ठीक पीछे है। कुल मिलाकर खानों [illegible] नगर यहाँ पर हैं। इन नगरों पर युद्ध का प्रभाव [illegible] पड़ेगा और इससे जर्मनी की बहुत बड़ी हानि होगी।

फ्रांस और जर्मनी के क़िलेबन्दियों के बीच के प्रदे[illegible] के उपर्युक्त विवरण से उसका थोड़ा-बहुत दिग्दर्शन हो [illegible] है। इसी प्रदेश में मोसेली-नदी को अपने बायें रखकर [illegible] की सेनायें घुस आई हैं और धीरे-धीरे आगे बढ़ती हुई सीगफ़्रिड-लाइन के समक्ष आ पहुँची हैं। उधर [illegible] पीछे फ़्रांस में डेढ़ लाख अँगरेज़ी सेना भी अपने [illegible] आयुधों के समेत आ डटी है। इधर पोलैंड को जीत [illegible] के बाद फ्रेंचों का मुक़ाबिला करने के लिए जर्मनी [illegible] सेनायें अपनी क़िलेबन्दी को पीछे रखकर फ्रेंच सेनाओं [illegible] घोर युद्ध करने में संलग्न है। यही नहीं, वे मोसेली-नदी [illegible] अपने दाहने रखते हुए मैगनो-लाइन पर आक्रमण करने का भाव दिखा रही हैं। सरांश यह कि इस प्रदे[illegible] में महायुद्ध के संघटित होने के पूरे लक्षण दिखाई दे [illegible] हैं और इसी क्षेत्र में इस बात का निर्णय हो जायगा [illegible] जर्मनी फ़्रांस और ब्रिटेन की सम्मिलित शक्ति के [illegible] कब तक ठहर सकता है।

लड़ाई के सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार का रुख़

श्री चेम्बरलेन ने कहा कि हिटलर तब तक हमारे सब शान्ति-प्रस्ताव ठुकराते रहे जब तक उन्होंने
पोलैण्ड को दबा नहीं लिया, जैसे पहले चेकोस्लोवाकिया को दबा लिया था। सन्धि की ऐसी शर्तें
स्वीकार नहीं की जा सकतीं जिनमें हमले की तरह दी गई हो। यदि उनके प्रस्ताव में अन्याय के
प्रतिशोध की बात होती तो भी यह पूछना जरूरी होता कि जर्मन सरकार किन व्यावहारिक कार्यों से
संसार को इसका विश्वास करावेगी कि भविष्य से आक्रमण न होंगे और प्रतिज्ञाओं का पालन
किया जायगा। हमारा और हमारे मित्र फ़्रांस का युद्ध बन्द करना तभी उचित होगा जब "शब्द नहीं
कार्य" हमारे सामने हों। संसार में अशान्ति उत्पन्न करनेवाले प्रश्न तभी हल हो सकेंगे जब दुनिया
को पहले इतमीनान हो जाय। यह शर्त पहले पूरी होनी चाहिए और इसे जर्मन सरकार ही कर
सकती है। यदि वह ऐसा नहीं करेगी तो अभी दुनिया में नई और अच्छी व्यवस्था की, जिसे सब
राष्ट्र चाहते हैं, स्थापना नहीं हो सकती। अतः जर्मन सरकार या तो निश्चित कार्यों और प्रतिज्ञापालन
की शर्तों के साथ अपनी शान्ति की इच्छा की सच्चाई का सबूत दे या फिर हमें अपने कर्तव्य का अन्त
तक पालन करना होगा। इनमें से किसी एक को चुन लेने का काम अब जर्मनी का है।

आनंद के आँसू

लेखक, श्रीयुत आत्माराम देवकर

नंदकुमार की स्त्री चमेली रीडिंग रूम में बैठी अपनी बड़ी लड़की वसन्ती को पशुओं के चित्र दिखला रही थी। वसन्ती की छोटी बहन मुन्नी पास ही खेल रही थी। [illegible]न्ती को चित्रावलोकन में व्यस्त देख खिलाड़िन मुन्नी ने [illegible]से में से उसकी पुस्तकें खींच कर फाड़ डालीं। वसन्ती [illegible]ट फूट कर रोने लगी। मुन्नी ने खिलखिलाकर उसकी [illegible]क पकड़ ली। चमेली हँसने लगी। उसकी ननद कनक[illegible]ता आँगन झाड़ रही थी। चमेली की हँसी सुनकर [illegible]ह भी वहाँ आ गई और मुन्नी से बोली—"तू बड़ा [illegible]द्रव करने लगी है। देख मैं अभी कान काट कर तुझे [illegible]ी बनाये देती हूँ।"

चमेली बड़ी अभिमानिनी थी। ननद की बात सुनकर [illegible] गई और मुंह बनाकर बोली—"अभी तक चूल्हे में [illegible]ग नहीं पड़ी। आठ बज चुके। चाय कब तैयार होगी।"

कनकलता ने सरल भाव से कहा—"करती तो [illegible]ती हूँ। चाय बनाने में कितनी देर लगती है।"

चमेली ने रूखे स्वर से कहा—"अपने और पराये [illegible]म में बड़ा भेद रहता है।"

कनकलता का हृदय कंटकित हो उठा। उसने [illegible] कंठ से कहा—"दिन को दिन और रात को रात [illegible] समझती तो भी पूरा नहीं पड़ता। क्या करूँ, कहाँ [illegible]ाऊँ। कहीं ठिकाना नहीं है।"

चमेली ने दर्प से कहा—"तुम्हारे ऊपर बोझ नहीं [illegible]ती। कल से मैं कर लिया करूँगी बाई। व्यर्थ क्यों [illegible]ना दिल दुखाती हो?"

कनकलता के नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लग गई। [illegible]सने बड़े कष्ट से कहा—"अभागिनी का किया कौन [illegible]ता है।" कनकलता का छोटा-सा बालक श्याम मा[illegible] रोते देखकर वहाँ आ गया और कातर दृष्टि से [illegible]सके मुँह की ओर देखने लगा।

(२)

दिन के बाद रात और रात के बाद दिन होता है। [illegible]सार का यही सार है। एक दिन वह था, जब कनकलता अपने अनाथ भाई नन्दकुमार को पालने के लिए पति के घर ले गई थी। उस समय नन्दकुमार की अवस्था पाँच वर्ष की थी। कनकलता के पति भुजवदाप्रसाद एक छोटे से गाँव के पटवारी थे। उन्होंने शिशु नन्दकुमार को बड़े यत्न से पाला, पढ़ाया-लिखाया और इंट्रेंस पास हो जाने पर इंजीनियरी की ओवरसियर क्लास में भेज दिया। वहाँ से वह ओवरसियर बनकर आ गया और नौकरी करने लगा। भाई की उन्नति देखकर कनकलता की आँखें ठंडी हो गईं। भुजवदाप्रसाद को भी असीम हर्ष हुआ। उन्होंने शीघ्र ही नन्दकुमार का विवाह कर दिया। मातृ-पितृ-हीना कनकलता भावज को गोद में लेकर प्रेम के आँसू बहाने लगी।

विधि का विधान बड़ा विचित्र है। उसको कब क्या करना है, यह कोई नहीं जान सकता। जन्म-जन्मान्तर के संचित कर्मों का रहस्य बड़ा ही भ्रमोत्पादक होता है। इसी से यह कहावत निकली है कि "हरिहर की माया। कहीं धूप कहीं छाया।" अस्तु, नन्दकुमार का भाग्य-सूर्य्य तो चमक उठा पर, सरल हृदया कर्त्तव्य-परायणा एवं परहित निरंता कनक-सी कनकलता थोड़े ही समय में सदा के लिए अभागिनी बन गई। एक छोटे से बालक को छोड़कर भुजवदाप्रसाद ने अनन्तधाम की यात्रा कर दी। कनकलता को सारा संसार अंधकारमय प्रतीत होने लगा। अन्य कोई अवलम्ब न देख वह नन्दकुमार के पास जाकर दिन काटने लगी।

(३)

नन्दकुमार बड़े ही सहृदय व्यक्ति थे। बहन कनकलता को माँ के समान मानते थे। उसके पुत्र को अपनी कन्याओं से भी अधिक प्यार करते थे। उनकी सहानुभूति एवं आश्रितवत्सलता से कनकलता अत्यन्त सन्तुष्ट थी। पर भावज का स्वभाव वैसा न था। वह बड़ी ही अभिमानिनी और कठोर हृदया थी। कनकलता का रहना उसे अच्छा नहीं लगता था। वह समझती थी कि यह मेरे पति पर एकाधिपत्य रखती है और उसी सूत्र में मुझे भी आवद्ध करना चाहती है। उनके प्रति किये गये उपकारों का भार मैं अपने ऊपर क्यों लूँ? क्या यह उसकी अनधिकार

चेष्टा नहीं है ? बड़ी बहन होने के कारण वे उसे आदर की दृष्टि से देखते हैं, यह उनकी भलमनसाहत है। मर्यादा का प्रतिपालन अच्छा ही है। पर दूसरों को उससे अनुचित लाभ उठाना या उसकी चेष्टा करना ठीक नहीं है। वह मूर्खा मुझे अँगुली पर नचाना चाहती है। मैं ऐसा जवाब दूँगी कि फिर कभी सिर ऊँचा न कर सकेगी।' सारांश यह कि चमेली भीतर ही भीतर जल रही थी। पर पति के भय से कुछ कह नहीं सकती थी। उसका विद्वेषानल सहसा भभक उठा। उसकी एक ही लपट ने कनकलता का कोमल हृदय दग्ध कर दिया। वह वास्तविक 'कनकलता' की नाईं मुरझा कर गिर पड़ी। निराधार बालक ज़ोर से चिल्ला उठा।

(४)

पड़ोस में एक बूढ़ी ब्राह्मणी रहती थी। वह बच्चे की चिल्लाहट सुनकर आ गई और घबरा कर बोली—"क्यों, क्या होगया बाई ?"

कनकलता सँभल कर उठ बैठी और कहने लगी—"कुछ नहीं। चक्कर-सा आगया था। अब तबीयत ठीक है।"

बुढ़िया कुछ पूछना ही चाहती थी कि इतने में भीतर से वसन्ती आगई और उसके सिर पर हाथ रख कर बोली—"अम्मा कहती थी कि तुम कुछ काम नहीं करतीं। इसी से फूफी नाराज़ हो गई हैं।"

यह सुनकर बुढ़िया हँसने लगी और बोली—"बेटी तुम भैया के साथ बाहर खेलो। मैं फूफी को मनाये देती हूँ।"

वसन्ती प्रसन्न होकर भैया के साथ बाहर चली गई।

कनकलता ने धीरे धीरे कहा—"नाराज़ क्यों होऊँगी मा, किसी पर नाराज़ होने का मुझे अधिकार ही क्या है ?"

बुढ़िया ने रुककर कहा—"जहाँ चार आदमी रहते हैं, वहाँ ऐसी बातें होती ही रहती हैं। तुम्हें इसका बुरा न मानना चाहिए।"

कनकलता ने शान्त स्वर से कहा—"बुरा मानने का समय ही कहाँ है ? यह तो दिन काटनी है। पर इसे भी मैं अपनी भूल समझती हूँ। मुझे आज इसकी शिक्षा मिल गई और आगे के लिए सावधान होगई।"

बुढ़िया ने आश्वस्त स्वर से कहा—"नन्दू [illegible] तो है। तुम्हें किस बात की चिन्ता है ?"

कनकलता के कमल से नेत्रों से फिर आँसुओं [illegible] झड़ी लग गई। उसने जड़ित कंठ से कहा—"[illegible] तो मेरा पुत्र के ही समान है। पर वह स्त्री [illegible] शृङ्गार, अनन्त रूप का दाता कहाँ है ?"

बुढ़िया के नेत्र डबडबा आये। उसने सान्त्वना[illegible] स्वर से कहा—"बेटी कनकलता, भगवान् इतने नि[illegible] नहीं हैं, जो दीनों को बिलकुल भुला दें। वे ही [illegible] सहायक हैं।

कनकलता के हृदय में साहस का संचार हुआ। [illegible] कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से बुढ़िया की ओर देखकर क[illegible]—"मा, तुम्हारे उपदेश से मेरे हृदय के नेत्र खुल गये। मैं अब उन्हीं अनाथों के नाथ भगवान्, विश्वम्भर की [illegible] जाती हूँ।"

बुढ़िया ने उत्तर दिया—"शान्त होओ। कन[illegible] के आवेग को दबाने की चेष्टा करो। नन्दू के आ[illegible] पर जैसा कहोगी, वैसा करा दूँगी।"

इसके बाद बुढ़िया चली गई। वह चमेली के स्वभा[illegible] को भली भाँति जानती थी। इसी से उसने उससे [illegible] कहना उचित न समझा।

(५)

शाम को नन्दकुमार दौरे से वापस आये। उन्[illegible] आते ही चाय माँगी। चमेली ने प्याला आगे रख दि[illegible]। नन्दकुमार ने दो-तीन चम्मच चाय पीकर प्याला [illegible] दिया और कहा—"इसमें तो शक्कर ही शक्कर [illegible] हुई है। किसने बनाई है ?"

चमेली ने उत्तर दिया—"यहाँ दूसरा कोई [illegible] था। इससे मुझे ही बनानी पड़ी। अभ्यास न होने [illegible] कारण बिगड़ गई होगी।"

नन्दकुमार ने इधर-उधर देखकर कहा—"[illegible] बाई जी कहाँ गई ?"

चमेली ने कर्कश कंठ से उत्तर दिया—"बाई [illegible] रूठ गई हैं। कहती हैं, मैं मशीन की नाईं दिन-रात [illegible] नहीं कर सकती।"

नन्दकुमार ने सिर हिलाकर कहा—"ठीक तो [illegible] [illegible] अवस्था में हम लोगों को उनकी सेवा करनी चाहिए [illegible] कि उलटी उनसे करानी चाहिए।"

चमेली ने पान का बीड़ा हाथ में देकर कहा—"[illegible]जिए। मैं कब मना करती हूँ। न हो सके तो नौकर [illegible] दीजिए।"

नन्दकुमार बोले—"नौकर तो रख लूँ। पर मैं तुम्हें [illegible]कम्मा नहीं बनाना चाहता। काम न करने से आलस्य [illegible]ता है और नाना प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न होती [illegible]। तुमने हमारे बड़े बाबू की स्त्री को तो देखा ही है। [illegible] जीवन से क्या लाभ ?"

चमेली ने सिर झुका कर कहा—"जो कुछ बनता [illegible] करती ही रहती हूँ। जो नहीं बनता है उसे भी [illegible]रना ही पड़ेगा। न करने से कैसे काम चलेगा ?"

नंदकुमार ने चमेली के शुष्क मुख पर प्रेम-पूर्ण दृष्टि [illegible]ाल कर कहा—"इसका अर्थ समझ में नहीं आया।"

चमेली ने उत्तर दिया—"अर्थात् स्त्रियाँ पुरुषों की [illegible]सी हैं। ब्रह्मा ने उन्हें इसीलिए उत्पन्न किया है।"

नन्दकुमार ने मुस्करा कर कहा—"यह दोष, [illegible]ह्मा जी का है। उन्हें क्यों नहीं समझातीं ?"

चमेली के मुख पर हास्य की हलकी रेखा अंकित [illegible]ई। उसने तिरछी चितवन से पति की ओर देखकर [illegible]हा—"ब्रह्मा जी पुरुष हैं। इसी से पुरुषों का पक्ष [illegible]ते हैं।"

नन्दकुमार हँसने लगे। चमेली उठकर अन्दर चली [illegible]ई।

(६)

सुयोग पाकर बूढ़ी मा जी आ धमकीं। उन्होंने [illegible]न्दकुमार को आड़े हाथों लिया। कहने लगीं—"आज-[illegible]ल के लड़के स्त्री का मुख देखते ही मा-बाप को भूल [illegible]ाते हैं।"

नन्दकुमार ने उत्तर दिया—"मा जी ऐसे दुष्टों को [illegible] उत्पन्न ही क्यों करते हैं ?"

बुढ़िया चिढ़कर बोली—"सच कहते हो भैया। [illegible]ोष तो सब हमारा ही है ? तुम ठहरे स्वर्ग के देवता ! [illegible]ाप की छाया तक नहीं छूते।"

नन्दकुमार ने हँसकर कहा—"स्वर्ग के देवता पाप-[illegible]पूर्ण संसार में क्यों आयेंगे ? यह तो हमारे ही भाग्य में बदा है। नरक में स्थान न मिला तब यहाँ चले आये।"

बुढ़िया हँसने लगी और बोली—"और कुछ नहीं, इतना ही कहती हूँ कि ज़रा बहू जी को समझा दीजिए। दुःखिनी का दिल दुखाना अच्छा नहीं होता। दुखिया की आह बुरी होती है।"

नन्दकुमार के नेत्रों में आँसू भर आये। उन्होंने विनीतभाव से कहा—"यह क्या कहती हो माँ जी ? मैं तो उन्हें मा के समान मानता हूँ। संसार में मेरा और बैठा ही कौन है ?

बुढ़िया सन्तुष्ट होकर बोली—"तभी परमात्मा ने तुम्हें माना है।"

नन्दकुमार ने आवेग को रोककर कहा—"सेवा और सहायता की तो बात ही क्या है ? मैं प्राण देकर भी उनसे उऋण नहीं हो सकता।" कहते कहते धर्म-प्राण नन्दकुमार का कंठ रुँध गया।

(७)

बुढ़िया हाथ पकड़ कर नन्दकुमार को कनकलता के पास ले गई। नन्दकुमार ने बहन के पैरों पर गिर कर कहा—"बाई तुम चिन्ता न करो। मैं तुम्हारे लिए मकान किराये पर लिये देता हूँ। मा जी तुम्हारे पास रहकर घर का काम-काज करेंगी और मैं जब तक जीऊँगा, तुम्हारी सेवा करूँगा।"

कनकलता ने नन्दकुमार के सिर पर हाथ फेर कर कहा—"भैया, तुम मेरे और मैं तुम्हारी हूँ। पर मैं अब तुम्हारे सिर पर भार नहीं रखना चाहती। तुम अपने बाल-बच्चों को सँभालो और मुझे भगवान् के भरोसे पर छोड़ो। जो सारे संसार का भरण-पोषण करता है वही मुझ अनाथिनी का बेड़ा पार लगायगा।"

नन्दकुमार ने करुण दृष्टि से बहन की ओर देखकर कहा—"मुझे छोड़कर कहाँ जाओगी बाई ?"

कनकलता ने दृढ़ स्वर से कहा—"जाऊँगी कहाँ भैया ? उसी अपने झोपड़े में रहकर जीवन के शेष दिन बिताऊँगी। यही मेरा सत्य-संकल्प है।"

नन्दकुमार ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से कहा—"हम लोगों को किसके भरोसे छोड़े जाती हो ?"

कनकलता ने वात्सल्यपूर्ण दृष्टि से नन्दकुमार की ओर देखकर कहा—"भैया, भगवान् ने तुम्हें क्षमता

दी है। तुम्हें अब किसी के आश्रय की आवश्यकता नहीं है। तुम तो दूसरों को आश्रय दे सकते हो।'

नन्दकुमार ने ठंडी साँस लेकर कहा—"सो तो ठीक ही है। पर तुम्हारे बिना मुझे संसार सूना दिखलाई देता है।"

कनकलता ने व्यथित हृदय से कहा—"नन्दू, इस समय मेरा चित्त अत्यन्त चंचल हो रहा है। नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प उत्पन्न हो रहे हैं। तुम हठ न करो। घर जाने दो। जब बुलाओगे तब फिर आ जाऊँगी। पास ही तो हूँ। दो घंटे में मैं तुम्हारे पास और तुम मेरे पास आ सकते हो।"

नन्दकुमार चुप हो गये।

(८)

दूसरे दिन सबेरे गद्गद हृदय से गले लगाकर नन्दकुमार ने बहन को विदा किया।

वसन्ती ने पूछा—"कहाँ जाती हो फूफी?"

कनकलता ने उसका मुख चूम कर कहा—"अपने घर जा रही हूँ बेटी। तुम मेरे साथ चलोगी?"

वसन्ती ने आँखें नचाकर कहा—"तुम्हारा घर कहाँ है?"

कनकलता ने ढाढ़स बाँध कर कहा—"जितनी दूर यहाँ से भूतेश्वर का मठ है।"

वसन्ती ने कुछ सोचकर कहा—"तब मैं भी तुम्हारे साथ चलती हूँ।"

कनकलता ने उत्तर दिया—"मैं वहाँ से जल्दी नहीं लौटूँगी। इससे तुम यहीं रहो। जब आऊँगी, तब तुम्हें अपने साथ मेला दिखाने के लिए ले चलूँगी।"

फूफी के साथ छोटे भैया को जाते देख वसन्ती मचल गई। कनकलता ने उसे गोद में लेकर पुचकारा और समझाकर कहा—"भैया तुम्हारे लिए बहुत-सी गुड़ियाँ लायेगा। उसे न जाने दोगी तो नई गुड़ियाँ कहाँ पाओगी?" यह सुनकर वसन्ती शान्त होगई। बूढ़ी मा उसे लेकर अन्दर चली गई।

(९)

नन्दकुमार माता-पिता का सुख नहीं जानते थे। बाल्यकाल से ही वे बहन की गोद में पले थे। इसी से उस पर उनका स्वाभाविक अनुराग था। बहन के भी वे एकमात्र माया-बन्धन थे। उन्होंने उसके हृदय में मा[illegible] की ममता का प्रतिबिम्ब देखा था और वही उनके जी[illegible] का अवलम्ब था। उस एकमात्र सहारे को हाथ से छू[illegible] देख उनका हृदय विचलित हो उठा। दुःख को भुलाने के लिए वे साइकिल उठाकर बाहर चले गये और दो [illegible] लौटकर घर आये। ब्राह्मणी मा की सहायता से [illegible] ने रसोई तैयार कर ली थी। अन्दर आते ही वसन्[illegible] उन्हें भोजन कराने के लिए लिवा ले गई। उसके सा[illegible] मुन्नी भी थाली के पास आ बैठी। ज्यों ही नन्दकुमार ने ग्रास उठाया, त्यों ही वसन्ती कह उठी—"बाबू जी भैया को भी बुला लीजिए। वह खिलौना लिये बा[illegible] खड़ा होगा।"

नन्दकुमार का हृदय ज़ोर से धड़क उठा। [illegible] छूट कर थाली में गिर गया। वे चुपचाप हाथ धोकर [illegible] खड़े हुए।

चमेली ने पूछा—"क्यों क्या होगया?"

नन्दकुमार ने उत्तर दिया—"कुछ नहीं। गरमी के कारण जी मिचला रहा है। थोड़ा ठहर कर भोजन करूँगा।" इतना कहकर वे बाहर चले गये। वसन्ती भी दौड़कर उनके पास जा पहुँची। सुयोग पाकर मुन्नी ने सारा भात सरका कर दाल में मिला दिया और रोटियाँ उठाकर फेंकना शुरू किया। चमेली ने थाली खींच ली।

नन्दकुमार साइकिल पर चढ़कर बाहर जाने लगे। वसन्ती ने पूछा—"बाबू जी, बिना रोटी खाये आप क[illegible] जा रहे हैं।"

नन्दकुमार ने उत्तर दिया—"तुम्हारे भैया को ला[illegible] के लिए जा रहा हूँ। तुम मुन्नी के साथ घर में ही खेलना।"

नन्दकुमार के मनस्ताप को देखकर चमेली कदली पत्र की नाईं काँप उठी। वह बड़ी देर तक बैठी-बैठी अपनी करनी पर पछताती रही।

(१०)

चैत्र का महीना था। कटनी हो रही थी। [illegible] हुए अन्न को लोग खलिहानों में इकट्ठा कर रहे थे। [illegible] कहीं फाग की रसीली तान भी छिड़ रही थी। मधु[illegible] की मधुर ध्वनि नीरस हृदयों को सुधा-रस में सि[illegible] कर रही थी। चरवाहे कटे हुए खेतों में गाय-बैल छो[illegible] [illegible]र सघन वृक्ष के नीचे सुख की नींद ले रहे थे। चारों ओर [illegible]सन्त का अटल साम्राज्य था।

नन्दकुमार तेज़ी से साइकिल दौड़ाते हुए बहन के [illegible]र पहुँचे। छोटा बालक पड़ोसी बालकों के साथ आँगन में खेल रहा था। नन्दकुमार ने साइकिल से उतर कर उसे गोद में ले लिया।

मामा को देखकर श्याम बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने उनकी पीठ पर थपकियाँ देते हुए कहा—"बाबू जी, वसन्ती कहाँ है? उसे साथ क्यों नहीं लाये?"

नन्दकुमार ने उत्तर दिया—"मैं तुम्हें अभी उसके पास लिये चलता हूँ।"

यह सुनकर श्याम के आनन्द का ठिकाना न रहा। वह हर्ष-ध्वनि करता हुआ इधर-उधर दौड़ने लगा। थोड़ी देर में कनकलता भी अन्न का बोझा सिर पर रक्खे हुए आ पहुँची। नन्दकुमार को मर्म्मान्तिक कष्ट हुआ। वे दौड़कर बहन के गले से लिपट गये और छोटे बालक की नाईं रोने लगे। कनकलता का धैर्य्य छूट गया। वह भी भाई को हृदय से लगा कर बड़े ज़ोर से रोने लगी। करुणा के मर्म-वेधक निनाद से दसों दिशायें काँप उठीं।

नन्दकुमार ने प्रकृतिस्थ होकर कहा—"तुम्हारी आज्ञा थी कि जब बुलाओगे तब आ जाऊँगी। बस, उठो और चलने की तैयारी करो।"

कनकलता का हृदय आनन्द से उत्फुल्ल हो उठा। प्रेम के एक ही धक्के ने दुराग्रह के विष-वृक्ष को उखाड़ कर फेंक दिया। अन्न का बोझा पड़ोसिन के आँगन में रखकर उसने घर का दरवाज़ा बन्द कर दिया। नन्दकुमार ने श्याम को आगे बिठलाकर साइकिल छोड़ दी। कनकलता ने धीरे धीरे उनका अनुगमन किया।

चमेली ने दौड़कर ननद के पैर पकड़ लिये। कनकलता ने जैसा कि विवाह के समय किया था एक बार फिर उसे गोद में लेकर आनन्द के आँसू बहाये।

आओ ओ मेरे मधुर प्यार!

लेखिका, श्रीमती सुमित्राकुमारी सिन्हा

कितना छवि-रस भर आज,
शरद-पूनों की राका आई है!
मादकता की सी तरल-हँसी,
अवनी-तल पर लहराई है!
हैं सरोवरों में विहँस रहे,
नव-कुमुद-शारदी लहर लहर!
यह मलयानिल कुछ कानों में,
कह रही आज क्या सिहर सिहर!
नीले-जलनिधि में चिरते से,
उन्मीलित शशि का शुभ विलास।
मैं निरख रही भावुकता वश,
जग उठीं आज गत-विगत-आश!

ज्यों सरित-वक्ष पर रजत-रश्मि,
हों खेल रहीं चापल्य-संग।
त्यों विकल-हृदय के कम्पन से,
हैं होड़ ले रहीं शत-उमंग!
नव तृष्णा का संसार जगा,
भर गई हृदय में अमिट चाह!
है आज असह यह प्रणय-पीर,
बह चला अश्रुओं का प्रवाह!
वसुधा पर फैला है कि तना,
ज्योत्स्ना का यह सागर अपार!
बस, एक बार तो आज निकट,
आओ, ओ मेरे मधुर प्यार!

योरपीय युद्ध का आर्थिक प्रभाव

लेखक, श्रीयुत पी० सी० जैन, एम० ए० ,एम० एस-सी० (लन्दन)

रप में आजकल युद्ध के कारण बड़ी हलचल मची हुई है। किसी भी युद्ध का देशों की औद्योगिक क्रान्ति तथा राष्ट्रीय और सार्वजनिक आय पर बहुत प्रभाव पड़ता है। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि पिछले महायुद्ध से हमारे देश ने यथेष्ठ लाभ उठाया है। अब हमको ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि इस बार इस परिस्थिति से हमको उचित लाभ हो।

वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि

युद्ध के कारण व्याज की दर तथा अन्य वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि हो गई है। यह तो निश्चित है कि किसी भी वस्तु के मूल्य में वृद्धि या न्यूनता उसकी माँग व पूर्ति के साम्य पर निर्भर होती है। यदि माँग अधिक और पूर्ति कम रहे तो मूल्य बढ़ जाता है, क्योंकि पूर्ति के कम होने के कारण हर किसी को वह वस्तु आसानी से प्राप्त हो नहीं सकती। वस्तु प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक होता है कि ज़्यादा मूल्य दिया जाय। इस प्रकार उपभोक्ताओं की प्रतियोगिता से हर वस्तु का मूल्य बढ़ जाता है। परन्तु अगर माँग कम और पूर्ति अधिक रहे तो परिणाम-स्वरूप मूल्य में न्यूनता हो जाती है। व्यापारी यह प्रयत्न करते हैं कि जिस प्रकार भी हो उनकी वस्तु बिक जाय। इसी कारण आपस की प्रतियोगिता से वस्तुओं का मूल्य कम हो जाता है। इस सम्बन्ध में दो और बातें भी जानना आवश्यक है। एक तो यह कि अगर एक बार मूल्य में वृद्धि हो जाती है तो फिर से साम्य प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक होता है कि माँग कम से घट कर पूर्ति के बराबर आ जाय। इस यत्न में यह बहुधा होता है कि माँग पूर्ति से अधिक घट जाय और कारणवश मूल्य पहले की बराबर न होकर नीचे गिर जाय। यानी वस्तु पहले से भी सस्ती हो जाय। दूसरी बात यह है कि मूल्य में वृद्धि हो जाने से पूर्ति और भी बढ़ती है, क्योंकि अच्छे दाम मिलने पर उत्पादक अपनी उत्पत्ति बढ़ा देते हैं। परिणाम यह होता है कि फिर से साम्य प्राप्त करने से पहले माँग और पूर्ति दोनों में परिवर्तन होना आवश्यक होता है। इस क्रिया के पूर्ण होने में समय की आवश्यकता होती है और दीर्घ कालीन होकर ही यह सिद्धान्त सफल तथा दैनिक कार्य में परिवर्तित हो सकता है।

युद्ध के कारण माँग बढ़ जाती है और पूर्ति इतनी शीघ्रता से बढ़ नहीं पाती कि वह माँग को पूरा कर सके, अतएव हर वस्तु पहले की अपेक्षा महँगी हो जाती है। इसके तीन कारण हैं। प्रथम तो युद्ध के लिए लोहे की वस्तुओं की, पेट्रोल की, रसायनिक पदार्थों की तथा अन्य वस्तुओं की बहुत आवश्यकता होती है। इनमें खाद्य-पदार्थों की माँग मुख्यतर होती है। इसके अतिरिक्त "भविष्य में न जाने क्या हो जाय" इस भावना के आधार पर बहुत-सा सामान एकत्र कर लिया जाता है, ताकि आवश्यकता होने पर काम में लाया जा सके। युद्ध में बहुत-सा सामान व्यर्थ में ही नष्ट हो जाता है, इसलिए भी और माल की आवश्यकता होती है।

दूसरे, बहुत-से दूकानदार इस आशा में कि मूल्य और बढ़ेगा, बहुत-सा सामान बिना माँग के ही एकत्र कर लेते हैं। इससे बाज़ार में उस वस्तु की माँग बनावटी प्रकार से बढ़ जाती है, और एक प्रकार की कृत्रिम न्यूनता आने लगती है। तीसरे, युद्ध के कारण बहुत-से देशों में साधारण पदार्थों की उत्पत्ति कम हो जाती है, क्योंकि कुछ मशीनें सम्पूर्ण रूप से ही बन्द हो जाती हैं। जो कारखाने चालू रहते हैं वे कुछ युद्ध-सम्बन्धी माल तैयार करने में लीन रहते हैं। जो देश युद्ध में भाग नहीं लेते, उनके ऊपर इन वस्तुओं की पूर्ति का भार आ पड़ता है। इन्हें बहुत-सी मशीनों तथा मज़दूरों की आवश्यकता होती है जिनका एकदम से प्राप्त होना बहुत ही कठिन हो जाता है; परिणाम-स्वरूप माँग अधिक होने से मूल्य में वृद्धि हो जाती है।

नियन्त्रण की आवश्यकता

युद्ध के कारण पदार्थों के मूल्य में जो वृद्धि होती है उसका दोष दूकानदारों के मत्थे मढ़ा जाता है। कहा जाता है कि ये लोग अपने लाभ के लिए मूल्य बढ़ाते

हैं। इसमें सन्देह नहीं कि मूल्य बढ़ जाने से उपभोक्ताओं तथा निम्नश्रेणी के मज़दूरों की आय पर बहुत भार आ पड़ता है, क्योंकि जिनकी निश्चित आय होती है उनका व्यय तो बढ़ जाता है परन्तु आमदनी नहीं बढ़ती। युद्ध के दिनों में मज़दूरों की आय कुछ अवश्य बढ़ जाती है, परन्तु वस्तुओं का मूल्य उससे कहीं ज़्यादा बढ़ जाता है, अतः उनको कष्ट उठाना पड़ता है। यथार्थ रूप से विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि मूल्य की वृद्धि का वास्तविक कारण पूर्वकथित माँग व पूर्ति है। इसके अतिरिक्त युद्ध के अवसर पर उत्पादन-व्यय बढ़ जाता है। कच्चे माल के दाम बढ़ जाते हैं, साथ ही रेल का किराया, बीमा और व्याज की दर, मज़दूरों की आय इत्यादि बढ़ जाती है। ऐसी परिस्थिति में मूल्य का बढ़ जाना स्वाभाविक ही है। परन्तु यह वृद्धि प्रायः १० से १५ फ़ी सदी तक ही होनी उचित है। यह अवश्यम्भावी है कि यदि व्यापारियों पर कुछ भी दबाव न रक्खा जाय तो वे अनुचित लाभ उठाने का भरसक प्रयत्न करेंगे। परन्तु वृद्धि का कारण उन्हें समझना दूकानदारों के प्रति अन्याय है।

दूकानदार अनुचित लाभ न उठा सकें इसके लिए वस्तुओं का मूल्य निर्धारित करने के लिए मूल्य-नियन्त्रण-बोर्ड हर जगह स्थापित होने चाहिए, क्योंकि यही बोर्ड उत्पादन-व्यय तथा माँग की आवश्यकतानुसार वस्तुओं का मूल्य नियत किया करेंगे। इन बोर्डों के सहायतार्थ केन्द्रों में विशेषज्ञों की एक समिति का भी होना आवश्यक है जो सिद्धान्तरूप से मूल्य तथा नीति के सम्बन्ध के प्रश्नों पर विचार किया करे। बिना इसके स्थापित हुए उक्त बोर्ड पूर्णतया सफल नहीं हो सकते, साथ ही दूकानदारों को अनुचित हानि भी पहुँच जाना सम्भव है।

स्टाक और शेयर

युद्ध का प्रभाव केवल वस्तुओं के मूल्य पर ही नहीं किन्तु सरकारी ऋण-पत्र तथा मिलों के स्टाक व शेयरों पर भी पड़ता है। इतना फ़र्क़ होता है कि हरएक वस्तु का मूल्य बढ़ जाता है, परन्तु कुछ शेयरों का मूल्य युद्ध के कारण बढ़ जाता है, कुछ का घट जाता है। सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि शेयरों का मूल्य अर्थात् पूंजीगत मूल्य व्याज की दर तथा मिलों की वास्तविक आमदनी पर निर्भर है। मान लीजिए कि १००) का एक शेयर है। व्याज की दर २॥) रुपया प्रतिशत है। यदि इस शेयर की वास्तविक आमदनी २॥।) रुपया प्रतिशत हो तो इस शेयर का मूल्य ११०) हो जायगा। यदि वास्तविक आमदनी वही अर्थात् २॥।) प्रतिशत रहे, परन्तु व्याज की दर ५) प्रतिशत हो जाय तो शेयर केवल ५५) का ही रह जायगा। और यदि व्याज की दर बढ़कर ५) प्रतिशत हो जाय, लेकिन साथ साथ वास्तविक आमदनी भी बढ़कर ६) प्रतिशत हो जाय, तो शेयर का मूल्य १२०) हो जायगा।

पीछे कहा जा चुका है कि युद्ध के अवसर पर व्याज की दर बढ़ जाती है। इस कारण उन्हीं शेयरों की क़ीमत बढ़ेगी जिनकी वास्तविक आमदनी व्याज की दर की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से बढ़ सकेगी। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि युद्ध के कारण रासायनिक पदार्थों में, लोहे के कारखानों में तथा कपड़े की मिलों में माँग की वृद्धि होना स्वाभाविक है, इससे इनके शेयरों का मूल्य बढ़ जायगा। भारत की कुछ ऐलुमिनियम, काग़ज़ इत्यादि की मिलों ने योरपीय देशों से मशीनें मँगवाई हैं। अगर युद्ध के कारण ये मशीनें न आ सकेंगी तो इन मिलों के शेयरों के मूल्य के घट जाने की सम्भावना है।

सरकारी ऋण-पत्र की क़ीमत, व्याज की दर तथा द्रव्य-सम्बन्धी नीति और युद्ध में हार या विजय पर निर्भर होती है। यदि किसी देश की जनता को यह विश्वास हो जाय कि उनका देश विजयी नहीं हो सकता तो वहाँ के सरकारी ऋण-पत्र का मूल्य बहुत गिर जायगा।

हमारी औद्योगिक उन्नति

योरपीय युद्ध से हमारी औद्योगिक क्रान्ति पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा। परन्तु लाभ उठाना व न उठाना हम सबके अधीन है। पाश्चात्य देशों की मशीनें आज-कल औद्योगिक कार्य-सम्पादन की अपेक्षा अस्त्र तथा युद्धकला के सम्बन्ध की वस्तुएँ तैयार करने में व्यस्त हैं, इससे हमें औद्योगिक वस्तुओं की पूर्ति करने का तथा अपने कारखानों की उन्नति करने का अच्छा अवसर मिला है। दूसरे, जो वस्तुएँ यहाँ बनती आरही थीं अर्थात् जिनकी मिलें भारत में चालू हैं, अब उनकी माँग अधिक होने से हमारी मिलों को ज़्यादा

नफ़ा होगा। इसके अतिरिक्त नई नई वस्तुओं की आवश्यकता होने के कारण यहाँ भी नये नये कारखाने खुलने की सम्भावना है। तीसरे, युद्ध में वस्तुओं की माँग अधिक होने से यहाँ से अधिकसंख्या में सामान निर्यात होकर उन देशों को पहुँचाया जा सकेगा जो युद्ध में संलग्न हैं। इस प्रकार हमारा व्यापार बढ़ेगा। मूल्य बढ़ जाने के कारण हमारी मिलों की बनी हुई वस्तुओं के उत्तम तथा अधिक दाम मिलेंगे। अब तक जो धनाभाव के कारण हमारी कठिनाइयाँ थीं वे दूर हो जायँगी। हम नई मशीनें और उत्तम मज़दूर काम में ला सकेंगे।

अन्त में यह जानना भी आवश्यक है कि हमारी उन्नति में कुछ जटिल बाधायें भी हैं, जिन्हें दूर करना परम-आवश्यक है। यह ज़रूरी है कि इन मिलों तथा कार... के लिये कल-पुर्ज़ों का, योग्य मज़दूरों का तथा आ... मशीनों का उचित प्रबन्ध किया जाय। इन सब के ... आवश्यकता है धन की। इन कठिनाइयों को बिना ... किये लाभ व उन्नति की आशा नहीं है। इन कठिना... को दूर करने के लिये एक केन्द्रीय कांफ़्रेंस की आवश्य... है, जिसमें पूँजीपति, कारखाने के स्वामी, सरकार ... उपभोक्ताओं के प्रतिनिधि मिल कर इस समस्या पर वि... करें। व्यक्ति—विशेष के कार्य से अधिक लाभ होने ... आशा नहीं है। इस अवसर पर यदि संगठित रूप से ... केन्द्रीय प्रयत्न से कार्य आरम्भ किया जाय तो पूर्ण ... होने की आशा है।

अल्मोड़े की युवती

लेखक, श्रीयुत नरेन्द्र

फैला है बनकर शुभाशीष
नीलाम्बर खुला धुला ऊपर,
हैं चमक रहे नीचे तृण-तरु,
गृह-वन-पर्वत सस्मित भूपर!

उस महाकाश की शोभा है
आभा-निकेत ज्यों उदित सूर्य,
कूर्माञ्चल की निधि अल्मोड़ा,
कूर्माञ्चल का सांस्कृतिक सूर्य!

पर नभ का रवि देता प्रकाश—
उसके शशि को; अल्मोड़े की—
आभा सौभाग्यवती युवती,
वह इंदुमती अल्मोड़े की!

अल्मोड़े की वह इंदुमती
है सहज भाव से खड़ी द्वार,
ज्यों जन्म-सुफल पुलकित-पुष्पित
सामने खड़ा है गुलबहार!

है खिली धूप ज्यों खिला रूप,
सुन्दर सुकुमार शरीर गौर,
घर निखर रहा जैसे यौवन,
हँसती दीवारें, द्वार, पौर!

पहने सफ़ेद कुर्ती, ऊपर से
लाल लाल सादी धोती,
अल्मोड़े की युवती, प्रवाल की
सीपी में मंजुल मोती!

भर गई देह, भर गई माँग,
चोटी लटकी है घुटनों तक,
शोभित गौरा के मस्तक पर
अक्षयसुहाग का लाल तिलक!

शिव के मस्तक पर बालचन्द्र
गिरि-सुता-माथ पर बालारुण;
शाश्वत हो यह सौभाग्य-सूर्य,
शाश्वत, गृह-शोभा ज्योति अरुण!

हमारा प्रधान उपनिवेश
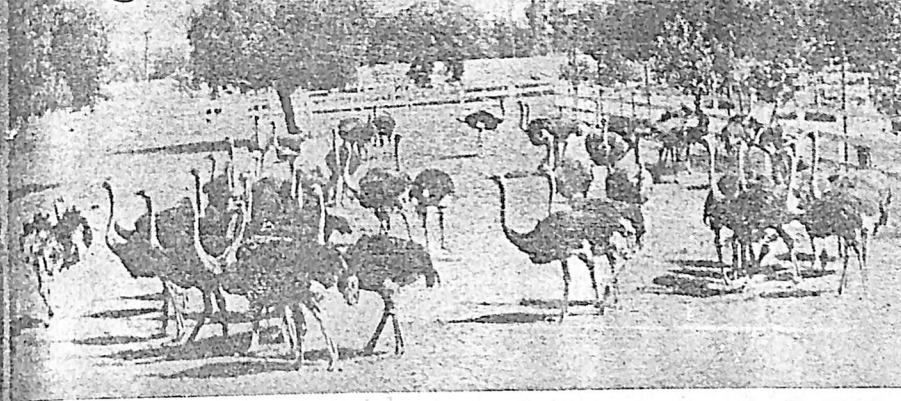
लेखक, श्रीयुत सेठ गोविन्ददास एम० एल० ए०

(५)

पहली उड़ान और हवा-यात्रा के कुछ अनुभव

ता० २६ नवम्बर को ६ बजे सुबह एरोप्लेन से युगांडा की राजधानी कंपाला के लिए ...नगी तय हुई थी। बीच में नैरोबी में कुछ देर ... मुक़ाम कर उसी दिन कंपाला पहुँचना तय किया ...ा था। दार-सलाम से नैरोबी था क़रीब ४०० ...ल, और नैरोबी से कंपाला था क़रीब ४०० मील। ... सफ़र क़रीब ७ घंटे में खतम हो जायगा, यह ...मीद थी। इसके पहले मैंने एरोप्लेन से कोई ...ा न की थी। अतः २५ की रात से ही कुछ ... उत्कण्ठा और कुछ झिझक से मन भरा हुआ था। ... दिन रात को अच्छी तरह नींद न आई और ४ ...े से ही उठ कर नहा-धो कपड़े पहन ऐरोड्रोम जाने के ...ए हम लोग ५ बजे तैयार हो गये। सेठ मथुरादास भी ... पहुँचाने के लिए तैयार हो चुके थे। ठीक ६ बजे ... लोग ऐरोड्रोम पहुँच गये।

ऐरोप्लेन और पाइलेट ऐरोड्रोम में पहले से तयार ...। हमारा सामान ऐरोप्लेन में लादा गया और फिर ...मीचन्द तथा मैं ऐरोप्लेन में बैठे। उत्साह और साथ ...साथ एक विचित्र प्रकार की झिझक से मेरा हृदय धड़क रहा था। जिस सीट पर हमलोग बैठे थे वह दो ही आदमियों की सीट थी। हमारे पीछे था सामान और हमारे आगे थी पाइलेट की सीट। हमारे बैठते ही पाइलेट ने सामने का पंखा घुमाकर प्लेन के इंजिन को स्टार्ट किया और इंजिन के स्टार्ट होते ही वह अपनी सीट पर आ बैठा। ऊपर से प्लेन टप से ढँका हुआ था और दोनों तरफ़ काँच की खिड़कियाँ थीं। खिड़कियाँ बन्द कर दी गई और ऐरोप्लेन रवाना हुआ। ज़मीन से वह थोड़ा ही उठा था कि उसकी एक दरख़्त से टक्कर हो गई। कोई बड़ा 'एक्सीडेंट' न था। इस टक्कर से सिर्फ़ उसका सामने का पंखा दरार खा गया तो भी पाइलेट मशीन को ठहरने की जगह पर लौटा ले गया। उसने कहा—"इतने वर्षों की उड़ान में मेरा यह पहला एक्सीडेंट है। यद्यपि मैं इस हालत में भी जा सकता हूँ, तथापि जाना मुनासिब न होगा। या तो १० बजे दूसरी मशीन आनेवाली है उसमें चलेंगे या इसी का पंखा बदलकर कुछ घंटों के बाद इसी में रवाना होंगे।"

'प्रथमे ग्रासे मक्षिका पातः' हुआ। इस घटना ने उस समय तो सारे उत्साह पर पानी-सा डाल दिया। कोई उपाय न देख हम लोग असबाब वहीं छोड़कर घर लौटे। पाइलेट ने कह दिया था कि ज्योंही प्लेन तैयार हुआ, त्योंही

वह हमें लेने मथुरादास के यहाँ आ जायगा। ८ बजे ही पाइलेट वहाँ पहुँच गया। उसने कहा प्लेन का पंखा बदल दिया गया है और वह उड़ने को तैयार है। झटपट फिर हमलोग ऐरोड्रोम पर पहुँचे। ऐरोप्लेन ने ठीक ८॥ बजे ऐरोड्रोम छोड़ दिया।

जब पहले-पहल ऐरोप्लेन ने ज़मीन छोड़कर आकाश में उड़ना शुरू किया उस समय ऐसा मालूम हुआ, मानो पैरों के नीचे से पृथ्वी छूटकर नीचे जा रही है और शरीर ही ऊपर उड़ रहा है। दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था। विमान प्रचण्ड शब्द करता हुआ चक्कर खाकर दरख़्तों और मकानों के ऊपर से तेज़ी के साथ ऊपर को उठ रहा था। कुछ ही क्षणों में हम लोग क़रीब दो हज़ार फ़ुट ऊपर हो गये। ऐरोप्लेन सीधा उड़ने लगा। न किसी तरह की हलचल थी, न यही मालूम होता था कि वह चल रहा है, पर उस समय उसकी गति थी १०० मील प्रति-घंटा। नीचे की सरकती हुई पृथ्वी से यह जान पड़ता था कि पृथ्वी चल रही है, ऐरोप्लेन नहीं। जब हम लोग दारसलाम नगर के ऊपर से उड़ रहे थे उस समय सारा दारसलाम नगर एक अजीब-सी चीज़ दिखाई दिया। उसके मकान खिलौने-से देख पड़े और उसकी सड़कें ४ अंगुल चौड़ी निवाड़ की पट्टियों के समान। सड़कों पर मोटरें और आदमी ऐसे दिखे जैसे चाबी भरे हुए टीन के खिलौने दौड़ते और चलते-फिरते हैं। थोड़ी ही देर में हम लोग ज़मीन से क़रीब ५ हज़ार फ़ुट ऊपर हो गये। ऊपर से दरख़्त छोटे छोटे गुलदस्ते से दिखते थे और पहाड़ों की चोटियाँ दिखती थीं मिट्टी के बड़े बड़े ढेलों के समान। तालाब दिखते थे पानी से भरे हुए प्याले और नदियाँ दिखती थीं पानी से भरी हुई नालियों के समान। जंगलों में मुहेलियों के दूर दूर पर बने हुए केलों के दरख़्तों से घिरे हुए झोंपड़े विमान पर से एक दूसरे के बड़े नज़दीक दिखाई दिये। उन झोंपड़ों के केलों के वृक्षों के बीच में होने से जान पड़ता था मानो हरे-हरे पत्तों के गुलदस्तों में कोई बड़ा-सा भूरा फूल लगाया गया हो? इन झोंपड़ों के आसपास की ज़मीन पर भूरी भेंड़ों और काली बकरियों के झुंड के झुंड चरते थे। दूर से ये झुंड भूरी और काली घटाओं से दिखते थे। ऐरोप्लेन की आवाज़ सुन जब ये भेड़-बकरियाँ इधर-उधर भागती थीं तब ऐसा मालूम होता था कि हवा इन घटाओं को छिन्न-भिन्न कर उड़ा रही है। पहाड़ों, जंगलों, नदियों और सरोवरों को पार करता हुआ विमान तेज़ी से आगे बढ़ा जा रहा था। और सब चीज़ें दौड़ती हुई पीछे को चली जा रही थीं।

विमान जब ऊँचे ऊँचे पहाड़ों की चोटियों के बीच की दरारों के ऊपर होकर उड़ता था उस समय वे दरारें और उन पर उगे हुए वृक्ष-समूह देखते ही बनते थे; और जब पहाड़ों को पार कर वह हरे-हरे मैदानों पर उड़ता था उस समय जान पड़ता था कि वह मीलों लम्बे-चौड़े हरे मखमली फ़र्श पर से उड़ रहा है। उन मैदानों की पगडंडियाँ उस मखमली फ़र्श पर ज़रदोज़ी के जालदार काम के बूटे दिखाई देती थीं। जब कभी खिड़की का थोड़ा-सा हिस्सा पाइलेट खोलता था तब मालूम होता था कि हवा में कितनी अधिक तेज़ी है।

थोड़ी देर बाद हमें बादल मिलने शुरू हुए। बादलों के बीच से उन्हें चीरता हुआ ऐरोप्लेन जाने लगा। जैसे जैसे हम आगे बढ़ने लगे वैसे-वैसे बादल घने होने लगे। कभी कभी तो धुन्ध के सिवा बादलों के बीच में पड़ कर चारों ओर हमें कुछ दिखाई ही न देता था। जब बादलों ने बहुत तंग करना शुरू किया तब तो पाइलेट ने मशीन को और ऊपर उड़ाया। थोड़ी ही देर में हम बादलों को पारकर क़रीब १० हज़ार फ़ुट उठ कर बादलों के ऊपर उड़ने लगे। वह दृश्य दर्शनीय था। हमारे ऊपर नीले आकाश में सूर्य चमक रहा था और हमारे नीचे अगणित बादलों के छोटे-बड़े टुकड़े दौड़ रहे थे। इन बादलों के टुकड़ों के बीच बीच में कभी कभी पृथ्वी दिखाई दे जाती थी। बादल के टुकड़े सूर्य की किरणों में चमक रहे थे। कभी कभी उन में बिजली भी चमक जाती थी। नीचे से ऊपर की तरफ़ तो बिजली चमकते सदा देखी थी परन्तु अपने नीचे बिजली की चमक देखने का यह पहला मौक़ा था। कुछ दूर और आगे बढ़ने पर वर्षा आरम्भ हुई परन्तु यह वर्षा हमारे ऊपर न होकर हमारे नीचे हो रही थी। बीच बीच में जब ज़मीन का थोड़ा-सा हिस्सा दिखाई देता था तब उस हिस्से पर वे बादल पानी बरसाते हुए दिखाई देते थे। दारसलाम से नैरोबी तक ४०० मील का सफ़र

हमने ३॥ घंटे में ख़तम किया। पहली उड़ान होने पर भी हमलोगों को कोई ख़ास बात न मालूम हुई। लक्ष्मीचन्द तो क़रीब एक घंटे ऐरोप्लेन में सो भी लिए। नैरोबी के ऐरोड्रोम की ओर जब विमान ने उतरना शुरू किया तब मुझे महाकवि कालिदास के अभिज्ञान शकुन्तला के एक श्लोक की सत्यता का पूर्ण अनुभव हो गया।

दारसलाम वालों ने नैरेबी को तार दे दिया था। ऐरोड्रोम पर नैरोबी के इन्डियन एसोसियेशन के सभापति मिस्टर ठाकुर, कीनिया की लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य आनरेबिल डाक्टर डि० सौज़ा और आनरेबिल मिस्टर ईश्वरदास, डाक्टर पटवर्धन आदि अनेक सज्जन मुझे लेने के लिए आ गये थे। यद्यपि नैरोबी का प्रोग्राम कंपाला से लौटने पर रखा गया था, तो भी एक दिन के लिए वहाँ ठहरने का ही तय हुआ था। उस दिन नैरोबी में आराम करने तथा कुछ लोगों से मिलने के सिवा कोई काम नहीं हुआ। दूसरे दिन सवेरे ९ बजे हम लोग कंपाला के लिए रवाना हो गये।

दूसरे दिन तो मुझे ऐसा जान पड़ा जैसे मैं वर्षों से उड़ता रहा होऊँ। वह झिझक, हृदय की वह धड़कन जिसका अनुभव पहले दिन हुआ था, कुछ भी मौजूद न थी।

ऐरोप्लेन नैरोबी की परिक्रमा करता हुआ उसे भी एक छोटा सा खिलौना सिद्ध कर आगे बढ़ा। आज विशेष बादल नहीं थे अतः पृथ्वी की चीज़ें कुछ अधिक स्पष्ट दिखाई दे रही थीं। कुछ ही देर में हम लोग विक्टोरिया झील पार करने लगे। जो ऊपर से समुद्र के समान दिखाई दी। मैंने पाइलेट से पूछा—"क्या हमलोग समुद्र के ऊपर उड़ रहे हैं।"

पाइलेट ने उत्तर दिया—"नहीं, यह विक्टोरिया झील है, जिसका नम्बर संसार की सब से बड़ी झीलों में सिर्फ़ दूसरा है।"

झील के बीच के छोटे छोटे टापू ऐसे जान पड़े, मानो उस झील में कमल के पत्ते उगे हों। कहीं कहीं उन टापुओं पर छोटे छोटे टीले थे। जब कभी बादल के सफ़ेद टुकड़े उन टीलों पर पहुँच जाते थे तब ऐसा जान पड़ता था मानों उन कमल पत्रों में श्वेत कमल के पुष्प खिल गये हों। थोड़ी ही देर में हमलोग नाइल के उद्‌गम-स्थान पर पहुँच गये।

ऊपर से नाइल का उद्‌गम-स्थान एक छोटा-सा पहाड़ी झरना दिखाई दिया।

हमलोगों का ध्यान तो उस ओर आकृष्ट भी नहीं हुआ, पर पाइलेट बोला—"यही उस नाइल नदी का उद्‌गम स्थान है जो हज़ार मील चलकर अफ़्रीका के अनेक देशों और संसार के प्राचीनतम देश ईजिप्ट को हरा-भरा कर मेडिटेरियन समुद्र में गिरती है। आगे चल कर यह नाइल इतनी गहरी और चौड़ी हो जाती है कि बड़े से बड़े जहाज़ इसमें चलते और बड़े से बड़े समुद्री वायु-यान इसमें उतरते हैं।

अफ़्रीका की इस पवित्र गंगा को प्रणाम कर हम आगे बढ़े।

क़रीब ४०० मील का सफ़र ३ घंटे में ख़तम कर क़रीब बारह बजे हमारा विमान कंपाला के ऐरोड्रोम में उतरा। उस समय बड़ी ज़ोर की वर्षा हो रही थी, पर इतने पर भी कंपाला के सैकड़ों निवासी मुझे लेने के लिए ऐरोड्रोम पर मौजूद थे। इनमें मुख्य थे इंडियन मर्चेन्ट चेम्बर के सभापति मिस्टर हरगोविन्द युगाण्डा, लेजिस्लेटिव कौंसिल के मेम्बर, आनरेबिल डाक्टर पटेल, कंपाला जनरल एजेंसी के डायरेक्टर मिस्टर एस० बी० पटेल इत्यादि।

हमारे ठहरने की व्यवस्था मिस्टर एस० बी० पटेल के यहाँ हुई थी। पाइलेट को १ दिसम्बर के प्रातःकाल चलने के लिए कहकर तथा वहाँ उपस्थित सब भाइयों से मिलकर मैं लक्ष्मीचन्द के साथ मिस्टर पटेल के यहाँ रवाना हुआ। मिस्टर पटेल का बंगला सुन्दर था। मिसेज़ पटेल हमारे साथ ही हिन्दुस्तान से टायरिया में आई थीं। उस समय हम नहीं जानते थे कि युगाण्डा में हम उनके मेहमान होंगे।

मिसेज़ पटेल की छोटी लड़की जया हमें कभी विस्मृत न होगी। सारे बँगले का वह जीवन थी।

युगाण्डा में चार दिन

कंपाला युगाण्डा की राजधानी है। छोटा-सा शहर। आबादी कुल छः हज़ार, पर सारी आधुनिक सुविधायें मौजूद। बिजली की रोशनी, नल, पोस्ट और टेलीग्राफ़ आफ़िस, वायरलेस स्टेशन, बड़े बड़े तीन बैंक, होटल, रेलवे-स्टेशन, ऐरोड्रोम सभी कुछ। कंपाला रोम के समान ७ पहाड़ियों

पर वसा हुआ है। हर पहाड़ी का अलग अलग नाम है। प्राकृतिक सौन्दर्य में अव तक देखे हुए पूर्व-अफ़्रीका के सभी नगरों से इसको मैंने श्रेष्ठ पाया। सड़कों और मकानों को छोड़ कर यहाँ की एक अंगुल भी ज़मीन ऐसी न दिखी जो हरी-हरी घास या वृक्षों से आच्छादित न हो। मीलों लम्वे हरे-हरे मैदान कैसे सुन्दर दिखते हैं। वृक्षों से आच्छादित पहाड़ियाँ इन मैदानों को एक नई सुखमा देती हैं। हर एक मकान एक छोटे-से नज़र वाग़ के साथ हैं और विशेषता यह है कि इन नज़रवाग़ों को ठीक दशा में रखने के लिए कोई खर्च नहीं। कभी वग़ीचे में न खाद दी जाती है और न सिचाई होती है। ज़मीन ही इतनी उपजाऊ है कि वृक्षों को लगा भर देने की आवश्यकता है, फिर वे आप से आप पनपते रहते हैं। पानी थोड़ा थोड़ा वर्ष भर वरसता रहता ही है, इस लिए सिचाई का सवाल ही नहीं उठता।

मेरे दौरे के कारण उत्साह यहाँ सवसे अधिक था। दुर्भाग्य की वात यही थी कि इण्डियन मर्चेंट चेम्वर और इण्डियन एसोसियेशन के कार्यकर्ताओं में कुछ अच्छा सम्बन्ध न था। यद्यपि मुझे निमन्त्रित किया था इण्डियन मर्चेण्ट चेम्वर ने, तो भी मेरे स्वागत में इण्डियन एसोसियेशन के पदाधिकारी भी शामिल थे। मिस्टर पटेल के यहाँ मेरे पहुँचते ही युगाण्डा का कार्यक्रम निश्चित होने लगा। सार्वजनिक सभा मर्चेंट चेम्वर की ओर से वुलाई जाय या इण्डियन एसोसियेशन की तरफ़ से, यह एक वड़ा भारी सवाल समझा गया। मर्चेंट चेम्वर के कार्यकर्ता मुझे निमन्त्रण भेजने के कारण समझते थे कि यह उनका हक़ है और इण्डियन एसोसियेशन के राजनैतिक संस्था होने के कारण उसके कार्यकर्ता समझते थे कि यह उनका अधिकार है। बड़ा वाद-विवाद हुआ, वड़ी दलीलें पेश की गईं। अपने अपने समर्थन में दोनों दलों ने बड़े बड़े दृष्टान्त दिये। चाय के छोटे से प्याले में वड़ा तूफ़ान उठा। कुछ लोगों ने यह तजवीज़ पेश की कि दोनों की ओर से सभा वुलाई जाय। मर्चेंट चेम्वर के कार्यकर्ता इस पर [illegible] हो गये, पर इण्डियन एसोसियेशन के नहीं। इस [illegible] मर्चेंट चेम्बर की जीत हो गई और सभा को मर्चेंट चेम्वर की ओर से ही वुलाया जाना तय हुआ। जो झुकता है उसकी [illegible] हो ही जाती है।

लंच से निपटते ही हम लोगों ने जहाँ युगाण्डा के गवर्नर रहते थे, उस एण्टेवी को जाने का निश्चय किया। हम लोग मोटरों पर रवाना हुए। चार मोटरों में [illegible] के सभी लोग मेरे साथ गये। कंपाला के लोगों ने [illegible] वहाँ रहते हुए अपना सारा काम-काज वन्द कर देने का निश्चय कर लिया था, अतः उन्हें मेरे साथ रहने के अतिरिक्त कोई काम ही न था। जो लोग लगातार मेरे साथ रहे उनमें मिस्टर सोमा भाई पटेल, नारायणदास राजाराम फ़र्म के मैनेजर मिस्टर शाह, वृद्ध [illegible] मिस्टर अमील, युगाण्डा-कौंसिल के सदस्य आनरेबुल डाक्टर एम० एम० पटेल और मर्चेंट-एसोसियेशन के पदाधिकारी आदि थे। एण्टेवी विक्टोरिया झील के किनारे पर है। इने-गिने अफ़सरों के वँगले और गवर्नर की कोठी ही एण्टेवी नगर है। एक तरफ़ रोज़ की आवश्यकता की चीज़ों की इनी-गिनी दुकानें हैं। एण्टेवी की आवादी [illegible] नाई से चार-पाँच सौ होगी। कैसा सुन्दर प्राकृतिक [illegible] भरा दृश्य है और उसे विक्टोरिया झील ने कितना सुन्दर वना दिया है! एण्टेवी की एक भी सड़क पर हमें [illegible] के नाम तिनका भी न दिखा। इसी प्रकार वहाँ के [illegible] भी मकान या वँगले में कूड़े-कर्कट का नामोनिशान न मिला। एण्टेवी की सैर कर हमलोग शाम को कंपाला लौटे और उसी दिन कंपाला भी घूम डाला। कंपाला की [illegible] सातों पहाड़ियों पर मोटरों ने चढ़-उतर कर थोड़ी ही [illegible] में हमें सारा नगर दिखा दिया। कंपाला का सौंदर्य [illegible] वहुत समय तक याद रहेगा।

दूसरे दिन प्रातःकाल सार्वजनिक सभा थी। [illegible] इतवार था, इसलिए सभा किसी समय भी हो सकती थी। फिर मुझ पर तो वहाँ के लोगों की कुछ ऐसी कृपा थी [illegible] उन्हें यदि वारह वजे रात को भी वुलाया जाता तो [illegible] जाते। सभा का समय था १० वजे, पर दो घंटे पहले से ही थियेटरहाल में तिल रखने को जगह न थी। सभा मर्चेंट चेम्वर की ओर से वुलाई गई थी, पर इण्डियन एसोसियेशन के सभापति, मन्त्री तथा सभी पदाधिकारी सभा में मौजूद थे। मर्चेंट-चेम्वर के सभापति ने सभा का आरम्भ किया और मेरे भाषण के वाद इण्डियन एसोसियेशन के सभापति ने मुझे धन्यवाद दे कर सभा को समाप्त किया। चूंकि मुझे युगाण्डा में मर्चेंट-चेम्वर ने निमन्त्रित किया था, इसलिए मैंने आज के भाषण में राजनैतिक चर्चा कम और व्यापारिक चर्चा अधिक की। इतने दिनों की अफ़्रीका की यात्रा के कारण में वहाँ की व्यापारिक स्थिति से वहुत कुछ परिचित हो चुका था। जो कुछ मैंने वहाँ देखा था उससे मेरा यह निश्चित मत हो गया था कि यदि अफ़्रीका-प्रवासी भारतवासी अपनी पद्धति न वदलेंगे तो थोड़े समय के वाद उनका वहाँ कोई स्थान न रह जायगा। वात यह है कि इस समय पूर्व-अफ़्रीका के व्यापारी या तो छोटी छोटी दूकानें खोले हुए वनी-वनाई चीज़ें वाहर के देशों से, विशेष कर जापान से, मँगा कर वेचते हैं या युगाण्डा में जिन-फ़ैक्टरियाँ चलाकर वहाँ की रुई वाहर के देशों विशेष कर भारत को, भेजते हैं। जितनी जिन-फ़ैक्टरियों की युगाण्डा में ज़रूरत है उससे कहीं अधिक वहाँ स्थापित हो चुकी हैं, इसलिए जव तक सव फ़ैक्टरियों का काम्बीनेशन न हो तव तक कोई कुछ कमा नहीं सकता। छोटी छोटी दूकानें इतनी अधिक हो गई हैं कि दूकानदारों में आपस में वड़ी स्पर्धा है। फिर अव वहाँ के मूल-निवासी भी आगे वढ़ रहे हैं। वे भी इस प्रकार की दूकानें खोल रहे हैं। उनका रहन-सहन तथा दूकानें चलाने का खर्च हिन्दुस्तानियों से वहुत कम है, अतः उनके सामने इन छोटे कामों में हिन्दुस्तानी नहीं टिक सकते। पूर्व-अफ़्रीका में हिन्दुस्तानी व्यापारियों का सारा व्यापार व्यक्तिगत व्यापार है या २-४-६ आदमियों ने प्राइवेट लिमिटेड कम्पनियाँ स्थापित की हैं। कोई वड़े वड़े उद्योग-धंधे नहीं हैं। सभी ज़रूरत की चीजें वाहर से आती हैं और कच्चा माल वाहर भेज दिया जाता है। वड़े वड़े उद्योग-धंधों के लिए क्षेत्र होते हुए भी उस ओर भारतीयों का ध्यान ही नहीं गया है। मैंने उन्हें इस व्यक्तिगत व्यापार के स्थान पर सामूहिक ढंग से वड़ी-वड़ी पब्लिक लिमिटेड कम्पनियाँ स्थापित कर नये नये उद्योग-धंधों की ओर वढ़ने की सलाह दी। दूसरे ही दिन वहाँ के व्यापारियों का एक डेपुटेशन मुझ से मिला, जिससे मुझे मालूम हुआ कि उन्हें मेरी सलाह पसन्द आई। युगाण्डा में भारतीय व्यापारियों की आर्थिक दशा वहुत अच्छी है, अतः सम्भव है कि वहाँ इस सम्बन्ध में कुछ हो।

वहाँ की कपास के व्यापार के सम्बन्ध में एक खास झगड़ा और मेरे सामने आया वह था जिनवालों और मिडिलमैनों का झगड़ा। जिंजा से मिडिलमैन एसोसियेशन लिमिटेड के मन्त्री मिस्टर ओझा तथा उसके अन्य पदाधिकारियों ने इस झगड़े को मेरे सामने रखा। दो दिनों के वहस-मुवाहिसे के वाद यह प्रस्ताव हुआ कि जिनवाले और मिडिल मैन दोनों के प्रतिनिधियों की एक सम्मिलित कमेटी वनाई जाय, जो इस झगड़े के सारे पहलुओं पर विचार कर इसे निपटाने का प्रयत्न करे। जिनवालों में एक प्रधान जिनर मिस्टर एस० वी० पटेल ने इस प्रस्ताव को स्वीकृत कर लिया है। आशा तो है कि यह कमेटी वन जायगी, पर विषय इतना सरल नहीं है कि जल्दी से निपट सके। हालाँकि व्यापारियों की एकता की दृष्टि से इसका किसी प्रकार भी निपट जाना नितान्त आवश्यक है।

२८ वीं को हमने वहाँ की संस्थायें देखीं जिनमें हिन्दुस्तानी क्लव, हाईस्कूल और विद्यालय मुख्य थे। कंपाला इतना छोटा शहर होते हुए भी हाईस्कूल में विद्यार्थियों की संख्या क़रीव ६०० थी। लड़के और लड़कियाँ इकट्ठे ही पढ़ते हैं। प्रिंसिपल थे मिस्टर गुप्ता एक वंगाली और हेड मिस्ट्रेस थीं उनकी पत्नी मिसेज़ गुप्ता। स्कूल का स्थल प्राकृतिक सौन्दर्य से ओत-प्रोत था। विद्यार्थियों के खेल-कूद का भी वड़ा अच्छा प्रवन्ध था।

कंपाला में एक दिन डिनर और एक दिन टी-पार्टी का इन्तज़ाम किया गया था। मैं एक पूरा दिन जिंजा को देना चाहता था, जो युगाण्डा का एक दूसरा प्रधान स्थान है, इसलिए मैंने कंपाला के लोगों को वहुत समझाया कि वे डिनर और पार्टी में से किसी भी एक को स्थगित कर दें, पर वे कव माननेवाले थे। २९ नवम्वर को डिनर था। उसी दिन मैंने ईस्ट आफ़्रिका स्टेंडर्ड में एक विचित्र विज्ञापन पढ़ा। यह विज्ञापन था उस डिनर के सम्वन्ध में जो नैरोवी में मुझे दिया जानेवाला था।

इस विज्ञापन को पढ़कर मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने कंपाला के कार्यकर्त्ताओं से पूछा कि क्या कंपाला का डिनर और टी-पार्टी भी इसी तरह टिकट वेचकर दी जानेवाली हैं। मेरे आश्चर्य पर उन्हें उल्टा आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा कि सार्वजनिक पार्टियाँ सारे अफ़्रीका में इसी तरह दी जाती हैं। जव मैंने उनसे पूछा कि क्या ये टिकट विक

जाते हैं। तब उन्होंने कंपाला के डिनर और टी-पार्टी का ही उदाहरण मेरे सामने रख दिया। कंपाला के हॉल में सिर्फ़ ३०० आदमी बैठ सकते थे। पर टिकटों के लिए दरख़ास्तें थीं क़रीब १०००। टी-पार्टी का भी यही हाल था। टिकट बेचकर सार्वजनिक पार्टियाँ देने का यह ढंग मुझे बहुत पसन्द आया। जिनकी इच्छा पार्टी में शामिल होने की होती है वे ख़ुद टिकट ख़रीद लेते हैं। अमुक को कार्ड पहुँचा और अमुक को नहीं, यह बुराई-भलाई किसी के सिर नहीं रहती। जिनकी दरख़ास्तें पहले आती हैं उन्हें पहले टिकट दे दिया जाता है। पीछे से दरख़ास्त देनेवालों के मन में कोई बुराई भी नहीं रहती, क्योंकि वे जानते हैं कि टिकट न मिलने में दोष उन्हीं का है। यदि अधिक दरख़ास्तें इकट्ठी आ जाती हैं तो नामों का निर्णय चिट्ठी डालकर बैलेट से कर दिया जाता है। ख़र्च की भी कोई कमी नहीं रहती। न किसी एक के सिर कोई बोझ पड़ता है और न चन्दा माँगने की झंझट होती है। यदि इन्तज़ाम में कमी होती है तो उसकी बुराई भी किसी एक के सिर नहीं आती। हिन्दुस्तान में भी सार्वजनिक पार्टियों के लिए यदि यही तरीक़ा काम में लाया जाय तो बड़ा अच्छा हो।

२९ को डिनर हो गया। डिनर में हिन्दू-मुसलमान सभी जातियों के लोग थे। क़रीब ३०० मेहमान थे। खाना हिन्दुस्तानी था और परोसा गया था टेबिलों पर अँगरेज़ी ढंग से। डिनर के बाद भाषण भी हुए जिनका मुझे उचित उत्तर देना पड़ा।

३० को शाम को टी-पार्टी थी। आज ही दोपहर को सेठ नानजी कालीदास का शकर का कारख़ाना और गन्ने की खेती देखने जाना था और आज ही रात के जिजा में सार्वजनिक सभा और डिनर था। एक बजे हम लोग नानजी सेठ के शक्कर के कारख़ाने को उनके ज्येष्ठ पुत्र के साथ रवाना हुए; क्योंकि नानजी सेठ हिन्दुस्तान में थे। यह कारख़ाना था लुगाज़ी में। पहले हमें फ़र्लांगों लम्बी गन्ने की खेती मिली सारा दृश्य गन्ने के पौधों से हरा भरा था। पौधे बड़े ऊँचे और पुष्ट थे। मालूम हुआ कि वर्ष भर वर्षा होती रहने के कारण यहाँ की ऊख की खेती को आबपाशी की ज़रूरत ही नहीं है। खेती देखकर हम लोगों ने कारख़ाना देखा। कारख़ाने में कोई ख़ास बात नहीं थी। ख़ास बात थी खेती। कारख़ाने के लिए [illegible] गन्ना नानजी सेठ ख़ुद अपनी खेती से पैदा करते हैं। [illegible] का विस्तार क़रीब १,००,००० एकड़ भूमि में था।

ठीक पाँच बजे हम लोग लुगाजी से वापस कंपाला पहुँच गये। और सीधे टी-पार्टी को चले। आज [illegible] पार्टी में कई योरपीय और हब्शी भी थे। अब मुझे मालूम हुआ कि कंपालावाले डिनर और टी-पार्टी दोनों क्यों रखना चाहते थे। डिनर में सिर्फ़ हिन्दुस्तानी थे और पार्टी में सभी वर्गों के लोग थे। पार्टी के बाद भाषण हुए। आज मैं अँगरेज़ी में बोला, क्योंकि पार्टी में कई योरपीय और हब्शी नेता थे और दोनों ही हिन्दुस्तानी नहीं जानते थे। मैं अपने भाषण में एक ग़लती कर ही गया। मैंने कहा— पूर्वीय अफ़्रीका के व्यापारिक विकास के लिए हिन्दुस्तानी और योरपीयों के आपसी सहयोग की आवश्यकता है। मेरे बैठते ही आनरेबिल डाक्टर पटेल ने मुझे चुपके से कहा कि इस सहयोग में मुझे हब्शियों का ज़िक्र भी करना था। मैंने फिर उठकर सुहेलियों के सहयोग की भी आवश्यकता बतलाई। उस समय उस पार्टी में उपस्थित सुहेलियों की प्रसन्नता देखने योग्य थी। उन्होंने टेबिलें पीट पीट कर अपनी ख़ुशी ज़ाहिर की। दलित जातियों को उनकी आवश्यकता का सन्देश कितना प्रिय होता है! इस टी-पार्टी में मुझे वहाँ के एक मुस्लिम व्यापारी मिस्टर सुल्तान ने चाँदी का एक टी-सेट भेंट में दिया। कई जगह ऐसी भेंटें देने की बात चली थी। उन्हें तो मैंने अस्वीकृत कर दिया था, पर मिस्टर सुलतान की वह प्रेम-भेंट मैं अस्वीकृत न कर सका।

टी-पार्टी समाप्त होते ही हम लोग जिजा के लिए चल पड़े। जिजा की आबादी कठिनाई से क़रीब एक हज़ार होगी। इतने पर भी वह कितना सुन्दर नगर था। बड़े बड़े मकान साफ़-सुथरी सड़कें, पोस्ट आफ़िस, टेलीग्राफ़ आफ़िस, ऐरोड्रोम, तीन-तीन बैंक और कई होटल। इतने छोटे-से नगर में इतने आधुनिक सुविधायें कहाँ मिलेंगी? डिनर का सारा प्रबन्ध हो चुका था। डिनर के बाद सार्वजनिक सभा थी। डिनर में क़रीब १०० मेहमान थे। देर हो जाने के कारण डिनर के बाद के भाषण न हुए और जल्दी से हम लोग सभा में पहुँच गये। अर्द्धरात्रि बीतते बीतते वहाँ का कार्यक्रम निपटा। दूसरे दिन प्रातःकाल ५½ बजे जिजा से २ मील दूर सेठ विट्ठलदास हरिदास कम्पनी के शक्कर के कारख़ाने और खेती को देखने का कार्यक्रम था। इसके बाद नाइल के उद्गम-स्थान के दर्शन कर कंपाला पहुँच नैरोबी के लिए रवाना होना था। परन्तु आज दिन भर का कार्यक्रम इतना भारी हो गया कि प्रातः-काल इतने शीघ्र जाने की इच्छा न थी। सेठ विट्ठलदास हरिदास कम्पनी के मैनेजिंग डाइरेक्टर सेठ मूल जी भाई से मैंने क्षमा-याचना के लिए बड़ी अनुनय-विनय की, पर वे कब माननेवाले थे; आख़िर मैंने बिना कपड़े उतारे ही सोने का निश्चय किया। एक बजे के लगभग मैं बिस्तर पर गया और साढ़े चार बजे ही उठकर ठीक साढ़े पाँच बजे सेठ मूलजी भाई के साथ जाने को तैयार हो गया। सेठ मूलजी भाई योरप, जापान आदि अनेक विदेशों की यात्रा कर आये थे और समय की क़ीमत जानते थे। ठीक साढ़े पाँच बजे वे आ पहुँचे और हम लोग रवाना हुए। कारख़ाना साधारण था, पर खेती बड़ी सुन्दर थी। मैदानों और टीलों दोनों पर ही ऊख बोई गई थी। क्षेत्रफल था क़रीब आठ हज़ार एकड़। आबपाशी की यहाँ भी ज़रूरत न थी। कारख़ाने को ज़रूरत का कुल गन्ना सेठ मूलजी भाई अपनी खेती से ही पैदा कर लेते हैं।

कारख़ाने और खेती को देखकर हम लोग क़रीब आठ बजे नाइल के उद्गम-स्थान पर पहुँच गये। इसे हमारा पाइलेट ऐरोप्लेन से दिखा चुका था, पर अब निकट से देखने में और भी आनन्द आया। विक्टोरिया झील का पानी ही एक ओर से नाइल के रूप में बह रहा था। तीन स्रोत थे और तीनों स्रोत जल-प्रपात के रूप में गिर कर, आगे चलकर इकट्ठे हो नदी के रूप में बहते थे। उस दीर्घकाय नाइल का यह कितना छोटा उद्गम था। दृश्य चारों ओर की हरियाली के कारण बड़ा ही रमणीय था। अफ़्रीका की इस गंगोत्तरी को नमस्कार कर साढ़े आठ बजे हम लोगों ने जिजा छोड़ दिया।

दस बजे कंपाला के ऐरोड्रोम से हमारी रवानगी थी। कितनी बड़ी भीड़ ऐरोड्रोम पर जमा थी! कंपाला का शायद ही कोई व्यक्ति उस दिन अपने घर में रहा हो। सबसे मिल-जुलकर हम लोग ऐरोप्लेन में बैठे। विमान शब्द करता हुआ उड़ा। उस समय नीचे भी शब्द हो रहा था। काफ़ी तेज़ आवाज़ होने के कारण विमान के प्रचण्ड शब्द में भी हमें वह शब्द सुन पड़ा। वह था—

"हिप हिप हुर्रे।"

युगाण्डा के लोगों का प्रेम महान् था।

(क्रमशः)

अनमिल

लेखक, श्रीयुत भवानीप्रसाद दीक्षित

चल रहा हूँ, शाम है;
रंग बादलों का बदलता है;
लाल-पीले फूल हिलते हैं;
परस्पर बड़े-छोटे लोग मिलते हैं—
सड़क पर बात करते,
या कि साधे मौन।
चहकते पंछी चले हैं;
सड़क के दोनों तरफ़—
ऊँचे खड़े हैं झाड़-और पहाड़ आगे,

[illegible] फूलों से सजाई वेणियाँ हिलती हुईं,
सौ श्रेणियों से आ रही हैं, और सावन है
कि वे सब गा रही हैं। सोचता हूँ—
किस तरह इस हरे सावन का बनूँ मैं अङ्ग?
किस तरह इस ढङ्ग से मैं भी हँसूँ-बोलूँ
कि सावन साथ दे मेरा,
कि इसके सङ्ग मैं होलूँ?
यह हरा मैदान,
छोटे, किलकते बच्चे,

मचलते-से युवक,
गम्भीर सुख में शान्त मन से बहस करते प्रौढ़;
है कहाँ स्थान मेरा ?
यह भरी बरसात, यह सूना किनारा,
दूर तक फैला हुआ मिट्टी रँगा पानी,
कि धानी खेत,—जा कहाँ बैठूँ
कि मिल जाऊँ, लगूँ इनका सँगाती;
इस महासंगीत का वह कौन-सा स्वर है
कि जिससे मेल खा सकती हृदय की धृष्ट धड़कन,
मन बहल जाता, कि मैं भी इस महासंगीत का
स्वर खोलकर गाता ?
लीन हो पातीं कहीं बौछार की खर-धार में
तलवार की खन् खन्
विकल झञ्झा कहीं
गतिवान् उड़ते यान को पीता
बिना आधार कर देता
अगर बेतार की खबरें,
उमड़ती नदी का पानी
बहा सकता अगर अभिमान,
उसके फेन-सा निर्बल कहीं अधिकार हो जाता,
अगर बिजली चमक कर आँख से कहती
कि बहती झोपड़ी में एक हाहाकार बैठा है,
गिरा होता कहीं गर्वित किसी के शीश पर यदि वज्र,
भूपर सत्य दिख जाता;
कि पानी आज बखरे खेत पर सौभाग्य लिख जाता !
अगर सावन हरे करता न मेरे घाव,
मेरा चाव भी बढ़ता;
गुंजाता गीत मैं भी हर्ष के,
दुःखदोल क्यों चढ़ता ?
कौन-सा वह साल होगा ?
लोग अपनी जब छिनाई-सी हँसी को छीन लेंगे,
जब कि सावन-सिंधु के तल में जमाये मोतियों को,
प्राण की बाज़ी लगाकर धँस पड़ेंगे, बीन लेंगे ?

कौन पल होगा कि जिसमें प्रथामय हँसना न होगा
क्रोध लौटेगा पुराना,
कब बँधेंगी मुट्ठियाँ वे, कड़ी जिनकी चोट होगी,
आदमी की आदमी से जब न कोई ओट होगी ?
ओट इनकी मुट्ठियों की चोट से गिर-गिर पड़ेगी
और बरसों की हँसी हर चोट पर फिर-फिर पड़ेगी।
आज का सावन सुरा है,
सुख नहीं कोई कि केवल नशा है, बेशक बुरा है।
चार पल दुःख भूलता है,
भूलता भी कहीं है मानव
कि उसका दुःख गहरा—
दुःख उसका गीत ठहरा !
दो भँयानक शक्तियों के बीच है उसका बसेरा,
इस तरफ़ है रात काली,
उस तरफ़ किरनें कराली,
यह क्षितिज का एक तारा,
रक्त-रञ्जित उषाधारा,
भाग्य इसका है कि डूबे यह क्षितिज का एक तारा
उषाधारा का रँगा जीवन इसी के खून से है।

× × ×

चलो लेकर—
एक नव आशा,
नई इच्छा,
नया उत्साह,
हम जहाँ सुख ढूंढते हैं—
वहाँ अब केवल प्रलय है,
वहाँ सावन की नहीं, शर की विजय है।
इसलिए हम चलें, सावन में सम्हालें खेत अपने,
बखर दें, बोदें, उगा दें आज उनमें नये सपने,
वे कि जब फागुन सजीला—
फूल-से सपने खिला दे,
गा उठें इस ज़ोर से—
आवाज़ जगती को गुंजा दे !

हिटलर का लड़का बड़ा हो गया है !

लेखक, श्रीयुत धर्मवीर एम० ए०

युद्ध में गुप्त भाषा से किस प्रकार काम लिया जाता है, योरप के महायुद्ध में विभिन्न देशों की गुप्त भाषाओं में किस प्रकार लड़ाई हुई, इन बातों पर इस लेख में प्रकाश डाला गया है।

ड़का पैदा हुआ है, यह बात बिलकुल मामूली है। जो कोई इसे सुनेगा शायद खुशी को प्रकट करेगा; कम से कम चिंता न प्रकट करेगा। परन्तु जर्मनी के युद्ध-विभाग में जब यह समाचार पहुँचा तब सभी के चेहरों से गंभीरता टपकने लगी।"

"क्यों ? गंभीरता क्यों ?" मैंने वृद्ध सैनिक से पूछा।

"क्यों !" बुड्ढे ने उत्तर दिया—"इसलिए कि लड़का पैदा हुआ है, यह जर्मनी के युद्ध-विभाग की गुप्त भाषा का एक वाक्य है, जिसका अर्थ यह है कि लड़ाई छिड़ गई है।"

हमने रेडियो को बन्द कर दिया और उस वृद्ध से युद्ध की बातें सुनने लगे। उसने कहा—"रामायण में एक जगह बताया गया है कि जब श्रीराम के पास एक राक्षसी ब्याह की तजवीज़ लेकर पहुँची तब श्रीराम ने उसे बताया कि मैं तो विवाहित हूँ, लक्ष्मण कुँआरे हैं; तुम उनके पास जाओ। इसके साथ ही श्रीराम ने गुप्त भाषा के कुछ शब्द कहे, जिन्हें सुनकर लक्ष्मण ने उस राक्षसी की नाक काट डाली। यद्यपि श्रीराम तथा लक्ष्मण उस समय युद्ध-क्षेत्र में न थे, तथापि एक प्रकार से शत्रु के प्रदेश में ज़रूर थे। इसीलिए उनको गुप्त-भाषा का प्रयोग करना पड़ा। आज कल भी लड़ाई के दिनों में गुप्त भाषा इस्तेमाल की जाती है। प्रत्येक समुन्नत देश में अपनी विशेष गुप्त-भाषा बनी होती है। युद्ध ही क्यों, शान्ति के समय में भी गवर्नमेंट और व्यापारी अपने-अपने 'कोड' इस्तेमाल करते हैं जिनको सिवा उनके आदमियों के दूसरा कोई नहीं समझ सकता। मुझे सिखों की अंतिम लड़ाई के बारे में मालूम है कि किस प्रकार सिखों ने भी अपनी गुप्त-भाषा बना रक्खी थी। कहते हैं, एक बार जब लाहौर के निकट अँगरेज़ों ने अपनी छावनी डाली तब एक सिख अफ़सर ने दूसरे को इस बात की सूचना देने के लिए लिखा—"आज-कल यहाँ हमारे पास ही मंडी लग रही है। काले और सफ़ेद सभी अनाज जमा हैं।" काले और सफ़ेद अनाज के द्वारा काले और गोरे सैनिकों की तरफ़ इशारा किया गया था।

आज से चालीस साल पहले जब दक्षिण अफ़रीका में बोअर लोगों और अँगरेज़ों के दर्मियान युद्ध हुआ तब अँगरेज़ फ़ौजी अफ़सर अपने संदेश लैटिन भाषा में एक जगह से दूसरी जगह भेज देते थे। बोअर लोग लैटिन से अनभिज्ञ थे, इसलिए अँगरेज़ सेनानायकों का मतलब हल हो जाता था। बोअर बहुत सभ्य नहीं थे, इसलिए उन पर लैटिन का जादू चल गया। परन्तु जब सन् १९१४ में योरप के अन्दर महायुद्ध छिड़ा तब मामला अन्य प्रकार का था। सन् १८९९ और १९१४ के बीच के काल में बहुत सी गुप्त भाषायें बन गई थीं। अँगरेज़ों ने प्लेफ़ेयर तरीक़ा निकाला, जर्मनों ने साइफ़र मशीन और फ़्रांसीसियों ने डिस्क साइफ़र।

इन लोगों ने अपनी अपनी गुप्त भाषा बना तो ली। परन्तु उधर शत्रु ने इनको हल करने के तरीक़े भी निकाल लिये। मतलब यह कि तीनों की भाषायें एक दूसरे से छिपी न रहीं। जनसाधारण के लिए तो वे गुप्त ही रहीं, परन्तु विशेषज्ञों के लिए वे साधारण भाषायें हो गईं। यही कारण था कि जब जर्मनी के रेडियो स्टेशन से ये शब्द ब्राडकास्ट किये गये, लड़का पैदा हुआ है, तब गुप्त भाषा के जानकारों नें समझ लिया कि इसका अर्थ यह है कि युद्ध छिड़ गया है। इसके पश्चात् जब कभी जर्मन सेना की हार-जीत होती तभी इस प्रकार के विचित्र संदेश लड़नेवाले विभिन्न देशों के युद्ध-विभागों में सुनाई देते।

जब जर्मनी की सेनायें पहले-पहल फ़्रांस की तरफ़ बढ़ने लगीं तब उनके सामने यार्क-नगर था। दो जर्मन-सेनायें दो दिशाओं से इस नगर पर धावा करना चाहती थीं। सिपाही मार्च कर रहे थे। परन्तु दो सेनाओं के दर्मियान दूरी इतनी थी कि वे परस्पर लिखित संदेशों का विनिमय

न कर सकती थीं। फलस्वरूप बेतार के तार-द्वारा वे एक-दूसरे से अपनी बात कहते। कहा जाता है कि उन दिनों रेडियो पर दिन-भर अजीब-अजीब संदेश सुनाई पड़ते। जर्मनी की गुप्त भाषा में एक दोष भी था। हर एक संदेश को उन्हें पाँच-पाँच बार दोहराना पड़ता था। एक जर्मन-सेना का नायक क्लक था। रेडियो से उसे संदेश भेजा गया कि तुम दक्षिण-पूर्व की ओर चलकर यार्क पर धावा बोलो। यह संदेश उसे मिला तो, परन्तु उधर फ़्रांस के सेनापति जाफ़रे के गुप्त भाषा विशेषज्ञों ने उस संदेश को सुन कर उसका अर्थ जाफ़रे को बता दिया। फ़्रांसीसी सेनापति ने अपना कार्यक्रम बदल कर क्लक की तरफ़ मुँह फेर लिया। नतीजा यह हुआ कि यार्क में जर्मन सेना की बहुत बुरी तरह से हार हुई।

यही हाल दूसरी ओर रूसियों का हुआ। लड़ाई के शुरू होने तक रूस ने अपनी पुरानी गुप्त भाषा का उपयोग किया। इसका एक खास कारण था। उसने नई गुप्त भाषा बना तो ली थी, परन्तु वह चाहता था कि शत्रु के कानों में यह उस समय पहुँचे जब उसे इसके हल करने का अवसर न मिल सके। फलतः जब लड़ाई शुरू हो गई तब रूसियों ने इस नई गुप्त भाषा के द्वारा अपने संदेश भेजने का प्रबंध किया। परन्तु इसमें उनको धोखा हुआ। दो रूसी सेनायें मैदान में पहुँचीं। उनके दर्मियान कुछ फ़ासला था। एक के पास नई गुप्त भाषा की कुंजी थी, दूसरी के पास पुराना कोड भी नहीं था, क्योंकि पुरानी गुप्त भाषा के विषय का समस्त साहित्य जला दिया गया था ताकि कहीं दुश्मन के हाथ कोई कापी न लग जाय। इसका परिणाम यह हुआ कि जब एक रात रेडियो पर दो रूसी सेनापति परस्पर युद्ध के कार्यक्रम के सम्बन्ध में साधारण भाषा में बातें करने लगे तब दुनिया हैरान रह गई कि यह क्या! कुछ विशेषज्ञों ने तो यह समझा कि रूसी सेनापति संसार को धोखा दे रहे हैं। परन्तु वे आश्चर्य-चकित हो गये जब उन्हें मालूम हुआ कि उस कार्यक्रम के अनुसार सचमुच ही रूसियों ने अपने हवाई जहाज़ और घुड़सवार निश्चित स्थान पर भेज दिये हैं। यह बात जब हिंडनबर्ग को मालूम हुई तब उसने अपनी फ़ौजें झट पोलैंड की तरफ़ रेल गाड़ी से भेज दीं। रूसी सेना उस समय तक वहाँ न पहुँच सकी थी। जब वह गई तब हिंडनबर्ग ने तोपों से सलामी दी! कितने ही रूसी भून डाले गये [illegible] बचे उनको पीछे हटना पड़ा। कहते हैं, इस [illegible] में एक लाख रूसी मारे गये या क़ैदी बना लिये [illegible]। रूसी सेना का नायक सम्सनाव था। उसे जब [illegible] मालूम हुआ कि मेरी फ़ौज की ऐसी दुर्गत हुई है तब उसने अपने माथे पर पिस्तौल रखकर आत्महत्या कर [illegible] ताकि सदा के अपमान से बच जाऊँ।

एक जर्मन जहाज़ को मित्र-राष्ट्रों ने पकड़ लिया [illegible] जहाज़ के कप्तान ने अपनी गुप्त भाषा की पुस्तक [illegible] के गिर्द बाँध कर समुद्र में छलाँग लगा दी ताकि अपने [illegible] इन किताबों को भी ले डूबूँ। दुर्भाग्य से वह डूब न [illegible] वह बचा लिया गया। नतीजा यह हुआ कि वे पुस्तकें अँगरेज़ों के हाथ लग गईं जिससे इँगलैंड के गुप्त भाषा विशेषज्ञों को जर्मनी के संपूर्ण समुद्री कोड का पता चल गया। इससे जर्मनी को बाद में बड़ी भारी मुसीबतों का सामना करना पड़ा, क्योंकि जर्मन गवर्नमेंट को यह पता न लगा कि अँगरेज़ों के हाथ हमारे कोड पहुँच गये हैं, इसलिए [illegible] अपने संदेशे पुराने समुद्री कोड के अनुसार भेजते रहे। परन्तु जब जटलैंड में उनकी पराजय हुई तब उन्हें मालूम हुआ कि हमारे संदेशों का मतलब तो शत्रु भी समझ रहे हैं।

इस घटना के पश्चात् जर्मनी ने अपने समुद्री कोड [illegible] बदल डाला। उसमें ऐसे परिवर्तन किये कि बहुत प्रयत्न करने पर भी मित्र-राष्ट्र नये कोड का कोई अर्थ न निकाल सकें। इनके सौभाग्य से जर्मनी की एक पनडुब्बी अँगरेज़ों के हाथ लग गई। वहाँ पर पानी गहरा न था, इसलिए पनडुब्बी भागने में सफल न हो सकी। जब यह पनडुब्बी पकड़ी गई तब एक अँगरेज़ ड्राइवर उसका निरीक्षण करने के लिए उस में उतरा। वह यह देखना चाहता था कि जर्मनी ने पनडुब्बियों में कहाँ तक उन्नति की है। अँगरेज़ ड्राइवर को जर्मनी के गुप्त कोड का कुछ ध्यान [illegible] था, न उसे आशा थी कि यह कोड पनडुब्बी में मिलेगा। परन्तु एक छोटी बन्द जगह में जिसे खोलना ही [illegible] मुश्किल था, यह कोड पड़ा मिला। इसके बाद जर्मनी की जितनी भी पनडुब्बियाँ डुबोई गईं उन सब के अंदर उसी खास जगह पर जर्मनी का कोड पाया गया।

यों तो जर्मनी के विशेषज्ञ बहुत भद्दी भूलें किया [illegible] थे, परन्तु कभी-कभी सफल भी हो जाते थे। [illegible]

[illegible] और अँगरेज़ी गुप्त भाषाओं में भेजे गये संदेशों को भली-भाँति समझ जाते थे। एक बार तो लड़ाई में इसके कारण बड़ा भारी मखौल हुआ। कुस्तुनतुनिया में दो जर्मन जहाज़ घिरे हुए थे। श्याम सागर में रूसियों के जहाज़ों की संख्या बहुत ज़्यादा थी। स्वभावतः जर्मन जहाज़ों की जान पर आफ़त थी। जर्मन जहाज़ कुछ करना तो चाहते थे, परन्तु दुश्मन के इतने भारी बेड़े की मौजूदगी में कुछ भी करना मौत मोल लेने के बराबर होता। एक दिन जब रूसी जहाज़ किनारे से चलकर समुद्र की तरफ़ जा रहे थे तब एक जर्मन जहाज़ के कप्तान ने रूस की गुप्त-भाषा में रेडियो से संदेश भेजा कि सारे रूसी बेड़े को समुद्र के दूसरे किनारे पर तरेबेज़ान्द के स्थान पर एकत्र होना चाहिए। इस आदेश के अनुसार सभी रूसी जहाज़ वहाँ पहुँच गये। परन्तु वे प्रतीक्षा ही करते रहे और उन्हें कोई और आदेश न मिला कि उन्हें आगे क्या करना चाहिए। उन्हें इस संदेश का महत्त्व समझ में न आया। पाँच दिन के बाद रूसी बेड़ा फिर कुस्तुनतुनिया की तरफ़ आया। उन्होंने देखा कि दोनों जर्मन जहाज़ वहाँ से गायब हैं। अब उन्हें समझ आई कि ज़र्मन कप्तान ने हमारे साथ कितना गंभीर मखौल किया है। मखौल क्या, वह तो बड़ा भारी धोखा था। रूसी जहाज़ों के कप्तानों का दुश्मन ने बुरी तरह से उल्लू बनाया। जाने से पूर्व जर्मन जहाज़ों पर स्थित फ़ौज ने रूसी बन्दर पर उतर कर ख़ूब लूट मचाई और लोगों को तंग किया।

रेडियो से अपने संदेश भेजने में भी जर्मनी ने एक चालाकी से काम लिया। जर्मनी का रेडियो स्टेशन नूएन में था। वहाँ जब रात को रेडियो का बाक़ायदा प्रोग्राम ख़त्म हो जाता तब थोड़ी देर तक रेडियो स्टेशन से गड़बड़ प्रोग्राम शुरू कर दिया जाता। लोग इसे बिजली का गड़बड़ कहते। ये बातें इतनी जल्दी की जातीं कि कोई मनुष्य इन्हें समझ न सकता। जर्मनी इस तरीक़े से चिर समय तक अपने संदेश भेजता रहा। मित्र-राष्ट्रों ने इन संदेशों के रेकार्ड भरवा लिये और उन्हें ग्रामोफ़ोन के रेकार्डों की तरह मशीन पर रख कर चलाया, परन्तु कुछ सिर-पैर न मिला। एक बार भूमध्यसागर में पड़े हुए एक जहाज़ के अँगरेज़ अफ़सरों ने अपने सामने कुछ काम न देख कर ग्रामोफ़ोन के रेकार्ड लगा दिये। क्योंकि उनके पास कोई काम था नहीं और वे किसी तरह अपना वक़्त काटना चाहते थे, इसलिए वे सारे रेकार्ड ख़त्म हो गये।

"और क्या किया जाय?" एक ने पूछा।

"क्यों? क्या सभी रेकार्ड समाप्त हो गये?" दूसरे ने सवाल किया।

"हाँ, यह तो मैं पहले ही कह चुका हूँ।" पहले ने उत्तर दिया।

"अच्छा, तो और गड़बड़ प्रोग्रामवाले रेकार्ड लगाओ; ख़ाली बैठने से यह गड़बड़ ही अच्छा है।" दूसरे ने कहा।

रेकार्ड चढ़ाया गया। लेकिन अफ़सर चाबी देना भूल गया था। इसलिए रेकार्ड बहुत धीरे-धीरे घूमने लगा। परन्तु कोड आफ़िसर की हैरानी की कोई हद न रही जब उसने यह रेकार्ड सुना। यह युद्ध से पूर्व की गुप्त भाषा में भेजा गया संदेश था। जर्मन हाई कमांड ने इस संदेश के द्वारा पूर्वी अफ़रीका के जर्मन लोगों को ख़ास हिदायतें दी थीं।

जर्मनी ने एक मामूली-सी चालाकी से काम लिया था। संदेश का रेकार्ड तैयार करके उसे पाँच छः गुनी रफ़्तार से चलाया गया जिससे वह सब गड़बड़ मालूम देने लगा। अफ़सर ने ग्रामोफ़ोन को चाबी न दी थी इसलिए अँगरेज़ ग्रामोफ़ोन की रफ़्तार पाँच-छः गुनी कम हो गई थी और संदेश का अर्थ उसे मालूम हो गया।"

वृद्ध सैनिक ने जब अपनी बातें ख़त्म कीं तब मैंने कहा—"अब तो हिटलर का लड़का बड़ा होगया है।" आप इसका अर्थ क्या निकालेंगे?"

वे हँस पड़े—"इसका अर्थ यह होना चाहिए कि अब लड़ाई बढ़ गई है। मुझे तो डर है कि कहीं आप भी अपनी गुप्त भाषा न बना लें!"

इस पर सभी हँस पड़े।

---

*अमेरिकन लेखक प्लेशर प्रैट की पुस्तक 'सीक्रेट एंड अर्जेंट' से सहायता मिली है। एतदर्थ मिस्टर प्रैट को धन्यवाद।—लेखक

भूषण की राष्ट्रदृष्टि

लेखक, श्रीयुत चन्द्रबली पाँडे

भूषण देश के उन अभागे कवियों में मुख्य हैं जिनकी स्तुति तो दूर रही, उलटे भर्त्सना ही की जाती है। किसी ने उनको कामुक कह दिया तो किसी ने चापलूस। किसी ने उन्हें 'भाँड' बनाया तो किसी ने राष्ट्रद्रोही होने का फ़तवा दे दिया; यही नहीं, दिलेरी के साथ साहित्य के रंगमंच से घोषणा तक कर दी गई कि भूषण वस्तुतः मुसलिम-द्रोही थे—मुसलमानों से उनकी जानी दुश्मनी थी। हो सकता है, उक्त विधाताओं की सम्मति साधु हो। पर भूषण का परितः परिशीलन करनेवाला मस्तिष्क तो कभी उनका साथ नहीं दे सकता, क्योंकि वह अच्छी तरह जानता है कि वास्तव में भूषण एक राष्ट्रनिष्ठ सच्चे देश-प्रेमी कवि थे, जो कविकर्म को इतना पवित्र समझते थे कि—

ब्रह्म के आनन तें निकसे तें अत्यन्त पुनीत तिहूँ पुर मानी।
राम युधिष्ठिर के बरने बलमीकिहु व्यास के अंग सुहानी।
'भूषन' यों कलि के कविराजन राजन के गुन गाय नसानी
पुन्य चरित्र सिवा सरजै सर न्हाय पवित्र भई पुनि बानी।

हाँ, तो भूषण का एकमात्र अपराध यह था कि उन्होंने 'पुण्यचरित्र' शिवा सरजा का गुण-गान किया और उनके प्रतिद्वन्द्वी मुग़ल-सम्राट् औरंगज़ेब की भर्त्सना की। औरंगज़ेब की निन्दा क्यों की? क्या इसलिए कि वह इसलाम का भक्त एक कट्टर मुसलिम था? अथवा इसलिए कि वह हिन्दू-धर्म का विरोधी और नृशंस शासक था? भूषण स्वयं अपने पक्ष को प्रत्यक्ष कर देते हैं। उनका कथन है—

किबले की ठौर बाप बादसाह साहजहाँ,
ताको कैद कियो मानो मक्के आगि लाई है।
बड़ो भाई दारा वाको पकरि कै मारि डारयो,
मेहर हू नाहि माँ को जायो सगो भाई है।
बन्धु तौ मुरादबकस बादि चूक करिबे को,
बीच दै कुरान खुदा की कसम खाई है।
'भूषन' सुकवि कहै सुनौ नवरंगज़ेब,
एते काम कीन्हें तब पातसाही पाई है।

पातशाही प्राप्त कर औरंगज़ेब ने क्या किया इसकी भी खबर है? स्वयं 'भूषण' के मुंह से इसे भी सुन लीजिए—

आदिकी न जानो देवी देवता न मानो साँच,
कहूँ जो पिछानो बात कहत हौं अब की।
बब्बर अकब्बर हिमायूं हद्द बाँधि गये,
हिन्दू औ तुरुक की कुरान बेद ढब की।
इन पातसाहन में हिन्दुन की चाह हुती,
जहाँगीर साहजहाँ साख पूरें तब की।
कासी हू की कला गई मथुरा मसीत भई,
सिवा जो न होतो तो सुनति होति सब की॥

स्पष्ट है कि शिवा जी की प्रतिष्ठा भूषण की दृष्टि में केवल इसलिए है कि उसने अपने बाहुबल तथा पुरुषार्थ से—

बेद राखे बिदित पुरान राखे सारयुत,
रामनाम राख्यो अति रसना सुघर में।
हिंदुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की,
काँधे में जनेऊ राख्यो माला राखी गर में।
मीड़ि राखे मुगल मरोड़ि राखे पातसाह,
बैरी पीसि राखे बरदान राख्यो कर में।
राजन की हद्द राखी तेगबल सिवराज,
देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर में॥

तथा—

राखी हिंदुवानी हिंदुवान को तिलक राख्यो,
अस्मृति-पुरान राखे वेदविधि सुनी मैं।
राखी रजपूती रजधानी राखी राजन की,
धरा मैं धरम राख्यो राख्यो गुन गुनी मैं।
'भूषन' सुकवि जीति हद्द मरहट्टन की,
देस देस कीरति बखानी तव सुनी मैं।
साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी,
दिल्लीदल दाबि कै दिवाल राखी दुनी मैं।

बस, इसी 'दीवार' के नाते भूषण ने शिवा जी के पुण्य चरित्र का गुणगान किया—केवल हिन्दूपति होने के कारण कदापि नहीं।

शिवा जी ने औरंगज़ेब का विरोध कुछ इसलिए नहीं

किया कि वस्तुतः वह मुसलिम था, बल्कि इसलिए किया कि जी-जान से वह हिन्दू मत की अरथी निकालने पर तुल गया था और प्रमादवश बाबर तथा अकबर की चिर परिचित उदार नीति का विरोधी बन गया था। हिन्दुओं की रक्षा करना तो अलग रहा, उलटे उनके विनाश पर अड़ गया था। देखिए—

कुम्भकन्न असुर औतारी अवरंगज़ेब
कीन्हीं कत्ल मथुरा दोहाई फेरी रब की।
खोदि डारे देवी-देव सहर महल्ला बाँके,
लाखन तुरुक कीन्हे छूट गई तबकी।
'भूषन' भनत भाग्यो कासीपति विश्वनाथ,
और कौन गिनती मैं भूली गति भव की।
चारों वर्ण धर्म छोड़ि कलमा-निवाज पढ़ि,
सिवा जी न होतो तो सुनति होती सब की॥

उधर औरंगज़ेब तो इस प्रकार की अनीति में लगा था और पक्का मुसलिम 'ग़ाज़ी' बनकर हिन्दुओं का सर्वनाश कर रहा था और इधर का हाल यह था कि बड़े बड़े प्रतिष्ठित हिन्दू राजे-महाराजे उसकी चाकरी में मग्न थे। केवल शिवाजी ही एक ऐसा हिन्दू वीर था जिसने हिन्दुत्व की लाज के लिए बहुतों से बैर मोल लिया और प्रत्यक्ष दिखा दिया कि देश में मुसलिम ग़ाज़ी का सामना एक अति सामान्य हिन्दू ग़ाज़ी भी कर सकता है, यदि उसे अपने स्वरूप और स्वभाव की चिन्ता हो और स्वधर्म तथा परमार्थ की निष्ठा में मग्न हो। अस्तु, भूषण का सगर्व उल्लास है—

अटल सिवा जी रह्यो दिल्ली को निदरि,
धीर धरि, ऐंड धरि, तेग धरि, गढ़ धरि कै।

औरंगज़ेब ही नहीं, उस समय का मुसलिम शासक बीजापुर का अली आदिलशाह भी कुछ कम न था। उसके दरबार का राजकवि शेख मुल्ला नसरती कहता है—

ऐ शाह आदिल तू अली साहब है अब संसार का।
कुफ्फ़ार-भंजन जग-यमन ने सूर कोई तुझ सार का।

अली आदिलशाह अपने को क्या समझता था, तनिक इसे भी देख लें। औरंगज़ेब चाहता है कि दोनों मिलकर शिवा जी को परास्त करें और हिन्दुत्व का नाम मिटा दें। उत्तर में अली आदिलशाह का निवेदन है कि—

कि हूँ मैं समीये नबी का खलफ़
दुजा तिस प हम नाम शाहे नजफ़
लक़ब कुफ़ भंजन है मुझ बेगुमाँ
सिफ़त दस्तगीरे फ़रो मादगाँ
मेरे काम पर मैं हूँ हाजिर सदा
तुमारी बी करनी करो इब्तदा
मदद में हूँ मूज़ी प चल बेग आवो
लड़ो मत तमाशा वले देख जावो।

कहने का तात्पर्य यह कि उस समय काफ़िरों के सत्यानाश की व्यापक कोशिश हो रही थी और इसी उद्देश्य से औरंगज़ेब तथा अली आदिल शाह एक हो रहे थे। इधर शिवाजी को सर करने के लिए जसवन्तसिंह और जयसिंह से हिन्दू राजपूत वीर दिल्ली की ओर से चल पड़े थे। फिर भी शिवा जी हताश न हुआ और धीरे धीरे वह कर दिखाया जो समूचे भारत में उससे पहले किसी से भी न बन पड़ा था। भूषण ने शिवा जी के महत्व तथा अनुष्ठान को समझा, फलतः उसे अवतार के रूप में प्रतिष्ठित भी कर दिया। उनकी दृष्टि में—

दीनदयाल दुनी प्रतिपालक जे करता निरम्लेच्छ मही के,
'भूषन' भूधर उद्धरिबो सुने और जिते गुन ते सिव जी के।
या कलि में अवतार लियो तऊ तेई सुभाव सिवा जी बली के।
आय धरयो हरि तें नररूप पै काज करै सिगरे हरि ही के।

सचमुच शिवा जी ने हरि ही का काम किया। म्लेच्छों और आततायियों के साथ कभी संत-साधुओं या निरीह जनता का वध नहीं किया। शिवा जी के विषय में प्रसिद्ध ही है कि कभी उसने किसी मसजिद को विध्वंस नहीं किया। क़ुरान का आदर किया और इसलाम पर तनिक भी आँच कभी आने नहीं दी। और तो और, बड़े-बड़े शूर-वीर सामन्त भी हार जाने पर रणक्षेत्र से बचकर सुरक्षित इसीलिए चले जाते थे कि उन्हें 'हज' करने की उत्कंठा हो उठी थी। सुनिए—

साहिन के सिच्छक सिपाहिन के पातसाह,
संगर मैं सिह के से जिनके सुभाव हैं।
'भूषण' भनत सिव सरजा की धाक ते वै,
काँपत रहत चित गहत न चाव हैं।
अफजल की अगति, सायस्तखाँ की अपति
बहलोल-बिपति सों डरें उमराव हैं।

पक्का मतो करिकै मलिच्छ मनसव छाँड़ि
मक्का के ही मिसि उतरत दरियाव हैं ॥

विचार करने की बात है कि जिस भूषण व जिस शिवा जी के हृदय में मक्का शरीफ़ के प्रति इतना धर्म-भाव है कि बैरी भी उसके नाम पर छोड़ दिये जाते हैं, वही शिवा जी और वही भूषण आज मुसलिम-विरोधी और राष्ट्रद्रोही क्यों कहे जाते हैं। क्या कभी उन्होंने इस्लाम का अपमान किया है? नहीं। तो फिर कारण क्या है?

बात यह है कि भूषण ने शिवा जी की प्रशंसा में बार बार उन्हें 'ग़ाज़ी' कहा है और कहीं कहीं औरंगज़ेब के प्रसंग में कुछ ऐसा लिख दिया है जो औरगज़ेब-भक्तों को खल जाता है। भूषण ने औरंगज़ेब के जिस रूप की निन्दा की है वह दीन या मज़हब के रूप की नहीं है। उसमें केवल उस रूप का निदर्शन भर कर दिया गया है जो हिन्दुत्व का विनाशक था। तभी तो उससे भूषण की प्रार्थना है—।

दौलति दिली की पाय कहाये आलमगीर,
बब्बर अकब्बर के विरद बिसारे तैं।
'भूषन' भनत लरि लरि सरजा सो जंग,
निपट अभंग गढ़-कोट सब हारे तैं।
सुधर्‌यो न एकौ काज भेजि भेजि बेही काज,
बड़े बड़े बे इलाज उमराव मारे तैं।
मेरे कहे मेर करु, सिवा जी सों बैर करि,
गैर करि नैर निज नाहक उजारे तैं॥

साथ ही औरंगज़ेब के मंत्री भी गिड़गिड़ाते हैं कि—

पूरब के उत्तर के प्रबल पछांह हू के,
सब पातसाहन के गढ़कोट हरते।
'भूषन' कहैं यों अव रंग सों वजीर, जीति
लीबे को पुरतगाल सागर उतरते।
सरजा सिवा पर पठावत मुहीम काज,
हजरत हम मरिबे को नहिं डरते।
चाकर हैं उजुर कियो न जाय, नेक पै
कछू दिन उबरते तो घने काज करते॥

इसमें संदेह नहीं कि यदि शिवा जी से बैर न कर औरंगज़ेब उससे मेल करता और बाबर तथा अकबर की नीति पर चलता तो शीघ्र ही वह विश्व का सम्राट् हो सकता था, किन्तु उसके हृदय की संकीर्णता [illegible] विचार की कठोरता ने उसे और कुछ भी न होने दिया। फिर भी आज प्रमादवश वही वर्गविशेष के लिए [illegible] हो रहा है और उदार समन्वयवादी शिवा जी [illegible] 'नसरती' के मुंह से

भर्‌या था सब उस ज़ात में मक्रोरेब,
दिसे आदमी रूप पर नस्ल देव।
दिखावे जो टुक अपनी तबलीस कों,
लगे वर्द लाहौल इबलीस कों।

ख़ैर, यही सही; पर कृपया इतना और नोट [illegible] लीजिये कि भूषण ने औरंगज़ेब के तप और [illegible] प्रशंसा भी कुछ कम नहीं की है। उसके शौर्य तथा [illegible] को सराहा भी है। उसके औलियापन का उल्लेख [illegible] है, और यह दिखा दिया है कि उसके प्रताप के आगे बड़े प्रतापी राजा भी नतमस्तक हो गये थे। किन्तु [illegible] जी के सामने उसे हार खानी पड़ी। उसकी हार [illegible] एकमात्र कारण था उसका हिन्दू-द्वेष। यदि वह [illegible] न करता तो हिन्दुओं को किसी 'ग़ाज़ी' की ज़रूरत [illegible] पड़ती और फलतः मुसलिम शासन भी छिन्न भिन्न कर चकनाचूर न हो जाता।

संक्षेप में भूषण के विचार से—

संकर की किरपा सरजा पर जोर बढ़ी कवि 'भूषन' [illegible]
ता किरपा सों सुबुद्धि बढ़ी भुव भौंसिला साहितनै की [illegible]
राज सुबुद्धि सों दान बढ़्यो, अरु दान सों पुन्य समूह [illegible]
पुन्य सो बाढ़्यो सिवा जी खुमान खुमान [illegible]
जहान [illegible]

बस, इसी 'जहान की भलाई' के नाते शिवा [illegible] भूषण के इष्टदेव या सपूत शासक हैं। भूषण [illegible] में हमारा सच्चा राष्ट्रपति वही हो सकता है [illegible] धर्म या संप्रदाय का द्वेषी न हो, बल्कि मनुष्य मात्र [illegible] हित में लीन हो। जो हिन्दु-मुसलिम-एकता की [illegible] को समझता हो और उसका अर्थ हिन्दुत्व का ह्रास [illegible] नहीं बल्कि उसका उत्थान भी देखना हो। संक्षेप [illegible] बाबर और अकबर की नीति का शासक हो [illegible] औरगज़ेब का अन्धा भक्त नहीं। शिवा जी हिन्दू [illegible] प्रर उसकी नीति थी एकता और समता की, द्वेष [illegible] ईर्ष्या की कदापि नहीं।

रिक्ता

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

सविता एक बहुत ही सुशील, सदाचारिणी और गम्भीर नवयुवती थी। उसके पिता डिप्टी कलक्टर थे। किन्तु जब वह बहुत छोटी थी, तभी वे उसे विधवा माता की गोद में छोड़ कर परमधाम को चले गये। इधर आर्थिक अवस्था अच्छी होने पर भी सविता के चाचा आदि ने भरण-पोषण तथा विवाह आदि के व्यय के भार से बचने के लिए पिता की गोद से बिछुड़ी हुई भतीजी तथा विधवा भौजाई की खोज-ख़बर न ली। फलतः उसका पालन-पोषण केवल पाण्डित्य वृत्ति के आधार पर निर्वाह करनेवाले उसके नाना के ही यहाँ हुआ और वहीं से अरुण जैसे सुशिक्षित तथा रूप गुण-सम्पन्न युवक के साथ उसका विवाह हुआ। परन्तु विवाह से पहले ही अरुण का मन एक आधुनिक सभ्यता की गोद में पली हुई सुन्दरी की ओर आकर्षित हो चुका था, इससे पिता के आग्रह से उसने देहात के निर्धन परिवार की इस युवती का पाणिग्रहण तो कर, लिया किन्तु बाद को उससे और किसी प्रकार का सम्पर्क रखने की प्रवृत्ति उसकी न हुई, वह सदा ही उससे दूर-दूर रहने लगा। पुत्र की इस प्रकार की विरक्ति के कारण अरुण की माता मेनका ने भी सविता का तिरस्कार करना आरम्भ कर दिया। घर में स्नेहपूर्वक बातें करनेवाला उसका देवर शुभेन्दु था और समय व्यतीत करने के लिए मातृहीन भांजा पुलक। इस प्रकार की उपेक्षामय परिस्थिति में परिवार के सभी लोगों की सेवा करती हुई सविता अपना जीवन निर्वाह कर रही थी।

(१)

सवेरे के उजाले की धुंधली रेखा खिड़की की पतली सी साँस से आकर सविता के नेत्रों पर पड़ी। इससे उसकी निद्रा भंग हो गई। वह बड़ी उतावली के साथ उठकर बैठ गई और मन ही मन कहने लगी—इतनी देर हो गई! इसके बाद ही पुलक की ओर दृष्टि बढ़ा कर देखा तो वह हाथ-पैर फैलाये शान्त भाव से सो रहा था। तारा दाई का भी विपुल शरीर कमरे भर को घेरे फैला था।

बाहर चिड़ियों के दल का जो प्रभाती-झंकार हो रहा था उसके कारण तारा के घर्राटों में किसी प्रकार का आघात नहीं हो रहा था। और दिन सब से पहले पुलक ही जाग पड़ता था।

सविता ने समझ लिया कि मेरी जैसी धारणा थी वैसा विलम्ब नहीं हुआ है।

सबसे पहले सविता पूर्व को मूंह करके खड़ी हुई बाल-सूर्य की ओर दृष्टि लगाये हुए उसने तेंतीस कोटि देवताओं के चरणों में प्रार्थना की और उनके समक्ष यह आन्तरिक कामना प्रकट की कि आज मेरे कारण घर में किसी प्रकार का उपद्रव न खड़ा हो। और यदि उपद्रव का खड़ा होना अनिवार्य ही हो तो मेरी सहिष्णुता ज्यों की त्यों बनी रहें। उसके बाद बहुत धीरे-धीरे पैर उठाती हुई कमरे से निकली। इस बात के लिए वह विशेष रूप से सावधान थी कि कहीं मेरे पैरों की आहट के कारण पुलक की निद्रा भङ्ग न हो जाय।

भाण्डार-गृह के एक कोने में एक स्टोव कूड़ा-करकट में दबा पड़ा था। शुभेन्दु ने उसे उसमें से निकाला और नौकर से कह कर खूब रगड़ कर मँजवाया? उसी पर वह चाय बनवाने की व्यवस्था कर रहा था। इतने में नहा-धोकर सविता उधर आ पहुँची। उसे देखते ही शुभेन्दु ने कहा—भाभी, तुम ज़रा ज़ल्दी से चाय बना दो न! ज़रा जल्दी करना नहीं तो बाबूजी को विलम्ब हो जायगा।

सविता ने जल से भरा हुआ पात्र ज़लते हुए स्टोव पर बैठाल दिया। एक छोटे से स्टूल पर बैठा हुआ शुभेन्दु देखने लगा कि जल में कितनी देर में उबाल आता है।

ज़रा देर तक शुभेन्दु यों ही बैठा रहा, बाद उसने खेल के व्याज से दियासलाई की एक एक काड़ी स्टोव की आग में

जलाना आरम्भ किया। जब कांड़ियाँ समाप्त हो गईं तब उसने जेब से एक पुरानी चिट्ठी निकाली और उसे जला दिया।

आधी चिट्ठी जब जल गई तब सविता ने कहा—यह क्या जला डाला? काम का तो नहीं है?

"नहीं, नहीं, कोई काम की चीज़ नहीं है। एक पुरानी चिट्ठी है।"

"किसकी लिखी हुई है वह? तुम्हारी?"

शुभेन्दु ने हँस कर कहा—"शायद तुम मेरी लिखावट पहचानती नहीं हो भाभी! वह भैया की लिखी है। देखती नहीं हो?"

सविता के मुंह से और कोई बात नहीं निकली। सचमुच वह लिखावट देखने का सौभाग्य उसे अभी तक नहीं हुआ था। जिसकी लिखावट के सम्बन्ध में यह सङ्केत था, उस आदमी को ही सविता ने कितना या कितने बार देखा था?

मस्तक नीचा किये हुए सविता इस तरह का भान करने लगी, मानों वह जिस कार्य्य में संलग्न है उसे और भी अधिक ध्यान से करने का प्रयत्न कर रही है। परन्तु वास्तव में उसकी व्यग्र दृष्टि शुभेन्दु की आँखें बचा कर उस पत्र की लिखावट भलीभाँति देख लेने का अवसर खोजने लगीं।

चारों ओर ताक कर शुभेन्दु ने कहा—"क्या पुलक अभी तक उठा नहीं?"

"नहीं। अब उठने का समय हो गया है। वह उठता ही होगा।"

"कहाँ रहता है वह? शायद तुम्हारे पास? तब तो बड़ा अच्छा संगी पागई हो तुम!"

"फिर भी उसके कारण समय कट जाता है।"

"समय काटने का शायद और कोई साधन नहीं मिलता तुम्हें? पुस्तकें क्यों नहीं देखती रहती हो?"

"देखती तो रहूँ, परन्तु मिलें कहाँ?"

"अच्छा मैं बाहर के पुस्तकालय से ला दूंगा। जिस समय तुम अकेली होगी उस समय उन्हें बहुत अच्छी तरह से संगी बना सकोगी।"

सविता ने ज़रा-सी मुस्कराहट के साथ कहा—तुमसे मैं एक सजीव संगी प्राप्त करने की आशा कर रही हूँ।

शुभेन्दु के विवाह की बातचीत चल रही थी। वह ज़रा-सा लज्जित होगया और कहने लगा—... बात है। पहले तुम पुस्तकालय की इन पुस्तकों को तो समाप्त कर लो।

दस-बारह दिनों के बाद ही दुर्गापूजा का समय आगया। उस दिन षष्ठी थी। मेनका बैठी हुई ... बना रही थीं। पास ही एक पाँसुल रक्खे हुए सविता ... कतर रही थी। शुभेन्दु हाथ में चिट्ठी लिये हुए आया और कहने लगा—मा, देख ली न भैया की करतूत।

उत्सुकता के साथ मेनका ने कहा—क्यों? क्या हुआ रे?

"उन्होंने लिखा है कि मैं सीधे कलकत्ता ... जाऊँगा। अब घर न आऊँगा इस छुटी में।"

मेनका ने पाँसुल छोड़ दिया। वे उठ कर खड़ी ... गई और लाल लाल आँखें से सविता की ओर एक बार ... कर कहा—यह नहीं होने का। तू अभी जा और ... तार दे दे कि उसे घर आना ही पड़ेगा। मैं तो ... नहीं हूँ अभी। जब मैं मर जाऊँगी तब वह भी ... द्वार छोड़ देगा।

सविता मस्तक नीचा किये बैठी रही। अत्यधिक व्यथा के कारण उसके मुख पर कालिमा छा गई ... वेदना से लाञ्छित अपना मुख आड़ में करने के लिए ही उसने घूँघट ज़रा-सा और भी खींच लिया।

उस समय सविता के मन में यह बात आ रही थी कि सारा काम-काज छोड़ कर भीतर घुस जाऊँ और ... अपनी वेदना का भार कुछ कम करने का प्रयत्न ... परन्तु ऐसा वह कर नहीं सकती थी, क्योंकि ऐसा ... से उसका अपराध बढ़ने की ही सम्भावना थी, ... की नहीं।

शुभेन्दु कुछ देर तक मा के पास इस तरह की ... सी बातें करता रहा, जिनसे सूचित हो कि ... अपेक्षा यह अधिक अच्छा लड़का है, बाद को वह ... बकते बाहर चला गया। जाते समय वह कहता गया—सुनो मा, भैया यदि न आये तो मैं भी ... जाऊँगा। वाह, वे तो मौज से सैर-सपाटा करें और ... से बाहर पैर तक न निकाल सकूँ! यह बात ... कह रखना तुम।

[क्रमशः]

रूपान्तर—लेखक, श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद और प्रकाशक, साहित्य-मंडल, बलरामपुर हैं। मिलने का पता—सोल एजेंट, सस्ता साहित्य-मंडल, देहली है। पृष्ठ-संख्या ७१ और मूल्य आने — आना है। छपाई अच्छी है।

'रूपान्तर' प्रधानतया कविता-पुस्तक है। पर इसमें गद्य भी है। रूपान्तर का कवि चिन्तन-शील प्रतीत होता है। मौलिकता का स्वाँग रचकर जो शून्य में कल्पना की बंसी डालकर नवीन और मौलिक विचारों को फाँस लाने का प्रयास करते हैं उनके हाथ कुछ नहीं लगता। वास्तव में मौलिकता विचारों की नवीनता में नहीं है, उनके सोचने के ढंग में तथा उनके उपस्थित करने की शैली में है। इस दृष्टि से 'रूपान्तर' का कवि मौलिक कहा जा सकता है।

'कवि' को समर्पण करते हुए वह कहता है—

पाशविक जग-सृष्टि पर ही
पुज रहे भगवान् के पग
किन्तु मानवता सृजन पर
भी न तुमको पूछता जग
तुम भिखारी के भिखारी।

'आत्म-परिचय', 'स्वधर्म' और 'माँ' के शीर्षकों की कविताओं की अन्तरात्मा में भी कवि के लांछित, अपमानित या कम से कम उपेक्षित जीवन की वेदना है। परन्तु यह वेदना पराजय को पराजय मानकर आत्म-ग्लानि से सिर धुननेवाली वेदना नहीं है, इसमें शक्ति और स्वावलम्बन की मात्रा भी है, चाहे वह शक्ति और स्वावलम्बन उपेक्षा-जन्य आत्म-गौरव की ही प्रतिक्रिया हो।

'कवि' और कविता के आत्म-गौरव का दावा 'कविता' शीर्षक गद्यांश में भी पेश किया गया है। इसमें कविता की उच्चता एवं महत्ता का प्रतिपादन किया गया है, उसकी तात्त्विक व्याख्या नहीं।

कदाचित् इसके बाद ही मुख्य विषय आरम्भ होता है। 'कवि-धर्म' में पुनः कवि के स्वात्म की व्याख्या है। व्याख्या न कहकर उसे यदि उसकी अभिलाषा और आकांक्षा कहें तो अधिक अच्छा है।

'कवि-हृदय' में कवि के चिर असन्तोष को सर्वव्यापी कहकर उसकी महत्ता की ओर संकेत है। इस चिर असन्तोष का रहस्य अन्त में स्वयं कवि ने गद्य में समझाने की कृपा की है। उसका कहना है कि कवि 'जीवन की दोनों वास्तविकताओं (वाम-पक्ष और दक्षिण-पक्ष) से मुंह मोड़ लेता है। जग इसे अकर्मण्यता समझता है; किन्तु कवि इसे किंकर्त्तव्यविमूढ़ता कहता है। जग इसे पतन कहता है, किन्तु कवि, कवि इसे मौलिक अज्ञात मार्गों की खोज कहकर पुकारता है।' इसके बाद कवि ने अपने 'रूपान्तर' का वर्णन किया है।

नवीन जीवन के निर्माण में—या जीवन की चरम परिणति की साधना में कवि ने जो मौलिक प्रयोग किये हैं उनकी अनुभूति में विद्रोह और अभिव्यंजना में अपनापन है। 'रूपान्तर' का कवि, कवि के व्यक्तित्व को किसी काल्पनिक दैवी व्यक्तित्व से भी ऊँचा समझता है, क्योंकि दैवी मानव भी तो बने बनाये उच्च आदर्शों का ही प्रतिपादन करता है। कवि के जीवन की सार्थकता तो तब है जब वह संसार में उतर कर संसार से विद्रोह करता हुआ, संघर्ष करता हुआ संसार के सुख के लिए अपने व्यक्तित्व को पूर्ण करने के लिए विश्व का सारा हलाहल पीकर मस्त हो जाय।

इस प्रकार 'रूपान्तर' में कवि और कवि-कर्म के उच्च आदर्श का प्रतिपादन है। अन्त में इस समस्त पद्यांश की गद्य-व्याख्या भी जोड़ दी गई है। हमारी समझ में इतनी-सी बात के लिए गद्य-व्याख्या की आवश्यकता नहीं थी। स्वयं कविता काफ़ी स्पष्ट और सरल है। ज्ञान पड़ता है कि कवि अपने कथन में मौलिकता समझकर उससे इतना अधिक अभिभूत हो

गया है कि उसे वह बड़े गर्व के साथ पाठकों के सामने रखने में अपना गौरव समझता है—और शायद पाठकों का कल्याण भी।

हमारी समझ में यह 'रूपान्तर' उसी के आदर्शों पर रचे गये किसी सुन्दर काव्य-ग्रन्थ की भूमिका का काम दे सकता है, क्योंकि स्वयं इसमें कवि का केवल दावा पेश किया गया है। उसका रचनात्मक कार्य नहीं। अतः 'रूपान्तर' को प्रकाशित कर देने में जल्दबाज़ी की गई जान पड़ती है। खतरा यह है कि प्रोत्साहन और प्रशंसा पाकर कवि कहीं अपने अहम् पर और अधिक आग्रह न कर बैठे।

हिन्दी-पाठकों से हम 'रूपान्तर' के पढ़ने की सिफ़ारिश करते हैं।

इंद्र-धनुष—लेखक, श्रीयुत नीलकंठ तिवारी, एम० ए०, साहित्यरत्न, प्रकाशक, श्री मध्यभारत-हिंदी-साहित्य-समिति, इंदौर हैं। पृष्ठ-संख्या १०० और मूल्य ।॥) है। पुस्तक का गेट-अप उस आधुनिक ढंग का नहीं है, जिसमें कविता-पुस्तकों के आधे से अधिक पृष्ठ खाली रहते हैं। अतः १०० पृष्ठों में ही ४५ कवितायें संगृहीत हैं, जिनमें कुछ तो काफ़ी लम्बी हैं।

'इंद्र-धनुष' के कवि ने 'अपनी बात' के सिलसिले में आजकल के ज़माने की शिकायत की है। उसके मत से इस विज्ञान और राजनीति के युग में काव्य-कोकिल की कूक कोई सुनता नहीं जान पड़ता। चाहे यह बात अन्य प्रदेशों के लिए सच हो, हमारे हिंदी-प्रदेश में तो 'काव्य-कन्हैया की बंसी के मोहक स्वर' इतने अधिक सुन पड़ते हैं कि एक विचित्र कोलाहल-सा मचा हुआ है। भीषणप्रलय के हाहाकार के समय भी हम अपने बग़ीचों के कलरव में मस्त-से दिखाई दे रहे हैं। पहाड़ के टूटते हुए ऊँचे कगार पर पिकनिक मनाते हुए या तो हम अंधे और मूर्ख समझे जा सकते हैं या अलमस्त दीवाने।

हिंदी के कवियों को हम अंधे और मूर्ख नहीं कह सकते। बहुत काल के उपरांत उनमें अपनी मस्ती को प्रकट करने का—अपनी शारीरिक भूख को चिल्लाकर स्वीकार करने का—साहस आया है। बीच में कभी उन्हें उपदेशक बनने का ढोंग रचना पड़ा और कभी अटपटी वार्ता कहने के लोभ ने उन्हें भटकाया। परन्तु अ... वे उसी मार्ग पर आगये जहाँ वे उस काल में ... साहित्य में शृंगार-काल के नाम से बदनाम है। ...निक कवि भोग-लालसा में शृंगारी कवियों से ... नहीं, आगे हैं। परन्तु उसकी अतृप्ति और तृष्णा ... मिसाल हिंदी में नहीं, उर्दू की पुरानी कविताओं में ... सकती है। उर्दू-कवियों की तरह ही उसकी नि... और व्यथा की निवृत्ति हुई है। और जो सबसे अ... महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हिंदी-कवियों की प्रेमाभिव्यंजना ... घटित हुआ है वह भी उर्दू में मौजूद है। अब ... हिंदी के कवि विरहवेदना को केवल स्त्री के मत्थे ... थे, परन्तु अब पुरुष-कवियों ने स्त्री का यह काल्प... भार भी स्वयं अपने कंधों पर उठा लिया है। उन... शोखी भी बढ़ गई है और मस्ती भी, तथा रोते-धोते तड़... कलपते अब उन्हें पहले जैसा संकोच नहीं मालूम हो...

रूप का मतवाला आशिक़ कहता है—

जब कि माखन-सी मृदुल नव, छातियों को उर लगाय...
आत्मा की ज्योति में प्रलयंकरी अवसान छ...
जो कली चूमी उसी में वासना का खून प...
खून का पी घूँट भभकी और भी यह मांस-काया...

× × ×

कब बुझो शाश्वत तृषामय? खत्म कब होगी जवानी
सुन! सुकवि! सुन! मिल कहाँ पाई तुझे वह रूप-रानी
घूँट भर की चिर तृषा वह, एक जलती वह निशानी
आँसुओं की साध प्रतिमा! लेखनी की वह रवानी
आग दिल में तू जलाये, आँख में भर क्षार-पानी
बस लिखे जा! बस लिखे जा!! कवि यही तेरी कहानी

'इन्द्र-धनुष' जिन बादलों के बीच में उगा है ... यही क्षारीय द्रव भरा हुआ है।

'इन्द्र-धनुष' के कवि में हम कहीं कहीं संयम ... अभाव भले ही पायें, उसकी सचाई वास्तव में प्र... है। मस्ती में वह गाता अवश्य है, पर ... का रुदन भी उसके कानों में अवश्य पड़ जाता है ... वह उसका समुचित उत्तर भी देता है—

रक्त-पथ-पंथी जगत का शान्ति हो गलहार ...
इसी लिए उसने क्रान्ति को अपनाया है।

कुल मिलाकर पुस्तक पठनीय है, रोचकता ...

...ता इसकी लगभग प्रत्येक कविता में मिलेगी। ... अवश्य कुछ शिथिल और कहीं कहीं असमर्थ-सी, पर यह बात अधिक खटकनेवाली नहीं।

राखी—लेखक, श्रीयुत मंगलदेव शर्मा और ...काशक, श्रीयुत मदनमोहन गुप्त, विद्यामन्दिर, आगरा ...। पृष्ठ-संख्या १९८ और मूल्य सजिल्द का १।) और अजिल्द का १) है। छपाई-सफ़ाई अच्छी है।

इस संग्रह में दस कहानियाँ हैं। कहानी-कला-विशारदों का मत है कि कहानी में कोई एक संवेदन-स्थल, कोई एक परम उद्देश्य होना चाहिए, और कहानी की समस्त घटनावली का संकेत उसी की ओर तीव्रतापूर्वक रहना चाहिए।

'राखी' शीर्षक कहानी में चौथे परिच्छेद तक 'राखी' का कोई ज़िक्र नहीं होता। बहुत मंथरगति सुमेरा की ग़रीबी, ठाकुर साहब के कारिंदों की क्रूरता और फिर सुमेरा के दिन फिरने का दास्तान और फिर पुनः ग़रीबी, महामारी और उसके परिणाम-स्वरूप सुमेरा की अकेली विधवा लड़की नथिया का जीवित रहना वर्णित है। नथिया अपना आर्थिक संकट ज़मींदार को राखी भेंट करके हल करना चाहती है और वह उसमें सफल होती है। बस इतनी-सी कथा है। राखी के प्रसंग को अधिक प्रभावोत्पादक बनाने के लिए ज़मींदार के मन में कुछ द्वन्द्व, कुछ संघर्ष, कुछ परिस्थितियों की प्रतिक्रिया दिखाई जाती, और पहले का अनावश्यक वर्णन कुछ कम कर दिया जाता तो कहानी अधिक रोचक होती।

'आँख का नशा' में भी वर्णन की खूबी ही प्रमुख है, कहानी के कथानक का कौतूहल ज़रा भी नहीं। पक्षियों में प्रेम, फिर एक पक्षी के साथ गहरा रागात्मक सम्बन्ध और उसका अचानक वियोग! बस। 'पिकनिक' में भी कोई संवेदन-स्थल नहीं। बड़े कहे जानेवाले चरित्रहीन व्यक्तियों के विलास-रंग का सजीव वर्णन भर है।

'बपतिस्मा' में रज़िया के बादवाले जीवन का इतना विशद और विस्तृत वर्णन है कि उसके अन्त में लेखक ने जिस कुतूहल और आश्चर्य की सृष्टि करने की चेष्टा की है उसमें वह सफल नहीं हो सका। 'बपतिस्मा' का आश्चर्यकारी प्रभाव तो वहीं सफल हो गया जब रज़िया नोरा बनकर मिस्टर दीक्षित के यहाँ मेहमान बनी थी। 'प्रेमकली' का प्रेम वास्तव में श्लाघ्य है। इसके वर्णन भी अत्यन्त सजीव और रोचक हैं, यद्यपि कहीं कहीं आवश्यकता से अधिक विस्तार अवश्य है। 'प्रेमकली' की घटना रोचक ढंग से अग्रसर हुई है। 'घर की बात' और भी अच्छी कहानी है। इसका अन्त कुतूहलवर्द्धक है। चरित्र-चित्रण इसमें 'प्रेमकली' से भी अधिक विशद है। 'अनारकली' कहानी नहीं, केवल एक ऐतिहासिक संस्मरण-मात्र है। 'आश्रम की रानी' के कथानक में कोई विशेष कुतूहल नहीं। वर्णन रोचक है, परन्तु अन्त में जाकर जो कुछ परिणाम होता है उसमें किसी प्रकार का कहानीत्व नहीं। 'श्यामा की होली' का भी रामपुरा गाँव तथा उसकी विविध घटनाओं से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं। अतः इतने विस्तृत विवरण कहानी के लिए व्यर्थ हैं। 'मैत्री' कहानी बहुत अच्छी है। उसमें अन्त तक कुतूहल बढ़ता जाता है और मैत्री का रहस्य समाप्ति के समय ही खुलता है।

इस प्रकार इस संग्रह की अधिकांश कहानियाँ कहानी-कला के पहले सिद्धान्त के अनुसार कदाचित् असमर्थ हैं। परन्तु लेखक की क़लम में काफ़ी बल और कौशल है। इसलिए कहानी पढ़ जाने पर ही उसकी अच्छाई-बुराई का पता लगता है। भाषा का चुलबुलापन जगह जगह उर्दू की शेरों के साथ और भी बढ़ गया है। कथोपकथन सभी सजीव हैं। लेखक की रुचि प्रधानतया रोमान्स की ओर प्रवृत्त है। परन्तु उसमें संयम और शालीनता की कमी नहीं। वातावरण उपस्थित करने में यह लेखक प्रेमचन्द जी के ढंग पर चल रहा है। इसलिए हम आशा कर सकते हैं कि आगे चल कर उसकी रचनायें अधिक परिपूर्ण और सफल होंगी।

जाग्रत नारियाँ

भारतीय स्त्रियों के संबंध में भ्रमात्मक बातें

लेखिका, श्री विद्या वर्मा, श्यामपुरी

जिन भ्रमात्मक बातों का योरप, अमेरिका आदि देशों में मिस मेयो और उनकी तरह के अनेक लेखक-लेखिकाओं-द्वारा प्रचार और प्रसार किया गया है, उनके सम्बन्ध में नहीं, बल्कि जिन अनेक बातों का स्वयं हमारे देश के विद्वान् लेखकगण, शायद अधिकतर अनजान में ही, प्रचार करते रहते हैं उन्हीं में से कुछ की ओर उनका और अन्य सबका ध्यान थोड़ी-सी पंक्तियों-द्वारा आकर्षित करने की आवश्यकता हमें विशेष रूप से जान पड़ती है। ऐसी बातों के तीन खंड किये जा सकते हैं—(१) गृह-सम्बन्धी, (२) समाज-सम्बन्धी और (३) देश सम्बन्धी।

"अस्वातंत्र्यमतस्तासां प्रजापतिरकल्पयत्"

के अनुसार प्रजापति ने ही स्त्रियों को पराधीन बनाया है। देहातों में पंडितों के घरों में और अन्य द्विजों में अशिक्षित बाल-विधवाओंकी जो भयंकर और हृदय-विदारक संख्या दिखाई देती है उसके कारणों के मूल में यही मिथ्या विश्वास है कि लड़कियों को पढ़ा देने से उनके स्वाधीन हो जाने की आशंका है। "अष्टवर्षा भवेत् गौरी" के अनुसार आठ-नव वर्षों की अवस्था में ही विवाह कर देना परम कल्याणकारी समझा जाता है। इसको व्यावहारिक रूप में देखकर हमारी आँखों से स्वभावतः जिन आँसुओं की वर्षा बार बार होती रहती है उसका अन्धविश्वासी हृदयों और मनों पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता। फलतः ऐसी बाल-विधवाओं की संख्या मिटाई नहीं जा सकती। किन्तु हमारे देश के अधिकांश लेखकों ने इस संख्या में एक और बहुत बड़ी संख्या मिला कर बहुत ही दुःखदायक भ्रान्ति चारों ओर फैलाई है।

यहाँ की अनेक ऐसी जातियों में भी बाल-विवाह प्रचलित है जिनमें पति के मर जाने पर दूसरा पति कर लिया जाता है। अपने ग्राम और उसके आस-पास में अहीर, गड़रिया, कहार आदि उन जातियों में जो द्विजों में मानी जाती हैं और पासी, चमार आदि द्विजेतर जातियों में मैंने यह नियम व्यावहारिक क्षेत्र में प्रचलित देखा है। अधिकांश देश में ऐसा ही है, यह भी कहा जा सकता है। इनमें चार-पाँच वर्ष के लड़के-लड़कियों के भी विवाह हो जाते हैं किन्तु गौना होता है कई सालों बाद, दोनों की युवावस्था आ जाने पर। इनमें जो आज विधवा हैं वह कल फिर सधवा हो सकती है। किन्तु इसका तनिक भी खयाल न करके लेखकगण इस देश की बाल-विधवाओं की संख्या बतलाते समय इन सबकी संख्या को भी उसमें सम्मिलित कर लेते हैं और सारे संसार के सामने हमारी मूढ़ता और हानिकारक रूढ़ि-पालन को कहीं भयंकर और लज्जाप्रद रूप में रख देते हैं।

आगामी वर्ष जन-संख्या के लिए जो कार्य होगा उसमें यदि इस ओर विशेष ध्यान रक्खा जाय तो बहुत बड़ी बात हो। किन्तु इसकी सम्भावना तक नहीं है। 'जाति-तोड़क' मंडलों की ओर से यह कोशिश की गई है और इसमें वे सफल भी हो गये हैं कि आगामी जन-संख्या के फ़ार्मों में जाति-पाँति का नाम तक न रहे। जो वस्तु हमारे सामने इतने प्रबल रूप में मौजूद है उसकी इसी अवहेलना करने से वह नष्ट नहीं हो जाती। अस्तु, मेरा यह पक्का विश्वास है—और इस विश्वास के तर्कपूर्ण कारण हैं—कि यदि हम उन जातियों को, जो द्विजवर्ग में सम्मिलित हैं और जिनमें एक ओर बाल-विवाह प्रचलित है और दूसरी ओर बाल-विधवा-विवाह अधर्म समझा जाता है, यह बता सकें कि भगाई जानेवाली लड़कियों, वेश्याओं आदि में कितनी अधिक संख्या ऐसी बाल-विधवाओं की है; और एक तरफ़ यह मानना कि लड़कियों के लिए प्रौढ़ावस्था से पहले भी संयम असम्भव ही है और दूसरी तरफ़ बाल-विधवा को जन्म भर के संयम के योग्य समझना और धर्म के नाम पर उन्हें इसके लिए विवश करना कैसी अत्याचारपूर्ण बात है, तो उसका प्रभाव उन पर पड़े बिना नहीं रह सकता। आवश्यकता है ऐसी बातों को बार बार उनके सामने लाने की और यही हम नहीं कर पा रहे हैं। हमारे द्विज-समाज की गृह-विडम्बना का मूल कारण यही है।

दूसरी बात जो इस देश और समाज के लिए एक-सी घातक हो रही है यह है कि पुरुष-समाज के अधिकांश

[इटली ने लड़कियों की भी एक सेना तैयार की है। पुरुषों के युद्ध में लग जाने पर यह सेना स्वदेश-रक्षा का कार्य करेगी।]

[चीन की लड़कियां युद्ध मे घायल चीनियों की मलहम-पट्टी करना अपना प्रधान धर्म समझती हैं।]

भाग में इतने अधिक काल की बर्बर प्रधानता के कारण यह विश्वास जम जाना कि स्त्रियों के शरीर की बनावट विधाता ने ही ऐसी बनाई है कि वे पुरुषों से हर बात में हीनतर ही हैं, और रहेंगी। हाल में ही एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रोफ़ेसर क्रू ने इस पर विशेष रूप से वैज्ञानिक ढंग से अनुसन्धान करने की कृपा की और उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि शरीर-विज्ञान की दृष्टि से पुरुष ही स्त्री से हीनतर है, न कि स्त्री पुरुष से। अठारह वर्ष तक की अवस्था में लड़कियों की अपेक्षा लड़के कहीं अधिक मरा करते हैं और जिन देशों में लड़कों की उत्पत्ति प्रति-शत पाँच अधिक होती है उनमें अठारह वर्ष में लड़कों और लड़कियों की संख्या इसी मृत्यु की असमानता के कारण बराबर हो जाती है। अठारह की अवस्था के बाद भी पुरुषों की ही संख्या अधिक रोगग्रस्त होती है और वे ही अधिक मरते हैं—यहाँ तक कि साठ वर्ष में स्त्रियों की संख्या ड्योढ़ी और अस्सी वर्ष में दूनी हो जाती है। भारतवर्ष ऐसे देश में जहाँ दस करोड़ स्त्री-पुरुषों को एक ही जून का खाना नसीब होता है और वह भी भर पेट नहीं, जहाँ के लोगों के लिए अभी बंगाल के स्वास्थ्य-विभाग के डाइरेक्टर ने लिखा था कि ऐसे भोजन से चूहे भी तीन-चार सप्ताह से अधिक जीवित नहीं रह सकते, वहाँ स्त्रियाँ अपने स्वाभाविक संयम, उपवास, व्रत और तप की शक्ति से अपना चुपचाप ऐसा बलिदान करती रहती हैं जिसे अन्तर्यामी शक्ति के सिवा और कोई जान नहीं सकता। साधारण लोग उनकी मृत्यु का कारण उनकी अक्षमता, ज्वर, राजयक्ष्मा आदि से मुक़ाबिला करने की शक्ति का अभाव ही समझते हैं। पर कैसी भ्रमात्मक है यह बात! इस छोटे से लेख में इन्हीं दो के बारे में कुछ लिखा गया है; उस पर पाठक-पाठिकायें विचार करें और आवश्यकता समझें तो विचार-विनिमय भी

पंडित किशोरीदास वाजपेयी, शास्त्री के नाम *

(१४)

दौलतपुर, (रायबरेली)
२९-७-३३

किशोरीदास,

चिरञ्जीवी भूयाः। जुलाई की माधुरी में आपका पढ़े बिना मुझसे न रहा गया। मनोमुकुल खिल आप सहृदय ही नहीं काव्यज्ञ और साहित्य-शास्त्रज्ञ हैं। कभी कभी इसी तरह इन लोगों को खटखटा करो। इनकी हरकतें देखकर यदा-कदा मेरा जी उठता है। कविता—कविकर्म—के आप विशेषज्ञ और—

> विना न साहित्यविदा परत्र
> गुणः कथिञ्चत्प्रथते कवीनाम्
> आलम्वते तत्क्षणमम्भसीव
> विस्तारमन्यत्र न तैलबिन्दुः —

कभी कभी ऐसे वाक्य लिख देते हैं—

"पर सम्पूर्ण मनोभावों को दो श्रेणियों में विभक्त कर दिया गया है।"—सँभले रहिए, महावैयाकरण कामताप्रसाद गुरु कहीं ख़फ़ा न हो जायँ।

शुभाकांक्षी
म० प्र० द्वि०

मेरी तबीअत आज-कल अच्छी नहीं—उन्निद्रता—

(१५)

दौलतपुर, (रायबरेली)
५-८-३३

शुक्ल ११ की चिट्ठी मिली।

वाक्य में कोई वैसी ग़लती नहीं जो ग़लती कही जा सके। पर मुझे—"सम्पूर्ण मनोभावों को दो श्रेणियों में विभक्त कर दिया गया है" की अपेक्षा—"सम्पूर्ण मनोभाव दो श्रेणियों में विभक्त कर दिये गये हैं" ज़ियादह अच्छा मालूम होता है। सम्पूर्ण की जगह सब हो तो और भी अच्छा।

आप वहाँ क्या काम करते हैं। सनातन-धर्म का कोई काम? आमदनी का क्या ज़रिया है?

मैं किसी तरह जी रहा हूँ। शरीर से अधिक मन दुर्बल हो रहा है।

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी

(१६)

दौलतपुर, (रायबरेली)
२१-९-३३

शुभाशिषः सन्तु,

पो० का० मिला। मैंने सरस्वतीवालों को कुछ नहीं लिखा। देखा होगा कि आपके अच्छे अच्छे लेख इधर-उधर निकल रहे हैं। आपसे अनबन करने पर पछताये होंगे। उसी भूल का निरसन सरस्वती की कापियों का भेजा जाना जान पड़ता है।

मेरे गाँव का पता यह है—कानपुर से बिंदकी रोड स्टेशन ई० आई० आर०। वहाँ सुबह पहुँचकर किराये

---

*सरस्वती के पिछले अंक में पृ० ३९३ पर 'आचार्य द्विवेदी जी के पत्र' स्तम्भ में जो पत्र छपे हैं वे पंडित किशोरीदास वाजपेयी, शास्त्री जी के नाम हैं। शीर्षक भूल से रह गया। वाजपेयी जी के नाम के शेष पत्र क्रम से इस अंक में दे रहे हैं।

की बैलगाड़ी पर बक्सरघाट के लिए रवाना होना चाहिए। गाड़ियाँ सवेरे ही मिलती हैं। स्टेशन से मौजा गुनीर ६-७ मील है। वहीं से गंगा का कछार शुरू होता है। दो धारायें नाव से पार करना पड़ता है! बीच में कई सोते पड़ते हैं। उनको हिलकर पैदल उस पार जाना पड़ता है। कछार कोई ३ मील है। मेरी तरफ़ मौजा बक्सर में नाव लगती है। वहीं गंगा महरानी से पिंड छूटता है। बक्सर से दौलतपुर ३ मील कुली के साथ आना पड़ता है। आप मेरा कहना मानिए। अभी वर्षा में न आइए। बहुत कष्ट मिलेगा। बड़े दिन की छुट्टियों में आइएगा। तब पानी में न हिलना पड़ेगा। गंगा की धारा भी एक ही रह जायगी। सो भी छोटी-सी कछार में बैलगाड़ी भी चल सकेगी।

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी

(१७) (दौलतपुर, रायबरेली)
१७-११-३३

आशीष,

मुकुलित वग़ैरह के साथ स्फुट को आप भूल गये। हिन्दी के कोविद उसे फुटकर के अर्थ में लिखते हैं।

जिसने लघुकौमुदी के भी दर्शन नहीं किये उसे वाक्यों का तारतम्य आप सिखलाना चाहते हैं।

आपके लेख देखकर मुझे बड़ी खुशी होती है। आप खूब लिखते हैं। खेद है, मैं बहुत ही कम पढ़ सकता हूँ। मेरा उन्निद्र रोग आज-कल बहुत बढ़ गया है। व्याकुल रहता हूँ। एक कार्ड लिखने से भी ग़श आ जाता है। स्मृति का यह हाल है कि आपका पता भूल गया।

शुभेच्छु
म० प्र० द्विवेदी

(१८) दौलतपुर, (रायबरेली)
१७-२-३७

शुभाशिषः सन्तु,

मेरी बीमारी में आपने कमलाकिशोर को लिखा था कि बिटिया के विवाह की सूचना आपको ज़रूर दी जाय। आपकी इच्छा का विघात मैं नहीं करना चाहता; परन्तु तीन भानजियों के विवाह मैं कर चुका; मान्यों को छोड़कर और किसी को सूचना तक नहीं दी, निमंत्रण तो दूर की बात, निमंत्रण देना मानो कुछ माँगना है। इस दफ़े भी निमंत्रण-पत्र तक नहीं छपाया, ... लग्न-पत्रिका तक छपाई है। अच्छा, तो विवाह ... ३७ को है—रायबरेली के डाक्टर शंकरदत्त शर्मा के ... के साथ होगा। लड़का बदायूँ में Electrician (बिजली का इंजीनियर) है। आप आशीर्वाद के सिवा और कुछ भेजिएगा नहीं।

अब कभी अपनी कोई पुस्तक प्रतियोगिता ... भेजिएगा। बड़ी बेइज़्ज़ती होती है—

रे गन्धी मति अन्ध तू इतर दिखावत काहि?

शुभैषी
म० प्र० द्वि०

द्विवेदी जी के हाथ का लिखा एक प्रशंसापत्र

करबदरसदृशमखिलभुवनतलं यत्प्रसादतः कवयः
पश्यन्ति सूक्ष्ममतयः सा जयति सरस्वती देवी

रायबरेली प्रान्त के प्रसिद्ध और प्राचीन स्थान डलमऊ में गत कार्तिकी पूर्णिमा के अवसर पर, तारीख २ नवम्बर १९३३ को, एक वृहत् कवि-सम्मेलन हुआ। उसके सभापति का आसन साहित्यरत्न पंडित शिवरत्न शुक्ल ने सुशोभित किया। दूर-दूर तक के सुकवियों ने सम्मेलन में पधारकर अपनी-अपनी मनोहारिणी कविताओं से श्रोताओं का मनोरञ्जन किया। उनमें से पंडित जगमोहननाथ अवस्थी की कवितायें सुनकर उपस्थित सज्जन अत्यन्त ही मुग्ध हो गये। अवस्थी जी ने कितने ही तत्काल रचित पद्यों की रचना से यह सिद्ध कर दिया कि वे किसी भी विषय पर, बात की बात में, बड़ी ही सुन्दर रचना करके सुना सकते हैं। उनके इस गुण के प्रभाव से प्रभावित होकर हम लोग उन्हें आशुकवि की पदवी से विभूषित करते हैं।

(१) शिवरत्न शुक्ल, सभापति कवि-सम्मेलन
(२) खान बहादुर मिर्जा अलीसज्जाद हुसैन (सब डिवीज़नल आफ़ीसर, डलमऊ), मेला-अफ़सर
(३) जगदम्बाप्रसाद, डिप्टी कलक्टर, मंत्री कवि-सम्मेलन
(४) कुँवर वीरेन्द्रबहादुर (सेमरी) संस्कृत ...
(५) म० प्र० द्विवेदी (दौलतपुर) रायबरेली

१०-११-३३
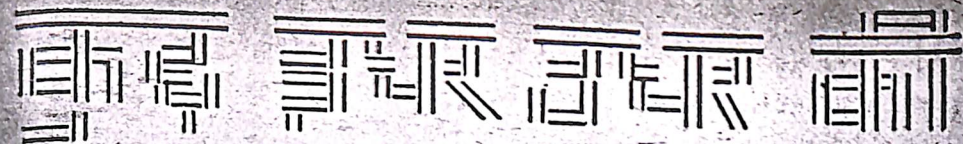
इतिहास की पुनरावृत्ति

उद्गतावृत्त

प्रभु दीनबन्धु, सुख-सेतु
शुभ मति मुझे विशुद्ध दो
शान्ति-निधि तव पदाम्बुज में
मकरन्द-मुग्ध मम चित्त हो सदा।
सुख-शान्ति धाम जगदीश
विनय यह है, दया करें
त्याग विषम-मद-मत्सर को
परमार्थ में मन लगा रहे।

'माधुरी' के गत विशेषाङ्क के प्रथम पृष्ठ पर छपी हुई यह रचना पढ़कर हमें हठात् रीतिकाल की रचनाओं की याद आ गई, जिनमें महाकवियों का एकमात्र उद्देश्य छन्दों और अलंकारों के उदाहरण उपस्थित करना होता था। उन लोगों का प्रधान लक्ष्य उदाहरण की शुद्धता की ओर होता था, फिर उस रचना में यदि कविता की भी कहीं झलक आ जाती थी तो कोई हानि न थी। 'उद्गतावृत्त' के उदाहरण संस्कृत में भी विरल ही हैं; और हिन्दी में तो शायद ही किसी ने इसे अपनाने का साहस किया हो। आजकल हिन्दी-काव्य-क्षेत्र में छन्दो-बन्ध से मुक्ति पाने की जो चेष्टा हो रही है उसे देखते हुए किसी वृत्त का उदाहरण-मात्र उपस्थित करने के लिए कोई रचना करना बड़े साहस का काम है; साथ ही यह भी सूचित करता है कि हमारे कुछ वयोवृद्ध महारथी सन् १९३९ के अन्तिम भाग में भी 'रीतिकाल' के ही स्वप्न देख रहे हैं।

समालोचना की आधुनिक शैली

"आर्य-संस्कृति के प्रतिभ तुलसीदास के प्रति यदि ऐसे कुछ सुन मिलता जैसे उन्होंने अपने को प्रकाश में पाया इस जिज्ञासा के पूरी न उठने के पहले ही, बिलकुल उसी तरह उसे सुना दिया। पदार्थ-शब्द गम्य ज्ञान को 'सत्' मानने में भारतीय दर्शन को आपत्ति कभी नहीं रही। अड़चन यही पड़ती रही कि ज्ञान का बोध कराकर ज्ञेय ज्ञाता को लेकर सदैव तद्रूप हो जाता रहा, और सदैव ही वह कवि-शब्द-सम्बोध्य मनीषी चेष्टा करता रहा कि जैसे भी हो सके, अब जिसे ज्ञान हो, वह ज्ञान रूप न होने पावे, यानी एक संघर्ष चलता रहा। फलस्वरूप विजय हुई उसी 'कविः स्वयंभू' की और साहित्य ने जन्म लिया। कला की व्याख्या यही हो सकता (?) है। अपने को स्वतन्त्र न रखकर निश्चय ही कला "सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय" न हो सकेगी। यह भी निश्चय है कि सर्वजनवाली भावना को कला का नामकरण अप्रिय लगेगा, क्योंकि कला की स्वतन्त्रता जो छिनी जाती है न? यही हेतु, सौन्दर्य का कारण, प्रतीक का मूलाधार और 'भ्रम' शब्द का पर्याय है। भ्रम की गोद में बैठकर सत्य सुन्दर और शिव हो पाता है। नहीं तो अद्वैत सत्य की व्याख्या में शिव और सुन्दर क्यों जुड़ेंगे? अब यों कहें कि सत्य का आवरणभ्रम है, यानी स्वरूप शून्य, स्मृति का भास्वर भाव तथा ऊर्ध्व की गति।"

उपर्युक्त अवतरण हिन्दी के एक विद्वान् लेखक के एक हाल के लेख से हमने यहाँ उद्धृत किया है। हिन्दी के प्रेमी देखें कि उनके कुछ लेखक हिन्दी की सरलता को किस तरह चौपट करना चाहते हैं। अटपटी और बे-सिर-पैर की भाषा का यह एक जीता-जागता नमूना है। अथवा हम यह समझें कि जिस अभिनव-कला का उन्होंने अपने इस लेख में विश्लेषण किया है उसके लिए ऐसी ही अभिनव भाषा लिखने की उन्होंने ज़रूरत समझी है। चाहे जो हो, हिन्दी के इस संकट-काल में उसके साथ ऐसा मज़ाक नहीं करना चाहिए, अन्यथा लेखक महोदय की रचना समझाने के लिए पंडित कामताप्रसाद गुरु को शीघ्र ही हिन्दी-व्याकरण का एक नया संस्करण निकालने को बाध्य होना पड़ेगा। यही नहीं, जो पत्र अपने मोटो पर 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' छापा करते हैं उन्हें भी सावधान हो जाना चाहिए, क्योंकि वे 'शिव' और 'सुन्दर' बनाने के बहाने 'सत्य' को 'भ्रम' की गोद में बिठाकर जनता में भ्रम-पूर्ण सत्य का प्रचार कर रहे हैं!

पंडित और संस्कृत का प्रचार

काशी के 'सूर्योदय' में महामहाध्यापक पंडित ईश्वर-दत्त शास्त्री, एम० ए०, एम० ओ० एल० का एक भाषण प्रकाशित हुआ है, जो उन्होंने अखिलभारतीय छात्र-सम्मेलन के सभापति-पद से हाल में ही काशी में किया था। उसका आरंभिक अंश इस प्रकार है—

"अयि सौहार्दसुधाहृदाः सुहृदः! सदा मदन्तर्वसन्तोऽन्तेवसन्तश्च! विलक्षणोऽयं क्षणः। पुण्य-पाथोधितटीयं घटी, गौरववेलेयं वेला, नितरां मनोहरोऽयं प्रहरः, अतीवादीनमिदं दिनम्, अप्रतिपक्षोऽयं पक्षः, असम्भव-दुस्सवसमासोऽयं मासः, मंगलस्यायत्तमिदमयनम्। महाहर्षवर्षमिदं वर्षम्।"

संस्कृत के विद्वान् एक ओर तो अपनी भारती का प्रचार चाहते हैं और दूसरी ओर उसे अलंकारों के बोझ से लादते जा रहे हैं। उदाहरणार्थ उपर्युक्त अंश में ११ जोड़ के अलंकारों की छटा देखने योग्य है, भले ही वे भाव-व्यञ्जना में सहायक न होकर केवल 'छमाछम' के लिए लाद दिये गये हों!

आश्चर्य है कि संस्कृत के विद्वानों की समझ में अभी तक यह भी नहीं आया है कि 'आभरण' और 'प्रचार' में मौलिक विरोध है!

हिन्दी-पत्र कैसे दीर्घजीवी हों?

हिन्दी-पत्रों को दीर्घजीवी बनाने के लिए हिन्दी के एक नये लेखक ने ३ उपाय सुझाये हैं—

(१) जब तक निश्चित पूँजी इकट्ठी न कर ली जाय तब तक कोई नया पत्र न निकाला जाय।

(२) नये पत्रों की नीति प्रान्तीय सरकारों द्वारा निश्चित की जाया करे।

(३) पत्रों के प्रकाशन की आज्ञा उसी दशा में दी जाय जब संचालकों से उक्त पत्र के लिए कोई निश्चित पूँजी जमा करा ली जाय।

आपकी राय में—"इससे नये समाचारपत्रों की बाढ़ हो सकेगी और गन्दगी फैलने का डर कम रहेगा।" आपका मतलब शायद यही है कि हिन्दी में जो भी पत्र निकले वह प्रान्तीय सरकारों का गजट मात्र हो?

× × ×

ये आदर्श नवयुवक!

हमको कहो न वीर वीरता पिघल गई बन पीर,
जबसे पुतली में खिच आई, प्रियतम की तसवीर,
धीर और गंभीर कभी था, अब तो हुआ अधीर,
बढ़ती ही जाती हिय-पीड़ा द्रुपद-सुता का चीर,
मौन रहूँ, मनुहार करो हो, दूर दूर से हाय,
इतनी निर्दयता-प्रिय मेरे बना रहे असहाय

संसार के नवयुवक स्वतंत्रता और क्रान्ति के नाम पर रणचण्डी को शोणित-तर्पण करने की तैयारी कर रहे हैं, पर हमारे नवयुवक क्या कर रहे हैं? उनके हृदयों को तो प्रिय की निष्ठुरता से ही छुटकारा नहीं मिलता! उनके आगे मान और मनुहार की समस्या ही इन दिनों सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण है। 'ज़फ़र' के इन अगणित सस्ते संस्करणों के हाथों में पड़कर देश की नौका देखें किस किनारे जा लगती है?

अङ्क-परिचय नं० ४०

बायें से दाहिने

१-एक पर्वत।
४-सात मंजिल का मकान।
८-जहाँ रहना लोगों को खले वहाँ से ... ही बुद्धिमत्ता है।
१०-पाठ्य पुस्तक।
११-जब किये कुछ न हो तब यह भी बेकार है।
१३-यहीं राजा रहा करता है।
१५-ऐसा फल ही लोग पसन्द करते हैं।
१८-यह रँगरेज के घर मिलेगा।
१९-इसके मिलने पर मनुष्य सच्ची शान्ति का अनुभव करता है।
२१-मठों पर ये ही राज्य करते हैं।
२२-दूध से निर्मित एक पेय।
२३-सूखा।
२४-रोशनी।
२६-इसमें पहले से ही अच्छी-बुरी की परख कर लेना बड़ी कुशलता का काम है।
२७-जो शिष्य गुरु का यह नहीं मानते वे दंड-भागी होते हैं।
२८-वैष्णवों में इसका बड़ा प्रचार है।
३१-पुराने ज़माने की महफ़िलों की शोभा इसी से होती थी।
३२-औरतें सिर धोने में इसका उपयोग करती हैं।
३३-यह न हो तो फल न पके।

ऊपर से नीचे

१-सिद्धि उसी को मिलती है जिसके हृदय में ऐसा विश्वास होता है।
२-एक प्रकार का गोंद।
३-यह नाव उलट गई।
५-बरसात में यहाँ बहुत पानी इकट्ठा हो जाता है।
६-ऐसी जगह रहना कौन पसंद करेगा?
७-पत्ते यहीं लगते हैं।
९-इसके पास जाने पर चिन्तित हृदय को शान्ति मिल जाती है।
१२-रोटी।
१३-राजा यदि इसे भी न चाहेगा तो क्या करेगा?
१४-बिना इसके संसार में जीना व्यर्थ है।
१६-हिन्दुस्तान का एक सूबा।
१७-बिना इसके सब रस फीके लगते हैं।
२०-बच्चे इससे बहुत डरते हैं।
२२-यह भी गृहस्थी में सहायता देती है।
२३-जहाँ यह है वहीं सुख है।
२५-चमकीला।
२९-यह छूटती नहीं।
३०-स्त्रियों के सिर की यह प्रधान शोभा है।

इस लाइन से काटिए

रिक्त कोष्ठों के अन्दर मात्रारहित अक्षर पूर्ण है।

नाम ———— पता ————

नोट—ये तीनों कूपन यहाँ एक साथ केवल एक व्यक्ति के भरने के लिए दिये जा रहे हैं। तीनों कूपनों को एक साथ काट कर भेजना चाहिए। जो एक कूपन भेजना चाहें वे दो को यों ही छोड़ दें। जो दो भेजेंगे उन्हें तीसरे कूपन की फ़ीस न देनी पड़ेगी। यानी वे १) में तीनों कूपन भेज सकेंगे। विशेष ब्योरा पृष्ठ ४९३ पर देखिए।

वर्ग नं० ३९ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर ३९ की शुद्ध पूर्ति जो बंद लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जा रही है।

क	मा	ल	अ	ता	तु	र्क		झ	न
थ	का	न		ड	रा	ना		का	ह
री			ध्वँ	न			म	झं	ला
	मा	द	क			द	ल	क	ना
दा	न	व		ब	द	रि	का		
नी	स		भू	तं	द	या			
	रो	ष		र			सु	वि	धा
दी	व	ट		स	मी	र	कु	मा	र
प	र	प	ट		रा	ज	मा	ता	
क		द	र	द		नी	र		

वर्ग नं० ३९ का नतीजा

प्रथम पुरस्कार ३००) (शुद्ध पूर्ति पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित १२ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को २५) मिले।

(१) मार्कण्डेय शुक्ल, ३५ सर्कुलर रोड, नया कटरा, इलाहाबाद। (२) प्रेमराज शर्मा अध्यापक, मिडिल स्कूल, पिवारी, मारहरा, एटा। (३) अनुज-प्रताप, पी० एम० जी० आफ़िस, कलकत्ता। (४) मुन्शी गयाप्रसाद, ५३९, अहियापुर, इलाहाबाद। (५) बद्रीप्रसाद श्रीवास्तव, उन्नाव। (६) कश्मीरासिंह, गवर्नर्स-गार्डेन, बैरकपुर, चौबीस परगना। (७) भोलानाथ चटर्जी, बैरकपुर, चौबीस परगना। (८) शान्ती देवी १७ नं० मिन्टोरोड, मद्रास। (९) वीरेन्द्र कुमार, १ए बादुड़ बागान, कलकत्ता। (१०) भगवानसिंह के० दुखीराम तल्लीताल, नैनीताल। (११) अमरनाथ के० रघुनाथ ठठेरी बाजार, अमोरकोट। (१२) अजय-नाथ, पो० सुरिया, हज़ारीबाग़।

द्वितीय पुरस्कार १५०) (एक अशुद्धि पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित १० व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को १५) मिले।

(१) मिसेज़ मुन्शी गयाप्रसाद, ५३९, अहियापुर, इलाहाबाद। (२) खरगबहादुर, टकुला, नैनीताल। (३) जानकीदास, नीची बाग़, बनारस। (४) हरनामसिंह, बेलनगंज, आगरा। (५) खुसीराम, कलेक्टरगंज, कानपुर। (६) बलदेव सहाय, पुराना बाज़ार, बरेली। (७) सेवाराम, कुली बाज़ार, कानपुर। (८) श्यामलाल, नयागंज, आगरा। (९) सुरजभान, किनारी बाज़ार, आगरा। (१०) माधो-प्रसाद, केशरगंज, मेरठ।

तृतीय पुरस्कार ४२) (दो अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ७ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को ६) मिले।

(१) बी० आर पाठक, एग्रीकल्चर डिपार्टमेंट सिविल सेक्रेटरियट, लखनऊ। (२) गोविन्दप्रसाद पांडे, रायगंज, बरहटा, अयोध्या, फैज़ाबाद। (३) जगदीशनारायण, पो० व कस्बा फरीदपुर, बरेली। (४) माधव प्रसाद शुक्ल, मु० व पो० अजगैन, उन्नाव। (५) रणवीर-सिंह चन्देल, गाँव कृष्णदासपुर पो० इटौरा गुर्जग, रायबरेली। (६) अशर्फीलाल सक्सेना, मेम्बर रीडिंग रूम अमृतपुर, फ़र्रुखाबाद। (७) तुलसीराम जयनगर, पो०, जयनगर डि० २४ परगना।

चतुर्थ पुरस्कार ८) (तीन अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ८ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को १) मिला।

(१) कैलाशपति पाठक, मु० व पो० डुमरी, शाहाबाद (आरा)। (२) श्रीमती सुप्रभा देवी सक्सेना c/o कुमारचन्द्र वकील, बैजनाथ स्ट्रीट, फर्रुख़ाबाद। (३) उमाप्रसाद, छपरा। (४) अयोध्यासिंह, बिलासपुर, सी० पी०। (५) मिसेस के० सि० चौधुरी, सागर। (६) तारानाथ, गोरखपुर। (७) रामनाथ मिश्र, पटना। (८) गोविन्दप्रसाद, कोलुटोला, कलकत्ता।

उपर्युक्त सब पुरस्कार नवम्बर के अन्त तक भेज दिये जायँगे।

नोट—जाँच का फ़ार्म ठीक समय पर आने से यदि किसी को और भी पुरस्कार पाने का अधिकार सिद्ध हुआ तो उपर्युक्त पुरस्कारों में से जो उसकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा। केवल वे ही लोग जाँच का फ़ार्म भेजें जिनका नाम यहाँ नहीं छपा है, पर जिनको यह सन्देह हो कि वे पुरस्कार पाने के अधिकारी हैं।

जिनको १) का पुरस्कार मिला है उन्हें १) के दो प्रवेश-शुल्क-पत्र भेज दिये जायँगे, जो नियम के अनुसार तीन महीने के भीतर इसके साथ दो पूर्तियाँ भेज सकेंगे।

आवश्यक सूचनायें व नियम

(१) वर्गप्रतियोगिता में शामिल होने के लिए एक ...न की फ़ीस ॥) है। पर जो प्रतियोगी १) देंगे उन्हें ३ ...न भरने का अधिकार होगा। पूर्तियाँ वे ही स्वीकृत की ...येंगी जो सरस्वती के छपे फ़ार्म पर होंगी और जिनके ...थ फ़ीस की मनीआर्डररसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र जो ...इंडियन प्रेस से ॥) और १) की क़ीमत के छपे मिलते ...नत्थी होंगे।

(२) स्थानीय पूर्तियाँ 'सरस्वती-प्रतियोगिता-बक्स' में ...के कार्यालय के सामने रक्खा गया है, दिन में दस और ...च के बीच में डाली जा सकती हैं।

(३) वर्ग नम्बर ४० का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर ...लगाकर रख दिया गया है, ता० २५ नवम्बर सन् १९३९ ...को सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में शाम को चार और पाँच ...बजे के बीच सर्वसाधारण के सामने खोला जायगा। उस ...समय जो सज्जन चाहें स्वयं उपस्थित होकर उसे देख ...सकते हैं।

(४) जो वर्ग-पूर्ति २४ नवम्बर तक नहीं पहुँचेगी, जाँच ...में शामिल नहीं की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २२ ता० को ...पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिए और दूर के स्थानों ...(अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद को डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने ...में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ ...दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-निर्माता का निर्णय सब ...प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान्य होगा।

वर्ग नं० ३९ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० ३९ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति नं०...में { कोई अशुद्धि नहीं है। / १,२,३ अशुद्धियाँ हैं। }

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर ____________________

पता ____________________

____

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

नोट—जो पुरस्कार आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बँटेगा और फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि पूर्ति ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जो समझें कि उनका नाम ठीक जगह पर छपा है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं। यह फ़ार्म १५ नवम्बर के बाद नहीं लिया जायगा।

इसे काटकर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए।

मैनेजर वर्ग नं० ४०

इंडियन प्रेस, लि०,

इलाहाबाद

कूपन की नक़ल यहाँ कीजिए।
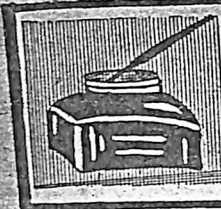
सम्पादकीय नोट

महामना मालवीय जी का अवकाश-ग्रहण

अपनी वृद्धावस्था से अस्वास्थ्य के कारण महामना मालवीय जी को हिन्दू-यूनिवर्सिटी के वाइस चैंसलर के पद से अलग हो जाना पड़ा है। हिन्दू-यूनिवर्सिटी की स्थापना महामना मालवीय जी ने ही की थी और जब उन्होंने देखा कि उसको समुन्नत करने के लिए उनकी प्रत्यक्ष सेवाओं की आवश्यकता है तब उन्होंने अपने देश-सेवा के कार्य के साथ साथ यूनिवर्सिटी के वाइस चैंसलर का कार्य-भार भी अपने ऊपर ले लिया, जिसे आप गत बीस वर्ष से बराबर चलाते रहे। यहाँ तक कि ७९ वर्ष के वृद्ध हो जाने पर और अस्वस्थ रह कर भी कर्तव्यपथ से कभी विमुख नहीं हुए। अन्त में इसका परिणाम अच्छा न हुआ और इधर आप लगातार बीमार ही बने रहने लगे। फलतः आपने पद-त्याग कर दिया और अपने स्थान पर सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन को वाइस चैंसलर बनवाया है। इनकी नियुक्ति के अवसर पर यूनिवर्सिटी की कौंसिल की जो बैठक हुई थी उसमें महामना मालवीय जी को एक लाख रुपये की थैली भेंट की गई तथा आपकी भूरि भूरि प्रशंसा की गई। महामना मालवीय ने देश की जो सेवायें की हैं और बनारस-यूनिवर्सिटी की स्थापना करके शिक्षा के क्षेत्र में जो महान् कार्य किया है उनकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। इस अवसर पर हमारी परमात्मा से प्रार्थना है कि वह महामना मालवीय जी को पुनः स्वास्थ्य प्रदान करे ताकि देश को आपकी इस वृद्धावस्था में आपका आशीर्वाद मिलता रहे। इस सम्बन्ध में यह और भी प्रसन्नता की बात है कि एक बहुत बड़ी रक़म आपको भेंट करने का विचार किया गया है। इसके लिए धन-संग्रह दरभंगा के महाराजाधिराज के नेतृत्व में होगा। महात्मा गांधी का यह परामर्श है कि १५ लाख से कम रुपया एकत्र न किया जाय। हम भी चाहते हैं कि ऐसा ही हो। महामना मालवीय जी की स्मृति के लिए

महामना पं० मदनमोहन मालवीय

यदि आपके जीवन-काल में हम आपकी सेवाओं के अनुरूप ही कोई महत् कार्य न कर सके तो यह [illegible] राष्ट्र के लिए सचमुच बड़े परिताप की बात होगी।

योरपीय युद्ध का भयानक रूप

१८ दिन के भीषण युद्ध में पोलैंड को जर्मनी [illegible] सेनाओं ने पद-दलित कर डाला। उसकी जो थोड़ी बहुत शक्ति शेष रह गई थी वह रूस के अचानक आक्रमण से निःशेष हो गई। इसका परिणाम यह हुआ कि पोलैंड की सरकार के प्रमुख सूत्रधारों को स्वदेश छोड़ कर रूमानिया में भाग कर शरण लेनी पड़ी, यद्यपि [illegible] तहाँ, विशेष कर वारसा में बची-खुची पोल-सेना [illegible] शत्रुओं का वीरता से सामना करती रहीं। परन्तु [illegible] यह प्रयत्न बुझते हुए दीपक की लौ के समान ही [illegible] है। रूस और जर्मनी ने पोलैंड को आपस में [illegible] लेने का जो समझौता किया था उसके अनुसार [illegible] उसे बाँट भी लिया। इस प्रकार स्वाधीनता के अभिमानी से पोलैंड का निर्दयता के साथ अन्त कर दिया गया। [illegible] सम्बन्ध में दुःख की यही बात है कि ब्रिटेन और फ़्रांस की [illegible]यें पोलैंड पहुँच कर उसकी मदद नहीं कर सकीं। [illegible] भी नहीं सकती थीं। वहाँ पहुँचने का उनके लिए [illegible]ति का मार्ग भी नहीं था। तथापि अपने वचन के अनुसार ब्रिटेन और फ़्रांस ने जर्मनी के विरुद्ध उसके पोलैंड पर आक्रमण करने के बाद ही युद्ध की घोषणा [illegible]के जर्मनी की पश्चिमी सीमा पर लड़ाई भी छेड़ दी [illegible]। और पोलैंड के पूर्णरूप से हार जाने पर भी वे जर्मनी से डट कर युद्ध कर रहे हैं। जर्मनी ने भी अब अपना ध्यान पश्चिमी सीमा के युद्ध-क्षेत्र की ओर दिया [illegible]। फ़्रांस की सेनायें धीरे-धीरे बढ़ती हुई मोज़ेल नदी [illegible] क्षेत्र से जर्मनी की सीगफ़ीड की प्रसिद्ध क़िलेबन्दी [illegible] समीप जा पहुँची हैं तथा उस अंचल के एक बड़े भूभाग पर अधिकार भी कर लिया है। यद्यपि जर्मनी की सेनाओं ने फ़्रांस की सेनाओं को रोकने का प्रयत्न किया, तथापि वे उन्हें नहीं रोक सकीं। पोलैंड की ओर से जर्मनी के निश्चिन्त हो जाने से अब वह यहाँ अधिक शक्ति का संचय करके फ़्रांस से भिड़ने का आयोजन कर रहा है। इस बीच में जर्मनी की ब्रिटेन से भी समुद्र पर दो बार भिड़न्त हो चुकी है। एक युद्ध उत्तरी समुद्र में नारवे के पास हुआ है और दूसरा अभी हाल में हेलिगोलैंड के पास। परन्तु इन युद्धों में किस पर कैसी गुज़री, इसका कोई पता नहीं मिला है। इसके सिवा जर्मनी के [illegible] जहाज़ ब्रिटेन के साथ निरपेक्ष राज्यों के भी जहाज़ डुबाने के निन्द्यकार्य में पूर्ववत् लगे हुए हैं। इस प्रकार नरसंहार का काम बिना किसी रुकावट के जारी है। उधर संधि की बात भी हर हिटलर साहब छेड़े हुए हैं। कौन जाने कि यह उनकी कूटनीति की चाल नहीं है। चाहे जो हो, कहा जाता है कि इटली के भाग्य-विधाता मुसोलिनी साहब लड़ाई बन्द करवाने के लिए भीतर ही भीतर फ़्रांस और ब्रिटेन से बातचीत कर रहे हैं। और अब यह भी समाचार-पत्रों में छपा है कि अमरीका के संयुक्तराज्यों के सभापति रूज़वेल्ट साहब सन्धि करवाने के लिए बीच में पड़ने-वाले हैं। परन्तु क्या संधि हो सकेगी?

अब तो केवल पोलों का ही सवाल नहीं है। ज़ेचों और आस्ट्रियावालों ने भी अपनी स्वाधीनता की माँग की है। यही नहीं, फ़्रांस में पोल, ज़ेच और अस्ट्रियावाले अपना अपना संगठन भी जर्मनी के विरुद्ध कर चुके हैं और फ़रासीसियों के साथ जर्मनी से लड़ने को उत्सुक हैं। तो क्या इन सबकी स्वाधीनता इस सन्धि-वार्ता से मिल जायगी? ज़ेच, पोल और आस्ट्रियावाले तो अपने देश को तभी स्वतंत्र कर सकेंगे जब जर्मनी का पूर्ण पराभव हो जायगा। और पराभव तभी होगा जब युद्ध-क्षेत्र में वह अँगरेज़ों और फ़्रेंचों के आगे घुटने टेक देगा। ऐसी दशा में सन्धि की यह वार्ता कोई अर्थ नहीं रखती है। हिटलर साहब ने कहा है कि 'हमारी अँगरेज़ों और फ़रासीसियों से कोई लड़ाई नहीं है और न कोई उनसे वैसी माँग ही है। हाँ, उपनिवेश हम ज़रूर चाहते हैं, परन्तु उनके लिए हम युद्ध नहीं करेंगे' इस तरह की बातों से सन्धि कैसे हो सकती है, यह समझना कठिन नहीं है। वास्तव में इस समय योरप का राजनैतिक वायुमण्डल एकदम अस्थिर हो गया है। क्या सम्भव है, क्या नहीं सम्भव है, इसका अन्दाज़ लगाना कठिन है। जब ब्रिटेन और फ़्रांस ने युद्ध की घोषणा कर दी है तब वह लड़कों का खेल नहीं है कि चुटकी बजाते ही बन्द हो जायगा। वे युद्ध तो तभी बन्द करेंगे जब उन्हें विश्वास हो जायगा कि जिसकी लाठी उसकी भैंस की नीति का अन्त हो गया है। हम भी यही चाहते हैं।

रूस का महत्त्व

योरप की लड़ाई ने रूस को सबसे अधिक महत्त्व प्रदान कर दिया है। जो रूस अभी तक बोलशेविक हो जाने के कारण उच्च राष्ट्रों के समाज से बहिष्कृत कर दिया गया था, यही नहीं, जिसको विनष्ट करने के लिए प्रकट रूप से जर्मनी और इटली अपना एक गुट बना चुके थे, वही योरप में युद्ध के छिड़ने की सम्भावना होते ही उभय पक्ष के लिए मित्रता का पात्र ही नहीं हो गया, किन्तु उससे मित्रता करने के लिए ब्रिटेन और फ़्रांस के राजनीतिज्ञों को मास्को तक दौड़ना पड़ा। परन्तु ये लोग अपने प्रयत्न में सफल नहीं हुए और रूस को जर्मनी ने अपनी ओर करके योरप में युद्ध की आग लगा दी। इसका जो भीषण परिणाम होगा सो तो भविष्य के गर्भ में है, परन्तु रूस के पौ बारह हैं। पोलैंड की जीत में उसने अपना

हिस्सा तो बँटा ही लिया है, इसके सिवा उसने बाल्टिक के—इस्थोनिया, लेटेविया, लिथुआनिया और फ़िनलेंड के—नये स्वाधीन राज्यों पर दवाव डालकर उनसे अपने मनोनुकूल सन्धियाँ की हैं तथा उनके राज्यों के अन्तर्गत अपने हवाई तथा नौ-सेना के अड्डे बनाने का अधिकार प्राप्त करके बाल्टिक सागर के उस अञ्चल में अपनी प्रतिपत्ति क़ायम कर ली। इधर वाल्कन-प्रायद्वीप के राज्यों पर उसका गम्भीर प्रभाव पड़ा है। तुर्की के राजदूत भी मास्को बुलाये गये हैं और उनसे गहरी राजनैतिक बातचीत हो रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह काले सागर की सुरक्षा के लिए तुर्की से गारंटी लेना चाहता है। दरे दानियाल और वास्फ़ोरस के मुहाने तुर्की के अधिकार में हैं और इनसे होकर काले सागर की शान्ति भंग की जा सकती है। ऐसी दशा में वह स्वभावतः यह जानना चाहेगा कि इस सम्बन्ध में तुर्की का क्या रुख रहेगा। जैसा इस समय रूस का प्रभाव बढ़ गया है उसको देखते हुए तो यही कहना पड़ेगा कि रूस की इस अञ्चल में भी प्रतिपत्ति बढ़ती जा रही है। यूगोस्लेविया, हंगेरी और बल्गेरिया तो रूस से मेल-जोल बढ़ाने के लिए पहले से ही उतावले हो रहे हैं। एक रूमानिया अलबत्ता खिचा हुआ है। रह गया तुर्की, सो उस पर रूस अपना दवाव डाल रहा है। कहना न होगा कि रूस की राजनैतिक चालें बड़ी टेढ़ी हैं और उसका आशय अभी तक प्रकट नहीं हुआ है। तथापि यह तो स्पष्ट ही है कि उसका महत्त्व खूब बढ़ गया है और शत्रु और मित्र दोनों उससे सशंक हैं।

चैम्बरलेन, हिटलर और स्टैलिन

जर्मनी और रूस में जो अनाक्रमण की सन्धि हुई है उसको लेकर राजनीति के ज्ञाता लोग स्टेलिन की कूटनीतिज्ञता की प्रशंसा कर रहे हैं। उनका कहना है कि जर्मनी से समझौता करके रूस के इस भाग्य-विधाता ने ब्रिटेन और फ़्रांस के राजनीतिज्ञों को बुरी तरह से कूटनीति की चालों में हराया है। कुछ लोगों का यह भी विचार है कि इस प्रसंग में जर्मनी के हर हिटलर को महत्त्व देना चाहिए, जिन्होंने वानपेपिन के द्वारा रूस को फुसला लिया और उसे ब्रिटेन के गुट में नहीं शामिल होने दिया; यही नहीं, रूस को अपनी ओर करके [illegible] जापान से भी मेल करवा देने का सफलतापूर्वक वे यत्न कर रहे हैं। अतएव कूटनीतिज्ञता में हर हिटलर को महत्त्व देना चाहिए। वर्तमान राजनैतिक दाँव-पेंच के मामलों में कुछ लोग ब्रिटेन और फ़्रांस के राजनीतिज्ञों को दोष देते हैं और कहते हैं कि इन दोनों देशों में [illegible] वैसे मार्के के राजनीतिज्ञ नहीं रह गये हैं।

इधर जो घटनायें हुई हैं उनको देखते हुए दूसरे लोग भी कह सकते हैं कि इन लोगों के कथन सारहीन नहीं हैं। परन्तु बात वास्तव में ऐसी नहीं है। वस्तुतः इँगलेंड के प्रधान मंत्री चैम्बरलेन साहब ने अपने [illegible] काल में विलक्षण राजनीतिज्ञता का परिचय दिया [illegible] सन्तुष्ट करने की तथा शान्तिवादियों का गुट्ट [illegible] की उनकी नीति का ही आज यह परिणाम हुआ है कि ब्रिटेन शान के साथ जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर सका है, साथ ही निरपेक्ष देशों की सहानुभूति भी प्राप्त कर सका है। यही नहीं, अपनी इन नीतियों के द्वारा चैम्बरलेन साहब काफ़ी समय तक युद्ध को टालते रहे, साथ ही इस बीच में उन्होंने युद्ध के लिए अपनी तैयारी भी पूरी कर ली। इस दृष्टि से विचार करने पर हम चैम्बरलेन साहब को कूटनीति में सबसे आगे पाते हैं। स्टैलिन और हिटलर ने अपनी चालों के द्वारा अपने जिस रूप का परिचय दिया है उसकी तो संसार में निन्दा ही हो रही है। परन्तु इन लोगों की चालें कहाँ तक कारगर होंगी, निश्चयपूर्वक कोई नहीं कह सकता, जैसा कि 'आज' के श्री 'किताबी कीड़ा' के लेख के निम्न अवतरण से प्रकट होगा—

इस युद्ध में जैसी पहेलियाँ उपस्थित हो रही हैं वैसी इतिहास में पहले किसी युद्ध में न हुई थीं। सबसे पहले तो अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में रूस-जर्मनी-समझौते का बम टूट पड़ा, फिर रूस ने पोलेंड पर आक्रमण कर दिया। अब जर्मनी के पश्चिम में फ़्रांस का धावा हो रहा है। तब भी हिटलर के परम मित्र मुसोलिनी चुप हैं। सन् १९१४ में भी जर्मनी, आस्ट्रिया और इटली में मित्रता थी, पर युद्ध छिड़ते ही इटली ने तटस्थता की घोषणा कर दी। परन्तु इसकी आड़ में उसने एक छोटी सेना बालकन प्रदेश की ओर भेज दी और आस्ट्रिया के उन ज़िलों में, जहाँ इटालियन आवादी अधिक है, अपना असर जमाने लगा। इटली को अपने पक्ष में लाने के लिए कैसर ने अपने मंत्री बूलो को रोम भेजा, पर इटालियन नेता उन्हें इधर-उधर ही टालते रहे और आस्ट्रिया से टिरोल लेने की माँग पेश की। वहाँ के सम्राट् ने इसको मान लिया, पर कहा यह कि बात अभी गुप्त ही रखी जाय। इससे इटली को सन्तोष न हुआ और उसने ब्रिटेन तथा फ़्रांस से सौदा पटा लिया। ये शर्तें तय हुई कि आस्ट्रिया का टिरोल तथा और कुछ प्रदेश इटली को मिले। तुर्की के बँटवारे में भी उसको हिस्सा दिया जाय। अफ़्रीक़ा के उपनिवेशों में भी उसका ध्यान रखा जाय और अन्त में हरजाना भी दिलाया जाय। अलबानिया की परराष्ट्रनीति उसके हाथ में रहे और ७५ करोड़ रुपया ब्रिटेन उसको क़र्ज़ दे। इस तरह पूरा मतलब गाँठ कर उसने पहले केवल आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध छेड़ा। उस पर वहाँ के सम्राट् ने यह घोषणा की कि "इटली के राजा ने हमारे साथ जैसा विश्वासघात किया है वैसा इतिहास में कभी नहीं हुआ।" इतने पर भी उसने जर्मनी को कोई साफ़ जवाब नहीं दिया, बातों में ही लटकाये रखा। उसका पक्ष ढीला पड़ते देखकर सन् १९१६ के अन्त में उसके विरुद्ध भी युद्ध की घोषणा की गई। उन्हीं दिनों मुसोलिनी ने साम्यवादी दल से अलग होकर अपना एक पत्र निकाला जिसमें वे बड़े ज़ोरों से युद्ध में भाग लेने का समर्थन करने लगे। आज वे ही मुसोलिनी इटली के अधिनायक हैं। रंग-ढंग से ऐसा जान पड़ता है कि सन् १९१४ की ही नीति से इस बार भी काम लिया जा रहा है। अपने पड़ोसी जर्मनी की शक्ति का बहुत बढ़ना इटली के लिए अच्छा नहीं है। ऐसी दशा में सम्भव है कि फ़्रांस से कार्सिका, ट्यूनीसिया आदि लेकर सौदा पटा लिया जाय और हिटलर से कहा जाय कि हमारे अनुरोध करने पर भी आपने समझौता नहीं किया इसलिए यथासम्भव हम तटस्थ रहेंगे, पर यदि ऐसा न हो सका तो फिर मजबूरी है। आज-कल की राजनीति में सब कुछ सम्भव है। यदि हिटलर और स्टेलिन मित्र हो गये, तो फिर मुसोलिनी और चैम्बरलेन की मित्रता में तो कोई अड़चन ही नहीं हो सकती। चैम्बरलेन ने युद्ध की घोषणा करते हुए जो भाषण किया था उसी में कहा था कि मुसोलिनी ने शान्ति के लिए बड़ा यत्न किया है। यह सब होते हुए भी आजकल की परिस्थिति ऐसी हो रही है कि क्या होगा, यह कहना बड़ा कठिन है।

योरप का युद्ध और भारत

महात्मा गांधी भारत के सबसे बड़े नेता हैं। देश में जो महान् जागरण आज दिखाई दे रहा है, एकमात्र उन्हीं के प्रयत्नों का सुपरिणाम है। देश की राष्ट्रीय महासभा आज जो अभूतपूर्व क्षमता प्राप्त करने में सफल हुई है और बाहर के देशों में भी उसको जो मान दिया जाता है वह सब भी महात्मा जी के अनवरत परिश्रम का फल है। आश्चर्य है कि उसी राष्ट्रीय महासभा ने इस बार उनकी सलाह नहीं मानी। महात्मा जी चाहते थे कि राष्ट्रीय महासभा योरपीय युद्ध में अँगरेज़-सरकार की सहायता करने का प्रस्ताव पास कर दे और इस अवसर पर अपनी कोई माँग न करे। महात्मा जी सच्चे अर्थों में सत्याग्रही हैं और वे अपने घोर से घोर शत्रु से भी उसे संकट में पड़ा देखकर, वाजिब लाभ भी प्राप्त करने को तैयार न होंगे। अपने इसी सिद्धान्त के अनुसार उन्होंने महासभा की कार्य-समिति को यह सलाह दी थी कि वह युद्ध में अँगरेज़-सरकार की सहायता करने का प्रस्ताव पास कर दे। परन्तु कार्य-समिति ने उनकी सलाह को नहीं माना। कदाचित् यह पहला ही अवसर है जब समिति ने उनकी सलाह नहीं मानी है। और अपना कोई निर्णय न करके पंडित जवाहरलाल नेहरू का एक प्रस्ताव पास किया है, जिसका मुख्य अंश इस प्रकार है—

अतः कार्य-समिति ब्रिटिश सरकार को आमन्त्रित करती है कि वह स्पष्ट शब्दों में इसकी घोषणा कर दे कि इस युद्ध का लक्ष्य क्या है और साम्राज्यवाद तथा लोकतंत्र के सम्बन्ध में उसकी नीति क्या है, तथा नई व्यवस्था की स्थापना के सम्बन्ध में और खास कर भारत में उसे कार्यान्वित करने के लिए वह क्या उपाय करना चाहती है।

निस्संदेह यह प्रस्ताव राजनैतिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है तो भी कार्य-समिति को महात्मा जी की सम्मति के अनुसार ही कार्य करना चाहिए था।

भारतीय राजनीति की दुरवस्था

योरप के युद्ध ने संसार में जो भयानक परिस्थिति उत्पन्न कर दी है उसका प्रभाव हमारे देश पर भी पड़ा है। यहाँ के राजनीतिज्ञों के ध्यान में भी यह बात आगई है कि यह समय घोर संकट का है, अतएव हमें अपने पारस्परिक मतभेदों को भूल कर एकता के सूत्र में आबद्ध होकर अपने निस्तार के लिए सर्वसम्मत मार्ग पर अग्रसर होना चाहिए। कौन होगा जो इस तथ्य की घोषणा का स्वागत न करेगा? हम देख ही रहे हैं कि इस समय हमारी राजनैतिक अवस्था एकदम निस्तेज और निर्बल है, जिसके कारण राजनैतिक क्षेत्र के हमारे वर्तमान सूत्रधार हैं। हमारे इन्हीं सूत्रधारों में से एक तेजस्वी सज्जन ने अभी हाल में बड़े दर्प के साथ कहा है कि अँगरेज़ राजनीतिज्ञों का दिवाला निकल गया है और आज जो उन्हें इस भारी विपत्ति का सामना करना पड़ रहा है वह सब उनकी पिछली भूलों का परिणाम है। क्या इन महानुभाव से विनम्रतापूर्वक हम पूछ सकते हैं कि यह किसकी भूल का परिणाम है जो वे स्वयं आज एकता की अपील यह कहकर कर रहे हैं कि—'परीक्षा का समय है। यदि हम इस परीक्षा में फेल हो गये तो पीछे रह जायँगे। इसलिए हमें आज इस दल या उस दल की बात नहीं करनी चाहिए, इस सम्प्रदाय या उस सम्प्रदाय के दृष्टिकोण से विचार नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह बड़े भारी मसले की बात है। समय की पुकार है संसार और भारत की स्वाधीनता के लिए आओ हम सब मिलकर और मतभेदों को भुला कर राष्ट्र की शक्तियों का संघटन करें।'

हमारे इन महानुभाव की यह अपील समय के अनुकूल है और हम भी कहते हैं, साथ ही चाहते हैं, कि सारे मतभेदों को भुलाकर इस आपत्ति के समय हमें एक साथ होकर अपने कर्तव्य की ओर ध्यान देना चाहिए। परन्तु यह तो कहने या चाहने भर से नहीं हो जायगा, और सो भी उस दशा में जब हमारे बीच मतभेदों की कोई थाह नहीं। और जाने दीजिए। स्वयं वह कांग्रेस आज मतभेद का अखाड़ा हो रही है जो सारे संसार में अपने देशव्यापी सुदृढ़ संगठन के लिए प्रख्यात थी। फिर हिन्दू-मुसलमानों का मतभेद अलग भयानक रूप धारण करता जा रहा है। देश की इस दारुण राजनैतिक अवस्था की ज़िम्मेदारी किस पर है? और क्या यह अवस्था किसी एक व्यक्ति की अपील पर, वह व्यक्ति चाहे कैसा ही महान् क्यों न हो, अनायास ही दूर की जा सकती है? ऐसी दशा में इस महान् संकट के अवसर पर भारत का रक्षक भगवान् ही है। वही चाहे तो यहाँ के लोकनायकों को सुबुद्धि प्रदान करे, उनमें एकता से काम करने की प्रेरणा कर सकता है। दिल्ली में वायसराय महोदय भिन्न भिन्न नेताओं से अलग अलग मिल रहे हैं। इससे क्या व्यक्त होता है? यही न कि कांग्रेस के सिवा अन्य भी ऐसे दल हैं जिनका महत्त्व सरकार मानती है, साथ ही यह भी कि वे सब एकमत नहीं हैं। भारत की यह अनेकता ही हमारी निर्बलता का द्योतक है। निर्बलता का ही नहीं, इस बात का भी कि हमारा राष्ट्रीयतावाद का इतना व्यापक प्रचार भी सभी वर्ग के लोगों को एकता के सूत्र में आबद्ध न कर सका। यह वास्तव में हमारे लिए बड़ी लज्जा और दुःख की बात है।

हमारे स्वास्थ्य की दयनीय दशा

केन्द्रीय सरकार के पब्लिक हेल्थ आफ़िसर ने सन् १९३७ की जो वार्षिक रिपोर्ट निकाली है वह सन् १९३९ के अन्त में अँगरेज़ी के अखबारों को प्राप्त हो सकी है। इन पत्रों ने उस रिपोर्ट के जो विवरण दिये हैं उनसे प्रकट होता है कि रिपोर्ट के साल बुखार ने देश में गज़ब ढाया है। इस बुखार से ही तीस लाख आदमी अकाल में काल-कवलित हो गये जिसमें दस लाख आदमी मौसमी बुखार में मर गये। मौसिमी बुखार की कुनैन अव्यर्थ दवा मानी जाती है और सरकार ने उसका व्यापक प्रचार करके सबको सुलभ कर दिया है। परन्तु लोगों के दुर्भाग्य से यह एक वस्तु भी अपने विशुद्ध रूप में नहीं मिलती है। स्वयं भारत-सरकार ही की यह सूचना है कि देश में असली कुनैन सुलभ नहीं है। ऐसी दशा में मौसमी बुखार की रोक-थाम कैसे हो सकती है?

रिपोर्ट से प्रकट होता है कि सरकार के स्वास्थ्य-विभाग ने क्षयरोग, कुष्ठ आदि विशेष विशेष महारोगों का निवारण करने के लिए उपयुक्त योजनाओं को कार्य में परिणत किया है। क्षयरोग के सम्बन्ध में सन् १९३९ में ही एक केन्द्रीय संगठन की स्थापना की गई थी

और इधर लेडी लिनलिथगो ने १९३७ के दिसम्बर में सम्राट् के नाम पर चन्दे की जो अपील की थी उससे क्षयरोग के निवारण के लिए व्यापक उपाय करने के लिए काफ़ी धन एकत्र हो गया है।

इसी प्रकार कुष्ठरोग को दूर करने के लिए सवा तीस लाख रुपये का फंड हो गया है, जिससे इस क्षेत्र में भी उपयोगी काम हो रहा है।

तथापि यह कहना ही होगा कि मौसमी बुखार की महामारी की ओर सरकार का ध्यान विशेष रूप से जाना चाहिए। और सो भी इसलिए कि इसका उग्र रूप देहातों में ही दिखाई देता है, जहाँ अभी तक चिकित्सा की उपयुक्त व्यवस्था भी नहीं है। उक्त रिपोर्ट में कहा गया है कि मौसमी बुखार से देहात के लोग शहर की अपेक्षा तिगुना मरते हैं।

डाक्टरों का कहना है कि मौसमी बुखार के कारण बरसाती मच्छड़ हैं। परन्तु साधारण लोग तो यह मानते हैं कि सारे रोगों का मूल कारण पौष्टिक खाद्य पदार्थों का अभाव है। इससे हम अपनी ओर से इतना जोड़ देना चाहते हैं कि प्राप्त खाद्य पदार्थों का अपने शुद्ध रूप में न मिलना भी एक कारण है। और जब तक इस ओर सरकारी स्वास्थ्य-विभाग समुचित रूप से ध्यान नहीं देंगे तब तक रोगों की रोक-थाम नहीं हो सकेगी।

दहेज-प्रथा पर क़ानूनी प्रतिबन्ध

कांग्रेसी शासन के प्रचलित होने पर जब 'सरस्वती' में नोट लिख कर हमने इस बात का आग्रह किया था कि प्रान्तीय सरकार दहेज की प्रथा पर क़ानूनी प्रतिबन्ध लगाकर उसको कठोरता से बन्द करे तब हमारे कुछ मित्रों ने उसको अव्यवहार्य बताया था। परन्तु अब हम देखते हैं कि धीरे धीरे एक एक करके सभी प्रान्तों में दहेज पर क़ानूनी प्रतिबन्ध लगाने की व्यवस्था की जा रही है। बिहार और सिन्ध के बाद अब पंजाब का भी ध्यान इस ओर गया है। वहाँ की एसेम्बली में भी दहेज पर प्रतिबन्ध लगानेवाला एक बिल पेश करने का नोटिस दिया गया है। यही नहीं, वहाँ एक ऐसा भी बिल पेश होनेवाला है, जिसमें इस बात की व्यवस्था की जायगी कि विधुर लोग कुमारियों से विवाह न करने पावें और वे केवल विधवाओं के ही साथ विवाह किया करें। पंजाब का यह प्रयत्न श्लाघ्य है। अन्य प्रान्तों में भी विधुर-विधवा-विवाह के सम्बन्ध में क़ानून बनना चाहिए। आखिर प्रजा के प्रतिनिधियों की सरकारों की उपयोगिता क्या है यदि वे राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक उन्नति करने का समुचित प्रयत्न नहीं करतीं। दहेज आदि दूषित प्रथाओं के कारण देश का समाज अस्त-व्यस्त हो गया है। कांग्रेसी सरकारों को चाहिए कि समाज-सुधार-सम्बन्धी उपयोगी क़ानून बनाकर राष्ट्र को समुन्नत करें।

बम्बई की सरकार की घोषणा

बम्बई की सरकार ने इस बात की घोषणा कर दी है कि विदेशी डिग्रियाँप्राप्त उम्मेदवारों को सरकारी नौकरी देने में भारतीय डिग्रियाँप्राप्त उम्मेदवारों के मुक़ाबिले में कोई तरजीह नहीं दी जायगी। बम्बई की सरकार की इस घोषणा का सभी न्याय-प्रिय लोग स्वागत करेंगे। इससे उन देशी पढ़े-लिखे लोगों के हक़ों की रक्षा हुई है जो अभी तक विदेश से पढ़ कर लौटे हुए लोगों के आगे दुतकार दिये जाते थे। यही नहीं, इस नीति के ग्रहण करने से अपने यहाँ के शिक्षाप्राप्त लोगों का भी महत्व स्थापित होता है। आशा है, हमारी अन्य प्रान्तीय सरकारें भी इस सम्बन्ध में शीघ्र ही बम्बई-सरकार का अनुसरण करके अपने कर्तव्य का पालन करेंगी।

कालिदास-दिवस कैसे मनायें?

उज्जैन के प्रसिद्ध हिन्दी-प्रेमी पण्डित सूर्यनारायण व्यास के प्रयत्न से कार्तिक शुक्ल १ को 'कालिदास-दिवस' मनाया जाने लगा है। गत वर्ष यह महान् दिवस लगभग ३७५ स्थानों में मनाया गया था। क्या ही अच्छा हो, हम अपने इस राष्ट्रीय महाकवि का दिवस सारे देश में व्यापक रूप से मनायें। व्यास जी ने इस वर्ष फिर एक अपील निकाली है। उसमें उन्होंने बताया है कि हमें अपना यह दिवस किस तरह मनाना चाहिए। उस अपील का आवश्यक अंश इस प्रकार है—

'कालिदास-दिवस' पर कालिदास के विश्वविश्रुत

नाटकों का संस्कृत या हिंदी में अभिनय किया जाय, कालिदास के काव्यों के रस से अपरिचितों को उस रोज़ काव्यामृतरसास्वाद करवाया जाय। काव्यगत विशेषताओं का विवेचन किया जाय, काव्यांतर्गत, भूगोल, इतिहास, विज्ञान, प्रकृति-वर्णन, ज्योतिष और स्थलों की ऐतिहासिक संगति पर आलोचनात्मक, ऐतिहासिक निबन्ध पढ़े जायँ और निबन्ध-लेखन के लिए पुरस्कार आदि का आयोजन किया जाय। विक्रम-सभा-नवरत्न-दरबार का काल्पनिक अभिनय किया जाय। इस प्रकार अनेक प्रकार से यह दिन मनोरंजक, गम्भीर और विद्वानों से लेकर सर्व-साधारण तक प्रिय एवं रोचक बनाया जा सकता है। कालिदासीय साहित्य पर अनेक पहलू से विचार-विमर्श किया जा सकता है।

कालिदासीय 'मेघदूत' काव्य के प्रायः समस्त भाषाओं में, गद्य और पद्य में अनुवाद हो चुके हैं। अपनी अपनी अभिरुचिपूर्वक उन पर चर्चा की जाय। संस्कृत-पाठशालाओं में कालिदासीय साहित्य की अर्चना की जाय। कालिदास-दिवस को कालिदास के नाम से समिति, संस्था या पुस्तकालय, पाठशाला आदि स्मृतिस्वरूप स्थापित किये जायँ। हर जगह इस विश्व-विभूति का स्मरण किया जा सके ऐसी योजना की जानी चाहिए। और हमें भी कहते हुए अभिमान हो कि विश्व का आराध्य कवि कालिदास भारत के समस्त नगरों में यशःशरीर से अमर है। समस्त शिक्षित समाज में उसकी अर्चना होती रहती है।

मुझे विश्वास है, समस्त भारतीय, विद्यानुरागी, पुरातन संस्कृति के अभिमानी और विशेषतः कालिदासीय साहित्यानुरागी सज्जनगण अवश्य ही महाकवि विश्व-वन्द्य कालिदास-जैसी अमर विभूति की पुनीत स्मृति में श्रद्धांजलि अर्पित करने का सार्वजनिक आयोजन करेंगे। समय जितना निकट आ रहा है, उतनी ही हममें इस पर्व के मनाने की उत्सुकता जाग्रत् हो जानी चाहिए।

संयुक्त-प्रान्त के किसानों का हक़ आराज़ी-क़ानून

संयुक्त-प्रान्त के किसानों का प्रसिद्ध क़ानून प्रान्तीय बड़ी कौंसिल से भी पास हो गया। दोनों व्यवस्थापक सभाओं में इस क़ानून का विरोधी दल ने डटकर विरोध किया, परन्तु अल्प-संख्या में होने के कारण वह उसका पास होना नहीं रोक सका। इस सफलता के लिए प्रान्तीय सरकार बधाई की पात्र है। इसमें सन्देह नहीं कि इस क़ानून से किसानों के एक वर्ग का काफ़ी अधिक हित होगा। खेद की बात है कि इसमें शिकमी किसानों की, जिन पर इस प्रान्त की सारी खेती का पूरा दार-मदार है, एकदम उपेक्षा की गई है। इस क़ानून से किसान जो लाभ उठा सकेंगे उसका परिचय प्रान्त के स्थानापन्न प्रधान मंत्री माननीय श्री रफ़ीअहमद किदवई साहब के निम्न सन्देश से भले प्रकार हो जायगा—

हक़ आराज़ी बिल दोनों हाउसों से जिस सूरत में पास हुआ है, किसानों को निम्नलिखित अधिकार देता है—

(१) हर एक काश्तकार जो शिकमी या सीर का काश्तकार नहीं है, मौरूसी काश्तकार हो जायगा।

(२) सीर के ज़्यादातर काश्तकार भी मौरूसी काश्तकार हो जायँगे।

(३) बिना ज़मींदार के पूछे, काश्तकारों को अपनी अपनी आराज़ी पर पेड़ लगाने का हक़ होगा।

(४) काश्तकारों को अपनी आराज़ी के किसी हिस्से पर मकान बनाने का हक़ होगा।

(५) अगर ज़मींदार को अपनी ज़रूरत के लिए या खुद खेती करवाने के लिए आराज़ी की ज़रूरत होगी तो काश्तकार बेदखल न हो सकेगा, जैसा कि अब तक हुआ करता था।

(६) क़ुर्की खुद-अख़्तियारी न हो सकेगी।

(७) लगान या क़र्ज़ की वसूलयाबी के लिए एक चौथाई से ज़्यादा खड़ी फ़सल कुर्क़ न हो सकेगी।

(८) जोत यद्यपि क़ाबिल इन्तक़ाल नहीं लेकिन लगान की डिगरी में नीलाम हो सकती है। नीलाम की रक़म से बक़ाया लगान काटने के बाद, बाक़ी रक़म काश्तकार को दे दी जायगी।

(९) अगर कोई ज़मींदार बक़ाया लगान के लिए किसी काश्तकार को बेदखल करने की दरख़्वास्त करेगा तो काश्तकार को बक़ाया अदा करने के लिए दो साल का वक़्त दिया जायगा और अगर वह इस दो साल में बक़ाया और हाल का लगान अदा कर देगा तो बेदखल नहीं होगा।

(१०) किसान की जोत पर लगे पेड़ उसके हो जायँगे बशर्ते कि वह उस ज़ोत पर पिछले ९ बरस से क़ाबिज़ रहा है।

इनके अलावा ज़ब्ती वग़ैरह में भी काश्तकारों के पक्ष में कई दूसरे परिवर्तन किये गये हैं। इन सबका नतीजा यह होगा कि जिस तरह ज़मींदार को अपनी ज़मींदारी पर हक़ होता है उसी तरह भविष्य में काश्तकार को अपनी आराज़ी पर हक़ होगा। जिस तरह ज़मींदार का लड़का अपने बाप का उत्तराधिकारी होता है उसी तरह काश्तकार का भी लड़का अपने बाप की आराज़ी का उत्तराधिकारी होगा। जिस तरह ज़मींदार की ज़मींदारी मालगुज़ारी न अदा करने पर नीलाम हो सकती है उसी तरह लगान न अदा करने पर क़ाश्तकार की जोत भी बेची जा सकेगी। दोनों के हक़ बराबर होंगे।

ज़मींदार और काश्तकार का सम्बन्ध उसी तरह का होगा जैसा कि गवर्नमेंट और ज़मींदारों का होता है। गवर्नमेंट को सिर्फ़ मालगुज़ारी वसूल करने का हक़ है। आइन्दा ज़मींदार का भी इतना ही हक़ होगा कि वह लगान वसूल करे। लगान नक़दी या गल्लई दोनों सूरतों में अदा किया जा सकता है। अगर सकिल रेट से लगान ज़्यादा है तो अदालत से काश्तकार उसे कम करा सकता है। मुझे उम्मीद है कि इस क़ानून से प्रान्त के पीड़ित किसानों को शान्ति मिलेगी और वे खुशहाल हो जायँगे।

प्रान्त के गवर्नर और गवर्नर-जनरल के हस्ताक्षर हो जाने पर यह क़ानून कार्य में परिणत होगा।

महात्मा गांधी की वर्षगाँठ -

२ अक्टूबर को महात्मा गांधी की ७१वीं वर्षगाँठ देश के भिन्न-भिन्न स्थानों में बड़े उत्साह के साथ मनाई गई। महात्मा गांधी ने अपने तपोबल से संसार में भारत का मस्तक ही नहीं ऊँचा किया है, किन्तु उन्होंने स्वयं भारतीयों को भी इस योग्य बना दिया है कि वे अपनी मातृभूमि को गौरव प्रदान करने को बहुत कुछ समर्थ माने जाते हैं। महात्मा गांधी सत्य और अहिंसा के सच्चे अर्थों में प्रतीक हैं। हरिश्चन्द्र और युधिष्ठिर के नाम सत्य-

महात्मा गांधी

निष्ठा के लिए तथा बुद्ध और महावीर के नाम अहिं[सा] के लिए भारतीय इतिहास में हमें पढ़ने भर [को] मिलते रहे हैं, परन्तु आज हम इन दोनों महत् भावना[ओं] को महात्मा गांधी के जीवन में चरितार्थ होते दे[खना] हममें से किसी के भी लिए बड़े भारी सौभाग्य की [बात] है। भारतीय समाज में ऐसे ही पुरुष अवतारी पुरु[ष] माने गये हैं। प्रसन्नता की बात है कि परम दार्शनि[क] सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने महात्मा गांधी को अवता[री] महापुरुष स्वीकार किया और उनकी इस ७१वीं वर्ष[गाँठ] पर उन्हें एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भेंट किया है, जिसमें संसा[र] के नामी नामी ६० से भी अधिक लोगों के लेख संग्र[ह किये] गये हैं। इन सभी लेखों में महात्मा जी के चरित [और] कार्यों का महत्त्व प्रकट किया गया है। इसमें सन्देह [नहीं] कि महात्मा गांधी भारत की एक महाविभूति हैं। भगवान् करे, वे चिरकाल तक स्वस्थ और सबल बने रहें जिससे भारत उनके अलौकिक ज्ञानालोक से निरन्[तर] देदीप्यमान होता रहे।

युद्ध की डायरी

३ अक्टूबर—जर्मनी के १५० वर्गमील भूभाग पर फ़्रेंच सेनाओं ने अधिकार कर लिया, रूस और इस्टोनियाँ में सन्धि हुई।

४ अक्टूबर—दो स्वीडिश जहाज जर्मनों-द्वारा पकड़ लिये गये। फ़्रेंच पनडुब्बे ने एक जर्मन व्यापारिक जहाज़ को पकड़ लिया। नार्वे का एक स्टीमर सुरङ्ग से टकरा कर सिङ्गापुर के पास डूब गया। हिटलर बर्लिन से वारसा गये। एक और जर्मन-जहाज़ (८००० टन) जिस पर कच्चा माल लदा हुआ था, डुबा दिया गया। मैक्सिको ने पोलैंड पर जर्मनी के आधिपत्य को स्वीकार करने से इनकार कर दिया। ज्विब्रुकन के समीप तोपों की गोलाबारी होती रही। अमेरिका के प्रेसिडेंन्ट रूज़वेल्ट ने युद्ध के पनडुब्बों को सहायता न देने की चेतावनी अमेरिका के जहाज़ों को दी। सारब्रुकन और ज्विब्रुकन तथा अन्य नगरों की ओर फ़्रेंच फ़ौजें दृढ़तापूर्वक बढ़ीं। इन नगरों को जर्मनों ने खाली कर दिया। पोलैंड में बिखरी हुई सेनाओं से कहीं कहीं अब भी जर्मनों से लड़ाई हो रही है। हंगेरी और रूमानिया में व्यापारिक समझौता हो गया। जर्मनी ने आश्वासन दिया कि वह लड़ाई में ज़हरीली गैस का प्रयोग न करेगा। जर्मन-सैनिक कई भागों में बँट गये ताकि वे फ़्रेंच सीमा पर आक्रमण कर सकें। ब्रिटिश जहाज़ों ने जर्मनी में पर्चे गिराये।

५ अक्टूबर—पश्चिमी मोर्चे पर फ़्रांसीसी सेनायें लक्ज़मबर्ग तक पहुँच गईं। दोनों ओर से तोपों से गोलों की वर्षा भी की गई। फ़्रेंच सेनाओं ने बर्ग नामक जङ्गल को अपने क़ब्ज़े में कर लिया। रूस-लटेविया-समझौते पर हस्ताक्षर हो गये। फ़्रेंच टैंकर ने एक पनडुब्बे को डुबा दिया। एक स्वीडिश जहाज़ (८००० टन) को उत्तरी सागर के तट के पास जर्मन-पनडुब्बों ने डुबा दिया तथा एक को पकड़ लिया। मोज़ेल और सार प्रान्तों में वर्षा होने पर भी हवाई युद्ध हुआ।

६ अक्टूबर—बेल्जियम के एक स्टीमर को एक जर्मन-पनडुब्बे ने बिस्के की खाड़ी में डुबा दिया। एक ब्रिटिश जहाज़ को एक जर्मन-पनडुब्बे ने डुबा दिया। कुछ और ब्रिटिश सेनायें और लड़ाई का सामान फ़्रांस पहुँचा। सिगफ़्रिड-लाइन पर ब्रिटिश वायुयानों और जर्मनी के वायुयानों में लड़ाई हुई। उत्तरी पोलैंड पर रूस-जर्मनी-समझौता के अनुसार जर्मनी का क़ब्ज़ा हो गया। तुर्की ने तटस्थ रहने की घोषणा की। पश्चिमी मोर्चे पर कई स्थानों पर लड़ाई हुई।

७ अक्टूबर—मोज़ेल और सार के बीच दोनों पक्षों में भीषण गोलाबारी हुई। राइन नदी के क्षेत्र में हवाई लड़ाई हुई। फ़्रांस का एक मशहूर जंगी जहाज़ गिरा दिया गया। उसके चार चालक गिरफ़्तार कर लिये गये। फ़्रांस के वायुयानों ने राइन नदी को पार करने का प्रयत्न किया, किन्तु वे भगा दिये गये। सारब्रुकन के दक्षिण-पश्चिमी क्षेत्र में फ़्रेंच वायुयानों ने बड़ी संख्या के साथ चक्कर लगाये। उत्तरी सागर में सुरङ्ग साफ़ करनेवाले २ ब्रिटिश जहाज़ों पर जर्मन हवाई जहाज़ों ने हमला किया।

८ अक्टूबर—मोज़ेल-क्षेत्र के पूर्व में जर्मनों ने फिर अचानक हमला किया, किन्तु वे पीछे हटा दिये गये। सार के दक्षिण और पश्चिम दोनों ओर से तोपों-द्वारा गोलाबारी हुई। राइन नदी के दक्षिणी किनारे पर कान्स्टैंस झील से लेकर बैसेल तक बड़ी भारी संख्या में जर्मन-सेनायें भारी हमले की तैयारी में इकट्ठा होने लगीं। राइन नदी के तट पर १६ मील के अन्दर के सभी जर्मन गाँव खाली कराये जाने लगे। वारसा के दक्षिण-पश्चिम १७००० पोल सिपाहियों ने जर्मनों को आत्मसमर्पण कर दिया। उत्तरी सागर पर एक जर्मन-वायुयान गिराया गया। इँग्लिश चैनल में एक डच-स्टीमर डुबाया गया।

९ अक्टूबर—उत्तरी सागर के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में जर्मन बम बरसानेवाले जहाज़ों और ब्रिटेन के क्रूज़रों तथा विध्वंसक जहाज़ों में कई बार लड़ाई हुई। समुद्र पर एक फ़्रेंच जहाज ने एक जर्मन-पनडुब्बे को नष्ट किया। सार के पूर्व में और पश्चिम में दोनों ओर से भीषण गोलाबारी हुई। एक ब्रिटिश मोटर बोट इँग्लिश चैनल में धड़ाके से नष्ट हो गया। जर्मन-सीमा के पास सार की घाटी में एक पुल उड़ा दिया गया। फिनलैंड का एक जहाज़ देरशोलिग टापू के पास बारूद की सुरंग से टकराकर नष्ट हो गया। इस्टोनिया, लटेविया, लिथुआनिया आदि बाल्टिक प्रदेशों से जर्मनों का हटाना शुरू हो गया। रूस की फ़ौजों ने इस्टोनिया की सीमा की ओर बढ़ना शुरू कर दिया।

१० अक्टूबर—सिगफ़्रिड क़िलेबन्दी पर जर्मन-वायुयानों की ब्रिटिश व फ़्रेंच वायुयानों से गहरी लड़ाई हुई। रूस और लिथुआनिया में सन्धि हो गई। इस सन्धि के अनुसार विलना नगर और ज़िला लिथुआनिया को लौटा दिया जायगा। लिथुआनिया के कुछ स्थानों में रूस को पैदल और हवाई सेनायें रखने का अधिकार मिल गया। इस्टोनिया के भूतपूर्व प्रधान मंत्री के लड़के मो० एलमार टोयेनिसन को गोली मार दी गई।

१४ अक्टूबर—जर्मन-पनडुब्बे ने ब्रिटेन का एक प्रसिद्ध जहाज़ डुबा दिया।

१६ अक्टूबर—मोज़ेल के पूर्व ४ मील की दूरी पर जर्मन-सेनाओं ने भयानक आक्रमण किया।

१७-१८ अक्टूबर—वर्षा के कारण पश्चिमी मोर्चे पर सैन्य-संचालन का काम स्थगित रहा।

१९ अक्टूबर—तुर्की, इँग्लैंड और फ़्रांस में सन्धि हो गई।

२० अक्टूबर—जर्मन-हवाई जहाज़ों ने स्कापाफ़्लो पर हमला किया।

Printed and published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd. ALLAHABAD.

इस अंक में पढ़िए—
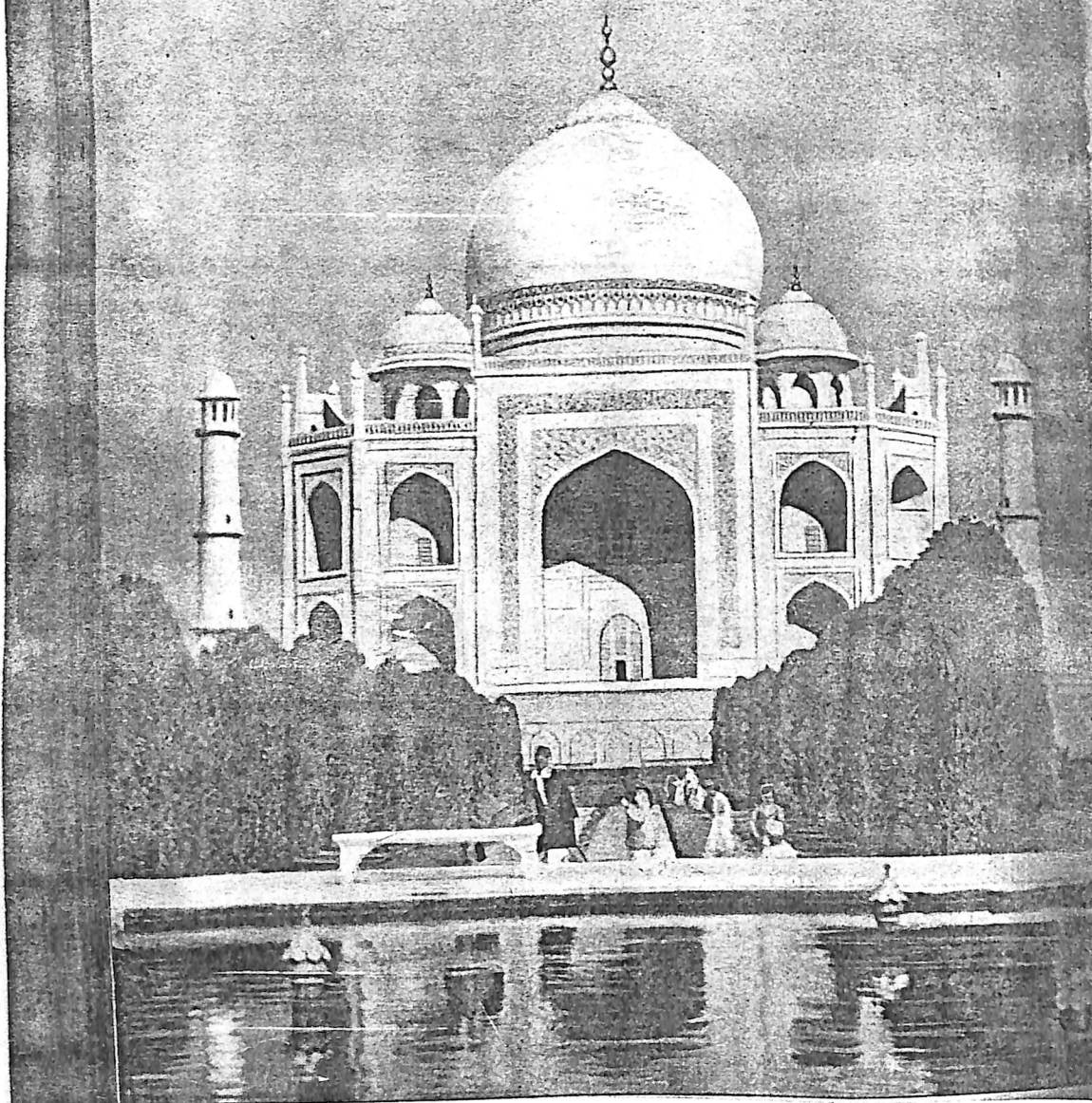
सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल—उमेशचन्द्र देव

दिसम्बर १९३९ } भाग ४०, खंड २ संख्या ६, पूर्ण संख्या ४८० { मार्गशीर्ष १९९६

रूप-शिखा

लेखक, श्रीयुत नरेन्द्र

तुम दुबली-पतली, दीपक की लौ-सी सुंदर !
मैं अंधकार,
मैं दुर्निवार,
मैं तुम्हें समेटे हूँ सौ-सौ बाँहों में, मेरी ज्योति प्रखर !

आपुलक गात में मलयवात,
मैं चिर-मिलनातुर जन्मजात,
तुम लज्जाधीर, शरीर-प्राण,
थर थर कंपित ज्यों स्वर्ण-पात,
कँपती छायावत् रात, काँपते तम-प्रकाश आलिङ्गन भर !

आँखों से ओझल ज्योति-पात्र;—
तुम गलित स्वर्ण की क्षीण धार,
स्वर्गिक सुषमा उतरीं भू पर,
साकार हुईं छवि निराकार,
तुम स्वर्गङ्गा, मैं गंगाधर, उतरो, प्रियतर, सिर आँखों पर !

नलकी में झलका अंगारक,
बुंदों में गुरु-उशना तारक,
शीतल शशि-ज्वाला की लपटों-से,
वसन—दमकती द्युति चम्पक,
तुम रत्न-दीप की रूप-शिखा, तन स्वर्ण-प्रभा, कुसुमित अम्बर !
तुम दुबली-पतली, दीपक की लौ-सी सुंदर !

मुंशी सदासुख राय

लेखक, श्रीयुत भुवनेश्वर गौड़

[मुंशी सदासुख राय वर्तमान हिन्दी के प्रथम लेखक माने गये हैं, पर उनका पूरा साहित्य अब तक अप्राप्त है, अतः उनके विषय में हिन्दी के पाठकों को बहुत कम ज्ञात है। प्रस्तुत लेख के लेखक महोदय मुंशी जी के वंशज हैं। उन्होंने मुंशी जी के सम्बन्ध में पर्याप्त अनुसन्धान किया है और उनके सम्बन्ध में कई नई बातों की जानकारी प्राप्त की है। उनमें कुछ का दिग्दर्शन इस लेख में कराया गया है।]

न्दी के गद्य के चार आचार्य माने गये हैं। वे हैं मुंशी सदासुख राय, इंशा अल्ला ख़ाँ, सदल मिश्र और लल्लूलाल। इन चारों में सर्व-प्रथम लेखनी उठानेवाले मुंशी सदासुख राय हैं। पहले कुछ लोगों की धारणा थी कि कलकत्ते के 'फ़ोर्ट विलियम कालेज' के अध्यक्ष जान गिल क्राइस्ट ने ही सर्व-प्रथम देशी भाषा की पुस्तकें लिखाई थीं और इस तरह से उनकी प्रेरणा से लल्लूलाल और सदल मिश्र ने अपनी हिन्दी के गद्य में सर्व-प्रथम पुस्तकें लिखी थीं। किन्तु यह सत्य नहीं है। यह निर्धारित किया जा चुका है कि मुंशी सदासुख राय ने ही सर्व-प्रथम अपनी लेखनी उठाई थी और सो भी न तो किसी की प्रेरणा से और न किसी विशेष परिस्थिति के कारण, अपितु स्वान्तःसुखाय ही लिखना प्रारम्भ किया था। मुंशी जी की भाषा भी अपने समय के उक्त आचार्यों की अपेक्षा कहीं अधिक साधु, सुगठित, संस्कृत के तत्सम शब्दों से युक्त और उसके आधुनिक स्वरूप के अनुकूल है; अतएव वे ही आधुनिक हिन्दी के प्रथम प्रतिष्ठापक हैं। उन्होंने पुस्तकें भी बहुत-सी लिखी हैं। अँगरेज़-लेखक चासर की भाँति यदि हम मुंशी जी को 'हिन्दी-गद्य के पिता' की उपाधि दें तो कोई त्रुटि न होगी।

खेद है कि हमें अपने इन महान् आचार्य और 'हिन्दी के प्रतिष्ठापक' के सम्बन्ध में भी अत्यन्त कम बातें ज्ञात हैं।

भाषा-साहित्य के इतिहास में उनके सम्बन्ध में लिखा है कि मुंशी जी ने श्रीमद्भागवत का 'सुख-सागर' नाम से हिन्दी में अनुवाद किया है। यह भी लिखा है कि उन्होंने 'मुंतखबुत्तवारीख़' नाम की एक और पुस्तक लिखी है और वे फ़ारसी, संस्कृत और उर्दू के अच्छे विद्वान थे। मुंशी जी हमारे पूर्वज थे। उनकी एक प्रस्तर-मूर्ति हमारे यहाँ आज भी सुरक्षित है। इस मूर्ति पर यह इस तरह खुदा हुआ है—

॥ व्यास अवतार मुंशी ॥	श्री संवत् १८८१ ॥
॥सदासुषराय कायस्थ गौड़॥	को वैकुण्ठवास

मूर्ति-निर्माता ने उन्हें 'व्यास-अवतार' कदाचित् इसी लिए लिखा है कि उन्होंने श्रीमद्भागवत का हिन्दी में भाषान्तर किया था।

मुंशी जी कायस्थ थे, भगवद्भक्त थे और अन्तिम दिनों में प्रयाग में आकर रहे थे। उक्त मूर्ति में भी "गौड़ कायस्थ" स्पष्ट लिखा है। वे भक्त की भाँति कंठी पहने, पैर मोड़े और हाथ जोड़े हुए बैठे हैं। वैष्णव-सम्प्रदायवालों की भाँति उनके मस्तक पर तिलक भी लगा है। साथ ही उनका स्वरूप भी ध्यानस्थ-सा है। इस मूर्ति से स्पष्ट व्यक्त होता है कि वे वैष्णव-विचार के थे। मुंशी जी के पिता स्वयं एक बड़े भारी भक्त थे। और उन्होंने भी सचित्र और भक्ति-परक अनेक पुस्तकें लिखी हैं। हिन्दी के इतिहास में मुंशी जी की मृत्यु तिथि संवत् १८८१ बताई गई है। उक्त मूर्ति में भी यही तिथि दी हुई है।

सभी लेखकों ने मुंशी जी का उपनाम 'नियाज़' बताया है, किन्तु उनके लेखों और मूर्ति में उनका उपनाम 'निसार' लिखा है। ('नियाज' लिखने का कारण यह ज्ञात होता है कि अरबी-लिपि में 'नियाज' और 'निसार' एक ही प्रकार से लिखा जाता है)। प्रथम अनुसन्धानक को सम्भवतः कोई फ़ारसी-लिपि की पुस्तक मिली होगी अतः उन्होंने 'निसार' पढ़ने के स्थान पर 'नियाज' पढ़ लिया होगा। उनकी फ़ारसी-रचनाओं में 'निसार' उप-नाम का होना ही ठीक जँचता है। इसी प्रकार एक प्राप्त

[मुंशी सदासुख राय की प्रस्तर-मूर्त्ति]

नोट-बुक में उनकी लिखी फ़ारसी की एक रुबाई है:—

"तसनीफ़ रुबाइयात अस्तबे 'निसार',
है तरह जदीद व नौ चो बाग़े फ़रखार।
देखे जो कोई सखुनवर अज़ चश्म करम्,
लाज़िम है कि इस्लाह से दे उसको वकार॥"

इस तरह की अन्य सभी रुबाइयों और रचनाओं में 'निसार' आया है। अरबी-लिपि के कारण यह 'नियाज़' भी पढ़ा जा सकता है, परन्तु दूसरे चरण में 'फ़रखार' आया है, जिसका तुक 'निसार' से ही बैठता है, यदि नियाज़ हो तो तुक नहीं मिलता। अतः 'निसार' पढ़ना ही ठीक है। और जैसा कि उक्त मूर्ति से भी प्रकट होता है, यही उनका उपनाम है।

मुंशी सदासुख राय के पूर्वज और उनके पिता गाज़ीपुर ज़िले के सैदपुर नामक स्थान के रहनेवाले थे। मुंशी जी के पिता का नाम मुंशी शीतलचन्द और पितामह का नाम भाईराम था। वे बादशाह मुहम्मदशाह के दरबार में पाँचसदी मनसबदार थे। मुंशी जी के पिता के पूर्वज दिल्ली में ही रहते थे।

मुंशी सदासुख राय का जन्म संवत् १८०३ में हुआ था। सरकारी नौकरी के सिलसिले में वे गाज़ीपुर से दिल्ली गये और वहाँ रहने लगे। शाही दरबार में उनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। इसके बाद वे ईस्ट-इंडिया कम्पनी की नौकरी के सिलसिले में चुनार आये। इन्हीं दिनों उन्होंने उर्दू और फ़ारसी में बहुत-सी पुस्तकें लिखीं और काफ़ी शायरी और हिन्दी-रचनायें भी कीं। चुनार में वे कम्पनी-सरकार के तहसीलदार थे। यों तो उनको अपनी नौकरी के कारण भिन्न भिन्न स्थानों में रहना पड़ा, किन्तु ज़्यादातर वे चुनार में ही रहे। ६५ वर्ष की आयु में नौकरी छोड़कर वे चुनार से प्रयाग में आकर रहने लगे। प्रयाग में रहकर वे अपने जीवन का शेष भाग हरि-भजन में व्यतीत करना चाहते थे। यहाँ उनकी ससुराल थी। ससुराल से मुंशी जी के रहने को एक मकान मिला था, जो बाद को उन्हें दे ही दिया गया। दिल्ली में मुंशी जी के पास बहुत-सा शाही सामान तथा विलासिता की वस्तुएँ और धन था, जो अहमदशाह दुर्रानी के आक्रमण के समय सबका सब लुट गया था। प्रयाग में उनके पास पिछले दिनों की कमाई का ही धन था। प्रयाग आकर वे एक साधु की भाँति अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

मुंशी सदासुख राय ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तकें—'मुंतखबुत्तवारीख़' तथा 'सुखसागर' संवत् १८७५ तक समाप्त कर दी थीं। इसके बाद वे गीता का अनुवाद तथा अन्य पुस्तकें लिखते रहे। उन्होंने उर्दू और फ़ारसी की शायरी के अतिरिक्त ब्रजभाषा में कवितायें और भजन भी बनाये लिखे हैं। ये भजन और कवितायें अधिकतर ईश्वर-सम्बन्धी या अध्यात्म-विषयक हैं। उन्होंने कई पुस्तकें और कवितायें लिखी हैं, किन्तु वे सभी अब अप्राप्य हैं, न उनका पता ही मिल रहा है। उनके हाथ की लिखी एक 'नोट-बुक' प्राप्त है, जो पद्य में लिखी है।

मुंशी जी ने श्रीमद्भागवत के कुछ स्थलों को हिन्दी के 'कड़खा' इत्यादि छन्दों में लिखा है। ऐसी रचनाओं में उन्होंने उर्दू-शब्दों का प्रयोग भी किया है। गोवर्द्धन-

धारण के समय वादलों की सेना का वर्णन वे इस भाँति करते हैं—

"करके नज़्म व नस्क फ़ौज का ठाठ-वाट से ।
चले वादल सायक़ा मैमना राद मैसरा आँधी हरावल ॥
इत्यादि— —सुखसागर"

किन्तु सुखसागर का मंगलाचरण हिन्दी के तत्सम शव्दों में ही लिखा गया है। जो इस प्रकार है—

मंगलाचरण

हर नाम सबका सार है, हर नाम से उद्धार है।
हर नाम दुख में यार है, गोविन्द भज, गोविन्द भज ॥
हर से वड़ा हर नाम है, हर नाम से आराम है।
हर नाम ही सों काम है, गोविन्द भज, गोविन्द भज ॥
हर नाम सुख का मूल है, आनन्द का फल-फूल है।
दो-सिन्धु का यह कूल है, गोविन्द भज, गोविन्द भज ॥
हर नाम रस जिसने पिया, वह कल्प-कल्पान्तर जिया।
ब्राह्मण कि वह चाण्डाल हो, हर नाम में ख़ुशहाल हो।
दौलत से मालामाल हो, गोविन्द भज, गोविन्द भज ॥

* * *

वस, कुन 'निसार'ई गुफ़्तगू—दर फ़ारसी—गो वेह अज़ू।
वायद–न मूदन ज़िक्रे-ऊ, हर नाम गो—हरनाम गो ॥

मुंशी जी 'भाषा' के प्रेमी थे। और उन्होंने जो भाषा लिखी है वह संस्कृतमिश्रित ऊँचे दरजे की भाषा है। और उसी भाषा में अपना 'सुखसागर' और 'गीता' लिखी है। उन्हें उस साधु-भाषा का हिन्दू-समाज से, उर्दू के प्रवेश के कारण, उठजाने का भारी दुःख था। उन्होंने लिखा है–

"रस्मो-रिवाज भाखा का दुनियाँ से उठ गया ॥"

सारांश यह कि मुंशी जी ने हिन्दुओं की शिष्ट वोल-चाल की भाषा में ही अपने भाव व्यक्त किये हैं। उर्दू से भाषा नहीं ली। इनकी क्रियाओं और शब्दों के स्वरूप स्पष्ट बताते हैं, कि उर्दू से सर्वथा पृथक् खड़ी बोली में ही उन्होंने अपनी पुस्तकें लिखी हैं। उन्हीं की भाषा का वाइविल के अनुवादकों ने अनुसरण किया है। स्वयं केरे साहव ने बाइविल का हिन्दी-अनुवाद 'नये धर्म-नियम' के नाम से संवत् १८६६ में कराया, फिर समग्र ईसाई-पुस्तकों का भी भाषानुवाद संवत् १८८५ में समाप्त हुआ और इन सबमें भाषा मुंशी सदासुख राय की ही रक्खी गई। इनमें उर्दूपन को स्थान नहीं दिया गया। मुंशी जी की भाषा इस तरह हिन्दी-गद्य के विकास-काल में आदर्श रूप से स्वीकार की गई।

मुंशी जी गद्य के एक प्रचण्ड लेखक ही नहीं, एक ऊँचे दरजे के कवि भी थे। परन्तु उनकी हिन्दी की रचनायें वहुत कम मिलती हैं। हाँ, उर्दू की थोड़ी-वहुत रचनायें मिलती हैं। एक रचना में उन्होंने अपने कुल की उन्नति की आकांक्षा से "गौड़-वंश" की हजो की है। इस हजो में वे लिखते हैं:—

"क़िस्म जामिद में हुआ सीमतिला अफ़ज़ल तर,
जिनसे नामी में वो शै जिससे वनै क़न्द व शकर।
जिनसे हैवाँ में फ़उस ज़्यादा अजाँ नौ ये वशर,
इसमें वह शख़्श कि जो अहले-हुनर साहवे ज़र।
"गौड़" हैं किसमें इलाही ! कि न इधर, न उधर ॥
संग होते तो कहीं होके सनम पुजवाते,
काठ होते तो इमारत में कहीं लग जाते।
होते हैवाँ तो कहीं घास, खली, भुस खाते,
होते इनसाँ तो लियाक़त से कहीं जस पाते ॥
यह न अहजार, न अशजार, न हैवाँ, न वशर ॥'—इत्यादि

मुंशी जी चित्रकार भी थे। सूर के कुछ पदों के रागों को उन्होंने सचित्र किया है। यहाँ उनका एक चित्र दिया गया है।

अन्यत्र कथित प्राप्त 'नोट-बुक' के अन्तिम पृष्ठों में मुंशी जी की मृत्यु के सम्वन्ध में कुछ दोहे हैं जो सम्भवतः उनके किसी निकटतम सम्वन्धी के लिखे जान पड़ते हैं और जिसके अक्षरों की लिपि में भी पर्याप्त अन्तर है। वे दोहे ये हैं—

"अस्टादश शत वर्ख पर, वीते अस्सी एक।
अगहन मास के दशमी, सुकुल पच्छ . . . .नेक ॥"

(इस दोहे में का रिक्त स्थान दीमकों ने खा डाला है, अतः नहीं पढ़ा जा सकता।)

"वुध वासर रवि उदय में, सुभ नछत्र तिथि पाय।
परम हुलास आनन्द सों, इप्ट देव सिर नाय ॥
तीरथ-राज प्रयाग में, आज्ञा ईश्वर पाय।
पग धारे बैकुंठ को, गौड़ सदासुख राय ॥"

हम मुंशी जी की अप्राप्त पुस्तकों और कविताओं की खोज कर रहे हैं और हमें आशा है कि हम उनको प्राप्त करने में समर्थ होंगे।

सीलोन और भारत

लेखक, श्रीयुत अवनीन्द्र विद्यालंकार

समस्त भारत ने वड़े क्षोभ के साथ इस समाचार को सुना कि सीलोन से १,००० भारतीय वापस भेज दिये गये हैं और अप्रैल १९३४ के वाद से वहाँ सरकारी महकमों में दिहाड़ी पर काम करनेवाले और लगभग २०,००० भारतीय २,५०,००,००० रुपया खर्च करके शीघ्र वापस भेज दिये जायँगे। कांग्रेस ने इनको वेरोज़गारी से वचाने का भरसक प्रयत्न किया, अपने एक प्रतिनिधि पण्डित जवाहर-लाल नेहरू को वहाँ भेजा, मगर वह भी इनकी रक्षा न कर सकी। इस घटना ने सीलोन और भारत के सम्वन्ध को नये रूप में हमारे सामने उपस्थित किया है। एक समय तामिलों ने सिंहालियों को विजय किया था और आज सिंहाली तामिलों को भगा रहे हैं। इतिहास अपने को दोहराता रहता है। अतः इस प्रश्न पर भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से विचार करना आवश्यक है। सीलोन से भारत का नवीन व्यापारिक समझौता भी होनेवाला है और इस विषय की वातचीत नवम्वर में शुरू हो गई, अतः इन वातों की समीक्षा करना लाभकर होगा।

केवल २४ मील दूर

सीलोन भारतीय अन्तरीप के पैरों के नीचे एक मसा के समान लटका हुआ है। यह रामायण-प्रसिद्ध रावण का देश लंका है, यह विवादास्पद है। मगर ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से यह देश भारत से चिरकाल से सम्बन्धित है। धनुष्कोटि से तालगईमानर २४ मील दूर है और इस अन्तर को पार करने में लगभग ६ घंटे लगते हैं। धनुष्कोटि से तालाईमानर जाते हुए वीच समुद्र में पाक स्ट्रेट में पुराण-प्रसिद्ध रामसेतु के पत्थर दिखाई देते हैं। समुद्र यहाँ ज़्यादा उथला और सतह से ज़्यादा ऊँचा है।

इस वात को जाने भी दें, तो भी यह इतिहास-द्वारा स्वीकृत तथ्य है कि सीलोन के वर्तमान निवासी सिंहाली मूलतः भारतीय हैं। राजा विजय ने सीलोन को विजय किया और उसके वंशजों ने ३०० ईसवी तक वहाँ राज्य करके इस देश को सभ्य और सुसंस्कृत वनाया। इस सिलसिले में सम्राट् अशोक-द्वारा वौद्ध-धर्म-प्रचारार्थ अपने पुत्र और पुत्री महेन्द्र और महेन्द्री को सीलोन भेजने की वात हम कैसे भुला सकते हैं। सीलोन का इतिहास दो भागों में बाँटा जा सकता है। पहला सिंहाली महावंश–(५०० ई० पूर्व से ३०० ई० तक) और दूसरा सुलुवंश–३०० ईसवी से आगे। पहला भाग सभ्यता के विस्तार की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। २५० ई० पूर्व यहाँ वौद्ध-धर्म आया और सारा द्वीप उस धर्म में दीक्षित हो गया। दूसरा भाग दक्षिण में भारत के तामिल, पाण्डच, चोल नरेशों से संघर्ष का है। उस काल में प्रसिद्ध नरेश पराक्रमबाहू (११५३ से ११८६) के समय को छोड़कर सिंहाली कभी विजयी नहीं हुए। वहुत देर तक लड़ने के वाद तामिलियों ने उत्तरीय सीलोन में अपनी बस्ती वसा ली; यह प्रदेश जाफ़ा के नाम से प्रसिद्ध है। इस देश की तम्वाकू प्रसिद्ध है और त्रावनकोर सरकार ने अपने नारियल-व्यापार की रक्षा की ख़ातिर जाफ़ा की तम्वाकू पर ही कर लगाया है। इसके फलस्वरूप सिंहाली दण्डित न होकर तामिल ही दण्डित हुए हैं।

१६०० ई० के वाद से सीलोन का इतिहास विदेशी लोगों के उस देश में आवाद होने का है। सर्व-प्रथम पुर्चगीज़ आये और अपने साथ कैथोलिक धर्म लाये। इसके वाद डच आये और वे रोमन-क़ानून अपने साथ लाये। इनके वाद मूर आये और इन्होंने सीलोन का सामुद्रिक व्यापार वढ़ाया। सवके अन्त में वहाँ अँगरेज़ आये। सीलोन १७९६ से लेकर १८०२ तक मद्रास-प्रान्त का भी हिस्सा रहा है। मगर अदन के समान सामरिक दृष्टि से इसको भी भारत से अलग कर दिया गया। सीलोन आज सब जातियों—सव धर्मों का देश है। वहाँ आप हर एक नस्ल का और हर एक भाषा वोलनेवाला व्यक्ति पा सकते हैं।

भारतीयों की बस्ती

सीलोन समशीतोष्ण देश है। पर्याप्त वर्षा होती है। तापमान न अधिक गरम और न अधिक ठंडा है।

शाक-सब्ज़ी और फल-फूल से समृद्ध है। यह उत्तर से दक्षिण की ओर अधिक-से-अधिक २७० मील लम्बा और १४० मील चौड़ा अर्थात् २५,००० वर्ग मील है। सीलोन इँगलैंड से आधा है और आबादी ५५ लाख है। इसी में सिंहाली ३२,५०,००० हैं और भारतीय १२,५०,००० हैं। ५ लाख ईसाई, ४ लाख मुसलमान और कुछ हज़ार अन्य धर्मों के लोग हैं। हिन्दू अधिकांश में तामिल हैं। ये दो भागों में बाँटे जा सकते हैं। आधे हिन्दू इसी देश में पैदा हुए हैं और वे और किसी दूसरे देश को नहीं जानते। शेष ६,००,००० मदरास-प्रान्त से आये हुए श्रमी व कुली हैं, जो कुछ साल तक मध्यवर्ती पठार में काम करके अपने देश वापस चले जाते हैं। वहाँ के निवासी तामिल प्रसिद्ध जाफ़ना तम्बाकू पैदा करते हैं और उत्तर और पूर्व में कुछ धान भी पैदा करते हैं। दूसरी ओर ९५ फ़ी सदी प्रवासी तामिल रबड़ और चाय के बग़ीचों में काम करते हैं और शेष के आधे नारियल के उद्यानों में। दक्षिणी और पश्चिमी इलाक़े की उपजाऊ भूमि में सिंहाली नारियल की खेती करते हैं और योरपीय प्लाण्टर मध्य की ऊँची ज़मीन में रबड़ और चाय के बग़ीचों के मालिक हैं। सीलोन का फुटकर व्यापार मूरों, मलयों और चेटियों के हाथ में है।

प्रवासी श्रमी

प्रवासी श्रमियों की संख्या ६,००,००० के लगभग रखने के लिए प्रतिवर्ष भारत से श्रमी सरकार की सहायता से भेजे जाते थे। इस साल भारत-सरकार ने सीलोन-सरकार की भारत-विरोधी नीति के विरोध में श्रमियों का वहाँ भेजना बन्द कर दिया है। वहाँ भेजे जानेवाले कुलियों की संख्या आवश्यकता के अनुसार घटती-बढ़ती रहती है। सीलोन जानेवाले सबके सब श्रमी और कुली ही नहीं होते। यथा, १९३६ में ४१,००० भारतीय श्रमी बग़ीचों में काम करने गये जब कि ९७,००० स्वतंत्र रूप से गये। इनमें से बहुत से वहाँ जाकर मज़दूरी करते हैं मगर बहुत-से व्यापार-व्यवसाय, खेती वग़ैरह में भी लग जाते हैं। आँकड़ों को देखने से मालूम होता है कि सीलोन जानेवाले भारतीय वहाँ बस जाना पसन्द नहीं करते। १९३२-१९३६ के पाँच वर्षों में उदाहरणार्थ, ३,०८,१९५ भारतीय श्रमी सीलोन गये जब कि इस अवधि में २,४२,०२० श्रमी वहाँ से लौट आये। इसी काल में ४,८७,१११ श्रमी भारतीय वहाँ गये और इसी श्रेणी के ५,६५,८०८ भारतीय सीलोन से लौट आये। इन चारों अंकों को देखने से मालूम होगा कि भारत से सीलोन जितने गये उनकी अपेक्षा इस काल में २,५२३ अधिक भारतीय भारत लौट आये।

भारतीय श्रम का महत्त्व

अधिकांश श्रमी भारतीय इस्टेटों में लगे हुए हैं, मगर ५०,००० कोलम्बो-डाकयार्ड, म्युनिस्पल और लोकल गवर्नमेंट सर्विसों में लगे हुए हैं। भारतीय श्रम का महत्त्व चाय और रबड़ की उत्पत्ति और उसके मूल्य से जाना जा सकता है। चाय लगभग ६,००,००० एकड़ में उगती है और प्रतिवर्ष १५ करोड़ रुपये की होती है। रबड़ भी ६,००,००० एकड़ में होता है और इसकी क़ीमत ५ करोड़ रुपये होती है। नारियल की खेती में, जहाँ आधे श्रमी तामिल हैं, लगभग हर साल ३½ करोड़ रुपये की आमदनी होती है। सारे द्वीप की कुल पैदावार की क़ीमत लगभग २४ करोड़ रुपये है और इसमें १६-१८ करोड़ रुपये की सम्पत्ति भारतीय श्रम का फल है। सीलोन का निर्यात-व्यापार केवल २,६०८ करोड़ रुपये का है। इससे स्पष्ट है कि सीलोन भारतीय श्रम के अभाव में श्रीहीन हो जायगा।

श्रमियों की अवस्था

मगर सम्पत्ति के उत्पादक भारतीयों को जो वेतन या उजरत दी जाती है, वह अपर्याप्त है। यद्यपि भारत की तुलना में ज़्यादा है तथापि हमें यह न भूलना चाहिए कि वे लोग स्वदेश छोड़कर वहाँ गये हुए हैं। एक हृष्ट-पुष्ट आदमी चाय के बाग़ में ८ आना प्रतिदिन और नीचे की ज़मीनों में ६ आना प्रतिदिन कमाता है। स्त्री का वेतन इन्हीं अवस्थाओं में पुरुष से १½ आना कम और बच्चों को स्त्रियों से भी १½ आना कम मिलता है। डाक यार्ड में एक श्रमी एक दिन में १२ घंटे काम करके १ रुपया १२ आना पाता है। चाय के बाग़ों में काम करनेवाले मज़दूरों को जैसा-तैसा घर और दवा-दारू मुफ़्त मिलती है। डाकयार्ड के लोग अपनी क़िस्मत पर छोड़ दिये गये हैं। सीलोन में पूँजीपतियों का अभाव-सा है। मज़दूरों की शिक्षा और मनोरंजन का कोई प्रबन्ध नहीं है। उनकी आय का अधिकांश द्वीप में ही भोजन और वस्त्रों में खर्च हो जाता है और वे भारत ग़रीबी की हालत में ही लौटते हैं।

व्यापार

सीलोन की सम्पत्ति चाय के कारण है, और यह वैभव भारतीय श्रम का फल है। यदि चाय की पत्तियाँ कुछ नष्ट हो जायँ और एक आना प्रतिशत नुक़सान हो जाय तो सीलोन की चाय से होनेवाली १५ करोड़ रुपये की आमदनी भी उसी अनुपात में कम हो जायगी। चाय के बाद महत्त्व-पूर्ण चीज़ें रबड़, नारियल की चीज़ें, कोको, दारचीनी, इलायची और तम्बाकू हैं। इससे स्पष्ट है कि सीलोन अपनी खेती और बाग़ों की आमदनी पर निर्भर है। इसके बदले वह तैयार माल और खाद्य-सामग्री लेता है। निर्यात-व्यापार का विश्लेषण करने से मालूम होता है कि चाय ५७½ प्रतिशत (१५ करोड़ रुपया), रबड़ १६½ प्रतिशत (३·८ करोड़ रुपया) नारियल का तेल और खोपड़ा १०·८ प्रतिशत (३·५ करोड़ रुपया) है। १९३६ की सरकारी वार्षिक-रिपोर्ट के अनुसार सीलोन का निर्यात-व्यापार २६·८ करोड़ रुपये का था।

महत्त्व की दृष्टि से आयात-व्यापार में १० करोड़ रुपये की खाद्य-सामग्री, ८ करोड़ रुपये का तैयार माल, ३ करोड़ रुपये की अधूरी तैयार हुई चीज़ें हैं। १९२६ में कुल आयात-व्यापार २१·८ करोड़ रुपये का था। खाद्य-सामग्री में चावल ५ करोड़ रुपये का और मछली १ करोड़ रुपये की थी। इनके अलावा अन्य महत्त्व-पूर्ण चीज़ें खाण्ड, प्याज़ और इमली हैं। लगभग २ करोड़ रुपया का द्रव ईंधन आता है। १९३६ में इतनी ही क़ीमत का कपड़ा आया था।

१९३२ को छोड़कर, जब कि क़ीमतों के गिर जाने से सीलोन के व्यापार को गहरा धक्का लगा था, १९२५ से पिछले बारह साल में व्यापार का संतुलन सीलोन के अनुकूल रहा है और इस काल में ५३ करोड़ रुपया उसने कमाया है। अकेले १९३६ में ५·४ करोड़ रुपया उसने अर्जित किया था।

भारत की स्थिति

सीलोन की पैदावार के मुख्य ख़रीदार इँगलैंड (१२ करोड़ रुपया) संयुक्त-राष्ट्र अमरीका (४ करोड़ रुपया) ब्रिटिश भारत (१·१७ करोड़ रुपया) आस्ट्रेलिया और कनाडा (हर एक १ करोड़ रुपया) हैं। सीलोन को मुख्य रूप से बेचनेवाले ब्रिटिश भारत (५·०९ करोड़ रुपया) ग्रेट ब्रिटेन (४·५ करोड़ रुपया) बर्मा (३ करोड़ रुपया) जापान, ईरान और श्याम हर एक (१ करोड़ रुपया) हैं। इससे स्पष्ट है कि जहाँ सीलोन को माल देनेवालों में भारत का स्थान पहला है, वहाँ ख़रीदारों में भी उसका स्थान महत्त्व-पूर्ण है।

५·०४ करोड़ रुपये के माल में से भारत ने १९३८-३९ में ४३ लाख रुपये की चाय और रबड़ सीलोन की राह भेजी। भारत से भेजी जानेवाली चीज़ों में क़ीमत की दृष्टि से महत्त्व-पूर्ण चीज़ें हैं—चावल, वस्त्र, मछली, कोयला फल और सब्ज़ी, मसाले, खली और खाद। महायुद्ध से पहले सीलोन भारत से ८ करोड़ रुपये का माल लेता था। यद्यपि भारत उस अवस्था पर अभी तक नहीं पहुँचा है, मगर १९३५ से अवस्था सुधरी है। नीचे की तालिका भारत के निर्यात-व्यापार की कुछ मुख्य चीज़ों पर अच्छा प्रकाश डालती है—

नाम माल	युद्ध से पहले का औसत (करोड़ रु० में)	१९३७-३८ (करोड़ रुपये में)	१९३८-३९ (करोड़ रुपये में)
चावल ...	४·७	१·३	१·१७
सूती वस्त्र ...	०·४	०·९३	०·७९
मछली ...	०·२४	०·३७	०·३६
फल व सब्ज़ी ...	०·१४	०·२२	०·२३
कोयला और कोक	०·४३	०·३६	०·२६
मसाले ...	०·१	·२१	०·१९

१९३८-३९ में भारत का सीलोन का निर्यात-व्यापार ५९ लाख रुपये कम हो गया और सीलोन का निर्यात ४९ लाख रुपया कम हो गया।

सीलोन से भारत में आनेवाले माल में मुख्य करके नारियल का तेल, खोपड़ा, मसाला, चाय और रबड़, चमड़ा और खाल और 'प्लमबेगो' हैं। आगे की तालिका सीलोन से भारत आनेवाले माल के परिमाण पर प्रकाश डालती है—

नाम वस्तु	युद्ध से पहले का औसत (करोड़ रुपये में)	१९३७-३८ (करोड़ रुपये में)	१९३८-३९ (करोड़ रुपये में)
खोपड़ा ...	०·०१	०·८८	०·६१
नारियल का तेल	०·००५	०·३३	०·१४
मसाला (सुपारी)	०·२३	०·०९	०·०८
चाय ...	०·०७	०·०३३	०·०२
चमड़ा और खाल	०·०३	०·०४	०·०२
रबड़ ...	०·००१	०·०५	—

राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता असम्भव है ?

सीलोन के भारतीय—निर्यात को देखने से स्पष्ट हो जायगा कि यदि भारत प्रयत्न करे तो वह अपना काम उपर्युक्त वस्तु के बग़ैर चला सकता है और अपने यहाँ उनको पैदा कर सकता है। खोपड़ा और नारियल के तेल का व्यापार तो अपेक्षा यही करते हैं कि सीलोन से यह माल ही इस देश में न आने दिया जाय। अन्य चीज़ों के बारे में भी यही बात है। मगर सीलोन भोजन-सामग्री, कोयला, वस्त्रों, खनिज तेलों के लिए सदा पराश्रित रहेगा। इसलिए सीलोन का राष्ट्रीय दृष्टि से स्वाश्रयी और आत्म-निर्भर राष्ट्र बनना असम्भव है। उसकी श्री और सम्पत्ति चाय, रबड़ और नारियल पर आश्रित है और इन चीज़ों में उसका एकमात्र एकाधिकार नहीं है। इसलिए उसे अपनी चीज़ों के लिए भारत में स्थान पाने के लिए भारतीयों से दुर्भाव न करना चाहिए। १९३२ में ओटावा पैक्ट पर सही करने से सीलोन को भारतीय बाज़ार में तरजीह मिली थी और उसकी अवस्था सुधर गई थी, यह बात उसे नहीं भूलनी चाहिए।

तरजीह

ओटावा-पैक्ट के परित्याग कर देने से और भारत-ऐंग्लो व्यापारिक समझौते के स्वीकृत हो जाने से सीलोन के माल को भारतीय बाज़ार में अब तरजीह न मिलेगी, यदि छः मास के अन्दर दोनों देशों में नया समझौता न हो गया; जिसमें अब केवल ३ मास ही बाक़ी रह गये हैं। भारत-ब्रिटेन-समझौते की एक धारा है कि भारत शीघ्र ही सीलोन से व्यापारिक बातचीत करेगा और इस समय में जो ६ मास से अधिक न होगा, सीलोन की चीज़ों पर १० प्रतिशत से कम तरजीह न देगा। यदि इस साल के अन्त तक दोनों देशों के बीच कोई व्यापारिक समझौता न हुआ तो ब्रिटिश सरकार भारत-सरकार की सलाह से सीलोन की ओर से पैक्ट करेगी। भारत और सीलोन के बीच व्यापारिक पैक्ट होने में बड़ी बाधा सीलोन-सरकार की भारत-विरोधी नीति है। इसी कारण सीलोन का व्यापारिक मण्डल अभी तक दिल्ली नहीं बुलाया गया था। अब भारत-सरकार ने इस शर्त पर बुलाना स्वीकार कर लिया है कि भारतीय श्रमियों की अवस्था पर भी विचार किया जायगा।

राजनैतिक अयोग्यता

सीलोन और भारत के बीच सब दृष्टियों से इतना अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध होते हुए भी राजनैतिक दृष्टि से सीलोन में भारतीय अछूत ही बने हुए हैं। भारतीय अन्य जातियों के समान मताधिकार चाहते हैं। इससे अधिक वे और कुछ नहीं चाहते। यद्यपि द्वीप की सारी आबादी में वे पञ्चमांश हैं, तो भी ५० सदस्यों की धारा-सभा में दो तीन से ज़्यादा आसन वे नहीं प्राप्त कर सके हैं। प्रारम्भ में सीलोनी मंत्रि-मंडल में एक भारतीय मंत्री था, मगर पिछले पाँच-छः साल से एक भी भारतीय मंत्री नहीं हुआ।

डोनोमोर-कमीशन ने सिफ़ारिश की थी कि सब ब्रिटिश नागरिकों को मताधिकार दिया जाय। पाँच साल तक वहाँ का अधिवास इसके लिए पर्याप्त माना गया था। मगर सिंहालियों के विरोध के कारण यह नहीं माना गया। पैसफ़ील्ड-विधान के अनुसार भारतीयों को तभी मताधिकार मिल सकता है जब वे सिद्ध कर दें कि वे सीलोन के निवासी हैं। और निवासी का क़ानून इस तरह व्यवहार में लाया जाता है, जिससे भारतीय मतदान का हक़ न पायें।

ग्राम्य-पंचायत से अलग करने की कोशिश

१९३४ में वहाँ विलेज कम्यूनिटी आर्डिनेन्स बनाया गया। इसका उद्देश्य यह था कि गाँव स्वायत्त शासन युनिट हो जायँ। मगर इसमें संशोधन करके ग्राम-पंचायतों से भारतीयों को सर्वथा अलग करने की कोशिश की गई और वे मताधिकार से वंचित रक्खे गये। सरकार की ओर से कहा गया कि उसने कोई विभेदजनक बर्ताव नहीं किया है, क्योंकि भारतीय और सिंहाली श्रमी एक

ही कोटि में रक्खे गये हैं। मगर यह बात नहीं है। भारतीय श्रमियों की संख्या लगभग ५,००,००० है, वहाँ सिंहाली मजदूरों की संख्या ९१,००० ही है, जिनमें से ४८,००० निवासी हैं और ४३,००० ग़ैर निवासी हैं, ९,००० नियमित रूप से ठेकेदार हैं और ११,००० आकस्मिक ठेकेदार हैं। इससे स्पष्ट है कि इस्टेटों में काम करनेवाले अधिकांश सिंहाली मजदूर वहाँ के अनिवासी हैं और वोट देने में उनके मार्ग में कोई बाधा नहीं है।

चावल का नियन्त्रण

भारत से सीलोन को चावल सबसे अधिक मात्रा में जाता है। उसको नुक़सान पहुँचाने के लिए 'एसेन्सशियल कन्डिशन्स रिज़र्व आर्डिनेन्स' नं० ५, १९३९ बनाया गया। इसके अनुसार चावल आवश्यक चीज़ क़रार दी गई और इसका व्यापार करने के लिए लाइसेन्स लेना जरूरी कर दिया गया। इसके अलावा—

(क) आयात करनेवाला एक निश्चित समय के अन्दर और एक निश्चित मात्रा से कम नहीं आयात करे।

(ख) आयात करनेवाला अपने पास हमेशा रिज़र्व स्टाक में एक निश्चित मात्रा में चावल रक्खे।

(ग) आयात करनेवाला इस आर्डिनेन्स के अन्दर विहित हिसाब की किताब और रेकर्ड अपने पास रक्खे।

(घ) आयात करनेवाला विहित रिज़र्व स्टाक से अधिक उस अवस्था में बढ़ा सकता है यदि वह विहित न्यूनतम मात्रा से अधिक मात्रा में चावल का आयात करे।

इस अन्यायपूर्ण क़ानून का उद्देश्य स्पष्ट है। युद्ध और संकट-काल के लिए सुरक्षित कोष रखना गवर्नमेंट का कार्य है, अतः इसका खर्च सरकार को उठाना चाहिए था। या यह कार्य उसके लिए जो व्यापार करें उनके वह खर्च को वह पूरा करे। मगर सीलोन-सरकार इस न्यायोचित बात को भी मानने के लिए उद्यत नहीं है।

नये क़ानून

भारतीयों को तंग करने के लिए और नये क़ानून बनाये जानेवाले हैं। इनके मुताबिक़ ग़ैर सीलोनी को सीलोन आने का अपना उद्देश्य बताना होगा। उसको पासपोर्ट के अलावा परिचय-कार्ड दिया जायगा, जिसमें उसकी अँगुलियों की छाप होगी। इसकी एक प्रति अधिकारी के पास रहेगी। पहले तीन मास तक उसको हर मास अपनी रिपोर्टें देनी होगी। कोई ग़ैर-सिलोनी तीन मास से अधिक सीलोन में रहने न दिया जायगा। इस्टेट मजदूरों के कार्ड पर इस्टेट मजदूर लिखा होगा और वे उसके सिवाय और कोई काम न कर सकेंगे। यदि किसी व्यापारी से सीलोनी व्यापारी को प्रतियोगिता का भय होगा या कोई सीलोनी बेरोजगार होगा तो ग़ैर-सिलोनी को व्यापार करने की इजाजत नहीं दी जायगी।

६० करोड़ रुपया

भारत का सीलोन-व्यापार भारत के अनुकूल है, इसपर भी इस देश में यह मत प्रबल हो रहा है कि सीलोनी माल का बहिष्कार किया जाय। सीलोन को यह न भूलना चाहिए कि भारत का ६० करोड़ रुपया सीलोन में लगा हुआ है। अनेक सीलोनी भारत में नौकरियों में लगे हुए हैं। अनेक आई० सी० एस० हैं। यदि भारत बदला ले तो ये सब बेरोजगार हो जायँगे।

राजनैतिक शक्ति

सिंहालियों के सारे आन्दोलन के पीछे राजनैतिक शक्ति पाने की लालसा के सिवा और कुछ नहीं है। बेरोजगारी का बहाना लेकर सिंहाली आज तामिलों को सीलोन से समय रहते निकाल देना चाहते हैं। तामिलों की बुद्धि और श्रम के आगे वे पराजय स्वीकार कर चुके हैं। वे अपने देश को ही अनजाने में ग़रीब बना रहे हैं। चाय और रबड़ के बाग़ों में सीलोनी काम नहीं कर सकते, व्यापारियों और प्लान्टरों की माँग है कि भारतीय श्रमी बुलाये जायँ। सिंहाली इस माँग की उपेक्षा नहीं कर सकते। दूसरी ओर भारत अपने पुत्रों को अछूत की हालत में सीलोन भेजने के लिए तैयार नहीं है। फलतः सीलोन को झुकना पड़ेगा और वह दिन दूर नहीं जब सीलोन एक बार फिर फ़ेडरल भारत का एक प्रान्त होगा। यदि सीलोन की सरकार ने बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता से काम लिया तो आशा है, यह समस्या सरलता से सुलझ जायगी और सीलोनी माल के बहिष्कार करने का दुःखदायी प्रसंग न आयेगा। सारे भारत की यह हार्दिक इच्छा है।

भूल सकूँगी कैसे तुमको !

लेखिका, श्रीमती सुमित्राकुमारी सिन्हा

भूल सकूँगी कैसे तुमको भूल सकूँगी कैसे !
चन्द्र भूल कब सकी चकोरी, चातकि पी-पी भूली ?
कब शशि ज्योत्स्ना को भूला, कब तट को तटनी भूली।
कब ऋतुपति को भूल सकी पिक, अनिल पुष्प-पाटल को !
भूल सका कब दीप-शिखा को शलभ, अली शतदल को !
जीवन-बन्दी-स्मृति-बन्धन से मुक्त करूँ मैं कैसे ?

दूर रहोगे छाँह तुम्हारी यह पथ में डोलेगी। जब कि तुम्हारे स्मृति-आँगन में श्वास-तार यह झूले।
निद्रा की रसाल-डाली पिक सपनों की बोलेगी। स्वप्न-स्पर्श पा प्राणों के छाले फूलों से फूले।
चन्द्र तुम्हारी किरण-श्वास से कुमुदिनि विहँस उठेगी। चित्रित मेरे अणु अणु में जब हुई तुम्हारी छाया।
लघु-उर में पुलकित रत्नाकर की नव लहर उठेगी। यह प्रवंचना फिर क्यों ? जब खो निज को, तुमको पाया।
दूरी कैसी ! हम तुम जब हैं काया-छाया जैसे ! प्राण-मुकुर प्रतिबिम्ब बिना कब शून्य रहेगा कैसे ?

यहाँ एक क्षण हँसना ही है जीवन भर को रोना।
यहाँ एक पल के अमृत का विषमय कोना कोना।
किन्तु फूल का दूर कहाँ अस्तित्व यहाँ शूलों से।
हैं प्रकाश के अलक भीगते रहते तम-कूलों से।
मुक्त-हृदय से बन्धन का अभिमान मिटाऊँ कैसे ?

जली जहाँ पहिचान न बुझती नयन-सिन्धु के जल से। तेरी स्मृति-आभा से उज्ज्वल जीवन-तम-पथ दुर्गम।
मिले जहाँ युग-हृदय पलक में पलते सुधि के पल से। रोम रोम जब प्राणों का है तेरी सुधि का उद्गम।
उस स्मित में पलकों की प्याली धोई थीं बस पल भर। पलकों के यह शूल बिछे जब स्मृति-फूलों के पथ पर।
तरुण अरुणिमा मधुवन की जीवन में बिखरी गल कर। जब तुम ही आते जाते हो निःश्वासों के रथ पर।
जिस पथ बद्ध हो गये पद हैं खींच सकूँगी कैसे ? तार तार में बाँध तुम्हें फिर तोड़ सकूँगी कैसे !

जीवन की चिर तृप्ति शून्य है यहाँ सजग तृष्णा बिन।
परिमल सिंचा प्रदेश वनों का शून्य मधुप वीणा बिन।
मिला न आग भरा चुम्बन जिसको ज्वाला-आलिंगन।
काली निशि में हो न सका जिसके दिन का उन्मीलन--
व्यर्थ ! प्रकृति की शाश्वत गति में वह रुक जाऊँ कैसे !

बुझ तम में तो दुख ही दुख सुख उज्ज्वल जल कर पल भर। क्यों न लिपट तम अंचल में विद्युत-सा जल जल खेलूँ।
क्यों न निमिष भर नहा ज्वाल लूँ भर प्रकाश से अन्तर। क्यों न विश्व से जलने का वरदान सहज में ले लूँ।
जग के विष को दो पल मधु से सिक्त करूँ ना कैसे !
भूल सकूँगी कैसे तुमको भूल सकूँगी कैसे !

एकांकी नाटक

कारागार में मुक्ति

लेखक, श्रीयुत योगेन्द्रनाथ शर्मा, बी० ए०

पात्र-परिचय

तैलप--तैलंगाना का राजा।
मुंज--मालव का युवराज।
मृणाल--तैलंग-कुमारी।
निष्ठा--मृणाल की समवयस्का सहेली।
तैलंगराज के सचिव, सेनाधीश, दंडपति, नायक तथा प्रहरी।
समय--विक्रम की दसवीं शताब्दी का मध्य।

प्रथम दृश्य

[युवराज मुंज तैलंगाना पर आक्रमण करता है। संग्राम में तैलंगपति को भयंकर आघातों से आहत करके भी अन्त में पराजित होता है। लौह-शृंखला में बद्ध तैलंगाने के राज-मन्दिर के सम्मुख लाया जाता है, व्रणों से आच्छादित तैलप राज-सिंहासन पर आसीन हैं, क्रोध में लोहित नेत्रों से चिनगारियाँ फूट रही हैं।]

सेनाधीश--(नतमस्तक) महाराज की....

तैलप--(सक्रोध) जय-पराजय का सन्देश नहीं चाहिए। शत्रु कहाँ है ?

सेनाधीश--(बाहर की ओर अंगुलि-संकेत) वहाँ, लौह-कड़ियों से जकड़ा हुआ।

तैलप--खींच लाओ, सामने।

(सेनाधीश बाहर जाता है, नायक को आदेश देता है, नेपथ्य में कड़ियों की खड़-खड़, शत्रु-नृप का प्रवेश।)

तैलप--(अपने शरीर पर दृष्टि डालते हुए) सारा अंग चलनी की भाँति जर्जरित हो उठा है। (मुंज की ओर) इसका प्रतिकार तुम्हें किस रूप में मिले ?

मुंज--इस प्रश्न से मुझे सिकन्दर महान् की स्मृति आती है। तुच्छ मनुष्य किसी महद्-व्यक्तित्व का अनुकरण जब आचरण में नहीं कर सकता तो केवल उसके शब्दों का नाटय करता है।

तैलप--(सक्रोध) अभिप्राय यह कि मैं तुच्छ हूँ !

मुंज--नहीं, आप महान् सिकन्दर से भी महान् हैं।

तैलप--इतनी धृष्टता ! शस्त्रों ने शरीर को छेदा और ये व्यंग्य सीधे हृदय पर आघात करते हैं।

मुंज--(सस्मित) हृदय भी तो शरीर का ही अवयव है।

तैलप--(सरोष) जितने क्षत मेरे शरीर में हैं, उतने ही इस उच्छृङ्खल शत्रु के शरीर में भालों की नोक से किये जायँ।

मुंज--और यदि एक भी अधिक हुआ, तो उसका मूल्य ?

तैलप--मूल्य ! उसका मूल्य कारागार होगा।

मुंज--इसकी अवधि भी है या आजन्म ?

(सचिव तर्जनी को ओष्ठ पर लगाकर मुंज को शान्त होने का निर्देश करता है।)

सचिव--(तैलप की ओर) महाराज ! यदि प्रतिशोध सन्धि की प्रतिज्ञाओं के रूप में लिया जाय तो राजनीति की मर्यादा भी रह जायगी।

तैलप--मंत्रिवर, सन्धि की स्वानुकूलता से ये व्रण नहीं जुट सकते। इन्हें भरने के लिए या तो शत्रु का नया रक्त या मालव-कुमारी की कोमल उँगलियाँ--ये ही दो उपचार हैं।

सचिव--(मुंज की ओर) यदि मालव की राजकुमारी तैलंग-राज से ब्याह दी जाय तो आप कारागार से मुक्त हो सकते हैं।

मुंज--(विनोद-मिश्रित रोष) और यदि तैलंग-राजकुमारी की कृपा-कटाक्ष मुझ पर हो जाय तो मैं कारागार में भी मुक्ति पा सकूँगा।

तैलप--(उठता हुआ) जकड़ दो सारी देह को (लौह-कड़ियों को स्वयं खींचना चाहता है) इस उद्दंड शत्रु को वन्दीगृह का कीट बना दो, आँखों में सूआ चुभो दो, कानों में सीसा भर दो और नखों में खपचारें ठोंक दो।

(दंडनायक मुंज को खींचता हुआ ले जाता है।)

(यवनिका)

द्वितीय दृश्य

(तैलंगाने के राज-प्रासाद में अन्तःपुर का एक प्रकोष्ठ। दाहिने कक्ष में अन्तर्द्वार है, बायें कक्ष में बहिर्द्वार। केन्द्रस्थल में दुग्ध-फेन की भाँति सुसज्जित शय्या, उससे सटी हुई चन्दन की चौकी, कुछ दूर पर सुगन्धित द्रव से जलता हुआ स्वर्ण-दीप; एक ओर मणि-खचित रेशम का पिटारा। रात्रि का प्रथम प्रहर। राजकुमारी मृणाल पिटारे से एक चित्र निकालती है।)

मृणाल—(चित्र को सम्बोधित करती हुई) पिटारे के प्यारे बन्दी! अब बाहर आओ। बन्द पिटारे में पड़े-पड़े ऊब गये होगे, क्यों? परन्तु .... कहीं मेरे हृदय में बैठे-बैठे न उकता जाना...समझे! (चित्र को हृदय से लगा कर चूमती है, उसे उँगली से संगीत में निर्देश करती है।)

सुनो हे चित्रित राजकुमार!
मेरे इस अविजित उरपुर पर तेरा ही अधिकार।
(उँगली से वक्षःस्थल की ओर संकेत)
शीश नवाकर लो सादर यह स्वयंवरा का हार॥

(चित्र को पुष्पमाला पहनाती है, बन्द-द्वार के एक रंध्र से निष्ठा झाँकती है, कान लगा कर संगीत सुनती है, कुछ देर बाद द्वार खटखटाती है।)

खट-खट! खट-खट!

मृणाल—(उतावली से चित्र को पिटारे में छिपाती है) कौन? निष्ठा!

निष्ठा—हाँ।

मृणाल—(द्वार उन्मुक्त करती है) आओ, मैंने समझा कि आज नहीं आओगी। देर क्यों हुई?

निष्ठा—(मुख-भंगिमा) महारानी एक मनोहर कहानी सुनाने लगीं; मैं उसे सुनने का लोभ संवरण न कर सकी; फिर भी कथा लम्बी थी, पूरी न सुन सकी।

मृणाल—(चौकी की ओर संकेत) बैठो, कौन-सी सुन्दर कथा है? मैं भी तो सुनूँ!

निष्ठा—किसी राज्य में एक राजकुमारी थी। उसके शरीर में रूप, यौवन और शील अपनी पूर्णता के लिए परस्पर स्पर्द्धा करते थे।

मृणाल—उसका नाम क्या था?

निष्ठा—किसी नाम के अभाव में उसे अपना नाम मृणाल दे दीजिए।

मृणाल—तब?

निष्ठा—उसे कहीं से एक सुन्दर राजकुमार का चित्र प्राप्त हुआ था, जिसे राजकुमारी अपनी सहेलियों से भी छिपाकर रखती थी।

मृणाल—(पिटारे की ओर देखकर) तब?

निष्ठा—चित्र के राजकुमार ने मृणाल—अब तो उसका नाम यही है—के हृदय पर अधिकार किया। एक बार रात्रि में राजकुमारी ने धीरे से चित्र निकाला और उसे हृदय से लगाकर चूम लिया।

मृणाल—(सतर्क और साश्चर्य) क्या राजकुमारी के इस चित्र-प्रेम को उसके पिता जानते थे?

निष्ठा—न पिता न माता और न सहेलियाँ। यह रहस्य केवल मृणाल के हृदय में बन्द था।

मृणाल—आगे?

निष्ठा—राजकुमारी ने एक रात को अपने प्रकोष्ठ में कल्पित स्वयंवर का स्वाँग करते हुए चित्र के राजकुमार को वरमाला पहना दी।

मृणाल—(ओष्ठ को दाँतों से दबाती हुई) यह राजकुमारी अवश्य ही उस नृप-कुमार के प्रेम में आत्म-विभोर हो गई होगी; तभी तो उसने चित्र को वरण किया। अच्छा, तब?

निष्ठा—इसके बाद मैं आपके पास चली आई, और कहानी वहीं रह गई।

मृणाल—(सोत्कण्ठा) बड़े मार्मिक स्थल पर तुमने कहानी को छोड़ा! पता नहीं चित्र का राजकुमार सजीव रूप में नृप-कुमारी को मिला या नहीं?

निष्ठा—ईश्वर करे उसकी कामना पूर्ण हो।

मृणाल—निष्ठे, अच्छा होता यदि वह राजकुमारी मैं होती।

निष्ठा—और मैं उसकी सहेली होती। और.... और वह मृणाल अपना चित्र-रहस्य मुझ पर प्रकट कर देती।

मृणाल—(सस्मित) मेरे पास भी एक वैसा ही रहस्य है, वह आज तक कृपण की निधि की तरह मेरे हृदय में सुरक्षित रहा, अब वह मेरे सँभाल में नहीं आता, आज तुझसे कहना ही पड़ा।

निष्ठा—(कृत्रिम आश्चर्य) सत्य?

मृणाल—अब तक तुमने एक कहानी सुनी थी; आज प्रत्यक्ष ..... (पिटारे से चित्र निकाल कर निष्ठा को देती है।)

निष्ठा—यह मिला कहाँ?

मृणाल—कहानी की राजकुमारी को तो कहीं से मिला था। इसे मैंने स्वयं बनाया है।

निष्ठा—कल्पित?

मृणाल—नहीं; एक बार मैं मकर-पर्व पर प्रयाग गई थी। वहाँ अपूर्व सौन्दर्य के एक व्यक्ति ... कदाचित् किसी राजकुमार ने मेरे हृदय में स्थान बना लिया।

निष्ठा—तब?

मृणाल—उसी हृदयस्थित रूप को मैंने स्मृति के सहारे इस चित्र में उतारा। और अब उसी का एकाधिपत्य इस हृदय पर रहे—यह मैं निश्चय कर चुकी हूँ।

निष्ठा—(चित्र को दीप-प्रकाश में देखती हुई) अरे! यह तो उसी विजित युवराज का चित्र है जिसकी धृष्ठता से रुष्ट होकर महाराज ने उसे कारागार का दण्ड दिया है!

मृणाल—(साश्चर्य) क्या उसका, जिसने आघातों से महाराज को मरणोन्मुख कर दिया था?

निष्ठा—हाँ, उसका;.....उसी का; निश्चय।

मृणाल—का-रा-गा-र! (निःश्वास से एक एक वर्ण पर रुकती है) केवल बन्दी-जीवन, या इस दण्ड में कुछ और भी विधान है?

निष्ठा—युवराज को क्षमा-याचना के लिए एक छोटी-सी अवधि प्रदान की गई है। इसके भीतर ही यदि उसने मालव-कुमारी का विवाह महाराज के साथ स्वीकार किया तब तो मुक्ति नहीं तो आजन्म कारागार।

मृणाल—बस?

निष्ठा—और कदाचित् यह बन्दी नृप-कुमार नेत्र-विहीन और कर्ण-शून्य कर दिया जाय!

मृणाल—(सरोष) यह प्रतिशोध राजनीति से बहुत दूर है; आयु के अन्तिम चरण में विवाह-लिप्सा, और इसकी अस्वीकृति में एक राजकुमार को आजीवन कारागार! सन्धि में विजित देश का भूमि-भाग लिया जा सकता है, या अर्थ-दंड का विधान हो सकता है। भला ऐसा बेमेल सम्बन्ध किसी राजकुमार को कैसे स्वीकृत हो सकता है।

निष्ठा—यदि नहीं, तो दण्ड का भोग।

मृणाल—(सोत्साह) मैं उसे बन्दी-जीवन से मुक्त करूँगी। जिसके चित्र को रेशम के पिटारे में बन्द करते हुए मैं क्षुब्ध हो उठती हूँ, नित्य वक्षःस्थल से लगाये रहने की इच्छा होती है, उसे कारागार की कठोरता कितनी भयंकर होगी!

निष्ठा—और यदि उस नृप-कुमार का अनुराग तुम्हारे प्रति न हुआ तो?

मृणाल—मुझे इसकी चिन्ता नहीं; यदि उसने मेरा अपमान किया तो भी मेरे लिए सम्मान होगा।

निष्ठा—(सतर्क) यदि महाराज को यह बात ज्ञात हुई तो?

मृणाल—मुझे भी बन्दीगृह; इससे अधिक क्या हो सकता है?

निष्ठा—आपके इस व्यापार से अपने को अमर्यादित होते देख यदि महाराज स्वयंवर की व्यवस्था करें तो?

मृणाल—मैं अपना स्वयंवर कर चुकी।

निष्ठा—हैं? यह क्या।

मृणाल—(माला चित्र को पहनाती है) मैं इस युवराज को वरण कर चुकी।

निष्ठा—यदि केवल चित्र ही से सन्तोष करना हुआ तो?

मृणाल—इसकी चिन्ता नहीं; जैसे कोई आजीवन बन्दी रह सकता है, वैसे मैं आजीवन कुमारी रह सकती हूँ।

निष्ठा—बड़ी कठिन प्रतिज्ञा है!

मृणाल—फिर भी कारागार की बेड़ियों से कठोर नहीं है। निष्ठा, ये बातें कहीं खुलने न पावें, मुझे तुम्हारा विश्वास है।

निष्ठा—इस भेद का परिणाम प्रकट होना ही है; परन्तु मैं इसे गुप्त रक्खूँगी।

(निष्ठा जाती है, मृणाल चित्र को पिटारे में रखती है।)

(पटाक्षेप)

तृतीय दृश्य

(तैलंगाना के राज-कारागार में एक प्रकोष्ठ; हथकड़ी और पैरकड़ी से आबद्ध मुंज भूखे सिंह की भाँति

चार-पाँच डग की दूरी में घूम रहा है; मिट्टी के दीप का क्षीण प्रकाश एक कोण से आ रहा है; माघ का प्रचंड शीत; रात्रि का द्वितीय प्रहर समाप्त होने के निकट है। प्रहरी के वेष में मृणाल का आगमन; कन्धे से एड़ी तक मोटे काले ऊन का लबादा. शीश से चिबुक तक बड़ा कर्ण-टोप; गले में पुष्प-माला, वक्षःस्थल से चिपका हुआ चित्र। टाँकी, हथौड़ा और कटार कटि-प्रदेश में बँधे हुए।)

बन्दी--(प्रहरी की चाल को सुनता हुआ) कौन ? प्रहरी !

प्रहरी--हाँ, पुराने प्रहरी के स्थानापन्न एक नया प्रहरी।

बन्दी--(द्वार के लौह-छड़ों से देखता हुआ) मैं अपने इस नये रक्षक का स्वागत करता हूँ।

प्रहरी--(भोजन-थाल को नीचे रखता हुआ) धन्यवाद। आज भोजन लाने में विलम्ब हुआ, क्षमा।

बन्दी--(ठिठुरता हुआ) ठंडक कड़ी है, भोजन से अधिक उपयोगी आग हो सकती थी।

प्रहरी--(दबी उच्छ्वास से) इसमें मेरा वश नहीं। यहाँ का नियम ही ऐसा है।

बन्दी--(थाल को देखकर आश्चर्य) आज दैनिक भोजन में यह परिवर्तन कैसा ?

प्रहरी--आज मृणाल-कुमारी के जन्म-दिवस का उत्सव था, पशु-पक्षियों को भी यही पकवान मिला है। बन्दी तो मनुष्य है।

बन्दी--(सनिःश्वास) मनुष्य होते हुए भी बन्दी पशु-पक्षियों की भाँति सुखी नहीं; वह बेड़ियों से जकड़ा है, वे मुक्त हैं।

प्रहरी--(सोचने का स्वाँग) यदि मेरी स्मृति विश्वस्त है, तो मैंने आपको कभी मकर-पर्व पर प्रयाग में देखा था।

बन्दी--आज कई वर्ष हुए मैं केवल एक बार इस पर्व पर गया था; तुम कैसे गये थे प्रहरी ? अकेले या राज-परिवार के साथ ?

प्रहरी--पहले मैं राज-कुटुम्ब का मुख्य परिचारक था, इसी लिए साथ जाने का अवसर मिला था।

बन्दी--और कदाचित् आज के जन्म-दिवसवाली राज-कुमारी भी गई थीं।

प्रहरी--कौन ? कुमारी मृणाल। हाँ, थीं तो वे भी; आपने उन्हें कैसे देखा ?

बन्दी--जैसे तुमने मुझे देखा। प्रहरी, उन पुरानी स्मृतियों को मत छेड़ो।

प्रहरी--क्या अब भी राजकुमारी की स्मृति आपके मस्तिष्क में बनी है ?

बन्दी--प्रमाण के लिए तुम देख सकते हो भित्ति पर लिखा हुआ यह चित्र (दीवाल पर खरोंचे हुए चित्र की ओर संकेत)

प्रहरी--यह तो राजकुमारी का ठीक चित्र है ! आपने इसे बनाया कैसे ?

बन्दी--बन्दी-जीवन की पीड़ा के कारण जब स्मृति की पुतली धुँधली पड़ने लगी तो नखों के सहारे यह चित्र नेत्रों के लिए बनाया।

प्रहरी--तो इस चित्र को दिन-रात देखा करते हो ?

बन्दी--यह लाभ भी अब मुझसे छीन लिया जायगा (चित्र की ओर देखता है) क्षमा-याचना की अवधि आज पूरी हो रही है, कल इन नेत्रों में सूए चुभोये जायँगे।

प्रहरी--आखिर, आपके इस आक्रमण का राजनैतिक कारण क्या था युवराज ?

बन्दी--न तो यह आक्रमण था, और न इसका कोई राज-नैतिक कारण ही है। यह अपनी चिर आराध्या सुन्दरी की प्राप्ति का एकमात्र माध्यम था। विजय होती तो उस स्वप्न की पुतली का प्रत्यक्ष दर्शन होता. आह ! मेरी आशाओं के इन्द्रधनुष को कारागार के काले मेघों ने निगल लिया। विजय के स्थान पर बेड़ियाँ मिलीं; और सुन्दरी के पर्याय इन आँखों में सूओं का निवास होगा।

प्रहरी--जिसके लिए आपने कारागार की कठोर यात-नाओं का स्वागत किया, उसके लिए अपने शरीर को क्षमा-याचना द्वारा सुरक्षित कीजिए। आज अवधि का अन्तिम दिन है।

बन्दी--शरीर सुरक्षित रख कर क्या होगा ? तैलप राज-कुमारी की प्राप्ति की आशा ही मेरी जीवन-श्वास थी, जब वह निकल गई तो यह स्थूल शरीर इसी कारागार में गलेगा।

प्रहरी--और यदि मृणाल ने आपके इस अज्ञात प्रेम-उत्सर्ग के प्रति उपेक्षा प्रकट की तो ?

बन्दी--यदि मेरी आराधना में शक्ति होगी, तो पत्थर भी हिल उठेगा, मृणाल तो नाम से ही कोमल है।

प्रहरी--यदि आपको राजकुमारी की प्राप्ति निश्चय हो जाय तो क्षमा-याचना करके सन्धि कर लेंगे ?

बन्दी--क्षत्रिय के लिए क्षमा-याचना नितान्त हेय है।

प्रहरी--इस बन्दीगृह में सड़ने से क्षत्रियत्व की कौन-सी मर्यादा बढ़ती है ? सन्धि से तो गौरव पर आघात नहीं पहुँचता, यह तो इतिहास की युद्ध-परम्परा में चली आती है।

बन्दी--किन्तु सन्धि की स्वीकृति सन्धि की प्रतिज्ञाओं पर निर्भर है। प्रत्येक कार्य की सीमा होती है। कल्पना करो प्रहरी ! कि तुम किसी राज्य की राजकुमारी हो--शरीर में यौवन मुकुलित होते हुए सकुच रहा है। तुम्हारे भ्राता युवराज के सम्मुख सन्धि की शर्त है कि यदि राजकुमारी ऐसे नृप को वरण करे जो चौथेपन में भी वन का मार्ग न ले विवाह का स्पृहालु है, तब तो युवराज का छुटकारा, नहीं तो आजन्म कारागार। यहाँ तुम्हारे भ्राता का धर्म क्या होगा ?

प्रहरी--भ्राता का धर्म होगा मृत्युपर्यन्त बन्दीगृह की यातना सहकर भी मुझ जैसी राजकुमारी का सम्बन्ध तुम्हारे जैसे युवराज के साथ स्थापित करे न कि संन्यास की अवस्था में पहुँचे हुए वृद्ध नृप से।

बन्दी--यही धर्म-संकट मुझ पर आ पड़ा है। फिर भी जिस सन्धि से मेरी प्रणय-सुन्दरी मुझे नहीं मिलती उस सन्धि से बन्दीगृह कहीं अच्छा है। अब जीवन में कोई दूसरी अभिलाषा नहीं है।

प्रहरी--(सक्रोध) तैलप की यह अनीति असह्य है। (उबलता हुआ) मैं आपको बेड़ियों से मुक्त करूँगा। छूटकर आप मालव की सेना संगठित कीजिए और अपनी तपस्या की देवी का वरण कीजिए।

बन्दी--किन्तु भोले प्रहरी, तुम्हारे लिए इसका परिणाम विषाक्त होगा। इस प्रवंचना के लिए राज्य तुम्हें मृत्यु का दंड देगा। तुम्हारी मृत्यु से अपनी मुक्ति क्रय करना मुझे स्वीकार नहीं।

प्रहरी--यदि मेरे तुच्छ जीवन के उत्सर्ग से दो राज-कुमारियों और एक राजकुमार का जीवन सुखमय हो सके तो मरने का इससे अच्छा अवसर फिर मुझे न मिलेगा।

(ताली से द्वार खोल प्रहरी भीतर जाता है, टाँकी और हथौड़े से बेड़ियों पर प्रहार करता है।)

बन्दी--(रोकता हुआ) हठ मत करो प्रहरी। मेरे सुख के लिए अपने सारे परिवार को मृत्यु का आहार न बनाओ।

(टाँकी और हथौड़ा छीनता है)

प्रहरी--मेरे कर्तव्य में आप बाधक कौन हैं ? मैं अपने संकल्प से विचलित नहीं हो सकता।

(हथियारों की पुनःप्राप्ति के लिए बन्दी से संघर्ष)

बन्दी--मैं भी अपने मन्तव्य से विचलित नहीं हो सकता।

(प्रहरी को बाहु-क्रोड़ में कसता है, प्रहरी का अंग शिथिल होता है, शीश बन्दी के कन्धे पर लटकता है, कर्ण-टोप भुजा के आघात से नीचे गिरता है, सर्पिणी की भाँति कुंडलित वेणी सरसराती हुई एड़ियों तक पहुँचती है)

बन्दी--(सविस्मय भुज-बन्धन को खोलता हुआ) अरे ! यह क्या ? राजकुमारी--प्रहरी--मृणाल--प्रहरी !

मृणाल--प्रहरी के वेश में मृणाल।

(बेड़ी-बद्ध पैरों पर गिरती है, मुंज उसके शीश को हाथों पर टेकता है।)

मृणाल--मैं इन लौह-कड़ियों को काटती हूँ, हम लोग मुक्त होकर चलें, मैं प्रहरी को मिलाकर आपसे मिलने के बहाने आपको मुक्त करने आई हूँ।

मुंज--किन्तु इसका अन्तिम परिणाम प्रहरी और उसके परिवार के मृत्युदंड के रूप में होगा।

मृणाल--हुआ करे, आप इसकी चिन्ता छोड़िए। मैं बेड़ियों को काटती हूँ।

मुंज--तुम्हें मेरी शपथ, ऐसा नहीं हो सकता।

मृणाल--तब ?

मुंज--चारों ओर से कर्तव्य ने घेर लिया है। क्या करें, क्या न करें, कुछ समझ में नहीं आता। जीवन की

केवल एक कामना थी वह आज पूर्ण हुई, कारागार में रहना ही सबसे उचित मार्ग दिखाई देता है।

मृणाल—(लबादे के भीतर से पुष्पमाला निकाल कर मुंज को पहनाती हुई) चित्र का राजकुमार मुझे सजीव रूप में मिला। (वक्षःस्थल में चिपके चित्र को निकालती है)।

मुंज—मुझे वरण कर तुमने अपना जीवन वन्दी-जीवन से भी दुःखमय वना लिया।

मृणाल—फिर भी मेरे हाथ-पाँव वेड़ियों से मुक्त हैं। मेरे लिए अब केवल यही मार्ग शेष है कि प्रहरी के वेष में नित्य कारागार में आऊँगी, लोगों के जानने में आजन्म कुमारी रहूँगी; अपनी तथा आपकी दृष्टि में विवाहिता ! (आँखें भर आती हैं)।

मुंज—अपने कोमल स्पर्श से इन लौह-कड़ियों को भी तुमने मृणाल बना दिया। नेत्र-विहीन होकर भी मैं तुम्हारे विशाल नेत्रों से देखूँगा और इस कारागार के कृत्रिम घेरे में अपने को स्वच्छन्द और मुक्त समझूँगा।

(मृणाल की ओर आर्द्र पलकों से देखता है।)

(पटाक्षेप)

विस्मृति-गीत

लेखक, श्रीयुत सोहनलाल द्विवेदी, एम० ए०

मेरे मानस के मौन प्यार !
मत सुधि बन आओ बार बार !

गत सुख की आहुति डाल डाल,
मत धधकाओ फिर ज्वाल-जाल,
खींचो अपना अंचल अछोर,
दृगपट से पीतांबर विशाल;
बढ़ता ही जाता व्यथा-भार,
मत सुधि बन आओ बार बार !

रहने दो यों ही बँधी बीन,
छेड़ो न आज फिर स्वर नवीन,
अब फिर न बजाओ वह हमीर
हो चुका काल में जो विलीन;
खोलो न पुनः वह बंद द्वार,
मत सुधि बन आओ बार बार !

सुख का कारण भी प्रबल मोह,
दुख का कारण भी प्रबल मोह,
किस भाँति बनूँ फिर वीतराग,
जब कठिन मोह का है विछोह;
है बँधा मोह से सृष्टितार
मत सुधि बन आओ बार बार !

दृग में छाओ साकार रूप,
प्राणों के कण कण में अनूप,
रह जाय न कोई भेद-भाव,
तुम और रूप, मैं और रूप;
विस्मृति बनकर छाओ उदार !
मत सुधि बन आओ बार बार !
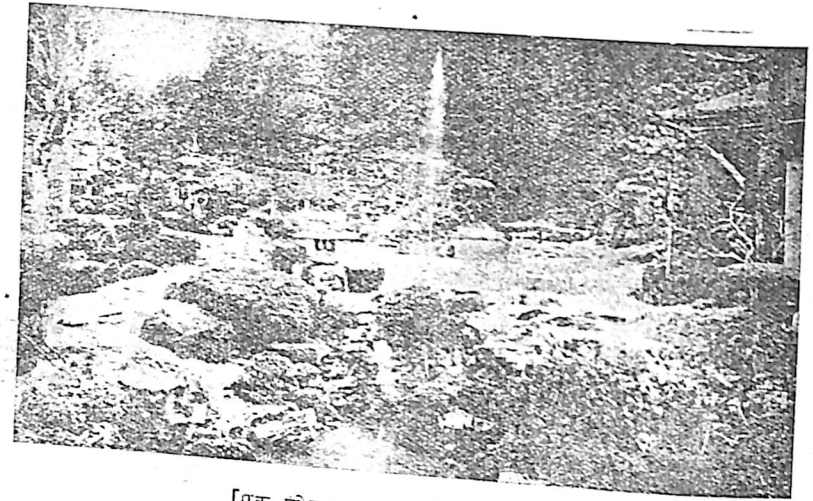
[एक क्रीड़ा-उपवन (शोजो-शिन-इन)]

जापान में कृषक-जीवन

लेखक, श्रीयुत श्यामसुन्दरलाल गुप्त

सन्त की छुट्टियों में सोच रहा था कि क्या करूँ। एक दिन बाज़ार में तोमोदा घूमते हुए मिल गये। बड़ी पुरानी जान-पहचान थी। कई वर्ष पहले एक बार गाड़ी में मिले थे। तोक्यो आते तो बिना मिले कभी न लौटते। पर उनके बारे में मैं इससे अधिक और कुछ शायद ही जानता था कि वे एक मामूली किसान हैं। मौसम बहुत ही अच्छा था। निश्चय किया कि उनके यहाँ चलकर धरना देंगे। मेरा निश्चय जानकर वे बहुत ही खुश हुए, बोले, मैंने तो कई दफ़ा कहा था। मैंने कहा, चलो, अब सही।

उनके ग्राम में पहुँचे तब रात के ग्यारह बजे थे। सारा शरीर थका हुआ था। सोचा कि स्नान करें तो थकावट दूर हो जाय। वास्तव में हुआ भी ऐसा ही, गर्दन तक गहरे गरम पानी से भरे संगमरमर के हौज़ में १५ मिनट बैठकर, नहाकर जब बाहर निकला तब शरीर मानों फिर ताज़ा हो गया। इसमें कुल छः पैसे व्यय करने पड़े।

जापान में लगभग सभी लोग पब्लिक-स्नानगृहों में जाते हैं और ऐसे स्नानगृह लगभग सभी जगहों में मिलते हैं। दोपहर से लेकर रात के बारह बजे तक किसी भी वक़्त जाइए, कितनी भी देर तक नहाइए और कितना भी ठंडा या गर्म पानी खर्च कीजिए। अपना छुरा ले जाइए और वहीं बाल बनाइए। अपनी उँचाई नापिए, वज़न करिए, गर्मी हो तो बिजली के पंखे की हवा खाइए और इस सबके लिए कुल खर्च कीजिए छः पैसे।

घर पहुँचे। श्रीमती जी ने साष्टांग दंडवत् किया। जापान चाहे कितना ही आधुनिकता का पुजारी हो गया हो, पर उसके प्राचीन रीति-रवाज अब भी वही हैं जो सौ वर्ष पहले थे। यहाँ मेहमान के सामने घर की स्त्री घुटनों के बल ज़मीन पर बैठकर, ज़मीन पर झुककर, माथा टेककर और बाद में कई दफ़ा सिर झुकाकर स्वागत न करे तो शायद उसका हृदय

[जापान की वन-श्री ।]

प्रसन्न ही नहीं होता । यही यहाँ की प्रथा है और यही हुआ भी । आवभगत के बाद घर में गये । दो बच्चे सोये हुए थे । १ लड़का १४ वर्ष का, दूसरी लड़की १८ वर्ष की थी । बस यही परिवार था ।

आये पाँच मिनट मुश्किल से बीते होंगे कि श्रीमती जी जापानी चाय ले आईं । १ इंच मोटी चटाई पर, जो जापानी-घर में फ़र्श का काम देती है, और छोटी-सी चौकी, जो जापानी-घरों में खाना खाने के लिए काम में लाई जाती है, के चारों ओर चार छोटे छोटे गद्दे बिछे हुए थे । सारा काम फ़ुर्ती से हो गया । तीनों बैठे, चाय पी ।

रात को सो गये ।

(२)
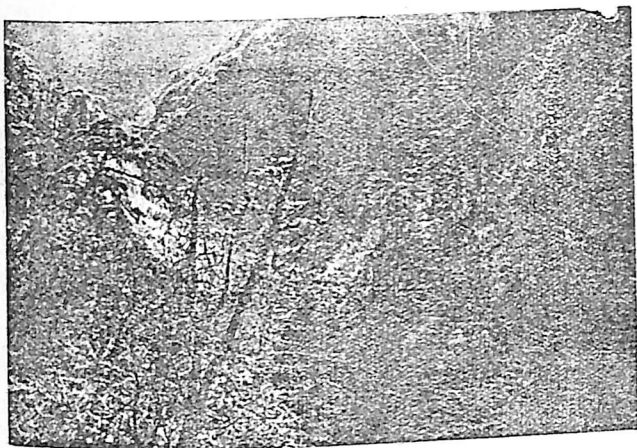
प्रातःकाल करतल-ध्वनि ने मुझे जगा दिया । अभी अँधेरा ही था । नीचे चटाई पर बिछे अपने बिस्तरे पर से मैंने सिर घुमाकर देखा । अँधेरे में मोमबत्ती का प्रकाश हो रहा था । तोमोदा लकड़ी की बनी एक छोटी-सी आलमारी के द्वार खोले घुटनों के बल बैठे हुए थे । वे हाथ जोड़े हुए थे और उनका सिर झुका हुआ था । थोड़ी ही देर में मैं सब समझ गया । घर का मन्दिर था और उसकी पूजा का समय ।

अब तोमोदा ने अपना कृपाण निकाला । उसे अपने दोनों हाथों में लेकर इस भाँति बैठे मानो उसे भगवान् के अर्पण कर रहे हों या अपने पूर्वजों के सामने कृपाण को साक्षी कर कोई प्रतिज्ञा कर रहे हों । कई सेकेंड तक वे इसी प्रकार बैठे रहे । बाद में उन्होंने कृपाण उठाकर रख दी, करतलध्वनि की, मोमबत्तियाँ बुझाईं और उठकर बिजली का बटन खोल दिया । कमरा प्रकाश से भर गया । मैं सोच रहा था कि तोमोदा जापान का साधारण श्रेणी का एक कृषक है ।

यद्यपि अपने घर पर मैं इतनी शीघ्रता-से नहीं

[गर्मी में जापान का प्राकृतिक दृश्य ।]

ऊपर (१) जापान का एक वाष्पपूर्ण तप्तकुंड । (२) जापान के एक बौद्ध-मन्दिर का द्वार ।
नीचे (१) किमोनो और खड़ाऊँ । (२) जापान का पुराना और नया पहनावा ।

उठता था, तो भी बिजली का खोलना इस बात का प्रत्यक्ष संकेत था कि उठो । मैं उठा ।

हाथ-मुंह धोकर लौटा तब देखा कि जो कमरा पहले विश्राम-गृह बना हुआ था, अब भोजन-गृह हो गया है । चटाइयों पर बिछे बिस्तरे आलमारी में लग गये थे और भोजन करने की छोटी चौकी व गद्दे बिछे हुए थे । रसोई-घर से भोजन की सुगन्ध आ रही थी । एक गद्दे पर बैठ गया । सारे मकान की सफ़ाई हो चुकी थी । चटाइयाँ रगड़-रगड़ कर कपड़े से साफ़ की जा चुकी थीं । कमरे के बाहर का लकड़ी का फ़र्श चमक रहा था । वह भी भीगे हुए कपड़े से रगड़-रगड़ कर साफ़ किया जा चुका था । किवाड़, शीशे और दीवारें सभी झाड़-पोंछकर ठीक कर दी गई थीं । नित्य ही प्रातःकाल उठने के बाद यह सफ़ाई काफ़ी समय ले लेती है । जापान में घर में स्त्री को प्रातःकाल अपने पति के उठने के पहले यह कार्य तो करना पड़ता है, पर इससे घर की सुन्दरता बहुत ही बढ़ जाती है । बिस्तरों का उठाना, मकान का साफ़ करना और प्रातःकाल का भोजन तैयार करना ये काम एक गृहपत्नी का काफ़ी समय लेकर भी उसके पति और बच्चों के लिए इतना समय छोड़ देते हैं कि वे खाना खाकर ठीक समय पर अपने काम पर और पाठशाला में पहुँच सकें ।

चौकी पर धीरे-धीरे श्रीमती तोमोदा खाना लगाने लगीं । भाफ़ निकलते हुए गर्म गर्म चावल चमकते हुए श्वेत चीनी के प्याले के अन्दर, लकड़ी के लाल रंग के प्यालों में गर्म गर्म जापानी शोरुआ जिसमें हरी हरी दो-तीन पत्तियाँ तैर रही थीं, मूली का पीला और अदरक का लाल लाल अचार, मीठे सोयाबीन, लम्बी तश्तरी में भुनी हुई मछलियाँ और सबसे महत्त्वपूर्ण गर्म गर्म चाय । पानी का नाम नहीं । प्रत्येक के लिए दो गोल गोल लम्बी चोपस्टिक जिनसे वह खाना खाले । सब खाना खाने बैठे । श्रीमती जी उल्टे घुटने कर जो कि अन्य जनों के प्रति आदर का चिह्न है—आवभगत के लिए बैठ गईं । लड़के ने सारा प्याला चावल उन दो लकड़ियों

[एक जापानी बौद्ध भिक्षु।]

(चोपस्टिक) की सहायता से पेट में रख लिया। उसे प्याले में दुबारा चावल दिया गया और लड़की को शोरुआ।

लड़के ने रेडियो खोल दिया। टोक्यो से प्रातःकाल के व्यायाम का समाचार था। मैंने हँसकर लड़के इशीदा से पूछा—"तुम व्यायाम नहीं करते?"

"स्कूल में करता हूँ।"—शीघ्रता से खाना खाकर दोनों पाठशाला चले गये। हम खाते ही रहे।

खाने में एक भी वस्तु ऐसी नहीं थी जो तोमोदा के खुद के खेत की न हो। यहाँ तक की मछलियाँ भी पास के तालाब से खुद की पकड़ी हुई थीं। खाना बड़ा अच्छा और स्वास्थ्यप्रद था। यदि कोई खट्टी चीज थी तो मूली का आचार और चरपरी अदरक। अन्य सब वस्तुएँ नमकीन थीं। मीठी सोयाबीन थी। आलू भुने हुए थे। सादा खाना था। क़ीमत में सस्ता, और स्वास्थ्य के लिए अनुपम!

मैंने पूछा—"आपकी खेती कितनी बड़ी है?"

"दो एकड़।"

"दो एकड़?"

चार मनुष्यों का परिवार और एक मज़दूर नौकर और इन सबका निर्वाह दो एकड़ खेत से! मैं चकित रह गया। अच्छा खाना, रेशमी कपड़े (अपने रेशम से श्रीमती जी के बनाये हुए) बिजली, रेडियो, बाइसिकिल, मामूली गृहस्थ जैसा मकान, चारों ओर बाग़, बच्चों के पढ़ने का व्यय—और साथ में शौक़ के लिए मछली पकड़ने का सामान, मेंह के लिए रबड़ के जूते—यह सब दो एकड़ की कमाई पर! मैं आश्चर्य में पड़ गया।

मैंने पूछा—"यह सब कैसे चलाते हो?"

तोमोदा गम्भीर हो गये। वे बोले—"हमें करना पड़ता है। जापान का किसान मुसीबत का मारा हुआ है।"

जापान की १५ प्रतिशत भूमि ऐसी है जो खेती के काम में लाई जा सकती है। और इस इतनी भूमि पर वहाँ की विशाल आबादी का निर्वाह मुश्किल से होता है। इसी से वहाँ आपको ऐसी जगह नहीं दिखाई देगी जिस पर जापानी किसान का हाथ लगा हुआ न मिलेगा। छोटी-छोटी पहाड़ियों को काट काटकर बड़ी बड़ी सीढ़ियाँ जैसी बना कर उन पर खेती की गई है। ढालों पर छोटे-छोटे कोनों में, नदी-नालों के किनारे पर, जहाँ भी वश चला है, वहाँ खेत बनाये गये हैं और बीच बीच में मकान हैं। और फिर सब मकानों में—चाहे वे टोक्यो में हों चाहे दूर जंगल में, रेडियो, बिजली और पानी का उत्तम प्रबन्ध है। फ़र्श पर चटाई, छत्त पर खपरैल, चारों ओर बाग़, हरे भरे पेड़ हैं।

एक बात और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। जापान की जनसंख्या में प्रतिवर्ष १० लाख की वृद्धि हो रही है।

और इस सबका परिणाम यह हुआ है कि जापानी कृषक के पास औसतन दो एकड़ भूमि है, और वह भी जनसंख्या की वृद्धि के कारण, नित्यप्रति कम होती जा रही है।

तोमोदा महोदय ने कहा—"मेरा नाम कितना उपयुक्त है? तोमोदा का अर्थ है 'भूमि के साथ।'" यह कह कर उन्होंने अपने पितामह की तसवीर की ओर संकेत किया जो दीवार पर लटक रही थी। वह सामुराई वेश में एक नवयुवक का चित्र था। उन्होंने कहा—"मेरे पितामह बड़े मालदार जमींदार थे। जागीरदारी प्रथा का अन्त हुआ (१८६७) तब सारी ज़मीन छिन गई। मेरे पिता के पास ८ एकड़ बचे और उन्होंने उसे अपने चार पुत्रों में बाँट दिया। मुझे दो एकड़ मिले। मेरे यदि दोनों पुत्र जीवित होते तो उनके भाग में एक एक एकड़ आता। सबसे बड़ा लड़का दो महीने हुए, चीन में युद्ध-क्षेत्र में लड़ते लड़ते मरा। आपने वह तलवार देखी है। उसने युद्ध-क्षेत्र से वह तलवार भेज दी है। आपने वह मन्दिर देखा है। उसी मन्दिर में वह तलवार रक्खी रहती है। हम शक्ति की आराधना करते हैं। वह तलवार सारे घर की निधि है। वह अपने साथ अतीत की कितनी ही ऐतिहासिक गाथायें लिये हुए है। अभी साठ-सत्तर वर्ष पहले वर्तमान जापान की स्थापना के हेतु जो गृहयुद्ध हुआ था उसमें मेरे पितामह उसे लेकर ईश्वर-स्वरूप सम्राट् के लिए लड़े थे। जापान-रूस युद्ध में मेरे पिता ने उसका प्रयोग किया। पहले चीन-जापान-युद्ध में मेरा भाई उसे हाथ में लिये समरक्षेत्र में वीरगति को प्राप्त हुआ। और अब तुंगचाऊ के युद्ध-क्षेत्र में मेरा पुत्र उसे हाथ में लिये वीरगति को पहुँचा। और अभी क्या? अभी मेरे अन्य लड़के उसे लेकर लड़ेंगे। जापान की स्थिति अत्यन्त भयंकर है। बताओ क्या करें?" तोमोदा की आँखें चमक रही थीं।

सारी बातें चित्रपट की नाईं मेरी आँखों के सामने गुज़र रही थीं।

तोमोदा ने कहा—"हम लोग बात अधिक नहीं करते। हमें प्रचार करना भी नहीं आता। राजनैतिक वार्तायें और सभायें करनी नहीं आतीं। हमें आता है तलवार लेकर मार देना और यदि वह नहीं मरा तो अपने पेट में वही कृपाण भोंक कर मर जाना। यही हमारा धर्म और यही हमारी सभ्यता है। यही 'बुरीदो' और 'हाराकीरी' हमारा जीवन है।"

जापान में केवल यही एक किसान ऐसा कहता हो, सो बात नहीं है। यहाँ तो बच्चे बच्चे को सैकड़ों वर्ष से यही शिक्षा रही है। बलिदान का अनुपम उदाहरण और मान का महत्त्व—इन्हीं दो बातों ने जापानियों को इतना बड़ा बनाया है।

[दो जापानी कुमारियाँ।]

तोमोदा ने कहा—"अब मैं इस खेत को अपने लड़कों को देकर समर में जाऊँगा।"

लड़का बोला—"मैं यहाँ रहकर खेत पर काम नहीं करूँगा। मैं तो टोक्यो जा रहा हूँ। पढ़ूँगा, लिखूँगा और चीन जाकर एक विशाल चीनी राज्य बनाऊँगा। हम जापानियों को चीन को एक विशाल देश बनाने की आवश्यकता है।"

लड़की बोली—"और मैं भी।" उसके स्कूल के द्वारा लड़की को किसी सूती मिल में नौकरी दिलाने की बातें हो रहीं थीं।

जब जोतने के लिए भूमि ही न हो तो जापानी बेचारे क्या करें? भूमि अपने को बड़ा नहीं करेगी, पर शिल्प-कला और उद्योग-धन्धे कर लेंगे और से वहाँ की बढ़ती हुई जन-संख्या को अपने में खपा सकेंगे।

तोमोदा ने कहा—"बताओ, इसके अतिरिक्त किस तरह अपनी आवश्यकताओं को पूरा करें।"

अब धीरे-धीरे मेरी समझ में आया कि प्रातःकाल तलवार की पूजा क्यों की गई थी। क्या युद्ध ही जापान के जीवन का विधाता है? क्या युद्ध इतना आवश्यक है कि एक मामूली-से-मामूली किसान भी उसमें अपनी आहुति डालने और अपने पुत्रों को उसके लिए प्रेरित करने को तैयार है? वह युद्ध जिसमें उसका पिता मारा गया, स्वयं लड़कर लौट आया, जवान पुत्र मर गया, फिर भी वह कहता है कि अभी मेरे लड़के लड़ेंगे और मरेंगे। जापान में एक मामूली किसान भी इस निर्णय पर पहुँचा हुआ है।

किसी भी निर्णय पर पहुँचने में दिमाग़ की आवश्यकता होती है। और जापानी किसान वह दिमाग़ रखता है। शहर से कोसों दूर होने पर भी तोमोदा नित्य तीन दैनिक संस्करण पढ़ता है—प्रातःकाल का संस्करण और सन्ध्या का प्रथम व द्वितीय संस्करण। रेडियो उसे योरप की राजधानियों में हो रहे नित्यप्रति के निर्णयों को दिन में तीन वार सुनाता रहता है और घर में मासिक स्त्रियों का पत्र, बच्चों के मासिक, साप्ताहिक पत्रिकायें इत्यादि की भी कमी नहीं थी। ऐसे मनुष्य भेड़-बकरी नहीं होते।

श्री तोमोदा ने मुस्कराते हुए कहा—"हम किसान चाहते हैं कि जापान भी दुनिया में कोई शक्ति बने। हम इसे एक शिल्प-प्रधान देश बनाकर इसकी स्थिति को विश्व के मामलों में महत्त्वपूर्ण बनाना चाहते हैं ताकि हमारे लड़कों को १ एकड़ के खेतों पर अपनी आँखें न लगानी पड़ें।"

यह कहकर तोमोदा उठ खड़ा हुआ। उसने हँस कर कहा—"मैं कहाँ का झगड़ा ले बैठा। मेरे लिए देश का भाग्य का निर्णय करने का सबसे ठीक रास्ता अपना खेत बोना है।"

उसने दराज़ से एक चीनी पंचांग निकाला—दीवार से नहीं। जापानी मकान की दीवारों पर तसवीरें इत्यादि नहीं होतीं। हाँ, कमरे की सजावट के लिए कपड़े अवश्य टँगे होते हैं।

तोमोदा ने पंचांग देखा। अच्छे प्रकार देख-भाल कर बोला—"हूँ! बड़ा अच्छा दिन है। आज महा-शान्ति-दिवस है। बोने के लिए बड़ा अच्छा दिन है।"

आश्चर्य की बात है कि इतना आधुनिक होकर भी एक जापानी किसान अन्ध-विश्वासों में फँसा हुआ है। आज भी कोई जापानी किसान अपने पत्र में लिखे 'खरगोश' (उसागी) के दिन बीज बोने की हिम्मत नहीं करेगा। क्योंकि 'उसागी' उसी अक्षर से आरम्भ होता है जिससे 'उरेई' (उदासीनता)। 'गाय' के दिन यदि शकरकन्द बोई जाय तो वह गाय के सींग के बराबर की होगी। 'आत्मविस्मृति' के दिन कुछ भी नहीं बोना चाहिए। उस दिन तो आनन्द से पड़े रहना चाहिए। 'सुआरम्भ' दिवस पर जो कार्य प्रातः किये जायँगे उनमें सफलता होगी और 'दुरारम्भ' दिवस पर इसका उलटा होगा।

'महाशान्ति-दिवस' पर हमारे 'तोमोदा' साहब ने बोने की तैयारी आरम्भ कर दी। बोने के बीज में भी कुछ विशेषता होनी चाहिए। इसके लिए भी प्राचीन अन्ध-विश्वास काम देता है।

वसन्त के आरम्भ में एक विशेष क्रिया की जाती है। इसे "कौआ को उड़ाने" का दिवस कहते हैं। इसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के चावल ज़मीन पर बिखेर दिये जाते हैं और जिस क़िस्म के चावल को सबसे पहला कौआ आकर उठा लेता है वही चावल बोने के लिए सबसे अच्छा माना जाता है। भिन्न-भिन्न वस्तुओं में भिन्न-भिन्न प्रकार की क़िस्म की आवश्यकता होती है। एक कृषक मौसम की भविष्यवाणी नहीं कर सकता, पर कौआ कर सकता है; यही उनकी धारणा है।

आज के जापान में और ऐसे कार्यों में कितना महान् अन्तर है।

मुझे आश्चर्य था कि इतने उन्नतिशील तथा अपनी तलवार पर विश्वास करनेवालों के हृदयों में इन अन्ध-विश्वासों की जड़ें कैसे बची रह गईं।

जैसे-जैसे दिन बढ़ता गया, घाटी में तोमोदा का करामाती खेत दूर से ही चमकने लगा। तोमोदा बोला—"हमें अपनी पाठशाला में पढ़ाया गया है कि जिस चीज़ की किसान को ज़रूरत है उसे पैदा करना चाहिए।"

उसी ने नहीं और सबने भी वैसा ही किया था। हमारे सामने ज़रा-सी भूमि में एक 'मॉडल प्लाट' जैसी चीज़ थी। गेहूँ, जौ, गोभी, मूली, गाजर (जो ज़मीन में दो-दो फ़ुट बढ़ती हैं), बाँस की जड़ें, सोरामामे (एक
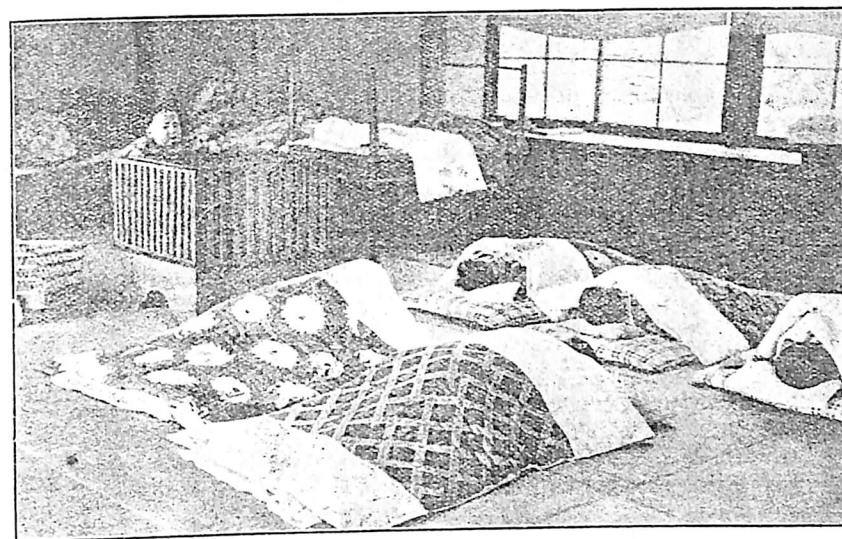
[जापानी लोगों का शयनागार।]

प्रकार की दाल इतनी बड़ी जितनी कि छोटी-छोटी सुपारियाँ), शकरकन्द, तीन प्रकार के आलू (आठ सिर-वाला आलू, मीठा आलू और 'आयरिश' आलू) और फलों के कुछ पेड़—इस प्रकार काटे हुए कि लकड़ी अधिक न बढ़े और फल पैदा करें आदि सभी कुछ था। और सबसे सुन्दर जापान का प्रसिद्ध 'साकुरा' था, जिसके फूलों के लदने के दिनों की जापानी साल भर तक प्रतीक्षा करते हैं, परन्तु जो केवल एक सप्ताह ही रहता है और जिसके बिना जापानी प्रेम, नाटक, बाग़, सड़क, कहानी, बड़ी बड़ी इमारतें सभी कुछ अधूरी रहती हैं। इसके फलों का कोई मूल्य नहीं, पर फूलों की सुन्दरता—जिनमें सुगन्ध बिलकुल नहीं होती—के लिए यह सभी जगह जापान में समादृत है। और यहाँ इस पर छोटे छोटे काग़ज़ों पर तोमोदा साहब की बनाई हुई कवितायें झूल रही थीं।

मुझे मालूम हुआ कि तोमोदा साहब को काव्य का भी अच्छा शौक़ है।

एक ही खेत में खाना, सुन्दरता और अपना शौक़ सब कुछ पूरा हो गया।

और कपड़े? उनके लिए शहतूत के छोटे छोटे पेड़ों का छोटा-सा ज़मीन का टुकड़ा भी था। यहाँ रेशम के कीड़े पाले जायँगे और श्रीमती तोमोदा तथा उनकी सुयोग्य पुत्री अपने सुन्दर हाथों से किसी प्रकार—सारे कपड़े तैयार कर लेंगी! श्रीमती जी को आधुनिक 'मोगा' अर्थात् नये फ़ैशन की लड़कियों के रंग-ढंग पसन्द नहीं आते। उन्होंने कहा—"न काम, न काज, बस बनी-ठनी फिरती रहती हैं। उन्हें बाज़ारों में घूमने भर से काम रहता है। हमारी तरह आकर काम करें तो पता चले।" आनन्द के पीछे घूमनेवाले जापान के 'मोगा' और 'मोबो' (नये ढंग के लड़के) इन मेहनती आदमियों की दृष्टि में बेकार वस्तुएँ हैं। तोमोदा खड़ा खड़ा हँस रहा था।

मैं बोला—"आप अपनी पुत्री को भी "मोगा" बना दें।" शाम को हम दोनों पहाड़ियों की सैर करके आये तब वे बोलीं—"मोगा, होने में तो कोई हर्ज नहीं है, पर तोक्यो की 'मोगाओं' को देखो! तोमोदा अब भी खड़ा हँस रहा था। इतने में श्रीमती जी अपनी पिटारी

से कपड़े का एक टुकड़ा ले आईं। मुझे दिखाकर बोलीं--"देखो। इसमें तीन सौ प्रकार के बुने हुए कपड़ों के नमूने लगे हुए हैं। यह पुराना संग्रह है और सारे ग्राम के लिए नमूने का काम देता है। ग्राम की स्त्रियाँ उन सबको बुन सकती थीं।" अब मेरे ध्यान में आया कि इनमें और मोगाओं में क्या अन्तर श्रीमती जी समझती थीं।

और जूते? जापानी खेत में जूतों का भी पेड़ होता है। 'कीरी' इसी लिए बढ़ाया जाता है। जहाँ 'कीरी' पर लकड़ी आई कि लड़के ने उसका 'गेता' (जापानी खड़ाऊँ) बना लीं। जितने दिनों में वह खराब होगी, दूसरी के लिए लकड़ी पैदा हो जायगी।

यही नहीं, लकड़ी के अतिरिक्त मकान बनाने में और सारी वस्तुएँ भी इसी खेत से गई थीं। छत, चटाई, काग़ज़ के किवाड़--सरकनेवाले--सब कुछ यहीं से गये थे। जिस 'कोज़ू' के पल्प से कागज़ बनाते हैं वह यहाँ बड़ी जल्दी पैदा होता है।

इस प्रकार जापानी किसान अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति अपने खेत से ही करता है और इसके लिए वह खेत को खूब ही जोतता है।

परिश्रम करने में जापानी किसान अन्धविश्वासी नहीं है। बोने के पश्चात् वह प्रकृति पर सब कुछ न छोड़कर अपने बाहुबल पर भरोसा रखता है। वह यह नहीं सोच बैठता कि बो दिया, अब भगवान् और माता धरती पैदा करेंगे। नहीं। वह तो एक एक पेड़, एक एक पौधे को भले प्रकार निराकर और खाद देकर ठीक करता रहता है। सारा खेत ज्योमेट्री की शकल-सा दिखेगा। मेड़ों के बीच में खूब अच्छी निराई हुई मिट्टी दिखेगी। कहीं भी सूखी हुई या जमी हुई मिट्टी नज़र नहीं आयेगी--सब एक-सी, भुरभुरी खाद दी हुई। सारे खेत में कहीं भी घास या बेकार पत्तियों का नाम तक नहीं।

जापान में खाद बहुत अधिक मात्रा में प्रयोग में लाई जाती है--इतनी अधिक कि पास से गुज़रनेवालों को भी दूर से ही उसका पता चल जाता है। तीन पीढ़ियों में ही आस्ट्रेलिया की अच्छी भूमियों की पैदावार गिर गई है। परन्तु जापानी उसी भूमि को २० शताब्दियों से जोत रहे हैं और पैदावार खूब होती है।

पानी का प्रयोग भी बड़े अच्छे ढंग से किया जाता है। जापान में पहाड़ियाँ हैं। पहाड़ियों के ऊपर जहाँ तक खेती हो सकी है, काट काट कर खेत बनाये गये हैं। सबसे ऊपर बड़े-बड़े गड़े बना दिये गये हैं। वर्षा के दिनों में इनमें खूब पानी भर जाता है जो सिंचाई के काम में आता है। छोटे-छोटे नदी-नालों से भी खेतों को मनचाहा पानी मिल जाता है। जहाँ यह सम्भव नहीं है, नीची सतह में बहती हुई नदियों से पानी लाया जाता है। चीन, जापान और कोरिया में नदी-नहरों की लम्बाई सारे संयुक्तराज्य अमरीका की रेलवे लाइनों की लम्बाई से अधिक है।

जापान के कृषकों के लिए फूस बहुत ही मूल्यवान् वस्तु है। मैंने अपने देश में फूस को जलाते हुए देखा है, पर जापान में मैंने मूर्तियों के सामने नोट तो जलते देखे हैं, पर मूल्यवान् फूस नहीं।

जापान के खेतों में जानवर नहीं मिलेंगे। थोड़े बैलों के सिवा और शायद ही कोई जानवर दिखाई दे। भेड़ें तो इतनी कम हैं कि उसके गाँव में आ जाने पर बच्चों के लिए ख़ास तमाशा हो जाता है।

सूर्य्य निकला। तोमोदा और उनके पुत्र ने मन्दिर के सामने खड़े होकर सिर झुकाकर ताली बजाई और अपने अपने काम पर चले। श्रीमती तोमोदा, उनकी पुत्री और एक नौकर घर का कार्य्य समाप्त कर खेत में पहुँचे। कीए-ड़ाना चुने गये चावल की क़िस्म लगभग १२ फ़ुट चौड़े और २० फ़ुट लम्बे टुकड़े में बोई गई। पहले तो मेरी समझ में ही नहीं आया कि ये सब इसे शौक़िया कर रहे हैं या सचमुच किसानी कर रहे हैं। एक छोटे-से टुकड़े पर पाँच आदमी!

जौ के खेतों का कार्य्य समाप्त होने पर तम्बाकू की फ़सल का कार्य्य आरम्भ हो जायगा। एक खेत में एक साल में ३ फ़सलें पैदा की जाती हैं। कभी कभी एक साल में पाँच पाँच फ़सलें भी होती हैं। खाद की क़ीमत देकर इसी ज़मीन से ५०० येन से कम का लाभ नहीं होता! और तब इसी दो एकड़ से।

वहाँ की सघन खेती को देखकर आश्चर्य कर रहा था कि तोमोदा ने कहा--"चलो मचान पर बैठ कर खाना खायें। क्या आप अपने देश में भी जगह बचाने

[जापानी लड़कियाँ खेल कूद कर रही हैं।]

के लिए मचान बनाते हैं।" वे मुझे पास ही बहते हुए नाले के पास ले गये। नाले को वहाँ चौड़ा बनाकर तालाब जैसी शकल दे दी गई थी। वे बोले--"जगह की बहुत कमी है और खानेवाले ज़्यादा हैं। हमारा जापानी गांधी--कागावा--कहता है कि खड़ी खेती करो। मेरी यह खड़ी खेती है।"

पहली मंज़िल पर स्ट्राबेरी और अन्य तरकारियाँ हैं। दूसरी पर फलों के पेड़ों को बोने के लिए जड़ों के बनाने का प्रबन्ध है, तीसरी में 'वालनट' और चौथी में शहद की मक्खियाँ पली हुई हैं। और नीचे देखिए। तालाब में एक सतह ऊँची है एक नीची है। इसमें दो प्रकार की मछलियाँ पली हुई हैं। इस प्रकार मेरी यह छः मंज़िल की खड़ी खेती है।"

ऊपर बैठकर खाना खाया। श्रीमती तोमोदा प्रत्येक मंज़िल की थोड़ी चीज़ें लाई थीं। शायद वे यह दिखाना चाहती थीं कि प्रत्येक मंज़िल वास्तव में लाभप्रद है। दो प्रकार की मछलियाँ, ताज़ी तरकारियाँ, फल, वालनट, और शहद।

सारी दोपहरी भर वे पाँचों जन उस दो एकड़ के टुकड़े से लड़ते रहे।

जर्मीन की इसी लड़ाई में जापान आज का 'जापान' बना है। यहाँ इन खेतों में उसे अपने 'बुशिदो' की जड़ें मिली हैं जो कहता है कि "कर्तव्य-पालन करो और यदि न कर सको तो पेट काटकर वहीं मर जाओ।"

रात को मैंने देखा कि तोमोदा महोदय तलवार लिये मन्दिर में मोमबत्ती जलाये पूजा कर रहे हैं। उन्होंने तलवार उठाई और अपने पूर्वजों से तथा अभी-अभी चीन के समरक्षेत्र में मारे गये अपने प्राण-प्यारे पुत्र की आत्मा से बातें कीं। मोमबत्तियाँ बुझाईं, ताली बजाई और झुककर मन्दिर के दरवाज़े बन्द किये।

मुझे ऐसा लगा, मानो यह तलवार आज सारे दिन उनके साथ खेत पर रही हो।

जापानी अपने देश को खून से सींचता और तलवार से जोतता है!

और इतने कठिन परिश्रम के पश्चात् भी जापानी किसान के लड़ने के लिए अन्य कितनी ही कठिनाइयाँ रहती

हैं। भूकम्प, तूफ़ान, बाढ़, आँधी, समुद्र की बाढ़ ! और ये सब विपत्तियाँ केवल दो एकड़ के खेत के लिए !

पर जापानी किसान को भूकम्पों का रत्ती भर डर नहीं। भूकम्प क्या करेगा ? मकान हिला देगा, पृथ्वी हिला देगा। लकड़ी का मकान और खेत हिल कर रह जायँगे। पर नहीं, यहीं तक नहीं है। सारे जापान में ५८ ज्वालामुखी हैं जो अग्नि-राशि को अपने विशाल गर्भ में संचित किये हुए समय-समय पर उगलते रहते हैं। आसामा पहाड़ के पास यदि कहीं बेचारे का खेत हुआ तो उसे पता नहीं कि न मालूम उसके जीवन की अवधि कब तक है। न मालूम कब पहाड़ फट पड़े, और सारा गाँव केवल प्राचीन काल की गाथाओं की भाँति एक गाथा बन कर रह जाय। आज जहाँ खेत है उसके सौ फ़ुट ऊपर लोग घूमते हुए केवल यही स्मरण करेंगे कि यहाँ कभी खेती होती थी।

और यही नहीं, यदि अन्दर की अग्नि शान्त रहती है तो इन्द्र का प्रकोप होता रहता है। दक्षिणी जापान में सूखे से तो उत्तरी में बर्फ़ से सारी फ़सलें ख़राब होती रहती हैं। एक आपत्ति हो तो भुगता जाय। ज़रा-सी पृथ्वी के पीछे हर समय विनाश के मुँह पर उसे खड़ा रहना पड़ता है।

अभी पिछले वर्ष वहाँ तूफ़ान आया था।

बेचारा किसान रात को ठीक प्रकार सो गया। रात्रि में एक बजा था। भूचालों ने आतंक जमा दिया। लगातार बड़े बड़े धक्के लगे। उसके बाद आँधी आई और तूफ़ान गर्म गर्म हवा को अपने साथ बड़ी तेज़ी से लाने लगा। मकानों की खपरैल उड़ गई। सारे मकान में रेत भर गया और इतना अधिक शोर कि कुछ सुनाई ही न पड़ता था। सिवाय इसके कि प्रातःकाल की प्रतीक्षा करे और कोई मार्ग नहीं था।

वह उठकर पासवाले कमरे में गया। स्त्रियाँ और लड़कियाँ चुपचाप सो रही थीं। जापान में रोना उतना नहीं होता। वहाँ स्त्रियाँ पति के लिए भार नहीं हैं, जीवन-संगिनी हैं। सब शान्तभाव से सोई हुई थीं। यही उनकी शिक्षा, यही उनकी प्रथा, यही उनका जीवन और यही उनका आदर्श है और प्रातःकाल ! उसकी सारी जमा-पूँजी—उसका ढाई एकड़ का खेत—जलमग्न हो गया था। न मेंह था, न बाढ़ थी। यह समुद्री प्रकोप था। पृथ्वी को शक्तिहीन पाकर विशाल जलनिधि ने उस पर राज्य करने की सोची। बहाव उलटा था। जल वापस जा रहा था।

दो सप्ताह में यदि पृथ्वी निकल भी आई तो उसे दुबारा खेती योग्य बनाने के लिए वर्षों चाहिए ! सारी भूमि में समुद्री रेत और नमकीन पानी हो गया था।

लड़कियाँ प्रातःकाल का खाना बनाने लगीं। उसने कहा कि खाना बनाने की चिन्ता मत करो। अब तो एक जून ही खाना बनेगा। और वह दोपहर को बना लेना। बेचारे को यह भी पता नहीं था कि एक जून भी अधिक दिन नहीं बन सकता। सारे गाँव में सबसे मालदार आदमी के पास डेढ़ येन—लगभग १ रुपया था। यह एक उदाहरण है। जापान में किसान का ऐसा ही कठिन जीवन और उस पर प्रकृति की मार है। पर जापानी किसान में सहन-शक्ति भी अपूर्व है। ऐसे अवसर पर वह यह कहकर धीरज धरता है कि 'शिकाता गा नाई' अर्थात् हमारे वश की बात नहीं है, क्या करें।

इतना कठिन परिश्रम करने पर भी प्रकृति पर उसका वश नहीं चलता। फिर भी वह उससे लड़ता रहता है।

इसका परिणाम होता है ऋण। आज प्रत्येक जापानी किसान के सिर पर औसतन १ हज़ार का ऋण है। धनी के सूद की दर उसे और भी मारे डालती है। जिस भाग में प्रकृति का प्रकोप हो गया, वहाँ तो सर्वनाश ही सर्वनाश है और यह सब जापानी किसान चुपचाप सहता है। क्यों ? क्योंकि राष्ट्र का प्रश्न उसके लिए इन सबसे बड़ा है। वह पढ़ा-लिखा है, समझदार है, सारी दुनिया उसकी परखी हुई है। उसके लिए इसके अतिरिक्त कौन-सा मार्ग है कि वह तलवार लेकर युद्ध-क्षेत्र में लड़ मरे। वास्तव में तलवार ही उसका जीवन है। तलवार से ही वह पृथ्वी जोतता है और नहीं—उसी से वह प्रकृति से लड़ता है। और यही कारण है कि वह आज विश्व जीतने को निकला है।

किसकी भूल

लेखक, श्रीयुत हरवंश वर्मा, बी० ए०

सुहावने समीर में लहलहाते खेत अपना अमर गान गा रहे थे। एक ओर सरों के पेड़ का आश्रय लिये एक युवक और एक तरुण बालिका खड़ी थी। युवक था कोई बीस वर्ष के लगभग। उसके सुगठित अंग और उसका तेजस्वी मुख उसकी जवाँमर्दी के अस्फुट पुल बाँध रहे थे, परन्तु उसकी धीमी-धीमी मुस्कराहट में विषाद की एक रेखा भी झलक मार रही थी। बालिका देहाती बाने में सुसज्जित थी। उसकी बड़ी-बड़ी गोल गोल आँखें, उसके कोमल कपोल, घुंघराले बाल तथा ऊँचा क़द उसकी छवि को बढ़ा रहे थे। 'धरतीमाता' की 'गौरी' की तरह उसकी आकृति भोली-भाली तथा वयस केवल १७ साल था। वे दोनों धीमे-धीमे बात-चीत कर रहे थे।

"हूँ, तो तुम आ गईं !" युवक ने निस्तब्धता को तोड़ते हुए कहा।

"हाँ तो। क्यों ? देखते नहीं....।" बालिका ने आँखें तरेरते हुए कहा।

"ऊँ-हूँ; तुम मेरा आशय नहीं समझ सकीं। मेरा मतलब था कि तुम्हारे यहाँ इस समय आने में किसी ने बाधा तो नहीं उपस्थित की।"

"कुछ भी नहीं। सुजान अभी चौपाल से नहीं लौटा; और मैं—मैं मा की नज़र बचा कर यहाँ दौड़ी दौड़ी आई। किसी को खबर नहीं।"

"ख़ूब ! तेज, जानती हो मैंने तुम्हें आज इस जगह क्यों बुलाया है ?" युवक धीमे स्वर में बोला।

"जानती हूँ। यही कहने के लिए न कि आज मैंने अफ़ज़ल को पछाड़ दिया अथवा खेत की बाट काटते हुए लहनू को....।" और तेज खिलखिला कर हँस पड़ी।

"छोड़ो भी इस बालकपन को। ये भी कोई कहने योग्य बातें हैं। मैं तुमसे एक ज़रूरी बात कहना चाहता हूँ। क्या सुन सकोगी ?"

"ऐं ! जरूरी बात ! भला मुझसे कौन-सी ज़रूरी बात कहोगे ? अच्छा कहो। मगर देखना अगर कोई अनुचित बात कहोगे तो मैं अपने भाई से कह दूँगी।"

"पहले बात तो सुन लो। अपने भाई से क्या कहोगी ? सभी बातें क्या हर एक से कही जाती हैं ? तेज, नहीं जानता अब हमें एक-दूसरे से कितनी देर के लिए जुदा होना होगा।"

"क्यों ? सच-सच कहो।"

"मैं लाम पर जाऊँगा।"

तेज ने मुँह उठा कर पूछा—"लाम पर ! मगर कब ?"

"कल ही तो। दादा को कल उनके पुराने दयालु साहब की चिट्ठी मिली। वे पुरानी ख़िदमतों की तरह अब भी हमसे मदद चाहते हैं। मैं ज़रूर जाऊँगा। तुम जानती हो......।"

कुछ विस्मित होकर तेज ने उसकी बात काटते हुए कहा—"मगर मैंने तो इसकी बाबत कुछ नहीं सुना।"

"तुम कैसे सुन सकोगी ? आज दोपहर तक तो यह बात मेरे और दादा में ही सीमित थी। मा के कान में तो केवल अभी अभी डाल कर आया हूँ।"

"तो तुम अवश्य जाओगे ?"—तेज ने कुछ भराई हुई आवाज़ में कहा।

"हाँ तेज, अपनी इच्छा न होते हुए भी मुझे जाना ही होगा। जानती हो, हमें लोग क्यों टेढ़ी नज़र से देखते हैं, क्योंकि हमारे पास उनके जितनी ज़मीन नहीं, बैल नहीं। तुम्हीं देखो, तुम्हारे पिता हमारे सम्बन्ध को.....।"

"कृपया इन बातों को रहने दीजिए। अच्छा, अगर जाओगे ही तो अब और कब देख सकूँगी ?" बात काटते हुए तेज ने कहा।

"ठीक ठीक नहीं कह सकता। चाहे कहीं भी होऊँ, तुम्हारी याद सदा मुझे सताती ही रहेगी; तुम्हें देखने की तृष्णा अभी मिटेगी नहीं।"

यह सुन तेज, सिर नीचा किये शान्त हो गई। मन ही मन में कहा—"मेरे लिए इतना ही काफ़ी है; इससे अधिक आशा करना व्यर्थ है।"

इतने में ही दूर से किसी के 'तेज, तेज' पुकारने की आवाज़ आई। दोनों चौंक पड़े। यह सुजानसिंह की आवाज़ थी, जो अपनी बहन को ढूंढता हुआ इधर ही आ रहा था।

"शेरा, अब मैं जाऊँगी।"—तेज ने काँपते हुए स्वर में कहा।

शेरा ने उसके कपोलों पर से होंठों को उठाते हुए कहा—"तेज इतने दिनों में मुझे भूल न जाना।"

तेज का दिल बड़ा कमज़ोर था। इस अन्तिम वाक्य को सुनकर उसके आँसू कपोलों पर छलक आये। उसने आह के साथ कहा—"मैं कभी नहीं भूलूँगी, शेरा।" यह कह कर उसने शेरा को एक गम्भीर आलिङ्गन दिया और तुरन्त ही वह एक ओर को चली गई।

दूसरे ही दिन पंजाब इन्फ़ैन्ट्री के साथ शेरसिंह कराची स्पेशल में सवार हो गया।

* * *

अस्ताचल की ओर तेज़ी से बढ़ते हुए सूर्य की सुनहरी किरणों में खेमे चमक रहे थे। इन्हीं में से एक छोटे-से खेमे में जमादार सरदार शेरसिंह कुछ उन्मना-सा बैठा था। आज कई दिनों से वह बराबर किसी बात को सोचता रहता, परन्तु किसी प्रकार भी वह यह स्थिर करने में सफल नहीं हुआ कि उसकी आशा कितनी और निराशा कितनी है। वह कई अटकलें लड़ाता, परन्तु अन्त में वही ढाक के तीन पात।

इसी समय खेमे की झालर को उठाकर किसी ने प्रवेश किया। शेरसिंह चौंक पड़ा। उसने कहा—"कौन? तुम! नौहरसिंह।"

"जी हाँ, क्या इसमें भी कुछ शक है?"—नौहर ने चुटकी लेते हुए कहा।

"ऊँ-हूँ। इतने दिन तो शक्ल न दिखाई, आज किधर से चू पड़े?"—शेरसिंह ने हँसने की चेष्टा करते हुए कहा।

"शक्ल दिखाने योग्य होती तो दिखाते। इतने दिनों मुंह काला करके गरजते रहे और आज जब बरसे तब बस आपके खेमे में चू पड़े।"—नौहर मुसकराते हुए बोला।

शेरसिंह भी हँस पड़ा और बोला—"अरे यार, मेरा यह आशय कदापि नहीं था। मैं पूछता हूँ कि आज महाराज का कैसे आना हुआ?"

"यों ही। जब जीभ में खुजलाहट हुई तब यहाँ चला आया।"

"तो क्या आपने हमें खुजलाहट की दवा समझ रक्खा है? ख़ैर, तुम आये तो! बताओ, आज-कल कैसे गुजरती है।"—शेरसिंह ने प्रश्न-सूचक दृष्टि से नौहर को देखते हुए कहा।

"गुज़रती है बहुत मज़े से। पेट भरते हैं और खाटें तोड़ते हैं। बस, तीसरा काम नहीं।"

"मगर भाई मुझे तो यह ज़रा भी अच्छा नहीं लगता। हाथ पर हाथ धरे बक्खियाँ.....।"

"और घर में कौन नाटूखाँ थे आप, जो यहाँ जमादारी में ऊब गये। मुझे तो आपके यह चोंचले ज़रा पसन्द नहीं।"—नौहर ने बात काटते हुए कहा।

"तुम तो बनाते हो बात का बतङ्गड़—निकालते हो उसका कचूमर। भला मैंने कब नाटूखाँ या नाटूखाँ का साला होने का दावा किया है? मेरा मतलब तो था कि गाँव में कैसे सुखपूर्वक दिन गुज़रते थे; वह यहाँ कहाँ? नौहर, मैं तो जल्दी ही छुट्टी लेकर घर जाऊँगा।"—शेरसिंह ने कुछ गम्भीरता से कहा।

शेरसिंह ने अपनी बात समाप्त की ही थी कि नौहर बोल उठा—"हाँ तो शेरा, मैं तुमको एक बात बताना भूल ही गया था।"

"क्या बात?"—शेरसिंह ने बड़ी उत्सुकता से पूछा।

"कोई खास नहीं, मामूली गाँव की बाबत है। तुम जानते हो न उस तेज को?"

"कौन तेज?"

"वही-वही, सुजान की बहन; आपके गाँव..."

"हाँ! हाँ! उसको क्या हुआ? जल्द कहो।"—शेरसिंह ने बात काटते हुए एक विशेष भावभंगी में नौहर से पूछा।

"आज भाभी का पत्र आया है। लिखा है कि तीन महीने हुए वह एक अँगरेज़ के साथ भाग गई है। अभी तक कोई पता नहीं। न मालूम क्या गोलमाल है।"

शेरसिंह चुप सुनता रहा।

नौहर ने फिर कहा—"और तो और, हजारासिंह आजकल एक अजब मुसीबत में है। उसकी हालत ठीक उस बनिये जैसी है जो दूकान लुट जाने पर पुलिस के पंजे में फँस जाय। एक तो बेचारे की लड़की खो गई है, दूसरे लोगों ने उँगलियाँ उठा उठा कर उसका गाँव में रहना तक दूभर कर रक्खा है।......."

अभी नौहर अपनी बात समाप्त भी न कर पाया था कि किसी के भागते हुए आने की आवाज सुनकर दोनों चौंक पड़े। उसी समय एक सिपाही ने खेमे में प्रवेश किया और बड़े अदब से फ़ौजी सलाम करके अर्ज़ की—"जमादार साहब, आपको साहब ने याद किया है। अभी!"

"ए-ओ" जमादार ने सिपाही की ओर देखकर कहा। उसने यह उत्तर पा फिर सलाम किया और लेफ़्ट-राईट करता बाहर निकल गया। शेरसिंह अपने कपड़ों को ठीक करने लगा, परन्तु उसके मन में कोई बात खटक रही थी।

"तो यह बेवक़्त की शहनाई कैसी?"—नौहर ने कुछ अचम्भे से पूछा।

"क्या जाने भाई? तभी तो कहते थे न कि तीसरा काम नहीं है। अब तो बात कहने का भी अवकाश नहीं। ख़ैर, शायद मेरी शान्ति का ही कुछ उपाय हो जाय।" शेरसिंह ने गम्भीरता से कहा।

"शान्ति? मतलब।"

"समय आने पर जान लोगे, अभी उसकी विशेष आवश्यकता नहीं।"—यह कहकर शेरसिंह खेमे से बाहर निकल गया।

* * *

खेमा गैस के तेज़ लैम्प की रोशनी में चमक रहा था। चारों ओर चटाई पर भिन्न भिन्न अस्त्र-शस्त्र बड़े क़रीने से रक्खे थे। बीच में गोलाकार मेज रक्खी थी और उसके चारों ओर थीं कुर्सियाँ। अधेड़ उम्र का एक अँगरेज़ एक कुर्सी पर बैठा मेज़ पर पड़ी किसी चीज़ को ध्यान से देख रहा था और कभी-कभी उस पर अपनी पेंसल भी फेरने लगता।

"हुज़ूर, ज़मादार शेरसिंह हाज़िर है।"—एक सिपाही ने सेलूट करते हुए उस अँगरेज़ से कहा।

"आने दो।"—यह कहकर वह अँगरेज़ फिर अपने काम में लग गया।

शेरसिंह ने खेमे के अन्दर प्रवेश किया। वह अंगरेज अफ़सर बड़े तपाक से उससे मिला।

"गुड ईवनिंग सर।"—जमादार शेरसिंह ने विनीत-भाव से कहा।

"गुड ईवनिंग। हाऊ गोज़ दि वर्ल्ड विद यू?"

शेरसिंह के होंठ हिलकर रह गये। वह मूक खड़ा रहा। चारों ओर निस्तब्धता का राज्य था।

"वेल शेरसिंह!" अँगरेज़ अफ़सर ने कहा—"हम तुम्हारी पिछली बहादुरी से बहुत खुश है। इस बार भी क्या..............."

"हुज़ूर का हुक्म और बन्दे का सिर हाज़िर है।"

"शाबाश! हमें तुमसे ऐसी ही उम्मीद थी। देखो, हमारा डिटैचमेंट इस वक़्त बहुत ख़तरे में है, दुश्मन चारों तरफ़ घिर रहे हैं। स्मिथ की टुकड़ी के यहाँ पहुँचने तक बचने का अगर कोई उपाय है तो सिर्फ़ एक..........."

"फ़रमाइए।"

"इधर देखो।" साहब ने शेरसिंह की दृष्टि मेज़ पर पड़े हुए नक़्शे की ओर आकर्षित करते हुए कहा—"यह है हिल नं० ७४, हम हैं हिल नं० ७२ पर। यह है बर्फ़ानी पानी से लबलबाता हुआ बर्फ़ानी नाला। समझे?"

"जी हाँ।"

"अब बात यह है कि दुश्मन की एक टुकड़ी ने किसी तरह दरिया पार कर इस पुल पर क़ब्ज़ा कर लिया है और इस वक़्त उसको अच्छी तरह से 'गार्ड' कर रही है। उनका 'मेन डिटैचमेंट' पीछे आ रहा है। कुछ देर के लिए अगर 'सेफ़' रहने का तरीक़ा है तो एक, यानी..."

"इस पुल को उड़ा देना होगा।"

"बहुत ठीक। तुम मेरा मतलब समझ गये। सोच लो, बहुत मुश्किल काम है। कर सकोगे?"

"क्यों नहीं? जान हथेली पर रख कर जाऊँगा।"

"शाबाश शेरसिंह। यही तो तुम्हारी क़ौम की बहादुरी है।"

शेरसिंह चुप रहा; मगर उसके मस्तिष्क में यह

विचार ज़रूर उठा कि और दो घंटे पहले नहीं बताया, तभी न।

इतने में मन में कुछ स्थिर करके वह अँगरेज़ अफ़सर उठकर जमादार के पास खड़ा हो गया और उसने धीरे से उसके कान में कुछ कह दिया।

"समझे ?"

"जी हुज़ूर।"

"वेल ! तो वह पड़ा है तुम्हारा सामान। सवेरा होने तक।"

शेरसिंह ने सिर झुका दिया। फिर इंगित गठरी को उठाकर उसने साहब को सलाम किया और धीरे-धीरे खेमे से बाहर हो गया।

कालिमा का आवरण चारों ओर फैल चुका था; समस्त दिग्मंडल अन्धकार में आच्छादित था। इस कालिमा के पर्दे पर अपने आपको साकार बनाते हुए वृक्ष भयावह रूप धारण कर रहे थे। मृदुल साँय-साँय अथवा टर्र-टर्र की ध्वनि ही उस निस्तब्धता को क्रमशः छेदती प्रतीत हो रही थी। हाँ, कभी कभी धाँय-धाँय का शब्द भी कर्णगोचर हो जाता था। ऐसे ही समय में एक पथिक बग़ल में गठरी दबाये बेधड़क बढ़ता चला जा रहा था। उसके मन में विचार-धारा का तूफ़ान उठ रहा था, इसी से वह कुछ छटपटाता-सा जान पड़ रहा था। वह सोचता था—"तो तेज एक अँगरेज़ के साथ भाग गई ! यह असम्भव है।"

"असम्भव है। क्यों ? क्या वह तुमसे इतना ही प्रेम करती थी ? हो सकता है, ढोंग हो। और फिर इस बात का पता भी तो नौहर की भाभी ने भेजा है। भला उसको ठट्ठा करने से मतलब ? न तो नौहर का ही तेज से कुछ सम्बन्ध है और न वह हमारे सम्बन्ध में ही कुछ जानती है।

"लेकिन उसका प्रणय तो अटल-अचल प्रतीत होता था। भाव के आवेश में छलछलाती हुई आँखों से कहे हुए उसके अन्तिम वाक्य तो साफ़ साफ़ उसका मेरी ओर झुकाव ही दिखा रहे थे। फिर !

"फिर क्या ? आदमी का मन बदलते कुछ देर थोड़े ही लगती है। तुम्हें गाँव से आये अब दो साल हो गये हैं, शायद......... और हाँ, स्त्री-जाति का पैसे को देखकर फिसल जाना भी तो जगत्-प्रसिद्ध है। सम्भव है तुम कंगाल को भूल गई हो। आखिर तुम्हारे पास है ही क्या ? रूखी-सूखी का भी तो ठिकाना नहीं। वह ठहरा अफ़सर, मालदार। अब वह अफ़सरानी होगी; दासी होने के बजाय हुक्म किया करेगी।........

"तेज, मुझे आशा भी न थी कि हमारे प्रणय का यह अन्त होगा। नया सम्बन्ध जोड़ते समय मेरे भग्न हृदय का कुछ तो ख़याल किया होता।.....लेकिन नहीं, संसार का ढंग ही ऐसा है। मनुष्य मनसूबे बाँधता है, सोचता है, तोड़ देता है। कहीं ऐसा न हो जाये, कहीं ऐसा न हो जाये। आखिर हुआ तो ऐसे ही। ख़ैर शेरा, अब इस जीवन-संग्राम से क्या मतलब ? जिसके लिए तूने इतने बड़े बड़े मनसूबे बाँधे थे अगर उसी से तुझे निराश होना पड़े तो फिर इस जीवन में क्या है कुछ सार ? चल, आज ही चल। क्या स्वर्ण-संयोग है सामने। जान पर खेल कर आज यह काम कर दे, और फिर जीवन-विमुक्त.... ।"

परन्तु शेरसिंह की विचार-धारा ने पलटा खाया। सोचने लगा—"जीवन-विमुक्त ! मगर क्यों ? किस लिए ? केवल उसके लिए ! कदापि नहीं। आखिर मेरा उससे सम्बन्ध ही क्या था ? मेरा उस पर हक़ ही क्या था ? वे लैला-मजनूं, हीर-राँझा तथा शीरीं-फ़रहाद के क़िस्सों के ज़माने लद गये। आजकल है बीसवीं सदी—आज़ादी का ज़माना। हर एक को स्वतन्त्रता—आज़ादी चाहिए।

"आज़ादी ! हाँ, आज़ादी ने ही तो उसे मेरी ओर झुका दिया था। समय-समय पर मिलने की स्वतन्त्रता दी थी। अगर आज़ादी न होती तो वह घर में ही न गलती-सड़ती होती। मैंने भी इसी आज़ादी के भाव में ही तो प्रेम-प्रणय किया। अब इस आज़ादी के लिए प्रायश्चित्त करूँगा—प्रायश्चित्त !

"तेज, मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं। परन्तु जानती हो जले दिल की आह को ! यदि तुम जानती !.... हो सके तो अभागे को कम-से-कम इस जीवन में तो मुख न दिखाना। न जाने क्या कर बैठूँ !.....

"कर बैठूँ ! आखिर क्या ? कुछ भी तो नहीं...। नहीं नहीं, मैं ख़ुद ही उसका मुँह कभी न देखूँगा—कभी नहीं।........"

सहसा शेरसिंह को शब्द सुनाई पड़ा—'हू गोज़ देअर ?' वह स्तब्ध खड़ा हो गया। उसकी विचार-धारा टूट गई। अनमने में उसे कोई सुध-बुध न रही।

"हू गोज़ देअर ?" पुनः शब्द हुआ।

शेरसिंह सँभला। बड़ी गम्भीरता से जवाब दिया—"सी, ट्रम्प फ़ाईव।"

फिर कोई आवाज़ न आई। वह आगे ही आगे बढ़ता गया—खाइयों को कूदता-फाँदता हुआ घोर तिमिर में आँखों से ओझल हो गया।

चारों ओर था पुनः नीरवता का साम्राज्य। कोई एक घंटे के बाद एकाएक एक धमाका हुआ। इधर-उधर खलबली मच गई।

× × ×

कंदरा के घोर तिमिर को जलाते हुए लैम्प अपनी सत्ता का परिचय दे रहे थे। चारों ओर कराहने की आवाज़ें ही आवाज़ें थीं। वार्डर लोग तथा नर्सें इधर-उधर चक्कर काटते हुए घायल सिपाहियों का निरीक्षण कर रहे थे; फिर भी मूषक-मण्डली अपना काम ज़ोरों से कर रही थी। एकाएक गले में स्टैथस्कोप लटकाये कुछ डाक्टरों ने कन्दरा में प्रवेश किया और पलंग नं० ५ के चारों ओर खड़े होकर अपना सामान ठीक करने लगे। कुछ देर तक निरीक्षण करने के बाद एक बोला—

"घाव तो कुछ उतना गहरा नहीं है, परन्तु ख़ून के बह जाने के कारण इसकी नाड़ी धीमी पड़ रही है।"

"और 'शाक' ?"—दूसरे ने प्रश्न-सूचक दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए कहा।

"शाक का असर है तो सही, लेकिन विशेष नहीं। सिह सूरमा पक्के दिल का मालूम होता है।"

"फेफड़ों को तो चोट नहीं आई है ?"

"बिलकुल नहीं। हाँ, रक्त के बह जाने का असर सिर पर ज़रूर हुआ है। सहसा क्षोभ सहन न कर सकेगा।"

यह कहते कहते उस डाक्टर ने घाव को साफ़ कर उस पर मरहम लगाया। फिर छाती पर अच्छी तरह रुई रख कर उसने पट्टी बाँध दी। सामान इकट्ठा करते-करते उसने कहा—"नं० १५।"

"जी हाँ।"—इसका उत्तर मिला, और साथ ही एक नर्स भागती हुई वहाँ आ पहुँची।

"देखो" इसे थोड़ी-सी गर्म चाय पिलाओ और फिर बारी बारी से माथे पर गर्म और ठंडे पानी की गद्दी रक्खो। समझीं ?"

नर्स एक अजब अवस्था में खड़ी थी। उसकी एक टक मरीज़ के मुँह पर जाती तो दूसरी डाक्टर पर, मगर होंठ फड़फड़ा कर रह जाते। अन्त में जब डाक्टर जाने को हुआ तब उसके मुँह से सहसा निकल गया—"लेकिन डाक्टर साहब, इनकी तबीअत कैसी है ?"

"बहुत ख़राब नहीं। ठीक ठीक उपचार होने से जल्दी अच्छा हो जाने की सम्भावना है। मगर 'सडन एक्साईटमेंट' से 'कोलेप्स' भी हो सकता है।"

यह कह कर डाक्टर चला गया। वह कुछ देर वैसे ही अस्थिर खड़ी रही। कभी पास ही मेज़ पर पड़े छोटे से प्याले पर हाथ डालती, परन्तु न जाने क्यों तुरन्त ही उसे छोड़ देती। फिर उँगली दो दाँतों में पिसती नज़र आती।

सहसा नर्स की आकृति में तबदीली आई, मुख पर गम्भीरता के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे। अगले ही क्षण वह रोगी के उपचार में लग गई। निरन्तर दो घंटे की सेवा-शुश्रूषा के बाद रोगी ने मुख खोला—"पानी !"

नर्स ने उठ कर चाय के प्याले की नली रोगी के मुँह से लगा दी। थोड़ी देर के बाद रोगी ने आँखें खोल दीं और छापू—"मैं कहाँ हूँ ? क्या—क्या ?"

"अस्पताल में। अब तुम बहुत अच्छे हो।"

"हैं ! कौन ?"—रोगी ने दाईं ओर को सिर झुकाते हुए कहा—फिर आँखें मलने लगा—"क्या तुम ? तुम—तेज ? सचमुच ...."

"हाँ, मैं ही हूँ—तेज।" उसने अँगूठे पर आँचल बाँधते हुए कहा।

"तुम ! तुम यहाँ कैसे ? तुम तो साह—हब के साथ.......। क्या देख रहा हूँ ? क्या सुना था ?....."

"हाँ, ठीक कहते हो। सुन...।"

"सुनूँ क्या ? ख़ाक !"—रोगी ने चारपाई से उठने की चेष्टा करते हुए कहा—"जब ठीक ही है तब मुझे

अपना काला मुँह दिखाने क्यों आई ? जले पर नमक छिड़कोगी ? मुझे मुँह न दिखाओ ! जाओ !!--जा....ओ !!!"—यह कहते कहते वह मूछित होकर गिर पड़ा।

नर्स भयभीत मृगी-सी वहाँ सहमी खड़ी थी। उसके मस्तिष्क में विचारों का ववंडर-सा उठ रहा था; परन्तु स्थिर कुछ भी न हो पाता था। रोगी के शब्द उसके कानों में गूँज रहे थे। अन्त में धीरज धर कर उसने रोगी को ठीक करके बिस्तर पर लिटा दिया और यथापूर्व उपचार करने लगी, परन्तु अब उसके हाथों में शिथिलता-निर्बलता का साम्राज्य था। जब रोगी निद्रा-मध्य कुछ स्थिर होकर लेट गया तब वह उठ कर वहाँ से चली गई।

दूसरे दिन शेरसिंह की मूर्च्छा जाती रही थी। वह पहले से स्वस्थ प्रतीत होता था। परन्तु उसकी अवस्था अजब थी--अनमना-सा इधर-उधर हाथ-पाँव फेंकता रहता। न जाने क्या बात, क्या विचार--क्या घटना उसके मस्तिष्क को कुरेद रही थी। मानसिक तर्क-वितर्क में वह आस-पास पड़ी चीज़ों को जिधर चित चाहता, गिरा देता न उसे अपनी खबर थी, न पास में पड़े हुओं की। इसी कशमकश में उसका हाथ तकिये पर जा पड़ा। उसने उसे खींच लिया। सिर नीचे गिरा और एक धीमी सी क-र्र-र्र ध्वनि हुई। तकिया उसके हाथ में ही रह गया। सिर उठा कर देखा, वहाँ एक लिफ़ाफ़ा पड़ा था। मन में आकांक्षा, कौतूहल, खलबली मच गई। तकिये को वहीं रख पत्र उठा लिया और उलट-पलट कर देखने लगा। एक ओर लिखा था--

"जमादार शेरसिंह के लिए।"

इसका मतलब वह कुछ भी न समझ सका। सोचने लगा--"अगर किसी ने भेजा होता तो पूरा पता तो होता।" फिर विचार उठा--"इस अटकल से क्या ? आखिर है तो मेरा ही; पता चल जायगा।" और उसने लिफ़ाफ़े को फाड़ डाला। एक पत्र निकला। पहले कुछ शब्द पढ़ कर वह क़हक़हा मार कर हँसने लगा--"क्या खूब सूझी है। प्यारे—प्या....रे कितनी चतुर है ? फिर फँसा लेगी क्या मुझको ? ...." परन्तु सहसा उसकी प्रकृति में परिवर्तन आ गया। वह गम्भीरता से पत्र पढ़ने लगा। वह इस तरह लिखा था--

"प्यारे (?) शेरा,

इस प्रश्नसूचक चिह्न को देखकर न जाने क्या विचार कर बैठो। मेरा आशय तो निर्जी है। आज के आपके व्यवहार ने न जाने मेरे मन में कौन-सा तूफ़ान खड़ा कर दिया है। नहीं जानती कि आपके मन में मेरे लिए वही स्थान है जब आपने कहा था, 'इतने दिनों में मुझे भूल न जाना' या उसमें परिवर्तन आ गया है अथवा बिलकुल ही निर्दिष्ट स्थान मुझे मिला है। बस, इसी कारण यह चिह्न है !

तुम नहीं जान सकते मुझे कौन कौन-सी उमंगें--कौन-सी उम्मीदें यहाँ खींच लाई थीं। मगर आज वे सब धूल-धूसरित होती नज़र आईं। जब से आपके कठोर शब्द सुने है, मैं एक निन्द्य प्राणी की तरह सन्तप्त हूँ; आपके पूर्वगत विचारों को सोच जली जा रही हूँ। तुमने मुझे दीवाना बना रक्खा था, बना रहे हो, बनाते रहोगे। आशा नहीं कि फिर कभी आपको देख सकूँ; लेकिन जाने के पहले मैं आपके मन से भ्रमात्मक विचारों को दूर हटाने का प्रयत्न करते हुए यह अन्तिम पत्र लिख रही हूँ। शायद अपने काम में सफल हो सकूँ।

"आपकी बातचीत से प्रतीत हुआ कि मेरा टामवर्थ के साथ भाग आना ही आपके मन में खटक रहा है। पर मैं आपके विचारों को ठीक ठीक नहीं भाँप सकी। खैर, ठीक ठीक हाल संक्षेप में लिखे देती हूँ; जैसा मन में आये समझना ?

"आपको गाँव से आये एक वर्ष हो चुका था। इस बीच में आपका एक--केवल एक पत्र मिला; और वह भी आपके जाने के एक मास बाद ही, तत्पश्चात् नहीं। यह आपका पत्र न मिलना मुझे खटका; न जाने क्या क्या विचार मन में आने लगे। यदि आप जानते नारी-हृदय को ! विचार होता, चलूँ आपके घर से ही आपका हाल पूछ आऊँ; मगर रास्ते में ही जाकर रह जाती। सोचती, न जाने आपके पिता क्या विचार करें ! और लौट आती। दो-एक बार डाकिये को भी बुलाया, मगर आपके पत्र की बाबत उससे भी कुछ पूछने का साहस न हुआ।

गाँव में किसी से पूछने से डरती कि कहीं बात का बतंगड़ न बन जाय। सुजान से तो मैं पहले से ही काँपती थी। भला उससे क्या कहती--क्या पूछती ? इसी तरह एक, दो, तीन....पूरे बारह मास व्यतीत हो गये।

एक दिन यही मेजर टामवर्थ गाँव में भर्ती करने के लिए आया। गाँव के बाहर उसने अपना तम्बू लगवाया। लहनू, फौजी, बुद्धू आदि गुथलियों के लालच में धड़ाधड़ अपना नाम लिखवाने लगे। मेरे दिल में भी उत्सुकता पैदा हुई। भर्ती का मेला देखने के बहाने एक रोज़ सायंकाल मैं मेजर टामवर्थ से मिली और आपका समाचार पूछा, मगर विशेष उत्तर न पा सकी। आखिर उससे मैं पूछ ही तो बैठी, क्या औरतों की भर्ती नहीं होती ?

"भला लड़ाई में औरतों का क्या काम ?"--उसने मुस्कराते हुए कहा--"मगर हाँ, नर्सों की पल्टन उनके लिए है।"

"मतलब ?"

"मतलब यह कि घायल सिपाहियों की देख-भाल के लिए उनकी भर्ती की जाती है।"

"तो हिन्दुस्तानी नर्सें कहाँ भेजी जाती हैं ?"--मैंने मेजर से पूछा।

"जहाँ हिन्दुस्तानी सिपाही हों।"

मेरे दिल में कुछ आशा की झलक हुई। मैंने तुरन्त ही गुप्त तौर पर अपना नाम नर्सों की पल्टन में लिखवा दिया। चौथे दिन मैं बिना किसी से कुछ कहे मेजर टामवर्थ के साथ चली आई। दिल्ली में मैं मिस मदूर के 'ब्रिगेड' में रक्खी गई और मैं नियमपूर्वक उपचार-विधि सीखने लगी।

× × ×

इस कैम्प में आये मुझे एक सप्ताह हो चुका था। फ़ौजियों की अनुक्रमणिका से मुझे पता चला कि आप यहीं हैं। मगर मुझे आपके पास आने का साहस न हुआ। न जाने कौन-सी शंका मेरे दिल में घर किये थी। जान-पहचान किसी सिपाही से थी नहीं, लेकिन फिर भी आपकी खबर ज़रूर रखती थी। आज--आज...। खैर, जो बीत चुकी सो बीत चुकी। अब इसकी याद सताये क्यों ?

यह है इतने दिनों की मेरी संक्षिप्त कहानी। अब इस हत-भागिनी को आपसे मिलने की आशा नहीं। हो सके तो मुझे क्षमा करना।

आपके अन्तिम दर्शनों की अभिलाषिणी,

तेज।

पत्र पढ़कर शेरसिंह की अवस्था अजब हो गई। मुख पर एक रंग आता और एक जाता। उसने उठने की चेष्टा की, परन्तु छाती में एक टीस उठी। वह फिर लेट गया। तकिया उसके मुख पर था।

* * *

आज शेरसिंह तीन वर्ष के बाद लाम पर से लौटा था। अब वह खेतों की आड़ों में कूदने-फाँदनेवाला शेरा नहीं था; अब था वह 'विक्टोरिया क्रास' से सजा हुआ सूबेदार सरदार शेरसिंह। उसके वे शोचनीय संकट के दिन कट गये थे और शीघ्र ही उसे एक जागीर मिलनेवाली थी। परन्तु उसके मन में वह शान्ति, वह प्रसन्नता न थी जिसकी तीन साल पहले उसको आशा थी। उसको चारों ओर सर्वथा शून्य ही दृष्टिगोचर होता था। किसी से मिलने-जुलने में उसे प्रसन्नता न थी; किसी के साथ हँसने में शरीक होना उसको सुहाता न था। न मालूम कौन-सी उसको घोर चिन्ता अन्दर-ही-अन्दर जलाती रहती थी ?

प्रातःकाल गाँव के बहुत-से लोग उससे मिलने के लिए आये। जेलदार साहब और उनके पुत्र सुजानसिंह भी थे। आते आते गाँव की बहुत-सी लड़कियों ने भी गाँव के फाटक पर अथवा खिड़कियों की आड़ों से उसका स्वागत किया था। परन्तु उसे तेज कहीं नज़र न आई। एक-दो बार उसने किसी किसी से पूछना भी चाहा, लेकिन साहस न कर सका। सोचता, किसी से उसकी बाबत पूछने का मेरा अधिकार ही क्या है। न तो वह मेरी सगी है, और न मँगेतर ही ! है भी तो वह जेलदार की बेटी। लोगों के मुँह में क्यों आऊँ ? और.....।

"शेरा !"—किसी ने आवाज़ दी।

"आया बेबे जी,"—शेरसिंह ने विचारों का तार तोड़ते हुए अपनी माता को उत्तर दिया। फिर पाँव में जूता ठीक कर वह दालान में उतर गया। वहाँ उसकी मा थाल परोसे बैठी थी। उसने आसन लेकर भोजन करना आरम्भ कर दिया।

मा ने भी बातों का सिलसिला चलाते हुए कहा--"तुमने सुना। तेज भी लौट आई है।"

"कब?"—उसने विस्मय से पूछा।

"पाँच मास ही तो हुए। कहती थी, मैंने भी बहुत-सी लड़ाइयों के मैदान देखे हैं। मगर जब से आई है, खाट से नाता जोड़ रक्खा है।"

"क्या रोग है?"

"मैं क्या जानूं?—सारा दिन बकती रहती है--'मुझे तुम्हीं खींच ले गये,' 'मैं बिलकुल निर्दोष हूँ,' 'केवल एक बार दर्शन दे दो;' 'आखिरी समय क्षमा तो कर देना--इसी में मुझे शान्ति मिलेगी' इत्यादि। कोई कहता है, उसे क्षय-रोग हो गया है। कोई बोलता है, वह पागल हो गई है। हजारासिंह तो आज-कल सदमे में घुला जा रहा है।"

शेरसिंह अब वहाँ न बैठ सका। जल्दी से पानी पी चुपचाप उठ खड़ा हुआ।

"क्यों? रोटी बीच में ही छोड़ दी?"--उसकी मा ने विस्मय से पूछा।

"भूख नहीं है।"—शेरसिंह ने कुछ गम्भीरता से कहा और फिर जल्दी से घर के बाहर हो गया। तेज़ी से पाँव उठाता वह जेलदार हजारासिंह के दरवाज़े पर जा पहुँचा। तेज की मा वहीं खड़ी थी। बड़ी नम्रता से कुछ धीमी-सी हँसी के साथ उसने कहा--"आओ बेटा! अब हम गरीबों को तो न भूल जाओगे।" और उसे अन्दर लिवा ले गई।

कमरे के भीतर एक चारपाई पड़ी थी। उस पर कपड़ों के एक ढेर के सिवा कुछ दिखाई न देता था। सिर तक तो चादर के पल्ले के नीचे दबा हुआ मालूम होता था। चारपाई के पास पहुँच कर सुजान की मा ने धीमे स्वर में कहा--

"तेज! ओ तेज! देख तो शेरा तुझसे मिलने आया है।" और फिर शेरसिंह की ओर दृष्टि कर बोली—"देखो बेटा, हमारे भाग्य फूट गये। न जाने इसको क्या हो गया है? किसी ने क्या जादू कर दिया है? किसको अपना रोना सुनाऊँ?"—यह कहते कहते उसकी आँखों से दो गोल गोल आँसू टपक पड़े। वह बाहर चली गई।

इतने में बिस्तरे में कुछ स्पन्दन हुआ। अगले ही क्षण उसे तेज का चेहरा नज़र आया; मगर इतना बदला हुआ, इतना थका-माँदा-टूटा हुआ, इतना कमज़ोर कि उसे पहचानते न बनता था। न उस चेहरे पर वह मुस्कराहट थी, न वह तेज ही।

आवेग में आई हुई तेज ने बहुत कठिनता से साँस ली और दोनों हाथ बाहर की ओर फेंकती हुई बोली--'शेरा!--शेरा!! क्या तुम्हीं हो? मैं स्वप्न तो......'

"हाँ तेज, मैं ही हूँ।" शेरसिंह ने अपने आपको क़ाबू में रखते हुए उत्तर दिया।

"शेरा! क्या मुझ अभागिनी को क्षमा कर दोगे? अन्तिम समय पर मेरी एक छोटी-सी भूल पर...." तेज कहते कहते रुक गई। उसकी आँखों से बिन्दु-माला झर-झर झरने लगी।

शेरसिंह आपे में न रहा। आवेग में आ उसके पाँव पकड़ लिये और बड़े विनीतभाव से बोला—"तेज, अपराधी मैं हूँ। भूल मेरी है--मैं ही तुम्हारी बात ठीक ठीक न समझ सका; तुम तो देवी हो। इस अभागे को—नहीं, नहीं, अपराधी को क्षमा कर दो। इसी में मुझे शान्ति मिलेगी। कर दो!—कर दो!!"—वह एकदम रुक गया। उसके सामने तेज शान्त, स्थिर पड़ी थी। उससे न रहा गया। सिर उसके पाँव पर रख दिया।

सारे गाँव में कोहराम मच गया।

आग पर चलना

लेखक, प्रोफ़ेसर फूलदेवसहाय वर्मा

(१)

गत मई मास में जब मैं गरमी की छुट्टियाँ राँची में बिता रहा था, राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद भी राँची में आये हुए थे। वहाँ की ऊराँव और मुंडा जातियों के कुछ व्यक्तियों ने एक अवसर पर निमंत्रित कर आपको आग पर चलने की क्रिया दिखलाई। उसका वर्णन राष्ट्रपति जी ने मुझसे इस प्रकार किया था--उन लोगों ने प्रायः १२ फ़ुट लम्बा और डेढ़ फ़ुट चौड़ा एक गड्ढा बनाया था। उस गड्ढे में लकड़ी जलाकर दहकते अँगारे बनाये थे। चलने के पहले उन अङ्गारों को सूप से धौंककर राख को हटाकर आग को और तेज़ कर लिया था। फिर कुछ पूजा-पाठ और मंत्र इत्यादि पढ़कर स्नानकर अनेक आदमी उस आग पर से चले गये और उनके पैर नहीं जले और न पैरों में कोई छाले ही पड़े। डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद जी का एक नौकर भी उस आग पर से चला गया और उसके भी पैर नहीं जले। ऐसा क्यों होता है, यह प्रश्न साधारणतया पूछा जाता है। इसकी वैज्ञानिक व्याख्या क्या हो सकती है, यह प्रश्न भी वैज्ञानिकों से पूछा जाता है। डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद जी ने भी ऐसा ही प्रश्न पूछा था। अनेक वर्षों से वैज्ञानिकों ने आग पर चलने के रहस्य के जानने की चेष्टा की है और उसके फलस्वरूप जो कुछ वैज्ञानिकों को मालूम हो सका है वह इस लेख में पाठकों के सामने रक्खा जाता है।

आग पर चलने की प्रथा इस देश में बहुत पुरानी है और जहाँ जहाँ भारतवासी गये हैं--जैसे दक्षिण-अफ़्रीका, नेटाल, मारिशस, ट्रिनीडाड इत्यादि जगहों में--वहाँ वहाँ यह प्रथा प्रचलित है। फ़िजी, हवाई इत्यादि पोलीनिशिया के टापुओं में तप्त पत्थरों पर चलने की प्रथा विद्यमान है। जापान में भी आग पर चलने की प्रथा प्रचलित है। इन घटनाओं को योरप और अमेरिका के निवासियों ने अनेक बार देखा है और पाश्चात्य देशों के पत्रों में इनका वर्णन किया है। इस कारण इसकी ओर पाश्चात्य देश के वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित हुआ और उन्होंने आग पर चलने पर पैर के न जलने के कारणों को ढूंढ़ निकाला है।

आग पर चलने के लिए साधारणतया ६ से १२ फ़ुट लम्बा गड्ढा खोदा जाता है। कभी कभी गड्ढा इससे भी अधिक लम्बा होता है। यह गड्ढा प्रायः डेढ़ फ़ुट गहरा और प्रायः डेढ़ ही फ़ुट चौड़ा होता है। गड्ढे में लकड़ियाँ जला दी जाती हैं। जब लकड़ियों के जल जाने पर उनकी लहर बुझ जाती है और लाल लाल अंगारे बन जाते हैं तब चलनेवाले उन पर खाली पैर धीरे-धीरे चलते हैं। इससे उन्हें कुछ कष्ट नहीं होता और उनके पैर नहीं जलते और न उनमें छाले ही पड़ते हैं। क्या इस आग पर चलनेवाले मनुष्य में कोई दैवी शक्ति है?

अमेरिका के प्रोफ़ेसर लांग्ले ने तप्त पत्थर पर चलने की क्रिया सोसायटी टापू के रैटिया नामक स्थान में देखी थी। २१ फ़ुट लम्बा, ९ फ़ुट चौड़ा और प्रायः डेढ़ फ़ुट गहरा एक गड्ढा खोदा गया था। उसमें लकड़ी डालकर उस पर पत्थर के २०० टुकड़े जिनकी तौल प्रायः २० से ४० सेर होगी, रखकर लकड़ी जलाई गई थी। चार घंटे में सब पत्थर लाल हो गये थे। उनके भड़कने से तेज़ आवाज़ें हो रही थीं। चलनेवाले उन दहकते हुए पत्थरों पर चले और उनके पैर नहीं जले। उन पत्थरों में से एक को निकालकर प्रोफ़ेसर लांग्ले ने बाल्टी के पानी में रक्खा। वह पानी १२ मिनट तक खौलता रहा। उस पत्थर को वे वाशिङ्गटन ले गये और वैसा ही गरम कर उसका तापक्रम नापा तब वह प्रायः १२०० डिगरी फ़ारेनहाइट हुआ।

परसीवल लोवेल ने जापान में अंगारों पर चलने की क्रिया का वर्णन किया है। १२ से १८ फ़ुट लम्बा एक गड्ढा खोदा गया था। उसमें कोयले रखकर जलाये गये थे। जब वे कोयले जलकर लाल हो गये तब पुजारियों ने उन पर फूँककर कुछ मंत्र पढ़े, फिर खाली पैर उन पर चले गये। उनके पैर को कोई नुक़सान नहीं पहुँचा। लोवेल ने इस घटना की व्याख्या यह की है कि

उनके तलवे के चमड़े बड़े मोटे और कड़े थे । साधारणतया पूर्व-देश के निवासियों के पैर के चमड़े उतने कोमल नहीं होते और उनके अति-आह्लाद और मानसिक उन्नतावस्था के कारण उनके पैर नहीं जलते ।

भारतवर्ष से एक अँगरेज़ ने आग पर चलने का अँगरेज़ी-पत्रों में वर्णन किया है । वह घटना चिंगलपेट-ज़िले के पालावरम गाँव में हुई थी । उसमें १८ वर्ष की उम्र से ६५ वर्ष की उम्र तक के १८ आदमी सम्मिलित हुए थे । १८ फ़ुट लम्बे, १२ फ़ुट चौड़े और ४ फ़ुट गहरे गड्ढे में छः घंटे लकड़ी जलाकर आग तैयार की गई थी । ये अठारहों आदमी कमर में केवल कौपीन पहने हुए थे । आग पर चलने के तुरन्त पहले इन लोगों ने कौपीन पहनकर स्नान किया और भीगे कौपीन को पहने हुए ही कुछ मंत्रों को उच्चारण करते हुए आग पर चले गये । दूसरी बार ५५ आदमी उस आग पर चले और उनमें केवल एक आदमी के पैर कुछ जले और उन पर छाले पड़े थे । यदि ये सब बातें धोखा होतीं तो एक ही आदमी के पैर क्यों जलते ? उस अँगरेज़ दर्शक का मत था कि ये लोग अङ्गारे पर चलने के पहले—कुछ मिनट व घंटे व दिन पहले—पैरों में कोई प्रबल रस लगा लेते हैं, जो धोने पर भी नहीं छूटता है; उसी के कारण उनके पैर नहीं जलते । आग पर चलने के पहले स्नान करने का तात्पर्य दूसरों को यह दिखलाना होता है कि उनके पैरों में कुछ लगा हुआ नहीं है ।

दक्षिण-अफ्रीका के नेटाल-प्रान्त में जो भारतवासी हैं उनमें भी आग पर चलने की प्रथा प्रचलित है और इस प्रथा का वर्णन हौले विलियम्स नामक एक व्यक्ति ने एक स्थान पर किया है । यह कार्य वहाँ धार्मिक पवित्रता के लिए किया जाता है । आग पर चलनेवाले पाप से मुक्त हो जाते हैं और भविष्य में भी पाप-कर्म करने से बचते हैं । वे दस दिन पहले से इसकी तैयारी करते हैं । इस बीच वे मांस-मदिरा और स्त्री-प्रसंग से परहेज़ करते हैं । प्रतिदिन दो बार स्नान करते हैं । देवताओं के सामने प्रार्थना और अर्चना करते हैं । वे किसी ओषधि का सेवन नहीं करते और न चमड़े पर कोई रस ही लगाते हैं । पर जूता न पहनने के कारण अधिकांश भारतीयों के चमड़े कड़े होते हैं । जिस दिन आग पर चलना होता है उस दिन पुजारी की आज्ञा से नज़दीक की किसी नदी में स्नान करते हैं । उस समय स्त्रियाँ पीला कपड़ा पहनकर गाती और नाचती हैं । युवक-मण्डली बाजे-गाजे के साथ उन्हें मन्दिर में ले जाती है, जहाँ वे २० फ़ुट लम्बे, १० फ़ुट चौड़े और डेढ़ फ़ुट गहरे गड्ढे में तैयार की हुई आग के लाल लाल अंगारों पर चलते हैं । सबसे पहले पुजारी चलता है । फिर दो-दो व तीन-तीन की पंक्ति में भक्त लोग चलते हैं । उनमें कुछ तेज़ी से चलते हैं और कुछ धीरे धीरे । कुछ लोगों का विश्वास छूट जाने से गड्ढे के बग़ल से भाग निकलते हैं और कुछ थोड़ी देर के लिए बग़ल में रक्खी घास पर स्थिर हो फिर चलना शुरू करते हैं, पर किसी को कोई हानि नहीं होती । दो योरपीय भी इस अवसर पर इस कार्य में सम्मिलित हुए थे । उन लोगों ने भी दस दिन की उक्त तैयारी की थी । उनमें एक तो बिना किसी नुक़सान के आग पर से चला गया, पर दूसरे के अँगूठे में एक छोटा फफोला पड़ गया था । ईश्वर पर विश्वास रखना और पवित्र रहना ही न जलने का कारण बतलाया जाता है ।

एक अँगरेज़ दर्शक ने इस घटना की व्याख्या इस प्रकार की है । आग पर चलनेवाले जब आग पर चलते हैं तब उनके पैर भीगे रहते हैं । उनके वस्त्र से भी पानी टपकता रहता है । पानी की बूंदें अंगारों पर पड़कर वाष्प बनती हैं । इससे अंगारे और पैर के तलवे के बीच वाष्प का एक गद्दा बन जाता है, जो पैर को जलने से बचाता है । द्रव वायु को हाथ की हथेली पर रखने से कष्ट का अनुभव नहीं होता, इसका कारण भी हाथ की हथेली और द्रव वायु के बीच वाष्पीय वायु का रहना है । द्रव पदार्थों की उपगोल अवस्था से प्रायः सभी वैज्ञानिक परिचित हैं । पर यह व्याख्या ठीक नहीं जँचती ।

सनफ़्रांसिस्को के रिचार्ड मार्टिन नामक व्यक्ति ने अपनी आँखों देखी आग पर चलने की घटना का वर्णन किया है । उसकी राय में इसमें कोई रहस्य नहीं है । यह घटना दक्षिणी प्रशान्त महासागर के टाहिटी टापू में हुई थी । १८ फ़ुट लम्बा, १२ फ़ुट चौड़ा और ३ फ़ुट गहरा एक गड्ढा खोदा गया था । इस गड्ढे के पेंदे में १२ इंच से १४ इंच व्यास के झाँवे रक्खे हुए थे । इन झाँवों पर लकड़ी के कुन्दे जल रहे थे । इनकी लहरें ६ फ़ुट

तक ऊँची जाती थीं । जब जलकर लकड़ी की लौ बुझ गई तब उन लोगों ने लकड़ी की लग्गी से चलाकर अंगारों को झाँवे से नीचे कर दिया । इससे झाँवों के ऊपर के आधे हिस्से के तल का ललापन दूर हो गया, पर निचला आधा भाग लाल ही रहा । अब वहाँ के छः आदमी घुटनों तक सूती वस्त्र पहने वहाँ आये । वे अपने हाथों में पत्तों का एक लम्बा गुच्छा लिये हुए थे । गड्ढे के निकट पहुँचकर गुच्छों से उन्होंने गड्ढे को स्पर्श किया, आकाश की ओर मुंह करके कोई दो दर्जन शब्द ज़ोरों से बोले और फिर झुककर तप्त झाँवों को तीन बार हाथ के गुच्छों से मारकर बिना किसी हिचकिचाहट के शान्ति-भाव से नंगे पैर उन तप्त झाँवों पर चल कर १८ फ़ुट पार कर गये, दूसरे किनारे पहुँचकर फिर उसी रास्ते से वापस लौट आये । ज्योंही उनका चलना समाप्त हुआ, मार्टिन साहब भी उन पर चलने के लिए तैयार हो गये । पहले उन्होंने अपने नंगे पैर को एक झाँवे पर रखकर जल्दी से हटा लिया । उनके पैर में कोई तकलीफ़ नहीं हुई । इसके बाद वे उस पर चले और १८ फ़ुट तय कर उसी राह लौटे । वे वहाँ के आदमियों से कुछ अधिक तेज़ चले थे । उन्होंने अपने पैर की परीक्षा करके देखा । उनमें कोई चोट न पहुँची थी । इसके दो मिनट बाद वे फिर चार बार उन पर चले । इस चार बार के चलने से उनके पैर में एक छोटा छाला पड़ गया था । इस बार तप्त झावा कुछ अधिक गरम मालूम हुआ था, पर असहनीय नहीं था ।

(२)

अब लण्डन-विश्वविद्यालय के कुछ वैज्ञानिकों ने आग पर चलने के रहस्य के अन्वेषण का काम हाथों में लिया । दस सदस्यों की एक कमिटी बनी, जिनमें चार प्रोफ़ेसर थे । इन लोगों ने पत्रों में आग पर चलनेवालों के लिए विज्ञापन दिया । अनेक व्यक्ति लण्डन पहुँचे, जिन्होंने आग पर चलने की घटना देखी थी । पर उनमें कोई स्वयं आग पर चलने के लिए तैयार न हुआ । अन्त में भारत का एक जादूगर ख़ुदाबख़्श लण्डन गया और आग पर चलने के लिए तैयार हो गया । इसकी तैयारी लण्डन में होने लगी । हैरी प्राइस के शब्दों में इस प्रयोग का उद्देश्य यह देखना था कि आग पर चलने से ख़ुदाबख़्श का पैर जलता है या नहीं । यदि जलता नहीं है तो क्यों ? क्या आग पर चलने में कोई कपट-व्यवहार है ? क्या कोई भी आदमी आग पर चल सकता है ? क्या आग पर चलनेवाला अपने पैरों में कुछ लगाता है । क्या दूसरे के पैर आग पर चलने से नहीं जल सकते ? क्या वह अपने पैर को फिटकरी, नमक, साबुन और सोडे की लेई से ढँक लेता है जैसा कि कुछ लोग कहते हैं ? क्या उनका विश्वास व अति आह्लाद उन्हें जलने से बचाता है ? क्या वे कोई अन्य शून्यकारक ओषधि अपने पैरों में लगाते हैं ? क्या आग के ऊपर राख की जो तह रहती है वह जलने से बचाती है ? क्या चलनेवाला जल्दी चलकर अपने पैरों को जलने से बचाता है या बहुत धीरे धीरे चलकर जलने से बचाता है ? क्या वह अपने को किसी मानसिक व शारीरिक रीति से कुछ ऐसा बना लेता है कि उससे उसके पैर नहीं जलते ? ख़ुदाबख़्श का कहना था कि उसका विश्वास ही उसे जलने से बचाता है और वह औरों को भी आग पर चला सकता है ।

लण्डन में २५ फ़ुट लम्बा, ३ फ़ुट चौड़ा और एक फ़ुट गहरा गड्ढा खोदा गया । उसमें ३ टन (एक टन प्रायः २७ मन का होता है) लकड़ी डाली गई और एक निश्चित तिथि को जलाई गई । डेढ़ घंटे के बाद उसमें कोयला डाला गया ताकि उसका तल अधिक गरम अधिक स्वच्छ और चिकना रहे । साढ़े तीन घण्टे में लकड़ियाँ जलकर दहकते हुए अंगारे बन गईं । उनकी तह प्रायः ३ इंच मोटी थी । ख़ुदाबख़्श के मतानुसार अंगारों की मोटाई कम से कम ९ इंच होनी चाहिए । ऐसा क्यों होना चाहिए, इसका उत्तर वह ठीक प्रकार से न दे सका । चलने से पहले आक्सफ़ोर्ड के डाक्टर विलियम कोलियेर ने ख़ुदाबख़्श के पैर की परीक्षा की । उन्होंने बताया कि उसके पैर सामान्य हैं । पैर की पोछन ली गई और उसकी परीक्षा हुई । उसमें भी कोई विशेष बात न पाई गई । उसका एक पैर धो डाला गया ताकि यदि उसमें कुछ लगा हो तो वह दूर हो जाय ।

उस गड्ढे के एक छोर पर खड़े होकर ख़ुदाबख़्श ने क़ुरान से कुछ प्रार्थनायें पढ़ीं और तब वह उस आग पर चार क़दम रखकर—हर क़दम पर दो बार आग को छूता—चला गया । वह दौड़ा तो नहीं, पर कुछ

तेज़ी से ज़रूर चला और बग़ल में हट गया और कहा कि आग की मोटाई कम है। इसके बाद वह तीन बार और चला। उसके पैरों की फिर परीक्षा हुई। उनमें कोई चोट नहीं थी। ३० मिनट के बाद तक भी उसके पैरों में फफोले नहीं पड़े। उसे चलने के लिए फिर कहा गया, पर उसने यह कहकर इनकार कर दिया कि आग उसके इच्छानुकूल नहीं है। अब किसी वैज्ञानिक के कहने पर लकड़ी के जूते में कपड़ा बाँधकर उस कृत्रिम जूते को उस आग पर चलाया गया। कुछ सेकंड में ही वह कपड़ा झुलस गया और २½ सेकंड में अनेक जगहों पर वह जल गया।

सेंट बार्थोलोमर हास्पिटल जर्नल के सम्पादक डिगवी मोयनाघ ने स्वयं आग पर चलने का विचार किया और अपने नंगे पैर को अंगारे पर रक्खा। उनके पैर में कुछ देर तक रुवरुवाहट रही। फिर वे दो क़दम चले और यह कहते हुए उछल निकले कि "गरम है"। ३० मिनट में उनके पैर में फफोले निकल आये। ख़ुदाबख़्श की अपेक्षा वे अधिक तेज़ी से आग पर चले थे। उनकी तोल १६८ पौंड थी। ख़ुदाबख़्श की तोल केवल १२० पौंड थी। शायद ज़ल्दी चलने से उनके पैर में छाले पड़ गये अथवा हो सकता है कि हलका मनुष्य भारी मनुष्य की अपेक्षा अधिक सुभीते से आग पर चल सकता है।

फिर दूसरी बार ख़ुदाबख़्श के साथ प्रयोग हुआ। इस बार क़रीब ८ टन जलावटन ओक के कुन्दे और लकड़ी के कोयले जलाये गये। ९ इंच गहरा और ६ फ़ुट चौड़ा गड्ढा बना। २५ फ़ुट की एक लम्बाई के स्थान में ११-११ फ़ुट के दो गढ्ढे बने और उनके बीच में ३ फ़ुट का स्थान मिट्टी से भरा रहा। पहले प्रयोग के आठ दिन के बाद यह दूसरा प्रयोग हुआ। लकड़ियाँ जला दी गईं। और कुछ घण्टों के बाद गड्ढा दहकते हुए अंगारों से भर गया। सुबह में लकड़ी का जलना शुरू हुआ और क़रीब १ बजे दिन में दहकते हुए लाल अंगारे तैयार हो गये। उनसे जो गर्मी निकलती थी उसका अनुभव ६५ फ़ुट की दूरी तक से हो सकता था। हवा तेज़ चल रही थी। अंगारे प्रायः सफ़ेद गरम हो गये थे और उनसे राख निकल रही थी। उस पर फिर लकड़ी का कोयला डाला गया। २० मिनट में वे लाल हो गये। चार प्रोफ़ेसरों और वैज्ञानिकों ने ख़ुदाबख़्श की परीक्षा की। उसके तलवे की परीक्षा करके वैज्ञानिकों ने बताया कि उसके तलवे में कोई विशेषता नहीं है। तलवे का चमड़ा कोई विशेष मोटा नहीं था। वह साधारणतया कोमल था; छूने से पैर ठंडा मालूम होता था। तापमापक से पैर का तापक्रम ९३.२ डिगरी था। चमड़ा बिलकुल सूखा था। पैर को धोकर ख़ूब पोंछ डाला गया ताकि उस पर आग का असर आसानी से देखा जा सके।

लकड़ी जलाये जाने के ७ घण्टे के बाद ख़ुदाबख़्श उस पर चला। पहले ११ फ़ुट लम्बे गड्ढे को चार क़दमों में ४ सेकंड में पार कर गया। उसका प्रत्येक क़दम स्पष्ट, एक-सा और अपेक्षाकृत कुछ तेज़ था। वैज्ञानिकों की गणना से प्रत्येक पैर प्रायः आधा सेकंड अंगारों के संसर्ग में था। चलने के बाद ख़ुदाबख़्श के पैर का तापक्रम ९३ डिगरी था। चलने से पहले की अपेक्षा कुछ कम। आग पर चलने के बाद ख़ुदाबख़्श कुछ क़दम घास पर चला था। उसके पैर में कोई चोट नहीं थी। वह फिर एक बार चार क़दम आग पर चला। उस समय व ४८ मिनट के बाद तक उसके पैरों में कोई फफोला न पड़ा। उस आग के तापक्रम के जानने की वैज्ञानिकों को उत्सुकता हुई और जाँच से मालूम हुआ कि उसके पृष्ठ-भाग का तापक्रम ४३० डिगरी शतांश व ८०६ डिगरी फ़ारेनहाइट था। स्वयं आग का तापक्रम १४०० डिगरी शतांश व २५५२ डिगरी फ़ारेनहाइट था। इस तापक्रम को श्वेत ताप का तापक्रम कहते हैं। वास्तव में यह इतना ऊँचा तापक्रम है कि इसके निम्नतापक्रम पर ही इसपात गलकर द्रव हो जाता है। हवा के तेज़ चलने से इतना ऊँचा तापक्रम हो गया था। जब तीसरी बार ख़ुदाबख़्श से इस आग पर चलने के लिए कहा गया तब उसने पहले तो कुछ समय माँगा, पर पीछे चलने से इनकार कर दिया और कहा कि "मेरी हिम्मत टूट गई है। मेरा विश्वास हट गया है। यदि मैं अब चलूं तो जल जाऊँगा।" वह चिन्तित और घबराया हुआ मालूम हुआ। इससे फिर तीसरी बार चलने के लिए उस पर ज़ोर नहीं दिया गया।

डिगले गोयानघ जिन्होंने ८ दिन पूर्व के प्रयोग में आग पर चलने की कोशिश की थी, इस बार भी दो क़दम चले और कूद निकले। उनके पैर की परीक्षा से मालूम हुआ कि उनके तलवे में अनेक फफोले पड़ गये थे। दूसरी

चेष्टा में और भी छाले पड़ गये। उनके चमड़े ख़ुदाबख़्श के चमड़े से कुछ अधिक भींगे थे। हो सकता है, इसी से उनके तलवे में अधिक छाले पड़ गये हों। वे ख़ुदाबख़्श से अधिक तेज़ी से चले भी थे। तलवे भींगे होने के कारण उसमें एक अंगारा सटा हुआ था। इससे उपगोलावस्था के सिद्धान्त का पूर्ण रूप से खण्डन होता है। तेज़ चलने से ज़रूर यह होता है कि पैरों पर अधिक दबाव पड़ता है। इस कारण नौसिखिए के लिए यह बात बहुत आवश्यक है कि वह चलने में जल्दी न करे। उसे अपेक्षाकृत धीरे धीरे एक-सा शान्तभाव से चलना चाहिए। यह अनुभव से ही जाना जा सकता है कि चाल कैसी होनी चाहिए। न वह तेज़ होनी चाहिए और न बिलकुल धीमी। इसके पश्चात् एक दूसरे अँगरेज़ मौरिस चैपीन ने आग पर चलने की कोशिश की। वे दो क़दम तेज़ी से चले। उनके तलवों में छाले पड़ गये और तीन जगहों से ख़ून बहने लगा। वे जल्दी से गड्ढे से भाग निकले। उनकी तोल १६३ पौंड थी। आग पर इन चलनेवालों का वेग जानने के लिए चल-चित्र लिया गया था, जिससे स्पष्ट मालूम होता था कि ये दोनों अँगरेज़ ख़ुदाबख़्श की अपेक्षा अधिक तेज़ चले थे। इस प्रयोग से प्राइस ने अनुमान किया कि अंगारे की राख की ताप-चालकता का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि प्रत्येक बार चलने के पहले सावधानी से राख हटा ली जाती थी। प्रत्येक बार पैर आधे सेकंड से अधिक अंगारे के संसर्ग में नहीं रहा।

इसके कुछ वर्षों के बाद आग पर चलने का फिर प्रयोग हुआ। इस बार एक दूसरा मुसलमान जादूगर अहमद हुसेन था, जो अनेक बार भारत में आग पर चल चुका था। अहमद हुसेन स्वयं आग पर चलने के लिए ही तैयार न हुआ, बरन वह एक अँगरेज़ को भी आग पर चलाने के लिए तैयार हो गया। अँगरेज़ सज्जन चाहते थे कि आग पर चलने का रहस्य उन्हें मालूम हो जाय। इसके लिए विज्ञापन दिया गया। ४० अँगरेज़ आग पर चलने को तैयार हो गये। ये साधारण अँगरेज़ थे। सब क़िस्म के पेशेवाले थे। उनमें कैगी, मार्शल, बोल्ड, चेज़ने और ऐडकौक जिनकी तोल क्रमशः १४३, १४५, १२४, १७७ और १५७ पौंड थी, चुने गये। अहमद हुसेन की तोल १२६ पौंड थी। प्रोफ़ेसर पानेट और न्यूकोम्ब ने उन लोगों के पैर धोये और सावधानी से उन्हें सुखाया। अहमद हुसेन के आदेशानुसार १२½ फ़ुट लम्बा ४ फ़ुट चौड़ा और १५ इंच गहरा गड्ढा खोदा गया। फिर उसमें आग सुलगा दी गई। उसके तल का तापक्रम ५७५ डिगरी शतांश व १०६७ डिगरी फ़ारेनहाइट पाया गया। आग के अन्दर का तापक्रम ७०० डिग्री शतांश व १२९२ डिगरी फ़ारेनहाइट था। यह तापक्रम कैम्ब्रिज की यंत्र बनानेवाली कम्पनी-द्वारा बने उग्र ताप-मापक से नापा गया था।

प्रार्थना करने के पश्चात् अहमद हुसेन आग पर चला। तीन तेज़ क़दमों में १.३ (प्रायः सवा) सेकंड में वह पार कर गया। उसका पैर नहीं जला। अब अहमद हुसेन ने दूसरे अँगरेज़ों को चलने के लिए कहा। कैगी, मार्शल और बोल्ड एक पंक्ति में खड़े होकर अहमद हुसेन के पीछे हो लिये। इनमें कैगी अहमद हुसेन की पेटी पकड़े हुए था। मार्शल और बोल्ड क्रमशः कैगी और मार्शल के हाथ पकड़े हुए थे। वे १.५ सेकंड में गड्ढे को पार कर गये। उनके पैर बहुत कम जले। उनमें केवल एक व्यक्ति को जिसके पैर में एक छोटा अंगारा सटा हुआ था, कुछ कष्ट हुआ। इसके बाद ऐडकौक अकेले चला और १.४ सेकंड में तीन क़दमों में पार कर गया। उसके बाद चेज़ने उस पर चला। उसके भी पैर बहुत कम जले। उन सबके चलने से मालूम हुआ कि यदि क़दम नियमित नहीं हैं तो जलने की अधिक सम्भावना रहती है।

अब अहमद हुसेन कितनी ही दूरी तक आग पर चलने के लिए तैयार हो गया। पर जब उसे उसी आग पर आगे और पीछे चलने के लिए कहा गया तब उसने कहा कि वह आगे ही चल सकता है, पीछे नहीं। दूसरे दिन गड्ढा २० फ़ुट लम्बा बनाया गया। उस दिन आग के बाह्य तल का तापक्रम ७४० डिगरी शतांश व १३६४ डिगरी फ़ारेनहाइट था। प्रार्थना करने के बाद वह चला और २.३ सेकंड में ६ क़दमों में पार कर गया। इस बार उसने कहा कि उसके पैर जल गये हैं। देखने पर उसके एक पैर में पाँच छाले दिखाई दिये। दूसरा पैर लाल हो गया था। अब उसने चलना अस्वीकार कर दिया और कहा कि उसका विश्वास हट गया है।

अब ऐडकौक उस पर चार क़दम चला और उसका

पैर बहुत कम जला। पीछे वह रस्सी-तले का जूता पहनकर चला और ७ क़दमों में पार कर गया। जूते का तला जला नहीं। अब बोल्ड और रसेल उस पर चले और उनके पैर बहुत कम जले। रस्सी-तले के जूते को पानी में भिगोकर आग के संसर्ग में रक्खा गया तब कई सेकंड के बाद उसमें से भाफ निकलती देखी गई।

जब ये लोग आग पर चले थे तब पैर अंगारों में २ से ३ इंच गहरे धँस गये थे। इससे उनके पैर के ऊपर के हिस्से अंगारों से ढँक गये थे। इससे मालूम हुआ कि अंगारों की ताप-चालकता बहुत अल्प है। इसी से चमड़ों व अन्य पदार्थों पर उनसे कोई विशेष नुक़सान नहीं होता, यदि संसर्ग आध सेकंड से अधिक न हो। लगातार संसर्ग भी बहुत अधिक बार न होना चाहिए।

अब अहमद हुसेन के साथ एक तीसरा प्रयोग हुआ। इसमें १२ फ़ुट लम्बा गड्ढा बना था। उस दिन हवा बड़ी तेज़ चल रही थी। आग का तापक्रम ८०० डिगरी शतांश व १४७२ डिगरी फ़ारेनहाइट था। अहमद हुसेन ४ क़दमों में उसे पार कर गया और उसके पैर नहीं जले। ऐडकौक तीन क़दमों में १.८ सेकंड में पार कर गया। उसके भी पैर नहीं जले। उसने कहा कि इस बार वह धीरे धीरे स्थिरता से चला था, क्योंकि पहली बार चलने से उसे अपने ऊपर विश्वास हो गया था। खुदाबख्श, अहमद हुसेन और ऐडकौक की तोल क्रमशः १२०, १२६ और १६० पौंड थी और वे ११, १२, १२ फ़ुट क्रमशः चार, चार और तीन क़दमों में २.२, १.६ और १.८ सेकंड में पार कर गये थे। आग के तल का तापक्रम क्रमशः ८०६, १४७२, १४७२ डिगरी फ़ारेनहाइट था। ऐडकौक के आग पर चलने का काम खुदाबख्श और अहमद हुसेन से किसी प्रकार कम न था, बल्कि खुदाबख्श से बढ़चढ़कर ही था।

इन प्रयोगों से डाक्टर ब्राउन आग पर चलने के रहस्य के सम्बन्ध में निम्नलिखित सिद्धान्त पर पहुँचे हैं।

आग पर चलने का काम कोई धोखा नहीं है। आग पर नंगे पैर चला जाता है। पैर में कुछ लगाया नहीं जाता और न उन्हें पहले से किसी प्रकार तैयार करने की आवश्यकता होती है। चूँकि आग का तल अस्थिर होता है और पैर कई इंच नीचे धँस जाता है, इससे चलने में पैर का अंगारों के संसर्ग में आना अनिवार्य है। चलने में किसी विशेष चातुर्य्य की आवश्यकता नहीं। अधिक समय तक पैर आग के संसर्ग में न रहे, इसके लिए आवश्यक है कि चलना एक-सा हो। पैर में जल का होना हानिकारक है। जल-वाष्प की उपगोलावस्थावाली व्याख्या सारहीन है। पैर के तलवे के चमड़े के मोटा होने की बिलकुल ज़रूरत नहीं। इसका कोई प्रमाण नहीं है कि पैर का न जलना किसी दूसरे व्यक्ति को दिया जा सकता है। आग पर चलने के बाद पैर के तापक्रम में जो कुछ कमी हुई थी वह आग पर चलने के पश्चात् घास पर चलने से हुई थी। पैर को न जलने के लिए अंगारों पर राख का होना कोई आवश्यक नहीं। बल्कि चलने के समय राख साधारणतया हटा दी जाती है, जैसा खुदाबख्श ने भी किया था। चलने के समय पैर काफ़ी नीचे धँसकर जलते अंगारों के संसर्ग में आते हैं।

एक अभ्यासी आग पर चलनेवाले के बराबर ही एक नौसिखिया भी आग पर चल सकता है। इससे ज्ञात होता है कि आग पर चलने के लिए विश्वास व किसी विशेष मानसिक अवस्था की आवश्यकता नहीं। सूखे रस्सी-तले के जूते के न जलने से यह बात साफ़ सिद्ध होती है। आग पर चलने का रहस्य वस्तुतः अंगारों की अत्यल्प ताप-चालकता पर निर्भर करता है। ताँबे की ताप-चालकता अंगारे की ताप-चालकता से हज़ार गुना अधिक है। चमड़े व अन्य किसी पदार्थ पर तप्त पदार्थों से नुक़सान पहुँच सके, इसके लिए यह आवश्यक है कि तप्त पदार्थों से ठंडे पदार्थों में ताप शीघ्रता से प्रविष्ट कर सके। ताप का यह चालन शीघ्र होना चाहिए। देर से होने में ठंडे पदार्थों के तापक्रम के बढ़ने से पहले ताप निकल जाता है। इस कारण आग पर चलने के समय यद्यपि दहकते अंगारों और पैर के बीच तापक्रम का अन्तर बहुत अधिक रहता है, पर अंगारों की ताप-चालकता बहुत अल्प होने के कारण और आग और पैर के बीच संसर्ग इतना अल्प काल के लिए होता है कि उससे ताप का चालन आग से पैर में बहुत कम होता है। जलते अङ्गारे और उस पर की राख बड़े कुताप चालक होते हैं। साधरणतया आग और पैर का संसर्ग आधे सेकंड से अधिक नहीं होता। इससे पैर नहीं जलता। यदि आग और पैर का संसर्ग अधिक काल के लिए हो तो पैर

अवश्य ही जल सकता है और उस पर छाले पड़ सकते हैं। यह सम्भव है कि जो लोग बिना जूता पहने घूमते-फिरते हों जैसे हिन्दुस्तान के अधिकांश लोग करते हैं तो ऐसे लोगों के पैर में आग का प्रभाव और कम पड़े। यह भी सम्भव है कि सम्मोहन (हिप्नोटिज़्म) के द्वारा आग पर चलने में पैरकष्ट कुछ कम हो, पर वास्तव में आग पर चलने के लिए इन बातों की आवश्यकता नहीं।

इन प्रयोगों का अन्तिम परिणाम यह निकला कि आग पर चलना एक बिलकुल भौतिक घटना है। थोड़े काल के लिए आग और पैरों का संसर्ग, कुछ ही क़दम चलना और अङ्गारों की अत्यल्प चालकता ही पैरों को जलने से बचाती है। कोई भी मनुष्य बिना किसी यंत्र, मंत्र और पूर्वतैयारी के बिना जले उपर्युक्त अवस्थाओं में आग पर चल सकता है।

परिचय

लेखक, श्रीयुत 'अंचल'

मूक उत्तर मैं तुम्हारा तुम अधीर पुकार
बन्धनों की मस्तियों में जागती-सी लालसा तुम
पूर्ति मैं—फिर भी असंमत चिर अतृप्त मदालसा तुम
एक क्षण मैं चिर हरा जो तुम सतत चीत्कार
दूर रह देती तसल्ली तुम दिगन्तर की सहेली
मैं महासागर जलन का क्षुब्ध लहरों की पहेली
एक सीमा में बँधा मैं तुम अशेष अपार
एक दुर्दिन स्वप्न मैं तुम सत्य की आश्वास वाणी
एक चुभता व्यंग मैं तुम जलभरी तृष्णा-कहानी
मौन तुम चिर मौन पर चिर मुखर मेरी हार
जो न कटती रात वह तुम दीप जिसका स्नेह रीता
मैं मरण की अंजली-सा दिन न जो फिर शान्त बीता
तुम सृजन की वन्दना विच्छेद, मैं संहार

धरती का राजा

लेखक, श्रीयुत ठाकुर मोहनसिंह सेंगर

खें मलते हुए कन्हैया उठ बैठा। अँगड़ाई लेकर उसने इधर-उधर नज़र दौड़ाई। कहीं कुछ भी नहीं था। ऊपर आकाश की ओर उसने देखा--वहाँ भी कुछ नहीं था। उसकी उदास आँखें जैसे अनन्त आकाश के सूनेपन को एक ही घूँट में पीकर फिर इधर-उधर कुछ ढूँढ़ने लगीं। पर कहीं कुछ भी दिखाई न दिया।

सहसा सामने खड़े हुए वृक्षों की क़तार के ऊपर एक काली बदली उठती हुई दिखाई दी। कन्हैया ने आँखें फाड़-फाड़कर उसे देखा। ज्यों ज्यों वह ऊपर उठ रही थी, कन्हैया का भूख और चिन्ताओं से व्याकुल चेहरा प्रसन्नता से दिपदिपा रहा था। जब वह काफ़ी ऊपर उठ आई तब कन्हैया की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। वह उछलकर खड़ा हो गया और जल्दी-जल्दी अपने सिर से पगड़ी लपेटते हुए पागलों की तरह चिल्ला उठा--"गौरी, ओ गौरी, देख, वह देख, ज़रा सामने तो देख। बादल आ रहे हैं। मालूम होता है हमारी महीनों की तपस्या आज फलवती हुई। अब हम भूखों नहीं मरेंगे, गौरी। अरी जल्दी उठ, इधर तो आ, अपने मेघ-राजा की पूजा करें। मालूम होता है, हमारी दशा से आज राजा इन्द्र का हृदय पसीजा है।"

अब तक बदली और भी ऊपर आ चुकी थी। कन्हैया की दोनों आँखें उसी पर लगी थीं और उसके पाँव अनायास उस तरफ़ बढ़ रहे थे, जिधर से कि बदली आ रही थी। वह प्रसन्नता से पागल होकर गाने और नाचने लगा। प्रभात का बढ़ता हुआ प्रकाश अब कुछ धुँधला पड़ा और चारों तरफ़ से धूल उड़ाती हुई ज़ोरों की हवा चलने लगी। कन्हैया की प्रसन्नता का वारापार न रहा। और भी ज़ोर से वह चिल्ला उठा--"गौरी, ओ गौरी, अरी ज़रा देख तो बादल आये हैं। पुरवैया चलने लगी। अब तो वर्षा ज़रूर होगी--कोई उसे रोक नहीं सकता।"

गौरी की नींद टूटी। न मालूम कितने दिनों के बाद आज वह अच्छी तरह सोई थी। भूख के कारण कमज़ोरी बढ़ जाने से उसका अंग-अंग टूट रहा था। उसने थोड़ी-सी अफ़ीम ले ली थी। उसी से ज़रा नींद भी आगई थी। करवट बदल कर उसने देखा--कोई २०-२२ क़दम के फ़ासले पर उसका पति उछल-कूद कर रहा है। आधी पगड़ी उसकी सिर से लिपटी है और आधी खुलकर पाँवों में लिथर रही है। उसने अपने स्तन से मुँह लगाये लेटे हुए बच्चे को सँभाला और कुछ घबराई हुई-सी उठ बैठी। आँखें फाड़ फाड़ कर वह कन्हैया की तरफ़ देखने लगी, पर बात क्या है, यह उसकी समझ में कुछ भी नहीं आया।

कन्हैया ने ज़ोर से ताली पीटी और उछलता-कूदता गौरी की तरफ़ आता हुआ बोला--"गौरी, देख न, बादल आये हैं। आज तो वर्षा ज़रूर होगी--कोई उसे रोक नहीं सकता।"

गौरी अब भी चुप थी। कन्हैया पास आया। उसका हाथ खींच कर उठाने की कोशिश करता हुआ बोला--"अरी, बैठी हुई क्या देख रही है? चल न, मेघराज का पूजन करें। आज वर्षा ज़रूर होगी।"

झटका देकर पति के हाथ से अपना हाथ छुड़ाते हुए गौरी ने कहा--"पागल मत बनो। कहाँ हैं बादल? यह तो एक छोटी-सी बदली है। इसमें कहीं वर्षा होगी?"

"हाँ, हाँ, होगी और ज़रूर होगी। अगर तुझे विश्वास न हो तो सौ-सौ रुपये की शर्त लगा देख। मैं कहता हूँ वर्षा आज ज़रूर होगी।"

"लेकिन सौ रुपये हैं किसके पास?"

"न हों, पर मैं जो कुछ कहता हूँ, वह सोलह आने सच है। तू भले ही मेरी बात पर विश्वास न कर।"

"विश्वास कैसे करूँ? तुम तो रोज़ वर्षा होने की भविष्य-वाणी करते हो, लेकिन वह होती कब है? यह क्या कोई नई बात है?"

"मुझे पागल मत बना गौरी पहले की बातें छोड़, पर आज मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह सोलह आने सत्य है।"

इस बार गौरी कुछ नहीं बोली। कई दिनों की

भूख के कारण उसका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया था। वह फटे हुए बोरे के टुकड़े पर लेट गई और बच्चे को स्तन-पान कराने लगी। पर बिना आहार के उस सूखे कंकाल में दूध कहाँ से आता? स्तन से मुँह हटाकर बच्चा रोने लगा। गौरी ने चुप करने के लिए उसे और भी ज़ोर से छाती से चिपटा लिया। दूसरे दोनों बच्चे अभी तक सो रहे थे।

कन्हैया को आज इधर ध्यान देने की फ़ुर्सत ही कहाँ थी? उसकी आँखें तो आकाश में उठनेवाली उस बदली पर गड़ी थीं जो उसकी सारी आशाओं और अरमानों की गठरी सिर पर धरे धीरे-धीरे सफलता की ओर बढ़ रही थी। आज वह भूख-प्यास सब कुछ भूल गया था। उसे ऐसा जान पड़ रहा था, मानो आज उसके भाग्य की कोठरी खुलनेवाली है और इनाम उसे ज़रूर मिलेगा। न मालूम कितने घंटे उसने इसी तरह आकाश की ओर टकटकी लगाये ही बिता दिये? कब धूप निकली और कब कम हो गई, उसे नहीं मालूम हुआ। पुरवैया कब रुक गई, यह भी उसे नहीं मालूम हुआ। अपनी पगड़ी सँभालने का भी उसे ध्यान नहीं रहा।

बदली अब बीच आकाश में आ चुकी थी और क़रीब क़रीब उसके खेत के ऊपर से धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी। अब वह काली और छोटी नहीं रह गई थी। उसका आकार फैल कर बड़ा हो गया था और कालापन भूरेपन में बदल गया था। अब कन्हैया का मन आशा और निराशा के बीच झूल रहा था। इसी समय उसके ललाट पर आये हुए पसीने की एक बूँद बाईं कनपटी और गाल पर होती हुई उसके पाँव पर आ गिरी। झटके के साथ कन्हैया की गर्दन नीचे झुकी और उसकी आँखों ने धूल जमे हुए पाँव पर उस बड़ी-सी बूँद का निशान देखा। अब तो उसके आश्चर्य और प्रसन्नता का कोई ठिकाना नहीं रह गया। खुशी से उसका चेहरा लाल हो गया। वह दौड़ कर गौरी के पास आया और चिल्ला कर बोला--"गौरी, देख, मेरे पाँव पर तो देख--कितनी बड़ी बूँद पड़ी है! तुझे मेरी बात पर विश्वास नहीं होता था। पर ले, अब अपनी आँखों से देख--यह वर्षा की बूँद नहीं तो और क्या है?"

कमज़ोरी से गौरी का सिर चकरा रहा था। बिना आँखें खोले ही उसने कहा--"अच्छी बात है। वर्षा आई है तो आने दो। मुझे तो तुम्हारी [illegible] अब भी विश्वास नहीं होता। न जाने, कितनी [illegible] इसी तरह धोखा खाया है।"

इस बार जैसे कन्हैया की आँखों में खू[illegible] आया। अगर गौरी की हालत बुरी न होती तो [illegible] आज लात-घूँसों से उसकी पूजा करता, इतना [illegible] वह कैसे सहन कर सकता था? ग़म खाकर [illegible] खेत में आ गया और टकटकी लगाकर आगे बढ़[illegible] बदली की तरफ़ देखने लगा।

(२)

दूसरे दिन गौरी की आँख ज़रा [illegible] थी। अभी पौ नहीं फटी थी। कन्है[illegible] ज्यों ही उसने करवट ली तो देखती है [illegible] कब से उठकर बैठा हुआ है और कुछ [illegible] झुटपुटे में भी उसकी आँखों का पानी [illegible] रहा था। गौरी ने फीकी मुस्कराहट के [illegible]-- "क्या आज फिर कोई बदली उठी है? आ[illegible] होगी? बोलो, चुप क्यों हो?"

कन्हैया कुछ न बोला। बादलों के सा[illegible] गौरी पर भी क्रोध आ रहा था कि उसने [illegible] विश्वास क्यों नहीं किया? उसके न बो[illegible] गौरी ठीक ठीक नहीं समझ सकी। उसने क[illegible] पकड़ कर हिलाते हुए कहा--"यों मुँह [illegible] वर्षा थोड़े ही हो जायगी या पेट थोड़े ही [illegible]? हाथ-पाँव तो आखिर हिलाने ही पड़ेंगे।"

कन्हैया अकस्मात् झल्ला उठा--"[illegible] ज़्यादा बकवाद मुझे अच्छी नहीं लगती। व[illegible] जब तेरा ही मुझ पर विश्वास नहीं तब मेघ [illegible] क्यों विश्वास करने लगे? कलमुँही कहीं [illegible]

अभी तक गौरी हँसी कर रही थी, पर [illegible] में गरमी देखकर वह ज़रा सहमी और कुछ [illegible] के बाद बोली--"लेकिन इस तरह बिग[illegible] क्या होगा? हाथ-पाँव हिलाये बिना तो पेट की आ[illegible] बुझ सकती।"

"न बुझे--मैंने उसके बुझाने का कोई [illegible] ही लिया है?"

"क्या मतलब इसका?"

"यही कि हाथ-पाँव सिर्फ़ मेरे ही तो नहीं हैं, तुम्हारे भी हैं और चाहो तो तुम भी उन्हें हिला सकती हो।"

"हूँ" कह कर गौरी ने करवट बदल ली और कुछ सोचने लगी। कन्हैया उसी तरह बैठा रहा। दोनों चुप थे।

थोड़ी देर के बाद गौरी ने कहा--"अच्छी बात है। आज मैं ही जा रही हूँ। कहीं-न-कहीं तो चार पैसे की मज़दूरी मिलेगी ही। यों हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने से पेट नहीं भर सकेगा। हम लोग शायद दो-चार लंघन और कर जायँ, पर ये बच्चे भूखे क्यों कर रह सकेंगे? तुम्हें चाहे न हो, पर मुझे तो इनकी फ़िक्र ज़रूर है। दो बच्चे जिस बुरी तरह मेरी आँखों के सामने तड़प तड़प कर मर गये वह मैं जीवन भर नहीं भूल सकूँगी।"

"बड़ी ख़ुशी से जा सकती हो। ज़रा तुम्हें भी मालूम तो हो कि आजकल काम मिलना कितना कठिन है। रोज़ मैं कोसों घूम आता हूँ, पर कहीं कोई काम नहीं मिलता। लोग समझते हैं कि हमारी हालत उतनी ख़राब नहीं है, जितनी हम बतलाते हैं। कोई इस बात पर विश्वास नहीं करता कि कई कई दिन हम बिना खाये पिये रह जाते हैं। सलाह देनेवाले बहुत मिल जाते हैं। पर सहायता के नाम पर सभी चुप हो जाते हैं। तुम्हें कैसे समझाऊँ गौरी, लोगों का दिल आजकल पत्थर हो चला है। तुम समझती हो कि शायद मैं जान-बूझ कर काम नहीं करना चाहता और दिन भर इधर-उधर भटक कर ख़ाली हाथ लौट आता हूँ। सच मानो, मुझे तुम्हारी और इन बच्चों की तुमसे कम फ़िक्र नहीं है। पर तुम्हीं बताओ, आख़िर मैं करूँ भी क्या? काम करने से मैं जी नहीं चुराता, लेकिन काम मिले तब न?"

"मैं कब कहती हूँ कि तुम काम करने से जी चुराते हो। काम मुश्किल से मिलता है, यह मैं भी जानती हूँ; लेकिन किसी तरह इस देह के लिए कुछ तो करना ही होगा। काम कहीं न कहीं तो आख़िर मिल ही सकता है। और लोग भी तो किसी तरह गुज़र-बसर कर ही रहे हैं।"

"अच्छी बात है, आज तुम्हीं जाकर अपना भाग्य आज़मा देखो। शायद स्त्री समझ कर कोई तुम पर दया कर दे, वर्ना दुनिया तो आजकल पत्थर की हो रही है। कौन मरता है और कौन जीता है, इसकी फ़िक्र किसे है?"

गौरी उठी और अपने अस्त-व्यस्त कपड़े ठीक किये। चलने से पहले उसने अपने सबसे छोटे बच्चे की तरफ़ एक दयार्द्र दृष्टि डाली और कन्हैया को संबोधन कर बोली--"इसके पास से हटना मत। रात भर इसे बुख़ार रहा है। इस समय भी कुछ-कुछ हरारत है। इसे रोने न देना।" कन्हैया के जवाब की स्वीकृति की प्रतीक्षा किये बिना ही गौरी अपना भाग्य आज़माने चल पड़ी।

कन्हैया के मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला। 'हाँ' या 'न' भी वह नहीं कह सका। एक प्रश्नभरी दृष्टि उसने गौरी के चेहरे पर डाली और दूसरे ही क्षण उसकी डबडबाई आँखें गौरी के उस सूखे शरीर का बोझ सँभालने वाले दुर्बल पाँवों पर पड़ीं। उसके जी में आया कि इस हालत में गौरी को जाने न दे, उसे रोक ले और उसके बदले ख़ुद काम ढूँढ़ने जाय। पर वह कुछ भी नहीं बोल सका।

धीरे-धीरे गौरी चली जा रही थी और डबडबाई आँखों से कन्हैया उसके हिलते-डुलते कंकाल को किसी अज्ञात दिशा में खींचे लिये जानेवाले मन की विशालता की कल्पना कर रहा था। न मालूम इस जीवन में, इस कल्पना में, उसे किसी सुख का अनुभव हो रहा था? उसके हृदय में आज एक विकट तूफ़ान उठा था, जिसे न मालूम आँखों का दो बूँद पानी कैसे रोके हुए था? जब गौरी आँखों से ओझल हो गई, तब कन्हैया की सजल आँखें ज़मीन पर मैले और फटे कपड़ों में लिपटे पड़े बच्चों पर पड़ीं। वे जीवन का अपवाद बने, मानों मृत्यु को खीसें निपोर कर चिढ़ा रहे थे और वह उन पर बाज की तरह टूट पड़ने को मँडरा रही थी! टप्-टप् उसकी आँखों से दो बूँद आँसू गिर कर बिस्तरे का काम देनेवाले बोरे में विलीन हो गये।

(३)

सूर्य अभी अभी अस्त हुआ था। सूना आकाश अपनी उदासी को अँधेरे में छिपाने का यत्न कर रहा था। कन्हैया जहाँ सुबह बैठा था, अब भी वहीं बैठा था। उसके देखते देखते पूरा दिन बीत चला था, पर उसे जैसे कुछ मालूम ही नहीं हुआ। बच्चे जागे। 'माँ भूख लगी है, रोटी दे' की रट लगाकर कुछ रोये-धोये और फिर सो गये। कन्हैया कुछ न बोला। उनकी रोटी की माँग उसे रोज़ का एक

उपचार-सा लगा, जिसका उत्तर देने की उसने कोई आवश्यकता नहीं समझी। अपने जीवन का, अपनी उम्र का, एक दिन और वह बिता चुका था। पर क्या उम्र की इस वृद्धि के साथ ही साथ उसका ज्ञान और अनुभव भी बढ़ गया था? शायद।

सामने से गौरी आती हुई दिखाई दी। उसका चेहरा तो अँधेरे के कारण साफ़ साफ़ दिखाई नहीं दे रहा था, पर उसकी चाल में कुछ दृढ़ता और तेज़ी थी। कन्हैया ने अनुमान किया कि अवश्य वह सफलता प्राप्त करके लौट रही है। आज मुझे नीचा देखना पड़ेगा। उसके मस्तिष्क में तरह तरह की आशंकायें उठने लगीं।

अब तक गौरी पास आ चुकी थी। कन्हैया ने उसके चेहरे पर विजय का गर्व और सफलता की ख़ुशी देखी। वह बराबर उसकी ओर देखता रहा। गौरी ने अपने आँचल में बँधी हुई मोटी मोटी तीन रोटियों को उसके सामने पटकते हुए कहा--"यह लो! देखते क्या हो? मैं तुम्हारी तरह ख़ाली हाथ लौटनेवाली नहीं।"

"यह तो मैं पहले से ही जानता था। तुममें इतना आत्म-विश्वास है और मैं उसे संकट के इस समय में खो चुका हूँ।" कन्हैया ने रुँधे हुए स्वर में कहा।

"बातें करने को सारी रात पड़ी है, पहले आओ पेट-पूजा कर लें। रोटी देखकर भूख जैसे अपनी सीमाओं को तोड़ डालना चाहती है! न जाने कितने दिन के बाद आज रोटी देखने को मिली है। एक एक हम दोनों खा लेते हैं और एक बच्चों के लिए छोड़ देते हैं। उन्हें जगा लें या वे फिर जागने पर ही खा लेंगे।"

"वे तो अभी अभी रोटी के लिए रोकर सोये हैं। अच्छा है, एक नींद निकाल लेने दो, फिर देर से खायेंगे तो सुबह जल्दी रोटी नहीं माँगेंगे।"

गौरी झोंपड़ी के अन्दर से दो छोटी छोटी हँड़ियाँ निकाल लाई, जिनमें से एक में नमक था और दूसरे में मिर्च। उसने एक रोटी पर थोड़ा-सा नमक-मिर्च रक्खा और उसे कन्हैया के आगे बढ़ा दिया। दूसरी रोटी पर उसने अपने लिए नमक-मिर्च रख लिया।

दोनों हँड़ियाँ अन्दर रखकर जब गौरी लौटी तब कन्हैया ने एक टुकड़ा तोड़कर मुँह में रखते हुए कहा--"पर गौरी, तुम्हें आज कुल कितने पैसे मिले?"

"पैसे? पैसे कैसे? ये तीन रोटियाँ मिली हैं।"

"अच्छा, तो आज-कल मज़दूरी भी पैसों के बजाय रोटियों में मिलने लगी। यह दिन भर की मज़दूरी के बदले सिर्फ़ ये तीन रोटियाँ--वे भी सहायता, सहानुभूति और एहसान के नाम पर!"

गौरी कुछ सहमी--पर चुप रही। कन्हैया ने मुँह का कौर निगलते हुए कहा--"और तुमको काम क्या करना पड़ा, गौरी?"

गौरी रोटी का दूसरा टुकड़ा तोड़ ही रही थी। उसका हाथ वहीं रुक गया और आँखें झुक गईं। सहसा कन्हैया विस्मित और शंकित होकर गरज उठा--"जवाब क्यों नहीं देती, गौरी? मैं पूछता हूँ, तुझे क्या मज़दूरी करनी पड़ी? इसमें भी क्या कुछ छिपाने की बात है?"

गौरी इस बार भी चुप रही?

अब तो कन्हैया की आशंका और भी बढ़ गई। उसके मस्तिष्क में एक साथ कई तरह के सन्देह उत्पन्न होने लगे। उसका कुम्हलाया हुआ-सा पीला चेहरा आज बहुत दिनों के बाद आवेश से तमतमा उठा। मुँह का कौर उसने थूक दिया और अपनी, गौरी की तथा बच्चों के लिए रक्खी हुई रोटियों को दूर फेंकते हुए बोला--"समझा! तुमने अच्छी कमाई की, गौरी। तो अब हमें इस तरह पेट भरना पड़ेगा? सचमुच यह 'मज़दूरी' मुझसे कैसे हो सकती थी? तुम सब कुछ कर सकती हो। किसी ने सच कहा है, कि त्रियाचरित्र कोई नहीं समझ सकता।"

गौरी की आँखों में उमड़ा हुआ पानी टप्-टप् आँसू बनकर गिरने लगा। वह सिसक सिसक कर रोने लगी। उसके दिल पर इस समय क्या बीत रही थी, इसे शब्दों में व्यक्त करना कठिन है। वह चाहती थी कि कुछ बोले, अपनी सफ़ाई में कुछ कहे और अगर पत्नी होने के नाते कन्हैया की ज़बान न खींच सके तो कम से कम उसका मुँह तो बन्द कर ही दे। पर वह अपने आपमें ऐसा करने का साहस ही नहीं पा रही थी।

सहसा उसे ख़याल आया कि चुप रहकर तो वह कन्हैया की आशंका को और भी बल दे रही है और अपने लांछन को सत्य साबित कर रही है। ज्यों ही उसने कुछ कहने को मुँह उठाया, यह देखकर उसके आश्चर्य

और दुःख का ठिकाना न रहा कि कन्हैया वहाँ नहीं था। उसने इधर-उधर नज़र दौड़ाई, पर कहीं वह दिखाई न दिया। अँधेरा बढ़ रहा था। आज उसने दिया भी नहीं जलाया था।

गौरी उठी और सामने की पगडंडी पर चल पड़ी। कुछ दूर जाकर उसे बच्चों का ध्यान आया। वह रुक गई। आँखें फाड़ फाड़ कर वह चारों ओर देखने लगी। कन्हैया उसे कहीं भी दिखाई नहीं दिया। ज़ोर ज़ोर से उसने दो-एक आवाज़ें भी दीं, पर कोई उत्तर नहीं मिला। उसे ऐसा लगा, मानो बढ़ता हुआ अँधेरा उसके कन्हैया को सदा के लिए उससे छीन कर लिये जा रहा है। अगर उसकी आँखें कन्हैया को देख पातीं तो शायद वह मौत के मुँह से भी उसे छुड़ा लाने का प्रयत्न करती। पर वह था कहाँ? उसकी आँखों के आगे अँधेरी आगई और दोनों हाथों से अपना सिर थाम कर वह वहीं बैठ गई।

(४)

चिलम झाड़ कर गंगू ने चारपाई के सिरहाने रक्खी और लेटने ही वाला था कि किसी ने आकर कहा—"राम राम काका।"

गंगू ने नज़र ऊपर उठाई। देखा, सामने कन्हैया खड़ा है। इस समय उसे कन्हैया के आने की आशा नहीं थी। सहसा आश्चर्यचकित होकर उसने कहा—"अरे, यह कौन? कन्हैया? तू इस समय यहाँ कैसे आया रे?"

"यों ही चला आया काका। आज काम की तलाश में ज़रा रामनगर चला गया था। सोचा गाँव दूर है, रात यहीं बिताऊँ। तुम्हें कोई तकलीफ़ तो न होगी।"

"क्यों नहीं, बड़ी तकलीफ़ होगी। अरे इतनी बढ़ बढ़ कर बातें करना कहाँ से सीखा? यह भी क्या कोई दूसरा घर है? पहले यह बता कि खाने-पीने का क्या होगा? खा आया है या कुछ बन्दोबस्त करना होगा?"

"नहीं काका, खाने-पीने का अब कुछ बन्दोबस्त नहीं करना होगा। मैं वहाँ से खाकर चला था। दिन भर के काम से ज़रा थकान ज़्यादा हो गई, इसलिए सोचता हूँ कि रात यहीं बिता लूँ।"

"अच्छा तो है। मैं भी तुझसे मिलना चाहता था।"

गंगू उठा और भीतर से दूसरी चारपाई उठा लाया। कन्हैया को उस पर बैठने को कहते हुए उसने पानी का लोटा उठाया और बोला—"पानी तो पीना होगा। आज गर्मी कितनी ज़्यादा है? और बारिश का कहीं नाम भी नहीं।"

लोटा थामते हुए कन्हैया बोला—"आज-कल तो पानी दूध से महँगा हो रहा है। कोसों तक नहीं मिलता। इतना भयंकर अकाल तो काका पहले कभी नहीं पड़ा होगा?"

"पड़ने को तो इससे भी भयंकर अकाल पड़े हैं, कन्हैया, पर अब तो लोगों की नीयत ही ऐसी हो गई है कि कुछ कहने में नहीं आता। दूध-दही की नदियाँ कभी हमारे देश में बहती थीं, यह तो हमने नहीं देखा,—पर आज जो कुछ हो रहा है उसे देखकर तो आँखें पथरा जाती हैं। चार आने में बच्चे बिक रहे हैं। इतनी सस्ती तो कभी भेड़ें या तीतर-ख़रगोश भी नहीं हुए। एक ओर कई कई दिनों से लोगों ने रोटी नहीं देखी है और दूसरी ओर अनाज की बखारियाँ भरी हैं। उसका भाव इतना चढ़ गया है कि हम तुम तो उसके लेने का ख़याल भी नहीं कर सकते।"

"इसका कुछ इन्तज़ाम नहीं हो सकता, काका?"

"हो क्यों नहीं सकता, पर हम लोगों के पास इन्तज़ाम करने की ताक़त कहाँ है?"

दोनों कुछ क्षण चुप रहे। फिर गंगू ने कहा—"हाँ, एक बात याद आगई। देख, उस बेचारी गौरी को तू काम-काज के लिए ज़्यादा न भेजा कर। भूख के कारण उसके शरीर में जान तो रह नहीं गई है और तू ऐसी हालत में भी उसे मज़दूरी के लिए भेज देता है।"

कन्हैया कुछ सहमा। उसे ऐसा लगा कि शायद गौरी के बारे में वह कोई नई बात सुनेगा। अपनी उत्सुकता को दबाते हुए उसने कहा—"मैं उसे कब भेजता हूँ, काका? और वह मज़दूरी कर भी क्या सकती है? आज बड़ी ज़िद करके वह खुद ही कहीं चली गई। बोली कि काम कैसे नहीं मिलता, देखो मैं जाती हूँ काम ढूँढ़ने।"

"उसके कहने की भली कही। तुझमें तो अक़्ल है। तूने उसे क्यों जाने दिया?"

"लेकिन काका आज उसने बड़ी ज़िद की। और कभी तो मैंने उसे कहीं नहीं भेजा।"

"मैं भी तो आज ही का ज़िक्र कर रहा हूँ। मुख़्तार से मिलने मैं रामनगर गया था। देखा उस चिलचिलाती हुई धूप में बेहाल हुई वह काम की तलाश में इधर-उधर घूम रही थी। चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। पाँव लड़खड़ा रहे थे।"

"अच्छा, फिर क्या हुआ काका?"

"होता क्या? मैं उसे बड़ी मुश्किल से यहाँ लिवा लाया। आ ही नहीं रही थी। बड़ी ज़िद्दिन है। मैंने शाम को चार रोटियाँ बनाई थीं। बहुत कहा कि खा ले, खा ले, पर उसने भूख से बेहाल होते हुए भी एक टुकड़ा तक मुँह में नहीं डाला। बोली मुझे भूख ही नहीं है। बड़ी मुश्किल से क़सम दिलाने पर तीन रोटियाँ साथ ले गई कि बच्चों के काम आजायँगी। लेकिन औरत क्या है, देवी है, कन्हैया। इसे तेरे पूर्व जन्म का पुण्य ही कहना चाहिए कि तुझे ऐसी लक्ष्मी स्त्री मिली।"

कन्हैया कुछ न बोला। उसका सारा संशय-संदेह एक क्षण में दूर हो गया। अपनी नीचता और संकीर्णता पर उसे बड़ी लज्जा और घृणा हो रही थी। जी में आया कि अभी दौड़ कर जाय और गौरी के पाँव में अपना सिर रख कर उससे क्षमा माँगे। पर गंगू से वह रात बिताने को कह जो चुका था। सारी बात गंगू पर प्रकट करने के लिए वह तैयार नहीं था। ग्लानि से वह गड़ा जा रहा था। पुरुष कितना कुटिल, अदूरदर्शी और वहमी हो सकता है, इसका उसे आज कुछ अनुभव हुआ।

गंगू ने एक-दो बार कन्हैया को सम्बोधित कर कुछ कहना चाहा, पर वह अपने विचारों में इतना तल्लीन था कि कोई जवाब ही नहीं दे सका। गंगू ने समझा कि वह सो गया है। करवट लेकर वह सो रहा।

कन्हैया अजीब भँवर में पड़ा था। उसे नींद नहीं आ रही थी। मस्तिष्क पर आज वह एक बहुत बड़ा बोझ अनुभव कर रहा था। उसकी आँखों के सामने गौरी का पीला चेहरा और सजल आँखें बार बार आ रही थीं। वह उन्हें देखना नहीं चाहता था। पर आँखें मूंद लेने से भी उनका दिखना बन्द थोड़े ही हो सकता था! फिर गौरी के हाथ से रोटी छीन कर फेंक देने की बात को याद करके तो उसकी छाती जैसे फटना चाह रही हो। उसने जले पर और नमक डाल दिया था।

(५)

दूसरे दिन पौ फटने से पहले ही कन्हैया अपने गाँव के लिए चल पड़ा। आज उसके पाँव जल्दी जल्दी इस तरह उठ रहे थे, मानो शेष शरीर से पहले ही गौरी के पास पहुँच जाना चाहते हों। मार्ग में उसे कौन मिला और कौन नहीं, इसका उसे कुछ भी पता नहीं। वह आकर रुका अपनी उस झोंपड़ी के द्वार पर जो मूर्तिमान् अभाव बनी निर्जीव निश्चलता के साथ मौन खड़ी थी! यह देखकर कन्हैया को जैसे काठ मार गया कि गौरी वहाँ नहीं थी! उसका एक पाँव झोंपड़ी के दरवाज़े में और दूसरा बाहर था। बच्चों के सूखे हुए चेहरों को देखकर उसने बाहर नज़र डाली। कहीं भी गौरी नहीं दिखाई दी। वह समझ नहीं सका कि आख़िर वह गई कहाँ? उसे ख़याल आया कि कहीं उसने आत्महत्या तो नहीं कर ली? फिर ध्यान आया, नहीं, बच्चों को छोड़ वह इतनी आसानी से मर नहीं सकती। ये उसकी जीवन की आशा और अरमानों की निधि हैं। तो फिर वह आख़िर गई कहाँ? उसकी समझ में कुछ भी नहीं आया।

आँखें फाड़ फाड़ कर वह इधर-उधर देखने लगा। सामने की झाड़ी के पीछे उसे एक लाल कपड़ा हवा में उड़ता हुआ दिखाई दिया। कन्हैया दौड़ कर उधर गया। देखा—गौरी अर्धविक्षिप्त-सी धूल में पड़ी है। कन्हैया काँप उठा। गौरी की कलाई अपने हाथ में लेकर वह नब्ज़ देखने लगा। नब्ज़ ठीक चल रही थी। उसे उठाते हुए कन्हैया बोला—"गौरी, गौरी, कैसी तबीअत है?"

गौरी ने एक अँगड़ाई ली और अधखुली आँखों से कन्हैया की ओर देखते हुए कहा—"तबीअत तो ठीक है।"

"फिर यहाँ क्यों लेटी है? कन्हैया बोला।

"हैं, कहाँ?"—कहते हुए गौरी अपनी सिर पर की ओढ़नी खींच कर और इधर-उधर देखकर एक फीकी हँसी हँस कर बोली—"ओह! मुझे तो कुछ सुधि ही नहीं रही। तुम्हारी तलाश में इधर-उधर भटकी। तुम जब नहीं मिले तब घर की तरफ़ लौट रही थी। पर थक इतनी गई थी कि पाँव शरीर का बोझ नहीं सँभाल सके। यहाँ बैठ गई थी कि ज़रा सुस्ता लूँ, पर न मालूम कब नींद आ गई? बच्चे तो अच्छे हैं?"

"अच्छे ही होंगे"—कहते हुए कन्हैया ने एक ठंडी साँस छोड़ी और काँपते हुए ओठों से कहा—"चलो। तुम्हें बहुत तकलीफ़ हुई।"

दोनों झोंपड़ी की तरफ़ चल पड़े। कन्हैया ने कहा—"गौरी, कल की बात के लिए मुझे क्षमा कर सकोगी? मैंने व्यर्थ ही तुम्हारा दिल दुखाया। न मालूम मुझे क्या हो गया था?"

"मेरा तो दिल-विल कुछ नहीं दुखा। दिल दुखने की उसमें बात ही क्या थी? पुरुष स्वभाव से ही वहमी होता है। जब राम तक सीता पर सन्देह कर सकते हैं तब तुम्हें क्या दोष दिया जा सकता है? चलो अच्छा हुआ, जल्दी ही तुम रास्ते पर आ गये।"

कन्हैया एक क्षण चुप रहा। फिर बोला—"पर गौरी, हम इस घर और गाँव को छोड़ क्यों न दें? अब तो तुमने भी देख लिया न कि यहाँ काम-काम कहीं कुछ भी नहीं है। फिर भूखों मर कर प्राण दे देने में क्या बड़ाई है?"

"बड़ाई न हो, पर एक सन्तोष और सुख तो है। तुम तो दिन भर काम पर रहते थे। तुम्हें नहीं मालूम कि कितनी मेहनत से मैंने इस झोपड़ी को बनाया है। कितने प्रेम से इसका फ़र्श लीपा है, किन किन आशाओं से खेत की यह मुँडेर बाँधी है? यह झोपड़ी हमें क्या महल से कम सुखदायिनी रही है? और यह खेत—क्या इनसे हमारा कोई सम्बन्ध ही नहीं, जो इन्हें छोड़ कर अन्यत्र चले चलें? खेत और झोंपड़ी से तो हमारा जीवन-मरण का सम्बन्ध है, पर ये पेड़ भी तो हमें कम प्यारे नहीं हैं। मुझसे तो ये सब छूटने मुश्किल हैं।"

"यह बात तो नहीं है गौरी कि मैं निरा पत्थर ही हूँ। हृदय मेरे भी है। पर सच मानो, हृदय से भी पेट की ज्वाला बड़ी है।"

गौरी कुछ नहीं बोली। दोनों अभी झोपड़ी के पास पहुँचे ही थे कि पीछे से ज़मींदार के ५-६ लठैत आ खड़े हुए। उनमें से एक ने कहा—"ओ रे कन्हैया, आज-कल तो आँखें पीछे हो रही मालूम होती है। कब का वादा था और अभी तक तूने सूरत भी नहीं दिखाई। यही है न तेरी शराफ़त?"

"क्या बताऊँ दादा, आने की फ़ुर्सत ही नहीं मिली। यहाँ तो पेट भरना भी....."

बात काटते हुए वह आदमी बोला—"हाँ रे, बड़ा लाट साहब का बच्चा है न, तुझे भला फ़ुर्सत क्यों मिलने लगी? इसी लिए तो हम आ गये हैं। अब तुझे तकलीफ़ नहीं उठानी पड़ेगी। बस आज से तुझे फ़ुर्सत ही फ़ुर्सत रहेगी।"

"क्या मतलब दादा?"

"अहः हःहः, मतलब? अरे सब कुछ अभी समझ में आ जायगा। सरकार ने हुक्म दिया है कि लगातार तीन साल तक जिसने लगान न दिया हो उसका घर-खेत ज़ब्त कर लो।"

"तो क्या आप ज़ब्ती के लिए आये हैं?"

"हाँ, और नहीं तो क्या पीले चावल लाये हैं?"

कन्हैया चुप रहा। गौरी की आँखें भर आईं। आगन्तुक बाज की तरह झोंपड़ी पर टूट पड़े और उसमें पड़े बर्तन भांड़े समेटने लगे। कुछ एक टूटी हुई-सी चारपाई बाहर खींच कर उस पर बैठ गये। मुखिया ने कन्हैया की ओर लापरवाही से देखते हुए मुस्कराकर कहा—'अब तू जहाँ तेरा जी कहे, जा सकता है।'

कन्हैया ने कोई जवाब नहीं दिया। एक बच्चे को कन्हैया ने अपनी पीठ पर बाँधा और दूसरे को कन्धे से लगा लिया। सबसे छोटे बच्चे को गौरी ने छाती से चिपटा लिया। कुचले हुए साँप की-सी चाल से दोनों चल पड़े। दोनों के पाँव लड़खड़ा रहे थे। कुछ क़दम चल कर गौरी ने पीछे मुड़कर देखा। उसे ऐसा लगा, मानो झोंपड़ी बड़ी तेज़ी से उसकी ओर दौड़ी चली आ रही है। उसका नीम और बबूल जैसे उड़ कर उसके पास आ रहे हैं। उसने ज़ोर से पलकों के बीच में आँखों को इस तरह दबा लिया जैसे मचले हुए साँप को डलिया में दबा लिया जाता है। कन्हैया ने शायद यह सब कुछ नहीं देखा। उसकी आँखें बह रही थीं।

भर्राये हुए कण्ठ से गौरी ने पूछा—"कहाँ चल रहे हो?"

"जहाँ यह दुर्भाग्य ले जाय।"

लड़खड़ाते पाँवों से दोनों चले जा रहे थे—न मालूम कहाँ?
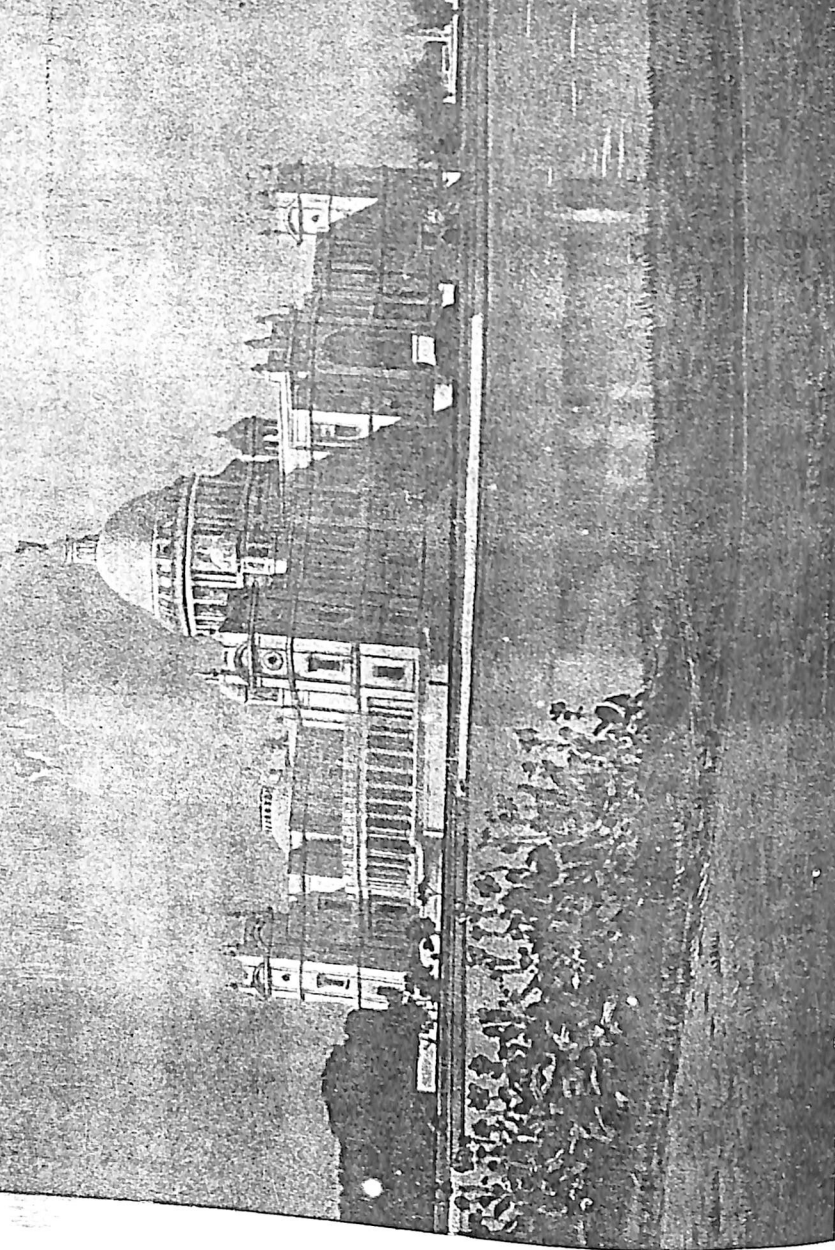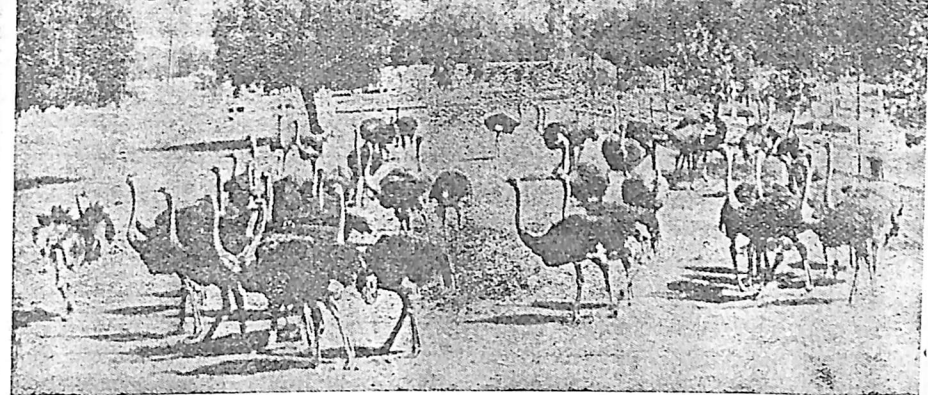
लेखक, श्रीयुत सेठ गोविन्ददास एम० एल० ए०

(६)

पूर्वी अफ़्रीका का प्रधान नगर नैरोबी

क़रीब ४०० मील का सफ़र ३ घंटे में खत्म कर १ बजे हम लोग नैरोबी पहुँच गये। नैरोबी में हम लोगों के ठहरने की व्यवस्था डाक्टर पटवर्धन के यहाँ की गई थी। मिसेज़ पटवर्धन भी कंपाला की मिसेज़ पटेल के सदृश टायरिया में ही हमारे साथ हिन्दुस्तान से लौटी थीं। हमें डाक्टर पटवर्धन के यहाँ घर का-सा आराम मिला। नैरोबी में आज ही संध्या को सार्वजनिक सभा थी। सभा का इन्तज़ाम किया गया था पटेल-ब्रदरहुड के हाल में। नैरोबी की यह संस्था वहाँ के सभी समुदायों के काम आती है। एक सुन्दर लाइब्रेरी है और एक बहुत बड़ा हाल है, जिसमें कुर्सियों पर क़रीब १,००० आदमी बैठ सकते हैं। पटेल-ब्रदरहुड की इस संस्था का यह भवन दर्शनीय है। सभा के समय से पहले ही हाल भीड़ से खचाखच भर गया था। सभा के सभापति थे इंडियन एसोसिएशन के प्रेसीडेंट मिस्टर ठाकुर। यद्यपि पूर्वीय अफ़्रीका की इंडियन कांग्रेस में आज-कल मतभेद हो कर दो पार्टियाँ हो गई थीं और आनरेबिल डाक्टर डिसौज़ा तथा आनरेबिल मिस्टर ईसरदास कांग्रेस के मेम्बर नहीं रह गये थे, जिसके अन्तर्गत इंडियन एसोसिएशन था, तथापि मतभेद इतना बढ़ा हुआ न था कि ये लोग सभा में न आयें। अतः इनकी पार्टी भी सभा में मौजूद थी और मिस्टर ईसरदास ने तो सभा में भाषण देकर मेरा स्वागत भी किया। मैं क़रीब १॥ घंटे बोला। सन् १९१४ के महायुद्ध के बाद नैरोबी में एक अर्द्ध-सरकारी इकनामिक कमीशन और एक ग़ैर-सरकारी योरपियन एसोसिएशन का कन्वेशन बैठा था। इन दोनों की रिपोर्टें उस समय निकली थीं जब सन् १९१८ में मैं विद्यार्थी-जीवन समाप्त कर सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करने का विचार कर रहा था। इन दोनों रिपोर्टों में भारतीय जाति के विरुद्ध जो कुछ कहा गया था उसे मैं अब तक न भूला था। भारतीय जाति के चरित्र के विरुद्ध जिन दो शब्दों "नैतिक अधःपतन" का उपयोग किया गया था वे शब्द तो गत २० वर्षों में मुझे न जाने कितनी बार स्मरण आये थे। आज नैरोबी में नैरोबी की ही इस २० वर्ष पहले की घटना का मुझे स्मरण आ गया। मैंने अपने भाषण के आरम्भ में कहा—

"आज मुझे एक ऐसी घटना का स्मरण आता है जो मेरे सार्वजनिक जीवन के प्रवेश और आपके नगर नैरोबी से सम्बन्ध रखता है। विद्यार्थी-जीवन समाप्त

कर जब मैं सार्वजनिक जीवन में प्रवेश कर रहा था उसी समय आपके नैरोबी में बैठे हुए इकनामिक कमीशन और योरपियन एसोसिएशन के कन्वेकेशन की रिपोर्टें निकली थीं। उन रिपोर्टों में भारतीय जाति के चरित्र के सम्बन्ध में "नैतिक अधःपतन" का दोषारोपण किया गया था और इसी लिए कहा गया था कि भारतीय इस देश में रहने योग्य नहीं हैं। योरपीय महायुद्ध उसी समय समाप्त हुआ था। आश्चर्य तो यह है कि जो भारतीय योरपीय महायुद्ध में बेल्जियम और फ़्रांस की खन्दकों में फ़्रांसीसी और अँगरेज़ सिपाहियों की बराबरी में खड़े होकर ब्रिटिश साम्राज्य और उनके झंडे--यूनियन जैक की रक्षा में अपनी जानें क़ुर्बान करते समय फ़्रांसीसी और अँगरेज़ों के बराबर माने जाते थे, उन्हीं में लड़ाई के खत्म होते ही 'नैतिक अधःपतन' आ गया। लड़ाई में मदद देने का बदला भारतीयों को तो तत्काल मिला, भारत में जलियाँवाले बाग़ का क़त्लेआम और भारतीयों के इस प्रधान उपनिवेश में इस नैरोबी के इकनामिक कमीशन और योरपियन एसोसिएशन के कन्वेकेशन की रिपोर्टें। इसके बाद यहाँ जितनी आपत्तियाँ आईं, कीनिया के हाइलैंड्स के सम्बन्ध में अथवा और कोई भी, इन सबके बीज यथार्थ में इसी कमीशन और कन्वेशन ने बोये थे।"

ये बातें हृदय में चुभ जानेवाली सिद्ध हुईं। मुझे भी इन बातों के कहते कहते जोश आ गया। फिर तो डेढ़ घंटे का सारा भाषण उसी जोश में हुआ। अनेक बातों पर जनता ने तालियों की कड़कड़ाहट और अनेक बातों पर शेम शेम के नारे लगा कर बड़े भारी जोश और उत्साह से मेरे भाषण में कही हुई बातों का समर्थन किया। जब मैंने अपना भाषण पूर्ण किया उस समय मुझे मालूम हुआ कि मैं पूरे डेढ़ घंटे तक बोल चुका था। श्रोताओं को भी इसका शायद बोध न हुआ था कि कितना अधिक समय बीत गया। अनेक व्यक्तियों ने तो यह तक कह डाला कि नैरोबी में आज तक कभी भी ऐसा हिन्दुस्तानी भाषण न हुआ था। जो कुछ हो, मुझे भी अपने भाषण से पूरा सन्तोष था और शायद मैं उसे और न सुधार सकता था।

दूसरे दिन सारा समय नैरोबी घूमने में बीता। वह एक सुन्दर शहर है। हर बात में किसी भी देश के बड़े से बड़े नगर का मुक़ाबिला कर सकता है। ऊँची-ऊँची इमारतें, चौड़ी-चौड़ी सड़कें, बस-मोटरों की भरमार। यह सुना गया कि वहाँ के हर तीसरे आदमी के पास मोटर है और आबादी के हिसाब से यदि मोटरों की संख्या का मिलान किया जाय तो संसार में न्यूयार्क के बाद नैरोबी का ही नम्बर आता है। इतने बड़े शहर में हमें एक भी घोड़ा या बैल की सवारी न दिखी। मालूम हुआ कि वहाँ इन जानवरों का उपयोग न तो सवारी के काम में आता है और न खेती के काम में ही। इतनी सुन्दर आबहवा होते हुए भी घोड़े तो वहाँ जी ही नहीं सकते। कोई घोड़ा वहाँ लाया जाय उसे एक ख़ास तरह की बीमारी हो जाती है और वह चार-छः महीने में मर जाता है। खेती ट्रैक्टरों और आदमियों से होती है। बैल का उपयोग बोझा ढोने या खेती के किसी काम में आज तक किसी ने समझा ही नहीं। साँड़ तथा दूध के लिए गायें रखकर बछड़े क़साईख़ाने में दे दिये जाते हैं। नैरोबी का सार्वजनिक बाग़ मैं कभी भी भूल न सकूँगा। एक जंगली स्थान में यह बाग़ लगाया गया है। बीच में दूब के कुछ मैदान और फूलों से भरी हुई क्यारियाँ हैं और चारों तरफ़ जंगली वृक्षों के समूह हैं, जिनमें बड़ी टेढ़ी सड़कें घूमने के लिए बना दी गई हैं। आजकल अर्थात् नवम्बर-दिसम्बर में अफ़्रीका में गर्मी पड़ती है, पर नैरोबी के समुद्रतट से पाँच हज़ार फ़ुट ऊपर होने के कारण यहाँ तो बसन्त छाया हुआ था और वह अपनी सारी सेना के साथ इस उपवन में निवास कर रहा था। रंग-बिरंगे पुष्पों से लदे हुए वृक्षों में से चलती हुई शीतल मन्द सुगन्धित वायु पुष्पों की वर्षा कर रही थी। आम के वृक्ष बौरों एवं फलों से ढँके हुए थे और कभी कभी कोयल कूक कर बसन्त के साम्राज्य के सन्देश सुना देती थी।

आज संध्या को आनरेबिल डाक्टर डिसोज़ा ने मुझे 'एट होम' दिया था। डाक्टर साहब के बँगले पर एक छोटा-सा सभ्य समाज एकत्र था। जब एट होम में मेरे लिए 'टोस्ट' का प्रस्ताव हुआ तब लोगों ने हिन्दुस्तानी में भाषण देना आरम्भ किया। मालूम हुआ कि नैरोबी में यह एक नई बात थी। मेरे कल के भाषण के बाद

कई हिन्दुस्तानियों ने निश्चय किया था कि हिन्दुस्तानी जल्सों में अब वे हिन्दुस्तानी में ही भाषण करेंगे। डाक्टर डिसोज़ा की पत्नी मिसेज़ डिसोज़ा भी डाक्टर हैं। डाक्टर डिसोज़ा ने मिसेज़ डिसोज़ा को ही अपने सारे सार्वजनिक जीवन का श्रेय दिया। वे बोले--

"सेठ गोविन्ददास! मैं आपको एक गुप्त बात बताये बिना आज नहीं रह सकता। मैंने आज तक जो सार्वजनिक सेवा की है उसका सारा श्रेय मेरी पत्नी मिसेज़ डिसोज़ा को है। इन्हीं की प्रेरणा और इन्हीं के उत्साह से मैं थोड़ी-बहुत सेवा कर सका हूँ। जिस सेवा-पथ को आपने अपने भाषण में कल इतना महत्त्व दिया था उस पर मुझे मिसेज़ डिसोज़ा ने ही चलाया है।"

मिसेज़ डिसोज़ा की यह प्रशंसा डाक्टर साहब ने हृदय से की थी। उनके गद्गद स्वर ने मुझे गद्गद बना दिया और मैंने बड़ी श्रद्धा एवं भक्ति से उन देवी को प्रणाम किया जो डाक्टर डिसोज़ा के सदृश कीनिया के सार्वजनिक सेवक को इस सेवा-पथ में चलानेवाली कर्णधार थीं। डाक्टर डिसोज़ा का कीनिया के सार्वजनिक जीवन में सेवा एवं त्याग की दृष्टि से बड़ा ऊँचा स्थान था और जिसकी प्रेरणा से डाक्टर ने इस स्थान को प्राप्त किया था उस मानवी को श्रद्धा और भक्ति से देवी मान लेना एक स्वाभाविक बात थी।

तारीख़ ३ की दोपहर को हम लोग नैरोबी के निकट ठीका नामक स्थान को चपड़ा कमाने की एक ख़ास चीज़ बनाने के कारख़ाने के देखने के लिए गये। कारख़ाने के मालिक श्री प्रेमचन्द-रामचन्द ने ठीका में हमारी बड़ी ख़ातिर की। आज ही रात को नैरोबी में ८ बजे सार्वजनिक डिनर था। डिनर का इन्तज़ाम पटेल-ब्रदरहुड के ही हाल में था। नैरोबी का सारा भारतीय सभ्य-समाज इस अवसर पर इस हाल में मौजूद था। डिनर के बाद के भाषण हिन्दुस्तानी में ही हुए। यहाँ तक कि इंडियन एसोसिएशन के सभापति मिस्टर ठाकुर भी हिन्दुस्तानी में ही बोले। मुझे इस बात पर न जाने कितनी बधाइयाँ दी गईं कि मैंने हिन्दुस्तानियों की राष्ट्र-भाषा हिन्दुस्तानी की एक ही दिन में इतनी गहरी जड़ नैरोबी में जमा दी। किसी बात की जड़ का नैरोबी में जमना सारे पूर्वीय अफ़्रीका के अँगरेज़ी पढ़े-लिखे सभ्य-समाज में जमना माना जाता है। जिस प्रकार योरप में फ़ैशन का आरम्भ पैरिस नगर से होता है, उसी प्रकार पूर्वीय अफ़्रीका के अँगरेज़ी पढ़े-लिखे समाज में हर नई बात का आरम्भ नैरोबी से होता है। किसी चीज़ का नैरोबी में ठीक ढंग से आरम्भ होने का अर्थ होता है सारे पूर्वीय अफ़्रीका के इस सभ्य-समाज में उसका प्रचार हो जाना। नैरोबी के इस समाज में हिन्दुस्तानी में भाषणों के आरम्भ का यह श्रेय मुझे मिला है, यह देख कर मैंने अपने को धन्य माना।

तारीख़ ४ को हम लोग नैरोबी से ज़ंजीबार को उड़नेवाले थे। तारीख़ ३ की रात को ही मेरे पास फिर से नैरोबी आकर पूर्वीय अफ़्रीका की कांग्रेस के क्रिसमस में होनेवाले अधिवेशन का सभापतित्व स्वीकार करने का प्रस्ताव आया। कई वर्षों के बाद कांग्रेस का यह अधिवेशन हो रहा था। दो बार इसके अधिवेशनों की सभानेत्री श्रीमती सरोजनी नायडू हो चुकी थीं और एक बार पंडित हृदयनाथ कुंजरू। मेरे पास समय न था। दक्षिण-अफ़्रीका का दौरा समाप्त कर क्रिसमस में फिर से नैरोबी लौटना मेरे लिए असम्भव था। अतः मैं इस महान् सम्मान को स्वीकार न कर सका।

ता० ४ को प्रातःकाल ८ बजे लक्ष्मीचन्द के साथ मैं नैरोबी से अपने एरोप्लेन में फिर से ज़ंजीबार के लिए रवाना हो गया।

भारतीय उद्योग और रेलवे के भाड़े की नीति

लेखक, प्रोफ़ेसर प्रेमचन्द मलहोत्रा

सब देशों में विदेशी व्यापार पर अधिक से अधिक ध्यान दिया जाता रहा है। इसी कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार देश की आर्थिक सम्पत्ति का चिह्न समझा गया है। भारत में विदेशी व्यापार को विशेष महत्ता दी गई है। भारतीय सरकार विदेशी व्यापार के साथ देशी व्यापार की अपेक्षा सदैव पक्षपात करती रही है; क्योंकि हमारे देश को प्रतिवर्ष इँगलैंड को गृह-कर (होम चार्जेज) देना पड़ता है तथा अन्य अदृश्य आयात-जैसे कि जहाज़, बीमा और बैंकिंग कम्पनियों के दाम चुकाने होते हैं। इस कारण भारत के लिए व्यापार की अनुकूल विषमता अत्यावश्यक है।

विश्व-व्यापार में १९१८ के बाद एक क्रान्तिकारी परिवर्तन हो चुका है। १९२९ से संसार में अर्थ-चक्र की मन्दी से विदेशी व्यापार ने एक नया रूप धारण कर लिया है। देश की आर्थिक स्वेच्छाचारिता एक नई और कठोर नीति बन गई है। फलस्वरूप विश्व-व्यापार और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार अब भिन्न भिन्न हैं। विश्व-व्यापार अब भिन्न भिन्न देशों के व्यापारों का एक समूह है।

देश के आर्थिक विभव और उसके साथ विदेशी व्यापार का सम्बन्ध सन्दिग्ध है। हमारा देश इस कथन का दृष्टान्त है। भारत जैसे विशाल और जनपूर्ण देश के लिए देशी व्यापार उसके विदेशी व्यापार की अपेक्षा अधिक महत्त्व रखता है। परन्तु इँगलैंड जैसे छोटे देश का सारा यश और सम्पत्ति उसके विदेशी व्यापार पर ही निर्भर है।

भारत में जैसे जैसे उद्योगों की वृद्धि होगी, वैसे वैसे विदेशी आयात की माँग घटती जायगी। भारत के निर्यात में भी कमी होगी। इसके दो कारण हैं। एक तो हमारा कच्चा माल घर में ही खपता जायगा और दूसरे यदि आयात कम हो जाय तो निर्यात भी कम हो जायगा। भारत में उद्योगों की उन्नति होने से हमारा विदेशी व्यापार घट जायगा। कई और भी कारण हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि आर्थिक दृष्टि से भी प्रगतिशील भारत को अपने देशी व्यापार को अधिक प्रोत्साहन देना पड़ेगा। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का गला तो कई एक युक्तियों से घोटा जा रहा है; जैसे विनिमय-नियन्त्रण, आयात-निर्यात-कर, इत्यादि, इत्यादि। भारत अपने उद्योगों को संरक्षित करने की नीति पर बन्धन कर चुका है। विदेशों में कृषि-क्रान्ति के कारण कच्चा माल सस्ता पैदा होता है और अन्य देश कृषि का संरक्षण कर रहे हैं। इन सब बातों से यह सिद्ध होता है कि आर्थिक उन्नति की इच्छा-पूर्ति भारत के विदेशी व्यापार की चेतना से होनी कठिन है। हमें अपने आन्तरिक व्यापार को उभारना चाहिए और इसी पर हमारी भविष्य की आर्थिक उन्नति निर्भर है।

रेलवे-भाड़े की नीति भी उद्योग की प्रगति और आन्तरिक व्यापार की वृद्धि का एक अनिवार्य साधन बन सकती है। यदि यातायात की नीति अहितकारी हो तो संरक्षण की नीति शक्तिहीन हो जाती है। अपने ही हित के लिए रेलवे को अपनी भाड़े की नीति का संशोधन करना उचित है। रेलवे की आर्थिक दशा स्वस्थ नहीं है। देश में व्यापार और उद्योगों की उन्नति से रेल की भी भलाई है, क्योंकि रेल की आमदनी का सम्बन्ध व्यापार से है।

गत वर्षों में रेलवे के भाड़े की नीति भारतीय उद्योगों के लिए निराशाजनक रही है। रेलवे के भाड़े बन्दरगाह के व्यापार के पक्ष में थे। इससे बन्दरगाहों पर ही बहुत-से उद्योग एकत्र हो गये। इंडस्ट्रियल-कमीशन ने सिफ़ारिश की थी कि रेलवे आन्तरिक और बन्दरगाही व्यापार पर समान भाड़ा रक्खे। फिस्कल-कमीशन से भी व्यापारियों ने यही शिकायत की थी कि रेलवे के भाड़े की नीति आन्तरिक व्यापार के लिए अहितकर है।

यदि हम रेलवे के भाड़े की समुद्रतटीय और आन्तरिक व्यापार से तुलना करें तो हमें रेलवे के भाड़े की नीति का अन्याय प्रत्यक्ष हो जायगा। कपड़े का रेल-भाड़ा बम्बई से किसी स्थान के लिए कम है, पर उसी फ़ासले का भाड़ा देश के एक स्थान से दूसरे स्थान के लिए अधिक है।

रेलवे के भाड़े की नीति का एक और दोष यह है कि सम्पूर्ण यात्रा का भाड़ा लगाने के लिए रेलवे भिन्न-

भिन्न समझी जाती हैं। यह रीति व्यापार के लिए हानिकारक है। क्योंकि सम्पूर्ण यात्रा यदि एक यात्रा ही समझी जाय तो लम्बी यात्रा होने से किराया घटता जाता है। परन्तु यदि ८०० मील की यात्रा तीन भिन्न भिन्न रेलवे से हो और हर एक रेलवे अपने अपने भाग की यात्रा पर भाड़ा लगाये तो कुल भाड़ा अधिक होगा, जब कि प्रसिद्ध रेलवे सरकार के अधीन हैं (जैसे ई० आई० आर०; जी० आई० पी०, एन० डब्ल्यू० आर०) तब कम-से-कम यदि सम्पूर्ण यात्रा इन तीन रेलों से हो तो सम्पूर्ण यात्रा पर घटती हुई दर से भाड़ा न लगाना बहुत अन्याय है।

पोरबन्दर से अहमदाबाद को सीमिन्ट भेजने का भाड़ा अधिक है और बम्बई से अहमदाबाद को सीमिन्ट भेजने का भाड़ा कम है। क्योंकि सीमिन्ट पोरबन्दर, गोंडल और भावनगर की रेलों से होकर वाधवा पहुँचता है जहाँ से कि बी० बी० ऐंड सी० आई० रेलवे उसे अहमदाबाद के लिए मिलती है। बम्बई से अहमदाबाद तो केवल बी० बी० ऐंड सी० आई० रेलवे से ही सीमिन्ट भेजा जाता है इसी तरह बंगाल से अमृतसर को कोयला ई० आई० आर० और एन० डब्ल्यू० आर० के द्वारा जाता है और इसलिए एक सम्पूर्ण यात्रा के ये दो भिन्न टुकड़े समझे जाते हैं और रेल का भाड़ा अधिक देना पड़ता है।

यदि हम काग़ज़ के उद्योग की ओर दृष्टि डालें तो रेलवे के भाड़े की नीति में शुभ परिवर्तन दिखाई देता है। काग़ज़ के कारख़ानों से बड़े बड़े शहरों को काग़ज़ भेजने के लिए रेलवे विशेष दर से भाड़ा लगाती है और यह रिआयत विदेशी काग़ज को रेलवे बड़े संकोच से देती है। ये सुविधायें काग़ज़ के उद्योग को उचित सहायता देती हैं और इससे संरक्षण की नीति को सहायता मिलती है। यह परमावश्यक है कि अन्य उद्योगों के हित में भी रेलवे अपनी भाड़े की नीति में ऐसा ही परिवर्तन करे।

वैजवुड-जाँच-कमिटी (१९३७) के सामने कई एक व्यवसाय-समितियों ने शिकायत की थी कि रेलवे की भाड़े की नीति भारत की संरक्षण-नीति से सहयोग नहीं करती और ऐसी नीति से आयात और निर्यात व्यापार को उत्तेजना मिलती है और भारतीय उद्योगों की हानि होती है। रेलवे की भाड़े की अनुचित नीति संरक्षण-नीति को शक्तिहीन बना सकती है। इस कारण रेलवे के भाड़े की नीति का समुचित संशोधन करना सरकार का धर्म है।

रेलवे के भाड़े की परामर्श-कमिटी इस महान् कार्य को सिद्ध करने में असमर्थ रही है। कुछ व्यवसाय-समितियों का यह मत है कि रेलवे की भाड़े की परामर्श-कमिटी का पुनर्निर्माण किया जाय, और उसे टैरिफ़ बोर्ड तथा आयात-निर्यात-कर निर्णय करनेवाली परिषद् का रूप दिया जाये। वैजवुड-कमिटी ने रेलवे-परामर्श-कमिटी के पक्ष में निर्णय किया और उसके सम्बन्ध में निम्नलिखित सिफ़ारिशें कीं :—

(क) कमिटी को जाँच और सिफ़ारिशें बिना विलम्ब के करनी चाहिए।

(ख) जाँच के लिए सरकार के पास जो भी प्रार्थना-पत्र आये वह तुरन्त ही कमिटी को सौंप दिया जाय।

(ग) जो सिफ़ारिशें कमिटी ने सरकार को भेजी हों उनकी सूचना प्रार्थी को दी जाय।

(घ) सरकार का कमिटी की सिफ़ारिशों पर फ़ैसला प्रकाशित किया जाय।

ऊपर लिखित सिफ़ारिशों को व्यवहार में लाने से रेलवे के भाड़े की परामर्श-कमिटी की उपयोगिता तो बढ़ जायगी, परन्तु यह कमिटी उद्योग और व्यवसाय को ठीक रूप से प्रोत्साहन तथा सहायता देने में असफल रहेगी।

देश की आर्थिक गति के लिए रेल के भाड़े की प्रगतिशील तथा समुत्साहक नीति परमावश्यक है। अभी तक तो रेलवे की नीति देश के उद्योग के हित में उदासीन ही रही है। रेलवे न केवल माल को ढोये बल्कि उसकी नीति नये व्यापार तथा व्यवसाय को उत्तेजित करने का साधन बने।

यह खेद की बात है कि रेलवे की वर्तमान व्यवस्था ने अपने भाड़े की नीति में उचित परिवर्तन करना आवश्यक नहीं समझा। रेल का जो बजट केन्द्रीय व्यवस्थापक सभा में इस साल पेश किया गया था उसमें भाड़े की नीति जैसे परमावश्यक विषय के सम्बन्ध की कोई भी चर्चा नहीं थी।

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कि रेलवे के भाड़े की नीति का संशोधन करना न केवल देश के हित के लिए ही उपयोगी होगा, अपितु वह रेल की बिगड़ी हुई आर्थिक दशा को भी सँभाल देगा।

विचार-विमर्श

महिलाओं की लिखी कहानियाँ

लेखक, पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी, शास्त्री, शास्त्राचार्य

श्रीमती शिवरानीदेवी की 'कौमुदी', श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान की, 'विखरे मोती', श्रीमती कमलादेवी चौधरी की 'पिकनिक' तथा श्रीमती होमवतीदेवी की 'निसर्ग' नामक पुस्तकों की प्रसंगप्राप्त चर्चा।

(१)

प्रचलित विश्वास यह है कि स्त्री को स्त्री ही ठीक-ठीक समझ सकती है और वही उसको ठीक व्यक्त कर सकती है। इसके साथ जो अनुमान अपने आप उपस्थित होता है उसे प्रायः भुला दिया जाता है। वह अनुमान यह है कि पुरुष को पुरुष ही समझ सकता है और वही उसे व्यक्त कर सकता है। स्पष्ट ही यह अनुमान सत्य से बहुत दूर है और इसी लिए उसकी अनुमापक प्रतिज्ञा भी उतनी ही असत्य है। यह विचार कि स्त्री ही स्त्री को समझ सकती है और पुरुष स्त्री को नहीं समझ सकता, किसी वहके दिमाग़ की कल्पना-मात्र है। वस्तुस्थिति कुछ और है। उसका कारण पुरुष और स्त्री के सहयोग के विकास से समझा जा सकता है।

कहते हैं सभ्यता का आरम्भ स्त्री ने किया था। वह प्रकृति के नियमों से मजबूर थी; पुरुष की भाँति वह उच्छृङ्खल शिकारी की भाँति नहीं रह सकती थी। झोपड़ी उसने बनाई थी, अग्नि-संरक्षण का आविष्कार उसने किया था, कृषि का आरम्भ उसने किया था; पुरुष निरर्गल था, स्त्री सुशृंखल। पुरुष का पौरुष प्रतिद्वन्द्वी के पछाड़ने में व्यक्त होता था, स्त्री का स्त्रीत्व प्रतिवेशिनी की सहायता में। एक प्रतिद्वंद्विता में बढ़ा, दूसरी सहयोगिता में। स्त्री पुरुष को गृह की ओर खींचने का प्रयत्न करती रही, पुरुष बन्धन तोड़ कर भागने का प्रयत्न करता रहा। सभ्यता बढ़ती गई, स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध ऐसा ही बना रहा। पुरुष ने बड़े धर्म-सम्प्रदाय खड़े किये—भागने के लिए। स्त्री ने सब चूर्ण-विचूर्ण कर दिया—माया से। पुरुष का सब कुछ प्रकट था, स्त्री का सब कुछ रहस्यावृत्त। पुरुष जब उसकी ओर आकर्षित हुआ तब उसे ग़लत समझ कर, जब उससे भागा तब भी ग़लत समझ कर। उसे स्त्री को ग़लत समझने में मजा आता रहा, अपनी भूल को सुधारने की उसने कभी कोशिश ही नहीं की। इसी लिए वह बराबर हारता रहा। स्त्री ने उसे कभी ग़लत नहीं समझा। वह अपनी सच्ची परिस्थिति को छिपाये रही। वह अन्त तक रहस्य बनी रही। किसी ने कहा है कि दुनिया का अन्तिम शास्त्र मानव-मनोविज्ञान होगा और उस शास्त्र की अन्तिम समस्या स्त्री होगी। रहस्य बनी रहने में उसे भी कुछ आनन्द मिलता था। इसी लिए जीतती भी रही और कष्ट भी पाती रही। अचानक व्यावसायिक क्रान्ति हुई. कृषिमूलक सभ्यता पिछड़ गई. परिवार और धर्म की भावना ह्रास होने लगी, नगर स्फीत होने लगे, और वैयक्तिक स्वाधीनता ज़ोर मारने लगी। इस बार सत्य के अनुसन्धान की आँधी बही। स्त्री रहस्य रहे. यह बात इस युग को पसन्द न आई, न पुरुष को, न स्त्री को। पुरुष ने भी स्त्री को समझने की कोशिश की और स्त्री ने भी इस कार्य में उसे सहायता पहुँचाई और साहित्य नये सुर में बजने लगा। पुरुष ने भी स्त्री को समझा पर वह अपने हज़ारों वर्ष के संस्कार से लाचार था, उसने उसमें कल्पना का पुट लगा दिया।

ग़लत समझने में उसे मज़ा आता था, हालाँकि समझने में उसने ग़लती नहीं की। स्त्री भी अपने संस्कारों से मजबूर थी, उसने अपने को थोड़ा-सा रहस्य में रखना उचित समझा, हालाँकि इस रहस्य को समझाने में उसने हमेशा ग़लती की। इसी लिए पुरुष का जब स्त्री-चित्रण पढ़ा जाय तो उसकी कल्पनात्मक प्रवृत्ति से सदा सतर्क रहना चाहिए और स्त्री का जब स्त्री-चित्रण पढ़ा जाय तो उसकी रहस्यात्मक प्रवृत्ति से भी सावधान रहना चाहिए। यह ग़लत बात है कि स्त्रियाँ पुरुष को नहीं समझ सकतीं और पुरुष स्त्रियों को नहीं समझ सकते, पर यह और भी ग़लत बात है कि स्त्री वस्तुतः वैसी ही है जैसी स्त्री के द्वारा चित्रित है, या वैसी नहीं है जैसी पुरुष-द्वारा कल्पित है।

स्त्री का हज़ारों वर्ष का अनुभव है कि पुरुष उसे ग़लत समझता है, इसलिए साहित्य में उसका प्रयत्न सदा स्त्री की वस्तुस्थिति को स्पष्ट करने का होता है, पर वह स्त्री को चूँकि अनजान में कुछ अज्ञात रखना चाहती है, इसलिए स्वभावतः ही स्त्री के प्रति होनेवाले अविचारों के विषय में उसका रुख़ अधिकतर शिकायतों के रूप में प्रकट होता है। कभी वह समाज-व्यवस्था पर, कभी पुरुष जाति पर, कभी बाह्य घटनाओं पर दोषारोपण करती है। यह एक लक्ष्य करने की बात है कि स्त्री का चित्रित दुःखित स्त्री-पात्र शायद ही कभी अपने आन्तरिक विकास के कारण दुःखी होता हो। उसके दुःखी होने का कारण भीतर नहीं, बाहर हुआ करता है। अगर लेखिका की कल्पना किसी और समाज-व्यवस्था का सृजन कर सके तो निश्चित है कि स्त्री-पात्र कभी दुःखी न होंगे!

वैयक्तिक स्वाधीनता के प्रवेश ने स्त्री-साहित्य में एक नया अध्याय जोड़ा है। अधिकांश स्त्री-चरित्र का चित्रण दुःखी के रूप में न होता यदि व्यक्तिवाद स्त्री लेखिकाओं का सर्वाधिक ज़बर्दस्त सुर न होता। अधिकांश स्थलों पर जहाँ स्त्री-चरित्र के दुःख-पूर्ण होने का कारण समाज-व्यवस्था या पुरुष की स्वार्थान्धिता होती है वहाँ स्त्री के भीतर वैयक्तिक स्वाधीनता का ज़बर्दस्त प्रभाव होता है। पर इस विषय में पुरुष लेखकों से बहुत कुछ सीखना है। मनुष्य के दो प्रधान संस्कार हैं, व्यक्तिगत सुख-लिप्सा और सामाजिक सहयोग भाव। यदि वन्य-जन्तुओं की भाँति पुरुष व्यक्तिगत रूप से स्वच्छन्द होकर घूमता रहता तो निश्चय ही जीवन की लड़ाई में हार गया होता। वर्गरूप में रह कर ही उसने संसार के हिंसक जन्तुओं से मोर्चा लिया है और विजयी हुआ है। पुरुष-लेखक में जब वैयक्तिकता का ज़ोर पूरी मात्रा में होता है तब वह दूसरी प्रवृत्ति को बुरी तरह मसल देता है, पर स्त्री सदा संयत रही है। स्त्री साहित्य का सबसे बड़ा दान आधुनिक साहित्य में यही है। उसने वैयक्तिकता के मुंहज़ोर घोड़े को सामाजिकता के कठोर लगाम से संयत किया है। इन बातों को ध्यान में रख कर ही हम आगे की विवेचना में उतरें तो अच्छा रहे।

(२)

श्रीमती शिवरानी देवी की कौमुदी को छोड़ दिया जाय तो आलोच्य पुस्तकों में से अधिकांश की कहानियों का मूल उपादान मध्यवर्ग के हिन्दू-परिवार की अशान्तिकर अवस्था है। कौमुदी में भी यह बात है पर उसको हमने अलग इसलिए रखा है कि उसकी लेखिका इन बातों को छांटते समय ठीक वही बातें नहीं सोचती हुई जान पड़तीं जो बाक़ी पुस्तकों में स्पष्ट हुई हैं। सास, जेठानी और पति के अत्याचार, स्त्री की पराधीनता, उसे पढ़ने-लिखने या दूसरों से बात करने में बाधा इत्यादि बातें ही नाना भावों और नाना रूपों में कही गई हैं। सुभद्रादेवी के 'बिखरे मोती' इस विषय में सर्वप्रथम हैं। 'पिकनिक' और 'निसर्ग' में ये बातें कुछ गौण-स्थान अधिकार करती हैं। ऐसे प्रसंगों पर सर्वत्र एक दुःख पूर्ण स्वर कहानी का परिणाम होता है जो चरित्र के भीतरी विकास से नहीं बल्कि सामाजिक बाह्य परिस्थितियों के साथ दुःखी व्यक्ति के असामंजस्य के कारण होती है। अधिकतर लेखिकाओं की सहानुभूति सदा बधुओं की ओर रहती है, वह पति-पत्नी में पत्नी की ओर, सास-बहू में बहू की ओर, जेठानी-देवरानी में देवरानी की ओर जाती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि लेखिकाओं का पक्षपात आधुनिकाओं के ऊपर है। इसका कारण उनके मन में का आदर्श-घटित द्वन्द्व है। वैयक्तिक स्वाधीनता के इस युग में वैयक्तिकता का आदर्श अपेक्षाकृत तरुण युवक-युवतियों में अधिक प्रतिष्ठित हुआ है। सुभद्रा देवी के चरित्रों में इस आदर्श की जो रूप-प्राप्ति

हुई है वह अच्छा उदाहरण हो सकती है, इसलिए उनके सम्बन्ध में अपनी वात कुछ विस्तार के साथ कहने का प्रयत्न किया जाता है।

सुभद्रा जी की कहानियों में से अधिकांश जैसा कि ऊपर ही कहा गया है, वहुओं के विशेषकर शिक्षित वहुओं के दुःखपूर्ण जीवन को लेकर लिखी गई हैं। निःसन्देह वे इसकी अधिकारिणी हैं। उन्होंने किताबी ज्ञान के आधार पर या सुनी सुनाई बातों को आश्रय कर के कहानियाँ नहीं लिखीं वरन् अपने अनुभवों को ही कहानियों में रूपान्तरित किया है। निस्सन्देह उनके स्त्री-चरित्रों का चित्रण अत्यन्त मार्मिक और स्वाभाविक हुआ है फिर भी जो वात अत्यन्त स्पष्ट है वह यह है कि उनकी कहानियों में समाज-व्यवस्था के प्रति एक नकारात्मक घृणा ही व्यंग्य होती है। पाठक यह तो सोचता रहता है कि समाज युवतियों के प्रति कितना निर्दय और कठोर है पर उनके चरित्र में ऐसी भीतरी शक्ति या विद्रोह-भावना नहीं पाई जाती जो समाज की इस निर्दयता-पूर्ण व्यवस्था को अस्वीकार कर सके। उनकी पाठक-पाठिकायें इस कुचक्र से छूटने का कोई रास्ता नहीं पातीं। इन कहानियों में शायद ही कहीं चरित्र की वह मानसिक दृढ़ता मिलती हो जो प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उसे विजयी बना सके, जो स्वेच्छा-पूर्वक समाज की वलि-वेदी पर वलि होने का प्रतिवाद करे। इसके विरुद्ध उनके चरित्र अत्यन्त निरुपाय-से होकर समाज की वह्निशिखा में अपने को होम करके चुपके से दुनिया की आँखों से ओझल हो जाते हैं। स्पष्ट ही यह दोष है। परन्तु इस अवस्था के साथ जब सचमुच की परिस्थिति की तुलना करते हैं तो स्वीकार करना पड़ता है कि अधिकांश घटनायें ऐसी ही हो रही हैं। सुभद्रा जी की कहानियों में जो वात सबसे अधिक आकर्षक जान पड़ती है वह है उनकी सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि। अपने प्रिय पात्रों के अन्तस्तल में वे बड़ी आसानी से पहुँच जाती हैं। सुभद्रा जी के पात्रों की सहजबुद्धि विहार की अपेक्षा परिहार की ओर, जुझने की अपेक्षा भागने की ओर, क्रिया की अपेक्षा निष्क्रियता की ओर, अधिक झुकी हुई है। मनोविज्ञान के पंडित इसको निगेटिव कैरेक्टर या नकारात्मक चरित्र के लक्षण बताते हैं। अभी हाल में एक समाज-शास्त्री का विश्वास था कि स्त्री का हृदय नेगेटिव या नकारात्मक होता है और पुरुष का हृदय पाजिटिव या धनात्मक होता है। समाज-शास्त्र के अभिनव प्रयोगों से यह विश्वास जाता रहा है पर इस बात में कोई सन्देह नहीं कि स्त्री का हृदय अधिकांशतः नेगेटिव या नकारात्मक है। जहाँ स्त्री-शिक्षा का अभाव है, पुरुष और स्त्री की दुनिया अलग-अलग है, वहाँ तो निश्चित रूप से स्त्री में नकारात्मक चरित्र की प्रधानता होती है। और समाज स्त्री के लिए जिन भूषण रूप आदर्शों का विधान करता है उनमें एकान्त निष्ठा, व्रीड़ा, आत्मगोपन और विनय-शीलता आदि नकारात्मक गुणों की प्रधानता होती है। इस दृष्टि से सुभद्रा जी की कहानियों में भारतीय-स्त्री का सच्चा चित्रण हुआ है। वे भारतीय स्त्रीत्व की सच्ची प्रतिनिधि बन सकी हैं। ऊपर जिस दोष का उल्लेख किया गया है वह सच्ची परिस्थिति के चित्रण रूप-गुण से प्रक्षालित नहीं हो जाता क्योंकि उसमें लेखिका की वह असफलता प्रकट होती है जो भारतीय स्त्री की यथार्थता के साथ वैयक्तिक स्वाधीनता के आदर्शों के सामंजस्य न कर सकने के कारण हुई है।

आदर्शगत सामंजस्य जो उपस्थित किया जा सकता है इसका उत्तम उदाहरण शिवरानी जी की कौमुदी की कई कहानियाँ हैं। 'आँसू की दो बूँदें' एक टिपिकल उदाहरण है। सुरेश की बेवफ़ाई कनक के विनाश का कारण नहीं हो जाती। वह अपने लिए दूसरा रास्ता खोज निकालती है। वह रास्ता सेवा का है। अगर उसका प्रेम नकारात्मक होता, अर्थात् उसमें लोभ की जगह विराग होता, क्रोध के स्थान पर भय का प्रादुर्भाव होता, आश्चर्य की जगह सन्देह का उदय होता, सामाजिकता की अपेक्षा एकान्त-निष्ठा का प्रावल्य होता, संगमेच्छा की जगह व्रीड़ा का प्रावल्य होता तो शायद आत्मघात कर लेती। स्पष्ट ही भारतीय-स्त्री नामक पदार्थ उसमें कम है। भारतीय-स्त्री आदर्श के अनुकूल चरित्र में वही गुण होने चाहिए जो कनक में नहीं पाये जाते। इसी लिए कनक भारतीय स्त्री-समाज की प्रतिनिधि हो या न हो, उस आधुनिक आदर्श की प्रतिनिधि ज़रूर है, जो व्यक्ति-स्वाधीनता और सामाजिक-मंगलबोध के सामंजस्य में से अपना रास्ता निकालता है। सुभद्रा जी

उन वस्तुओं की प्रतिनिधि हैं जो उनकी कहानी की उपादान हैं, शिवरानी जी उस आदर्श की प्रतिनिधि हैं जो इस जाति की कहानियों की जान है।

कमलादेवी का 'पिकनिक' और होमवतीदेवी का 'निसर्ग' इन दोनों के बीच की चीज़ हैं। कमलादेवी अपने चरित्रों, उनकी क्रियाओं और उनकी परिणति की ओर जितनी सयत्न हैं उतनी उन रूढ़ विधियों की ओर नहीं जो इन चरित्रों, क्रियाओं और परिणतियों का नियमन करती हैं। निसर्ग में होमवती देवी इस ओर अधिक झुकी हैं। इसी लिए कमलादेवी में जहाँ वैयक्तिक स्वाधीनता के प्रति पक्षपात का स्वर प्रधान हो उठा है वहाँ होमवती देवी में रूढ़ियों की प्रधानता का स्वर। शायद यही कारण है कि कमलादेवी अपने चरित्रों में अनुभव के द्वारा काट-छाँट (विश्लेषण) करती हैं और होमवती-देवी कल्पना के द्वारा उन्हें मांसल करने की चेष्टा करती हैं।

(३)

प्रायः सभी कहानियों में जीवन को समझने का प्रयत्न किया गया है पर रास्ता सर्वत्र प्रायः एक ही है। यह रास्ता सामाजिक विधि-निषेधों के भीतर से होकर निकाला गया है। प्रत्येक चरित्र की परिणति और प्रत्येक घटना का सूत्रपात किसी सामाजिक विधि-निषेध के भीतर से होता दिखाया गया है। सम्भवतः यही हमारी वहनों का विशेष दृष्टिकोण हो। परन्तु उपहासच्छल से, आनुषंगिक रूप से या प्रतिषेध्य रूप में भी जीवन तक पहुँचनेकी तत्तद् विभिन्न दृष्टियों की कोई चर्चा नहीं पा सन्देह हो सकता है कि उन्होंने या तो जान बूझकर या अनजान में जीवन को अपने समस्त अंशों में, सब पहलुओं से देखने की उपेक्षा की है। इस विशेष बात में भी शिवरानीदेवी की कौमुदी कुछ कुछ अपवाद है। शेष तीन ग्रन्थ भी कभी-कभी विशेष दृष्टिकोण उपस्थित करते जान पड़ते हैं, प्रसंग आने पर उनकी चर्चा की जायगी।

मनुष्य चरित्र जिस रूप में आज परिणत हुआ है उसके कई कारण हैं। कई मनीषियों ने कई रूप में इसे समझने या समझाने की चेष्टा की है। अपनी विशेष दृष्टिकोण का समर्थन तब तक नहीं किया जा सकता जब तक पूर्ववर्ती दृष्टिकोण से इसकी श्रेष्ठता न प्रमाणित की जाय। इस प्रकार पूर्व मत के निरास-पूर्वक अभिनव मत को स्थापन करने का नियम है। कहानीकार दार्शनिक पंडित की भाँति ऐसा नहीं करता पर जीवन के प्रति उसका जो विशेषकर दृष्टिकोण है उसे वह कौशलपूर्ण ढंग से स्थापित करते समय अनभिप्रेत दृष्टिकोण की ओर उपेक्षा का भाव पैदा कर देता है। यह कार्य वह बहुत कौशल के साथ और बड़ी सावधानी के साथ करता है। हिन्दी में इस कला के सबसे बड़े उस्ताद प्रेमचन्द हैं। उनकी कहानियों में जीवन को समझने के बीसियों दृष्टिकोण बड़ी खूबी से व्यक्त हुए हैं और उन सबके भीतर से अपनी अभिमत भंगी की ओर वे बड़ी कुशलता से इशारा कर देते हैं। अपने जीवन में उन्होंने जीवन को समझने के दृष्टिकोण बदले भी हैं, पर पुरानी दृष्टियों का खोखलापन दिखा कर। 'कफ़न' नामक कहानी एक उत्तम उदाहरण है। उसके पढ़ने से जीवन की कई व्याख्याओं की निःसारता प्रकट हो जाती है। जान पड़ता है कि लेखक ने अपने सामने इन व्याख्याओं को रख कर ही कहानी लिखी है। धार्मिक व्याख्या यह है कि भगवान् संसार को एक सामंजस्य पूर्ण विधान में रखने के लिए सतत प्रयत्नशील है। जो कोई जीव जहाँ कहीं भी जिस किसी रूप में दिख रहा है वह वहाँ उसी रूप में आने को बाध्य था। उसका वहाँ न रहना किसी महान् अनर्थ का कारण होता। सब कुछ भगवान् की ओर से निर्दिष्ट है, पाप और पुण्य, धर्म और कर्म, ऊँच और नीच। दूसरी व्याख्या नास्तिकों की है। प्रसिद्ध फ़्रेंच दार्शनिक टेन इस मत का पोषक है। जो कुछ भी जहाँ कहीं जिस किसी रूप में दिख रहा है वह तीन कारणों से हुआ है—जातिगत विशेषता के कारण, भौगोलिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि परिस्थिति के कारण, ऐतिहासिक विकास-परम्परा के भीतर से आने के कारण। इन तीनों को अलग-अलग दृष्टि के रूप में स्वीकार करके भी जीवन की व्याख्यायें की गई हैं। एक प्रकार के पंडित हैं जो स्वीकार करते हैं कि भौगोलिक परिस्थिति ही हमारे समस्त विधि-निषेध, आचार-विचार, दर्शन-काव्य के मूल में है; एक दूसरे पंडित समस्त सद्गुण और असद्गुणों के कारण आर्थिक परिस्थिति में देखते

हैं। उनके मत से (मार्क्स इसके आचार्य हैं) आर्थिक सुविधा और असुविधा ही सामाजिक, धार्मिक और मानसिक विधान-श्रृंखला के वास्तविक मूल में हैं। 'कफ़न' में इस दृष्टिकोण की ही प्रधानता है। धार्मिक और सामाजिक दृष्टिकोण के प्रति उसमें कौशलपूर्ण प्रतिवाद भाव है। आर्थिक दृष्टिकोण की प्रधानता कुछ इस प्रकार उपस्थित की गई है कि मध्यम वर्ग के बहुविघोषित प्रेम और करुणा की कोमल भावनाओं का कोमलपन अत्यन्त खोखला हो कर प्रकट हुआ है। आलोच्य कहानियों में सामाजिक दृष्टिकोण और मध्यमवर्गीय कोमलता का भाव प्रबल तो जरूर है, (असल में वे मानों मध्यमवर्ग की कोमल भावना के प्रति न्याय-विचार की अपील हैं) पर अगर अविश्वासी चित्त इस अपील में विश्वास खो दे तो उनके पास कोई उत्तर नहीं रह जाता। कमलादेवी और सुभद्रादेवी की कहानियों में भी कभी कभी अप्रत्यक्ष रूप से भौगोलिक व्याख्या की ओर प्रवृत्ति दिखाई देती हैं, वे भारतीयस्त्री में एक खास विशेषता देखती हैं जो अनेक मानसिक परिणतियों की ज़िम्मेवार हैं और होमवतीदेवी में कभी वह भाव भी पाया जाता है, जिसे स्त्री और पुरुष की भेद-विधायक व्याख्या कह सकते हैं, और जिसके अनुसार स्त्री-चरित्र में कुछ खास गुण ऐसे हैं जो पुरुष-चरित्र में नहीं हैं और यही खास गुण अनेक परिणतियों के लिए जवाबदेह हैं। पर इन दृष्टिकोणों को कहीं भी परिस्फुट करके व्यंग्य करने का यत्न नहीं किया गया। कौमुदी में मनुष्य के व्यक्तित्व की प्रधानता स्वीकार की गई है। यह व्यक्तित्व परिस्थितियों को आत्म-समर्पण नहीं करता, प्रतिकूल परिस्थितियों में अपना रास्ता निकाल लेता है, काल और समाज के प्रभाव से प्रतिहत नहीं होता। इस प्रकार इस विशेष दृष्टिकोण की प्रबलता के कारण शिवरानीदेवी की कहानियों में सामाजिक और पारिवारिक अवस्था के कारण जो लोग जीवन को सदा क्लान्त-क्लिष्ट देखते हैं उनका प्रतिवाद बड़े कौशल से हो गया है। यहाँ भी शिवरानीदेवी और सुभद्रादेवी का विरोध स्पष्ट हो उठता है। सुभद्रा जी के चरित्रों का व्यक्तित्व समाज के कठोर नियमों के कारण दब जाता है और शिवरानीदेवी के चरित्रों का व्यक्तित्व समाज के नियमों की कठोरता को प्रायः दबा देने में समर्थ हो जाता है। एक ने जीवन तक पहुँचने के लिए जो रास्ता बनाया है उसमें समाज के काँटेदार बेड़े पद पद पर बाधा पहुँचाते हैं, दूसरी ने इन बेड़ों को रौंद कर अपने मार्ग का निर्माण किया है।

देवियों के इस विशेष दृष्टिकोण का अर्थ क्या है?

(४)

आलोच्य कहानियाँ मध्यम श्रेणी के जीवन के उस मार्मिक द्वन्द्व और समस्याओं पर अवलंबित हैं जो पद पद पर समाज की गति निर्धारित कर रही हैं। किसी ने कहा है कि कोई कहानी तभी महत्त्वपूर्ण कही जा सकती है जब कि उसकी नींव मजबूती के साथ उन वस्तुओं पर रखी गई हो जो निरन्तर गम्भीर भाव से और निर्विवाद भाव से हमारी सामान्य मनुष्यता की कठिनाइयों और द्वन्द्वों को प्रभावित कर रही हों। महत्त्वपूर्ण कहानी केवल अवसर विनोदन का साधन नहीं होती। इस दृष्टि से ये कहानियाँ महत्त्वपूर्ण तो हैं ही, पर कहानीपन के अतिरिक्त भी इनके द्वारा हम अपनी सामाजिक समस्याओं की कुछ ऐसी गुत्थियों के सुलझाने का मार्ग क्या पा जाते हैं जो आसानी से समझ में नहीं आतीं?

हमने देखा कि ऊपर जिन कहानियों की आलोचना की गई है उनमें से अधिकांश की शिकायत है कि स्त्रियों के प्रति अन्याय हो रहा है। क्यों? क्योंकि समाज का संगठन अन्यायपूर्ण है। समाज का ऐसा संगठन क्यों हुआ? इस प्रश्न पर महिलाएँ कुछ प्रकाश नहीं डालना चाहतीं। स्पष्ट ही हम इस विषय के संशोधन की इच्छा रखते हुए भी हम उनकी सहायता से वंचित हैं। अँगरेज़ी कहावत है कि डिस्क्राइब् (वर्णन) करना सहज है, प्रेस्काइब् (उपाय निर्देश) करना कठिन। आलोचक महिलाओं की प्रवृत्तियों को यथा मति डिस्क्राइब् कर गया, वह प्रेस्काइब् क्या करे? मंथन से अमृत भी निकला, गरल भी निकला, तो क्या हुआ? इनका विनियोग कहाँ हो?

छूटते ही जो बात पाठक को लगती है वह यह है कि आलोच्य कहानियों की लेखिकायें परिवार और समाज (एक शब्द में 'समूह') पर से अपनी चिन्ता हटा नहीं सकतीं। इस एक बिन्दु पर ही उनका सारा ध्यान केंद्रित है। ये लोग निश्चय ही हमारे समाज के बहुत

ही महत्त्वपूर्ण आधे हिस्से की प्रतिनिधि हैं, इसलिए यह कहने में कोई संकोच नहीं कि स्त्री का समूचा ध्यान परिवार और समाज पर है। जब कि पुरुष इस व्यावसायिक युग के दुर्निवार्य प्रवाह में बह कर नाना घाटों में जा लगा है, जब कि व्यक्ति स्वाधीनता ने पुरुष की सौ महत्त्वाकांक्षाओं को नितरां उत्तेजित कर दिया है, जब कि आर्थिकचक्र के भीमवेग आघूर्णन ने कुटुम्ब की भावना को ही पीस डाला है, जब कि स्फीतकाय नागरिक सभ्यता ने पुरुष की कोमलता को एकदम कुचल डाला है, स्त्री परिवार, कुटुम्ब और समाज से और भी जोर से चिपट गई है। उसके स्वभाव में ही समूह के प्रति निष्ठा है, उसने अपने रक्त से समाज में दलबद्धता पैदा की है, वह जीवशास्त्रियों-द्वारा निर्दिष्ट उस श्रेणी का जन्तु है जो दल बाँधकर ही रह सकते हैं, जो ग्रिगेरियस (Gregarious) हैं। उसने सहानुभूति के भीतर से ही अपने को बचाया है, अपनी रक्षा की है, आज भी सहानुभूति पर ही उसका विश्वास है। शरीर बल से जो पशु की सम्पति है, वह हार चुकी है, न्याय और सद्भावना पर उसका विश्वास इसी लिए और भी दृढ़ हो गया है।

आधुनिक सभ्यता का सर्वाधिक कठोर वज्रपात स्त्री पर हुआ है। उसने स्त्री को न केवल स्थानच्युत किया है, उसको केंद्र से दूर फेंक दिया है, बल्कि उसमें विकट मानसिक द्वंद्व भी ला दिया है। हमारी आलोच्य कहानियों में केंद्रच्युति की ओर से कोई शिकायत नहीं की गई है, स्पष्ट ही हमारी देवियों ने इस महान् अनर्थ को महसूस नहीं किया है, जो व्यक्ति स्वाधीनता का पुछल्ला होकर आता है, ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार व्यावसायिक-क्रान्ति के पीछे व्यक्ति-स्वाधीनता आती है। परन्तु दूसरी बात को हमारी देवियों ने महसूस किया है। रूढ़ि-समर्पित आदर्श स्त्री और व्यक्ति स्वाधीनता से प्रभावित आधुनिक-स्त्री का द्वन्द्व हमारी आलोच्य कहानियों में पदे पदे दिखाई देता है। यह एक अद्भुत विरोधाभास है कि इन कहानियों में एक ही साथ व्यक्ति स्वाधीनता और समाज-निष्ठा दोनों को स्वीकार कर लिया गया है, मानों इनमें कोई विरोध ही न हो, मानों वे दोनों एक ही चित्र के दो पहलू हों। पर हम अगर इन विरुद्धाभासित कोटियों में सामंजस्य खोजना चाहें तो हमें ज्यादा देर भटकना नहीं पड़ेगा। आधुनिक-शिक्षा ने स्त्री में भी पुरुष की भाँति महत्वाकांक्षा के भाव भर दिये हैं, वह भी पुरुष के साथ प्रतिद्वंद्विता के लिए निकल पड़ी है, परन्तु पुरुष की भांति उसकी स्वाधीनता में लापरवाही नहीं है। वह वर्तमान परिस्थितियों के साथ समाज का सामंजस्य चाहती है। वह जो कुछ नया करने जा रही है उसके लिए समाज की स्वीकृति चाहती है। वह उस नई समाज-व्यवस्था को गढ़ने के लिए व्याकुल है जो स्त्री की महत्वाकांक्षा का विरोधी न हो। स्त्री की वैयक्तिकता समाज की स्वीकृति चाह कर समाज की प्रधानता को स्वीकार कर लेती है। आलोच्य कहानियों में इसी स्वीकृति का प्रयत्न है।

समाज को स्त्री ने जन्म दिया था। दलबद्धभाव से रहने के प्रति निष्ठा होने के कारण वह उसी (समाज) की अनुचरी हो गई। पुरुष यहाँ भी आगे निकल गया। वह समाज से भागना चाहता था। स्त्री ने अपना हक़ त्याग कर उसे समाज में रखा, उसके हाथ में समाज की नकेल दे दी। पुरुष समाज का विधायक हो गया। इतिहास उलट गया। जमाने के साथ ग़लतियों की मात्रा बढ़ती गई; पुरुष अकड़ता गया, स्त्री दबती गई। आज वह देखती है कि उसी के बुने हुए जाल ने उसे बुरी तरह जकड़ डाला है। वह उसे प्यार भी करती है, वह उससे मुक्त भी होना चाहती है। यही द्वंद्व है। यही समस्या है। यही विरोधाभास है। वह फिर एक बार इसे अपने हाथों खोल कर फिर से बुनेगी? उचित तो यही था, पर हमारी देवियाँ इस विषय में मौन हैं।

क्या उर्दू राष्ट्रभाषा हो सकती है ?

लेखक, पंडित वेंकटेश नारायण तिवारी

सन् १९३८ के अन्तिम सप्ताह में 'पीरपुर-रिपोर्ट' नाम की एक पुस्तिका आल-इंडिया-मुस्लिम लीग के देहलीवाले आफ़िस से प्रकाशित हुई थी। इस 'रिपोर्ट' को मुस्लिम लीग की कौंसिल द्वारा नियुक्त जाँच-कमिटी ने तैयार किया था। जाँच का विषय था 'कांग्रेसी सूबों में मुसलमानों की शिकायतें'। इस रिपोर्ट में लगभग १०० पृष्ठ हैं। आकार है इसका रायल अठपेजी। यह तीन भागों में विभक्त है, और सब मिलाकर इसमें १७ अध्याय हैं। इसमें कांग्रेसी प्रान्तों के मुसलमानों की जिन कथित शिकायतों का उल्लेख है उनका समूल खण्डन विभिन्न प्रान्तों की कांग्रेसी सरकारों ने तत्काल ही कर दिया था। इस लेख में 'पीरपुर-रिपोर्ट' में संगृहीत कपोल-कल्पित लांछनों का निराकरण हमारा ध्येय नहीं है। हमें तो इससे भी कोई सरोकार यहाँ नहीं है कि उसमें जो कुछ कहा गया है वह ठीक है या ग़लत। इस लेख में तो हम अपने पाठकों का ध्यान उसके ११वें अध्याय में कही गई कुछ बातों की ओर दिलाना चाहते हैं। इस अध्याय का शीर्षक है 'भाषा और संस्कृति' अथवा 'ज़बान और तमद्दुन'।' रिपोर्ट अँगरेज़ी-भाषा में लिखी गई है।

भाषा के सम्बन्ध में 'पीरपुर-कमिटी' का कहना है कि इस शताब्दी के आरम्भ से साम्प्रदायिक विद्वेष फैलने लगा, जिसका परिणाम यह हुआ कि जो उर्दू उस समय तक भारत की राष्ट्र-भाषा मानी जाती थी वह केवल मुसलमानों की ज़बान कही जाने लगी। आगे चलकर कमिटी यह भी फ़र्माती है कि मुसलमानों ने उर्दू को अपनी मादरी ज़बान बनाने का निश्चय कर लिया और उसे दत्तचित्त होकर अपना लिया। उनका समस्त साहित्य-भांडार—ज्ञान-विज्ञान की सब शाखाओं से संबंध रखनेवाला साहित्य—का निर्माण इसी भाषा में हुआ है। इसी लिए मुसलमान अरबी-लिपि में लिखी हुई उर्दू के संरक्षण को इतना महत्त्व देते हैं। उर्दू-साहित्य में मुसलमानी संस्कृति या कल्चर निहित है। पीरपुर-कमिटी का यह भी कहना है कि भारतवर्ष में मुसलमानों के कल्चर के नाम की एक संस्कृति विद्यमान है।

इस लेख में पीरपुर-कमिटी के उपर्युक्त दो कथनों में से एक को मैं जाँच की कसौटी पर कसने की चेष्टा करूँगा। वे दोनों कथन इस प्रकार हैं—(१) क्या उर्दू हिन्दुस्तान की राष्ट्र-भाषा है या थी या हो सकती है ? (२) क्या हिन्दुस्तान में मुसलमान-कल्चर नाम की कोई संस्कृति विद्यमान है और यदि है तो उसका वास्तविक स्वरूप क्या है ? इन दोनों बातों की जाँच-पड़ताल के बाद मुझे आशा है कि सब पाठक मुझसे इस बात में सहमत हो जायँगे कि उर्दू-साहित्य इस्लाम-विरोधी और अराष्ट्रीय है। अतएव उर्दू-साहित्य को मुसलमानों के कल्चर का स्वरूप मानना जितना ही ग़लत है, उतना ही इस्लाम और हिन्द के प्रति विश्वासघात करना है। पहले प्रश्न पर विचार हम इस लेख में करेंगे, दूसरे प्रश्न का उत्तर विस्तार-सहित जनवरी की 'सरस्वती' में निकलेगा।

क्या उर्दू-भाषा राष्ट्र-भाषा कभी थी या हो सकती है ? राष्ट्र-भाषा का लक्षण क्या है ? क्या हिन्द की वह भाषा राष्ट्र-भाषा हो सकती है जिसमें स्वदेशी शब्द छूत माने जाते हों और उनके स्थान में परदेशी शब्दों को आदर के साथ अपनाने की प्रबल प्रवृत्ति हो ? हिन्दी के पाठकों को शायद यह मालूम न हो कि उर्दू के अहले ज़बानों, उर्दू-भाषा के आचार्यों, ने उर्दू के जन्म-काल ही से मतरुकात के उसूल—छूत के सिद्धान्त—की घोषणा कर दी और आज दिन तक उसी नियम का पालन करते जा रहे हैं। मतरुकात का यह नियम क्या है ? संक्षेप में इसका अर्थ है निषेध का नियम। उर्दू के आचार्यों की सम्मति में हिन्दी और संस्कृत के शब्द उर्दू-भाषा के लिए त्याज्य हैं, अतएव उनका प्रयोग करना निषिद्ध है। इसी लिए उर्दू की पुस्तकों में अव्ययों, सर्वनामों और क्रिया-पदों को छोड़कर बाक़ी सब शब्द परदेशी मिलते हैं। उर्दू को राष्ट्र-भाषा कहनेवाले लोग इस तरह की साहित्यिक तंगदिली और राष्ट्र-विरोधी मनोवृत्ति से काम क्यों लेते हैं ? बात अचरज की है अवश्य, लेकिन साथ

ही यह सत्य भी है कि उर्दू के मौलवियों ने आरम्भ ही से इस नीति का अवलम्बन किया है। उर्दू के आदि-कवि वली कहे जाते हैं। वली के साहित्यिक जीवन के दो भाग हैं—पूर्व-काल और उत्तर-काल। पूर्व-काल की उनकी कविताओं में हिन्दी के शब्द काफ़ी मात्रा में मौजूद हैं, लेकिन बाद में शाह शाद उल्लाह गुलशन की नसीहत ने उनकी कायापलट कर दी। शाह साहब ने वली से फ़र्माया—

"ई हमः मज़ामीन फ़ारसी कि बेकार उफ़्तादह अन्द दर रेखतः बकार बबर। अज़ तू कि महासिबः ख्वाहिद गिरफ़्त ॥"

"ये इतने सारे फ़ारसी के मज़मून जो बेकार पड़े हैं उनको अपने रेखते में इस्तेमाल कर। कौन तुझसे जायज़ (हिसाब) लेगा ?"

ऊपर के उद्धृत वाक्य के अन्तिम अंश को ग़ौर से देखिए। शाह साहब ने वली से फ़र्माया है—"कौन तुझसे जायज़ (हिसाब) लेगा ?" इस पराधीन ग़ुलाम-देश में देशी को लतियानेवाले और परदेशी को अपनानेवाले से कौन, कब और कहाँ हिसाब माँगता है ? वली के समय से उर्दू-भाषा और साहित्य में परदेशीपन का नक़ली मुलम्मा चढ़ाना शुरू हुआ। शाह हातिम और शाह हातिम के बाद इन्शा और इन्शा के बाद नासिख़ हुए। और इनमें से हर एक ने देशी शब्दों को निकालने और परदेशी शब्दों के अपनाने पर ज़ोर दिया। हर ज़माने में, उसके पूर्व के ज़माने की तुलना में, हिन्दी और संस्कृत के शब्दों को निकालकर अरबी और फ़ारसी के शब्दों के प्रति अनुराग बढ़ता गया। नासिख़ का फ़तवा साहित्यिक और राष्ट्रीय दृष्टि से बड़े महत्त्व का है। मैं चाहता हूँ कि प्रत्येक हिन्दी के घर में यह काले अक्षरों में छापकर टाँग दिया जाय। इससे लोगों को पता लगेगा कि एक गिरी हुई क़ौम के अहले ज़बान, भाषा-विशारद, किस तरह अपनों को ठुकराते और ग़ैरों को अपनाते हैं और इसी में अपना बड़प्पन समझते हैं। पतित जाति का पूरा पतन तभी होता है जब वह अपने से घृणा करने लगती है और अपने से उसकी घृणा इस हद तक बढ़ जाती है कि वह पराये के नक़ली जामे को पहनकर अपने पतन की लज्जा को भुलाने की चेष्टा करने लगती है। नासिख़ का कथन नीचे उद्धृत किया जाता है—

"जिस लफ़्ज़ हिन्दी में अहले-उर्दू ने तसर्रुफ़ करके लफ़्ज़ बना लिया है उसमें सिवा हिन्दी लफ़्ज़ों का इस्तेमाल जायज़ नहीं और जिस लफ़्ज़ में तसर्रुफ़ न हुआ हो उसको इस्तेमाले फ़सहा के मुताबिक़ बाँधना चाहिए।" और "चूंकि इसमें हर शख़्स को दख़ल देना मुश्किल था, इसलिए उसूल इसका यह रक्खा कि फ़ारसी और अरबी अल्फ़ाज़ जहाँ तक मुफ़ीद माने मिलें हिन्दी अल्फ़ाज़ न बाँधो।"

नासिख़ के इस फ़तवे का उर्दू नस्र पर (गद्य) क्या असर हुआ, इसका पता 'जलवये ख़िज़्र' के लेखक के शब्दों में आप पढ़ लीजिए—

"बाद ग़दर के अहले-लखनऊ की सुहबतों ने तमाम हिन्द में उसूले-ज़बाने-लखनऊ को जारी कर दिया और देहली ने भी अपनी पुरानी गुदड़ी में नये नये पैवन्द लगाये और बहुत सी पुरानी तरतीबों और पुराने मुहाविरों को छोड़कर लखनऊ की तरकीब अख़्तियार कर ली।....नस्र-वालों ने नस्र और नज़्मवालों ने नज़्म (पद्य) की दुरुस्ती की। सरकारी स्कूलों में बावजूद 'क़वायद गिलक्रिस्ट' और 'दरिया-ए-लताफ़त' के नई किताब क़वायद उर्दू में नासिख़ के उसूल पर लिखवाई गई। अहले-अख़बारों ने अपने अपने मुक़ाम पर इबारत का ढंग दुरुस्त किया। ग़रज़ सब एक ही रंग में डूब गये।"

पीरपुर-कमिटी के सदस्य इस तरह जबरन बनाई गई ज़बान को हिन्दुस्तान की राष्ट्र-भाषा कहते हैं, जिसमें आँख की जगह 'चश्म' और कान की जगह 'गोश' दिखाई देने लगते हैं! नासिख़ का तो दावा था कि उसने लखनऊ को अस्फ़हान बना दिया।

"बुलबुले शीराज़ को है रश्क नासिख़ का सुरूर।
इस्फ़हान उसने किये हैं कूचः हाये लखनऊ ॥"

लखनऊ को आपने इस्फ़हान बनाने का दावा किया और हिन्दुस्तान को फ़ारस क़रार दिया। मौलाना आज़ाद ने अपने 'आबेहयात' में कहा है कि "नासिख़ की ज़बान" "दवाओं का प्याला है" जिसका जी चाहे पिया करे"। उसकी सादगी और शीरीं अदाई

तो खाक में मिल गई ।" हिन्दीपन से उसने तो हाथ धो लिया। डाक्टर मौलाना अब्दुल हक़ ने भी एक जगह यह स्वीकार किया है--"हमारे शोअरा (कवियों) ने हिन्दी लफ़्ज मतरुकात (निषिद्ध) और यही नहीं बल्कि बाज़ अरबी-फ़ारसी अल्फ़ाज जो ब तग़ैयुर हैयत या बे तग़ैयुरर लफ़्ज उर्दू में दाखिल हो गये थे, उन्हें ग़लत क़रार देकर दूसरी सूरत में पेश किया और उसका नाम इस्लाह ज़बान में रक्खा।" यह है उर्दू-भाषा। इसी को हमारे मुसलमान भाई भारतवर्ष की राष्ट्र-भाषा कहते हैं ! लखनऊ के 'अहले ज़बान' जिस ज़बान को बोलते हैं उसे वे बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान और मदरास की राष्ट्र-भाषा के नाम पर चलाने का ख्वाब देख रहे हैं। संस्कृत के जिन अनेक तद्भव और तत्सम शब्दों का देश में अनन्त काल से चलन है उनका प्रयोग निषिद्ध माना जाता है और उनके स्थान पर अरबी और फ़ारसी के शब्दों का चलन है। यह क्यों ? सिर्फ़ इसी लिए न कि मुस्लिम लीग के कुछ दीवाने चाहते हैं कि नासिख की तंग चहारदीवारी के बाहर अगर राष्ट्र-भाषा निकल गई तो उनके फ़िरक़े-वाराना दिलों को ठेस लगेगी ?

उर्दू का असली दुश्मन वह नहीं है, जो हिन्दी की हिमायत करता है और जो हिन्दी-हिन्दुस्तानी का पक्षपाती है, किन्तु सच्चे दुश्मन वे हैं जो उसे परदेशी बनाने की धुन में रात दिन पागल हो रहे हैं। उर्दू को मारनेवाले, उसका गला घोटनेवाले वे लोग हैं जिन्होंने वली से लेकर नासिख तक के उर्दू-शायरों के द्वारा प्रतिपादित निषेधवाद--मतरुकात के क़ायदे--की कठोर रस्सी से कसकर उर्दू ज़बान की नैसर्गिक वृद्धि और विकास को मार दिया। उन्होंने अपने साथ अन्याय किया। आत्महत्या करने का उन्हें पूर्ण अधिकार है। अपनी प्रतिभा के साथ वे विश्वासघात करें या न करें, इससे हमें कोई सरोकार नहीं। लेकिन एक प्रान्तिक भाषा के नैसर्गिक विकास को इन घातक मित्रों ने इन नादान दोस्तों ने सदा के लिए इस बेरहमी और बेदर्दी से, इस अदूरदर्शिता से, खत्म करने की जो बेजा हरकत की या कर रहे हैं, उसे देखकर किस सहृदय साहित्य-सेवी का हृदय न भर आयेगा ? इसी भाषा के सम्बन्ध में 'पीरपुर-कमिटी' के सदस्यों ने यह भी रोना रोया है कि उर्दू पहले ही से हिन्दुस्तान की राष्ट्र-भाषा मानी जाती थी। उसे इस बीसवीं सदी के आरम्भ से लोगों ने सिर्फ़ मुसलमानों की भाषा कहना शुरू कर दिया ! उन्हें क्या याद न रहा अपने अहले ज़बानों का यह फ़तवा-"हिन्दुओं की शोचनीय हालत उर्दू-ए-मुअल्ला को उनकी मादरी ज़बान नहीं होने देती।" सर सैयद अहमदखाँ ने भी तो उर्दू को महज मुसलमानों की ज़बान स्वीकार किया है। उनका कहना है-"चूँकि यह ज़बान खासतौर से बादशाही बाज़ारों में मुरव्वज थी, इस वास्ते इस ज़बान को उर्दू कहा करते थे और बादशाह, अमीर, उमरा इसको बोलते थे। गोया हिन्दुस्तान के मुसलमानों की यह ज़बान थी।" इसी तरह मौलाना हाली तक ने यह स्वीकार किया है कि उर्दू के कोष का लिखनेवाला शरीफ़ मुसलमान हो सकता है "क्योंकि खुद देहली में भी फ़सीह उर्दू सिर्फ़ मुसलमानों की ज़बान समझी जाती है।" ठीक ही हमारे दोस्त श्री चन्द्रबली पाण्डेय ने कहा है--"उर्दू को हम कैसे और किस न्याय से मुल्क की राष्ट्र-भाषा मान लें ! वह तो मुसलमानों की भी नहीं, बल्कि एक जत्थे की बनावटी ज़बान है, जो आज अदबी ज़बान के रूप में मुल्क में फल-फूल कर फैल गई है। .... उसमें हिन्दू-मुस्लिम एकता नहीं, बल्कि अरबियत और फ़ारसियत की बनावट है। उर्दू-भाषा मुसलमानों के पतन और हिन्दवी के बहिष्कार का इतिहास है।"

उर्दू में अरबी और फ़ारसी के इस्तेमाल पर क्यों इतना ज़ोर दिया जाता है ? इस दुर्बलता, इस साहित्यिक कमज़ोरी, की तह में क्या छिपा है ? क्यों उर्दूवाले दूसरे की जूठन को महाप्रसाद समझते हैं ? एक जगह मौलाना अब्दुल हक़ ने स्वीकार किया है कि "तुर्कों ने अपनी ज़बान से ग़ैर ज़बान के लफ़्ज निकालना शुरू कर दिया है। ईरान में भी यही कोशिश हुई, लेकिन नाकामयाब हुई, लेकिन वे फिर तुर्कों की तरह ग़ैर ज़बान के लफ़्ज निकाल देने पर आमादः नज़र आते हैं।" तुर्क भी मुसलमान हैं, और ईरानी भी मुसलमान हैं। पहले अगर अरबी और फ़ारसी अल्फ़ाज अपनी ज़बान से निकाल देते हैं और दूसरे अरबी-शब्दों का बहिष्कार करते हैं तो हिन्दुस्तान के किसी मुसलमान को यह जुरंत नहीं होती कि वे तुर्कों और ईरानियों को इस्लाम-द्रोही या मुस्लिम कलचर का संहारक कहें ! ईरानवाले

आज़ाद हैं, तुर्क भी आज़ाद हैं, इसलिए दोनों अपनी-अपनी ज़बान से परदेशी लफ़्ज़ों को निकाल फेंकना चाहते हैं। लेकिन ग़ुलाम हिन्दुस्तान के ग़ुलाम मुसलमान "हुर्रियत (स्वतन्त्रता) का ताज सर से उतार कर ग़ुलामी का तौक" पहनना पसन्द करते हैं। इसी लिए उनको अपनी हर चीज़ ज़लील मालूम होती है; इसी लिए "ग़ैर ज़बान के लफ़्ज उनकी निगाह में निहायत शानदार और अरफ़ा हो जाते हैं और अपनी ज़बान का लफ़्ज हक़ीर और मुब्तज़ल मालूम होता है।"

हम भी साश्चर्य पूछते हैं कि क्या उर्दू गिरी हुई क़ौम की निशानी है या पतन और निराशा की पुकार है। उर्दू हिन्द-राष्ट्र की भाषा कभी भी न थी। सर सैय्यद अहमद के शब्दों में "इसको बादशाह अमीर-उमरा बोलते थे"। मुसलमानी दरबारों की यह भाषा अवश्य थी, लेकिन जनता को न तो इससे कोई सरोकार था और न इसको जनता से कोई सरोकार था। मुसलमानी दरबारों की इस कृत्रिम भाषा को राष्ट्र-भाषा का पद देना साम्प्रदायिक संकीर्णता ही को राष्ट्रीयता समझ लेना है। हिन्द की राष्ट्र-भाषा वह होगी जिसकी शब्द-परम्परा और अर्थ-परम्परा भारतीय हो--जिसकी प्रेरणा-शक्ति का स्रोत भारतीय आत्मा में हो और जो अपने उत्थान, विकास और वृद्धि के लिए परदेशी ज़बान और साहित्य की भिखारिणी न बने। उसका बोल अपना बोल हो। उसमें जो तेज़ा हो वह ईश्वरीय देन हो। उसका चमत्कार नैसर्गिक हो। अपनी प्रतिभा के जादू से वह अपने बोलनेवाले को सक्रिय और सजीव बनाने में समर्थ हो। उर्दू की उन्नति तो उसी दिन लुप्त हो चुकी, जिस दिन शाह शाद उल्लाह गुलसन के इशारों पर वली ने फ़ारसी मज़ामीनों और फ़ारसी और अरबी के लफ़्ज़ों और मुहाविरों को अपनाया। उसी घड़ी से उर्दू हिन्द की ज़बान न रह गई।

पंडित रामचन्द्र शुक्ल के एक निबन्ध से हम नीचे कुछ अवतरण दे रहे हैं जिनमें उन्होंने राष्ट्र-भाषा होने की क्षमता रखनेवाली भाषा का सच्चा चित्र खींचा है—

"साहित्य की अखण्ड दीर्घ परम्परा सभ्यता का लक्षण है। यह परम्परा शब्द की भी होती है और अर्थ की भी। शब्द-परम्परा भाषा को स्वरूप देती है और अर्थ-परम्परा साहित्य का स्वरूप निर्दिष्ट करती है। ये दोनों परम्परायें अभिन्न होती हैं। इन्हें एक ही परम्परा के दो पक्ष समझिए। किसी देश की शब्द-परम्परा अर्थात् भाषा कुछ काल तक चलकर जो अर्थ-विधान करती है वही उस देश का साहित्य कहलाता है। कुछ काल तक लगातार चलते रहने से शब्द-परम्परा या भाषा को भी एक विशेष स्वरूप प्राप्त हो जाता है और अर्थ-परम्परा या साहित्य को भी। इस प्रकार दोनों के स्वरूपों का सामंजस्य रहता है। इस सामंजस्य में यदि बाधा पड़ी तो साहित्य देश की प्राकृतिक जीवन-धारा से विच्छिन्न हो जायगा और जनता के हृदय का स्पर्श न कर सकेगा। यदि अर्थ-परम्परा का स्वरूप बनाये रखकर शब्द-परम्परा का स्वरूप बदला जायगा तो परिणाम होगा "कोयल का नग़मा" और "महात्मा जी के अल्फ़ाज"। यदि शब्द-परम्परा स्थिर रखकर अर्थ-परम्परा या वस्तु-परम्परा बदली जायगी तो आपके सामने "स्वर्ण अवसर" आयगा, "हृदय के छाले" फूटेंगे और "दुपट्टे फाड़े जायँगे।"

"भाषा या साहित्य के विशिष्ट स्वरूप प्राप्त करने का अभिप्राय यह नहीं है कि उसमें बाहर से आये हुए नये शब्द और नई नई वस्तुएँ न मिलें। उसमें नये नये शब्द भी बराबर मिलते जाते हैं और नये नये अर्थों या वस्तुओं की योजना भी होती जाती है, पर इस मात्रा में और इस ढब से कि उसका स्वरूप अपनी विशिष्टता बनाये रहता है। हम यह बराबर कह सकते हैं कि वह इस देश का, इस जाति का और इस भाषा का साहित्य है। गंगा एक क्षीण धारा के रूप में गंगोत्तरी से चलती है; मार्ग में न जाने कितने नाले, न जाने कितनी नदियाँ उसमें मिलती जाती हैं, पर सागर-संगम तक वह 'गंगा' ही कहलाती है, उसका 'गंगापन' बना रहता है।........

"हमारा गर्व यह सोचकर और भी बढ़ जाता है कि यह परम्परा इतनी प्रबल और शक्तिशालिनी सिद्ध हुई कि इधर सौ वर्ष से --अर्थात् अँगरेज़ी राज्य के पूर्णतया प्रतिष्ठित हो जाने के पीछे--इसे बन्द करने के तरह तरह के प्रयत्न कुछ लोगों के द्वारा समय समय पर होते आ रहे हैं, पर यह अपना मार्ग निकालती चली आ रही है। इस विरोध का मूल हमारे उन मुसलमान भाइयों की निर्मूल आशंका है जो अपनी भाषा और अपने साहित्य को

विदेशी साँचे में ढालकर अपने लिए अलग रखना चाहते हैं। यदि वे अपनी भाषा और अपने साहित्य की एक अलग परम्परा रखना चाहते हैं तो हमारे लिए यह प्रसन्नता की बात है। इधर अपनी भाषा की छटा, अपने साहित्य की विभूति हमारे सामने रहेगी, उधर उनके साहित्य के चमत्कार से भी हम अपना मनोरंजन करेंगे। यही मौक़ा उन्हें भी रहेगा। मनोरंजन के क्षेत्र एक से दो रहें तो अच्छी बात है। यही स्थिति मुसलमानी अमलदारी में रही है। दिल्ली और दक्खिन के बादशाह फ़ारसी-कविता का भी आनन्द लेते थे और परम्परागत हिन्दी-कविता का भी। फ़ारसी के स्थान पर जब उर्दू की शायरी होने लगी तब भी यही बात रही। अनेक-रूपता का नाम ही संसार है। सौंदर्य की विभूति अनेक रूपों में प्रकट होती है। सहृदय उन सबमें आनन्द का अनुभव करते हैं। अकबर की बात छोड़ दीजिए जो आप कभी कभी हिन्दी में कविता करता था; औरंगज़ेब तक के दरबार में जाकर हिन्दी-कवियों का कविता सुनाना प्रसिद्ध है। रहीम, रसखान, ग़ुलाम नबी इत्यादि का नाम हिन्दी के अच्छे कवियों में है।"

पंडित रामचन्द्र जी शुक्ल ने राष्ट्र-भाषा के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है उसकी तुलना उर्दू-भाषा के साथ कीजिए। उसका तो दायरा ही निराला है। आपको तुरन्त यह साबित हो जायगा कि उर्दू कदापि राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती। उसने तो मुस्लिम दरबारों की राजभाषा फ़ारसी का स्थान ग्रहण किया। इसीलिए वह फ़ारसी-भाषा की हिन्दवी प्रतिलिपि है। देश से उसका कोई संबंध नहीं, सम्पर्क नहीं। "उस दायरे से", शुक्ल जी ही के शब्दों में, "जगत, चंचल, नार, गुन, अकास, धरम, धन, करम, दया, बीर, बली ऐसे शब्द एकदम निकाल बाहर हुए। इसी प्रकार वस्तुओं में न कमल और न भौंरे रह गये, न बसन्त और कोकिल, न वर्षाऋतु रह गई, न सावन की हरियाली न भीम और अर्जुन रह गये, इस प्रकार उसकी परम्परागत भाषा के आधे हिस्से से और परम्परागत साहित्य के सर्वांश से अर्थात् देश के सामान्य जीवन से उर्दू दूर हटा दी गई। जबरदस्ती जान-बूझकर हटाई गई, आपसे आप नहीं हटी। उर्दू के इस रूप में आने का परिणाम यह हुआ कि अपना प्रसार करने की स्वाभाविक शक्ति उसमें न रह गई, वह अपने को बनाये रखने के लिए मकतबों और सरकारी दफ़्तरों की मोहताज हो गई।"

समाधान

लेखिका, कुमारी रूपकुमारी वाजपेयी बी० ए०

किसने कब सब कुछ है पाया ?
तरु-गोदी में सुख से बढ़कर,
देव-गणों के मस्तक चढ़कर,
सबका प्रिय रह चुका कभी जो फूल वही जाता ठुकराया।

शान्ति-निराशा के सखि ! रेले,
एक समय प्रभु ने भी झेले,
हँसी और आँसू में जीवन,
क्यों केवल दुख गले लगाया ?

आशा-दीपक पर परवाना,
बनकर री ! मन का मँडराना,
खेल सदा यह होनेवाला,
खेल सदा यह होता आया !

रिक्ता

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

सविता एक डिप्टी कलक्टर की कन्या थी। छुटपन में ही पिता की गोद से बिछुड़ जाने के बाद समृद्ध और साधन-सम्पन्न पितृव्यों से उपेक्षित होने के कारण उसे माता के साथ अपने धनहीन किन्तु सम्मान-प्रिय एवं धर्मप्राण नाना के ही यहाँ आश्रय लेना पड़ा। इसलिए शिक्षा और सदाचार से युक्त होने पर भी ऊपरी तड़क-भड़क से वह वञ्चित रही, और यही कारण था कि अपने सुशिक्षित और रूप-गुण सम्पन्न पति के प्रिय न हो सकी। फल यह हुआ कि सविता घर में दासी का-सा जीवन व्यतीत करने को बाध्य हुई और अरुण उसके कारण घर से दूर दूर रहने लगा।

(९)

मेनका ने कहा—जब जाना होगा तब तू भी चला जायगा, मुझे क्या पड़ी है कि मैं उनसे कहने जाऊँ !

"कहोगी नहीं तब क्या जाने देंगे ख़ाक ? अच्छा दार्जिलिंग न सही, तो कटक ही हो आऊँ। वहीं जाने के लिए कह दो। कहोगी न ?

मेनका का हृदय दुखी हो उठा था। उन्होंने कहा—अच्छा जब जायगा तब देखा जायगा।

सविता का भी चित्त उस दिन बहुत ऊब रहा था। समस्त दिन रह रह कर केवल यही बात उसके मन में आती रही कि यदि नाना जी आते और एक बार मुझे अपने यहाँ ले जाते तो चार दिन अपने इस सन्तप्त हृदय को शीतल कर आने का अवसर मुझे मिल जाता। परन्तु संभव है कि सास जी मुझे जाने ही न दें। वे वहाँ भेजने में बड़ी आपत्ति करेंगी। इसके सिवा पुलक !

सविता को यदि नाना के यहाँ जाने का अवसर मिल जाता तो वह शान्ति की साँस ले पाती, एक प्रकार से उसका बन्धन कट जाता। परन्तु यहाँ उसका जो कर्त्तव्य था उसके कारण उसका हृदय जाने के लिए ज़रा भी नहीं तैयार हो पाता था। पुलक के ऊपर उसके स्नेह का अधिकार चाहे कितना भी रहा हो, किन्तु कर्त्तव्य का दायित्व उसकी अपेक्षा कहीं अधिक था। इस कर्त्तव्य-पालन के निमित्त अपने स्वार्थ का बलिदान करने की अपेक्षा उसके लिए कोई दूसरा रास्ता नहीं था।

इस परिवार में सविता का पावना चाहे कितना ही कम क्यों न हो, किन्तु देने का जितना अधिकार है, उसे ना दिये बिना वह कैसे रह सकती थी ? इस सम्बन्ध में तो परिवार के लोग ज़रा भी त्रुटि नहीं सहन कर सकते थे। वे लोग तो इतना भर जानते थे कि हम जब हाथ फैलायें तब भर दिया जाय। उनसे इस बात से मतलब नहीं कि भाण्डार में हमने जमा कितना किया है ! या देने की क्षमता तुममें कितनी है।

दोपहरी में पुलक को सुलाकर सविता बैठी हुई सिलाई का कोई काम कर रही थी। इतने में एकाएक मेनका ने आकर कमरे में प्रवेश किया। आश्चर्य में आकर सविता एकाएक उठ कर खड़ी होगई।

मेनका ने कहा—बहू, लिफ़ाफ़ा या पोस्टकार्ड तुमने कुछ मँगा रक्खे हैं ?

सविता ने कहा—हैं तो मा। दूँ आपको ?

दीवार की ओर ताकती हुई मेनका एकाग्रभाव से कुछ सोचती रहीं। ज़रा देर के बाद वे कहने लगीं—मुझे आवश्यकता नहीं है। तुम ज़रा एक काम करो। अरुण को अच्छी-सी एक चिट्ठी तो लिख दो।

लज्जा और क्षोभ के मारे सविता का मुंह लाल हो उठा। वह मस्तक झुकाये हुए सिलाई के काम में मन लगा रखने के लिए समस्त शक्ति से प्रयत्न करने लगी। परन्तु सिलाई उसके चित्त को अपने अधिकार में कर न सकी।

लज्जा और विक्षोभ के कारण सविता के मुखमण्डल पर किस प्रकार की असमर्थता की रेखा उदित है इस ओर मेनका ने ज़रा-सा दृष्टिपात तक न किया। वे बराबर कहती गईं—ज़रा ख़ूब मुलायमियत के साथ लिखना। समझती हो न ? तुम ज़रा अच्छी तरह चिट्ठी लिख दोगी तो वह आ भी सकता है।

मेनका जो बार बार इस प्रकार की बात कह रही

थीं, इसके उत्तर में क्या कहना चाहिए, यह बात सविता की समझ में नहीं आ रही थी। परन्तु चिट्ठी लिखने में वह असह्य अपमान का अनुभव कर रही थी। वह सोचने लगी—मैं चिट्ठी किसको लिखूं और क्यों लिखुं? साँझ का प्रकाश पड़े हुए कमल के समान अपनी दोनों आँखें उसने ऊपर उठाई और बोली—मुझसे यह न होगा।

सविता की यह बात सुनते ही मेनका तो एकदम सन्नाटे में आ गईं। उन्होंने यह एक ऐसी बात सुनी जिसकी उन्हें कभी सम्भावना नहीं थी। ज़रा देर तक चुप रहने के बाद उन्होंने कहा—इसमें न हो सकने की कौन-सी बात है? एक चिट्ठी तो लिखनी है। लिख क्यों नहीं देती हो?

सविता ने इस बार भी बहुत ही दृढ़ कण्ठ से कहा—मुझसे यह न होगा।

मेनका गरज उठीं। उन्होंने कड़क कर कहा—होगा कैसे नहीं? ज़रा सुनूं तो! वाह रे अहङ्कार! बहुत बड़ा अहङ्कार हो गया है आजकल तुमको! तुमसे यदि यह न होगा तो तुम्हें लेकर हम क्या करेंगी, ज़रा बतलाओ तो!

सविता ने चुपचाप सुन लिया। वह कुछ बोली नहीं। इधर मेनका अपनी धुन में बकती ही गईं—"ऐसी लड़की को लेकर जो इस तरह अपने अहङ्कार में चूर रहे, क्या मैं गृहस्थी चला सकती हूँ? चूल्हे में जाय। जो मन में आवे, करे। इस तरह की करनी का ही तो यह फल है कि भाग्य ने इस तरह ज़ोर बाँध रक्खा है।"

इस प्रकार तीव्र तिरस्कार की चिनगारियाँ उड़ाती उड़ाती तिनमिना कर मेनका कमरे से निकल गईं। यह जो आग की तेज़ आँच उन्होंने फैलाई थी वह कुछ कुछ स्वयं मेनका को भी लग गई थी। सविता के ऊपर से जब उनका क्रोध कुछ कम हुआ तब वे स्वयं ही अरुण को चिट्ठी लिखने बैठीं।

मेनका एक बहुत ही विशेष प्रकार की स्नेहपरायण माता थीं। सन्तानों के प्रति उनका इस प्रकार का अन्ध-स्नेह था कि उसके फेर में पड़कर वे उचित-अनुचित का ज्ञान खो बैठती थीं। अपनी किसी भी सन्तान के मुरझाये हुए मुख पर ज़रा-सी मुस्कराहट देखने के लोभ से जिस प्रकार वे दूसरे की सन्तान के वक्ष पर पैर रख कर खड़ी होने में ज़रा भी आना-कानी नहीं किया करतीं थीं, उसी प्रकार स्वयं अपनी भी बहुत-सी हानि स्वीकार कर सकती थीं। इस विषय में उनकी दृष्टि में न्याय-अन्याय या उचित-अनुचित कुछ था ही नहीं। परन्तु इस विवेक-शून्यता के कारण अत्यन्त स्नेह होने पर भी बड़े होने पर उनका कोई लड़का माता का अनन्यभक्त न हो सका। वे लोग माता की बात मानते थे अवश्य, किन्तु सोच-विचार कर लेने के बाद मानते थे। लड़के जब छोटे छोटे थे उन्हें तब पढ़ाने के लिए घर पर मास्टर आया करता था। वह किसी तरह की भूल हो जाने पर प्रायः लड़कों को डाँट दिया करता था, कभी कभी मार भी बैठता था। परन्तु जिस दिन इस तरह की बात होती उस दिन वे रोष के मारे उपवास कर डाला करती थीं। परन्तु मालिक का स्वभाव इसके विपरीत था। यही कारण था कि इन सब बातों का कोई दुष्परिणाम नहीं होने पाया। कभी कभी तो लड़के ही मा को समझा-बुझा कर शान्त किया करते थे। वे तरह तरह से प्रमाणित किया करते थे कि मास्टर के मारने से हमें लगता नहीं। तब कहीं जाकर वे शान्त होती थीं।

मेनका में साधारणतः बुद्धि की अपेक्षा स्नेह ही अधिक था। इसलिए बहू के ऊपर क्रुद्ध होकर वे स्थिर भाव से रह न सकीं। उन्होंने स्वयं ही अरुण को चिट्ठी लिखकर उसे घर आने का आदेश किया। परन्तु पत्र लिखने से ज़रा ही देर पहले उन्हें सविता पर क्रोध हो आया था इस कारण उनका मिज़ाज बहुत गर्म था। यही कारण है कि उनका हृदय स्नेह से आर्द्र होने पर भी चिट्ठी नरम न होकर बहुत ही कड़ी हो उठी। कोमल अनुरोध ही कड़े आदेश के समान हो उठा। परन्तु ऐसा झोंक में ही हो गया। मेनका इसे समझ नहीं सकीं। चिट्ठी डाक में भेज कर वे निश्चिन्त होकर बैठीं। वे सोचने लगीं कि मेरी चिट्ठी पाकर भी क्या अरुण आये बिना रह सकता है?

शुभेन्दु के विवाह का मुहूर्त्त स्थिर हो गया था। इस बार अरुण किसी प्रकार की आना-कानी नहीं कर सका। वह भी घर आया। विशेषकर परीक्षा उसकी समाप्त हो चुकी थी। अब कौन-सा ऐसा बहाना था, जिससे वह मा को धोखा दे सकता।

अरुण जिस दिन घर आया, उसी दिन से कहने लगा कि मुझे किसी काम की तलाश में साकची जाना है। परन्तु साहस करके पिता से यह बात वह कह नहीं सका। उस समय उसके पिता की तबीअत ख़राब थी, इससे डाक्टरों ने सबको सावधान कर दिया था कि इन्हें किसी प्रकार की उत्तेजना न होने पावे।

घर आ जाने पर भी अरुण को पहुँचते ही शान्ति का स्थान मिल गया। परन्तु सविता के लिए कोई वैसी बात नहीं हुई। उसके सम्बन्ध में तो यही बात लागू थी कि अन्धे के लिए जैसे दिन वैसे रात, सब समान है!

इधर कई दिनों तक दूर दूर रहकर भी स्वामी को जितना वह देख पाई, उतने से ही उनके सम्बन्ध में उसकी जो कुछ धारणा थी वह बदल गई।

सविता के मन में पहले यह बात आई थी कि शायद कम बोलने का इनका स्वभाव ही है; ये एक गम्भीर प्रकृति के व्यक्ति हैं। परन्तु अब उसे अपनी यह धारणा निराधार मालूम पड़ी। देखने पर मालूम हुआ कि उसके स्वामी के मुख पर सदा हँसी की रेखा वर्तमान रहती है। बातचीत भी वे किसी से कम नहीं करते। इस घर के सभी लोगों के स्नेह और प्रीति की स्निग्ध धारा सूख जाती है केवल एकमात्र सविता की बारी आने पर!

सविता बहुत ही शान्त और सहिष्णु थी। उसके हृदय पर जो ये आघात हो रहे थे और उसे जो मानसिक व्यथायें सहन करनी पड़ रही थीं उन्हें वह भीतर ही भीतर दबा लेती। सूखे हुए मुँह पर भी वह खींचकर हँसी ले आती और छद्म-वेश में ही घूमा करती। वह किसी पर भी यह न प्रकट होने देती कि कितनी अगाध व्यथा से परिपूर्ण है हृदय उसका।

इस घर के जितने नियम-क़ायदे थे वे सब सविता को मालूम हो गये थे। इससे अब वह सदा ही सतर्क रहा करती थी। काम-काज के बहाने से उसे तंग करने का अवसर अब मेनका को भी प्रायः नहीं मिलता था। फिर भी वे कोई न कोई दोष निकाल ही लेतीं और साधारण-सी बात को बहुत बढ़ाकर किसी कारण से या अकारण ही समय समय पर जो गर्जना किया करतीं, अरुण के आ जाने पर उसकी तीव्रता में बहुत कुछ धीमापन आ गया था। सविता को भी इससे बहुत कुछ शान्ति मिली थी। इसके लिए वह मन ही मन अरुण के प्रति कृतज्ञता प्रकट किया करती थी। इतने दिनों के बाद सविता ने साहस करके माता तथा नाना को पत्र लिखा। पत्र में उसने लिखा कि मैं अच्छी ही हूँ।

सविता कितनी अच्छी है, इसका पता तो जो अन्तर्यामी हैं उन्हीं को रात-दिन चला करता था। तो भी जिन लोगों को इस सम्बन्ध में कुछ मालूम नहीं था, यह सब बतलाकर वह उन सबको क्यों जलाने लगी?

दो दिन के बाद ही माता की चिट्ठी का उत्तर आ गया। विवाह के बाद पहले-पहल माता की यही चिट्ठी उसे मिली थी। उस चिट्ठी में कितना आग्रह था, कितना आनन्द था, इसका अनुभव करनेवाला इस घर में कौन था? माता ने लिखा था—

"बेटी मेरी, तुम्हारी चिट्ठी मिली। यदि तुम अच्छी तरह हो तो इतने दिनों तक चिट्ठी न भेजकर मुझे इस तरह क्यों चिन्तित करती रही हो? तुम्हारी कोई चिट्ठी मिली नहीं, इससे साहस करके मैं भी कोई चिट्ठी नहीं लिख सकी। पिता जी श्री काशी-धाम की यात्रा करनेवाले हैं। साथ में मैं भी जाऊँगी।

"बहुत दिनों से तुम्हें देखा नहीं है। सोचती हूँ कि काशी जाते समय रास्ते में ज़रा-सा रुककर तुम्हें ज़रा-सा देखती जाऊँ। घर पर काली-पूजा कर लेने के बाद ही हम काशी के लिए यात्रा कर देंगे। भैया अरुण तब तक घर पर रहेंगे या नहीं, सूचित करना। अपने घर में किसी दिन दामाद को बुला सकूँगी, यह दुराशा मैं नहीं कर सकती। परन्तु वहाँ आने पर भी यदि मैं उन्हें न देख पाऊँगी तो मुझे बड़ा क्षोभ होगा। पूजा के दो दिन बाद यात्रा करने पर यदि उनसे मुलाक़ात होने की सम्भावना न हो, तो हम लोग पहले ही चल देंगे। तुम लोग मेरा आशीर्वाद ग्रहण करना। माननीय समधी जी तथा समधिन महोदया को प्रणाम कहना। पत्र का उत्तर देने में विलम्ब न करना बेटी। मैं प्रतीक्षा में बैठी हूँ। तुम्हारा पत्र मिल जाने पर हम लोग यात्रा का दिन स्थिर करेंगे।"

आशीर्वादिका—

तुम्हारी माता

माता की चिट्ठी पढ़कर सविता चिन्ता में पड़ गई। इन सब बातों का वह क्या उत्तर देती? वह सोचने लगी—

वे कब तक रहेंगे और कब जायँगे, इसका पता कैसे चल सके कि मैं माता को सूचित कर सकूँ। इसके सिवा इस घर में यदि वे आगई तो कोई भी बात उनके लिए अज्ञात न रह जायगी।

सविता को एक बात की चिन्ता और थी। वह सोच रही थी कि यहाँ के ही लोग उनके सम्बन्ध में क्या विचार करेंगे। इसके सिवा यहाँ आकर जब वे देखेंगे कि इस राजपुरी में जहाँ जो कुछ होना आवश्यक है वह सब वर्तमान है, ज़रा-सी जीवन की रेखा के स्पर्श के अभाव के ही कारण वह सब हमारी कन्या के लिए व्यर्थ हो रहा है, तब क्या यह उन्हें सह्य होगा!

सविता ने निश्चय किया कि इन बातों का कोई उत्तर न दूँ, यही अच्छा है।

सविता श्वशुर के लिए दूध औट रही थी। यह चिट्ठी उसी समय आई थी। उठने पर दूध कहीं खराब न हो जाय, यह सोचकर चिट्ठी हाथ में लिये ही लिये वह दूध में आँच लगाती रही।

मेनका ने आकर कहा—चिट्ठी किसकी लिये हो बहू? देखूँ तो।

सविता ने कहा—यह तो माता जी की चिट्ठी है मा।

"ओ मा, तभी तो! देखूँ, देखूँ क्या लिखा है तुम्हारी मा ने? इतने दिनों के बाद एकाएक उमड़ आया है माता का स्नेह।"

सविता ने हाथ बढ़ाकर चिट्ठी मेनका को दे दी। वह चिट्ठी पढ़कर मेनका का मुख अवज्ञा की हँसी से परिपूर्ण हो उठा। उन्होंने व्यंग्य के स्वर में कहा—और क्या चाहिए! काशी-यात्रा के अवसर पर रास्ते में ज़रा-सा रुककर अब हम लोगों को भी कृतार्थ कर दिया जायगा।

सविता का मुख रक्त के प्रबल उच्छ्वास से आग हो उठा। उसने फिर भी शान्तभाव से ही कहा—नहीं, मैं लिख दूँगी। वे लोग नहीं आवेंगे।

मेनका गरज उठीं। वे कहने लगीं—लिख क्यों न दोगी? माता को और नाना को बुद्धि और परामर्श देनेवाली लड़की तुम्हीं तो हो। हमारे घर की निन्दा और अकीर्ति का प्रचार किये बिना तुम्हारा निर्वाह कैसे होगा?

सविता चुपचाप रह गई। अरुण को छोड़कर मेनका ने घूम-घूमकर घर के सभी लोगों से कह दिया कि सविता की माता और नाना यहाँ आनेवाले हैं। किस मतलब से आ रहे हैं और कितने समय तक के लिए आ रहे हैं, यह बात गुप्त ही रह गई। हतबुद्धि सविता ने इस बात का प्रतिवाद करके सास के रोष को और नहीं बढ़ाया।

शुभेन्दु के विवाह में आये हुए बारातियों के साथ अरुण भी जिस दिन चला गया, उस दिन बाहर के एक नौकर ने आकर सूचना दी कि सविता के नाना आये हैं।

मेनका ने गाल भर हँस कर कहा—आये हैं तो कौन-सी ऐसी बात हो गई? कौन ऐसे माननीय पुरुष हैं जो नहीं आ सकते थे? कौन गया था खुशामद करने के लिए?

रुदन के प्रबल उच्छ्वास के कारण सविता अपने आपको सँभाल नहीं पाती थी। वह मन ही मन सोचने लगी—हाय, मेरा नीरव इंगित क्या मा या नाना कोई भी नहीं समझ पाये? अथवा मुझे एक बार देख लेने के लोभ से वे लोग सब कुछ समझते हुए भी नहीं समझ पाये? तो क्या अब इन सब सुई के समान नुकीली बातों की यन्त्रणा वे सहन कर सकेंगे? वे तो वास्तव में बड़े ही स्वाभिमानी पुरुष हैं?

मेनका ने नौकर से पूछा—क्यों रे, उन्होंने कुछ कहा भी है।

नौकर ने कहा—कुछ नहीं। आज एकादशी है और जो आये हैं वे कहते थे कि मैं एकादशी को कुछ खाता नहीं हूँ।

सविता ने ज़रा-सी शान्ति की साँस ली। उसके मन में यह बात आई—खैर, मेरे नाना के लिए इन लोगों को किसी प्रकार का आयोजन तो न करना पड़ेगा।

[क्रमशः

जाग्रत नारियाँ

महात्मा गांधी और स्त्रियाँ

लेखिका, कुमारी कान्ति मिश्र

पश्चिमी सभ्यता के अनुसार सार्वजनिक जीवन और प्राइवेट जीवन बिलकुल अलग अलग होते हैं, और किसी को यह अधिकार न होना चाहिए कि किसी के प्राइवेट जीवन की बातों का उल्लेख करके उसके सार्वजनिक जीवन पर कीचड़ उछाले। सच्ची बात यह है कि कोई भी व्यक्ति पूर्ण नहीं है, कुछ न कुछ दोष प्रत्येक में होते ही हैं। ऐसी दशा में हमें उन लोगों का कृतज्ञ ही होना चाहिए जो अन्य दोष या दोषों के होते हुए भी सार्वजनिक क्षेत्र में आकर वहाँ की कठिनाइयों का सामना करते हैं, किन्तु वे लोग जो या तो इस कार्य की कठिनाइयों को समझ नहीं पाते या अपनी ईर्ष्या और क्षुद्रता पर किसी तरह विजय नहीं पा सकते, उन व्यक्तियों पर भी कीचड़ उछालने का दुस्साहस किया करते हैं जो करोड़ों आदमियों की दीनहीन दशा बदलने के लिए अपने सर्वस्व और अपने आपको क्रान्ति-पथ पर लगा देते हैं। कैसा अच्छा हो यदि वे एक बार अपनी वास्तविक अवस्था देखने की शक्ति पा जायँ।

इस देश में भी 'आप्त' पुरुषों की बातों को 'असंदिग्ध' कहते हुए भी ऐसे अनेक 'मुनियों' और 'ऋषियों' के बार बार पतन की कथायें कदाचित् इसी कारण लिख दी गई हैं, जिससे हम इस सत्य को समझ लें कि कोई मानव प्राणी, चाहे वह जितना उच्च हो जाय, 'पतन-प्रूफ़' नहीं हो सकता। इसी लिए प्रत्येक के लिए प्रत्येक दशा में संयम और तप की आवश्यकता बतलाई गई है। फिर भी इस देश में सार्वजनिक जीवन और निजी जीवन सर्वथा भिन्न कभी नहीं माने गये। पश्चिमी शिक्षा-दीक्षा से जब

[स्वर्गीया श्रीमती कमला नेहरू जिनकी स्मृति में इलाहाबाद में बनाये जानेवाले कमला-नेहरू-अस्पताल, की नींव गत १९ नवंबर को महात्मा गांधी ने डाली है।]

हम भी ऐसे विभागों की ओर जा रहे थे तभी महात्मा गांधी ने यह घोषणा की कि ऐसा करना हमारी सभ्यता और संस्कृति के विरुद्ध है एवं यह सर्वथा अनुचित है--हमारे जीवन में ऐसी कोई दीवार न होनी चाहिए। वस्तुतः गांधी जी ने जिन महान् आदर्शों को पुनर्जीवित किया है उनमें से सबसे महान् यही है, क्योंकि इसके अनुसार जीवन दर्पण की तरह स्वच्छ होता जाता है और हम लोग उसे निरन्तर सत्य, शिव, सुन्दर बनाने की ओर प्रेरित हुए बिना नहीं रह सकते।

किन्तु जब पश्चिमी साम्राज्यवाद के हामी किसी व्यक्ति को उसका भयंकर विरोधी पाते हैं तब अपने सब उच्च सिद्धान्तों को भूलकर उसके निजी जीवन पर भी नीच से नीच आक्रमण करने से वे नहीं चूकते। पराधीन देश में विभीषणों की, दासत्व को ही स्वर्ग समझनेवालों की और थोड़े से चाँदी-सोने के टुकड़ों के लिए अपनी आत्मा को भी बेंच देनेवालों की कुछ न कुछ विशेष संख्या रहती ही है। कठिन ईर्ष्या और वैसे ही अज्ञान से प्रभावित मन की उच्छृङ्खलता रखनेवाले लोगों की तो कहीं कमी नहीं। अतः ऐसे सब लोग इन साम्राज्यवादियों का ऐसा साथ देते हैं कि एक बार वे स्वयं

[महात्मा जी की प्रिय शिष्या कुमारी मीराबेन]

[श्रीमती कस्तूर बा गांधी]

आश्चर्य में आ जाते हैं। इस समय हमारे देश में कुछ ऐसा ही लज्जाजनक दृश्य कई जगह दिखलाई देता है। वह सब हमें विलायत के लोगों की ऐसी कार्रवाई का इसी प्रकार का अनुकरण और अनुसरण जान पड़ता है।

इतिहास लिखकर प्रसिद्धि पानेवालों में मिस्टर टाम्सन का भी नाम है। उन्होंने इस देश में आकर बतलाया कि अँगरेज़ों के देश में इस समय यह भी प्रचार किया जा रहा है कि महात्मा गांधी अब (इकहत्तर वर्ष की अवस्था में) वासना के शिकार हो जाने से 'सन्त' नहीं रह गये हैं। स्वयं महात्मा जी के अनेक लेखों के [illegible] को उद्धृत करके इस देश में भी कुछ लोगों ने यह दिखलाना चाहा है कि महात्मा जी अपने पतन को कई बार स्वीकार कर चुके हैं। एक बार हिन्दी के एक प्रसिद्ध लेखक ने गोस्वामी तुलसीदास जी के बारे में कहा था कि जब वे अपने लिए स्वयं कहते हैं कि मेरे समान "कुटिल और कामी" कोई नहीं है तब या तो जो लोग उन्हें सच्चरित्र साबित करना चाहते हैं वे सब झूठे हैं या फिर गोस्वामी जी ही झूठे हैं। ऐसे लोगों से तर्क करना या उन्हें इस तरह के स्वाभाविक 'नम्र निवेदनों'

[कुमारी प्रतिभामोदक कलकत्ता को नृत्य-प्रदर्शन पर कई पदक प्राप्त हुए।]

[कुमारी रेणुका साहा। आपने सम्मेलन में संगीत का प्रदर्शन किया था।]

[कुमारी दीप्ति सान्याल कलकत्ता के नृत्य-प्रदर्शन में पदक प्राप्त किये थे।]

का रहस्य समझाने का प्रयत्न करना पत्थर पर सिर पटकने के समान है। जब वे यह निश्चित कर चुके हैं कि 'हम किसी की कुछ न सुनेंगे, क्योंकि वैसा करना हमारे स्वार्थ का विरोधी होगा' तब वे ऐसी बात पर कान क्यों देने लगे? फिर भी जनता के प्रति अपने महान् उत्तरदायित्व के कारण महात्मा गांधी ने इस नीचतापूर्ण आरोप का उत्तर अपने पत्र 'हरिजन' में दे दिया है। उनमें उन्होंने यह भी बतलाया है कि जिन मीरा बहन (मिस स्लेड) को देखते ही उन्होंने कहा था 'आज से तुम मेरी पुत्री की तरह रहोगी' उनके बारे में भी जब वे गांधी जी के साथ राउंड टेबिल कान्फ़रेंस के अवसर पर विलायत गई थीं, अँगरेज़ी के पत्रों में ऐसी ही निन्दात्मक बात लिखी गई थी। जब साम्राज्यवादी शक्ति मिस मेयो को यहाँ भेजकर सम्पूर्ण भारतवर्ष की मनमानी निन्दा करवा सकती है और प्रत्येक भारतीय माता को अपने पुत्र को कामी बनानेवाला कहला सकती है तब उसके लिए अपने समाचार-पत्रों और अपने गुरगों के द्वारा गांधी जी की निन्दा करानी कौन कठिन है? अफ़सोस तो हमें अपने ही देश के उन लोगों पर होता है जो ऐसी शक्ति का इस कार्य में भी तरह तरह से साथ देते हैं।

'सरस्वती' के पिछले अंक में ही एक लेखिका, श्री विद्यावती वर्मा श्यामपुरी ने यह दिखलाया था कि किस तरह से भारतीय विधवाओं और विशेषतः बाल-विधवाओं की मनमानी संख्या का दुनिया भर में ढिंढोरा पीटकर, हमारी कुरीतियों और हमारे अंधविश्वासों को प्रमाणित करने का पूर्ण प्रयत्न कर, यह दिखलाया जाता है कि हम स्व-शासन के अयोग्य हैं। जो लोग ऐसा कर सकते हैं उनके लिए हमारे नेताओं को बदनाम करना तो बहुत ही जरूरी जान पड़ता है। किन्तु महात्मा गांधी ने स्त्रियों के साथ कैसा अच्छा व्यवहार किया है और उनमें किस नवीन शक्ति का संचार कर दिया है, यह अब सहस्रों स्थानों पर प्रत्यक्ष देखा जा चुका है और शीघ्र ही फिर दिखलाई देगा। गांधी जी के पहले भारतीय स्त्रियों का क्षेत्र गृह-धर्म तक ही परिमित था। झाँसी की रानी आदि के कार्य अपवादरूप ही थे। किन्तु महात्मा गांधी ने स्त्रियों को राजनैतिक क्षेत्र में कार्य करने का पूरा अवसर दिया और इसके लिए उन्हें अपनी पूरी शक्ति से प्रेरित किया। 'यदि तुम्हारा भाई या तुम्हारा पति देश का विरोधी है तो तुम्हें उससे भी असहयोग करने और अपने को स्वदेश-सेवा में लगाने का अधिकार है।' इस उच्च सिद्धान्त को व्यावहारिक बना देने का श्रेय महात्मा गांधी को ही है। पति, भ्राता तथा पुत्र के साथ काम करनेवाली स्त्रियों की संख्या तो बहुत थी ही, किन्तु इस प्रकार असहयोग करनेवाली स्त्रियों की संख्या भी यथेष्ट हो गई

[कुमारी सुशीला दत्तात्रेय राव, ने प्रयाग-विश्वविद्यालय के गाने में प्रथम पुरस्कार पाया।]

[कुमारी प्रतिभानन्दन और कुमारी उर्मिलानन्दन बनारस। आप दोनों बहनों ने सम्मेलन में नृत्य-प्रदर्शन के लिए अनेक पदक प्राप्त किये हैं।]

है, उसमें निरन्तर बढ़ती ही होगी। जिन लोगों को कभी पूरी शक्ति के साथ सार्वजनिक काम करने का सुअवसर नहीं मिला वे यदि यह न समझ सकें कि अपने को इस तरह के कार्य में पूरी तरह लगा लेने पर हमारी सारी इन्द्रियों की शक्ति एक ही ओर लग जाती है और हमें किसी निम्नतर आनन्द की आवश्यकता नहीं होती तो वे अक्षम्य नहीं कहे जा सकते। किन्तु यह बात व्यक्तिगत दृष्टि से ही कही गई है। राजनैतिक एवं सम्पूर्ण देश की दृष्टि से वे किसी तरह क्षम्य नहीं हो सकते। महात्मा गांधी ने स्त्रियों को जो कुछ दिया है वह और कोई नहीं दे सका, यह इतिहास स्वयं ही प्रमाणित कर देगा। अब तक उनके जीवन का विकास एकांगी एवं अपूर्ण था, महात्मा ने ही उसके पूर्ण विकास का रास्ता खोल दिया है। यह रास्ता अब किसी तरह बन्द नहीं होगा, इसके लिए चाहे जिसे जितना बदनाम करने का प्रयत्न किया जाय, आसमान पर थूकने से वह थूक थूकनेवाले के ऊपर ही गिरता है, यही दशा इन निन्दक महाशयों की अवश्यम्भावी है।

'स्त्रियों को बन्दिनी बनाकर पुरुषगण स्वयं बन्दी हो जाते हैं", यह भारतवर्ष में पूर्णतया देखा गया है। अब समय आगया है कि ऐसे पुरुष लोग यह समझ लें कि इस बार स्त्रियाँ तो बन्दिनी नहीं बनाई जा सकतीं, बरन बेहूदा 'अति संघर्ष' से उन्हीं के बन्दी बने रहने की पूरी सम्भावना है।

मेञ्चेस्टर-गार्जियन के हाल के अङ्क में एक समाचार प्रकाशित हुआ है। महायुद्ध के समय चाय का पानी गर्म करने के लिये मशीनगन चलानेवाले एक सरल तदबीर काम में लाते थे। वे अपनी बंदूकों की आरूद इसीलिये छोड़ा करते थे कि ठंडा पानी उबल जाय। फिर वे उस पानी को अपनी चाय बनाने के काम में लाते थे।
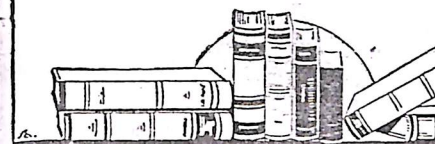
१—चित्रपटी—चित्रकार, श्रीयुत भवानीप्रसाद मित्तल, ओरियण्टल आर्ट गेलरी, मेरठ हैं। मूल्य १॥) है।

यह श्रीयुत मित्तल के ८ चित्रों का संग्रह है—(१) सुदामा जी सोच में, (२) मोहिनी वंशी, (३) जनक की पुष्प-वाटिका में, (४) वृन्दावन की राह में, (५) देवी-पूजन, (६) सुदामा के चावल, (७) जटायु की मृत्यु और (८) तन्मयता।

कहने की आवश्यकता नहीं कि उक्त आठों चित्रों का कथानक हिन्दू-साहित्य से लिया गया है और प्रत्येक चित्र अपनी पृथक् एवं पूर्ण कहानी रखता है, जो चित्र के देखते ही मस्तिष्क में प्रकट हो जाती है। यही कलाकार की सबसे बड़ी सफलता है। ये सभी चित्र प्राचीन भारतीय कला के सुन्दर नमूने हैं, जिनमें मन में पवित्र भावों की सृष्टि व उत्तेजन के लिए देवी-देवताओं के चरित्रों को ही चित्रित किया जाता था। आशा है, मित्तल जी को इस क्षेत्र में काफ़ी प्रोत्साहन प्राप्त होगा।

२—नीला लिफ़ाफ़ा—लेखक, श्रीयुत लक्ष्मीचन्द्र वाजपेयी और प्रकाशक, श्रीयुत सत्यभक्त, सतयुग आश्रम, इलाहाबाद हैं। छपाई-सफ़ाई अच्छी, क़ागज मोटा और सजिल्द पुस्तक का मूल्य एक रुपया है।

यह श्रीयुत वाजपेयी जी की १२ कहानियों का संग्रह है।

"उसे कमी ही किस बात की है? नैनीताल में सुन्दर बँगला है। मकान हैं, किराया आता है, धनोपार्जन की चिन्ता से मुक्त! हरी हरी लताओं से आवेष्ठित, सुरम्य पहाड़ी पर अवस्थित, उसका बेजोड़ बंगला, एक भव्य कार, नौकर उसके संकेत पर नाचते हैं, सोफ़े हैं, कुरसियाँ हैं। जिन वस्तुओं से जीवन, जीवन कहलाता है, वे सभी तो उपलब्ध हैं उसे।"

पर इस उपलब्धि में भी एक अभाव है जिसे या तो ज्ञानदा जानती है या कलाकार की तीव्र-दृष्टि; इस ऐश्वर्य की लक़दक में भी हृदय-पक्ष को वह भुला नहीं सका; यही कलाकार की और जन-साधारण की दृष्टि में अन्तर है। वह अभाव एक स्थायी टीस है जिसे 'अलमारी के दो घूँट' कुछ देर के लिए भुला भले ही दें, पर वह मिट नहीं सकती।

धनिकवर्ग में मानव-सुलभ संवेदना का लेखक ने गहरा अध्ययन किया है, और ज्ञानदा अपने अध्ययन में भले ही असफल होकर स्वयं को 'मायाविनी चपला' समझने लगे, पर कलाकार की दृष्टि में अवश्य ही वह 'नारी' है जिसने जीवन का मधुर-कटु अनुभव किया है। और जो 'प्रियदर्शन' को अपने उर की सन्ताप मिटाने भर को देख लेना चाहती है, पर सुरेश को पागलखाने में पाकर बेहोश भी हो जाती है। "जहर पिला दो, मैं तुम्हें भूल नहीं सकता, ज्ञानदा"—सुरेश का पूरा चित्रण करने को यह वाक्य काफ़ी है।

"नीला लिफ़ाफ़ा" में रूढ़ियों की भयानक चिता धधक रही है, जो एक ओर तो नीलिमा को खा जाती है और दूसरी ओर प्रियनाथ को चौपट कर देती है। यह वह अग्नि है जिसकी आँच में प्रोफ़ेसर मल्लिक की जीवन-फिलासफ़ी मन्द पड़ जाती है और जिसमें नीलिमा का सारा अपनत्व भस्म हो जाता है।

"कालिन्दी" में यह ज्वाला और भी प्रखर हो जाती है। इसका नायक कुछ अनोखी प्रकृति का है। एक ओर तो वह कालिन्दी पर कृपा करना चाहता है और उस पर किये गये अत्याचारों को देखकर उसे अपार क्रोध आता है, पर दूसरी ओर वह शिथिल भी हो जाता है। यह है मानसिक प्रवृत्तियों की क्रिया-प्रतिक्रिया, जो हमें मन में ही फँसाये रहती हैं, प्रकट कुछ करने नहीं देती, भले ही हममें कुछ कर गुज़रने की पूर्ण क्षमता हो। कालिन्दी का चरित्र पूर्ण विकसित नहीं हो पाया; उसके प्रति हमारे हृदय में कुछ जिज्ञासा रह जाती है। अत्याचारों के निर्देश में भी थोड़ी-सा अतिरंजना हो गई है। वैसे कहानी का अन्त अत्यन्त प्रभावशाली है और कालिन्दी के अन्तिम शब्द तो मानो

समाज के लिए एक खुली चुनौती हैं। "ओले गिरे" में लेखक
को पूरी सफलता मिली है। "हिमाद्रिजा" की जीत में
हार और हार में जीत का चित्रण बड़ी कुशलता से हुआ
है। भारतीय हृदय पाश्चात्यता को पूर्णतया ग्रहण कर
लेने पर भी दाम्पत्य जीवन में कितना सहिष्णु हो सकता
है, इसके चित्रण में लेखक ने बड़ी कुशलता का परिचय
दिया है।

"झुकि आये बदरवा," "जीवित शव" और "सितारा
की आँखें" उसी वायुमण्डल में पली हैं जिनमें 'जीवन के
भावों में अभावों की कल्पना खोज निकालनी पड़ती है।
तब भी लेखक के वर्ग-विशेष के गम्भीर अध्ययन की हम
दाद दिये बिना नहीं रह सकते। "सितारा" का संवेदन-
स्थल कुछ हलका पड़ गया है। एकाएक उसका मंच से
लापता हो जाना हृदय को उलझन में छोड़ देता है।

"फाँसी होगी" सुन्दर मनोवैज्ञानिक कहानी है।
"प्रगति के पथ पर" का प्लाट संकुचित है और इसमें
मनोवैज्ञानिक चित्रण का भी कम अवकाश मिला है।
"चोर" पूर्ण और सफल कहानी है "बिट्टी बीमार है"
भी इसी टक्कर की है। इनमें निर्धनवर्ग की मनोभावनाओं
का चित्रण बड़ा सुन्दर बन पड़ा है।

सब मिलाकर पुस्तक अच्छी है। लेखक महोदय के
पास एक स्थायी सन्देश है—'रूढ़ियों के प्रति विद्रोह', फिर
वे रूढ़ियाँ चाहे सामाजिक हों या साहित्यिक; और
इसमें वे काफ़ी सफल हुए हैं। भूमिका-भाग की तुक मूल
ग्रन्थ से नहीं मिलती है।

३—**द्विवेदी-मीमांसा**—लेखक, श्रीयुत प्रेमनारा-
यण टंडन, प्रकाशक, इंडियन प्रेस, प्रयाग हैं। पृष्ठ-
संख्या २९६; मूल्य १।।) है।

आधुनिक हिन्दी-साहित्य और भाषा की प्रगति किस
ओर है, यह समझने के लिए हमें हिन्दी के पिछले ४०-
५० वर्ष का इतिहास जानना आवश्यक है। बीसवीं
शताब्दी के उदय से हिन्दी-भाषा और साहित्य की प्रगति
को समझ कर ही हम उसके भविष्य का अनुमान कर
सकते हैं। यों तो इस प्रगति में सैकड़ों साहित्यिकों का हाथ
है, परन्तु यदि कोई दो साहित्यिक इस साहित्यिक युग
के प्राण कहे जा सकते हैं तो वे हैं पण्डित महावीरप्रसाद
जी द्विवेदी और बाबू श्यामसुन्दरदास। एक स्वर्गीय हो
चुके, दूसरे विश्रान्ति में हैं। अपने साहित्यिक जीवन में
दोनों की एक-दूसरे से नोक-झोंक रही सो उचित ही था;
मतभेद होना साहित्यिक जीवन को पूर्णांग बनाने के लिए
आवश्यक था। दोनों इस युग में आचार्य रहे—द्विवेदी जी
परोक्षरूप में और श्यामसुन्दरदास जी प्रत्यक्षरूप में।
दोनों का साहित्यिक जीवन गंगा-यमुना की भाँति प्रयाग
ही में मिलता है और साहित्यिक सेवा का पुण्य लूटनेवालों
का कर्तव्य इन दोनों साहित्यिकों की सम्मिलित साहित्यिक
सेवा का अध्ययन ही रह जाता है।

इस परिचय के लेखक को अपने साहित्यिक जीवन
में दोनों महारथियों की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त
है। पहले उसका परिचय हुआ श्यामसुन्दरदास जी से
उनके सहयोगी अध्यापक की हैसियत से। हिन्दी की
थोड़ी-बहुत सेवा करने की लगन उसी समय से प्रारम्भ हुई,
परन्तु उस समय हिन्दी मैट्रिक्युलेशन के लिए भी पर्याप्त
विषय थी और उसके ऊपर तो उसके लिए कोई स्थान
ही न था। इसलिए जो कुछ हिन्दी सीखी थी वह
हिन्दी की पत्रिकाओं-द्वारा ही, जिनमें 'सरस्वती' का
प्रमुख स्थान था। द्विवेदी जी को अपने कुछ शिष्यों का
पता तो था, उनसे चिट्ठी-पत्री और मेल-मुलाक़ात
भी थी; किन्तु इस लेखक जैसे कुछ शिष्य भी थे जिन्हें
न द्विवेदी जी के आचार्यत्व का पता था, न अपने शिष्यत्व
का; परन्तु तो भी था दोनों में आचार्य-शिष्य का सम्बन्ध
ही और यह सम्बन्ध तभी प्रत्यक्ष हो सका जब सन्
१९१८ से लेखक ने 'सरस्वती' में लिखना प्रारम्भ किया।

द्विवेदी जी के सन् १९२१ से विश्रान्ति लेने पर लेखक
ने बहुत कुछ चाहा कि अपने साहित्यिक आचार्यों की सेवा
के बहाने वह हिन्दी के आधुनिक काल का इतिहास लिख
सके, परन्तु इस कार्य के लिए जिस तैयारी की आवश्यकता
थी वह उसे नसीब न हो सकी। हाँ, उसके सौभाग्य
से उसे प्रस्तुत पुस्तक के लेखक के व्यक्तित्व में एक ऐसा
उत्साही शिष्य अवश्य मिल गया जिसने अपने गुरु के
ऋण को अपने ऊपर ही लेने का साहस किया है।

प्रस्तुत पुस्तक में शिष्यवर प्रेमनारायण टंडन ने
द्विवेदी जी के साहित्यिक जीवन पर कालक्रम से अधिक
प्रकाश नहीं डाला है; इसलिए यह पुस्तक द्विवेदी जी का
जीवन-चरित नहीं कही जा सकती। लेखक ने केवल अपने

आराध्य साहित्यिक महापुरुष के प्रौढ़ साहित्यिक रूप का
विविध पहलुओं से चित्र खींचा है। लेखक ने यह तो
बताया कि द्विवेदी जी ने हिन्दी-साहित्य की क्या सेवा
की है, परन्तु यह भी बताना आवश्यक था कि उनका भारतीय
भाषाओं के साहित्य में क्या स्थान है। हिन्दी को अब
राष्ट्र-भाषा के पद पर पहुँचाने का जो प्रयत्न हो रहा है उसमें
उनका कहाँ तक हाथ था, इस पर भी प्रकाश डालना
आवश्यक था। यों द्विवेदी-मीमांसा के पश्चात् द्विवेदी-
साहित्य की इति श्री नहीं हो जाती, परन्तु इसमें कोई
सन्देह नहीं कि बड़े बड़े साहित्यिकों के रहते हुए भी इस
उदीयमान लेखक ने द्विवेदी जी की साहित्यिक स्मृति
को जिस पुस्तक में परिणत किया है वह हमारे लिए आदर
की वस्तु है।

प्रत्यक्ष आचार्यत्व की व्याख्या करना उतना कठिन
नहीं है, जितना परोक्ष आचार्यत्व की और वह भी
किसी भाषा के ऐसे काल में जब उसके पोषकों के साथ-
साथ वह दासता के बन्धनों में जकड़ी हो। द्विवेदी जी ने
भारतेन्दु जी की भाषा को जो परिमार्जित रूप दिया
वह भी स्थायी नहीं है और उसे राष्ट्र-भाषा बनाने का
जो उद्योग हो रहा है उसके कारण उसका रूप अभी और
भी बहुत कुछ बदलेगा। ऐसी दशा में यह अनुमान करना
कठिन है कि आगे चलकर द्विवेदी जी की सेवा का राष्ट्र-
भाषा पर कितना प्रत्यक्ष प्रभाव रह सकेगा। परन्तु इसमें
सन्देह नहीं कि 'सरस्वती' में लगभग प्रत्येक विषय पर
लेख लिखकर या लिखा कर उन्होंने हिन्दी को इस योग्य
बना ही दिया कि उसके द्वारा प्रत्येक विषय पर गम्भीर
से गम्भीर विचार प्रकट किये जा सकें। विश्वविद्यालयों
में हिन्दी को स्थान मिलना द्विवेदी जी ही की सेवा
का फल था और फिर विश्वविद्यालयों-द्वारा हिन्दी-साहित्य
की किस प्रकार श्रीवृद्धि हो, इसकी योजना करना उनके
प्रतिद्वन्द्वी श्यामसुन्दरदास जी का काम था। द्विवेदी जी
के सरस्वती-स्कूल के स्नातकों का समय पूरा हो रहा
है और उनकी जगह श्यामसुन्दरदास जी के शिष्य ले रहे
हैं। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक ने ऊँची कक्षाओं में हिन्दी-
शिक्षा प्राप्त करके ही यह पुस्तक लिखी है। इसलिए
परोक्ष रूप में वह श्यामसुन्दरदास जी द्वारा ही द्विवेदी
जी के ऋणी हैं। द्विवेदी-मीमांसा हिन्दी के इन्हीं वयोवृद्ध
आचार्य को समर्पित है। प्रेमनारायण जी जैसे लेखक,
हिन्दी की भावी आशा हैं। हम प्रस्तुत पुस्तक का हार्दिक
स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि वह और उनके
समकालीन उमंगशील साहित्यिक, आर्थिक प्रोत्साहन की
परवा न करते हुए हिन्दी-साहित्य के विविध अंगों की
पूर्ति करते रहेंगे। स्वर्गीय द्विवेदी जी की पूज्य स्मृति
की यही सच्ची सेवा है।

—कालिदास कपूर*

४—**परित्यक्ता**—लेखक, श्रीयुत अक्षयकुमार जैन
और प्रकाशक, सरस्वती-मंदिर, विजयगढ़, यू० पी०
हैं। पृष्ठ-संख्या ९४ और मूल्य बारह आना है। काग़ज़
और छपाई सस्ती और साधारण है।

'परित्यक्ता' की कहानियाँ रोचक और कुतूहल-
वर्द्धक हैं। स्वयं 'परित्यक्ता' एक सामाजिक कहानी है,
जिसमें एक ठुकराई हुई भारतीय नारी के जीवन-उत्सर्ग
की कथा है।

'विश्वास' कहानी प्रेम की व्यथा-कथा है। बेचारी
नसीम की साधना को सलीम जैसे उच्चता के अभिमानी
क्या समझ सकते हैं। 'नूरे' की निराशा से नसीम के
चरित्र को और भी चार चाँद लग गये। यह एक सफल
कहानी है। 'उपहार' भी एक कुतूहलवर्द्धक और विस्मय
उत्पन्न करनेवाली कथा है। 'आशा' की कथा अत्यन्त
साधारण और अरोचक है। 'अज्ञात' में कैलाशचन्द्र
के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण सफल है। 'नीलाम' में भी कुँवर
जी का चरित्र कुशलतापूर्वक अंकित है। रोचकता अन्त
तक बनी रहती है।

इस प्रकार इस संग्रह की अधिकांश कहानियाँ
कहानी-कला की दृष्टि से सफल कृतियाँ हैं। शैली भी उनके
उपयुक्त है, यद्यपि भाषा का शैथिल्य और अँगरेज़ी
के तत्समशब्दों का प्रयोग यत्र-तत्र खटकता है। लेखक
का ध्यान अधिकतर कहानी के संवेदन-स्थल पर रहता
है और इसमें वातावरण उपस्थित करने की क्षमता

---

* पाठकों को यह जानकर कौतूहल होगा कि मेरा
यह नामकरण द्विवेदी जी की लेखनी ने ही किया है।
पहले मैं अपना नाम "कालीदास" लिखा करता था।
—लेखक

में कमी हो जाती है। कथोपकथन भी साधारण हैं। कथानकों में यथार्थता की रक्षा करने की चेष्टा की गई है।

कुल मिलाकर पुस्तक रोचक और पठनीय है। काग़ज़ कुछ और अच्छा लगता तो पुस्तक के कलेवर की शोभा बढ़ जाती।

५—टर्की का शेर—लेखक, श्रीयुत विद्यावाचस्पति गणेशदत्त शर्मा गौड़ 'इन्द्र' और प्रकाशक गुप्त ब्रादर्स, बनारस सिटी हैं। १९३ पृष्ठों की सजिल्द पुस्तक का मूल्य १॥) है, परन्तु काग़ज मैला और सस्ता है। छपाई अच्छी है।

प्रस्तुत पुस्तक में कतिपय अँगरेज़ी तथा हिन्दी-उर्दू की पुस्तकों की सहायता से कमाल अतातुर्क की जीवनी का वर्णन है। पुस्तक जीवनी-लेखन-कला की दृष्टि से नहीं, बल्कि कमाल की जीवन-घटनाओं से परिचय कराने की दृष्टि से लिखी गई है। हिन्दी में अभी जीवनी-लेखन-कला का विकास नहीं हुआ है।

'टर्की का शेर' अपने उद्देश्य में सफल हुआ, और उसका लेखक भी। शैली रोचक, भाषा सरल और सुबोध है। एक ही पुस्तक में कमाल के जीवन की प्रायः सभी घटनाओं का सुन्दर संकलन कर दिया गया है।

६—बुद्ध-चरित्र—लेखक, साहित्य-भूषण, हिन्दी-प्रभाकर पं० खुशीराम शर्मा विशारद और प्रकाशक, अनेकानेक उपाधिधारी पं० राधेश्याम कथावाचक, अध्यक्ष—श्री राधेश्याम पुस्तकालय बरेली हैं। पृष्ठ-संख्या ३२ और मूल्य चार आना है।

पंडित राधेश्याम कथावाचक को हिन्दी-साहित्य में कोई स्थान नहीं मिल सका। परन्तु जनता ने उनका जितना स्वागत-सत्कार किया, उतना हिन्दी के किसी कलाविद् कवि को भी प्राप्त नहीं हो सका। प्रस्तुत पुस्तक राधेश्याम-द्वारा नहीं, परन्तु उनकी शैली में लिखी गई है। प्रथम बार २,००० छपी है और इसके अनेक संस्करण होंगे, यह निश्चय है। साहित्यिकों से यदि पूछा जाय तो उनका यही निर्णय होगा कि राधेश्याम और राधेश्यामी तर्ज़ ने हिन्दी-साहित्य के साथ अक्षम्य अपराध करने का दुस्साहस किया है। परन्तु हम तो समझते हैं कि इसमें दोष हमारे साहित्यिक कवियों का भी है, जो केवल स्वान्तः सुखाय या मित्र-मंडली या कालेज के विद्यार्थियों के लिए लिखते हैं। हिन्दी-प्रदेश का एक विशाल जनसमूह उनकी कृतियों के सुस्वादु से वंचित रह जाता है।

उसे अपनी साहित्य की चिर-तृषा शान्त करने के लिए यदि निम्नकोटि के साहित्य का आसरा लेना पड़ता है तो उसमें उसका क्या दोष? और इस प्रकार का साहित्य उपस्थित करनेवालों का भी कोई विशेष अपराध नहीं। 'राधेश्यामी' तर्ज़ तो फिर भी ग़नीमत है, इसमें धार्मिकता का बेजा फ़ायदा अवश्य अधिक उठाया गया है, स्वाभाविक कुरुचि का उतना नहीं। परन्तु इससे कहीं अधिक दूषित सामग्री हमारी अधिकांश जनता—स्त्री और पुरुषों की साहित्यिक प्यास को शान्त करने में प्रयुक्त हो रही है, जो उलटे उस पर विषैला प्रभाव डालती है। साहित्यिकों के लिए यह चिन्त्य विषय है।

—ब्रजेश्वर

गुजराती

७—श्री तुकाराम-गाथा – (प्रथम-ग्रन्थ) अनुवादक, श्री सेवानन्द मु० शिकियारी, प्रकाशक, सस्तुं-साहित्य-वर्धक कार्यालय, अमदाबाद और मुंबई नं० २; मूल्य २।), पृष्ठ-संख्या ८३२ + ६४ है।

श्री भिक्षु अखण्डानन्द के सम्पादन में विविध-ग्रन्थमाला के २८ वें वर्ष (१९९५ वि०) के ३१७ से ३२० अङ्क में इस पुस्तक का प्रकाशन हुआ है और यह माला का द्वितीय-ग्रन्थ है। मराठी-भाषा में—'सार्थ तुकाराम की गाथा' शीर्षक ग्रन्थ है, जिसके मूल-संग्रहकार श्री केशव भिकाजी ढवले हैं और उसी के आधार पर इस पुस्तक का भावानुवाद किया गया है। प्रस्तावनापूर्ण रूप से मूल-ग्रन्थ की ही है जो कि मूल-पुस्तक के सम्पादक श्री विष्णु नरसिंह जोग-द्वारा लिखी गई है। पुस्तक में संत तुकाराम का संक्षिप्त जीवन-चरित्र और सद्ग्रन्थों की महिमा का भी समावेश किया गया है। जीवन-चरित्र के यशस्वी लेखक श्री लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर हैं।

(१)
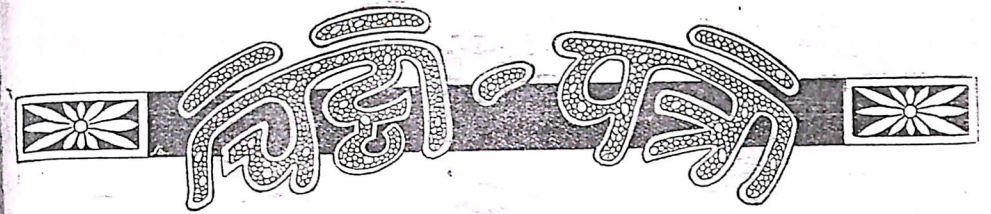
प्रिय सम्पादक जी,

'सरस्वती' का जो अङ्क अभी आया है उसमें पंडित वेङ्कटेशनारायण जी तिवारी के लेख में मेरा उल्लेख किया गया है और मुझसे पूछा गया है कि मैंने बिहार की "हिन्दुस्तानी कमिटी" का सदस्य बना रहना क्यों स्वीकार किया है जब कि उसकी नीति से हिन्दी की हानि हो रही है। मेरा नम्र निवेदन यह है कि मैं इस कमिटी का कभी सदस्य था ही नहीं।

"हिन्दुस्तानी" मुश्तरका भाषा के मुतअल्लिक़ मेरा विचार जो कुछ है उसे मैं कई बार कई जगह पर प्रकट कर चुका हूँ। संक्षेप में मैं केवल यह कहूँगा कि देश की एकता के बहाने इससे हिन्दी और उर्दू दोनों की क्षति हो रही है और एक कृत्रिम भाषा तैयार की जा रही है जिससे साहित्य का बड़ा अनुपकार होगा।

भवदीय
अमरनाथ झा

८-११-३९

(२)

नवम्बर की सरस्वती में "हिन्दुस्तानी की ओट में उर्दू" के "प्रचार" पर मेरा एक लेख है जिसमें प्रमादवश श्री नरेन्द्रदेव जी के बजाय मैंने श्री अमरनाथ झा का उल्लेख किया है। श्री झा महोदय बिहार की हिन्दुस्तानी कमिटी के सदस्य नहीं हैं। अतएव जो कुछ मैंने उस लेख में श्री झा महोदय के सम्बन्ध में लिखा है उसे पाठक श्री नरेन्द्रदेव जी के विषय में समझें। श्री अमरनाथ जी से मैं क्षमा का प्रार्थी हूँ। प्रसंगवश मैं अपने उस हर्ष का उल्लेख भी यहाँ कर देना चाहता हूँ जो मुझे उनके प्रतिवाद को पढ़ कर हुआ। इतने बड़े समर्थ विद्वान् के सहयोग का स्वागत मैं बड़ी विनम्रता और सम्मान के सहित करना चाहता हूँ क्योंकि उनका प्रगाढ़ पांडित्य, उनका महत्त्वपूर्ण-पद, उनकी शक्तिशालीनी लेखनी और उनकी ओजस्विनी वाग्मिता—यह सब ऐसे दुर्लभ साधन हैं जो दुस्तर कार्य को भी सरलता से सुगम बना सकते हैं। और कौन ऐसा हिन्दी-हितैषी है जो हिन्दी की वर्तमान विषमावस्था को देखकर हिन्दी की रक्षा को आसान समझता हो?

(१४-११-१९३९) वेंकटेशनारायण तिवारी

(३)

श्रीयुत सरस्वती-सम्पादक महोदय,

मेरे बार्हस्पत्य जी पर आक्टोबर की सरस्वती में छपे नोट पर उनके सुपुत्र श्रीमान् बाबू प्रतापचन्द्र जी, एम० ए०, एल-एल० बी० ने अपने ७ आक्टोबर के पत्र में निम्नलिखित संशोधन भेजे हैं, आप कृपा करके उन्हें 'सरस्वती' के किसी अगले अङ्क में यथासम्भव शीघ्र प्रकाशित कर दीजिए।

(१) बार्हस्पत्य जी सुपरिटेंडिंग इंजीनियर के पद से रिटायर हुए थे।

(२) बार्हस्पत्य जी ३० वर्ष की अवस्था में ही संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे, १९०७ में उनका लगध मुनि प्रणीत ज्योतिषशास्त्र पर पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हो गया था, जिसकी डाक्टर थीबो ने बहुत प्रशंसा की थी। १९०६ से उनके लेख हिन्दुस्तान रिव्यू में निकलने लगे थे।

(३) ७ जून १९३८ तक वे पूर्ण स्वस्थ थे। ३१ आक्टोबर १९३८ तक उनके मस्तिष्क पर बीमारी का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा था। जून ३८ तक तो वे पूर्ण स्वस्थ थे और अपने स्वास्थ्य का बहुत ही ध्यान रखते थे। ३१ आक्टोबर को उन्हें जो दौरा पड़ा उससे उनके दिमाग़ की हालत ख़राब हो गई थी, उसमें भी वे समझाने-बताने से बात को समझ लेते थे। उन्होंने गणित-शस्त्र पर अँगरेज़ी में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण निबन्ध लिखा था। उसे उनके सुपुत्र शीघ्र प्रकाशित करने का विचार प्रकट करते हैं।

—ज्वालादत्त शर्मा

१८-१०-३९

(४)

पंडित किशोरीदास बाजपेयी लिखते हैं—

द्विवेदी जी के पत्र नं० १७ में यह छपा है:—"जिसने लघुकौमुदी के भी दर्शन नहीं किये उसे आप वाक्यों का तारतम्य समझाते हैं।" यहाँ "वाक्यों" के स्थान पर "वाच्यों" चाहिए। हिन्दी-व्याकरण के 'वाच्यों' के सम्बन्ध में एक छोटा-सा विवाद चल पड़ा था, उसी के सम्बन्ध में यह पत्र है।

सामयिक साहित्य

योरपीय युद्ध में भारत को सहयोग देना चाहिए या नहीं, इस प्रश्न पर निर्णय देने के लिए कांग्रेस की कार्यसमिति ने १४ सितम्बर को अपना युद्ध-सम्बन्धी पहला वक्तव्य निकाला था। इस वक्तव्य में मुख्य बातें ये थीं—

योरोप में जो विषम स्थिति उत्पन्न हो गई है उस पर कार्यसमिति ने सावधानता से विचार किया। लड़ाई छिड़ने से भारत को किस सिद्धान्त के अनुसार चलना चाहिए इसका निर्धारण कांग्रेस बहुधा कर चुकी है। और अभी हाल में ही ब्रिटिश सरकार-द्वारा भारत में अधिकार और भी परिमित एवं संकुचित होगया। इसलिए कार्यसमिति का कर्त्तव्य हो जाता है कि इन विषयों पर अति गम्भीरता से विचार करे।

फ़ासिस्टवाद और नात्सीवाद के सिद्धान्तों और कार्यों से कांग्रेस तनिक भी सहमत नहीं, इसकी घोषणा वह बार बार कर चुकी है। फ़ासिस्टवाद और नात्सीवाद दोनों में कांग्रेस को उसी साम्राज्यवाद के सिद्धान्त दीख पड़ते हैं जिसके विरुद्ध इतने दिनों से भारत लड़ता आ रहा है।

अतएव नात्सी जर्मनी ने पोलैंड पर जो आक्रमण किया उसकी निस्संकोच निन्दा कार्यसमिति करती है और जो लोग उस हमले का मुक़ाबिला कर रहे हैं उनके प्रति सहानुभूति प्रकट करती है।

स्वतन्त्रता और लोकतंत्र के प्रति भारत की पूरी सहानुभूति है। परन्तु जब भारत को ही स्वतन्त्रता नहीं मिलती है और जो कुछ उसे अधिकार मिला था वह भी छीन लिया गया, तब वह उस पक्ष की ओर से युद्ध नहीं कर सकता जो सिर्फ़ नाम को लोकतन्त्र की दोहाई देता हो।

कार्यसमिति जानती है कि ब्रिटेन और फ़्रांस की सरकारों ने यही घोषित किया है कि हम लोकतन्त्र एवं स्वतन्त्रता की रक्षा और अत्याचार का अन्त करने को ही लड़ रहे हैं, परन्तु १९१४-१८ वाले महासमर में प्रतिज्ञा और आचरण में बड़ा अन्तर देख पड़ा।

यदि इस युद्ध का यह उद्देश्य हो कि साम्राज्यवादियों का प्रभुत्व ज्यों का त्यों बना रहे, तो भारत को ऐसे युद्ध से कोई मतलब नहीं। हाँ, यदि इस युद्ध का यह उद्देश्य हो कि लोकतन्त्र के आधार पर दुनिया में सुव्यवस्था स्थापित हो तो भारत को भी उसमें गहरी दिलचस्पी हो सकती है।

यदि ब्रिटेन लोकतन्त्र की रक्षा और विस्तार के लिए लड़ता है तो यह आवश्यक है कि वह अपने अधीन देशों में साम्राज्यवाद का अन्त कर दे और भारत में पूर्ण लोकतन्त्र की स्थापना करे। फिर स्वतन्त्र और लोकतान्त्रिक भारत सहर्ष अन्य स्वतन्त्र देशों से मिलकर अत्याचार का निवारण भी करेगा और अर्थ-नैतिक सहयोग भी।

* * *

सरकार की ओर से उक्त वक्तव्य का जवाब न मिल सकने पर कांग्रेस की कार्यसमिति से ९ आक्टोबर को वर्धा में एक बैठक की। उसमें उसने निम्न शब्दों में अपने वक्तव्य को फिर दोहराया—

यह कमिटी १४ सितम्बर १९३९ को कांग्रेस-कार्यसमिति-द्वारा युद्ध के सम्बन्ध में जारी किये गये वक्तव्य को स्वीकार करती है और उसमें ब्रिटिश सरकार को अपने युद्ध और शान्ति उद्देश्यों को स्पष्ट करने का जो निमन्त्रण दिया गया है, उसे फिर दोहराती है। फ़ासिस्टवाद और नात्सी हमले की निन्दा करते हुए कमेटी का यह विश्वास है कि शान्ति और स्वतन्त्रता तभी क़ायम और उनकी रक्षा की जा सकती है जब कि साम्राज्यान्तर्गत तमाम देशों को स्वाधीनता दे दी जाय और वहाँ साम्राज्यवादी नियन्त्रण हटाते हुए आत्म-निर्णय के सिद्धान्त पर अमल किया जाय।

* * *

खासतौर से भारत को अवश्य स्वाधीन राष्ट्र घोषित कर दिया जाय और इस पर अभी जहाँ तक हो सके अधिक-से-अधिक विस्तृत रूप में अमल शुरू कर दिया जाय।

कांग्रेस-महासमिति को यह विश्वास है कि ब्रिटिश सरकार अपने युद्ध और शान्ति के उद्देश्यों के बारे में जो भी कोई वक्तव्य देगी, उसमें यह घोषणा कर देगी।

कांग्रेस-महासमिति नये सिरे से यह घोषणा कर देना चाहती है कि भारतीय स्वतन्त्रता का आधार प्रजातन्त्र और एकता तथा सभी अल्पसंख्यकों के अधिकारों का संरक्षण होना चाहिए, जिसके लिए कि कांग्रेस ने सदा अपने को वचनबद्ध किया है।

* * *

कांग्रेस के उक्त वक्तव्यों के उत्तर में वायसराय महोदय ने युद्ध और भारत के भविष्य के सम्बन्ध में ब्रिटेन की नीति की घोषणा करते हुए जो वक्तव्य दिया उसका मुख्य अंश इस प्रकार है—

मैं पहले पहली बात के सम्बन्ध में कहना चाहता हूँ। सम्राट् की सरकार ने अब तक लड़ाई लड़ने का उद्देश्य तफसील से निश्चित रूप में व्यक्त नहीं किया है। इस तरह की परिभाषा लड़ाई के मध्य में हो सकती है और वह किसी एक ओर से न होगी बल्कि मित्रराष्ट्रों की ओर से होगी। लड़ाई समाप्त होने से पहले हमारे सामने विद्यमान परिस्थितियों में बहुत परिवर्तन हो सकते हैं और यह उन परिस्थितियों पर निर्भर है, जिनमें युद्ध समाप्त होगा और इस अर्से में लड़ाई चलेगी।

ब्रिटिश सरकार का इरादा यह है और जैसा कि गवर्नर-जनरल के नाम जारी किये गये हिदायत से भी स्पष्ट है कि ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत रहते हुए भारतवर्ष युनाइटेड-किंगडम का हिस्सेदार बन जाय; ताकि उसका भी बड़े बड़े उपनिवेशों में स्थान हो जाय। लेकिन अब मैं एक बार फिर यह साफ़ कह देना चाहता हूँ कि लड़ाई के बाद ब्रिटिश सरकार भारतीय विधान में निहित योजना में भारतीय लोकमत की दृष्टि से तरमीम करने को तैयार हो जायगी। लेकिन इसके साथ मैं इतना और कह दूँ कि पिछले दिनों विभिन्न नेताओं के साथ बातचीत करते हुए अल्पसंख्यक जातियों के नेताओं ने मुझसे साफ़-साफ़ आश्वासन माँगा था कि भविष्य में तरमीम करते हुए उनके विचारों का पूरा पूरा खयाल रखा जायगा, लेकिन मैं अब केवल इतना ही कहूँगा कि इस चीज़ का ब्रिटिश सरकार गोलमेज परिषद आदि के समय हमेशा खयाल रखती रही है। भविष्य में भी वैसा न किया जायगा यह तो किसी को खयाल भी न करना चाहिए।

आज से एक महीना पहले मैंने केन्द्रीय असेम्बली में भाषण करते हुए एकता स्थापित करने के लिए अपील की थी। आज मैं उस अपील को फिर दोहराता हूँ। यह ठीक है कि मैंने कुछेक बातों के सम्बन्ध में यह आश्वासन नहीं दिया, जिनका राजनैतिक क्षेत्र स्वागत करते, लेकिन फिर भी मैं यह महसूस करता हूँ कि अभी यह मौक़ा नहीं कि एक खास शब्द-रचना की चट्टान पर भारत की एकता को छिन्न-भिन्न किया जाय। अतएव हमारी कोशिश यह रहनी चाहिए कि छोटे बड़े मतभेद रहते हुए भी भारत की एकता क़ायम रहे। हमारे सामने अनेक महान् आदर्श उपस्थित हैं। हमारी सभ्यता खतरे में है। ब्रिटिश कामनवेल्थ के दूसरे राष्ट्रों की तरह भारत भी उससे अछूता नहीं। हमारे महान् आदर्श भारत के लिए भी बहुमूल्य हैं। इस नाज़ुक घड़ी में केवल यही अपील होनी चाहिए कि हम युद्ध में सहयोग दें।

* * *

वायसराय की उक्त घोषणा का स्पष्टीकरण भारत-मन्त्री लार्ड ज़ेटलैंड ने अपने २३ आक्टोबर के वक्तव्य में किया, जिसका मुख्य अंश यह है—

युद्ध के दौरान में, जब कि हम मृत्यु व जीवन की लड़ाई में संलग्न हैं, भारतीय प्रजा के लिए कोई प्रयत्न करना अव्यावहारिक होगा और इससे भारत को कोई लाभ नहीं पहुँचेगा एवं वहाँ भारी विवाद खड़ा हो जायगा। हमें जिस काम के लिए कोशिश करनी है वह उन साम्प्रदायिक विरोधों को हटाना है, जिनसे कि अभी तक भारत की राजनैतिक एकता में रुकावट पैदा हो रही है। आप इन्हें केवल इनके प्रति आँखें बन्द करके दूर नहीं कर सकते। आपको इनका मुक़ाबिला करना होगा और उन शक्तियों को दूर करना होगा, जिनकी वजह से ये क़ायम हैं। अन्त में मैं भारतीयों से फिर अपील करता

हैं कि वे वर्तमान संकट में हमारे मित्र बनकर संगठित रूप से शत्रु का मुक़ाबिला करें।

* * *

वायसराय तथा भारतमंत्री के वक्तव्यों का निष्कर्ष यही था कि युद्ध-काल में तो कांग्रेस या भारत की किसी राजनैतिक संस्था की माँगों पर विचार नहीं किया जा सकता; हाँ, युद्ध समाप्त हो जाने के बाद एक गोलमेज़ परिषद्-द्वारा इसका निर्णय किया जायगा कि भारत को डोमेनियन स्टेट्स के अधिकार कब और किस रूप में दिये जायँ। इन घोषणाओं को असन्तोषजनक बतलाते हुए कांग्रेस-कार्य-समिति ने २२ आक्टोबर को यह प्रस्ताव पास किया—

कार्यसमिति की राय है कि उसने युद्ध के उद्देश्य के सम्बन्ध में और ख़ास करके उसके भारत में प्रयोग करने के सम्बन्ध में ब्रिटेन से स्पष्ट घोषणा करने का जो अनुरोध किया था उसके जवाब में वायसराय का दिया हुआ वक्तव्य बिलकुल असन्तोषजनक है और वह समझती है कि वह वक्तव्य उन सब लोगों में नाराज़ी पैदा करनेवाला है जो हिन्दुस्तान की स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए उत्सुक और दृढ़प्रतिज्ञ हैं। वायसराय के वक्तव्य में पुरानी साम्राज्यवादी नीति दोहराई गई है। वक्तव्य में अनेक दलों के मतभेदों का ज़िक्र सिर्फ़ इस मतलब से किया गया है कि समिति ने हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में ब्रिटेन की नेकनीयती की परीक्षा के लिए युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्य की जिस घोषणा के लिए कहा था उसमें ग्रेट ब्रिटेन का इरादा चतुराई के साथ छिपाया जाय। विरोधी दलों और गरोहों के रुख के रहते हुए भी कांग्रेस सदा से अल्पसंख्यकों के अधिकारों के लिए काफ़ी से काफ़ी गारंटी की समर्थक है। कांग्रेस का दावा सिर्फ़ कांग्रेस या किसी ख़ास गरोह या सम्प्रदाय के लिए नहीं बल्कि राष्ट्र के लिए और हिन्दुस्तान के उन सभी सम्प्रदायों के लिए है, जो उस राष्ट्र को बनाने में लगें। इस स्वाधीनता की स्थापना और समष्टि रूप से राष्ट्र की इच्छा के निरूपण का एकमात्र उपाय लोकतंत्रात्मक प्रणाली है जो सबको पूरा अवसर देती है। इसलिए समिति वायसराय के वक्तव्य को हर तरह से शोचनीय समझती है। इस परिस्थिति में समिति के लिए यह सम्भव नहीं है कि वह ग्रेट ब्रिटेन का किसी प्रकार समर्थन करे क्योंकि उस समर्थन का मतलब होगा साम्राज्यवादी नीति को स्वीकार करना, जिसका कि कांग्रेस हमेशा से ख़ात्मा करना चाहती है।

इस सम्बन्ध में पहले क़दम के तौर पर समिति कांग्रेसी मन्त्रि-मंडलों से कहती है कि वे इस्तीफ़ा दे दें।

* * * *

श्री जिन्ना की बहक

परन्तु मुस्लिम लीग ने कांग्रेस की इस माँग और निर्णय का घोर विरोध किया। इस सम्बन्ध में मि० जिन्ना ने अपना वक्तव्य मैन्चेस्टर गार्जियन में इस प्रकार छपवाया —

मुसलमानों ने भारत के अन्दर प्रजातन्त्र विधान की स्थापना को हमेशा से ख़तरनाक समझा है। नवीन प्रान्तीय स्वायत्त शासन के प्रारम्भ होने तथा कांग्रेस हाई कमाण्ड की कार्यवाहियों से यह भली भाँति ज्ञात हो गया है कि कांग्रेस का उद्देश्य अन्य प्रत्येक संस्था को नष्ट करना तथा फ़ैसिस्ट संस्थाओं जैसा संगठन करना है।

इस विधान ने यह भली भाँति स्पष्ट कर दिया है कि इस देश में एक प्रजातान्त्रिक सरकार की स्थापना असम्भव है।

भारत में प्रजातंत्र के अर्थ हिन्दू-राज की स्थापना के हैं। इस सत्ता को मुसलमान कभी स्वीकार नहीं कर सकते? अतएव मुस्लिम लीग इस नतीजे पर पहुँची है कि भारत के भावी विधान के सम्बन्ध में नये सिरे से विचार होना चाहिए और बिना मुस्लिम लीग की सलाह तथा सहमति के ब्रिटिश सरकार-द्वारा कोई घोषणा नहीं की जानी चाहिए।

कांग्रेस का यह ज़ोर देना कि वह और केवल वह ही भारत का प्रतिनिधित्व करती है, न केवल निराधार है वरन् भारत की उन्नति के लिए घातक भी है। वह सारे भारत का प्रतिनिधित्व तो क्या करेगी सम्पूर्णतया हिन्दुओं का प्रतिनिधित्व भी नहीं करती। उत्तरी भारत में कराँची से कलकत्ता तक मुसलमान बहुमत में हैं। यदि कांग्रेस होश में नहीं आयेगी और वास्तविकताओं का मुक़ाबिला नहीं करेगी तो भारत की उन्नति के मार्ग में बाधक बनी रहेगी। और जब तक कांग्रेस अपनी फ़ैसिस्ट मनोवृत्ति

का परित्याग नहीं करती, भारत में शान्ति स्थापित नहीं होगी।

* * *

मुस्लिम लीग की इस मनोवृत्ति को आधार मानते हुए ३ नवम्बर को लार्ड सेलिसबरी ने निम्न वक्तव्य दिया; जिसमें उन्होंने बतलाया कि ब्रिटिश सरकार अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिए वचनबद्ध है; अतः जब तक ये लोग सन्तुष्ट न हो जायँ स्वराज्य की कोई योजना कार्यरूप में परिणत नहीं की जा सकती :—

हमारे दिलों में जो सबसे अधिक बात खटकी है वह यह है कि भारतीय नेताओं ने स्व-शासन के प्रति क़दम बढ़ाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति से लाभ उठाना ठीक समझा है।

यह हमारे लिए आश्चर्य की बात नहीं है। दोनों हाउसों की सिलेक्ट कमेटी में हमने बार बार पहले से ही इस बात को कहा था कि सरकारों के इस्तीफ़े की धमकी का और अधिक राजनैतिक स्वराज्य प्राप्त करने के लिए प्रयोग किया जायगा। मुझे भारतीय लोगों से किसी तरह का द्वेष नहीं है। मैं भी भारत में परिवर्तन होते हुए देखना चाहता हूँ, मगर वह बहुत सोच-विचार और एहतियात के साथ होने चाहिए। निस्सन्देह, ब्रिटिश सरकार कई बार औपनिवेशिक स्वराज्य देने की अपनी इच्छा की घोषणा कर चुकी है और इस प्रकार की घोषणा होना ही काफ़ी वज़न रखती है।

स्थिति कुछ भी क्यों न हो, ज़रूरी समस्यायें वैसी ही बनी हुई हैं। आदिकाल से चली आ रही जातियों के बारे में आप क्या करेंगे? दलित जातियों के लिए क्या होगा? अल्पसंख्यकों के सम्बन्ध में आप क्या करेंगे? आप "औपनिवेशिक स्वराज्य", "औपनिवेशिक स्वराज्य" चिल्ला सकते हैं जब तक कि आपका गला न बैठ जाय, मगर ये कठिनाइयाँ बनी ही रहेंगी। इससे मेरा यह मतलब नहीं है कि कुछ अर्से में तथा वक़्त आने पर उनके लिए कोई हल तलाश नहीं किया जा सकता।

मुसलमानों की ओर अधिक ध्यान दिया जाय। हम उनकी रक्षा के लिए वचन-बद्ध हैं। वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को देखते हुए मुस्लिम जाति के हितों की उपेक्षा करना ब्रिटिश सरकार का एक तरह का पागलपन होगा। शायद अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष का तमाम प्रश्न संसार की मुस्लिम जाति के निश्चय पर ही निर्भर करता है।

यह देश विविध जातियों और अल्प-संख्यकों के साथ किये गये अपने वायदों को पूरा करेगा और देशी राजाओं के साथ हुई सन्धियाँ भी किसी हालत में भंग नहीं की जा सकतीं।

* * *

भारत-मन्त्री का लार्ड-सभा में वक्तव्य

लार्ड-सभा में ७ नवंबर को भारतीय परिस्थिति के विषय में भारत-मंत्री लार्ड ज़ेटलेण्ड ने निम्न वक्तव्य दिया :—

कांग्रेस की यह माँग है कि अँगरेज़ सरकार पहले भारत को एक स्वतंत्र देश घोषित करे, और भारतवासी भविष्य में अपने लिए जो विधान बनायें उसमें अँगरेज़ सरकार कोई हस्तक्षेप न करे, और वह विधान एक विधान-सम्मेलन के द्वारा बनाया जाय। कांग्रेस की दृष्टि में भारत की साम्प्रदायिक और धार्मिक समस्याओं का कुछ महत्त्व नहीं है, और कांग्रेस का सदा यही रुख रहा है कि भारतीयों द्वारा बनाये विधान से अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के लिए ऐसे संरक्षण दिये जायँगे जो उन्हें स्वीकार होंगे।

सम्राट् की सरकार के लिए यह स्थिति स्वीकार करना असम्भव है। ब्रिटेन का सम्बन्ध भारत से इतने दीर्घ काल तक रहा है कि वह वहाँ के विधान बनाने के सम्बन्ध में उपेक्षा का भाव नहीं रख सकती। गवर्नर-जनरल ने हाल में भारत के सभी राजनैतिक दलों से परामर्श करके यह जाना है कि जिस तरह की घोषणा ब्रिटेन से चाही जा रही है उसे अधिकांश भारतीय जनता स्वीकार न कर सकेगी।

* * *

इन घोषणाओं तथा वक्तव्यों का महात्मा गांधी ने ८ नवम्बर को वर्धा से निम्न उत्तर दिया :—

अब तक भारत में या ग्रेट ब्रिटेन में जो घोषणायें की गई हैं वे सब उसी पुराने ढंग की हैं और स्वाधीनता-प्रेमी भारत उन्हें सन्देह की दृष्टि से देखता और उन पर अविश्वास करता है। यदि साम्राज्यवाद मर चुका हो तो प्राचीन

परम्परा स्पष्ट रूप से टूटनी चाहिए, नवयुग के अनुकूल भाषा का व्यवहार होना चाहिए। इस मूल सत्य को स्वीकार करने का समय यदि अभी न आया हो, तो मैं अनुरोध करूँगा कि समस्या हल करने के लिए और प्रयत्न करना स्थगित कर दिया जाय।

इस सम्बन्ध में मैं ब्रिटिश राजनीतिज्ञों को स्मरण दिलाना चाहता हूँ कि ब्रिटेन, भारत की इच्छाओं का कोई विचार न करते हुए भारतीय नीति-सम्बन्धी अपने इरादे की घोषणा करे। गुलामों का जो मालिक गुलामी उठा देने का निश्चय कर चुका हो, वह अपने गुलामों से इस सम्बन्ध में परामर्श नहीं करता कि वे स्वतंत्रता चाहते हैं या नहीं।

भारत को गुलामी से, धीरे धीरे नहीं, तुरन्त मुक्त कर देने की घोषणा एक बार कर दी जाय फिर तो परिवर्तन काल की समस्या हल करना आसान हो जायगा और अल्प-संख्यकों के हितों का संरक्षण सरलता से हो जायगा; चढ़ा-ऊपरी बन्द हो जायगी। अल्प-संख्यक संरक्षण के अधिकारी हैं, पर यह धीरे-धीरे थोड़ा-थोड़ा करके नहीं एक ही बार में और पूरा पूरा होना चाहिए। स्वतंत्रता की ऐसी कोई सनद तो ध्यान देने योग्य भी न होगी जिससे अल्पसंख्यकों को भी उतनी ही स्वतंत्रता न मिलती हो जितनी बहुसंख्यकों को।

विधान तैयार करने में अल्पसंख्यक पूरी तरह भाग लेंगे, यह किस प्रकार हो सकता है? यह तो उन प्रतिनिधियों के विवेक पर निर्भर रहेगा जिन पर विधान तैयार करने का पवित्र कर्तव्य हो। ब्रिटेन ने अब तक तथोक्त बहुसंख्यकों के विरुद्ध अल्पसंख्यकों को खड़ा करके अपने हाथ में अधिकार रक्खा है—किसी भी साम्राज्यवादी व्यवस्था में यह अनिवार्य है—और इस प्रकार इन दोनों में समझौता होना लगभग असम्भव कर दिया गया है। अल्पसंख्यकों के संरक्षण का उपाय ढूँढ़ने का भार इन दोनों पक्षों पर ही छोड़ दिया जाना चाहिए। जब तक ब्रिटेन इस भार को वहन करना अपना कर्तव्य मानेगा तब तक उसे भारत को अधीन राज्य बनाये रखने की आवश्यकता भी प्रतीत होती रहेगी और भारत के उद्धार के लिए उतावले देशभक्त, यदि उनका पथ-प्रदर्शन मैं कर सका तो, अहिंसामय रीति से, और यदि मैं असफल हुआ और इस प्रयत्न में मर मिटा तो हिंसामय प्रकार से, ब्रिटेन से लड़ते रहेंगे।

* * * *

यह तो हुआ भारत के भविष्य के विषय में भारतीय तथा ब्रिटिश राजनीतिज्ञों का रुख़, परन्तु इस मसले पर संसार के सर्वप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ डाक्टर कीथ का यह मत है :

स्वाधीनता मान लेने की माँग यह बताकर मंजूर कर लेनी चाहिए कि औपनिवेशिक पद में हिन्दुस्तान का यह अधिकार भी शामिल है कि वह उचित समय पर बाध्यता के प्रश्न का निर्णय कर ले, यह साफ़ बात है कि इस घड़ी वह वैसा नहीं कर सकता। सन् १९३५ के विधान के अनुसार परामर्श बिलकुल नाकाफ़ी है। उस विधान में यह मौलिक त्रुटि है कि वह ब्रिटिश सरकार के साथ रियासतों के शासकों को मिलाकर ऐसा सामन्तशाही शासन बनाये रखना चाहता है जिसमें कि कट्टरपन्थी व्यवस्थापकमंडल और ऐसा शासनमण्डल बने जिसको पर-राष्ट्र विषय और स्वदेश-रक्षा जैसे अत्यावश्यक मामलों में कुछ भी असली अधिकार नहीं। ब्रिटिश भारत को, जहाँ प्रान्तीय उत्तरदायी शासन चल रहा है, यह आश्वासन पाने का अधिकार है कि लड़ाई खतम हो जाने पर ऐसा विधान बनाया जायगा जो सच्चा उत्तरदायी शासन देगा। रियासतों को उन शर्तों के अनुसार शामिल होने की इजाजत दी जाय जिनको नई सरकार तय करे और भारतीय पार्लमेण्ट मंजूर करे। उस पार्लमेण्ट में निस्सन्देह राज्यों के भी प्रतिनिधि होंगे जो न सिर्फ़ राजाओं के, बल्कि रियासती जनता के भी प्रतिनिधि होंगे। उस विधान से कनाडा में प्रचलित पद्धति के ढंग पर अदालतों-द्वारा अल्पसंख्यकों के अधिकार की रक्षा की पूरी व्यवस्था होनी चाहिए।

तात्कालिक व्यवस्था के रूप में वायसराय की शासन-परिषद् में व्यवस्थापक सभाओं के बड़े दलों के प्रतिनिधि भी शामिल किये जा सकते हैं ताकि हिन्दुस्तान को उस अत्यन्त आवश्यक उद्देश्य की पूर्ति में तुरंत उनकी सलाहवाली सहायता मिले—जिस पर कि उसकी स्वाधीनता निर्भर करती है—यानी जर्मनी का आक्रमण व्यर्थ करना।

पंडित ज्वालादत्त शर्मा के नाम

(१)

जुही, कानपुर
१६-५-०८

प्रणाम,

महानुभूति-सूचक पत्र मिला। इस कृपा के लिए अनेक धन्यवाद। प्रकृति हमारी सुधर चली है। नींद थोड़ी थोड़ी आने लगी है। जल-चिकित्सा कर रहे हैं। उसी से यह लाभ हुआ है। इस चिकित्सा के कारण अभी बाहर नहीं जा सकते। यदि उस तरफ़ आना हुआ तो अवश्य आपके दर्शन करेंगे। कृपा पूर्ववत् बनाये रखिए।

विनीत
म० प्र०

(२)

ज्वालापुर,
२९-४-०९

प्रणाम,

कृपाकार्ड मिला। हम बीमार हैं। इससे यहाँ जल-वायु-परिवर्तन के लिए आये हैं। यहाँ से देहरादून और फिर मंसूरी जाना है। अभी कोई महीने डेढ़-महीने यहाँ रहने का विचार है। साथ में घर के लोग भी हैं। इस दशा में मुरादाबाद आने में कितनी असुविधा होगी, इसका विचार आप ही कर लीजिए। तथापि हम आपको इस आमंत्रण के लिए बहुत बहुत धन्यवाद देते हैं।

विनीत
महावीरप्रसाद

(३)

जुही, कानपुर
२१-५-०९

प्रणाम,

कृपा-कार्ड मिला। जब से आये, बीमार हैं। ज्वर आता था। कल से छूटा है। कमज़ोरी बेहद है। और क्या लिखें। कृपा पूर्ववत् रखिए।

विनीत
म० प्र० द्विवेदी

(४)

जुही, कानपुर
२५-१२-११

महोदयवर,

आपके उत्साहदायक वचनों का मैं हृदय से अभिनन्दन करता हूँ। धन्यवाद।

उस लेख में कुछ युक्ति थी—निरा युक्ति-रहित न था—इससे प्रकाशित कर दिया। आप जो कुछ लिखना चाहें उसके खण्डन में लिख सकते हैं। मैं उसे भी प्रकाशित करने को प्रस्तुत हूँ। कुछ आपको अगली संख्या में मिलेगा भी।

विनयावनत
महावीरप्रसाद द्विवेदी

(५)

७-३-१२

निवेदन,

जिस जीवनी पर से वह नोट मैंने लिखा वह इस समय मेरे पास नहीं। खेद है। इससे आज्ञापालन नहीं कर सकता।

म० प्र० द्विवेदी

(६)

जुही, कानपुर
१३-११-१२

महाशय,

आप सोऽहं स्वामी का संक्षिप्त चरित, सरस्वती के तीन-चार कालम के बराबर, चित्र-सहित भेज दीजिए। मैं देखकर आपसे निवेदन करूँगा कि वह सरस्वती में निकल सकेगा या नहीं।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

(७)

दौलतपुर-भोजपुर-रायबरेली
३०-११-१२

प्रणाम,

इस चित्र से काम न चलेगा। कृपा करके स्वामी जी का फ़ोटो भेजिएगा।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

(८)

जुही, कानपुर
९-३-१३

श्रीमन्,

कृपा-पत्र मिला। स्वामी जी का चित्र भी प्राप्त हुआ। चरित आने पर उसके विषय में निवेदन करूँगा। सोऽहंतत्त्व की समालोचना मार्च की सरस्वती में छपने भेजा था। पर स्थान की कमी के कारण नहीं छप सकी। खेद है, शीघ्र ही छापूँगा।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

(९)

जुही, कानपुर
५-४-१३

प्रणाम,

सोऽहं स्वामी पर लेख मिला। कृतज्ञ हुआ। धन्यवाद। छापूँगा।

विनीत
महावीरप्रसाद द्विवेदी

(१०)

जुही, कानपुर
६-११-१३

श्रीमन्,

कृपा-कार्ड मिला। आइए। दर्शन दीजिए। कृपा होगी।

आप शायद जानते ही होंगे कि मैं शहर से ३-४ मील दूर देहात में क्या जंगल में रहता हूँ। पहले मैं यहाँ आराम से था। पर कई कारणों से अब तकलीफ़ में हूँ। यदि आप अपने हाथ से भोजन बना सकें और माफ़ कीजिए बर्तन-चौका भी कर सकें तो आप यहाँ चले आइए। अन्यथा नहीं। क्योंकि यहाँ अहाते भर में इस समय एक भी ऐसा आदमी नहीं जो चौका-वर्तन कर सकता हो। इसी से शिष्टता के विरुद्ध मैंने यह बात साफ़ साफ़ लिख दी कि ऐसा न हो जो आपको तकलीफ़ हो।

भवदीय
महावीरप्रसाद द्विवेदी

(११)

दौलतपुर-भोजपुर, रायबरेली
२-१-१४

प्रणाम,

पोस्ट-कार्ड मिला। मैं यहाँ, आप कानपुर आ रहे हैं। आप यदि पहले से पूछ लेते कि मैं कहाँ हूँ तो अच्छा होता। आपके पत्र और तार आदि यदि मुझे यहाँ मिलेंगे तो उन्हें मुरादाबाद ही में भेजूँगा, क्योंकि मुझे आपका कानपुर का पता मालूम नहीं। मैं छः-सात तारीख तक कानपुर लौट जाऊँगा। खेद है, आपसे भेंट न हुई।

भवदीय
महावीर प्र० द्विवेदी

(१२)

दौलतपुर-भोजपुर, रायबरेली
१५-५-१४

[illegible]नमः,

१२ ता० का आपका कार्ड मिला। पुस्तकों का पैकेट [illegible] मिला।

"Truth" की समालोचना करने की शक्ति मुझमें [illegible]। क्षमा कीजिए।

आपका लेख अवश्य छापूँगा। मूल के संस्कृत-[illegible]ों का मुक़ाबला लेख में उद्धृत प्रमाणों से करके [illegible] पुस्तक लौटा दूँगा।

आत्मतत्त्व-प्रकाश का अनुवाद प्रकाशित करने [illegible] है। ज़रूर छपाइए।

अभी कोई २ महीने यहाँ रहने का विचार है।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

वर्ग नं० ४० का नतीजा

प्रथम पुरस्कार २००) (शुद्ध पूर्ति पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित २५ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को १२) मिले।

(१) मार्कण्डेय शुक्ल, नया कटरा, प्रयाग। (२) रेखा श्रीवास्तव, दारागंज, प्रयाग। (३) श्रीमती एल० पी० सक्सेना, ६१९ सिविल लाइन्स, आगरा। (४) तिलकराज, जैन गुरुकुल, गुजराँवाला। (५) श्रीमती रामदेवी श्रीवास्तव, मथुरा कैन्ट। (६) छोटेलाल मिश्र, विसवाँ, सीतापुर। (७) श्यामसुन्दरलाल चौरसिया, वीरभूमि, महोवा। (८) वंशगोपाल भूजा, गंगाराम गली, १४५ कलकत्ता। (९) भोलाराम भूजा, गंगा रामगली, १४५, कलकत्ता। (१०) हरी किशोर, ८ लायन्स रेंज, कलकत्ता। (११) झरीराम, ८ लायन्स रेंज, कलकत्ता। (१२) गोविन्दराव भट्ट, c/o विनायकराव भट्ट, सब-पोस्टमास्टर, ललितपुर। (१३) लक्ष्मणप्रसाद, श्रीनगर, हमीरपुर। (१४) शिवदत्तप्रसाद वाजपेयी, अजगैन, उन्नाव। (१५) माधवलाल याज्ञिक, एस० आर० के० इंटर कालेज, फ़ीरोज़ाबाद, आगरा। (१६) गोविन्द-प्रसाद, पोस्ट आफ़िस, बनारस कैंट। (१७) बालगोविन्द मिस्त्री, २३१ फ़ेथफ़ुलगंज, कानपुर। (१८) रामकृष्ण, पुरवा, उन्नाव। (१९) शकुन्तलादेवी, c/o कृष्णदत्त भारद्वाज, माडर्न हाई स्कूल, नई दिल्ली। (२०) राम-निरंजन, बिसाऊ जयपुर। (२१) किशनसिंह टीचर, स्टेट स्कूल, रेनी (बीकानेर)। (२२) देवसहायलाल तृतीय, पो० सूर्यगढ़ा, मुंगेर। (२३) ओंकारनाथ, बेनीपुरा, बनारस। (२४) शंतसिंह चन्द्रावत, मिडिल स्कूल, पिट-लोदा, (Central India)। (२५) अमरनाथ, मधुपुर।

द्वितीय पुरस्कार ७२) (एक अशुद्धि पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ८ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को ९) मिले।

(१) बुद्धूराम, गंगाराम गली १४५, कलकत्ता। (२) मिस रमा श्रीवास्तव, कराची। (३) बेनीमाधव मिश्र, देहली। (४) नर्मदाप्रसाद, जोधपुर। (५) शम्भूनाथ, अमरकोट, राजपूताना। (६) रामलाल, बाग़ बाज़ार, कलकत्ता। (७) सीताराम, हेडमास्टर, उदयपुर। (८) सीतलासहाय, बालासोर, (उड़ीसा)।

तृतीय पुरस्कार १३०) (दो अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ५२ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को २॥) मिले।

(१) शिवलखनसिंह, बलिया। (२) मार्कण्डेय शुक्ल, इलाहाबाद। (३) अमरचन्द, जयपुर। (४) रामसजीवनलाल, अजगढ़। (५) उमाशंकर, अलीगढ़। (६) लखनलाल साह, पटना। (७) चन्द्रभान वाजपेयी, चाईबासा। (८) मिसेज़ मदनमोहन टंडन, मुरादाबाद। (९) प्रकाशवती, लखना, इटावा। (१०) शैलेन्द्रकुमार, लखना, इटावा। (११) डी० एल० जगाती, बागेश्वर, (अल्मोड़ा)। (१२) लक्ष्मीदत्त, फ़रीदपुर, (बरेली)। (१३) लीलावती, फ़रीदपुर, (बरेली)। (१४) हरि-नारायण अग्रवाल, लखनऊ। (१५) रामलखन शर्मा, गुलाब बाड़ी, फ़ैज़ाबाद। (१६) श्री मंदरदास जैन, अलीगंज, एटा। (१७) डा० अशरफ़ीलाल सक्सेना, फ़र्रुख़ाबाद। (१८) रघुनाथप्रसाद, ज्ञानपुर, (बनारस स्टेट)। (१९) रामकुमार मित्तल, हनुमानटीला, खुरजा। (२९) विनायकराव भट्ट, ललितपुर। (२१) भगवती देवी, ललितपुर। (२२) बच्चूलाल, ३३ कैलाश, कानपुर। (२३) मंगलसिंह, सयाना, बुलन्दशहर। (२४) प्रमिला, हिन्दी-सेवा-सदन, धौलपुर। (२५) अमीचन्द, चोपड़ा, लाहौर। (२६) रामभरोसे विश्नोई, ओरैया, (इटावा)। (२७) ओ० एच० राठौर, कोटा, (राजपूताना)। (२८) एम० ओ० राठौर, कोटा, (राजपूताना)। (२९) द्वारकाप्रसाद शर्मा, गुमला, (राँची)। (३०) रामशंकर, पुरवा, (उन्नाव)। (३१) महावीरप्रसाद, मिश्र, पुरवा, (उन्नाव)। (३२) कृष्णगोपाल माहेश्वरी, चौक बाज़ार, मथुरा। (३२) बरकतराम टीचर, पिलानी, जयपुर। (३४) कुसुमलता, रतननगर, बीकानेर। (३५)

पी० एम० झुंझनूवाला, विसाऊ, जयपुर। (३६) कैलासी देवी गुजराती, कुरावली, मैनपुरी। (३७) ब्रजगोपाल माहेश्वरी, चौक बाज़ार, मथुरा। (३८) श्री गोपाल माहेश्वरी, चौक बाज़ार, मथुरा। (३९) ज्ञानचन्द्र शास्त्री, लोअरमाल, लाहौर। (४०) प्यारेलाल, गांधीनगर, कानपुर। (४१) कन्हैयालाल शर्मा, बाँदा। (४२) राधादेवी वर्मा, लीडर प्रेस, इलाहाबाद। (४३) रामनारायण शर्मा, नई बस्ती, दिल्ली। (४) बैजनाथ गुप्त, महोबा, हमीरपुर। (४५) बी० आर० पाठक, सिविल सेक्रेटेरियट, लखनऊ। (४६) वृजकिशोर शर्मा, बलरई, इटावा। (४७) मु० शरीफ़ मास्टर, खैरागढ़ राज्य, (सी० पी०)। (४८) प्रयागनारायण सिनहा, इलाहाबाद। (४९) पुष्पा श्रीवास्तव, दारागंज, इलाहाबाद। (५०) पुरुषोत्तम हरिभाऊ मुकाती, धरमपुरी (धार स्टेट)। (५१) छोटेसिंह चौहान, बहादुरपुर, एटा। (५२) नारायण देवी, फ़ैज़ाबाद।

चतुर्थ पुरस्कार ॥) (तीन अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित १ व्यक्ति को दिया गया। जिसे ॥) का कूपन मिला।

(१) वेदपाल गुप्त, ३८५ कटरा, प्रयाग।

उपर्युक्त सब पुरस्कार दिसम्बर के अन्त तक भेज दिये जायँगे।

नोट—जाँच का फ़ार्म ठीक समय पर आने से यदि किसी को और भी पुरस्कार पाने का अधिकार सिद्ध हुआ तो उपर्युक्त पुरस्कारों में से जो उसकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा।

केवल वे ही लोग जाँच का फ़ार्म भेजें जिनका नाम यहाँ नहीं छपा है, पर जिनको यह सन्देह हो कि वे पुरस्कार पाने के अधिकारी हैं।

३००) शुद्धपूर्ति पर **व्यत्यस्त-रेखा-शब्द-पहेली** २००) न्यूनतम अशुद्धियों पर

अङ्क-परिचय नं० ४१

बायें से दाहिने

१—प्रान्तीय सरकारों का एक आवश्यक कार्य-क्रम।

३—विवाहित स्त्रियाँ इसे अपना सबसे बड़ा श्रृंगार समझती हैं।

५—इस रंग के घोड़ों को बहुत-से लोग पसन्द नहीं करते।

६—केवट ने इसी में रामचन्द्र जी के पैर धोये थे।

७—थोड़ी-सी गर्मी-सर्दी भी यह बरदाश्त नहीं कर सकता। ८—राजा।

९—दंभियों के लिए यदि यह नहीं तो कुछ नहीं।

१०—पति-पत्नी इसी में पहले साथ-साथ बैठते हैं।

११—छोटे बच्चों के किसी वस्तु के लिए मचल जाने पर उनको यह कठिन हो जाता है।

१३—यही प्रायः घर का सरदार हुआ करता है।

१४—इसमें मुंह पश्चिम की ओर रखना पड़ता है।

१५—देहाती इसे बहुत पसन्द करते हैं परन्तु शहरवाले इसे बहुत कम प्रयोग करते हैं।

१६—चोरों का प्रिय समय।

१८—यहाँ सदैव चहल-पहल दिखाई देती है।

१९—तीक्ष्ण गंधवाला एक पौधा।

ऊपर से नीचे

१—प्रायः समाचार-पत्र इसी पर आश्रित रहते हैं।

२—बादशाह।

३—प्रत्येक प्रतियोगी ऐसी ही पहेलियाँ पसन्द करता है। ४—दीनदयालु।

५—समाज में कितने ही ऐसे लोग हैं जो बहुत तंग किये जाने पर भी इसे नहीं छोड़ते।

१०—यह दो साल के पहले नहीं आ सकता।

१२—ऐसे लोग अधिकतर सम्मान नहीं पाते।

१३—इसकी उपयोगिता किसान ही जानता है।

१४—बच्चे यहाँ जाने के लिए जमीन-आसमान एक कर देते हैं।

१७—इसकी खेती के लिए पानी की अधिक आवश्यकता पड़ती है।
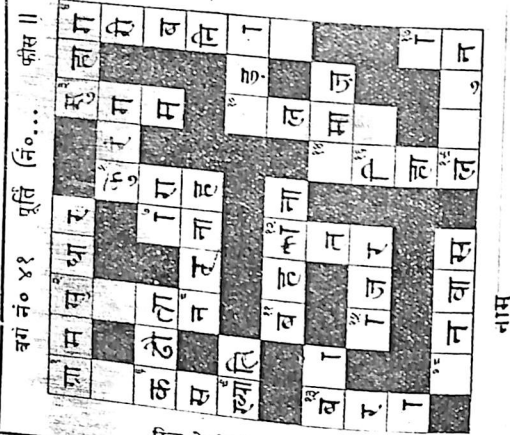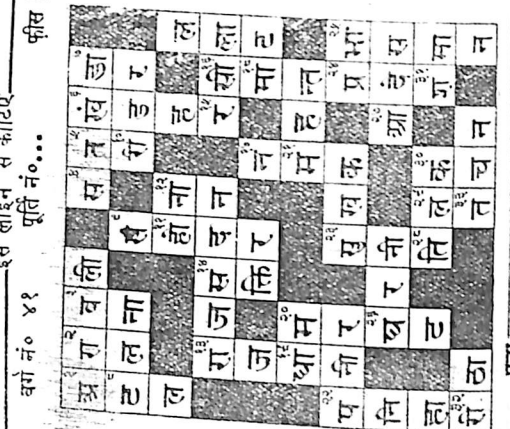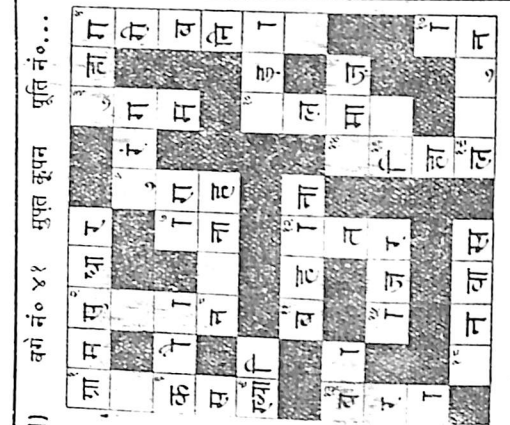
इस लाइन से काटिए

रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रारहित और पूर्ण हैं।

नाम

पता

आवश्यक सूचनायें व नियम

(१) वर्गप्रतियोगिता में शामिल होने के लिए एक कूपन की फ़ीस ।।) है। पर जो प्रतियोगी १) देंगे उन्हें ३ कूपन भरने का अधिकार होगा। पूर्तियाँ वे ही स्वीकृत की जायँगी जो सरस्वती के छपे फ़ार्म पर होंगी और जिनके साथ फ़ीस की मनीआर्डररसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र जो कि इंडियन प्रेस से ।।) और १) की क़ीमत के छपे मिलते हैं, नत्थी होंगे।

(२) स्थानीय पूर्तियाँ 'सरस्वती-प्रतियोगिता-बक्स' में जो कार्यालय के सामने रक्खा गया है, दिन में दस और पाँच के बीच में डाली जा सकती हैं।

(३) वर्ग नम्बर ४१ का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दिया गया है, ता० २९ दिसंबर सन् १९३९ को सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में शाम को चार और पाँच बजे के बीच सर्वसाधारण के सामने खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें स्वयं उपस्थित होकर उसे देख सकते हैं।

(४) जो वर्ग-पूर्ति २४ नवम्बर तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में शामिल नहीं की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २६ ता० को पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिए और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद को डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान्य होगा।

वर्ग नं० ४० (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं. ४० के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति नं०...में { कोई अशुद्धि नहीं है। / १,२,३ अशुद्धियाँ हैं।

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर ____________

पता ____________

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

नोट—जो पुरस्कार आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बँटेगा और फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि पूर्ति ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जो समझें कि उनका नाम ठीक जगह पर छपा है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं। यह फ़ार्म १५ दिसंबर के बाद नहीं लिया जायगा।

इसे काटकर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए।

मैनेजर वर्ग नं० ४१
इंडियन प्रेस, लि०,
इलाहाबाद

कूपन की नक़ल यहाँ कीजिए।

वर्ग नं० ४० की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर ४० की शुद्ध पूर्ति जो बंद लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जा रही है।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का २८ वाँ अधिवेशन

काशी में सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन इस वर्ष हिन्दी के प्रसिद्ध सम्पादक पण्डित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी के सभापतित्व में जिस धूम-धाम से हुआ है वह उसके इतिहास में एक महत्त्व की बात मानी जायगी। अट्ठाईस वर्ष पहले जिस पवित्र स्थान पर सम्मेलन का जन्म हुआ था और हिन्दी की समुन्नति करने के उसके ध्येय को जिस स्थान से उसके प्रथम सभापति महामना मालवीय जी के श्रीमुख से घोषणा की गई थी उसी गौरवपूर्ण स्थान से एक बार फिर उसने घोषणा की है कि हिन्दी के इस उन्नत काल में उसको हानि पहुँचाने की जो चेष्टा की जा रही है वह नहीं होने पायगी और हिन्दी की समुन्नति का कार्य पूर्ववत् दृढ़ता के साथ होता रहेगा। काशी के इस अधिवेशन का यही सन्देश है। 'हिन्दुस्तानी' को लेकर इधर कुछ समय से हिन्दी को हानि पहुँचाने का जो भयानक कार्य हो रहा है उसका सम्मेलन के इस अधिवेशन में बहुत ही ज़ोरदार विरोध किया गया, यहाँ तक कि सिवा इस एक काम के और कोई महत्त्व का काम ही नहीं किया गया। वास्तव में इसके आगे और कोई दूसरा कार्य भी करने को नहीं था। और इस सम्बन्ध में सभी प्रतिनिधियों ने जिस प्रकार एकमत होकर कार्य किया उसका तत्काल सुपरिणाम भी हुआ। स्वयं देशरत्न राजेन्द्र बाबू ने भी स्पष्ट शब्दों में यही घोषित किया कि हिन्दी के साथ अन्याय नहीं होने पायगा। इसी प्रकार लिपि के सम्बन्ध में श्रीमान् टण्डन जी ने भी खड़े होकर जनता को आश्वासन दिया। 'हिन्दुस्तानी' के प्रश्न पर पण्डित वेंकटेश नारायण तिवारी ने जो महत्त्वपूर्ण भाषण किया था वह इतना तथ्यपूर्ण सिद्ध हुआ कि हिन्दुस्तानी के पक्षपाती अवाक् हो गये। हमें विश्वास है कि सम्मेलन के इस अधिवेशन से हिन्दी की रक्षा हुई है, परन्तु इसके साथ ही हमें भविष्य के लिए सावधान और सचेत रहना चाहिए, क्योंकि केवल सम्मेलन के ज़ोरदार विरोध से ही उसकी रक्षा न हो जायगी। उसके लिए हमें बहुत कुछ आत्म-त्याग करना होगा, साथ ही हिन्दी-प्रेमियों का उपयुक्त संगठन करके उसके साहित्य का निर्माण करना होगा। इसकी ओर सम्मेलन के सभापति विद्वद्वर पण्डित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी ने अपने महत्त्वपूर्ण भाषण में एक योजना की रूप-रेखा तक निर्दिष्ट कर दी है। आशा है, अगले वर्ष उनके तत्त्वावधान में उसके अनुसार कार्य भी होगा।

कांग्रेस के आगे एक नई समस्या

सुभाष बाबू ने त्रिपुरी में जो सुझाव पेश किया था यदि उसके अनुसार कांग्रेस ने कार्य किया होता तो उसके उस समय के उस काम से संसार में उसकी इज्ज़त और भी बड़ी होती। परन्तु उस अवसर से लाभ नहीं उठाया गया, उल्टा सुभाष बाबू और उनके साथी कांग्रेस से ही निकाल बाहर किये गये। इधर अब लड़ाई की बात पर उसने भारत-सरकार से झगड़ा करके कांग्रेसी प्रान्तों के मंत्रि-मण्डलों से पदत्याग करवा दिया है। सुभाष बाबू ने इस अवसर पर भी कहा था कि मंत्रि-मंडलों को पद-त्याग नहीं करना चाहिए था। महात्मा गांधी ने प्रारम्भ में कांग्रेस के सूत्रधारों को सलाह दी थी कि युद्ध में कांग्रेस को सरकार का बिना किसी शर्त के साथ देना चाहिए। परन्तु उनकी बात नहीं मानी गई और देश के बड़े भारी भूभाग का मिला हुआ शासनाधिकार छोड़कर और इस प्रकार अपने को निर्बल बनाकर आज कांग्रेस सरकार से लड़ने के लिए अपने घर जा बैठी है। दिल्ली में पिछले दिनों वायसराय महोदय के दरबार में वायसराय महोदय, महात्मा गांधी, राजेन्द्र बाबू और जिन्ना साहब में जो बातचीत हुई उसका भी परिणाम अच्छा नहीं निकला, वरन कांग्रेस और लीग का भेदभाव और भी बढ़ गया है।

यह एक अवसर आया था, पर कांग्रेस के राजनीतिज्ञ

उससे फ़ायदा नहीं उठा सके, उल्टा देश को उन्होंने संकट में डाल दिया है——उस देश को, जिसे वे ख़ुद कहते थे कि वह लड़ाई के लिए तैयार नहीं है।

हम जानते हैं कि कांग्रेस में क्षमता है, उसमें शक्ति है, जिसका परिचय वह बार बार दे चुकी है। फिर देश का अधिकांश उसके प्रत्यक्ष प्रबन्ध में आ जाने से तो उसकी शक्ति में अपार वृद्धि हो गई थी। अतएव वह इस अवसर से तद्वत् लाभ भी उठा सकती थी। परन्तु उस ओर ध्यान नहीं दिया, और यह उसकी निर्बलता मानी जायगी।

कांग्रेस की माँग है कि ब्रिटिश सरकार इस बात की घोषणा कर दे कि भारत को 'डोमीनियन' का पद युद्ध के बाद दे दिया जायगा। परन्तु ब्रिटिश सरकार वचन-बद्ध होने को तैयार नहीं है। उसका कहना है कि पहले राजाओं को और मुसलमानों को राज़ी कर लो तब इस तरह की माँग करो। और राजा लोग तथा मुस्लिम लीग दोनों ही कांग्रेस से भड़के हुए हैं। फलतः कांग्रेस संयुक्त माँग, प्रयत्न करने पर भी, नहीं पेश कर सकी। ऐसी दशा में अब क्या होगा, यही जटिल प्रश्न है।

परिस्थिति का निराकरण

भारत की राजनैतिक परिस्थिति का निराकरण क्या हो गया? वायसराय महोदय ने अपना जो निर्णय दिया है उससे तो उसकी मीमांसा और भी गुठल हो गई है। उन्होंने कहा है कि कांग्रेस सारे भारत का प्रतिनिधित्व करने का जो दावा करती है वह ठीक नहीं है। कदाचित् देश के जिन ५२ महान् व्यक्तियों से उन्होंने हाल में भेंट-मुलाक़ात की है उनके मतवैभिन्न्य से ही उनकी यह धारणा हुई है अथवा अपनी या साम्राज्य-सरकार की ऐसी धारणा की पुष्टि के लिए उन्होंने मतभेदों का संग्रह करके अपनी उक्त घोषणा की है। चाहे जो हो, उससे परिस्थिति विषम से विषमतर हो गई है और कांग्रेस जैसी देश की महान् संस्था की इस प्रकार अवहेलना करना और सो भी ऐसे संकट के समय साम्राज्य-सरकार के वर्तमान सूत्र-धारों की राजनीतिज्ञता की महत्ता का परिचायक नहीं है।

कांग्रेस भले ही समग्र भारत का प्रतिनिधित्व न करती हो, परन्तु इतना तो प्रकट ही है कि पिछले चुनाव में

जिसमें उसने प्रसन्नता से भाग नहीं लिया था, वह पूर्णरूप से विजयी हुई है, यहाँ तक कि ग्यारह में से आठ प्रान्तों में उसका बहुमत हो गया। शेष रहे तीन प्रान्त सो उनमें भी उसका दल नगण्य नहीं रहा और उनमें मुस्लिम मंत्रि-मण्डल तभी अस्तित्व में आ सके जब मुस्लिम-दल मंत्रि-मण्डल बनाने के स्वार्थवश परस्पर तथा अन्य दलों से मिल गये। आज जो मुस्लिम लीग भारत के मुसलमानों का प्रतिनिधि होने का दावा करती है वह उन तीन प्रान्तों में भी अपना बहुमत नहीं प्राप्त कर सकी। पंजाब में संयुक्त दल ने मुस्लिम लीग को हराया था और बंगाल में तो खिचड़ी मंत्रि-मंडल है ही। सिन्ध की मुस्लिम सरकार प्रकट रूप से मुस्लिम लीग के विरुद्ध है। ऐसी दशा में मुस्लिम लीग का देश की राजनीति में जो स्थान है वह सब पर प्रकट है। यह बात दूसरी है कि अपना उल्लू सीधा करने के लिए उसको महत्त्व दे दिया जाय।

इसी प्रकार कांग्रेस का भी महत्त्व सब पर प्रकट है। यह बात सारा संसार जानता है कि भारत में कांग्रेस ही वह संस्था है जो देश की राजनीति पर विशुद्ध राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार करती है।

साम्प्रदायिक निर्णय

साम्प्रदायिक निर्णय ब्रिटेन के भूतपूर्व प्रधान मंत्री श्री राम्से मैक्डानल की देन है। उसके फल-स्वरूप भारत जिस दुर्दशा को प्राप्त हुआ है वह प्रत्यक्ष है। भारत के हिन्दू-मुसलमान आज एक-दूसरे से जितना दूर दिखाई देते हैं उतना पहले कभी नहीं थे। अतएव देश की भलाई के लिए इस समझौते को रद ही कर देना चाहिए। परन्तु न वह समझौता रद होता दिखाई देता है, न हिन्दू-मुसल्मानों में आपस में ही कोई समझौता होता नज़र आ रहा है, यद्यपि उसके लिए परस्पर बातचीत पहले भी हुई है और आज भी हो रही है। महात्मा जी तो कहते हैं कि कांग्रेस अल्पसंख्यकों की माँगें पूरी करने को तैयार है। तब अल्पसंख्यक अपनी माँगें क्यों नहीं पेश करते? वायसराय महोदय के सामने कांग्रेस और लीग के प्रधान व्यक्तियों में, जान पड़ता है, दिल खोलकर बातें नहीं हुई हैं। इसी से वाञ्छित परिणाम नहीं निकला और अब यही दिखाई देता है कि भारत में तो भारी संकट

उपस्थित होगा और इस बार कांग्रेस को अपने अस्तित्व तक के लिए लड़ना पड़ेगा।

यह तो एक प्रकट बात है कि पिछले ४० वर्ष का राजनैतिक आन्दोलन व्यर्थ नहीं गया है। यही नहीं, महात्मा जी के असहयोग-आन्दोलन से तो देश की जनता में अभूतपूर्व जागृति हो गई है और उसमें स्वराज्य के पाने की लालसा ही नहीं पैदा हो गई है, किन्तु उसकी प्राप्ति के यत्न में उसका पूरा सहयोग भी है। कांग्रेस और महात्मा गांधी ऐसी ही जनता के नेता हैं, और यह बात भारत-सरकार, देशी नरेश, मुस्लिम लीग और हिन्दू-सभा आदि आदि सभी भले प्रकार जानते हैं। आश्चर्य है कि ऐसी जानकारी के होते हुए भी आज फिर भारत में राजनैतिक संकट उपस्थित हो गया है। परन्तु यह सन्तोष की बात है कि कांग्रेस की बागडोर अभी महात्मा गांधी सँभाले हुए हैं और उनके नेतृत्व में भविष्यत् के संघर्ष में एक बार फिर भारत के राष्ट्रीयतावाद को विजय प्राप्त होगी।

वायसराय महोदय की संधि-वार्ता

दिल्ली में पिछले दिनों वायसराय महोदय के यहाँ जो बातचीत हुई है उससे दो बातें स्पष्ट हो गई हैं। एक तो यह कि ब्रिटिश सरकार इस बात पर अड़ी हुई है कि पहले आपस में मेलजोल कर लो और एकमत हो जाओ तब भारत को डोमीनियन का दर्जा दिया जाय, अर्थात् जब तक राजा लोग और मुस्लिम लीग कांग्रेस को सन्देह की दृष्टि से देखते रहेंगे तब तक सरकार उनके हितों की रक्षा के विचार से भारत को डोमीनियन का पद नहीं दे सकती। दूसरी बात यह है कि मुस्लिम लीग कांग्रेस को हिन्दू-सभा समझती है और भारत में प्रजातांत्रिक शासन का जारी होना हिन्दुओं का राज्य क़ायम होना मानती है। आश्चर्य है कि ये दोनों विचार ऐसे लोगों ने व्यक्त किये हैं जो राजनीतिज्ञों के समाज में भी विशेष रूप से जानकार माने जाते हैं। परन्तु बात ऐसी नहीं है। मुस्लिम लीग न तो मुस्लिम समाज की एकमात्र प्रतिनिधि संस्था है, न कांग्रेस हिन्दुओं की।

इँग्लेंड के राजनीतिज्ञ इस बात को जानते थे कि युद्ध-काल में उन्हें भारत का सहयोग अनिवार्य होगा। उन्हें यह भी मालूम था कि अपने हरिपुरा के प्रस्ताव के अनुसार कांग्रेस युद्ध में ब्रिटेन की सहायता करने को तैयार नहीं होगी। यही नहीं, भारत-रक्षा-क़ानून पेश होने के समय केन्द्रीय असेम्बली का बायकाट करके उसके प्रतिनिधियों ने उसके मनोभाव का स्पष्ट संकेत कर भी दिया था। परन्तु ब्रिटेन के राजनीतिज्ञों ने इन सब बातों की उपेक्षा की। वे समझते हैं कि उनके साथ राजा-रईस लोग तथा मुस्लिम लीग तो हैं। और यही उनकी भूल है, क्योंकि राजा-रईस और मुस्लिम लीग के मुसलमान ही सारा भारत नहीं हैं, हाँ वे उसका एक अंश अवश्य हैं और सो भी लोकप्रिय नहीं।

इधर कांग्रेस के साथ जनता है। हिन्दू-जनता ही नहीं, मुसलमान-जनता, ईसाई-जनता और अछूत-जनता भी है। क्योंकि कांग्रेस किसी जातिविशेष की संस्था नहीं है, किन्तु वह भाव-विशेष की संस्था है। और वह भाव है राष्ट्रीयतावाद, जिसका देश के सभी श्रेणी के लोगों में प्रचार हो चुका है। कांग्रेस ऐसे ही लोगों की प्रतिनिधि-संस्था है। आश्चर्य है, उसके इस महत्त्व को जानते हुए भी ब्रिटेन के राजनीतिज्ञ उसकी उपेक्षा कर रहे हैं और मुस्लिम लीग और राजाओं की बात उठाकर कांग्रेस को असन्तुष्ट करने में ही अपनी बुद्धिमानी समझ रहे हैं। उनको चाहिए तो यह था कि वे मुसलमानों की तथा राजा-रईसों की माँगों पर विचार करते और उनका कांग्रेस की विचारप्रणाली से सामञ्जस्य करके कोई ऐसा मार्ग ढूँढ़ निकालते कि सबके सब उस मार्ग पर चल सकते। दुःख है कि राजनीतिज्ञता के महान् पण्डित अँगरेज़ लोग भी इस अवसर पर चूक गये और अपनी भूल से भारत में अवाञ्छनीय परिस्थिति पैदा कर दी। तथापि प्रसन्नता की बात है कि वायसराय महोदय ने अभी अपनी आशा का त्याग नहीं किया है और वे कोई ऐसा उपाय ढूँढ़ने में लगे हुए हैं कि कांग्रेस, मुस्लिम लीग और राजाओं के प्रतिनिधि एक साथ मिलकर ब्रिटिश सरकार की उसके संकट-काल में पूर्णरूप से सहायता करें।

युद्ध की प्रगति

पोलैंड से छुट्टी पाकर जर्मनी ने अपनी सारी शक्ति पश्चिमी युद्ध-क्षेत्र में लगा दी है और फ़्रेंच सेना ने जर्मनी में घुसकर उसके जिस भूखण्ड पर अधिकार कर लिया

था वह फिर उसके हाथ आ गया है। फ़रासीसी सेनाओं ने जर्मनों की विशेष गतिविधि को देखकर अपनी सीमा के भीतर ही लौटकर पंक्तिबद्ध हो जाना उचित समझा और वे समय रहते ही कुशलता-पूर्वक अपने देश को चली भी गईं। इससे जर्मनों को स्थान ख़ाली मिला और उनकी सेनाओं ने बढ़कर अब फ़्रेंच-सीमा पर मैगनोलाइन के सामने जाकर अपना मोर्चा लगा दिया है। इसके सिवा पिछले दिनों और कुछ नहीं हुआ है। परन्तु यदि इस क्षेत्र में युद्ध आरम्भ होगा तो वह निस्सन्देह अति भीषण होगा। वहाँ मैगनोलाइन के पीछे फ़्रांस और ब्रिटेन की पूरी शक्ति लगाई गई है और वह जर्मनी से टक्कर लेने को उत्सुक है। परन्तु उसने अभी तक वार नहीं किया है। कदाचित् उसकी इसी विरति के कारण लोग कहने लगे हैं कि वह पश्चिमी युद्ध-क्षेत्र में नहीं लड़ेगा और इसके स्थान में वह ब्रिटेन पर आक्रमण करेगा। परन्तु अभी तक वह आक्रमण भी नहीं हुआ है। हो भी कैसे? ब्रिटेन पर आक्रमण करना सम्भव कहाँ है? हाँ, जहाज़ों के डुबने की लड़ाई अवश्य हो रही है और हो रही है बातों की। और यह पिछली लड़ाई बड़े महत्त्व की है।

इस समय युद्ध की ऐसी ही अवस्था है और एक प्रकार की शान्ति का यह वातावरण सिर्फ़ इसी बात का संकेत करता है कि भयानक तूफ़ान आनेवाला है। जर्मनी शक्तिशाली है, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु ब्रिटेन और फ़्रांस भी कम शक्तिशाली नहीं हैं, साथ ही कहीं अधिक क्षमताशाली हैं। अतएव जब इनकी मुठभेड़ होगी तब वह असाधारण रूप से भीषण ही होगी।

महायुद्ध के संबंध में रूस का रुख़

रूस के वैदेशिक मंत्री श्री मोलोटोव ने जो भाषण किया है उससे इस बात का थोड़ा-बहुत आभास मिल जाता है कि वह जर्मनी का पक्ष लेकर युद्ध में शामिल नहीं होगा और न पूर्व में वह जापान से लड़ने को इच्छुक है, परन्तु ख़ुद सुरक्षित और शक्तिसम्पन्न बना रहना वह ज़रूर चाहता है। इसी से बाल्टिक के राज्यों को अपने प्रभावक्षेत्र में लाकर और उनके तट के द्वीपों तथा बन्दरों पर अपने सैनिक अड्डे क़ायम कर वह अपने इसी भाव को कार्य का रूप दे रहा है। फ़िनलैंड को उसका प्रस्ताव अभी तक स्वीकृत नहीं हुआ है और उधर तुर्की ने भी उसके प्रस्ताव को नहीं स्वीकार किया। तुर्की से यह प्रस्ताव था कि लड़ाई होने पर वह अपनी जल-प्रणालियों से होकर कृष्ण सागर में किसी के बेड़े को न आने दे। लोगों का अनुमान है कि वह रूमानिया से अपना बेसेरेबिया-प्रान्त वापस माँगेगा और यदि वह नहीं दिया जायगा तब रूस उसे बलपूर्वक लेगा। उस दशा में उसकी ब्रिटेन और फ़्रांस से भी लड़ाई हो जायगी। यही एक बात रूस के दुस्साहस को रोके हुए है। और वह अपनी रक्षा के लिए चिन्तित ज़रूर हो उठा है।

तिब्बत के दलाई लामा

तिब्बत बौद्धों का देश है। वहाँ के प्रधान शासक वहाँ के सर्वप्रधान धर्माचार्य होते हैं, जो दलाई लामा कहलाते हैं। लोगों का विश्वास है कि दलाई लामा का अवतार होता है। पिछले दलाई लामा की मृत्यु हो जाने से उनका सिंहासन बर्षों से ख़ाली था। परन्तु तिब्बतियों के सौभाग्य से उस बच्चे का पता लग गया है जिसमें दलाई लामा की आत्मा का प्रवेश हुआ है। यह बच्चा ५ वर्ष का एक चीनी बालक है और इसमें दलाई लामा के अवतार के सब चिह्न पाये गये हैं। अतएव तिब्बत के प्रधान राज-कर्मचारियों की मण्डली ने उस बच्चे को १४वें दलाई लामा के रूप में ग्रहण कर लिया है।

यह चीनी बालक तिब्बत और चीन के कंसू प्रदेश की सीमा के कोकोनोर प्रान्त में प्राप्त हुआ है। स्वर्गीय दलाई लामा ने अपनी विल में जो शर्तें लिखी थीं वे सब इस लड़के में पाई गई हैं। पिछले दलाई लामा की मृत्यु १९३३ के दिसम्बर में हुई थी। उनकी मृत्यु के समय जिन बालकों का जन्म हुआ था उन्हीं में उनके नया अवतार लेने की बात थी। फलतः ऐसे बच्चों की जाँच-पड़ताल शुरू हुई। पाँच वर्ष के परिश्रम के बाद लासा से पाँच सौ मील दूर यह लड़का मिल गया। इसका जन्म एक धनवान् चीनी परिवार में हुआ है। इसका भाई पड़ोस के एक मठ में लामा के पद पर है। अब यह भाग्यशाली बालक सारे तिब्बत का धर्मगुरु तथा प्रधान शासक घोषित किया गया है।

विश्वकर्मा जी का स्वर्गवास

जबलपुर के नवयुवक लेखक श्रीयुत मंगलप्रसाद विश्वकर्मा अब इस संसार में नहीं रहे। १७ आक्टोबर को क्षयरोग से उनकी मृत्यु हो गई। वे एक प्रतिभाशाली लेखक थे—गद्य और पद्य दोनों के। उनकी कहानियाँ और कवितायें जिन्होंने पढ़ी हैं वे हमारे कथन का अक्षरशः समर्थन करेंगे। इधर कुछ समय से वे 'शुभचिन्तक' नामक पत्र का सम्पादन करने लगे थे। हमने समझा था कि इस क्षेत्र में भी वे अपनी प्रतिभा का सम्यक् रूप से परिचय देंगे। परन्तु हिन्दी के दुर्भाग्य से वे ३७ वर्ष की उम्र में ही काल कवलित हो गये। उनकी मृत्यु से हिन्दी को क्षति पहुँची है। भगवान् उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

एक विश्व-पर्यटक के अनुभव

एक डच महाशय विश्व-भ्रमण को निकले हैं। वे इस समय २६ वर्ष के हैं। नाम निचलास मोजेज़ है। ३ मार्च १९३७ को अपनी यात्रा पर हालैंड से रवाना हुए थे। बेलजियम, फ़्रांस, स्पेन, स्वीज़लैंड, इटली, युगोस्लेविया, बल्गेरिया, यूनान, तुर्की, सीरिया, पैलेस्टाइन, इराक़, ईरान, बलोचिस्तान तथा भारत की यात्रा करते हुए कलकत्ते पहुँचे हैं। उन्होंने अपनी यात्रा के अनुभवों का जो वर्णन किया है उसका संक्षेप 'पत्रिका' में छपा है। उसका सारांश इस प्रकार है—

मिस्टर मोजेज़ स्पेन में उस समय पहुँचे जब वहाँ गृह-युद्ध छिड़ा हुआ था। लेरीडा में उन्हें भी गोली लग गई और एक महीना तक अस्पताल में पड़ा रहना पड़ा। बार्सीलोना और मैड्रिड के हवाई हमले भी उन्हें देखने को मिले। इटली में विदेशी होने के कारण इन्हें जेल की हवा खानी पड़ी, क्योंकि मुसोलिनी को ट्रीस्ट में जहाज़ी बेड़े का निरीक्षण करना था। स्वीज़लैंड के बाद बेलग्रेड के प्राकृतिक दृश्य उन्हें बहुत पसन्द आये।

तुर्की में उन्हें वृद्धों में जो परिवर्तन दिखाई दिया उससे उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। वहाँ के जवान लोग अपने देश में महान् परिवर्तन करने में संलग्न हैं। सीरिया में बेदूइन लोगों ने उन्हें लूट लिया। पेलेस्टाइन वे चुरा कर गये। उस समय वहाँ अरबों के दो दलों में आपस में तथा यहूदियों और अँगरेज़ों से उनमें से एक की मार-काट जारी थी। वहाँ यहूदियों की उपनिवेश क़ायम करने की योजना को देख कर उन्हें चकित रह जाना पड़ा।

पेलेस्टाइन से निकाल बाहर किये जाने पर सीरिया की मरुभूमि में उन्हें बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। इराक़ उन्हें अप्रगतिशील दिखाई दिया। वहाँ के लोगों को अभी अपनी बन्दूक़ों पर ही विश्वास है।

ईरान के लोग उन्हें बड़े अतिथिसेवी और सरस मिले। वहाँ उन्नति की गति ज़ोरों पर दिखाई दी। ईरान और तुर्की ये दोनों देश भारत की अपेक्षा कहीं अधिक पाश्चात्य आदर्शों में द्रुतगति से ढलते जा रहे हैं। परन्तु उत्तरी ईरान की तरह दूर के प्रान्तों की व्यवस्था उतनी ठीक नहीं है। बलूचिस्तान आते समय मार्ग में ईरान में वे लूट लिये गये और लूटा प्रजा के लोगों ने ही नहीं, किन्तु पु[illegible]लों ने भी।

उन्होंने उत्तरी और दक्षिणी भारत का भ्रमण किया है और वे भारतीयों की प्रशंसा करते हैं। हिमालय का परिदर्शन कर आसाम होकर वे ब्रह्म देश जायँगे। वहाँ से चीन और जापान। तब अमरीका। अमरीका का भ्रमण कर स्वदेश जायँगे। वर्तमान योरपीय युद्ध को लक्ष्य कर उन्होंने कहा—मुझे अभी वर्षों तक घूमना पड़ेगा। मैं नहीं कह सकता कि लौटने पर मैं योरप को किस स्थिति में देखूँगा।

स्वर्गीय कुँवर राजेन्द्रसिंह

सीतापुर-ज़िले के टिकरा-राज्य के स्वामी श्रीमान् कुँवर राजेन्द्रसिंह जी का गत नवम्बर में पक्षाघात के आक्रमण से लखनऊ में स्वर्गवास हो गया। कुँवर साहब एक सुशिक्षित और सुसंस्कृत रईस ही नहीं थे, किन्तु वे सार्वजनिक जीवन से भी अनुराग रखते थे। वे लिबरल दल के एक सम्माननीय सदस्य थे तथा इन प्रान्तों की सरकार के कृषिमन्त्री भी नियुक्त हुए थे, जिस पद को उन्होंने सायमन-कमीशन के विरोध में छोड़ दिया था।

कुँवर साहब को हिन्दी से विशेष अनुराग था और जब पण्डित वेंकटेश नारायण तिवारी 'भारत' के सम्पादक थे तब वे उसमें मिनिस्टर और कनिस्तर की डायरी के

स्वर्गीय कुँवर राजेन्द्रसिंह

शीर्षक में प्रायः हास्यपूर्ण राजनैतिक लेख लिखा करते थे। हमारे विशेष अनुरोध पर उन्होंने 'सरस्वती' में भी लिखना शुरू किया था और अपने जीवन के अन्त तक वे 'सरस्वती' में बराबर लिखते रहे। उनके दो लेख आज भी हमारे पास हैं, जिन्हें हम 'सरस्वती' के अगले अंकों में छापेंगे।

कुँवर साहब सुलेखक ही नहीं, कविता के भी मर्मज्ञ थे और अपने लेखों में मौक़े की सूक्तियों का प्रयोग करने से कभी नहीं चूकते थे। दुःख है कि उनका ४९ वर्ष के ही वय में निधन हो गया। उनसे प्रान्त को, साथ ही हिन्दी को बहुत कुछ आशा थी। हम कुँवर साहब के परिवार के साथ हार्दिक संवेदना प्रकट करते हुए ईश्वर से उनकी दिवंगत आत्मा के लिए शान्ति के प्रार्थी हैं।

पाँच प्रश्न और उनके उत्तर

जापान में वहाँ की स्त्रियों की एक सुप्रसिद्ध पत्रिका में ऊँची कक्षाओं में पढ़नेवाली नवयुवतियों—विवाहितों, अविवाहितों दोनों—से पाँच प्रश्न पूछे गये थे। उनके उत्तर आ गये हैं और वे भी प्रकाशित हो गये हैं। ये मनोरंजक प्रश्न और उनके उत्तर नीचे दिये जाते हैं—

१—क्या आप लोग यह चाहती हैं कि बच्चों का लालन-पालन घर पर न किया जाय, बल्कि गवर्नमेंट के द्वारा हो?

इसके उत्तर में सौ में छिहत्तर ने गवर्नमेंट के द्वारा बच्चों का लालन-पालन किये जाने का विरोध किया, केवल चौबीस ने समर्थन किया।

२—क्या तुम्हें वे स्त्रियाँ पसन्द हैं जो अपने माता-पिता के साथ की अपेक्षा अकेले रहना अधिक ठीक समझती हैं?

सौ में तीस ने ही इन एकान्त इच्छुक स्त्रियों का साथ देना चाहा। शेष सत्तर ने माता-पिता के साथ रहने को ही श्रेष्ठतर बताया।

३—यदि आप माता हों, तो क्या आप यह ठीक समझेंगी कि अपनी लड़कियों को उन युवकों के साथ बाहर घूमने जाने दें जिनकी वे प्रशंसक हैं और जिनका उन्हें विश्वास है?

सौ में पचहत्तर लड़कियों ने लिखा कि वे ज़रूर जाने देंगी। अब लड़कियाँ अपनी रक्षा करने और आत्म-सम्मान समझने में समर्थ हैं।

(४) विवाहयोग्य स्त्रियों को काम-शास्त्र की शिक्षा देनी चाहिए या नहीं?

इसके उत्तर में क़रीब क़रीब एक-सी संख्यायें दोनों ओर रहीं। फिर भी शिक्षा न देने का समर्थन करने-वालियों की संख्या कुछ अधिक थी।

(५) क्या आप अपने पति में व्यावहारिक ज्ञान के अतिरिक्त और कुछ योग्यता भी चाहती हैं?

सौ में केवल तैंतीस स्त्रियाँ ऐसी निकलीं जिन्होंने व्यावहारिक ज्ञानवाले पति से पूरा सन्तोष पा लेने की आशा की। शेष सतहत्तर ने साहित्य, कला, खेल आदि में भी विशेष योग्यता पसन्द की।

यदि यहाँ के विश्वविद्यालयों में पढ़नेवाली लड़कियाँ अपने मन की बात लिख सकें तो सम्भवतः इन प्रश्नों पर उनके उत्तर भी इसी अनुपात में हों। किन्तु यहाँ उत्तर पाना ही असम्भव है।

विजय वर्मा

युद्ध की डायरी

२३ अक्टोबर—एक पनडुब्बा अटलांटिक समुद्र में ब्रिटिश हवाई जहाज़ों-द्वारा बम बरसाकर डुबा दिया गया। स्काटलैंड के तट पर जर्मनों का हवाई हमला हुआ।

२४ अक्टोबर—मोसले के पूरब में फ़्रांसीसियों ने आक्रमण किया। फ़ोर्टवाच के पश्चिम एक गाँव पर जर्मनों ने हमला किया, किन्तु असफल रहे। रूस और जर्मनी में यह समझौता हुआ कि रूस जर्मनी को १० लाख टन अनाज और चारा देगा। वारन्ट जङ्गल के दक्षिण-उत्तर में फ़्रेंच तथा जर्मन-सैनिकों में लड़ाई हुई। दो ब्रिटिश जहाज़ डुबा दिये गये। एक ग्रीक जहाज़ भी डुबाया गया।

२५ अक्टोबर—मोसले के पास फ़्रेंच सेना ने जर्मन-सेना की एक टुकड़ी को पीछे हटा दिया। दो ब्रिटिश जहाज़ डुबा दिये गये।

२६ अक्टोबर—ब्रिटिश जहाज-द्वारा एक जर्मन पनडुब्बा डुबा दिया गया। जर्मनी और तटस्थ देशों के बीच टेलीफ़ोन का सम्बन्ध तोड़ दिया गया।

२७ अक्टोबर—अमेरिका की सीनेट ने शस्त्रों के निर्यात से रोक उठा दी। जर्मनी के जङ्गी जहाज़ प्रशान्त महासागर के लिए रवाना हो गये। ब्रिटेन के युद्ध-विभाग ने घोषणा की कि २२ और ३५ वर्ष की अवस्था के बीच की उम्र के स्वयंसेवक भर्ती किये जायँगे। दक्षिणी रोडेशिया में भी अनिवार्य भर्ती की आज्ञा दे दी गई।

२८ अक्टोबर—स्काटलैंड की फ़र्थ की खाड़ी पर जर्मन हवाई जहाज़ों ने फिर हमला किया। पश्चिमी युद्ध-क्षेत्र में लड़ाई ज़ोर पकड़ गई। रात भर तोपों की गोलाबारी होती रही। जाँच-पड़ताल करने-वाले दोनों ओर के हवाई जहाज़ों में भी मुठभेड़ हुई।

२९ अक्टोबर—नार्वे का एक स्टीमर उत्तरी सागर में डुबा दिया गया।

३० अक्टोबर—दो ब्रिटिश जहाज़ और डुबा दिये गये।

३१ अक्टोबर—जर्मन-सीमा पर मित्र-राष्ट्रों और जर्मन-हवाई जहाज़ों में युद्ध हुआ। मित्र-राष्ट्रों के चार हवाई जहाज़ गिरे। रूसी सेनायें लटविया में पहुँच गई। ब्रिटिश जहाज़ 'केरमोना' डुबा दिया गया।

१ नवम्बर—पश्चिमी मोर्चे पर जर्मनों ने फ़्रेंच क़िलेबन्दी तथा मार्गों पर गोले बरसाये। ४००० टन का एक ब्रिटिश स्टीमर पनडुब्बे-द्वारा डुबा दिया गया।

२ नवम्बर—एक जर्मन टैंकर जहाज़ ने कारबियन समुद्र में ब्रिटिश जहाज-द्वारा पकड़े जाने के भय से अपने आपको डुबा दिया। अटलांटिक सागर में एक ब्रिटिश स्टीमर 'एग्वा' पर पनडुब्बे ने आक्रमण किया, किन्तु बच गया।

४ नवम्बर—एक फ़्रेंच जहाज़ डुबा दिया गया। एक नार्वे का और एक डेनमार्क का जहाज जर्मन पनडुब्बों ने डुबा दिया। ८० हज़ार रूसी सैनिक फ़िन[illegible] सीमा पर पहुँच गये।

५ नवम्बर—जर्मन-माल-जहाज़ को फ़्रेंच[illegible] ने डुबो दिया। उत्तरी फ़्रांस में जर्मनी का हवा[illegible] हमला हुआ। पश्चिमी मोर्चे पर कई एक स्थानों पर दो[illegible] से गोलाबारी हुई।

६ नवम्बर—पश्चिमी मोर्चे पर फ़्रेंच व जर्मन हवाई जहाज़ों में युद्ध हुआ। ९ जर्मन हवाई ज[illegible] दिये गये। जर्मनों ने लटविया का जहाज़ पक[illegible]

७ नवम्बर—ब्रिटिश हवाई जहाज़ों की [illegible] सागर में कई बार जर्मन हवाई जहाज़ों से लड़ा[illegible] 'रीटा' नामक स्टीमर जर्मनों ने पकड़ लिया।

८ नवम्बर—एक जर्मन जहाज़ पकड़ लि[illegible] पश्चिमी मोर्चे पर गोलाबारी हुई। उत्तरी [illegible] ऊपर ब्रिटिश व जर्मन वायुयानों में युद्ध हुआ। [illegible] वायुयान नष्ट हुए। पश्चिमी रणस्थल में एक [illegible] वायुयान जर्मनों ने छीन लिया।

९ नवम्बर—एक ब्रिटिश जहाज़ उत्तरी [illegible] डुबा दिया गया।

१३ नवम्बर—एक ब्रिटिश विध्वंसक ज[illegible] कर दिया गया। एक और ब्रिटिश जहाज़ 'प[illegible]' को जर्मन पनडुब्बे ने डुबा दिया। पश्चिमी मोर्चे प[illegible] के ३० लाख से अधिक सैनिक जमा हो गये हैं। [illegible] में एक जहाज़ सुरङ्ग से टकरा कर डूब गया।

१४ नवम्बर—नारवे के दो जहाज़ों को [illegible] पनडुब्बों ने डुबा दिया। दो ब्रिटिश जहाज़ और [illegible] दिये गये। एक ब्रिटिश स्टीमर भी डुबा दिया गया। ब्रिटिश जंगी जहाज़ों ने जर्मनी के दो जहाज़ डुबाये। [illegible] जर्मन हवाई जहाज़ को फ़्रेंच हवाई जहाज़ों ने [illegible] दिया।

१५ नवम्बर—एक ब्रिटिश स्टीमर डुबा दिया गया। बाल्टिक सागर में लिथुआनिया के दो और जहाज़ [illegible] दिये गये। ब्रिटिश जंगी जहाज़ों ने एक जर्मन-[illegible] को डुबा दिया।

१६ नवम्बर—एक ब्रिटिश जहाज़ और डुबा [illegible] गया। मित्र-राष्ट्रों ने अमेरिका से हवाई जहाज़ [illegible] फ़्रांस पर जर्मन-वायुयानों ने चक्कर लगाया।

१८ नवम्बर—एक जर्मन स्टीमर पकड़ा [illegible] ब्रिटिश सरकार ने ४०० हवाई जहाज़ मँगाने का [illegible] अमेरिका को दिया। लटविया का एक माल जहा[illegible] से टकरा कर डूब गया। जर्मनों ने अपना एक [illegible] पकड़े जाने के भय से स्वयं छेद कर डुबा दिया।

१९ नवम्बर—पूर्वी तट के समीप जर्मन-सुर[illegible] टकरा कर तीन और जहाज़ डूब गये। ये तीन[illegible] स्वीडिश, ब्रिटिश और इटैलियन थे।

२० नवम्बर—ब्रिटेन के तीन जहाज़ [illegible] ट्रालर और डुबा दिये गये।

२१ नवम्बर—५ जहाज़ और डूब गये [illegible] ३ ब्रिटिश, १ जापानी और एक यूगोस्लाविया [illegible]

Printed and published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd. [illegible]